हिंदी पत्रकारिता
विविध आयाम

भाग २

परामर्श मंडल

स्वर्गीय श्रीमती रमा जैन

बनारसीदास चतुर्वेदी

स० ही० वात्स्यायन 'अज्ञेय'

डा० धर्मवीर भारती

प्रो० सिद्धेश्वरप्रसाद



संपादन मंडल

बांकेबिहारी भटनागर

जयप्रकाश भारती

डा० श्याम परमार



संपादन सहयोग

क्षेमचन्द्र 'सुमन'

दिनेश शर्मा

[illegible]





हिन्दी बुक सेन्टर, नयी दिल्ली-110002

द्वारा प्रकाशित

हिंदी पत्रकारिता विविध आयाम

भाग २

संपादक

डा० वेदप्रताप वैदिक

VAIDIK VED PRATAP
HINDI PATRAKARITA : VIVIDH AYAAM VOL. II

price : Vol I : Rs. 200/-
: Vol II : Rs. 250/-

प्रकाशक : हिंदी बुक सेंटर
4/5 बी आसफ अली रोड
नई दिल्ली-110002

मूल्य : प्रथम भाग रू० २००-००
द्वितीय भाग रू० २५०-००

मुद्रक : जे आर आफसेट, दिल्ली

विषय सूची

[१] कला और शिल्प

[२] व्यवस्था

[३] विविध

[४] पत्रकार-परिचय

कला और शिल्प

समाचार और उसका संपादन

समाचार : गांव की चौपाल और बगीची पर पहले लोग नियमित रूप से आकर क्यों एकत्र होते थे ? स्त्रियों के लिए कुएं का जगत प्रातः-सायं क्यों विशेष आकर्षण का केंद्र था ? आज काफी-हाउसों और चायघरों में इतनी भीड क्यों रहती है ? जानकारी पाने और देने की स्वाभाविक आदत के कारण। काफी और चाय का पीना तो गौण बात है।

अक्सर यह कहा जाता है कि लोगों के पेट में बात पचती नहीं। पचे तो पचे कैसे ? सुनी बात पेट में ऐसी खदर-बदर मचा देती है कि उसका थोड़े समय भी टिकना कठिन हो जाता है। अपनी बात कहना और दूसरे की सुनना सामाजिक प्राणी का स्वाभाविक धर्म है। अतः यह कहा जा सकता है कि जानकारी देना और जानकारी पाना मनुष्य के स्वभाव में है। आधुनिक जगत में इस जानकारी को ही समाचार कह सकते हैं। 'जानकारी' अथवा 'समाचार' से भरे समाचार-पत्र नित्यप्रति करोड़ों की संख्या में छपकर करोड़ों ही लोगों की समाचारी भूख को चाय अथवा कलेवा करने से पहले ही बुझा देते है। समाचार-पत्र में बातों, अफवाहों और जानकारी की भरमार होती है। परंतु हर बात, हर अफवाह और हर जानकारी समाचार नहीं होती। यह प्रश्न उठता है कि तब समाचार क्या होता है ? उसकी परिभाषा क्या है ? उसका स्वरूप क्या है ? इन प्रश्नों का उत्तर अनेक व्यक्तियों ने अनेक प्रकार से दिया है। व्यक्तिगत मान्यताओं, भावनाओं और परिस्थितियों के भेद के कारण कहीं-न-कहीं और कुछ-न-कुछ अंतर समाचार की परिभाषाओं में होता है।

समाचार की कुछ परिभाषाएं निम्नलिखित हैं :—

"अनेक व्यक्तियों की अभिरुचि जिस सामयिक बात में होती है, वह समाचार है। सर्वश्रेष्ठ समाचार वह है, जिसमें बहुसंख्यक लोगों की अधिकतम रुचि हो।"

—प्रो० विलार्ड ब्लेयर

"पर्याप्त संख्या में मनुष्य जिसे जानना चाहें वह समाचार है, शर्त यह है कि वह सुरुचि तथा प्रतिष्ठा के नियमों का उल्लंघन न करे।"

—जे० जे० सिंडलर

"कोई भी घटना जिसमें मनुष्यों की दिलचस्पी हो, समाचार है।"

"पाठक जिसे जानना चाहते हैं, वह समाचार है।"

"समाचार सामान्यतः वह उत्तेजक सूचना है जिससे कोई व्यक्ति संतोष अथवा उत्तेजना प्राप्त करता है।"

—प्रो० चिल्टन बुश

"समाचार वह है जिसे प्रस्तुत करने में किसी बुद्धिमान (समाचार-पत्र के) व्यक्ति को सब से अधिक संतोष हो, और जो ऐसा है जिसे प्रस्तुत करते समय प्रस्तुत-कर्ता को कोई अधिक लाभ तो न होता हो, परंतु जिसके संपादन से ही उसकी व्यावसायिक कुशलता का पूरा-पूरा पता चलता हो। संपादक की इस क्षमता की सब से बड़ी कसौटी अस्पष्टताओं और दुरूहताओं की ओट में छिपे महत्त्वपूर्ण तथ्यों को इस ढंग से प्रस्तुत करना है कि उन तथ्यों को इस दुनिया के वे लोग भी समझ जायं जिनमें अज्ञानता लापरवाही और मूर्खता ही भरी है तथा विचारों के संघर्ष के प्रति रुचि का अभाव है।

"श्रेष्ठ समाचार की परिभाषा यद्यपि यही है, तथापि साधारण व्यवहार में समाचार वे हैं जो अखबार में छपते हैं और अखबार वे है जिन्हें समाचार-पत्र में काम करने वाले तैयार करते हैं। यह कथा यद्यपि वेदनामूलक है तथापि कटु व्यंग्य होते हुए भी सत्य है।"

—जेराल्ड डब्ल्यू० जानसन

"जिसे अच्छा संपादक प्रकाशित करना चाहे वही समाचार है।"

"समाचार घटना का विवरण है। घटना स्वयं में समाचार नहीं।"

"घटनाओं, तथ्यों और विचारों की सामयिक रिपोर्ट समाचार है, जिसमें पर्याप्त लोगों की रुचि हो।"

—विलियम एल० रिवर्स

"वह सत्य घटना या विचार जिसमें बहुसंख्यक पाठकों की अभिरुचि हो।"

—एम० लाइल स्पेंसर

"उन महत्त्वपूर्ण घटनाओं की जिनमें जनता की दिलचस्पी हो, पहली रिपोर्ट को समाचार कह सकते है।"

—हरी सी० हापवुड

"किसी समय होने वाली उन महत्त्वपूर्ण घटनाओं के सही और पक्षपातरहित विवरण को, जिसमें उस पत्र के पाठकों की अभिरुचि हो, हम समाचार कह सकते है।"

—विलियम एस० माल्सबाई

शिकागो के दो पत्रकारों—हार्पर लीच और जान सी० कैरोल ने काफी वर्ष पहले 'समाचार' की व्याख्या पर पूरी पुस्तक ही लिख डाली थी। उन लेखकों ने अपनी पुस्तक का आरंभ निम्नलिखित वाक्यों से किया था :

"'समाचार' अति गतिशील साहित्य है। समाचार-पत्र समय के करघे पर इतिहास के बहुरंगे बेल-बूटेदार कपड़े को बुनने वाले तकुए हैं।"

श्री नंदकिशोर त्रिखा ने अपनी पुस्तक 'समाचार संकलन और लेखन' का प्रथम वाक्य इस प्रकार लिखा है :

"समाचार-पत्र का मौलिक कच्चा माल न कागज है, न स्याही। वह है समाचार। फिर चाहे प्रकाशित सामग्री ठोस संवाद के रूप में हो, या लेख के रूप में, सब के मूल में वही तत्त्व रहता है जिसे हम समाचार कहते हैं।"

आगे अपनी पुस्तक में पृष्ठ सात पर उन्होंने लिखा है—

"....परिभाषा के बिना भी समाचार का बोध पाठक को उस स्पंदन से होता है जो वह उसे पढ़कर प्राप्त करता है। समाचार का बोध उस आंशिक या पूर्ण संतोष से भी होता है जब पाठक उसे पढ़कर अपने को अधिक सूचित, ज्यादा शिक्षित पाता है। स्पंदनकारी वही होगा जो मन-मस्तिष्क को दिलचस्प लगे। मानसिक संतोष उससे मिलेगा जो महत्त्वपूर्ण जानकारी देगा। अतः समाचार को सदैव नया दिलचस्प, मनोरंजक और महत्त्वपूर्ण होना चाहिए।"

अंग्रेजी में समाचार को 'न्यूज' कहते हैं। इस शब्द के चार अक्षर होते हैं—एन, ई, डब्ल्यू, एस। इन अक्षरों से चारों दिशाओं—उत्तर (नार्थ), पूर्व (ईस्ट), पश्चिम (वेस्ट) और दक्षिण (साउथ) का बोध होता है। अतः यह कहा जा सकता है कि जो चतुर्दिक् का बोध कराये वह समाचार है।

संभवतः इसी दृष्टि से हेडन के कोश मे समाचार की परिभाषा "सब दिशाओं की घटना" दी गयी है। अंग्रेजी का 'न्यूज' शब्द 'न्यू' शब्द का बहुवचन है। अंग्रेजी का 'न्यू' लैटिन के 'नोवा' और लैटिन का 'नोवा' संस्कृत के 'नव' शब्द पर आधारित है। इन तीनों शब्दों का एक ही अर्थ है 'नवीन'। असल में समाचार तो वह है, जो नवीन है। कविवर जयशंकर प्रसाद ने ठीक ही कहा है. "प्रकृति के यौवन का शृंगार करेंगे कभी न बासी फूल"। जैसे कोई बासी फूल पसंद नही करता उसी प्रकार किसी पाठक को बासी समाचार पढ़ना रुचिकर नही होता। समाचार का शिवत्व उसकी नवीनता में है।

किसी ने समाचार की बड़ी गंभीर परिभाषा की है : "जिसे कहीं कोई दबाना चाह रहा हो वही समाचार है, शेष सब विज्ञापन।" इस एक पंक्ति में समाचार-पत्र और उसके पाठक की अनुभूति का बड़ा मर्म छिपा है।

श्री मनुकोंडा चलपतिराव ने समाचार की एक नवीन व्याख्या की। उनके अनुसार समाचार की नवीनता इसी मे है कि वह परिवर्तन की जानकारी दे। यह जानकारी चाहे राजनीतिक, सामाजिक अथवा आर्थिक हो। परिवर्तन मे भी उत्तेजना है। श्री चलपतिराव ने समाचार की उस पुरानी परिभाषा को बदल देने पर जोर दिया जिसके अनुसार "अगर कुत्ता आदमी को काटे तो समाचार नहीं बनता। हां, यदि आदमी कुत्ते को काटे तो समाचार बन जाता है।" यह पश्चिमी देशों की परंपरा पर आधारित पुरानी परिभाषा है। अब संसार बहुत बदल रहा है। नये-नये देश नयी-नयी परंपराएं स्थापित कर रहे है। समाचार के बारे में भी मान्यताएं बदल गयी हैं।

ऊपर दी गयी इन परिभाषाओं से ज्ञात होता है कि समाचार को समाचारत्व प्रदान करने वाले मूल तत्त्व ये है :

१. जानकारी
२. नवीनता
३. बहुसंख्यकों की अधिकतम रुचि
४. उत्तेजक सूचना
५. परिवर्तन की सूचना ।

शुष्क तथ्यों को समाचार नहीं माना जाता । वे तथ्य ही समाचार हैं जो पाठक के जीवन, सुख-दुख, भावना और विचारों पर प्रभाव डालते हैं, उसे रुचिकर प्रतीत होते और आनंद देते हैं । भावोद्रेक में सहायक तथा स्वार्थ पर चोट करने वाले समाचारों में मनुष्य की रुचि अधिक होती है । सापेक्ष अपनत्व और सामीप्य के अनुसार पाठक को समाचार अधिक अथवा कम आकर्षक प्रतीत होते हैं । समग्र दृष्टि से समाचार में आकर्षण के मूल गुण निम्न प्रकार के माने गये हैं :

१. नवीनता
२. सामयिकता
३. सामीप्य
४. स्वहित
५. धन
७. संघर्ष और रोमानी
८. असाधारणता
९. वीरपूजा
१०. यश
११. रहस्य
१२. मानवीय गुणों का उद्रेक
१३. साहस के कार्य
१४. आविष्कार और खोज
१५. कुकृत्य
१६. प्रगति की कहानी
१७. नाटकीयता
१८. विशिष्टता
१९. परिणाम
२०. संस्कृति
२१. विश्वास
२२. स्वास्थ्य
२३. सुरक्षा
२४. बंधुत्व
२५. सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन

चयन

समाचार-चयन का श्रीगणेश नये-पुराने समाचारों की यथासंभव पर्याप्त जानकारी करने के बाद और आत्मविश्वास के साथ करना चाहिए । इसका मतलब यह है कि चयन-कार्य आरंभ करने से पहले चयनकर्ता को उस दिन के समाचार-पत्र तथा अपना समाचार-पत्र अच्छी तरह पढ़ लेना चाहिए । प्रतिक्षण बढने वाले समाचारों के घने जंगल से छपने योग्य समाचार-सुमनों का चुनना साधारण काम नही । उसके लिए बड़े धैर्य, साहस और प्रत्युत्पन्न मति की आवश्यकता है । समाचार-पत्रों का सीमित स्थान और समाचारों का बाहुल्य भी कार्य को दुरूह कर देते हैं ।

प्रभात अथवा रात की पाली है । मुख्य उप-संपादक के सामने देश-विदेश के समाचारों का ढेर लगा है । प्रतिक्षण आने वाले समाचार उस ढेर को बढ़ाते ही जाते हैं । विभिन्न माध्यमों द्वारा जिस गति से समाचार आते हैं, उससे भी अधिक गति के साथ उनके चुनने का काम किया जाय तब तो पार पड़ती है, अन्यथा हाथ-पैर फूल जाते हैं । किसी समाचार की पहली पंक्ति पढ़ी, किसी का प्रथम पैरा अथवा किसी पर पूरी नजर दौड़ा ली, बस उसी से समाचार के 'पानी' को पहचान लिया । इस एक निगाह के बल पर समाचार को तौल लिया जाता है । इस दौड़ती नजर के साथ ही

छंटाई और वर्गीकरण का काम दोनों हाथों से चलता रहता है। पहले चुनाव के समय दो वर्ग बना लेना अच्छा होता है—देशी और विदेशी। जो समाचार काम के न जंचें अथवा पुराने हों उन्हें तुरंत रद्दी की टोकरी के हवाले कर देना चाहिए। रद्दी की टोकरी में डालते हुए असमंजस में पड़ना अपने और दूसरों के लिए उलझन और शंकाएं पैदा करना है। बेकार के समाचारों का मेज पर पड़े रहना तो निश्चय ही उलझन पैदा करता है। बेकार समाचार अपने लिए उतनी बड़ी उलझन नहीं होते जितनी दूसरों के लिए। छांटने वाला तो यह जानता है कि अमुक समाचार बेकार-सा ही है, परंतु दूसरा तो यह नहीं जानता। यहां 'दूसरे' से अर्थ है वह व्यक्ति जो आगे की पाली का काम संभालेगा।

अब वे समाचार रहे जो काम के हैं और बंटे हैं देशी तथा विदेशी वर्गों में। इन दोनों वर्गों में कुछ छोटे-छोटे और कुछ बड़े-बड़े तथा कुछ अपूर्ण समाचार होते हैं, विस्तृत समाचार अनेक कड़ियों में प्राप्त होते हैं और वह भी एक साथ नहीं। समाचार भेजनेवाले इस सिद्धांत का पालन करते हैं कि यदि किसी समाचार की एक से अधिक कडी होती हैं तो उस पर समाचार की कड़ी की संख्या और ऐसा संकेत शब्द दे देते है जिससे उक्त समाचार आसानी से पहचान लिया जाता है। इस प्रकार के संकेत को अंग्रेजी में 'स्लग' कहते हैं। हिंदी में इसे 'संकेत पंक्ति' या 'संकेत शब्द' कहते हैं। कहीं-कहीं 'स्लग' शब्द ही आत्मसात कर लिया गया है। जब विस्तृत समाचार पूर्ण हो जाता है तब उसके अंत में 'समाप्त' का संकेत होता है। इस प्रकार 'स्लग' की संख्या के आधार पर 'समाचार कहानियां' पूरी कर ली जाती हैं।

कुछ समाचार-समितिया 'आज के संभावित समाचार'-सूची पहले ही भेज देती हैं। इस प्रकार की सूचियों को अलग रख लेना चाहिए। वे समाचार को खोजने और उसके महत्व को आंकने में बहुत सहायक होती हैं।

चयनकर्ता की समस्या एक और भी है। कुछ कार्यालयों में किसी विशेष विषय के समाचारों को अलग-अलग व्यक्तियों को सौंप देने अथवा अलग डेस्क बना देने की व्यवस्था होती है। यदि ऐसा है तो व्यवस्था के अनुरूप ही उक्त प्रकार के समाचारों को पहले छांटकर यथास्थान भिजवा देना चाहिए। कुछ डेस्क इस प्रकार के होते हैं—विज्ञान, खेल, व्यापार, फिल्म, डाक और स्थानीय आदि। इस प्रकार के वितरण से समाचारों का गट्ठर बहुत कम हो जाता है।

विदेशी समाचार

समाचारी सिद्धांतों के अनुसार समाचारों का चयन एक पक्ष है और दृष्टिकोण के अनुसार उनका चयन दूसरा पक्ष। हमने पहले ही लिखा है कि समाचारों का चयन करते समय काम के समाचारों के दो ढेर बना लेने चाहिए—देशी और विदेशी। पहले हम विदेशी समाचारों के चयन के विषय में विचार करेंगे। स्वतंत्रता से पहले भारतीय पत्रों में विदेशी समाचारों का बाहुल्य रहता था। प्रधानता भी उनको ही मिलती थी। कारण 'रायटर' समाचार-समिति विदेश के समाचारों, विशेषकर ब्रिटेन, अमरीका और पश्चिमी यूरोप के समाचारों को शीघ्र, सुगठित रूप में और विस्तार से दूरमुद्रक (टेली-

प्रिंटर) पर दे देती थी। 'रायटर' का स्वार्थ जिस प्रकार के समाचारों से सिद्ध होता था उन्हीं को भारतीय पाठकों के गले पत्रों के माध्यम से उतारा जाता था। स्वतंत्रता के बाद यह स्थिति बदली परंतु जैसा परिवर्तन होना चाहिए था वैसा नही हुआ। अब भी बाहर के समाचार अधिकांशतः उन्हीं पुराने हाथों में हैं। विदेशी समाचार-समितियां ज्यादातर ब्रिटेन, अमरीका और यूरोप के समाचार ही अपनी दृष्टि से देती हैं। एशियाई देशों के वे ही समाचार हम तक आते है जो 'संकटपरक' होते हैं। ऐसा जान पड़ता है कि मानो एशिया के विभिन्न देशों में संकट के ही समाचार होते हैं, और किसी प्रकार के नहीं। इस परंपरा का प्रभाव ऐसा चला आ रहा है कि समाचारों का चयन करने वाले पत्रकार भी उसी मनोवृत्ति के बन गये हैं। उन्हें भी विदेशी समाचारों के घटाटोप के कारण या तो एशियाई समाचार दीखते ही नहीं या यदि चुनाव में दीख भी जाते हैं तो संपादन और पृष्ठ-सज्जा के समय उनका महत्व अपेक्षाकृत कम समझा जाता है। चाणक्य सेन ने अपनी पुस्तिका 'एशियन न्यूज इन दी इंडियन प्रेस' में इस बात के लिए ताना मारा है कि जो भी एशियाई समाचार समितियों द्वारा प्राप्त होते हैं उनमें से अधिकांश समाचार-कक्ष अथवा कंपोज-कक्ष में 'किल' हो जाते हैं। एशियाई समाचारों की इसीलिए हत्या होती है कि उप-संपादक 'संकट' के अलावा एशियाई देशों की गतिविधियों को अधिक महत्व नही देते। एक दूसरा कारण यह भी है कि बौद्धिक और भावनात्मक दृष्टि से पश्चिमी संसार की गतिविधियों से उनका मन अधिक मेल खाता है। यह भी देखा जाता है कि स्वदेशाभिमान के कारण भी 'अरुचिकर' एशियाई समाचारों को रद्द कर देने की प्रवृत्ति है। चाणक्य सेन ने अपने सर्वेक्षण में केवल 'आज' (वाराणसी) की प्रशंसा की है। उक्त पत्र बर्मा, थाईलंड और जापान की विशेष चिट्ठियां छापता है, परंतु वह पत्र भी श्रीलंका, इंडोनेशिया, अफगानिस्तान और कंबोदिया से विशेष चिट्ठी मंगाने की व्यवस्था नही करता। श्री सेन का आरोप बहुत अंशों में सत्य है। दिल्ली से प्रकाशित होने वाले हिंदी के समृद्ध समाचार-पत्र एशियाई देशों में अपने संवाददाता रख सकते हैं, वहा से चिट्ठी मंगाने की व्यवस्था कर सकते हैं, पर उधर किसी का ध्यान ही नही है। फिर जो भी समाचार एशियाई देशों के हिंदी पत्रों में प्रकाशित होते हैं वे सब पश्चिमी राष्ट्रों के हितों और दृष्टिकोण का समर्थन करते हैं। असल बात क्या है इसका पता नहीं चलता। यह अति कठिन कार्य है कि एशियाई देशों के जितने समाचार मिलें उन्हें नये सिरे से भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार बनाकर पाठक के सामने प्रस्तुत किया जाय। इन सब बातों का परिणाम यह होता है कि विदेशी समाचारों में पश्चिमी देशों के समाचार अधिक होते हैं और एशियाई देशों के कम। चयन किये हुए समाचारों का दृष्टिकोण भी पश्चिमी ही होता है।

विदेशों से प्राप्त समाचारों में पहले हमें उन समाचारों को चुन लेना चाहिए जिनमें भारतीयों के हिताहित का कोई अंश हो; जैसे ब्रिटेन में प्रवासी भारतीय डाक्टरों का पक्षपात के विरुद्ध आंदोलन। इसी प्रकार अरब देशों और बर्मा में कुछ भारतीयों की गतिविधियों का विस्तृत वर्णन प्रकाशित करना चाहिए, न कि सूचनामात्र। अमरीका और कनाडा आदि देशों में रहने वाले भारतीयों तथा बृहत्तर एशिया

के देशों के भारतीयों के समाचारों का यथासंभव अधिक चुनाव करना चाहिए।

ऐसे विदेशी समाचारों को भी प्राथमिकता मिलनी चाहिए, जिनका भारत के राष्ट्रहित से सीधा संबंध हो। चिली में सी० आई० ए० की षड्यंत्रकारी गतिविधियों के समाचार की तुलना में यह समाचार अधिक महत्वपूर्ण है कि ईरान के शहंशाह क्षेत्रीय सहयोग संगठन (आर० सी० डी०) में भारत को भी शामिल करना चाहते हैं। इसी प्रकार जब महाशक्तियों का कोई शिखर सम्मेलन हेलसिंकी, ब्लादीवस्तोक या पीकिंग मे होता है तो उप-संपादक का काम उन देशों के पारस्परिक संबंधों को प्रभावित करने-वाली खबर के सारे हिस्सो को संक्षेप में प्रस्तुत करना तो है ही, उसके साथ-साथ उसका ध्यान उन हिस्सों पर अधिक केंद्रित होना चाहिए जिनका संबंध दक्षिण एशिया या भारत से है। इस दृष्टि से उन समस्त राष्ट्रों की सैनिक गतिविधियों की खबरों पर उप-संपादकों की कड़ी दृष्टि रहनी चाहिए, जिनका संबंध भारतीय सुरक्षा से है। पड़ोसी राष्ट्रों की आंतरिक उथल-पुथल की खबरों की भी उपेक्षा नहीं की जा सकती, क्योंकि वहां कभी-कभी स्थिति इतनी बिगड जाती है कि उसके बारे में भारत को बड़े पैमाने पर कार्रवाई करने के लिए विवश होना पड़ता है।

देशी समाचार

अब आती है देशी समाचारों की बात। देशी समाचारों में राजनीतिक समाचारों का बाहुल्य रहता है। आजादी से पूर्व हिंदी के समाचार-पत्रों का धर्म अंग्रेजी शासन और साम्राज्यवाद से संघर्ष करना था। अतः पक्ष और विपक्ष के राजनीतिक समाचारों की भरमार हमारे पत्रो में रहती थी। वही परंपरा हमें ऐसी विरासत में मिली थी कि उसी का पालन अब तक हमारे पत्र करते चले जा रहे है। उस राजनीतिक समाचारों की 'विरासत' के परिणामस्वरूप ही हमारे पाठकों का मानस भी 'राजनीतिक' ही हो गया है। हमारे पत्रों को यह मतलब नही कि 'राजनीतिक' समाचार रचनात्मक है अथवा विघटनात्मक। इस विषय में दो पुस्तकें देखने-पढ़ने योग्य हैं: (१) 'दि प्रेस एंड दि पीपल' (प्रेस और जनता) सं० विनायक पुरोहित, (२) 'दि न्यूज पेपर एंड दि कम्युनिटी' (समाचार-पत्र और समाज)। प्रथम पुस्तक में ऐवर ड्रिबर्ग ने अपने निबंध में कहा है कि देश के विकास और परिवर्तन की मूल समस्याओं के प्रति भारतीय प्रेस का दृष्टिकोण अपरिपक्व है। उन्होंने आगे कहा है कि भारतीय प्रेस का बढ़ा-चढ़ा रोग है 'राजनीति' और राजनीति भी मध्यम वर्ग की (सत्ता-लोलुप)। हम उन गहरे राजनीतिक मूल्यों को भूल जाते हैं जिनका आर्थिक विकास और सामाजिक परिवर्तन से संबंध होता है। हम उस राजनीति की ओर भी ध्यान नहीं देते जिसका संबंध श्रमिक वर्ग, छोटे किसान, भूमिहीन मजदूर, साधारण दस्तकार और मामूली व्यापारी से होता है। सुरेंद्र सूरी ने अपने निबंध में लिखा है कि भारतीय प्रेस में सर्जनात्मक साधनों की तलाश करने का साहस नहीं। दूसरी पुस्तक में शारदाप्रसाद, अशोक मित्र, मूरियल वासी, ए० रहमान और आमात्य सेन ने भी उन कमियों की ओर इंगित किया है जिनको ऊपर के विचारों में व्यक्त किया गया है।

१९६९, १९७० और १९७१ के वर्ष भारतीय जीवन में बहुत महत्व के थे।

इस काल में भारतीय प्रेस की अवस्था का सर्वेक्षण सुमंत बनर्जी ने अपनी पुस्तक 'इंडियाज मोनोपोली प्रेस' में किया है। इस सर्वेक्षण में सभी पत्र अंग्रेजी के हैं तथा बैंक राष्ट्रीयकरण, प्रिवी पर्स आदि पर अखबारों के दृष्टिकोण का विश्लेषण किया गया है। सर्वेक्षण के अंत में सुमंत बनर्जी ने निष्कर्ष निकाला है कि ये समाचार-पत्र परिवर्तन के विरुद्ध संघर्ष करने के शक्तिशाली हथियार हैं। इन समाचार-पत्रों की जनता और समाज के प्रति कोई जिम्मेदारी नहीं। भारतीय प्रेस विकृति का दर्पण मात्र है।

ऐसी विषम स्थिति में जो समाचार प्रकाशनार्थ आते हैं, वातावरण के अनुसार कुछ समाचारों को स्वभावतः दबा देना पड़ता है और मुख्य उप-संपादक की जैसी मनोवृत्ति होती है उसी के अनुसार अंततोगत्वा समाचार के चयन का कार्य होता है। समाचारों के चयन पर इस एकपक्षीय वृत्ति से पूंजीवादी और वर्गवादी प्रेस पीड़ित हैं। दोनों ही अपने-अपने निहित स्वार्थों के लिए केवल 'नेतागिरी' की रक्षा का ध्यान रखते हैं। 'जनहित' का नारा दोनों ही लगाते हैं, कोई कम, कोई ज्यादा।

इस वातावरण मे प्रतिदिन काम करते हुए भी उप-संपादकों को समाचारों के चयन के प्रश्न पर यथासंभव अपनी आचार-संहिता, समाचार की गरिमा, लोकहित और राष्ट्रहित का ध्यान रखना चाहिए। हिंदी के पाठकों की संख्या निरंतर बढ़ रही है। इसलिए हिंदी के समाचार-पत्रों का अपने पाठकों के प्रति दायित्व और अधिक बढ़ जाता है।

बढ़ती पाठक-संख्या को देखकर हमे अधिक-से-अधिक लोगों तक पहुंचने के लिए कुछ अछूते क्षेत्रों पर निरंतर ध्यान रखकर उनके समाचारों का चयन करना चाहिए, जैसे :

१. महिला
२. बालक
३. श्रमिक
४. कृषि
५. पशु-पक्षी
६. मन बहलाव के विभिन्न पक्ष
७. कला

मूल आधार

अब हम चयन के मूल आधारों को निम्नलिखित रूप में स्थिर कर सकते हैं :

१. असाधारण समाचार,
२. ख्यातनामा व्यक्ति पर भला-बुरा प्रभाव डालने वाले समाचार,
३. अपने देश, अपनी सरकार, प्रदेश तथा नगर पर प्रभाव डालने वाले समाचार,
४. पाठक के बजट पर असर डालने वाले समाचार,
५. अन्यायपूर्ण घटनाएं,
६. दुर्घटनाएं,

७. बहुजन हित,
८. आर्थिक और सामाजिक विकास,
९. ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्रों की प्रगति,
१०. एशियाई देशों के समाचार,
११. अन्य देशों के समाचार,
१२. सब प्रकार के पाठकों की रुचि का ध्यान,

डेली 'हैरल्ड' के जूलियस साल्टर इलियास का कहना है कि हम अपने पत्र में ऐसे समाचार भी दें जिनसे पाठक मुस्करायें और उत्साहित हों। प्रत्येक पृष्ठ पर ऐसे समाचारों को स्थान मिले, जिनसे पाठक का मन प्रसन्न हो।

बेलन

समाचार का चयन करने वाले पत्रकार की गति कभी-कभी सांप-छछूंदर जैसी होती है। यह समझते हुए भी कि अमुक समाचार प्रकाशन योग्य है, अनेक कारणों से उसे उस समाचार पर बेलन फेर देना पड़ता है। चयन के समय समाचार पर बेलन फेरने वाले कुछ तत्व निम्नलिखित हैं :

१. प्रकाशक, प्रधान संपादक और संपादन करने वाले व्यक्ति की मान्यता, धारणा, दृष्टिकोण तथा सनक।
२. प्रकाशक और प्रधान संपादक के हितों का ध्यान।
३. प्रसार-क्षेत्र की आवश्यकताएं।
४. धर्म, राजनीति और वर्गवाद का प्रभाव।
५. अधिकांश पाठकों का शिक्षा-स्तर।
६. समाचार का बासीपन। दूरदर्शन और आकाशवाणी पर पूर्ण प्रसारण।
७. आपात्काल और युद्ध के समय 'सेंसर' का दबाव।
८. विज्ञापनदाता का हित।
९. देश की सामान्य मर्यादा और परंपरा।
१०. पृष्ठ पर स्थान और समय का बंधन।

संपादन

समाचारों का चयन करने के बाद समाचारों के संपादन की समस्या सामने आती है। समाचारों का संपादन-कार्य दैनिक पत्र का प्राण है। वह जितना कठिन है, उतना ही उत्तरदायित्वपूर्ण भी। इस कार्य की शिक्षा पुस्तकों के सहारे उतनी नहीं मिल सकती, जितनी किसी समाचार-पत्र के कार्यालय में काम करने से।

समाचार के तात्कालिक महत्व और पृष्ठ के स्थान का ध्यान रख कर समय से होड़ लगाते हुए समाचार का संपादन करना पड़ता है। किसी भी समाचार का संपादन करते समय तीन बातों को ध्यान में रखना जरूरी है—महत्व, स्थान और समय। यदि समाचार महत्वपूर्ण है, स्थान और समय भी है तो उसको यथासंभव विस्तार तथा मोटे शीर्षक के साथ देना चाहिए। यदि स्थान और समय की खींच है

तो महत्व के समाचार को संक्षेप में ही देना ठीक रहता है। विस्तार के लोभ से समाचार को रोककर उसे बासी कर देना ठीक नहीं। अगर कोई समाचार ऐसा है कि विस्तार के बिना उसका महत्व नहीं, तब तो उसे रोक देना ही उचित है।

समाचारों का छंटाव और वर्गीकरण करने के पश्चात मुख्य उप-संपादक प्रत्येक समाचार के विषय में क्या, क्यों, कब, कहां, कैसे और कितने (आकार) का निर्णय तुरंत कर लेता है। अपने सहयोगियों को संपादन के लिए देने से पहले मुख्य उप-संपादक समाचार पर सरसरी निगाह डाल लेता है। उसी दौरान वह ग्रहण योग्य मुख्य-मुख्य अंशों पर चिह्न लगा देता है। उससे सहयोगी को समाचार का संक्षेपीकरण करने और महत्वपूर्ण अंशों का सभावेश करने मे मदद मिलती है। वितरण करते समय शीर्षक के प्रकार और समाचार के वांच्छित आकार के विषय में भी मूल प्रति पर लिखित संकेत दे दिया जाता है।

समाचार-वितरण-कार्य में दो बातों का ध्यान रखना उचित है :

१. सहयोगी उप-संपादकों की रुचि को दृष्टि में रखना, तथा

२. शीर्षक और आकार के बारे में सहयोगी की सलाह का आदर करना।

कभी-कभी ऐसी स्थिति आ जाती है कि समाचार किसी की रुचि का नही बैठता। उस हालत में मुख्य उप-संपादक उसका स्वयं संपादन कर देता है। यदि किसी कारण यह संभव नही जान पड़ता, तो मुख्य उप-संपादक उसे ऐसा बना देता है कि वह किसी सहयोगी को रुचिकर लग जाय। मुख्य उप-संपादक यदि कठिन-से-कठिन समाचार भी भाषा और तथ्यों की उलझनों को कोश तथा अन्य संदर्भ-पुस्तकों से सुलझा कर सहयोगी को देता है तो वह उसका संपादन सहर्ष तथा सुंदर ढंग मे कर देता है।

सहयोगियों द्वारा संपादित प्रति और शीर्षक का अच्छी तरह निरीक्षण कर लेना आवश्यक है। समाचार प्रेस में गया, सो गया। तनिक-सी लापरवाही से भारी भूल रह जाती है। यह बात नहीं कि समाचार का आगे चल कर संशोधन नही हो सकता। भूल का सुधार तो फ़र्मा छोड़ने तक किया जा सकता है। परंतु अंत मे गल्तिया सुधारने की वृत्ति से पृष्ठ का समय पर छूटना असंभव हो जाता है।

संपादित प्रति का निरीक्षण करने के पश्चात उसे तुरंत प्रेस में भिजवाने का ध्यान रखना नितांत आवश्यक है। प्रेस में समाचार भेजते समय इस बात की कल्पना कर लेनी चाहिए कि समाचार महत्व और आकार की दृष्टि से किस क्रम से भिजवाये जायं। मान लीजिए, किसी विशेष पृष्ठ के लिए आपको पांच दुकालमा समाचार चाहिए और छोटे-बड़े पच्चीस एककालमा। यदि पहले समस्त एककालमा समाचार ही लिये गये और दुकालमा समाचारों को बाद के लिए छोड़ दिया गया तो पृष्ठ बनाते समय कठिनाई पैदा हो जायगी। पृष्ठ की सजावट के लिए दुकालमा और एककालमा समाचारों का मेल बैठाना जरूरी है। दुकालमा समाचार जब तक कंपोज होकर आयंगे नहीं, तब तक एककालमा समाचारों का यथार्थ उपयोग पृष्ठ पर कैसे हो सकेगा ? इस बात का भी खास तौर पर ख्याल रखा जाता है कि समाचार का आकार द्रौपदी का चीर न बन जाय। बहुत लंबे समाचार न तो पाठक को रुचिकर होते हैं

और न पृष्ठ के गठन में सहायक। अक्सर यह देखा जाता है कि बहुत लंबे समाचार पृष्ठ की सज्जा को बिगाड़ देते हैं।

आमुख (इंट्रो)

विभिन्न समाचार-समितियां और अनेक संवाददाता अपने-अपने ढंग से समाचार देते हैं। समाचार का संपादन करनेवाले व्यक्ति पर उसकी भाषा, भाव और कलेवर का संपादन करके, उसे सुगठित तथा आकर्षक शीर्षक देकर, पाठक के सामने प्रस्तुत करने का उत्तरदायित्व रहता है। समाचार का संपादन करते समय सर्वप्रथम इस मूल सिद्धांत की ओर ध्यान रखना लाभदायक है कि प्रथम वाक्य में समाचार की आत्मा के दर्शन हों और वह वाक्य भी यथासंभव छोटा और सरल हो। पाठक प्रत्येक समाचार के प्रति महत्वपूर्ण अंश को तुरंत जानने के लिए आतुर रहता है। उसकी आतुरता की तुष्टि भी छोटे वाक्य से होती है न कि लंबे-चौड़े ऐसे वाक्य से, जिसे समझने मे उलझन पड़े और जानकारी पाने में विलंब हो।

मानस का उदाहरण

रामचरितमानस के रचयिता गोस्वामी तुलसीदास मानव के इस स्वभाव को भली भाति जानते थे। उत्तर-कांड का प्रसंग है। राम के वन से लौटने की अवधि समाप्ति पर है :

"रहा एक दिन अवधि कर
अति आतुर पुर लोग।"

एक ओर जनता अधीर है, दूसरी ओर भरत की मानसिक स्थिति बिगड़ती जा रही है :

"कारण कवन नाथ नहिं आयउ।
जानि कुटिल किधौं मोहि बिसरायउ॥"

भरत राम के विरह-रूपी समुद्र में डूब रहे थे कि :

"विप्र रूप धरि पवन सुत,
आइ गयउ जनु पोत।"

हनुमान ने भरत की दशा देख कर पहली बात जो कही वह यह थी :

"जासु विरह सोचहु दिन राती।
रटहु निरंतर गुन गन पाती॥
रघुकुल तिलक सुजन सुख दाता।
आयउ कुशल देव मुनि त्राता॥"

हनुमान के मुंह से तुलसी ने प्रथम वाक्य में भरत को यह संदेश दिया कि जिनके विरह में तुम विकल हो, वे रघुनाथ सकुशल आ गये हैं। उस वाक्य के पश्चात् अन्य बातें सुनायीं।

"रिपु रनजीत सुजस सुर गावत।
सीता सहित अनुज प्रभु आवत॥

तब हनुमंत नाइ पद माथा ।
कहे सकल रघुपति गुन गाथा ।"

महाकाव्य का उदाहरण

संस्कृत के आदि कवि वाल्मीकि ने भी इसी सिद्धांत का ध्यान रखा है । उनका वाक्य और भी छोटा है ।

सुंदर कांड का सत्तावनवां सर्ग सत्तावन श्लोकों का है । महाबली हनुमान लंका से लौटकर आते हैं । जामवंत और अंगद आदि उनका स्वागत करते हैं । जब शिष्टाचार समाप्त हुआ, तब वानरवीर ने संक्षेप में निवेदन किया––"मुझे सीता देवी का दर्शन हो गया ।"

"दृष्टा देवीति विक्रांतः संक्षेपेण न्यवेदयत्"

यह सूचना मात्र ही वानर-समूह के लिए जीवनदायिनी थी, क्योंकि उसके बिना सुग्रीव के हाथ से सबका मरण निश्चित था । समस्त वानरों की संतुष्टि के बारे में आगे वाल्मीकि ने कहा :

"ततो दृष्टेति वचनं महार्थममृतोपमम्"

'सीता का दर्शन हो गया' यह वचन वानरों को अमृत के समान प्रतीत हुआ । यह उनके महान् प्रयोजन की सिद्धि का सूचक था । अगले सर्ग में हनुमान ने अपनी लंका-यात्रा का पूरा वृत्तांत सुनाया है ।

भरत के लिए यह सूचना कि 'रामचंद्र सकुशल लौट आये' और वानरों के लिए यह जानकारी कि 'हनुमान सीता के दर्शन कर आये' प्राणवान वाक्य है । समाचारों में से ऐसे ही प्राणवान तत्व अथवा अंतिम निष्कर्ष से पाठक को संतुष्ट करने के लिए भी समाचार का प्राण अथवा निष्कर्ष सर्वप्रथम उद्घाटित करने का काम संपादन करनेवाले पत्रकार को जल्दी में करना पड़ता है । अतः समाचार का प्राण अथवा समाचार का सार कलेवर के मध्य में नहीं होता, वह होता है उसके आरंभ में; आरंभ के प्रथम वाक्य में ही । समाचार के प्रथम अंश को पढ़कर ही पूरी स्थिति, घटनाचक्र अथवा निष्कर्ष का ज्ञान हो जाता है । आगे के भाग में मानो उसका स्पष्टीकरण, तर्क-प्रवाह अथवा कहानी का आद्योपांत वर्णन रहता है । समाचार के इसी प्राण अंश को पत्रकारी भाषा में 'इंट्रो' कहते हैं । यह अंग्रेजी के 'इंट्रोडक्शन' शब्द का संक्षिप्त रूप है । पत्रकारी भाषा में 'इंट्रोडक्शन' शब्द का इतना प्रचलन नहीं, जितना 'इंट्रो' का । अमरीकी पत्रकारिता की भाषा में 'इंट्रो' को 'लीड' कहते हैं । हिंदी में इसके लिए 'आमुख' या 'मुखड़ा' शब्द का प्रयोग होता है ।

आमुख के प्रकार

जितने प्रकार के समाचार हो सकते हैं उतने ही प्रकार के आमुख भी । अतः आमुख का विशेष वर्गीकरण करना आसान काम नहीं । सामान्यतः इसके दो रूप माने जा सकते हैं : भावनात्मक और तथ्यात्मक । भावनात्मक आमुख वह है जिसमें घटना-चक्र और विचारप्रधान समाचारों का दोहन कर निष्कर्ष निकालने अथवा उसके लिए

प्रेरणा देने का प्रयास किया जाय। तथ्यात्मक आमुख उसे कहा जाता है जिसमें घटना-चक्र को ही बिना लाग-लपेट के महत्व दिया जाता है।

कलकत्ता, ५ नवंबर (१९७५)।

बंगला देश के राष्ट्रपिता और संस्थापक बंगबंधु शेख मुजीबुर्रहमान के हत्यारों को भी विरोधी घटनाचक्र की लपेट में आने के भय से अपना देश छोड़कर भागना पड़ा है। शेख के हत्यारे तीन सैनिक अफसर सोमवार को विशेष विमान से बैंकाक पहुंच गये। भागने वाले इन तीन अफसरों के नाम हैं : लेफ्टिनेंट कर्नल रहमान, लेफ्टिनेंट कर्नल रशीद और लेफ्टिनेंट कर्नल शरीफुल हक। तीसरा अफसर मेजर दलीम के नाम से भी प्रसिद्ध है। हत्या तो बदला चुकाती ही है, आज नही तो कल। शेख मुजीब की हत्या १४-१५ अगस्त को की गयी थी।

ऊपर दिये गये भावनात्मक आमुख का तथ्यात्मक स्वरूप निम्न प्रकार का होगा :

"बंगला देश के राष्ट्रपति शेख मुजीब के तीन हत्यारे सैनिक अफसर सोमवार को बैंकाक पहुंच गये। विशेष विमान उन्हें ढाका से उड़ाकर ले गया था। भागने वाले तीन सैनिक अफसर है—रहमान, रशीद और शरीफुल हक। शरीफुल हक को मेजर दलीम भी कहते है।"

किसी प्रभावशाली व्यक्ति के उद्धरणों को लेकर भी आमुख बनाया जाता है। इस प्रकार के आमुख के लंबे हो जाने का डर रहता है। उद्धरण सामान्यतः बड़ा हो जाता है। अतः यह ध्यान रखना चाहिए कि छोटे-छोटे प्रभावोत्पादक और सारगर्भित वाक्यों को जोड़कर आमुख बना दिया जाय।

आमुख की काया

शैली की दृष्टि से आमुख शब्दों की संख्या में और दीखने में छोटा हो। जैसे आमुख की भाषा गठित करते समय वाक्य छोटे-छोटे बनाने की कोशिश की जाती है, उसी तरह टाइप की उपयुक्तता का भी ध्यान रखना चाहिए। उदाहरण के लिए अपने जाने आमुख छोटा लिखा गया है, परंतु बड़े टाइप का प्रयोग करने से वह बड़ा हो सकता है। किसी भी समाचार का २० पंक्तियों वाला आमुख बड़ा ही माना जाएगा। इतने लंबे आमुख पृष्ठ को भरा-भरा बना देते हैं तथा आंखों को आकर्षक नहीं लगते।

पाठक को समाचार की ओर आकर्षित करने के साथ समाचार की गरिमा का ध्यान रखते हुए समाचार के सामान्य टाइप से कुछ मोटा टाइप आमुख के लिए प्रयुक्त किया जाता है। समाचार-पत्र की परंपरा, समाचार की लंबाई और पृष्ठ पर उस समाचार के स्थान को ध्यान में रखकर ही टाइप के प्रकार के बारे में मुख्य उप-संपादक निर्णय करता है। कुछ पत्रकार दुकालमे या तिकालमे आमुख को अनेक टाइपों में बनाते हैं। वे पहले मोटा टाइप प्रयुक्त करते हैं, फिर पतला और उसके बाद पुनः मोटा, पर प्रथम से कुछ हल्का। उसके बाद एककालमा मैटर सामान्य टाइप में दिया जाता है। इसी प्रकार एक पृष्ठ में ही अनेक प्रकार के आमुख दिये जाते हैं। आमुख के विभिन्न स्वरूप और टाइप की विविधता आकर्षक

अवश्य होती है, परंतु साथ ही आमुख के स्वरूप-वैचित्र्य का बाहुल्य पृष्ठ को बचकाना बना देता है। अतः चाहिए यह कि आमुख के स्वरूप और टाइप की विविधता हो, परंतु संयम के साथ। आमुख को लेकर पृष्ठ के साथ खिलवाड़ न किया जाय। सब से बड़ी बात यह है कि पृष्ठ का संतुलन बना रहे। १२ पाइंट टाइप में दुकालमा आमुख तीन पंक्ति से कम न हो। पृष्ठ के मूर्धन्य स्थान पर जानेवाले समाचार का दुकालमा आमुख छह से आठ पंक्ति का होना चाहिए। पृष्ठ के प्रथम स्थान पर दो पंक्ति का आमुख जंचता नहीं। बड़े टाइप का आमुख बनाने के बाद एक साथ काफी कम पाइंट के टाइप का प्रयोग भी पाठक को खलता है। १४ पाइंट के बाद १२ पाइंट का प्रयोग कर लिया जाय, न कि १० या ८ पाइंट के टाइप का। एक और तरकीब है। अगर टाइप विविध पाइंटों में उपलब्ध नहीं है तो आमुख की पंक्ति में दो पाइंट का 'लेड' डालकर उसको आकर्षक बनाया जा सकता है।

बहुकालमी आमुख

समाचार और पृष्ठ को आकर्षक बनाने की दृष्टि से दुकालमा और तिकालमा आमुख देने का रिवाज है। कुछ पत्र ऐसे भी हैं जो शीर्षक चाहे कई कालमों में दें, परंतु प्रत्येक समाचार का आमुख एककालमा ही देते हैं। एककालमा आमुख से पृष्ठ का गठन करना सरल हो जाता है। समाचारों को यथास्थान बैठाना भी आसान होता है। इसके विपरीत बहुकालमी आमुख बनाते समय कालम की चौड़ाई, आमुख की गहराई, टाइप की मुटाई और पठनीयता के आपसी संबंध का ध्यान रखना जरूरी हो जाता है। तीन और चारकालमा आमुख बनाने में समय अधिक लगता है। फिर अधिक चौड़े आमुख में अंतिम पंक्ति अधिकतर काफी छोटी रह जाती है। यह आमुख के सौंदर्य को नष्ट नही करती तो कम अवश्य कर देती है। जहां तक संभव हो चारकालमा आमुख नहीं देना चाहिए। चारकालमा आमुख देना ही हो तो मोटे टाइप और कम शब्दों का प्रयोग करना उचित है। बहुकालमी आमुख में क्रमश उसकी चौड़ाई को घटाते जाना तब ही अच्छा लगता है जब समाचार की काया बड़ी हो। ऐसा न हो कि एककालमा मैटर आने तक वह कुत्ते की कटी दुम की तरह दीखने लगे।

पांडुलिपि का संपादन

किसी समाचार का संपादन करने के लिए जो पांडुलिपि मिलती है उसे प्रेस की भाषा में 'कापी' कहते हैं। इस 'कापी' के तीन स्वरूप होते हैं:

१. मूल समाचार की लिपि देवनागरी और भाषा हिंदी
२. मूल समाचार की लिपि रोमन और भाषा हिंदी
३. मूल समाचार की लिपि रोमन और भाषा अंग्रेजी

अलग-अलग स्वरूप की इन कापियों के संपादन की समस्याओं पर विचार करने से पहले यह बता देना उचित होगा कि किसी भी प्रकार के समाचार का संपादन करते हुए जिन बातों का ध्यान रखना आवश्यक है वे निम्न प्रकार हैं:

१. समाचार के प्रथम पृष्ठ पर ऊपर की तरफ संपादन करने वाला अपना नाम लिख दे।

२. प्रथम कापी का एक तिहाई भाग खाली छोड़ दे।

३. समाचार के दोनों ओर हाशिया रहे, बायी ओर अधिक और दाहिनी ओर कुछ कम।

४. एक पृष्ठ पर पैरे पूरे-पूरे आयं। पैरे को दो पृष्ठ पर बिखेरना ठीक नहीं। कंपोज विभाग को कापी जल्दी तैयार करने और उसे बांटने में कठिनाई होती है।

५. पृष्ठ के नीचे के छोर पर भी कुछ अंश खाली रहे। कागज की कंजूसी करना उचित नहीं।

६. टाइप करी अथवा हाथ से लिखी पंक्तियों में अंतर काफी छोड़ें जिससे संपादन करने में आसानी रहे।

७. वाक्य लंबे न हों। वाक्य अधिक से अधिक २० शब्दों का हो।

८. पैरे भी लंबे न बनाये जायं। तीन-चार वाक्य का पैरा अच्छा होता है। यदि अधिक छोटे वाक्य हों तो उनकी संख्या कुछ अधिक हो सकती है। दो-तीन-कालमा मैटर के छोटे-छोटे पैरे पाठक को भटका देते है। स्थान भी ज्यादा घिरता है और कंपोज किये हुए मैटर का स्वरूप भी अच्छा नहीं दीखता। पैरा बनाने में किसी निश्चित नियम का पालन करना ठीक नही। वैसा करना है भी कठिन, और स्वरूप भी उबाऊ हो जाता है। अत: छोटे, मध्यम और कुछ लंबे पैरों का सम्मिश्रण उचित है। पैरों के बीच में अधिक लेड डालना मैटर के बीच में सफेदी तो लाता है, पर उससे समाचार का प्रवाह मारा जाता है। छोटे पैरे इसलिए बनाने चाहिए कि उनसे पृष्ठ के गठन मे सुविधा रहती है। पृष्ठ बनाते समय आवश्यकता पड़ने पर किसी भी 'अनावश्यक' पैरे को आसानी से 'किल' किया (काटा) जा सकता है। एक तथ्य के लिए एक पैरा हो तो ठीक। अनेक तथ्यों को एक पैरे मे और एक तथ्य को कई पैरों में ठूमना या बिखेरना वाक्यों और पैरों को अनिवार्यत लंबा कर देगा। मामूली तौर पर २५ से ४० शब्द से अधिक का पैरा न बनाया जाय। उदाहरण के तौर पर ७ नवंबर १९७५ के 'नवभारत टाइम्स' (नयी दिल्ली) के प्रथम पृष्ठ से लिये एक समाचार का प्रथम पैरा :

(हमारे विशेष सवाददाता द्वारा)

"नयी दिल्ली, ६ नवंबर। बंगला देश में सम्मानित राजनीतिक नेताओं की नशंस हत्या की आज भारत ने निंदा की और यह विश्वास व्यक्त किया कि इन दुखद घटनाओ के बावजूद बगला देश की जनता 'सोनार बागला' की कल्पना को. जिसके लिए ये नेता जिये और जिन्होंने इसके लिए अपना जीवन दिया, साकार करेगी।"

ऊपर दिये गये पैरे की लंबाई तो ठीक है, परंतु यह सारे का सारा पैरा एक ही वाक्य का है। इसे तीन-चार वाक्यों में तोडा जा सकता था।

९. शब्दों की वर्तनी (अक्षरी) ठीक हो।

१०. जो भी लिखा जाय अथवा 'कापी' में संशोधन किया जाय, वह स्पष्ट अक्षरों में किया जाय। संपादन के चिह्न भी साफ हों। यदि पंक्तियों के बीच में स्थान हो तो वहां संशोधन करना चाहिए अन्यथा बायीं तरफ का बायें तरफ के हाशिये पर और दाहिनी तरफ का दाहिनी तरफ के हाशिये पर।

११. यदि कापी का संशोधन इतना अधिक हुआ है कि कंपोजीटर को उसे पढ़ने में कठिनाई का अनुभव होगा, तो संशोधित स्वरूप को अपने हाथ से अलग कागज पर साफ-साफ लिख देना चाहिए। मूल संशोधित 'कापी' को आड़ी लाइन से काटकर उसे भी साफ 'कापी' के साथ लगा दिया जाय जिस से कि आगे चलकर कहीं कोई अशुद्धि रहे तो मूल 'कापी' से मिलान तो हो सके।

१२. जहां तक हो संक्षेपण का प्रयोग न किया जाय।

१३. 'कापी' में यदि आज, कल, परसों आये तो उनके बाद कोष्ठक में तारीख अथवा वार लिखना न भूलें।

१४. 'नहीं' शब्द को पुनः कोष्ठक में लिख देना चाहिए। 'नहीं' शब्द यदि रह गया तो अर्थ ही बदल जायगा।

१५. नामों को बिल्कुल साफ लिखना चाहिए।

१६. 'कापी' पर समाप्ति का निशान देना जरूरी है।

१७. समाचार की प्रतियों पर 'स्लग' (संकेत-चिह्न) और पृष्ठों की संख्या कापी को अपने हाथ से निकालते समय अवश्य देख ली जाय।

१८. शीर्षक या तो 'कापी' के प्रथम पृष्ठ पर दिया जाय अथवा अलग पृष्ठ पर। यदि अलग पृष्ठ पर लिखा गया है तो कापी का 'स्लग' और उसकी संख्या का संकेत उस पर अवश्य कर देना चाहिए।

१९. समाचार का संपादन करते समय कभी-कभी एक ही घटना के विभिन्न रूप सामने आते हैं। सूत्र बदलते हैं, तो रूप भी बदल जाते है। ऐसी स्थिति में हमें घटना के तथ्यात्मक सत्य पर विशेष ध्यान देना चाहिए, क्योंकि पत्रकार के लिए "तथ्य पवित्र है, मत नहीं।" प्राथमिकता 'तथ्य को देनी चाहिए और गौण स्थान 'विचार अथवा मत को।"

२०. अनेक समाचार ऐसे होते हैं जिनका संबंध किसी भूतकालिक घटना से होता है। पाठक की स्मरण-शक्ति तीक्ष्ण नहीं मानी जाती। अतः यह आवश्यक है कि समाचार के पूर्वापर संबंध को याद दिलाने के लिए संदर्भ संकेत देना न भूला जाय। यह संदर्भ संकेत समाचार के आमुख के इतने निकट दिया जाय कि कटौती करने की नौबत आने पर भी उस अंश को निकाला न जा सके।

२१. यथासंभव प्रतिदिन समाचारों का पीछा किया जाय, विशिष्ट वर्धमान समाचारों का तो खास तौर पर। उनकी कड़ी बनी रहे।

नागरी लिपि में आये समाचारों को पढ़कर यदि उनका आमुख 'कापी' से भिन्न बनाना हो तो उसे पहले लिख दिया जाय। इसके बाद पुनः 'कापी' पढ़कर आमुख में वर्णित तथ्यों को मूल 'कापी' से काट दिया जाय, नहीं तो दुहराव होने की संभावना रहती है। आमुख तैयार होने के बाद समस्त समाचार की भाषा और शब्दों

की वर्तनी का संशोधन करते हुए पैरे के निशान लगा देने चाहिए। लंबे समाचार में बीच-बीच में उपशीर्षक देना उचित है। मुख्य उप-संपादक के संकेतानुसार समाचार की काया को बनाकर चुटीला शीर्षक दे दिया जाय। इस प्रकार संपादन करने के बाद पुनः एक बार समाचार पर नजर डाल लेना जरूरी है।

रोमन लिपि में आये समाचारों का संपादन करने से पहले उनका नागरीकरण कर देना चाहिए। उच्चारण भेद के कारण रोमन लिपि में शब्दों का स्वरूप कुछ अलग हो जाता है, अतः लिप्यंतर करते समय शब्दों के स्वरूप पर विशेष ध्यान देना चाहिए। रोमन लिपि के 'ए' अक्षर ने हमारे शब्दों का रंग अजब बना दिया है। हम लोग अपने शब्दों के स्थान पर वर्णसंकरी शब्दों को अपना रहे हैं। हमारे नामों पर इसका बहुत बुरा असर पड़ा है। उदाहरण के तौर पर: रामकृष्णपुरम् रामा-कृष्णापुरम् बन गया, अच्युत मेनन अछूता मेनन हो गये, दिनमान ने दिनामान नाम धारण कर लिया, केरल केरला बना और किसी-किसी की लेखनी से करेला का भी रूप धारण किया। और तो और, महाराज अशोक अशोका हो गये। हिंदी के समाचार-पत्र और आकाशवाणी नामों के इन भ्रष्ट स्वरूपों का प्रयोग करने में लज्जा का अनुभव नहीं करते।

रोमन लिपि में प्राप्त समाचारों का लिप्यंतर करने के बाद उनकी भाषा और भाव की दृष्टि से संशोधन करना चाहिए। यह सब करने के पश्चात् उसका आमुख बनाया जाय और पैरों का विभाजन हो। समाचार की काया का निर्माण भी बाद में ही किया जाना उचित है, क्योंकि अंत में ही उसका रूप निखारा जा सकता है। शीर्षक का नियम तो पूर्ववत ही है।

अब आती है समस्या अंग्रेजी के समाचारों की। अंग्रेजी में प्राप्त समाचारों की संख्या काफी अधिक होती है। विदेशी समाचार तो अंग्रेजी में ही आते हैं। इनके आमुख आदि अधिक चुस्त होते हैं। यह सब होते हुए भी इन समाचारों पर और खासकर विदेशी समाचारों पर, ब्रिटेन तथा अमेरिकी निहित स्वार्थों का अधिक प्रभाव रहता है। पूरा समाचार पढ़कर उसमें से कहीं अपने देश के हिताहित की बात का पता लग जाय तो उसे आमुख में उठाना चाहिए। अनुवाद करते समय भाषा अपना रूप निखारे न कि उसे बिगाड़े। अंग्रेजी की लेखन-प्रणाली ने भारतीय नामों की तो ऐसी मिट्टी पलीत की है कि उनका ठीक तरह समझना कठिन हो जाता है। यदि किसी समाचार में जगजीवनराम, तुलसीराम और तुलाराम आ गये तो सब के लिए अंग्रेजी वाले 'राम' का प्रयोग कर डालते हैं। उसी की देखादेखी हिंदी वाले भी नाम के अंतिम अंश से काम चलाने लगे हैं। इस प्रकार के प्रयोग बड़े भ्रामक और उपहासास्पद हो जाते हैं। फिर नाम लिखने की हिंदी वालों की परंपरा और है तथा अंग्रेजी वालों की और। अंग्रेजी वाले अपनी गलत परंपरा को छोड़ने के लिए तैयार नहीं, पर हिंदी वाले अपनी ठीक परंपरा को तिलांजलि देने को सदैव तैयार रहते हैं। इस प्रसंग में याद आती है 'सिंह बीकानेर' की वह घटना जिसका 'हिंदुस्तान टाइम्स' के खेल-संपादक टी० ए० वी० यादव ने 'ईवनिंग न्यूज' (बुधवार १० नवंबर १९७१) की अपनी डायरी में उल्लेख किया था। सिओल में एशियाई निशानेबाजी

प्रतियोगिता थी। उसमें भाग लेने बीकानेर के महाराज डा० कर्णीसिंह गये थे। वहां उन्होंने स्वर्ण पदक जीता था। कर्णीसिंहजी का कहना था कि जब मैं सिओल पहुंचा तो सब से पहले कारतूसों की पेटी के आने की जानकारी प्राप्त की। चुंगी अधिकारियों से उसका पाना कठिन था। शनिवार-रविवार को मिलना संभव न था। बड़ी कोशिश के बाद सोमवार की शाम तक उस पेटी को चुंगी वालों से छूट मिली। अंतिम कठिनाई तब आयी जब पेटी पर लिखा देखा 'सिंह बीकानेर'। चुंगी अधिकारियों का कहना था कि ऐसा कोई व्यक्ति है नहीं, तब पेटी किसे दें? सिओल स्थित भारतीय राजदूत की मदद के बावजूद, नाम लिखने में हुई गलती के कारण, पेटी मिलने में तीन दिन और लग गए। यह है नाम के अंतिम अंश को ही नाम मान लेने का दुष्परिणाम। नाम संक्षेप में ही लिखना था तो 'कर्णी बीकानेर' से काम चल जाता। इतनी तबालत भी न उठानी पड़ती।

अंग्रेजी समाचार-समितियां नाम के संबंध में बड़ी विचित्र गलतियां करती हैं। 'आज' (बनारस) के संपादक श्री बाबूराव विष्णु पराड़कर के मरने पर ग्वालियर में जो शोक-सभा हुई उसका समाचार देते समय प्रेस ट्रस्ट ने श्री बाबूराव विष्णु प्रभाकर लिखा। इसी तरह प्रेस ट्रस्ट ने ३० नवंबर १९६४ को नयी दिल्ली से समाचार दिया कि उत्तर प्रदेश के सत्तारूढ गुट के श्री बनारसीदास चतुर्वेदी कांग्रेस-अध्यक्ष श्री कामराज से मिले। मिलने वाले नेता खाली 'बनारसीदास' थे, न कि 'चतुर्वेदी' भी।

इस सब को बताने का मतलब यह है कि हिंदी के पत्रकारों को बड़ी सावधानी से अंग्रेजी से प्राप्त समाचारो का अनुवाद और संपादन करना चाहिए। कुछ समाचार-समितियां आंकड़े देने में बड़ी कमजोर होती है। सन-संवत् और आकड़े देते समय बड़ी सतर्कता बरतनी चाहिए। तनिक भी भ्रम होने पर संदर्भ पुस्तकालय से उसका निवारण कर लेना चाहिए। यदि भ्रम का निवारण न हो सके तो उस संख्या को न देना ही उचित है।

अंग्रेजी समाचारो का अनुवाद करते समय उनका संक्षेप करने का सदैव ध्यान रखना चाहिए, नहीं तो समाचार का रूप अधिक विस्तृत हो जायगा। अंग्रेजी समाचार-पत्रो के पास तो स्थान भी अधिक होता है। उनके टाइप और हमारे टाइप मे और नहीं तो ड्योढ़ा अंतर होता है। हम एक कालम में कम समाचार दे सकते हैं, वे अधिक। समाचार का अनुवाद पूर्ण होने पर उसका संपादन करना और शीर्षक देना चाहिए।

वर्धमान समाचार

समाचार दो प्रकार के होते हैं: विशिष्ट और व्यापी। विशिष्ट समाचार भी दो प्रकार के होते है। एक वे जो अनायास प्राप्त होकर उसी दिन पूर्ण हो जाते हैं। दूसरे वे जो दिनोंदिन बढ़ते और नये गुल खिलाते है। ऐसे समाचार स्पष्ट भी होते हैं और अस्पष्ट भी। इस प्रकार के समाचारों की कड़ियां लगातार अथवा रह-रहकर आती रहती हैं। इन 'विशिष्ट वर्धमान' समाचारों का संपादन करना लोहे के चने

चबाने के समान होता है। पहले तो इस प्रकार के समाचार (पूर्ण विशिष्ट और वर्धमान विशिष्ट) एक-दो वाक्यों में ही कौंधते हैं। उसके बाद समाचार की एक-एक कड़ी दूरमुद्रक (टेलीप्रिंटर) या तार से आने लगती है। अधिकतर ऐसे समाचार दुर्घटनाप्रधान होते हैं। पूर्ण समाचार तो कुछ मिनटों अथवा घंटों में समाप्त हो जाते हैं, परंतु वर्धमान समाचारों का सिलसिला कब तक जारी रहे, कहा नहीं जा सकता। पूर्ण विशिष्ट समाचार का छोर देखने के लिए तो कुछ देर बाट देखी जा सकती है, परंतु वर्धमान विशिष्ट समाचार की अंतिम कड़ी की प्रतीक्षा करना अपने को संकट में डालना होगा। इस विशाल संसार में आये दिन वर्धमान विशिष्ट समाचारों की शृंखला चलती ही रहती है। उदाहरण के तौर पर महात्मा गांधी की हत्या, मियां लियाकत अली की हत्या, केनेडी की हत्या, भयंकर भूकंप के समाचार, चंद्रमा पर मानव का उतरना, इजराइल-अरब युद्ध, बंगबंधु शेख मुजीब की हत्या, बंगलादेश में नवंबर १९७५ के प्रथम सप्ताह में होने वाले हत्याकांडों की कहानी व राजनीतिक उलटफेर के समाचारों को 'विशिष्ट वर्धमान' समाचार माना जा सकता है।

'विशिष्ट वर्धमान' समाचार का संपादन करने के दो तरीके हैं। एक तो यह कि 'जो आया, जैसे आया' सब का सब दे दिया। इस प्रकार के संपादन से पाठक के पल्ले बहुत कम पड़ता है। अधिकतर वह भ्रमित ही रहता है। वैसे यह तरीका आसान है। दूसरा यह कि अपने संस्करण के छोड़ने के समय तथा संपादन काल का ध्यान रखकर उस समाचार को उठाया जाय। तब तक उस समाचार की जितनी भी कड़ियां आ जायं उनको तेजी और ध्यान से पढ़ते हुए लाल पेंसिल के निशान खास वाक्यों पर लगा लिये जायं और फिर जितनी जल्दी हो सके हजारों शब्दों के जंगल से चुने हुए मूल तथ्यों के आधार पर सारभरा आमुख बना दिया जाय। आगे समाचार का स्वरूप 'छह ककारों' का ध्यान रखते हुए बढ़ा देना चाहिए। इसके बाद उक्त समाचार की कुछ ऐसी कड़ियों को अलग-अलग एककालमा समाचार के रूप में दे देना चाहिए जो 'क्यों और क्या' का रहस्य खोलती हों। इस प्रकार समाचार का आकार लंबा न होगा।

प्रत्येक आगामी संस्करण के लिए प्रकाशित समाचार और उसकी प्राप्त नवीन कड़ियों को पुनः-पुनः पढ़कर और प्रत्येक के महत्व को आंक कर तब सब का नवीन ढंग से संपादन करना चाहिए। ऐसा करने में प्रत्येक संस्करण के लिए नया आमुख तथा पूरा समाचार ही बार-बार लिखना पड़ सकता है। इस प्रकार के समाचार का संपादन करने वाले की 'समाचार-मति' उच्चकोटि की और 'लेखन-अनुवादन-संपादन'-क्षमता विशेष प्रकार की होनी चाहिए। मुख्य उप-संपादक इस प्रकार के समाचार के 'संपादन का कार्य अनुभवी साथी को ही दें। यदि साथी की क्षमता का अंदाज लगाये बिना चाहे जिस को उसे सौंप दिया तो पार पाना कठिन हो जायगा। यदि समाचार काफी बड़ा है तो यह काम दो साथियों से कराया जाना चाहिए। परंतु उस समाचार का भार अनुभवी व्यक्ति पर ही डालना उचित है। वही व्यक्ति जिस अंश का चाहे उसका संपादन दूसरे साथी से करा ले। उनके आमुख और शीर्षक देखने का भार भी प्रथम साथी पर ही रहे। ऐसा करने से समाचार का संतुलन बना रहेगा। उसका अनुचित

विस्तार और बिखराव भी न हो पायगा। ऐसे समाचारों में परस्पर विरोधी और अनेक दिशाओं में चलने वाली लहरों का ध्यान रखकर ही उनका संपादन करना ठीक है। इस प्रकार काटते-जोड़ते सत्य तथ्यों पर आधारित और पाठक की समझ में आने योग्य शैली में समाचार को प्रस्तुत करना संपादन-कौशल की परीक्षा है। ऐसी परीक्षाएं मुख्य उप-संपादक और उप-संपादकों को आये दिन देनी ही पड़ती हैं।

भाषण-समाचार

भारतीय पत्रों में भाषणों के समाचारों की भरमार रहती है। अधिकतर भाषण लंबे और बेतुके होते हैं। परंतु उन्हें देना तो होता ही है, चाहे वे किसी रूप में दिये जायं। भाषणों के समाचारों का संपादन करते समय वक्ता के अति महत्वपूर्ण और मार्मिक विचार को आमुख में प्रस्तुत करना आवश्यक है। मार्मिक अंश के चुनाव में मतभेद हो सकता है। इस प्रकार के महत्वपूर्ण अंश का चयन करते समय किसी वाक्य के चुटीलेपन, निष्कर्ष, सिद्धात प्रतिपादन अथवा अंतिम निर्णय आदि की खोज करना उपयुक्त होगा। यह अंश कभी भी मिल सकता है---प्रारंभ, मध्य अथवा अंत में। आमुख तैयार होने के बाद भाषण को इच्छित आकार में सीमित कर देना चाहिए। यदि भाषण के बीच किसी अंश में कोई नवीन समाचार मिले तो उसे अलग से देकर उभारना उपयुक्त है।

तिथि-रेखा

समाचार की तिथि-रेखा का अपना महत्व है। यह घटना की गतिविधि और इतिहास के क्रम की सूचक है। अतः तिथि की स्पष्टता और शुद्धता को अक्षुण्ण रखा जाय। एक संस्करण से बचे समाचारों को भावी संस्करणों में खपाते समय उनकी तिथि-रेखा में यदि आवश्यक परिवर्तन करना हो तो कर दिया जाय। यदि मैटर में उचित परिवर्तन नही किया गया तो घटना की ऐतिहासिकता के बारे में पाठक के मन में भ्रम उत्पन्न हो सकता है।

'लीड' की समस्या

'लीड' शब्द प्रथम कोटि के समाचारों के लिए प्रयुक्त होता है। 'प्रथम लीड' वह समाचार है जो पृष्ठ के बायीं ओर ऊपर की तरफ सब से मोटे शीर्षक से दिया जाता है। 'द्वितीय लीड' वह समाचार है जो प्रथम की तुलना में कुछ कम महत्व का है। उसे पृष्ठ के दाहिनी ओर अथवा मध्य में दिया जाता है। किसी अतिविशिष्ट समाचार के न होने की स्थिति में विभिन्न पत्रों की लीडें कभी मिलती नहीं। कोई किसी समाचार को उभारता है, तो कोई किसी को। यह पत्र की नीति, संपादन के दृष्टिकोण और मुख्य उप-संपादक की मनोवृत्ति का भी प्रतिबिंब होती है।

'लीड' का चुनाव निम्नलिखित चार तथ्यों को ध्यान में रखकर करना चाहिए :

१. भीषणता

२. अति व्यापक प्रभाव

३. राजनीतिक महत्व

४. परिवर्तन की पराकाष्ठा

ये चारों तथ्य देश और विदेश के समाचारों में मिल सकते हैं। यदि दोनों में टकराव हो तो देश, पड़ौसी देश और दूर देश के क्रम से उनका महत्व आंकना चाहिए। किसी समाचार का महत्व आंकने में भूल हो जाय तो उसका सुधार आगामी संस्करण में कर दिया जाय।

हिंदी पत्रों के अनेक संपादक नगर में प्रकाशित होने वाले अंग्रेजी के पत्रों की 'लीड' का अपने पत्र से मिलान कर अपने रात्रिकालीन मुख्य उप-संपादक की खाल खींचते हैं। उन्हें चाहिए तो यह कि अपने पत्र में दी गयी 'लीडों' के औचित्य पर विचार करें न कि दूसरे के पदचिह्नों की नकल करें। यह स्मरण रखना आवश्यक है कि हिंदी पत्रों के पाठकों का संसार अलग है और अंग्रेजीवालों का अलग। उनमें काम करने वाले पत्रकारों की मनोवृत्ति भी भिन्न होती है। हिंदी के पत्र सामान्य जनता के हैं, जबकि अंग्रेजी पत्र अफसरी वर्ग के। 'लीड' बनाने के प्रश्न पर किसी समाचार के प्राप्त होने तथा संस्करण के छोड़ने के समय का भी प्रभाव पड़ता है। अक्सर हिंदी के पत्र अंग्रेजी पत्रों की तुलना में काफी पहले छोड़ दिये जाते है। समस्त सुविधाएं प्राप्त होने पर भी अंग्रेजी के साथी हिंदी पत्र तो सदैव ही अंग्रेजी पत्र से कुछ घंटे पहले छोड़ देने पड़ते हैं।

दिल्ली के कुछ दैनिक समाचार-पत्रों की प्रथम और द्वितीय 'लीडों' का ब्योरा :

२२ अक्तूबर १९७५

१. 'जनयुग' : एक—काले धन वाले को एक और रिआयत
: दो—पाकिस्तान को फ्रेंच हथियारों की सप्लाई

२. 'वीर अर्जुन' : एक—सुरक्षा परिषद की सीट पर गतिरोध जारी
दो—किसिंजर पेकिंग में : अध्यक्ष माओ से भेंट

३. 'हिंदुस्तान' : एक—सिंचाई व विद्युत परियोजनाओं में योग के लिए ७५ करोड़ रु० की अतिरिक्त राशि स्वीकृत
दो—छिपी आय की स्वयं घोषणा करने वालों के लिए दस साला बांड

४. 'नवभारत टाइम्स' : एक—खाद्यान्न की कीमत वसूली मूल्य से नीचे न गिरने दी जायगी
दो—रेलगाड़ियों की आरक्षण सूचियां हिंदी में

२५ अक्तूबर १९७५

१. 'जनयुग' : एक—राष्ट्रपति द्वारा बंधुआ मजदूरी खत्म करने के लिए अध्यादेश
दो—पुर्तगाल में सेना को चौकसी का आदेश

२. 'वीर अर्जुन' : एक—देश भर में प्रतिबद्ध बेगार पर प्रतिबंध
दो—बड़ी शक्तियां हिंद सागर को शांति क्षेत्र बना रहने दें

३. 'हिंदुस्तान' : एक—देश भर में बंधुआ मजदूरी प्रथा समाप्त
दो—६ फरार तस्करों की जायदाद कुर्क

४. 'नवभारत टाइम्स' : एक—बेगार प्रथा समाप्त
दो—तूफान में ४७ मरे : कई करोड़ की क्षति

शनिवार, १ नवंबर १९७५ के पत्रों की 'लीडों' के नीचे दिये ब्योरे में चार दिल्ली के दैनिक पत्र हैं और छह बाहर के।

१. 'आज' (वाराणसी) : एक—सरदार पटेल के जन्मशती समारोह में प्रधानमंत्री का भाषण
दो—वाराणसी में हुए पटेल जयंती समारोह में उ०प्र० के मुख्यमंत्री श्री हेमवतीनंदन बहुगुणा का भाषण

२. 'आर्यावर्त' (पटना) : एक—सरदार पटेल के जन्मशती समारोह में प्रधानमंत्री का भाषण
दो—राष्ट्रपति फखरुद्दीन अली अहमद का शिलांग में भाषण

३. 'स्वतंत्र भारत' (लखनऊ) : एक—अंतर्राष्ट्रीय इस्लामी शिक्षा सम्मेलन (लखनऊ)
दो—राष्ट्रमंडलीय सम्मेलन (नयी दिल्ली)

४. 'देशबंधु' (रायपुर) : एक—चीनियों और भारतीय गश्ती दल में मुठभेड़
दो—छत्तीसगढ़ एक्सप्रेस को बिदाई

५. 'देशबंधु' (जबलपुर) : एक—चीनी फौजियों द्वारा भारतीय गश्तीदल पर गोलीबारी
दो—वनों की अवैध कटाई को सख्ती से रोका जावे

६. 'केसरी' पूना (मराठी) : एक—चिनी गोलीबारात ४ भारतीय जबान ठार (नयी दिल्ली)
दो—एस० टी०—माल मोटार यांची टक्कर : ७ ठार (नासिक)

७. 'जनयुग' : एक—राष्ट्रमंडल संसदीय सम्मेलन
दो—फोर्ड द्वारा इस्राइल को फौजी मदद में वृद्धि की मांग

८. 'वीर अर्जुन' : एक—सरदार पटेल के जन्मशती समारोह में प्रधानमंत्री का भाषण
दो—अरब देशों की मदद से पाक में टैंकभेदी तोपों का निर्माण

९. 'हिंदुस्तान' : एक—प्रधानमंत्री का दिल्ली पुलिस परेड में भाषण
दो—निर्यात ऋण प्रणाली में उदारता संभव

१०. 'नवभारत टाइम्स' : एक—पुलिस अलंकरण समारोह में प्रधानमंत्री का भाषण
दो—निर्यात बढ़ाने के विशेष उपाय

ऊपर दिये ब्योरे से 'लीडों' के चयन, उनकी एकरूपता तथा भिन्नता का पता लग जायगा।

संस्करण

समाचार-पत्र का नवीन संस्करण किसी एक संस्करण का नवीन रूप होता है। हर संस्करण अपने पूर्ववर्ती संस्करण की नींव पर खड़ा होता है। आगामी संस्करण के लिए वह स्वयं नीव बनता है। इस प्रकार किसी संस्करण का काम आरंभ होता है। तब मुख्य उप-संपादक पिछली तारीख के उसी संस्करण मे मिलान करके पुराने समाचारों को वर्तमान तारीख के संस्करण से काट देता है। जैसा और जितना स्थान रिक्त होता है उसी के अनुसार और नवीनतम समाचारों के आधार पर नवीन संस्करण के स्वरूप का मानसिक चित्र वह तैयार कर लेता है। इसी के साथ वह अनुमान लगा लेता है कि किस पृष्ठ पर किस प्रकार के कितने समाचारों की आवश्यकता होगी।

जिन समाचारों का चयन किया गया हो उनमें से भी कुछ चुने हुए समाचारों का आवश्यकतानुसार संपादन करना उचित है। न सब समाचारों का संपादन करना संभव होता है और न आवश्यक। और न सबके लिए स्थान ही होता है। हां, यह आवश्यक है कि सर्वप्रमुख समाचारों और एककालमा समाचारों का संपादन अच्छे ढंग से पूर्ण होना चाहिए। यह नही कि पृष्ठ भरने और उसे उचित रीति से सजाने के लिए समाचारों की कमी पड़े। पूर्व-कल्पना के आधार पर सब काम होता चले। छोटे-बड़े सब तरह के समाचारों का संपादन निरंतर चलता जाय। कुछ अति संक्षिप्त समाचार भी देना चाहिए। संपादित समाचारों के प्रवाह का संतुलन न बिगड़े। समाचारों का संतुलित संपादन और सुंदर पृष्ठांकन ही तो संपादन-कला की कसौटी है।

छह 'ककार'

समाचार के गठन का भी नियम है। यह ऐसा नियम है जिसे पाठक के मनोविज्ञान के आधार पर बनाया गया है। पाठक के मन को छह प्रश्नों के उत्तर मिलने से संतुष्टि होती है। इसे छह 'ककारों' के नियम की संज्ञा दी गयी है। छह 'ककार' हैं : क्या, कब, कहा, क्यों, कौन और कैसे ? पाठक इन 'ककारों' के इसी क्रम से उत्तर चाहता है। सब मे पहले 'क्या' और सब के बाद मे उसे 'कैसे' का उत्तर चाहिए। वैसे यह देखा जाता है कि 'क्या' का उत्तर देने के बाद समाचार के निजी व्यक्तित्व के कारण अन्य प्रश्नों के क्रम में उलटफेर भी हो जाता है। सामान्य नियम यही है कि अति महत्व के तथ्य अथवा परिणाम को सब से पहले देना चाहिए और सब से कम महत्व के अंश को सब से पीछे। इस पद्धति को 'विलोम स्तूपी' नाम दिया गया है। समाचार में 'छह ककारों' का उत्तर जिस प्रकार विस्तार मे दिया जा सकता है, उसी प्रकार संक्षेप में भी। सब अंशों से पूर्ण समाचार को संक्षेप में देना कठिन कार्य है। संक्षेप करने में समय अधिक लगता है। भाषा और भावों के प्रवाहयुक्त गठन पर विशेष ध्यान देना आवश्यक हो जाता है।

स्थानीय समाचार

समाचार-पत्र जिस नगर से प्रकाशित होता है, वहां के समाचारों को स्थानीय

समाचार की संज्ञा दी जाती है। बहुत समय तक हिंदी दैनिक पत्रों के मालिक इस ओर तनिक भी ध्यान नहीं देते थे। वे नगर के समाचारों पर धन लगाना अपव्यय समझते थे। श्री सत्यदेव विद्यालंकार ने 'हिंदी पत्रकार की आपबीती-जगबीती' में एक स्थान पर लिखा है :

"अपने कटु अनुभवों की लंबी श्रृंखला में से एक ही घटना यहां देना पर्याप्त होगा। एक अंग्रेजी दैनिक के साथ चलने वाले एक हिंदी दैनिक के लिए अलग स्थानीय संवाददाता रखने के लिए मुझे लंबा संघर्ष करना पड़ा।···मेरा अनुभव है कि जिन पत्रों ने पत्रकारिता के इस महत्वपूर्ण अंग की उपेक्षा की, वे पनप नही सके। जिन संचालकों ने बिना टांगों के अपने पत्रों को चलाने का प्रयत्न किया वे उसमें सफल नहीं हो सके।"

किसी भी पत्र को चलाने के लिए स्थानीय समाचार और उनको लाने वाने संवाददाता पत्र की सुदृढ़ टांगों के सदृश हैं। उनके बिना समाचार-पत्र पंगु है। स्थानीय समाचारों के संकलन और संपादन पर अधिक-से-अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए। उन्हें कम महत्व देना कदापि ठीक नही। रुचि और आकर्षण मे 'आत्मीयता' और 'सामीप्य' के महत्व के बल पर ही अनेक बड़े-छोटे नगरों में 'स्थानीय समाचार-पत्र' और 'सांध्यकालीन समाचार-पत्र' बड़ी संख्या में सफलतापूर्वक प्रकाशित होते हैं। उनके प्रकाशन की सफलता का कारण ही यह है कि लोग अपने नगर और अपने पास की खबरों को पूरी तरह जानने के इच्छुक रहते है। वे अतिरिक्त पैसा खर्च करके भी उन छोटे समाचार-पत्रों को खरीदते है। इसी बात को ध्यान में रखते हुए, प्रातःकालीन पत्रों के स्थानीय समाचारों का महत्व हमारी समझ मे आ जायगा। आज का जागरूक पाठक स्थानीय समाचारों को लगातार उपेक्षा मे किसी पत्र के विषय में अपनी उल्टी धारणा बना लेता है। अतः 'दिया तले अंधेरा' वाली कहावत को चरितार्थ न करना ही श्रेयस्कर है।

स्थानीय समाचार-कार्यालयों के प्रतिनिधियों और मान्य समाचार-समितियों द्वारा भेजे गये समाचारों के आधार पर संगृहीत किये जाते हैं। फोन पर दिये गये समाचारों को साधारणतः मान्यता नही दी जाती। अधिकतर स्थानीय समाचारों में ही अपनी-तेरी चलती है। 'चाय-चक्र' भी अपना बुरा असर दिखाता है। कार्यालय के अनेक कर्मचारी 'अपने और अपनों' के समाचारों की भरमार करने तथा उन्हें उछालने का भरसक प्रयत्न करते हैं। इस प्रकार की 'छूट' पत्र की प्रतिष्ठा के लिए घातक होती है।

स्थानीय समाचारों का चयन और संपादन करने अथवा कराते समय निम्नलिखित बातों का विशेष ध्यान रहे :

१. नगर का हित
२. जनता की भावना
३. नगर के समस्त वर्गों की यथासंभव तुष्टि
४. सामुदायिक शिकायतों के प्रकाशन की ओर जागरूकता
५. समाचार पर हुई प्रतिक्रिया पर निगाह
६. समाचार की अतिशयोक्तिहीनता और प्रामाणिकता

७. बासीपन की गंध से बचाव
८. अद्यतन समाचारों की चित्रों से यथासंभव शीघ्र पुष्टि
९. समस्त उचित समाचारों के लिए द्वार खुला रहे, परंतु अनुचित और निम्नस्तरीय समाचारों की पूर्ण उपेक्षा की जांय
१०. नगर के नेताओं के स्तर और उनकी लोकप्रियता का ज्ञान
११. विभिन्न संस्थाओं के स्तर और उनकी सेवाओं के बारे में जानकारी
१२. संवाददाता किसी प्रवाह में बह तो नहीं गया ?
१३. व्यक्तिगत कटाक्ष की गंध अवांछनीय
१४. पक्षपात से दूर रहना। 'सब अपने, न कोई पराया' सिद्धांत का पालन
१५. नगर की दलबंदी पर निगाह
१६. नगर के विभिन्न क्षेत्रों की स्थिति के बारे मे जानकारी
१७. समाचारों में विविधता
१८. नामों के देने में संयम
१९. अपने कार्यालय से संबंध रखने वाले व्यक्तियों के नाम यथासंभव न प्रकाशित करने के नियम का पालन
२०. अधिक से अधिक समाचार देने का प्रयास

स्थानीय समाचारों का संपादन और पृष्ठांकन अन्य समाचारो की तरह ही होता है। स्थानीय समाचारों में भी कोई समाचार प्रथम पृष्ठ पर स्थान पाने योग्य हो सकता है। अतः स्थानीय समाचारों का चयन और संपादन करने वाले पत्रकार को 'विशेष महत्व' का समाचार मिलने पर उसका संकेत प्रथम पृष्ठ का संपादन करने वाले व्यक्ति को कर देना चाहिए। यदि वह चाहे तो पूरे का पूरा समाचार प्रथम पृष्ठ पर ले सकता है। यदि किसी कारण यह संभव न हो तो कम-से-कम उक्त समाचार का छोटा रूप बनाकर प्रथम पृष्ठ पर दे देना चाहिए। विस्तृत समाचार स्थानीय पृष्ठ पर स्थान पा लेगा। इस प्रकार यह न होगा कि किसी कारण महत्व का समाचार न प्रथम पृष्ठ पर जा सके और न स्थानीय पृष्ठ पर।

अधिकांश स्थानीय समाचारों का महत्व स्थानीय ही होता है। अतः अब यह परिपाटी चल निकली है कि स्थानीय पृष्ठ को नगर संस्करण में ही दिया जाता है। समाचार-पत्र के अन्य संस्करणों के लिए उक्त पृष्ठ का पुनः पृष्ठाकन होता है। ऐसे समाचार जिनका शहर के बाहर की जनता के लिए न कोई मूल्य है और न महत्व, उनको निकाल दिया जाता है। उस रिक्त स्थान पर अन्य आवश्यक समाचार दे दिये जाते हैं। यह जरूरी नही कि स्थानीय समस्त समाचारों को 'किल' ही कर दिया जाय। जो समाचार असाधारण और अभिरुचि के हैं, उनको नगर-संस्करण के अतिरिक्त प्रकाशित होने वाले संस्करणों में स्थान मिल जाता है।

डाक समाचार

• संपादकाचार्य श्री अंबिकाप्रसाद वाजपेयी का कहना है कि अधिकांश जनता गांवों में रहती है। समाचार-पत्रों को गांवों से संपर्क बढ़ाना चाहिए। पर यह संपर्क बढ़े तो

कैसे बढ़े ? उसका एकमात्र उपाय यह है कि समाचार-पत्रों का अच्छा-खासा भाग डाक के समाचारों से भरा रहे। यदि यह पता चले कि डाक से आने वाले किसी समाचार का महत्व और आकर्षण बहुत है तो उसे प्रथम पृष्ठ पर भी स्थान देने में नहीं हिचकना चाहिए। ऐसा करने से पाठकों के मन में डाक के समाचारों के बारे में जो हीन भावना है उसका उन्मूलन होगा। इस प्रकार की एक घटना का हमें स्मरण है। 'नवभारत टाइम्स' दिल्ली के चंडीगढ़ स्थित संवाददाता ने वायुसेना के किसी कारपोरल का सनसनीखेज समाचार भेजा था। सामान्यतः समाचार 'डाक' का होने के कारण भीतर के डाक-पृष्ठ पर स्थान पाता। परंतु उस समय के मुख्य उप-संपादक को वह समाचार अधिक जंचा और उसे प्रथम पृष्ठ पर 'लीड' के रूप में विस्तार से दिया गया। जब चंडीगढ़ के संवाददाता ने देखा कि उसके समाचार को इतना महत्व दिया गया है तो वह उक्त 'कहानी' के पीछे लग गया और लगातार कई दिनों तक अनेक रहस्योद्घाटन करता रहा। तीन दिन 'नवभारत टाइम्स' ने ही केवल उस समाचार को विस्तार से दिया। न किसी अन्य समाचार-पत्र ने और न किसी समाचार-समिति ने उसके बारे में एक पंक्ति भी दी। यह देखकर अंग्रेजी की प्रमुख समाचार-समिति के कान पर जू रेंगी। उसने भी कुछ साधारण-सी जानकारी एकत्र कर 'कारपोरल' का समाचार प्रसारित किया। अतः हमें डाक से प्राप्त समाचारों पर भी विशेष दृष्टि रखनी चाहिए।

इसके अतिरिक्त जितने भी अधिक डाक-समाचार हम अपने पत्र में दे सकें, दें। 'दूर और देर' का प्रश्न डाक के समाचारों में नहीं उठता। अधिक डाक-समाचारों से पत्र जनता का बनता है। वहां तो केवल यह देखना है कि उसमें 'समाचारत्व' के अंश हैं या नहीं। मद्रास का 'हिंदू' (अंग्रेजी) बहुत ही छोटे टाइप में दक्षिण भारतीय गांवों और छोटे कस्बों के समाचार देता है, उस कारण उत्तर भारत में बसे दक्षिण भारतीय उसे बड़ी रुचि से पढ़ते हैं। इसी प्रकार वाराणसी का दैनिक 'आज' अपने जन्मकाल से छोटे-छोटे ग्रामों के समाचार देकर ही उत्तर प्रदेश में अपना स्थान बना सका। 'स्वतंत्र भारत' (लखनऊ) भी उस नीति का अनुसरण कर रहा है। मध्यप्रदेश में 'नई दुनिया' की अपार लोकप्रियता का यह भी एक रहस्य है। १९६८ से पहले 'नवभारत टाइम्स' दिल्ली भी डाक के समाचार बहुत और बड़े अच्छे ढंग से देता था। उसके संवाददाताओं की संख्या बहुत थी, परंतु आगे चलकर द्वितीय वेतन बोर्ड के नियमानुसार संवाददाताओं को अधिक 'पैसा' न देने की नीति के परिणामस्वरूप उनकी संख्या में भारी कटौती कर दी गयी।

डाक से प्राप्त संवाददाताओं के समाचारों की भाषा उनके जाने ठीक होती हुई भी समाचार-पत्र की सामान्य भाषा और शैली के अनुरूप बहुत कम होती है। जिन संवाददाताओं को अपने समाचार-पत्र की भाषा और शैली का ध्यान होता है उनके समाचार काफी संख्या में अच्छा स्थान प्राप्त कर लेते है। अधिकतर संवाददाता समाचार को इतना विस्तृत कर देते हैं कि उसका संक्षेप करना आवश्यक हो जाता है। यह बात भी है कि संवाददाता कोई प्रशिक्षित पत्रकार तो होते नहीं। मुफस्सिल संवाददाता शिक्षित होते हैं और उन्हें लोकसेवा में रुचि होती है। इस सारी स्थिति को देखते हुए उनके भेजे समाचारों से चयन भी करना पड़ता है और उनका संपादन भी। अतः डाक

से प्राप्त समाचारों का चयन और संपादन करते समय निम्नलिखित बातों का विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिए :

१. घटना का महत्व
२. घटना का स्थानीय महत्व
३. घटना पर स्थानीय रंग
४. व्यक्तिगत मान-अपमान की गंध
५. घटना का बासीपन
६. सीमित स्थान
७. भाषा की एकरूपता

चयन और संपादन के सिद्धांत सब समाचारों के लिए ही एक-से होते हैं—चाहे वे समाचार-समिति के हों, तार के हों या डाक के। डाक से प्राप्त समाचारों के प्रति जरा अधिक सतर्क रहना जरूरी है। वे अनुत्तरदायित्वपूर्ण और अनर्गल भी हो सकते हैं। मान-अपमान की गंध उनमें अधिक होने की संभावना रहती है। गुणावगुण पर विचार कर लेने के बाद डाक के समाचारों को देने के प्रकार की समस्या सामने आती है। यदि संवाददाताओं की संख्या कम है, तब तो कोई खास उलझन पैदा नहीं होती, पर जब उनकी संख्या पर्याप्त होती है तब कठिनाई उत्पन्न होती है।

आजकल हिंदी दैनिक पत्रों के दो-तीन संस्करण प्रकाशित होना तो मामूली बात है। अनेक पत्रों के पाच-छह संस्करण तक निकलते हैं। विभिन्न संस्करण परिवहन व्यवस्था को ध्यान में रखकर अनेक नगरों को भेजे जाते हैं। अपने वितरक विभाग से संस्करणों और क्षेत्रों के मेल का पता लगाकर यदि किसी विशेष संस्करण में गंतव्य स्थान और क्षेत्र के समाचारों को समाहित करने का ध्यान रखा जायगा तो सभी डाक-समाचारों की खपत भी हो सकेगी और उनकी कदर भी होगी। विभिन्न संस्करणों के साथ यदि डाक का पृष्ठ भी क्षेत्रानुसार बदलता जाय तो अच्छा है। इस परिवर्तन के लिए संपादन-विभाग को बड़ा ही सतर्क रहने की जरूरत है।

समाचार-समितियों से आने वाले समस्त समाचारों पर तो नगर का नाम और तारीख रहती है। डाक से आने वालों समाचारों पर नगर का नाम तो रहता है, परंतु तारीख नहीं होती और यदि होती भी है तो संपादन करते समय उसे बढ़ा दिया जाता है। उस तारीख को काट क्यों दिया जाता है? डाक से आने वाले अधिकांश समाचार कुछ दिन पुराने होते हैं। कई दिन पीछे की तारीख देना दैनिक पत्र के लिए अच्छा नहीं लगता, अतः तारीख उड़ा देने का ही प्रचलन है। समाचार के अंदर किसी प्रकार तारीख आदि का संकेत आ जाना चाहिए। यदि समय का संकेत नहीं होगा तो समाचार की ऐतिहासिकता और प्रामाणिकता को भारी धक्का पहुंचेगा। कुछ संवाददाता न तो समाचार के आदि और न अंत में तारीख लिखते हैं। इसके साथ ही वे संवाद में 'कल या परसों' शब्द लिखकर संपादन करने वाले को और भी उलझन में डाल देते हैं। ऐसा संकट आ पड़ने पर डाकखाने की मुहर का सहारा लेकर घटना की तारीख निश्चित कर लेनी चाहिए। डाक-समाचारों का संपादन किसी प्रकार भी सरल कार्य नहीं। उसकी उपेक्षा करना पत्र के विकास पर रोक और साख में बट्टा लगाना

है। पृष्ठांकन करते समय एक क्षेत्र के समाचारों को एक स्थान पर एकत्र कर देना उचित है। समाचारों का बिखरापन पाठक को अखरता है। डाक-पृष्ठ को भी उसी प्रकार सजाना चाहिए, जिस प्रकार पत्र के अन्य पृष्ठ सजाये जाते हैं।

हिंदी का पक्ष

यदि हम हिंदी समाचार-पत्रों में काम कर अपनी आजीविका कमाते हैं तो उसी के नाते सही, हमें समाचार देते समय हिंदी की हिमायत का सदैव ध्यान रखना चाहिए। यदि हमारे पत्र इस बात के प्रति निरंतर सतर्क रहते तो आज कम-से-कम उत्तर भारत में अंग्रेजी का यह बोलबाला न होता। जब भी और जहां भी हमारे नेता या अधिकारी अंग्रेजी का प्रयोग करते हैं, हमें उसका उल्लेख अवश्य कर देना चाहिए था। विधान-सभाओं और संसद में दिये भाषणों को प्रकाशित करते समय यह लिखना तथ्यात्मकता और हिंदी के हित में होगा कि वक्ता ने किस भाषा का प्रयोग किया। यही नीति समारोहों आदि की कार्यवाही के संबंध में भी अपनायी जानी चाहिए। अब भी समय है। उदाहरण के तौर पर १४ अक्तूबर १९७५ के 'नवभारत टाइम्स' (नयी दिल्ली) नगर संस्करण में प्रकाशित समाचार उल्लेखनीय है :

" नयी दिल्ली, १३ अक्तूबर (भा)। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के आदर्शों पर आधारित गांधी स्मारक निधि ने हरिजनों की समस्याओं पर यहां जो गोष्ठी आयोजित की थी, उसकी सारी सामग्री अंग्रेजी मे तैयार की गयी।

" गोष्ठी के समापन-समारोह पर आज सायं सभी वक्ताओं ने अंग्रेजी में ही भाषण किये। भाग लेने वाले प्रतिनिधियों के सामने रखी गयी नामों की पट्टियां और बिल्ले भी अंग्रेजी मे ही थे।

" हरिजनों के कल्याण हेतु प्रस्ताव का जो मस्विदा राज्यों को भेजने के लिए तैयार किया गया, वह भी अंग्रेजी भाषा में ही है।"

इसी प्रसंग मे हिंदी के समाचार-पत्रों और हिंदी की समाचार-समितियों ने हाल ही में जो चूक की, उसकी ओर संकेत कर देना समीचीन होगा। भारत के राष्ट्रपति श्री फखरुद्दीन अली अहमद अक्तूबर १९७५ में हंगरी की यात्रा पर गये थे। बुडापेस्ट के हवाई अड्डे पर उनका भव्य स्वागत हुआ था। स्वागत-स्थल पर हिंदी में बड़े-बड़े सुदर नागरी अक्षरों मे अभिवादन-वाक्य लिखे गये थे। इसका उल्लेख हिंदी पत्रों ने कहीं नही किया। दूरदर्शन पर यात्रा की फिल्म प्रदर्शित होने के बाद भी उसका समाचार प्रकाशित किया जा सकता था। यह निगाह रखना भी संपादन-कला का अनिवार्य अंग है। जैसे हम अंग्रेजों से लड़े, वैसे ही अंग्रेजी से लड़ना है। आदिकाल से चले आ रहे 'हिंदी व्रत' का निर्वाह तो पत्रकार को करना ही है।

शीर्षक कैसे दें ?

किसी भी समाचार या लेख पर बढ़िया शीर्षक देना भी एक कला है। आज के जमाने में कोई भी समाचार या लेख बिना शीर्षक के नहीं जाता किंतु वे समाचार-पत्र सब से ज्यादा बिकते हैं, जिनके शीर्षक सार्थक, पैने, संक्षिप्त और चटपटे होते हैं। सच पूछा जाय तो समाचार-पत्र नहीं, शीर्षक ही बिकते हैं, क्योंकि आज की व्यस्त जिंदगी मे लोगों के पास इतना समय नहीं है कि वे सारी खबर पढ़कर अखबार की खरीदी के बारे में राय बनायें। वे तो अखबार के मुखपृष्ठ पर एक उडती-सी नजर फेंकते है और उसी समय जो मोटे-मोटे शीर्षक उन्हें उलझा लेते हैं, उन्हें पढने के लिए वे अपनी जेब ढीली कर देते है। इसका मतलब यह नही कि सिर्फ भड़कीले शीर्षक के दम पर अखबार चलाया जा सकता है लेकिन यह सत्य है कि यदि शीर्षक अटपटे, उबाऊ, लंबे और निरर्थक हुए तो उत्तमोत्तम सामग्री के उपरात भी कोई पत्र लोकप्रिय नहीं बन सकता।

ऐतिहासिक दृष्टि : समाचार-पत्रों में शीर्षक लेखन की कला का विकास धीरे-धीरे हुआ है। १७०२ में प्रकाशित समाचार-पत्र 'डेली कौरांट' के प्रथम पृष्ठ पर बड़े-बड़े शीर्षक थे ही नही। दैनिक पत्रों के प्रकाशन से पूर्व जो पर्चे (लीफ लैट) निकलते थे, उनमें बड़े-बड़े टाइप में सनसनीदार शीर्षक रहते थे। १६१३ में ऐसे ही एक पर्चे का शीर्षक आज के बैनर की भांति था। राबर्ट ई० गार्स्ट और थ्योडोर बर्न्सटीन के मतानुसार 'बोस्टन गजट' में १७८१ में आधुनिक ढंग का प्रथम शीर्षक एक अतिरिक्त पर्चे पर दिया गया था। लंदन के 'टाइम्स' ने १७८९ में कई पंक्तियों के शीर्षक प्रथम बार दिये थे। फरवरी १८२३ के 'संडे टाइम्स' के प्रथम संस्करण में आधुनिक ढंग के शीर्षक दिये गये थे। समाचार-पत्रों में पहले एककालमा शीर्षक रहते थे। दोकालमा या इससे अधिक लंबे शीर्षक देने का काम बाद में आरंभ हुआ। वस्तुतः शीर्षक-लेखन को एक कला का रूप प्रदान करके शीर्षकों को समाचार-पत्र के पृष्ठ की सज्जा का अंग बनाने के काम में अमरीकी पत्रकारिता का योगदान महत्वपूर्ण है। अमरीकी गृहयुद्ध के समाचारों की सनसनी और तार के माध्यम से समाचार-प्रेषण व्यवस्था का विकास

होने के कारण अमरीकी पत्रों में शीर्षकों को आकर्षण एवं सुघड़ता प्रदान की।

भारत में विशेषत: हिंदी के समाचार-पत्रों में शीर्षक-लेखन की ओर पर्याप्त ध्यान ही नहीं दिया जाता। हर समाचार का एक शीर्षक होना चाहिए, इसलिए एक शीर्षक लिख दिया जाता है। उसे आकर्षक, संतुलित तथा समाचार के प्रमुख तत्त्वों का समावेश करते हुए चुस्त बनाने की दिशा में सुनिर्दिष्ट चिंतन तक नहीं है। इसके विपरीत पश्चिम में समाचार-पत्रों के कार्यालयों में समाचार-शीर्षकों का पूर्व रूप तक निर्धारित होता है जिसमें शीर्षकों की अनेक रूप संभावनाओं का किन-किन रूपों में प्रयोग किया जा सकता है और विशिष्ट प्रकार का शीर्षक किस टाइप में रहे, यह तक संकेतित रहता है।

आकार : समाचार के महत्व के अनुसार शीर्षकों का टाइप, आकार और स्वरूप बदलता रहता है। कम महत्व का समाचार छोटे टाइप में रहता है। समाचार का महत्त्व ज्यों-ज्यों बढ़ता जाता है, शीर्षक का टाइप मोटा होता जाता है।

समाचार के महत्व के साथ-साथ टाइप ही मोटा नहीं होता, वरन् उसके साथ एक से अधिक 'डैकों' में शीर्षक दिये जाते हैं। यहां एक डैक में एक से अधिक पंक्ति हो सकती है किंतु उसमें शीर्षक एक ही होता है। एकाधिक डैकों में शीर्षक तभी दिये जाते हैं, जब समाचार बहुत महत्वपूर्ण हो और पाठक समाचार के साथ कार्यकारण-संबंध या अन्य बातें भी जानने का इच्छुक हो।

पत्रकारिता के आरंभिक चरण में समाचार का महत्व अधिक होने पर अनेक डैकों में शीर्षक दिये जाते थे किंतु वे होते एक कालम में ही थे। 'न्यूयार्क टाइम्स' ने अमरीकी गृहयुद्ध के दौरान अटलांटा के पतन के समाचार का शीर्षक १२ डैकों में दिया था और दिसंबर १८५१ में फ्रांसीसी क्रांति के समाचार का शीर्षक चार डैकों में।

अनेक डैकों के स्थान पर एकाधिक कालम में शीर्षक देने की परंपरा 'फिलेडेल्फिया इनक्वायरर' ने १८६२ में आरंभ की किंतु उन्नीसवी सदी के आठवें-नवें दशक में इस दिशा में कुछ प्रगति हुई। पूरे आठों कालमों में बैनर लाइन देने की परंपरा 'न्यूयार्क जर्नल' और 'न्यूयार्क वर्ल्ड' के प्रचार-युद्ध में आरंभ हुई। लंदन के 'डेली एक्सप्रैस' और 'डेली क्रानीकल' ने १६०० में आठकालमा बैनर लाइन देनी आरंभ की। उस समय इन बैनर लाइनों के टाइप छोटे आकार के होते थे। मोटे टाइप में आठकालमा बैनर देने की परंपरा तो और भी बाद में आरंभ हुई।

आकार की दृष्टि से शीर्षक एक डैक या एकाधिक डैक का हो सकता है; वह एक कालम, दो कालम, तीन कालम या इससे भी बड़ा हो सकता है और उसे लिखने के अनेक ढंग हो सकते हैं। शीर्षकों के साथ उसके टाइपों का चयन भी महत्वपूर्ण होता है। शीर्षक कितने पाइंट के टाइप में हो, उसकी मुखाकृति का स्वरूप (फ़ेस) कैसा हो और शीर्षक के अक्षरों के बीच अंतराल (स्पेसिंग) कैसा हो, इन प्रश्नों का सही उत्तर जानने वाला ही बढ़िया शीर्षक दे सकता है। अनेक बार शीर्षक-संबंधी विविध आवश्यकताएं एक दूसरे की विरोधी हो सकती हैं, जैसे सुस्पष्टता के लिए अधिक शब्द लिखने आवश्यक हों और स्थान की सीमाएं या टाइप की सीमाएं कम अक्षर लिखने को बाध्य करें या समाचार तो छोटा हो किंतु उसका महत्व बड़ा हो और शीर्षक समाचार से भी अधिक

स्थान घेरने वाला हो जाय। उस अवस्था में सेर भर की लोमड़ी और सवा सेर की पूंछ हो जा सकती है।

डैक : जैसा पीछे लिखा जा चुका है, एक या एकाधिक पंक्तियों के शीर्षक को डैक कहते हैं। कभी-कभी समाचार के महत्व के अनुसार एकाधिक डैक के शीर्षक रहने आवश्यक होते हैं किंतु अधिक डैक वाले शीर्षकों का युग बीत गया। क्योंकि अनेक डैकों के शीर्षक देने में संपादकीय समय भी अधिक लगता है और समाचार-पत्र में स्थान भी अधिक घिरता है क्योंकि हर शीर्षक डैक को एक-दूसरे से पृथक् करने के लिए फैंसी रूल आदि देने की भी आवश्यकता होती है।

आज का पाठक समय के अभाव से पीड़ित है। वह एक दृष्टि में एक शीर्षक पढ़कर सब कुछ जान लेना चाहता है। अतः उसके लिए एक डैक का शीर्षक पर्याप्त है। यदि दो कालम या तीन कालम में शीर्षक हो, तो एक डैक के शीर्षक से काम चल ही जाना चाहिए। आज के अधिकांश पत्र एक डैक या कम से कम डैक के शीर्षकों के पक्षधर हैं। भारत में विशेषतः हिंदी के अच्छे समाचार-पत्र इस दृष्टि से अब सजग होते जा रहे हैं।

जब डैक की चर्चा कर रहे हैं तो शीर्षक के ऊपर पतले टाइप में प्राय. १६, १८ या २० पाइंट के टाइपों में बायीं ओर छोटी पंक्ति देने को डैक नहीं समझा जाना चाहिए। इसे सामान्यतः स्ट्रैप लाइन कहते है। बहुत से अमरीकी पत्र इसे 'आईब्रो' या 'किकर' भी कहते हैं। आंख के ऊपर विद्यमान भौंह की भांति कभी-कभी इस प्रकार का शीर्षक पूरे डैक की अपेक्षा अधिक उपयोगी रहता है। यहा यह भी ध्यान में रहे कि जैसे आख से भौह बड़ी होती है, वैसे ही स्ट्रैप लाइन मूल शीर्षक से बड़ी न हो बल्कि उसकी आकार-लघुता ही उत्तम होती है। दूसरे, इस स्ट्रैप लाइन शीर्षक और मूल शीर्षक के बीच मे स्पेस न हो और वह किसी प्रकार मुख्य शीर्षक की प्रतिद्वंद्वी न हो। सरलता की दृष्टि से हम उसे सहयोगी शीर्षक कह सकते हैं। कभी-कभी इस सहयोगी शीर्षक के रूप में स्तभ का नाम भी दिया जा सकता है जैसे 'खेल चर्चा', 'बाल दिवस'। किसी मुकदमे की कार्रवाई के समाचारों मे तो ऐसे शीर्षक बहुत ही अच्छे रहते हैं, जैसे—

गांधी हत्याकाड
सावरकर मुक्त : गोडसे और आप्टे
को मृत्युदंड

शीर्षकों का स्वरूप

शीर्षकों को सज्जा की दृष्टि से अनेक रूपों मे दिया जाता है। कभी कालम के बीचोंबीच, कभी बायीं ओर सटाकर, कभी दाहिनी ओर सटाकर, कभी सीढ़ीदार बनाकर और कभी बायीं ओर पहली पंक्ति के बाद स्थान रिक्त छोड़कर, जिसे अंग्रेजी में 'हैंगिंग इंडेन्शन' कह सकते हैं।

समाचार-पत्र में आठ कालम होते हैं और प्रत्येक कालम ११-१२ एम (करीब

२ इंच) का होता है। शीर्षक चाहे एक कालम का हो और चाहे एकाधिक कालम का, उसे उक्त में से किसी एक रूप में दिया जा सकता है। बीचोंबीच में शीर्षक देना सब से पुराना और अब भी सर्वाधिक प्रचलित ढर्रा है। यह सब से सादा भी है किंतु इसका सर्वत्र प्रयोग किया जाय तो समाचार-पत्र प्रभावहीन-रसहीन ही लगने लगेगा। ऐसे कुछ शीर्षक इस प्रकार हैं :

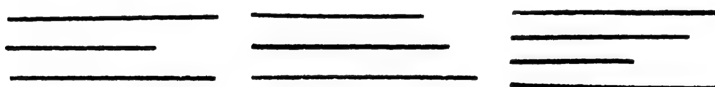
पंजाब में मैट्रिक तक की शिक्षा अनिवार्य	महारानी लक्ष्मीबाई को श्रद्धांजली	नाव दुर्घटना मे ३८ व्यक्ति मरे

इस प्रकार के शीर्षकों में ऊपर की पंक्ति और नीचे की पंक्ति दोनों ही कालम या कालमों के बीचोबीच में रखी जाती हैं।

बायीं ओर सटाकर : इस प्रकार के शीर्षक भी एक या दो कालम के ही होते हैं। इनको अनेक रूपों में दिया जा सकता है। कभी ये शीर्षक तीन पंक्तियों के होते हैं तो कभी चार पंक्तियों के। चार पंक्तियों के शीर्षक प्रायः कम ही दिये जाते हैं। इनके विविध रूपों को नीचे दिया जाता है :

बंगला देश में अराजकता-जैसी स्थिति उत्पन्न	दो सप्ताह में हत्या की आठ घटनाएं	भारत-जापान मैत्री सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक पृष्ठभूमि पर आधारित
किशोरो को सर्वांगीण विकास का अवसर मिलना परम आवश्यक	पूर्णिमा को कोनहरा घाट पर स्नानार्थियों की अपार भीड़	अरब राज्याध्यक्षों द्वारा आपात् स्थिति का समर्थन

बायीं ओर सटाकर लिखे जाने वाले कुछ शीर्षकों की रूप-रेखा बनाकर नीचे दी जाती है, जिससे शीर्षकों की सज्जा के अनेक रूप प्रकाश में आ सकें। इनमें से किस प्रकार के शीर्षक दें, यह समस्त पृष्ठ की सज्जा को ध्यान में रखकर निर्धारित किया जाता है।



दायीं ओर सटाकर : बायीं ओर सटाकर जितने प्रकार के शीर्षक दिये जा सकते हैं, लगभग उतने ही प्रकार के शीर्षक कालम में दायीं ओर सटाकर दिये जा सकते हैं। समाचार-पत्रों में सामान्य प्रवृत्ति बायीं ओर सटाकर शीर्षक देने की रहती है किंतु पृष्ठ-सज्जा की दृष्टि से यदि रिक्त स्थान बायीं ओर रखना उपयुक्त लगे तो शीर्षक दायीं ओर सटाकर लगाया जा सकता है।

सीढ़ीदार शीर्षक : ये सीढ़ीदार शीर्षक दो पंक्तियों, या तीन पंक्तियों के ही प्रायः होते हैं। दो पंक्तियों के शीर्षकों में पहली पंक्ति बायीं ओर सटाकर लिखी जाती

है, और दूसरी पंक्ति दायीं ओर, जैसे—

जुआन कार्लोस स्पेन नरेश बने	या	कलाकार कला को नवीन दिशा दें

तीन पंक्तियों के सीढ़ीदार शीर्षकों को प्रायः तीन रूपों में दिया जाता है। कभी पहली पंक्ति बायीं ओर सटाकर, बीच की पंक्ति बीचोंबीच और तीसरी पंक्ति दायीं ओर सटाकर दी जाती है। कभी पहली पंक्ति सब से बड़ी, दूसरी पंक्ति उससे छोटी और तीसरी पंक्ति सब से छोटी रहती है और सभी पंक्तियां कालम के बीचों-बीच रहती हैं इसके उलटे भी तीन पंक्तियो का सीढ़ीदार शीर्षक रह सकता है जिसमें सब मे पहली पंक्ति सब से छोटी, बीच की पंक्ति उससे बड़ी तथा तीसरी पंक्ति सब से बड़ी होती है। उदाहरणार्थ इनका स्वरूप इस प्रकार हो सकता है :—

अरब देशों का पैसा
पाक के कारीगर
हथियार बनायंगे

भारत की शांति नीति का
मंगोलिया द्वारा
समर्थन

कश्मीरी क्षेत्र
पर पाक का कब्जा
भारत को स्वीकार नहीं

'हैंगिंग इंडेन्शन'—इस प्रकार के शीर्षकों में पहली पंक्ति बायी ओर सटी हुई होती है और बाद की पंक्तिया शुरू में समान स्पेस छोड़कर दायीं ओर सटाकर बनायी जाती है। ये शीर्षक प्रायः तीन या चार पंक्तियो के होते हैं। दो पंक्तियों के भी ऐसे शीर्षक हो सकते है; पर इनका प्रयोग प्रायः कम ही किया जा सकता है। इनके कुछ नमूने यों हो सकते हैं।

आंध्र में २१५ दवा
विक्रेता दंडित

श्रीराम द्विवेदी के
दीर्घ जीवन
की कामना

भारत और पाक के बीच
विमानों की उड़ानें
फिर आरंभ होने
की पूर्ण संभावना

'हैंगिंग इंडेन्शन' वाले शीर्षक नियमित रूप से नहीं दिये जाते। ऐसे शीर्षक कभी-कभी विशिष्ट समाचारों में ही अच्छे लगते हैं।

उद्धरण-चिह्न तथा डैश : हिंदी में सामान्यतः उद्धरण-चिह्नों के प्रयोग की दिशा में विशेष रुचि देखने में नहीं आती, क्योंकि किसी का कथन आदि लिखते समय कर्तृ-वाच्य या कर्मवाच्य बनाने की प्रवृत्ति नही है। इसीलिए शीर्षकों में भी उद्धरण-चिह्नों का प्रयोग प्रायः किया ही नहीं जाता। इनका प्रयोग अंग्रेजी में ही अधिक होता है। हिंदी में प्रायः वक्ता का कथन एक डैक में देकर नीचे दायी ओर वक्ता का नाम और उससे पूर्व डैश दे दिया जाता है जिससे पाठक-वर्ग समझ लेता है कि उक्त कथन अमुक

व्यक्ति का है । वक्ता का नाम प्रायः छोटे टाइप में रहता है, जैसे—

रेलों के परिचालन में
सुधार बनाये रखा जाय
—रेलमंत्री त्रिपाठी

जब वक्ता का नाम भी प्रमुख शीर्षक के साथ देना हो और उसका कथन भी, तो उद्धरण-चिह्नों का सार्थक प्रयोग किया जा सकता है ।

प्रश्न-चिह्न का प्रयोग : अनेक बार स्थिति संदिग्ध होने की अवस्था में शीर्षक देकर उसके आगे प्रश्न-चिह्न लगा दिया जाता है । कभी-कभी समाचार को सनसनीदार बनाने के लिए भी सनसनीपूर्ण शीर्षक दे देते हैं और उसकी असत्यता की आंच पत्र पर न आये, इसलिए उसके आगे प्रश्न-चिह्न लगा देते हैं । हाल ही में जब स्पेन के तानाशाह जनरल फ्रांको की स्थिति बहुत खराब थी और उनके मरने की खबरें भी उड़ने लगी थी तो उन दिनों शीर्षक दिया गया था—'फ्रांको का देहांत ?'

शीर्षक का स्थान : समाचार के महत्व के अनुसार ही शीर्षक को एक कालम, दो या तीन कालम का लिखा जाता है । महत्व के हिसाब से ही उसके टाइप की मोटाई निर्धारित की जाती है । इस प्रकार टाइप की मोटाई और स्थान की सुलभता के आधार पर यह तय होता है कि किसी शीर्षक विशेष में कितने शब्द दिये जायं । अंग्रेजी में तो केवल वर्ण रहते हैं, जिनकी मोटाई के अनुसार यूनिट निर्धारित हैं और हर कालम में किस मोटाई के टाइप के कितने यूनिट आ सकते है, इसकी गणना सहज में संभव है किंतु हिंदी मे वर्णो के आधार पर यूनिट की गणना नहीं हो सकती क्योंकि देवनागरी लिपि में मात्राओं के वर्ण के आगे-पीछे, ऊपर-नीचे लगने से स्थान अधिक घिरता है । ा, ि, ी, ो या ौ तथा : के लिए वर्णों के साथ ही स्थान की आवश्यकता होती है । फिर संयुक्ताक्षर यथा द्य, ह्न, ह्ल भी सामान्य से अधिक स्थान घेरते हैं । हिंदी के वर्णों का आकार भी ऐसा है कि 'र' को छोड़कर शेष सभी वर्ण पर्याप्त स्थान लेते है ।

शीर्षक-लेखक को यह देखना होता है कि वह अपने शीर्षकों में कम से कम मात्राओं वाले कितने शब्दो का प्रयोग करता हे । मात्राओं की अधिकता होने पर कम वर्णो वाले शब्दों का प्रयोग करना आवश्यक होता है । इसीलिए शीर्षक-लेखक की कुशलता इसमें होती है कि वह ऐसे कितने समानार्थी शब्दों का भंडार अपने मस्तिष्क मे रखता है जो कि कम मात्रा वाले तथा कम वर्णो वाले हों ।

इन सीमाओं के बाद भी मोटे तौर पर २४ पाइंट के ९ अक्षर, ३६ पाइंट के ६, ४८ पाइट के चार और ७२ पाइंट के ३ अक्षर प्रति कालम में आ जाते हैं । जैसा शीर्षक देना हो : दो, तीन, चार या अधिक कालमों का, तो उसी के हिसाब से अक्षरों की गणना करके शीर्षक दिया जा सकता है ।

शीर्षक लेखन की प्रक्रिया : प्रत्येक शीर्षक के माध्यम से समाचार का सार पाठक तक पहुचना चाहिए । इसके लिए आवश्यक है कि शीर्षक-लेखक उप-संपादक समाचार को उसी प्रकार हृदयंगम करे जिस प्रकार संवाद-प्रेषक ने किया था । इसलिए उसे संवाद-प्रेषक का समाचार भली प्रकार पढ़ना चाहिए । पढ़ने के बाद उसे यह तय करना चाहिए कि इसमें असल बात क्या है—न्यूज पाइंट क्या है— तब जाकर वह शीर्षक देता है ।

इस प्रक्रिया में पहले वह समाचार को सरसरी तौर पर पढ़कर उसका कथ्य समझता है, दुबारा पढ़कर उसका संपादन करता है, तीसरी आवृत्ति में वह उपशीर्षक देता है। चौथी बार में वह समाचार की 'चुटीली' शब्दावली का चयन करता है और उसके बाद शीर्षक लिखता है। अनुभवी उप-संपादक यह सारा काम दो बार में ही कर डालता है। वह पहली बार में समाचार पढ़ता जाता है, संपादन करता जाता है और उपशीर्षक देता जाता है। संपादन करते समय वह उसकी पैनी शब्दावली को समझता चलता है और अंत में शीर्षक लिख डालता है।

साधारणत: समाचार का सार आमुख में ही रहता है और अक्सर शीर्षक उसी पर आधारित होता है। अच्छे शीर्षक के लिए आवश्यक है कि उसमें बहुत से तथ्यों को समाहित करने की चेष्टा न की जाय। जहां तक हो सके, शीर्षक की प्रत्येक पंक्ति एक पूर्ण विचार को ध्वनित करे। पहली पंक्ति बताये कि 'क्या' हुआ। घटना 'क्यों' हुई या 'कैसे' हुई, यह भाव शीर्षक की अन्य पंक्तियों में रहना चाहिए। फिर भी शीर्षक-लेखक के लिए सर्वप्रथम आवश्यकता यही होती है कि वह समाचार के मूल भाव को ग्रहण करके प्रेषित करे जिसे पाठक सहज ही समझ ले।

दो उदाहरण. १९६५ में उत्तर भारत के सबसे विख्यात पशु मेले—बटेश्वर—से एक बहुत ही बढ़िया बैल खरीदार के हाथों से छूट भागा। वह बैल अपने पुराने मालिक से बहुत हिला हुआ था और खरीदार जब किसी प्रकार उसे ले चला तो उसके हाथ से छूट गया। भरे मेले में दुकानों तथा भीड़ भरे रास्ते पर वह बैल अपने पुराने मालिक के पास जाने के लिए भाग रहा था और खरीदार के नौ व्यक्ति उसका पीछा कर रहे थे। बड़ी मुश्किल से लोगों ने उसे घेर कर पकड़ा। बैल की इस भाग-दौड़ से चोट तो किसी को नहीं आयी किंतु थोड़ी देर के लिए मेले में तहलका मच गया।

संवाददाता ने वह समाचार विधिवत् पूरे विवरण के साथ भेजा। शीघ्रता में शीर्षक लेखनकर्त्ता ने उस पर शीर्षक ठोक दिया : 'मेले में बैल भागा : किसी को चोट नहीं।' स्वाभाविक था कि संवाददाता को इस शीर्षक से संतोष न होता। उसने संपादक से उसके विषय में शिकायत की और संपादक ने स्वीकार किया कि इसका उत्तम शीर्षक दिया जा सकता था।

ऐसे ही एक अन्य समाचार नीचे दिया जाता है, जिसके अनेक शीर्षक हो सकते हैं किंतु सटीक शीर्षक की अपनी ही बात होती है :—

"दिसंबर का महीना था। ऋषिकेश में लक्ष्मण झूले के पास स्नानघाटों से काफी आगे जाकर एक युगल स्नान कर रहा था। युवती की आयु लगभग २२ वर्ष होगी। वह हंसी-हंसी में पानी में आगे बढ़ती गयी। एक स्थान पर अकस्मात गड्ढा आ जाने से वह पानी में डूब गयी। उसके पति ने सहायता के लिए गुहार मचायी।

"जब तक उसकी आवाजें सुनकर ७ नामी वाले तैराक भागे, तब तक युवती गंगा की बीच धार में बहकर जा चुकी थी। गंगा के तेज बहाव तथा रास्ते के पत्थरों के कारण उसे काफी चोटें आ चुकी थीं, ठंड के मारे भी उसकी चेतना लुप्त हो चुकी थी और वह बीच धारा में बही जा रही थी। कई घंटों के परिश्रम के बाद तैराक मालती नामक उस युवती को किनारे पर लाने में सफल हुए। युवती की साड़ी पानी के बहाव

में बह गयी थी, पेटीकोट ब्लाउज में ही घायल तथा एकदम नीले पड़े शरीर के साथ जब उसे किनारे लाया गया तो किसी को उसके बचने की आशा नहीं थी। ऋषिकेश में काली कमली वाले के औषधालय में लाकर उसकी चिकित्सा की गयी। स्वामी अभयानंद के अथक परिश्रम तथा चिकित्सा कौशल का परिणाम है कि युवती अब होश में है और चोटों के घाव ठीक होते ही वह चलने-फिरने की स्थिति में होगी।"

इस समाचार की सारी बातें तो शीर्षक में आ नहीं सकती। तब मूल कथ्य क्या है ? "गंगा में बही २२ वर्षीया युवती अनेक घंटों के परिश्रम से बचा ली गयी !" इस तथ्य को संपादक सहज-सा शीर्षक दे सकते हैं—'डूबती युवती की रक्षा'।

किंतु इस शीर्षक से पाठक के मन में अनेक प्रश्न अनुत्तरित रह जाते है। युवती कहां डूबी ? कैसे डूबी ? उसकी रक्षा कैसे हुई ? आदि। इन प्रश्नों का उत्तर समाहित करते हुए एक शीर्षक दिया जा सकता है—

गंगा में डूबती युवती की
घंटों के संघर्ष
के बाद रक्षा

इस शीर्षक को पढ़ने के बाद पाठक के मन में समाचार आगे पढ़ने की इच्छा नहीं होगी। सामान्य पाठक शीर्षक पढ़कर आगे चल देगा। यहां शीर्षक ऐसा हो कि जिससे पाठक की जिज्ञासा अंत तक समाचार पढ़ने की बनी रहे तो कुशल संपादक ऐसा शीर्षक देगा —

'जाको राखे साइयां···' या 'प्रेम मे लेने के देने पड़े'।

दोनों ही शीर्षक भारतीय पाठक वर्ग की दो मूल भावनाओं को छूते हैं। भारतीय भाग्यवादी है। अतः पहले शीर्षक के साथ ही वह पढेगा कि 'साइया' ने किसकी कहां कैसे रक्षा की। दूसरे शीर्षक में 'प्रेम-प्रदर्शन' करते-करते प्रेमी युगल को किस भीषण विपत्ति का सामना करना पड़ा, इसकी झांकी मिलेगी और प्रेम की दूसरी मूल भावना के वश होकर वह इसे पढ़ेगा।

इस प्रकार के शीर्षकों को कभी-कभी दो डैकों में भी दिया जाता है किंतु पहला डैक अपने आप में समाचार का मूल कथ्य कहने में समर्थ होना चाहिए। दो डैकों में दिये गये शीर्षकों में कोई भी शब्द दुहराया न जाय। पाठक समझता है कि हर डैक के शीर्षक में एक संपूर्ण विचार रहता है। इसी दृष्टि से शीर्षक लिखा जाना चाहिए और इसी दृष्टि से पाठक उन्हें समझता है।

शीर्षक सदैव सकारात्मक हो, नकारात्मक नहीं। शीर्षक से पाठक को यह विदित हो कि क्या हुआ, न कि यह बताया जाय कि क्या नहीं हुआ। प्रत्येक अवस्था में शीर्षक ऐसा हो जो समाचार के साथ न्याय करता हो। जो घटित हुआ है, उसे सत्यता के साथ उपयुक्त रूप से प्रस्तुत करने वाला हो।

शीर्षकों की भाषा

आर्थर क्रिश्चियनसन के मतानुसार अच्छा शीर्षक वह है जो सशक्त, बोलचाल की मुहावरेदार भाषा में लिखा गया हो। अच्छा शीर्षक वही कहलायगा जो

ऊंची आवाज में सहजता से पढ़ा जा सके (आखिर यही काम तो अवचेतन मन उसे निश्शब्द पढ़कर करता है)।

शीर्षक का कार्य पाठक के चेतन मन तक समाचार का सार शीघ्र से शीघ्र पहुंचाना होता है। शीर्षक-लेखक का अपना व्यक्तित्व तथा उसकी अपनी जीवन-दृष्टि समाचार तथा पाठक के बीच रहती है। स्वयं पाठक वर्ग की शिक्षा का स्तर भी समाचार-पत्र के शीर्षकों की भाषा का एक निर्धारक तत्व होता है।

सभी समाचार-पत्रों के शीर्षक में दो तत्व प्रमुख होते हैं: (१) शीर्षक क्या कहता है और (२) कैसे कहता है। शीर्षक मे क्या कहा जाता है, यह विशुद्ध समाचार-तत्व है और इसके लिए हर समाचार-पत्र समाचार को सही-सही एवं निरपेक्ष दृष्टि से प्रेषणीय रूप में प्रस्तुत करता है। उस समाचार-तत्व को कैसे कहा जाय, इसमें यहां उसका भाषा-तत्व सामने आता है। शीर्षक-लेखन में लेखक की अपनी क्षमता, अपनी दृष्टि एवं पाठकों को समझने की समझ बहुत कुछ निर्णायक भूमिका अदा करती है।

समाचार-पत्र का सर्वप्रथम कार्य पाठक को समाचार देना होता है। पाठक के विचारों को दिशा देने, घटना-क्रम की व्याख्या करने या जनमत को मोड़ देने के कार्य अपेक्षाकृत गौण होते हैं। अतः शीर्षक वही अच्छा है जिसे पहली बार पढ़ते ही पाठक समाचार का मर्म हृदयंगम कर ले।

यहां हिंदी के पाठक-वर्ग के बौद्धिक स्तर को भी ध्यान में रखना आवश्यक है। हिंदी के समाचार-पत्रों का पाठक वर्ग आजकल शिक्षित वर्ग है। जो व्यक्ति अंग्रेजी पढ़-समझ सकता है, वह आज भी अंग्रेजी का समाचार-पत्र लेता है। संभवत इसका एक कारण यह भी है कि अंग्रेजी समाचार-पत्र पूर्ण समाचार-पत्र के निकट होता है और किसी भी हिंदी के पत्र को पढ़कर समाचार-विचार की भूख शांत नहीं होती।

जैसा पीछे कहा गया है, शीर्षक देते समय स्थान का ध्यान रखना आवश्यक होता है। इसके लिए शीर्षक-लेखक को सदैव ऐसे शब्दों का भंडार अपने मन में रखना होता है जो कम अक्षरों के हो और अधिक अर्थ ध्वनित करें। ऐसे कुछ शब्द हैं—'आक्रमण' के स्थान पर 'हमला', 'आवश्यक' के स्थान पर 'जरूरी', 'वायुयान' के स्थान पर 'विमान', 'बातचीत' का 'वार्ता', 'स्वच्छ' का 'साफ', 'सहायता' की जगह 'मदद', 'ग्रामीण अंचलों' की जगह 'गांव', 'खाद्यान्न' की जगह 'गल्ला' और ऐसे ही बहुत से शब्दों का प्रयोग किया जा सकता है।

कुछ अन्य सावधानियां: शीर्षक पूर्ण वाक्य के रूप में नहीं होना चाहिए। इसके साथ ही यथासंभव शीर्षक में क्रियापद बचाया जाना चाहिए। क्रियापद बचाने के लिए प्रायः हिंदी में शीर्षक कर्मवाच्य में लिखा जाता है लेकिन इसमें एक दोष यह आ जाता है कि शीर्षकों में 'द्वारा' का दौरदौरा हो जाता है। 'द्वारा' का अधिक प्रयोग अखरता है। शीर्षकों में संख्याओं का प्रयोग बचाकर यथासंभव उन्हें अक्षरों में लिखना चाहिए जैसे '१००' के स्थान पर 'सौ' ठीक रहेगा। कभी-कभी स्थान की आवश्यकता संख्या लिखने को विवश करे तो बात और है जैसे 'पांच' के स्थान पर '५' लिखने से कम जगह में काम चल जाता है।

शीर्षक-लेखन के लिए कुछ शब्दों के संक्षिप्त रूपों के प्रयोग से भी बड़ी सहायता मिलती है जैसे 'पाकिस्तान' के लिए 'पाक', 'सोवियत संघ' के लिए 'रूस', 'संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी' के लिए 'संसोपा' और 'संयुक्त विधायक दल' के लिए 'संविद' शब्द। इनसे स्थान कम घिरता है और कथ्य को पाठक बखूबी समझते हैं।

हिंदी में शीर्षक-लेखन में विशेषणों का बहुत भ्रामक प्रयोग होता है। विशेषणों का प्रयोग करते समय प्रायः यह नहीं सोचा जाता कि यदि इससे भी बड़ी या गंभीर स्थिति हुई तो उस समय किस विशेषण का प्रयोग करेंगे। प्रायः विशेषणों के प्रयोग में उदारता से काम लिया जाता है और परिमाणवाचक विशेषण 'भारी' मतदान के साथ भी प्रयोग होता है और खेल में विजय के लिए भी। जैसे 'कश्मीर में भारी मतदान' या 'ए० एस० सी० की भारी विजय'। और तो और, बाजार में भी 'भारी मदी' आ जाती है।

शीर्षकों में अनावश्यक शब्द-जाल के लिए कभी भी स्थान नहीं होता। उत्तम शीर्षक के लिए आवश्यक है कि विषय के अनुरूप उसमें सटीक शब्दों का प्रयोग और प्रौढ़त्व तथा कसाव हो। सूक्ष्म भाव-बोध की अभिव्यक्ति के लिए शब्द-चयन ऐसा हो जो विचारों के भावनाजन्य अंतर को परिभाषित कर सके। शीर्षक-लेखन में कभी-कभी लक्षणा-व्यंजना शब्द शक्तियों का प्रयोग भी आकर्षण ला देता है। लेकिन यहां कथ्य इस खूबसूरती से कहा जाय कि उसे जन-जन सहजता से समझ सके, जैसे 'शहीदों की चिताओं पर लगेंगे हर बरस मेले' या 'मत रो माता लाल तेरे बहुतेरे' सरीखे पद उद्धृत करके शहीदों के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की जाय।

विशेष समाचारों के शीर्षक

समाचार-पत्र में मात्र समाचार ही नहीं रहते। उसमें स्थानीय समाचार व खेलों के समाचार भी होते हैं, फिल्मों की बातें भी रहती हैं और सब से अधिक व्यापार-जगत रहता है। इन सभी की अपनी-अपनी भाषा बन चुकी है और उसी के अनुसार इनके शीर्षक चलते हैं। हिंदी में व्यापारिक गतिविधियों के नाम पर प्रायः बाजार भावों की ही प्रमुखता रहती है। वाणिज्य-उद्योग जगत की प्रौढ़ समीक्षा हिंदी के पत्रों में प्रायः कम ही रहती है और उनके संपादन या शीर्षकों की ओर भी कम ध्यान दिया जाता है, हालांकि कुछ अखबारों के शीर्षक बड़े रोचक होते हैं।

व्यापार-पृष्ठ के कुछ शीर्षकों से इस संबंध में व्याप्त स्थिति का अनुमान लग सकता है—

बंबई सर्राफा
'तेज खलकर ढीला बंद'

"मूंगफली व बिनौले के तेलों में तेजी : मेवों में उछाला"

बंबई शेयर
मुनाफा वसूली से
प्रमुख शेयरों में और
कमजोरी

कलकत्ता बारदाना
टाट और बोरियों में
पर्याप्त गिरावट

नये समर्थन के अभाव में
भावों में नरमाई

सप्लाई सुगम होने पर चीनी के
भाव नरम : तेलों में सुधार

'वायदों में कमजोरी जारी :
तैयार तिलहन व तेल नीचे'

समर्थन के अभाव में शेयर
धडाम से गिरे

मंदड़ियों की कटान से
भावों में लगातार गिरावट

तेजडियो की लेवाली से
मिर्चो मे सुर्खी जारी

दिल्ली सर्राफा
दोनों धातुएं नरम

जनसाधारण के लिए इन समाचारों या शीर्षकों का विशेष महत्व नहीं होता किंतु व्यापारी वर्ग उन्ही शीर्षकों मे अपने काम की बातें निकालता है। हिंदी के पत्रो में भावों से आगे समीक्षात्मक विचार-दृष्टि कितनी होती है, यह एक पृथक् लेख का विषय है।

स्थानीय समाचार : अपना पास-पडौस सभी को आकृष्ट करता है, अतः हर समाचार-पत्र में उस नगर तथा आसपास के समाचार विस्तार से छपते हैं। सभा-सोसाइटियों, बैठको, सम्मेलनो के समाचारों पर प्रायः चालू प्रकार के शीर्षक रहते हैं। हा स्थानीय अपराध समाचारो विशेषत किसी विख्यात अपराध के मुकदमे की कार्रवाई सविस्तर रहती है। उनके शीर्षक प्रायः प्राणहीन रहते है। जैसे—

बैंक गाड़ी डकैती कांड
"मुखबिर ने बताया कि जग्गी के
चाचा ने उसे धमकी दी थी।"

एक दूसरा शीर्षक भी देखिए :

धन के गोलमाल के आरोप
मे स्कूली प्राचार्य गिरफ्तार

स्थानीय समाचारों की ओर प्रायः सभी हिंदी पत्रों की यही उपक्षा न जाने कब से चली आ रही है और कब तक चलती रहेगी ?

खेल समाचार : पहले हिंदी के समाचार-पत्रों में खेलों को पर्याप्त स्थान नहीं मिलता था किंतु पिछले दस-पंद्रह वर्षो में खेलों के समाचारों को पत्रो में नियमित रूप से स्थान मिलने लगा है। प्राय खेलों के लिए पूरा एक पृष्ठ ही रहता है, हालांकि विज्ञापन तथा अन्य समाचारों का शेषांश भी काफी स्थान ले जाता है।

खेल-समाचारों के शीर्षक देने में अपेक्षित सावधानी अवश्य देखने में आती है, जैसे —मोहम्मडन स्पोर्टिंग
मफत लाल से परास्त

शाह व गुप्ते की गेंदबाजी
पर उत्तर रेलवे
१९३ पर आउट

राजस्थान केसरी दंगल
नत्थन फाइनल में
फतह से भिड़ेगा

डी. सी. एम. फुटबाल
कांटे के मैच में ईस्ट
बंगाल विजयी

भारत ने चौथा टैस्ट
व श्रृंखला जीती

फिल्म-समीक्षा : दैनिक पत्रों में फिल्मों की समीक्षा यदा-कदा ही निकलती है, प्रायः सप्ताह में एक बार। किंतु आजकल फिल्म की समीक्षाओं की अपेक्षा उनके शीर्षक अधिक सप्राण होते हैं। जैसे—

"गुलजार की 'खुशबू' बासी फूलों की"

अथवा

" 'अपने रंग हजार' एकदम बेरंग"

इन शीर्षकों में सिने-समीक्षक ने शीर्षक के माध्यम से ही उस समूची फिल्म के विषय में एक धारणा बना दी है।

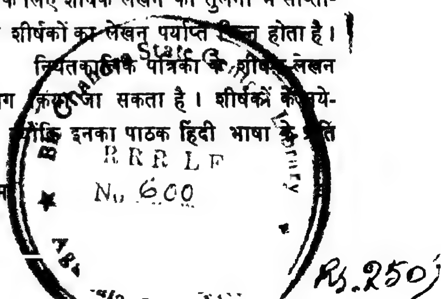
समाचारेतर शीर्षक

समाचार-पत्र में समाचारों के अलावा संपादकीय, लेख और फीचर आदि भी होते हैं। अंग्रेजी पत्रों की परंपरा यह है कि संपादकीय पृष्ठ पर जाने वाली प्रत्येक रचना का शीर्षक, चाहे वह किसी पाठक का कोई पत्र ही क्यों न हो, एकदम गुरु-गंभीर यहां तक कि नीरस ही होना चाहिए। इसी परंपरा को हिंदी के भी कई अखबार निभाते रहे हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि समाचार-पत्र की विवेचनात्मक सामग्री पर पाठकों का ध्यान बहुत कम जाता है। हिंदी के अधिकांश पाठक संपादकीय पृष्ठ की सामग्री की उपेक्षा कर देते हैं।

यह ठीक है कि विवेचनात्मक सामग्री खबर की तरह चटपटी नहीं होती लेकिन इसीलिए उसके शीर्षक अपेक्षाकृत अधिक शक्तिशाली और आकर्षक होने चाहिए। पिछले कुछ दिनों से 'नवभारत टाइम्स' के संपादकीय शीर्षकों ने जनता का ध्यान खींचा है। जैसे 'पोप कोठे पर', 'कानी का ब्याह', 'बिहार का धोबीघाट' आदि। संपादकीयो के आकर्षक शीर्षक देने की 'वीर अर्जुन' की अपनी शैली है। 'आज' और 'जागरण' के शीर्षक भी रोचक होते हैं।

विज्ञान, कृषि, अर्थ-व्यवस्था तथा तकनीकी विषयों के लेखों के शीर्षक तय करते समय एक कुशल उप-संपादक इस बात का ध्यान रखता है कि लेख की कोई ऐसी चीज उछाली जाय जो पाठकों का ध्यान बरबस खींचे। जैसे 'परखनली में बच्चा', 'गमले में खेती' आदि। इसी प्रकार बाल स्तंभ और महिला-स्तंभ के शीर्षकों में भी सरलता, कौतूहल, उपयोगिता आदि तत्वों का ध्यान रखना जरूरी है। लेखों के शीर्षक उतनी जल्दी में नहीं देने पड़ते, जितनी जल्दी में खबरों के। वे लंबे भी हो सकते हैं। अतः उन्हें काफी सोच-विचार कर दिया जा सकता है। उनमें मुहावरों, पौराणिक संदर्भों, साहित्यिक उद्धरणों तथा ताल-लय का समावेश भी किया जा सकता है। इन शीर्षकों की सजावट तथा प्रस्तुतीकरण भी पर्याप्त सुरुचिपूर्ण हो सकता है।

पत्रिकाओं के शीर्षक : दैनिक पत्रों के लिए शीर्षक लेखन की तुलना में साप्ताहिक, मासिक, त्रैमासिक आदि पत्रिकाओं के शीर्षकों का लेखन पर्याप्त [illegible] होता है। समाचार-साप्ताहिकों से लेकर किसी भी नियतकालिक पत्रिका के शीर्षक लेखन में लक्षणा-व्यंजना शक्तियों का अधिक प्रयोग किया जा सकता है। शीर्षकों के नये-नये प्रयोग इन पत्रिकाओं में संभव होते हैं, क्योंकि इनका पाठक हिंदी भाषा के प्रति



ममत्व रखने वाला ऐसा व्यक्ति होता है जिसकी हिंदी भाषा में गति होती है इसलिए वह शीर्षकों की साहित्यिकता को न केवल समझता है, अपितु सराह भी सकता है। भाषा की जो वक्रता दैनिक समाचार-पत्र के लिए हानिकर होती है, वही साहित्यिक पत्रिका की प्रेरणा होती है। रूपक, प्रतीक-योजना तथा आलंकारिकता इस दृष्टि से पत्रिकाओं के शीर्षकों में चल जाती हैं और पसंद की जाती हैं, क्योंकि इनसे पत्रिकाओं के शीर्षकों में प्राणवत्ता आती है। जैसे आजादी के बाद नेताओं के भ्रष्टाचार से संबंधित लेख का शीर्षक 'कुर्ते में भी जेब होती है' बरबस पाठक का ध्यान आकृष्ट करता है।

पत्रिकाओं में शीर्षकों के स्थान का चयन भी महत्वपूर्ण होता है। सामान्यतः शीर्षक को लेख या रचना के ऊपर ही देने की प्रथा है किंतु कुशल संपादक उसके प्रभाव को बढ़ाने के लिए शीर्षक अनेक प्रकार से देता है। ऊपर भी तीन कालमों में कभी पहले दो कालमों और कभी दूसरे तीसरे कालमों में देता है। कभी लंबा शीर्षक देकर लेख के ऊपर आमने-सामने के दोनों पृष्ठों पर शीर्षक दे दिया जाता है और उसके नीचे तीन-चार पाइंट की रूल लगा दी जाती है।

कभी शीर्षक को पृष्ठ के बीच में पूरे तीन कालमों में और कभी पहले दो कालमों या बाद के दो कालमों में दे दिया जाता है और सामने के पृष्ठ पर उसी के समानांतर रचना के संबंध में आमुख दे दिया जाता है। कभी शीर्षक साधारण रखे जाते हैं और कभी उसके चारों ओर बार्डर लगवा देते हैं। कभी-कभी रचना का शीर्षक पृष्ठ के नीचे भाग में भी दे देते हैं, लेकिन नीचे शीर्षक बहुत ही कम दिये जाते हैं और प्रायः बड़े टाइप में दिये जाते हैं ताकि समूचे पृष्ठ का चाक्षुस-संतुलन बना रहे।

पत्रिकाओं में शीर्षक प्रायः टाइप में दिये जाते हैं किंतु कभी-कभी विशेषतः विशेषांकों में शीर्षकों का अक्षरांकन कलाकार से करा लिया जाता है और उनके ब्लाक बनाकर दिये जाते है किंतु यह प्रक्रिया व्ययसाध्य होती है, अतः प्रायः अपनायी नही जाती।

शीर्षकों के टाइप : शीर्षकों की शब्दावली के साथ समान रूप से महत्वपूर्ण तत्व है, उसके लिए टाइप का चयन। शीर्षक के टाइप से ही समाचार का महत्व पाठक को प्रकट होता है। प्रायः मोटे टाइप की ओर सब से पहले ध्यान जाता है, इसलिए जितना मोटा टाइप होता है, उतना ही समाचार महत्वपूर्ण समझा जाता है। टाइप की मोटाई के अलावा टाइप का फेस भी महत्वपूर्ण होता है। सीधे बंबइया टाइप में काले फेस का अलग प्रभाव है, सफेद का अलग और इटैलिक फेस का अपना अलग ही प्रभाव है। इसी प्रकार कमला श्री या जय श्री फेसों का भी अपना ही प्रभाव होता है।

विविध टाइप : हिंदी में आठ पाइंट से लेकर १४४ पाइंट तक के टाइप सुलभ हैं। इससे बड़े पाइंट के टाइप लकड़ी के सुलभ हैं। देवनागरी के टाइपों के अनेकविध फेसों का ज्ञान कराने के लिए जहां विज्ञापन एवं दृश्य-प्रचार निदेशालय ने एक पुस्तिका निकाली है, वहां देश की विविध टाइप फाउंड्रियों से संकलित करके लगभग २०० प्रकार के टाइपों के नमूने मैंने अपने शोध-प्रबंध के मुद्रण संबंधी अध्याय में दिये हैं।

हिंदी में समाचार-पत्रों में प्रायः दस पाइंट के टाइप में समाचार रहते हैं।

इसलिए १२ पाइंट नं० १ के टाइप से शुरू होकर १४ पाइंट, १६ पाइंट, १८ पाइंट, २० पाइंट के काले-सफेद एवं अन्य प्रकार के फेसों के टाइप तो कम महत्व के समाचारों के लिए सुलभ हैं। इसके बाद २४, ३०, ३६, ४८, ५६, ६०, ७२ एवं १४४ पाइंट के अनेक फेसों के टाइप हिंदी में सुलभ हैं, जिनमें से अनेक फेसों के टाइप बहुत ही आकर्षक होते हैं। इन टाइपों में विविध प्रकार के प्रभाव पैदा करते हुए शीर्षक दिये जा सकते हैं। टाइपों का प्रयोग करते समय सब से अधिक सावधानी टाइप से उत्पन्न वांछित प्रभाव पर पूरी दृष्टि रखने की बरतनी पड़ेगी।

७२ पाइंट का या १४४ पाइंट का टाइप अधिकांशतः बैनर लाइन में दिया जाता है और यह तभी दिया जाना चाहिए जब वास्तव में समाचार उतने महत्व का हो। सब से निकट समस्या उप-संपादक के सामने उस समय उपस्थित होती है, जब समान महत्व के दो प्रमुख समाचार एक ही दिन आ जाते हैं जैसे सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रधान मंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी के मुकदमे का फैसला और बंगला देश में उथल-पुथल ही नहीं, उठा-पटक के समाचार।

१४४ पाइंट का टाइप तो प्रायः अनहोनी घटना के समय प्रयोग किया जाता है जैसे 'एवरेस्ट पर प्रथम विजय' या 'गांधीजी की हत्या'।

यह सुनिश्चित है कि सूझबूझ के साथ दिये गये सप्राण शीर्षकों-युक्त समाचार-पत्र जब समुचित पृष्ठ-सज्जा के साथ सामने आता है तो पाठक उसकी ओर आकृष्ट हुए बिना नहीं रह सकता। मुद्रण-व्यवस्था उत्तम होने पर तो ऐसा समाचार-पत्र यों उभर कर सामने आता है, मानो कहता हो कि 'हमारी ओर देखो।' •

देखने में प्रायः यही आता है कि हिंदी के समाचार-पत्रों में शीर्षक-लेखन के प्रति वांछित सजगता एवं सतर्क दृष्टि नहीं है। इसके लिए संभवतः हिंदी के पत्रों के संपादकीय विभाग के कार्यकर्त्ताओं को समुचित रूप से प्रशिक्षण भी नहीं दिया गया है। हां, पिछले कुछ वर्षों मे इस दिशा मे समाचार-पत्रों में कुछ सजगता दिखनी आरंभ हुई है अन्यथा अधिकांश पत्र 'भुस का लीपन' होते हैं। हिंदी समाचार-पत्रों के कार्यालयों मे अब भी समाचारों का अनुवाद खासा बड़ा काम है, इसके कारण समय का अभाव भी इस स्थिति में योग देने वाला एक तत्त्व है।

यदि उद्यमी उप-संपादक हो तो उसकी सजग दृष्टि हर शीर्षक देते समय पूछती है :—

—क्या शीर्षक सही है ?

—क्या इस शीर्षक से समाचार ठीक-ठीक, सशक्त रूप से और संक्षिप्त रूप में पाठक तक पहुंचता है ?

—क्या इस शीर्षक से समाचार की रोचकता बढ़ी है ?

—क्या यह सुगमता से पढ़ा जा सकता है ?

—क्या यह पाठक का ध्यान आकर्षित करता है ?

—क्या इससे पृष्ठ की सुंदरता बढ़ी है ?

जब उसे इन प्रश्नों के उत्तर 'हां' में मिलें तो वह समझता है कि उसका श्रम सफल हुआ।

संपादकीय पृष्ठ

गोस्वामी तुलसीदास ने कहा है :—

जिय बिनु देह नदी बिनु वारी ।
तैसे हि नाथ पुरुष बिनु नारी ।।

—कुछ-कुछ इसी तरह की बात समाचार-पत्र के संपादकीय पृष्ठ के लिए कही जा सकती है । जैसे बिना मेरुदंड के मनुष्य, वैसे ही बिना संपादकीय पृष्ठ के समाचार-पत्र । संपादकीय पृष्ठ न केवल संपादक के व्यक्तित्व का द्योतक होता है, प्रत्युत समस्त समाचारपत्र के व्यक्तित्व की झाकी प्रस्तुत करता है । कुछ पत्र केवल समाचारों को महत्व देते हैं, अग्रलेख या संपादकीय पृष्ठ को नही । नि.संदेह समाचार-पत्र में सर्वाधिक महत्व समाचारों का होता है और इसीलिए सब समाचार-पत्रों में ताजा से ताजा और अधिक से अधिक समाचार देने की होड लगी रहती है । समाचार जुटाने के लिए समाचारदाताओं, संवाददाताओं, विशेष संवाददाताओं और प्रतिनिधियों की भरमार रहती है और इन पर भरपूर व्यय भी किया जाता है । पर किसी भी समाचार-पत्र के व्यक्तित्व का निर्माण केवल समाचारों के आधार पर नही होता । उसका निर्माण होता है मुख्यतः संपादकीय पृष्ठ से । संपादकीय पृष्ठ पत्र की अंतरात्मा है, वह उसकी अंतरात्मा की आवाज है । इसलिए कोई बड़ा समाचार-पत्र बिना संपादकीय पृष्ठ के नहीं निकलता ।

पत्र के व्यक्तित्व का बोध

पाठक प्रत्येक समाचार-पत्र का अलग व्यक्तित्व देखना चाहता है—उसमें कुछ ऐसी विशेषता देखना चाहता है जो उसे अन्य समाचार-पत्र से अलग करती हो, जिस विशेषता के आधार पर वह उस पत्र की पहचान नियत कर सके । यह विशेषता समाचार-पत्र के विचारों में, उसके दृष्टिकोण में प्रतिलक्षित होती है, किंतु बिना संपादकीय पृष्ठ के समाचार-पत्र के विचारों का पता नहीं लगता । यदि समाचार-पत्र के कुछ विशिष्ट विचार हों, उन विचारों में दृढ़ता हो और बारंबार उन्हीं विचारों का समर्थन

हो तो पाठक उन विचारों से असहमत होते हुए भी उस समाचार-पत्र का मन में आदर करता है। मेरुदंडहीन व्यक्ति को कौन पूछेगा ?

किसी-किसी समाचार-पत्र का संपादकीय पृष्ठ इतना नीरस होता है कि उसे पढ़ना भी एक सजा जैसा लगता है। संपादकीय पृष्ठ की नीरसता संपादक के व्यक्तित्व की नीरसता की निशानी है, क्योंकि वह संपादक का अपना निजी पृष्ठ समझा जाता है। इसमें शक नहीं कि जितनी उत्सुकता से और जितनी अधिक संख्या में लोग समाचारों को पढ़ते हैं उतनी उत्सुकता से और उतनी अधिक संख्या में संपादकीय पृष्ठ या अग्रलेख को नही पढ़ते। पर जितने भी सुशिक्षित और प्रबुद्ध पाठक होते हैं उन सबकी प्रत्येक विषय में अपनी कुछ राय होती है, अपने कुछ विचार होते हैं और वे संपादक की राय जानना चाहते हैं। संपादकीय पृष्ठ का एक ही लक्ष्य है—वह यह कि सामान्य पाठकों से अधिक प्रबुद्ध पाठकों को वह अपनी विशिष्ट सुविचारित पाठ्य सामग्री से प्रभावित करे। केवल खबरें छापने से और उन खबरों के संबंध में अपनी ओर से कोई टिप्पणी या कोई विचार न देने से सुविज्ञ पाठकों की दृष्टि में पत्र का महत्व घट जाता है।

सामान्य नागरिक के पास समयाभाव रहता है, इसलिए संपादक अपने पाठको के लिए घटनाओं की पृष्ठभूमि प्रस्तुत करता है, जो तथ्य स्पष्ट नही है उनको स्पष्ट करके उभारता है और खबरों का मूल्यांकन करता है। समझदार पाठक यही चाहता है। इस परिवर्तनशील संसार में घटनाओं का प्रवाह इतना तीव्र होता है कि पाठक उनका तारतम्य स्मरण नही रख पाता। समय-समय पर आनेवाली खबरों को जोड़ कर पाठक अपने मन में कोई एक चित्र नही बना पाता, क्योंकि या तो वह उस विषय में बहुत कम जानता है या उसे सारे तथ्य याद नही रहते। बड़ी-बड़ी राज-नीतिक घटनाओं में कार्य-कारण संबंध स्थापित करना उसके वश की बात नही होती, न ही वह पूर्वापर प्रसंगों की शृंखला जोड पाता है। संपादक अपनी विचारपूर्ण टिप्पणियों से और शातचित्त रह कर किये गये विश्लेषण से घटनाओं को सही परि-प्रेक्ष्य में समझने की सामर्थ्य पाठक को देता है। सब घटनाओं का एक समन्वित और समझ में आने योग्य चित्र उपस्थित करने के लिए कल, परसों, सप्ताह-भर पहले और उससे भी पहले क्या-क्या घटित हुआ और क्या घटित हो सकता था या भविष्य में क्या-क्या घटित होना संभव है— यह सब बताना संपादक का काम है। एक वाक्य में कहना हो तो कह सकते हैं कि प्रतिक्षण परिवर्तनशील वर्तमान को स्पष्ट करना और भविष्य को बुद्धिमत्तापूर्वक इंगित करना संपादक का काम है। और यह सब काम वह संपादकीय पृष्ठ के माध्यम से ही कर सकता है। इसीलिए उस पृष्ठ का इतना महत्व है।

संपादकीय पृष्ठ मे क्या होता है ?

संपादकीय पृष्ठ में केवल अग्रलेख नहीं होता। उसमें पाठकों के पत्र होते हैं, विशिष्ट स्तंभलेखकों और राजनीतिक समीक्षकों के लेख होते है, विभिन्न पत्र-पत्रि-काओं के लेखों के सार-संक्षेप और संक्षिप्त उद्धरण होते है और कभी-कभी कुछ

गवेषणापूर्ण लेख भी होते हैं। स्थानीय या राष्ट्रीय हितों के संबंध में संपादकीय विभाग के सदस्यों द्वारा तैयार किये गये लेख भी होते हैं।

संपादकीय पृष्ठ के वैविध्य को बनाये रखने के लिए हरेक बड़े समाचार-पत्र ने कुछ अपनी अलग परंपराएं कायम कर रखी हैं। जैसे, कुछ पत्र विभिन्न राज्यों की गतिविधियों से संबद्ध 'अमुक राज्य की चिट्ठी' के रूप में अपने संवाददाताओं द्वारा भेजी गयी उस राज्य की गतिविधियों की रिपोर्ट प्रकाशित करते हैं। ये चिट्ठियां केवल भारत के राज्यों के संबंध में नहीं, अपितु, नेपाल, बर्मा, पाकिस्तान, श्रीलंका जैसे पड़ौसी देशों के संबंध में भी होती हैं। मारीशस, फीजी, थाईलैंड, जापान, हांग-कांग, इंडोनेशिया और इनके अलावा सुदूर मास्को, लंदन, वाशिंगटन तक की सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक गतिविधियों की सूचना देने वाली चिट्ठियां हिंदी के पत्रों में छपती हैं। इस विषय में वाराणसी के 'आज' ने जितने व्यापक क्षेत्रों को समाविष्ट किया है, उतना कदाचित् भारत के किसी अन्य भाषा के पत्र ने नहीं किया।

कुछ पत्रों ने एक अन्य ढंग का विभाजन कर रखा है। सप्ताह में छह दिन के लिए (सातवें दिन तो प्रायः रविवासरीय संस्करण निकलते हैं) उन्होंने हरेक दिन के अलग-अलग विषय नियत कर रखे है। एक दिन कृषि के संबंध में लेख जायगा, तो दूसरे दिन विज्ञान के संबंध में, तीसरे दिन स्वास्थ्य के संबंध में, चौथे दिन शिक्षा और संस्कृति के संबंध में आदि। ('नवभारत टाइम्स', दिल्ली ने इस विभाजन का अच्छा निर्वाह किया है।) राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं के संबंध में भी अमूमन संपादकीय पृष्ठ पर लेख आते रहते हैं। अक्सर देखने में आया है कि अंग्रेजी के समाचार-पत्रों में जहां अंतर्राष्ट्रीय विषयों पर अधिक जोर दिया जाता है, वहां भाषायी पत्रों में राष्ट्रीय विषयों पर। तात्कालिक और स्थानीय समस्याओं पर प्रकाश डालने वाले लेखों का अभाव कभी-कभी अखरता है। शायद इसका कारण यह हो कि बड़े पत्रों के बड़े संपादकों को हवा में उड़ने की इतनी आदत हो जाती है कि उन्हें धरती की या अपनी नाक तले की चीज नजर नहीं आती, या अंतर्राष्ट्रीयता क चक्कर में उन्हें स्थानीय समस्या महत्वहीन प्रतीत होती है।

व्यंग्य-विनोदात्मक स्तंभ

संपादकीय पृष्ठ के प्रति जनता की रुचि जागृत करने के लिए प्रायः हिंदी के पत्र उसी पृष्ठ पर एक हास्य-व्यंग्य का विनोदात्मक ढंग से लिखा स्तंभ प्रकाशित करने लगे हैं। सार्वजनिक न होने पर भी यह परंपरा उसी तरह वृद्धि पर है जैसे कवि-सम्मेलनों में हास्य-रस की कविताओं का पाठ। इससे संपादकीय पृष्ठ की नीरसता को कम करने में सहायता मिलती है। ऐसे स्तंभ के पाठकों की संख्या अग्रलेख के पाठकों की संख्या से अधिक होती है, क्योंकि इस में बात ऐसे ढंग से कही जाती है कि बुद्धि पर जोर नहीं पड़ता। जिस चीज के पढ़ने से बुद्धि पर जितना अधिक जोर पड़ता है, पाठक उससे उतना ही अधिक बिदकता है।

• यद्यपि 'चौबेजी का चिट्ठा' या 'भंग की तरंग में' की यह परंपरा काफी पुरानी है, पर तीस-चालीस साल पहले तक इस प्रकार के स्तंभ की आवश्यकता केवल

मासिक पत्रिकाओं में ही समझी जाती थी। शायद दैनिक पत्रों में इस प्रकार के स्तंभ की शुरुआत पं० इंद्र विद्यावाचस्पति ने 'अर्जुन' में 'गांडीव के तीर' और 'नारद की वीणा' से की थी। अब तो ऐसा लगता है कि जिन पत्रों में इस प्रकार का स्तंभ नहीं होता वे लोकप्रियता में एक सीढ़ी नीचे ही रह जाते हैं।

जब तक ऐसे स्तंभों के लेखन का उत्तरदायित्व किसी एक लेखक पर न हो तब तक उनमें एकरूपता संभव नहीं है, फिर भी ऐसे स्तंभों की लोकप्रियता का प्रमाण यह है कि जिस किसी पत्र में भी ऐसा स्तंभ होता है उस पत्र मे वही स्तंभ सब से अधिक पढ़ा जाता है। 'हिंदुस्तान' में 'यत्र तत्र सर्वत्र', 'अधिकार' में 'येन केन प्रकारेण', 'आज' में 'चलती चक्की', 'आर्यावर्त' में 'चटपटानंद की चिट्ठी', 'स्वतंत्र भारत' में 'कांव-कांव', 'नई दुनिया' में 'सुनो भाई साधो', 'जागरण' (झांसी) मे 'मन की मौज', 'नवभारत' (नागपुर) में 'फूल और कांटे', 'विश्वमित्र' (बंबई-कलकत्ता) में 'चलते-चलते' और 'रमता योगी', 'राष्ट्रदूत' में 'कंटीले फूल' और 'विविध वार्ता', 'सन्मार्ग' में 'दांवपेच' आदि की लोकप्रियता इसका प्रमाण है।

इस प्रकार के स्तंभ में प्रायः दैनिक घटनाओं की व्यंग्यपूर्ण चर्चा होती है। उसमें राजनीतिक चर्चा के साथ साहित्यिक पुट भी रहता है। एक तरह से वह साहित्यिक रचना की ही कोटि में आता है। यद्यपि सामयिक घटना पर आधारित होने के कारण उसमें उतना स्थायित्व नहीं होता। इस प्रकार के कुछ स्तंभों मे नेताओं की उक्तियों या वक्तव्यों के किन्ही अंशों या फुटकर छोटी खबरों पर एक-दो वाक्य मे ही चुटकी ली जाती है। पाठक को तो उसमें रस आएगा ही।

इस प्रकार के स्तंभों का लेखन उतना आसान नहीं होता, जितना समझा जाता है। फिर रोज-रोज लिखना तो और भी मुश्किल होता है। और जब किसी एक ही व्यक्ति को यह काम रोज करना पड़े तो पाठक को भले ही उसमें आनंद आये, पर लेखक के लिए तो वह निरा निरानंद का विषय रहता है—ठीक वैसे ही जैसे भोजन में उपस्थित षड्रस व्यंजनों के उपभोग में खानेवाले को तो आनंद आ सकता है, पर रसोइये के लिए तो वह श्रम-साध्य ही होता है। यह भी संभव है कि जिस व्यक्ति को समाचार-पत्र के कार्यालय में इस प्रकार का स्तंभ लिखने का काम सौंपा जाता है उसे कार्यालय संबंधी अन्य कामों का दायित्व भी निभाना पडता हो और जब अन्य काम मे वह थक कर चूर हो जाय तब उसे पाठकों के मनोरंजनार्थ यह 'स्पेशल डिश' या चटपटी चाट तैयार करनी पड़ती हो। ऐसा करने के लिए लेखक को इन स्तंभों में कभी-कभी व्यर्थ की 'लफ्फाजी' या 'बकवास' मात्र का सहारा लेना पड़ता है। पाठक इससे संतुष्ट नहीं होता, उसे लेखक की मनोदशा से क्या मतलब। उसे तो रोज मेज पर गरमागरम, ताजा और स्वादिष्ट भोजन चाहिए।

यह कैसी वीर पूजा

हिंदी पत्रों के संपादकीय पृष्ठ की एक और विशेषता भी है, जो अंग्रेजी के समाचार-पत्रों में दिखायी नही देती। भारत उत्सव और वीर-पूजा मे आस्था रखने वाला देश है। भारत में न उत्सवों और पर्वों की कमी है न वीर नायकों की। हिंदी

पत्रों में जहां इन पर्वों पर संपादकीय पृष्ठ पर लेख जाते रहते है, वहां वीर-पूजा संबंधी भी। जब से राजनीति सर्वव्यापक हो गयी है, तब से राजनीतिज्ञों की सर्व-शक्तिमान् देवता की तरह पूजा करना भी आवश्यक समझा जाने लगा है। कस्बों के छोटे पत्र तो अपनी इस 'प्रवृत्ति' के लिए बदनाम हैं ही, अखिल भारतीय स्तर के बड़े पत्र भी आये दिन इस या उस मंत्री की प्रशस्ति में सचित्र लेख, या उसके साथ साक्षात्कार, या उसके जन्मदिवस पर उसके संबंध में विशेष लेख स्वयं लिखाकर या लिखवाकर प्रकाशित करते है। यह अच्छी पत्रकारिता नही कहलाती। पत्रकारिता और भटैती पर्यायवाची नहीं है।

कुछ समाचार-पत्र संपादकीय पृष्ठ पर पुस्तक-समीक्षा भी सप्ताह मे एक बार देते है। इंदौर के 'नई दुनिया' पत्र ने संपादकीय पृष्ठ पर 'विविधा' नामक एक स्तंभ प्रारंभ किया है, जिसमे इधर-उधर मे प्रकाशित या अप्रकाशित ऐसी सामग्री संकलित की जाती है जो ज्ञानवर्धक होने के साथ रुचिवर्धक भी हो। अंग्रेजी के समाचार-पत्र 'हिंदुस्तान टाइम्स' मे प्रति दूसरे दिन प्रकाशित होने वाला 'जंतर मंतर' या रविवासरीय संस्करण में प्रकाशित होने वाला 'डायवर्सिटीज' स्तंभ कुछ-कुछ इसी प्रकार का होता है।

कुछ समाचार-पत्र संपादकीय पृष्ठ पर व्यंग्य-चित्र भी देते है, जैसे लखनऊ का 'स्वतंत्र भारत'। किसी सीमा तक ये व्यंग्य-चित्र उस पृष्ठ पर व्यंग्य-विनोद के स्तंभ के अभाव को अखरने नही देते।

संपादक के नाम पत्र

इस पृष्ठ का सब से अधिक महत्वपूर्ण स्तंभ 'संपादक के नाम पत्र' होता है। प्राय: प्रत्येक समाचार-पत्र ने इस स्तंभ के नाम अलग-अलग रखे हुए हैं। 'लोकवाणी' ('हिंदुस्तान', दिल्ली), 'जनवाणी' ('राष्ट्रदूत', जयपुर), 'आपने लिखा है' (आर्यावर्त्त, पटना), 'नजर अपनी-अपनी' ('नवभारत टाइम्स'), 'जनता की आवाज' ('विश्वमित्र बंबई), आदि। पर सबका अभिप्राय एक ही है! जितने पाठक 'संपादक के नाम पत्र' स्तंभ के होते है, उतने अग्रलेख के नही होते। कारण यह है कि अग्रलेख केवल किसी एक व्यक्ति के विचारों का, संपादक या संपादकीय मंडल के विचारों का प्रतिनिधित्व करता है, जबकि यह स्तंभ जनता के विचारों का प्रतिनिधित्व करता है। जनता के द्वारा लिखे गये संपादक के नाम ये छोटे-छोटे पत्र एक तरह से जनता के अग्रलेख होते हैं।

इस स्तंभ की एक और विशेषता होती है। पाठक अधिक ईमानदारी से लिख सकता है। यह स्तंभ एक खुला जनमंच होता है जो जनतंत्र का सब से बढ़िया माध्यम है। स्वतंत्र देश के नागरिक प्रत्येक विषय में अपनी राय दें, यह अच्छी बात है, और स्वतंत्र जनतंत्र के विकास के लिए उपयोगी भी है। स्तंभ मे सरकार को यह पता चलता रहता है कि अमुक कदम की जनता पर क्या प्रतिक्रिया हुई है, जो सही नीति-निर्धारण मे सहायक होता है। फिर समाचार-पत्र के अन्य स्थान तो नेताओं के भाषणों या अन्य समाचारों से भरे रहते हैं, ले-देकर यही एक स्तंभ जन-सामान्य के लिए बचता है। इस स्तंभ में पत्र-लेखक अपने मन की बात कह सकता है। वह अशिक्षित जनता

के विचारों को भी प्रकाश में ला सकता है। इसलिए 'संपादक के नाम पत्र' का लेखक आदर का पात्र है, उपेक्षा का नहीं।

पत्र कौन लिखते हैं ?

यह पत्र-लेखक कौन है ? जो लोग आपसे सहमत होते हैं, वे सामान्यतः पत्र कम लिखते हैं। जो असहमत होते हैं, अधिकतर वे ही पत्र लिखते हैं। इसलिए उन पत्रों को छापने की संपादक की एक नैतिक जिम्मेदारी होती है। चूंकि पत्र-लेखक के विचार संपादक से भिन्न होते हैं, इसलिए उन्हें प्रकाशित करने के लिए मानसिक साहस की आवश्यकता होती है। कुछ समाचार-पत्र इतने उदार नहीं होते। वे सदा अपने मंतव्य के समर्थक पत्र ही छापते हैं। खास तौर से दलीय पत्र इस रोग से अधिक ग्रस्त होते हैं। समाचार-पत्र की गरिमा इस बात में है कि वह निष्पक्ष रहे और मानवीय दृष्टि से जितना संभव हो निष्पक्ष रह कर अपने मंतव्य के कटु आलोचकों के पत्रों को भी प्रकाशित करे। हां, पत्रों की भाषा में शिष्टता और शालीनता का ध्यान तो होना ही चाहिए।

जब तक अग्रलेख निर्जीव होंगे, तब तक संपादकीय पृष्ठ भी निर्जीव रहेगा और निर्जीव संपादकीय पृष्ठ में 'संपादक के नाम पत्र' वाला स्तंभ कभी सजीव नहीं हो सकता। कभी-कभी इस स्तंभ को जीवंत बनाने के लिए संपादकीय विभाग के लोग ही किसी ऐसे विषय पर अपनी ओर से चर्चा का श्रीगणेश करते हैं जिस पर जनता का ध्यान तुरंत जाता है और पक्ष-विपक्ष में पत्र आने शुरू हो जाते है।

पाठकों के ये पत्र अधिकतर किन विषयों पर होते हैं ? प्रायः संपादकीय नीति के पक्ष या विपक्ष में ही सामान्य जन अपने विचार प्रकट करते हैं। जो पत्र इस स्तंभ में प्रकाशित होते हैं उनके समर्थन या विरोध में भी पाठकों के पत्र आते हैं। समाचार-पत्र में प्रकाशित लेखों के बारे में भी पत्र आते हैं। अनेक बार किसी सामान्य या असामान्य समाचार के संबंध में पाठक अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं। कभी-कभी किसी दार्शनिक या साहित्यिक विषय पर भी इसी स्तंभ में वाद-विवाद चलता है : जैसे, मनुष्य को शांति कैसे मिल सकती है ? क्या रावण के दस सिर थे ? तुलसीदासजी का जन्म-स्थान कौन-सा है—राजापुर, सोरों, चित्रकूट या वाराणसी ? रामचरितमानस के विभिन्न पाठों की एकरूपता की समस्या, हिंदी की वर्तनी की समस्या, आदि-आदि।

शिकायती पत्र

हिंदी के समाचार-पत्रों में सब से अधिक पत्र होते हैं—व्यक्तिगत शिकायतों के। इससे हिंदी-भाषी समाज की आर्थिक और सामाजिक दशा का भी अपने आप बोध हो जाता है। अन्य प्रादेशिक भाषाएं बोलनेवाले लोगों की भी स्थिति संभवतः हिंदी-भाषी समाज से बेहतर नहीं है, पर अंग्रेजी भाषा के समाचार-पत्रों में व्यक्तिगत शिकायतों के पत्रों की न्यूनता इस बात का संकेत तो है ही कि भारत का आंग्ल भाषा-भाषी समाज उतना अभावग्रस्त, शोषित और पीड़ित नहीं है, जितना गैर-आंग्ल भाषा-भाषी समाज है। ये व्यक्तिगत शिकायतें भी बड़ी विविध ढंग की होती हैं—कहीं किसी को भविष्य-

निधि का पैसा नहीं मिला, विधवा को उसके स्वर्गीय पति की पेंशन नहीं मिली, डाकखाने से मनीआर्डर गायब हो गया, विद्यार्थी को उसका परीक्षा-परिणाम या रोल नंबर नहीं मिला, किसी डाकखाने में लिफाफे या पोस्टकार्ड ही खत्म हो गये, कोई अध्यापक या नगर निगम का चतुर्थ श्रेणी का कर्मचारी तीन मास मे वेतन न मिलने से परेशान है, कहीं बस-सर्विस ठीक नहीं है, कही यात्रियों से कंडक्टर के दुर्व्यवहार की शिकायत है, कहीं दिल्ली दुग्ध-योजना के अंतर्गत बने दुग्धकेंद्रों पर अव्यवस्था की शिकायत है, कही सड़कें टूटी होने, और नालियों की सफाई न होने की शिकायत है। ऊपर की मंजिल पर पानी न चढ़ने और चाहे जब बिजली गुल हो जाने की शिकायत तो आम है। यातायात-नियमों के उल्लंघन और पुलिस की ज्यादती की शिकायत भी आम है, कहीं किसी सरकारी विभाग की धांधली की शिकायत है, कहीं किसी सरकारी अफसर की रिश्वत और भ्रष्टाचार की शिकायत है, रेलों में कुलियों और आरक्षण संबंधी शिकायतों की भी कमी नहीं होती—इस प्रकार दैनिक जीवन में सामान्य नागरिक को जिन-जिन परेशानियों से गुजरना पड़ता है उन सबकी शिकायत वह पत्र लिखकर अखबार में छपवाना चाहता है।

प्रश्न यह है कि अखबार में छपे इन शिकायती पत्रों का कुछ प्रभाव भी होता है या नहीं ? इसका उत्तर यह है कि जो समाचार-पत्र जितना अधिक प्रतिष्ठित होता है और जिसका जितना अधिक प्रसार होता है उसमें छपे पत्र का उतने ही बड़े पैमाने पर असर होता है। शायद छोटे-मोटे अखबारों में प्रकाशित शिकायती-पत्रों का उतना असर नहीं भी हो। इसीलिए बड़े अखबारों के कार्यालयों में संपादक के नाम भेजे गये शिकायती पत्रों की भरमार रहती है। कभी-कभी पाठक किसी सरकारी अधिकारी को, थानेदार को, मंत्री को, प्रधानमंत्री को या राष्ट्रपति को भेजे गये अपने व्यक्तिगत शिकायती-पत्र की प्रतिलिपि संपादक के पास भेजते हैं, परंतु कोई संपादक इन प्रतिलिपिवाले पत्रों को छापना पसंद नहीं करता।

कभी-कभी इस स्तंभ में व्यक्तिगत राग-द्वेष से प्रेरित पत्र भी छप जाते है। किसी बनावटी नाम से या किसी अन्य व्यक्ति के नाम से भी पत्र भेजने मे लोग नहीं चूकते और कभी-कभी ऐसे पत्र छप भी जाते हैं। पर इसमें संपादक का कोई दोष नहीं होता, क्योंकि पाठक से अपरिचित होने या दूरस्थ होने के कारण संपादक पाठक की ईमानदारी की परख नही कर सकता। वह अपनी सहज उदारता या नैतिक जिम्मेदारी की भावना से उस पत्र को प्रकाशित कर देता है। जब अदालत की मार्फत उसे किसी व्यक्ति की मानहानि का नोटिस मिलता है तो पेशियां भुगताने में परेशान उसी को होना पडता है, क्योंकि कानून की दृष्टि से पत्र का लेखक उस मानहानि के मामले की पकड में नहीं आता, पर उस पत्र को प्रकाशित करके जनता के समक्ष लाने वाला संपादक कानून के शिकंजे से नहीं बच पाता। इससे यह भी स्पष्ट है कि इस स्तंभ का संपादन करने वाले व्यक्ति को कितनी अधिक जिम्मेदारी होती है।

समाचार-पत्र मूल रूप से जनता-जनार्दन की सेवा के लिए है, इसलिए होना तो यह चाहिए कि शिकायती पत्र प्राप्त होने पर उसकी प्रतिलिपि संपादक की ओर से उस संबद्ध अधिकारी को भेजी जाय जिसके विरुद्ध शिकायत की गयी है, फिर उसका

जो उत्तर आये उस उत्तर के साथ वह शिकायती पत्र अखबार में प्रकाशित किया जाय, परंतु समाचार-पत्र कार्यालय का काम इससे बहुत बढ़ जायगा। अंग्रेजी का 'स्टेट्समैन' कुछ अर्से से इस प्रकार की परंपरा चला रहा है, परंतु हिंदी के किसी समाचार-पत्र द्वारा अभी तक इस प्रकार की किसी नियमित कार्रवाई की सूचना देखने-सुनने में नहीं आयी।

ये शिकायती पत्र स्वयं पत्र-लेखक व्यक्ति की दृष्टि में जितने महत्वपूर्ण होते हैं उतने महत्वपूर्ण अन्य पाठकों की दृष्टि में नहीं होते। यदि संपादक के नाम पत्र वाले स्तंभ में ऐसे शिकायती-पत्रों की ही भरमार हो तो अन्य पाठक 'बोर' हो सकते हैं और स्तंभ का स्तर भी गिरता है, परंतु इन शिकायती पत्रों से सर्वथा किनारा कर लेना भी उचित नहीं होगा। इसलिए अच्छा यह है कि सप्ताह में एक या दो दिन निश्चित कर दिये जायं जब इस स्तंभ में केवल शिकायती पत्र ही प्रकाशित हों और शेष अन्य दिनों में शिकायती पत्र न देकर ऐसे पत्र प्रकाशित किये जायं जो अधिक से अधिक जनता की विविध समस्याओं को समाविष्ट करने वाले हों या विचारोत्तेजक हों और जिनमें बुद्धिजीवी लोग भी रुचि ले सकें।

कभी-कभी किसी पत्र के संबंध में संपादक की पाद-टिप्पणी आवश्यक होती है जिसमें संपादक की ओर से किसी प्रश्न का उत्तर या सफाई दी गयी होती है। कभी ऐसा अवसर भी आता है जब संपादक को किसी पत्र के प्रकाशन के लिए खेद-प्रकाश करना पड़ जाता है। वह स्थिति निस्संदेह प्रिय नहीं होती। पर इससे घबराना क्यों? जनसेवा की यह भी एक अनिवार्यता है। जब कभी ऐसा करना जरूरी हो तब शालीनता और विनम्रता के साथ खेद-प्रकाश में भी संकोच नहीं करना चाहिए। सार्वजनिक रूप से जिन पत्रों का जवाब देना जरूरी हो, वह भी दिया ही जाना चाहिए।

कभी-कभी 'संपादक के नाम पत्र' स्तंभ में बारंबार एक ही विषय के पक्ष-विपक्ष में पत्रों के प्रकाशन से वह विषय जनता में आंदोलन का रूप ग्रहण कर लेता है। वह आदोलन उग्र भी हो सकता है। यह जरूरी नहीं है कि वह आंदोलन समाचार-पत्र के दृष्टिकोण के समर्थन में ही हो। जनता प्राय: भावुक अधिक होती है, तर्कशील कम। इसलिए आंदोलन के अवांछनीय रूप ग्रहण करने की संभावना उपस्थित होते ही उस प्रकार के पत्रों का प्रकाशन बंद कर दिया जाना चाहिए। इस संबंध में यहा एक उदाहरण याद आ रहा है। 'हिंदुस्तान' के रविवासरीय संस्करण में कुछ वर्ष पहले 'वंदे मातरम्' गीत के प्रणेता और भारतीय साहित्य में नवयुग के सूत्रधार साहित्य-राजर्षि स्व० श्री बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय की रामायण के संबंध में एक व्यंग्य-प्रधान रम्य रचना छपी। स्वयं 'हिंदुस्तान' ने ही अपने लोकवाणी स्तंभ में उस रचना के पक्ष-विपक्ष में पत्र देने प्रारंभ किये। धीरे-धीरे आंदोलन इतना तूल पकड़ गया कि उसने साहित्यिक स्तर से हटकर राजनीतिक रूप ग्रहण कर लिया। उस समय दिल्ली में जनसंघ का प्रशासन था। प्रशासन भी भावना की रौ में बह गया। बड़ी कठिनाई से वह मामला शांत हो सका। इसी प्रकार विश्व हिंदी सम्मेलन को लेकर 'नवभारत टाइम्स' में छपे एक संपादकीय 'हिंदी मेला : आगे क्या ?' को लेकर सम्मेलन के एक कार्यकर्ता ने उसके विरुद्ध जब एक पत्र आग्रहपूर्वक छपवा दिया तो उस पत्र के विरुद्ध

सैकड़ों पाठकों ने इतने आक्रोशपूर्ण पत्र लिखे कि उस विषय को तुरंत विश्राम देना पड़ा। कहने का भाव इतना ही है कि 'संपादक के नाम पत्र' स्तंभ में किसी वाद-विवाद को प्रारंभ करना तो समाचार-पत्र की लोकप्रियता में सहायक हो सकता है, पर उस वाद-विवाद को किस स्तर तक लाकर समाप्त कर देना चाहिए, यह जानना अत्यंत आवश्यक है।

संपादकीय लेख (अग्रलेख)

अब हम आते हैं संपादकीय लेख (या अग्रलेख) पर। यह संपादकीय पृष्ठ का सब से महत्वपूर्ण अंग है जिसके साथ संपादक का सीधा संबंध है। यों तो समाचार-पत्र में जो कुछ छपता है उस सभी के लिए संपादक जिम्मेदार होता है, पर संपादकीय लेख तो अक्षरशः संपादक और समाचार-पत्र के विचारों तथा नीति का दर्पण होता है। यह संभव है कि अमुक संपादकीय लेख स्वयं संपादक की कलम से न निकला हो। अब वह जमाना लद गया जब हिंदी पत्रों में संपादक का अर्थ होता था ऐसा लिक्खाड़ व्यक्ति जो प्रतिदिन एक या दो अग्रलेख नियमित रूप से लिखता हो। आधुनिक युग का संपादक सप्ताह में (या महीने में) एक अग्रलेख भी लिख दे तो उसके संपादकत्व में कमी नहीं आती। सभी बड़े पत्रों में अग्रलेख लिखने के लिए एकाधिक व्यक्ति सह-संपादक के रूप में नियुक्त रहते हैं। इतना अवश्य है कि वे संपादक के परामर्श के बिना कभी कुछ नहीं लिखते, क्योंकि वे जो कुछ भी लिखते हैं उसके लिए जिम्मेवार संपादक ही समझा जाता है, समाचार-पत्रों के कार्यालय में अग्रलेख-लेखन बहुत गौरव-पूर्ण कार्य समझा जाता है, इसलिए कभी किसी नौसिखिये को यह काम नहीं दिया जाता—कार्यालय के वरिष्ठतम व्यक्ति ही इस काम के उपयुक्त समझे जाते हैं।

क्षुरस्य धारा

संपादक (या अग्रलेख-लेखक) के समक्ष बड़ी विषम परिस्थिति होती है। प्रत्येक राष्ट्र में दो वर्ग होते हैं—एक शासक और दूसरा शासित। संपादक मुख्य रूप से जनता के प्रति उत्तरदायी होता है। सरकारें बदल सकती हैं, पर जनता नहीं बदलती। शासन की प्रणाली चाहे कोई भी क्यों न हो, सरकार को जनता पर शासन करने के लिए कुछ कायदे-कानून बनाने पड़ते हैं। यह ठीक है कि जनतंत्र में जनता के प्रतिनिधि ही संविधान का निर्माण करते हैं और जनता के प्रतिनिधि ही विधान-सभाओं में या लोकसभा में जाते हैं और जनता के प्रतिनिधि ही मंत्री आदि चुने जाते हैं, पर जो भी कायदे-कानून बने हैं वे संविधान के अनुकूल हैं या नहीं, स्वयं सरकारी अधिकारी भी उनका पालन करते हैं या नहीं, चुनावों में निष्पक्षता बरती जाती है या नहीं, कहीं प्रच्छन्न रूप से व्यक्तिगत स्वार्थों की खातिर किसी स्तर पर भ्रष्टाचार को प्रश्रय तो नहीं दिया जाता—इत्यादि बातों के निर्णय के लिए न्यायालय है, या उन्हें सबके सामने लाने के लिए समाचार-पत्र हैं। जनतंत्र में अभिव्यक्ति के स्वातंत्र्य का महत्व सब से अधिक है और अभिव्यक्ति के स्वातंत्र्य का अर्थ है—प्रेस की स्वाधीनता। समाचार-पत्र ही जनता के न्यायालय हैं जिनके द्वार जनता-जनार्दन के लिए सदा खुले रहने चाहिए।

थामस जैफर्सन ने अमेरिका के राष्ट्रपति वाशिंगटन को एक बार लिखा था—"कोई भी सरकार बिना अंकुश (सेंसर) के नहीं होनी चाहिए और जब तक प्रेस स्वाधीन है तब तक कोई सरकार बिना अंकुश के रहेगी भी नहीं।" इसका अभिप्राय यह हुआ कि सरकार जनता पर अंकुश लगाती है और समाचार-पत्र सरकार पर अंकुश का काम करते हैं।

जहां समाचार-पत्रों का इतना महत्व है वहां उनका नैतिक कर्तव्य भी अत्यंत महान है। बड़े समाचार-पत्र बिना पूंजी के नहीं निकल सकते। पूंजी अर्थात् पूंजीपति। पूंजीपति अर्थात् आर्थिक नियंत्रण और निहित स्वार्थ। भारत के प्राय: सभी बड़े अखबार पूंजीपतियों से संबद्ध हैं। जब देश से गरीबी हटाने के लिए, या पिछड़े वर्गों को उन्नति के समान अवसर प्रदान करने के लिए, या अत्यधिक आर्थिक विषमता को दूर करने के लिए सरकार कुछ अंकुश लगाती है, तब निहित स्वार्थों का बौखलाना भी स्वाभाविक है। ऐसे समय संपादक की बड़ी कड़ी परीक्षा होती है। वह सरकार का पक्ष ले, या अपने मालिकों का पक्ष ले, या जनता-जनार्दन का पक्ष ले? जनता तो बेचारी निरीह है, वह तो पूंजीपति और सरकार दोनों के शोषण का समान रूप से शिकार होती है। जनता के मन में संपादक की तस्वीर ऐसी है कि वह समझती है कि जब और कहीं सुनवायी नहीं होगी तब यहां तो होगी ही। संपादक इस प्रकार तीन ओर के दबावों से घिरा होता है—किसी एक का पक्ष लेता है तो बाकी दोनों पक्ष उससे नाराज होते हैं। इस परीक्षा में उत्तीर्ण होना आसान नहीं। संस्कृत के कवि ने कहा है :

नरपति हितकर्ता द्वेष्यतां याति लोके
जनपदहितकर्ता त्यज्यते पार्थिवेन्द्रैः।
इति महति विरोधे वर्तमाने समाने
नृपतिजनपदाना दुर्लभः कार्यकर्ता ॥

—अर्थात्, "जो राजा का पक्ष लेता है, प्रजा उससे द्वेष करने लगती है, जो प्रजा के हित की बात करता है वह राजाओं की नजरों से गिर जाता है। इस प्रकार जब दोनों ओर समान रूप से विरोधी परिस्थिति हो तब ऐसा व्यक्ति बहुत दुर्लभ है जो राजा और प्रजा दोनों का काम करने वाला हो और दोनों का समान भाजन हो।" संपादक एक ऐसा ही दुर्लभ प्राणी है।

ऐसे समय संपादक को स्वयं अपने लिए कुछ मानदंड निर्धारित करने चाहिए। वह जनता के हित को सर्वोपरि स्थान दे—यही उसके गौरवपूर्ण पद का तकाजा है। उसे सदा सत्य का पक्ष लेना है। यद्यपि पत्र के स्वामी पूंजीपति को और सर्वसत्ताधीश सरकार को अप्रसन्न करना उसकी कुर्सी के लिए संकट उपस्थित कर सकता है, पर वह ऐसी भाषा का प्रयोग तो कर ही सकता है जिससे जन-हित भी सुरक्षित रहे और सरकार और पत्र-स्वामी भी अप्रसन्न न हों। उसकी सारी कुशलता तीन घोड़ों की सवारी करने की जिमनास्टिक में ही छिपी है।

संपादक का काम तलवार की धार पर चलना है। उपनिषद् में कहा है—"क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो वदंति"—वही बात संपादक के

साथ है। सबको प्रसन्न कोई कर नहीं सकता और संपादक के पद पर रहते हुए वह आलोचना से बच नहीं सकता—आलोचना करने से भी और आलोचना सुनने से भी। पर आलोचना करते हुए इतना ध्यान अवश्य रखा जा सकता है कि आलोचना विध्वंसात्मक न होकर रचनात्मक हो। किसी व्यक्ति को चिढ़ाने की या उसका मजाक उड़ाने की कोशिश न की जाय। इस बात का सदा ध्यान रहे कि जिसकी आलोचना की जा रही है वह भी एक जीवित मानव ही है। इसके मन में भी संवेग और आवेग उसी प्रकार उठते हैं जैसे संपादक के मन में। इसलिए आलोचना करते हुए मानवीय शालीनता का पूरा-पूरा ध्यान रहे। जैसे, मान लीजिए कि आप किसी नगराधिकारी की आलोचना कर रहे हैं, तब आप अपने आलेख में यों लिख सकते हैं: "हम अमुक नगराधिकारी के अमुक कार्य को उचित नहीं समझते। हो सकता है कि उसने अपना निर्णय किसी गलत सूचना के आधार पर लिया हो, इसलिए हमारा मूल आक्रोश उस गलत सूचना पर है। यह भी संभव है कि हमारे विचार उस नगराधिकारी से भिन्न हों, किंतु जो बात हमें जैसी लगी वैसा ही लिखना हमारा कर्तव्य है। वैसे सामान्य रूप से हम उनके प्रशंसक हैं।" इस प्रकार की टिप्पणी से नगराधिकारी क्रोधान्वित न होकर अपने निर्णय पर पुनर्विचार करने को अवश्य प्रेरित होगा।

अग्रलेख-लेखक

वैसे तो पत्रकारिता के क्षेत्र में पदार्पण करने वाले प्रत्येक युवक को भारत के इतिहास और भूगोल का अच्छा ज्ञान होना चाहिए, परंतु अग्रलेख लिखने के आकांक्षी पत्रकारों के लिए तो यह बहुत ही आवश्यक है। यह भी आवश्यक है कि भारत का इतिहास और भूगोल अंग्रेजी इतिहास-भूगोल की पुस्तकों से न पढ़ा जाय, प्रत्युत भारतीय दृष्टि से पढ़ा जाय। इस काम के लिए पत्रकारिता की पाठविधि में श्री जयचंद्र विद्यालंकार द्वारा रचित 'भारत भूमि और उसके निवासी' तथा 'भारतीय इतिहास की रूपरेखा' नामक दोनों पुस्तकें अनिवार्य कर दी जायं तो बहुत लाभ हो। यह कहना इसलिए आवश्यक प्रतीत होता है कि हमने दिग्गज संपादकों की लेखनी से भी खम्भात की जगह 'कैम्बे' और बलसाड़ की जगह 'बुलसार' निकलते देखा है। हिंदी के एक मूर्धन्य पत्र में तो हमने बारामूला के स्थान पर 'बड़ा मुल्ला' भी छपा देखा है, वह भी मुख्य समाचार के महाशीर्षक में। इसके अतिरिक्त अग्रलेख-लेखक को पाठकों के स्वभाव, उनकी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि और उनके मतामत से भी सुपरिचित होना चाहिए।

संपादकीय लेख का लेखक विचारों की दुनिया में रहता है। पर उसे पता होना चाहिए कि दुनिया में कहां क्या हो रहा है। विशेषज्ञता और टैक्नोलाजी के इस युग में उसे इस बात की पहचान होनी चाहिए कि मानवीय आकांक्षाएं और दुर्बलताएं क्या हैं। उसे यह ज्ञात होना चाहिए कि कोई भी घटना उसी अनुपात में बड़ी होती है जिस अनुपात में वह मानवों को प्रभावित करती है। उसके लिए कोरा ज्ञान उतना जरूरी नहीं है जितना कि संवेदनशील एवं बुद्धिमान होना। अणुयुद्ध का जनता पर क्या असर होगा यह जानने के लिए भौतिकीविद् होना जरूरी नहीं है, पर संवेदनशील होना जरूरी है। अन्य व्यवसायों में लोग कम से कम चीजों के बारे में अधिक से अधिक

जानते हैं, पर यहां इससे उलटा है अर्थात् उसे अधिक से अधिक चीजों के बारे में न्यूनातिन्यून जानना ही चाहिए। इसीलिए पत्रकार बनने की पहली सीढ़ी पर कदम रखते ही बताया जाता है कि किसी एक विषय के विशेषज्ञ बनो और अन्य अनेक विषयों को थोड़ा-बहुत जानो।

कर्त्तव्य : अन्य व्यवसायों की तरह अब पत्रकारिता भी पैसा कमाने और जीविका चलाने का एक धंधा बन गयी है, पर अग्रलेख-लेखक को अपने निम्नलिखित कर्त्तव्यों का ध्यान रखना आवश्यक है :

(१) वह तथ्यों को ईमानदारी से पेश करे और पाठकों को कभी पथभ्रष्ट करने का प्रयत्न न करे,
(२) वर्णित तथ्यों से निष्कर्ष निकालने में सदा निष्पक्ष रहे,
(३) व्यक्तिगत स्वार्थों से दूर रहे और कभी भ्रष्टाचार में लिप्त न हो,
(४) अपनी भूल की ओर इंगित करने वाले या अपने मत से विपरीत मत रखने वाले लोगों का उचित आदर करे,
(५) नयी जानकारी के आधार पर अपने निष्कर्षों पर पुनर्विचार करने को सदा तत्पर रहे,
(६) जीवन की जनतंत्रीय विचारधारा में उसकी आस्था हो और अपने विचारों में वह सदा दृढ़ रहे।
(७) पत्रकारिता के स्तर को उन्नत रखने में सदा अपने सहयोगियों की सहायता करे और सदा यह ध्यान रखे कि सहयोगियों की प्रतिष्ठा में ही उसकी अपनी और समाचार-पत्र की प्रतिष्ठा है।

पत्रकारिता के क्षेत्र में जिसके नाम से सर्वोच्च पुरस्कार दिया जाता है, वह पत्रकार-प्रवर पुलित्जर सदा तीन बातों पर जोर दिया करता था—१. संक्षेप, २. सीधापन (डायरेक्टनेस) और ३. शैली। कभी-कभी अग्रलेख इतने लंबे हो जाते हैं कि पाठक का मन उन्हें पढने का नहीं होता। यदि ५०० शब्द लिखना चाहते हो तो थोड़ा ठहर कर सोचो कि क्या इससे आधे से काम नही चल सकता। फिजूलखर्ची जब सभी जगह निंदनीय है तो शब्दों के प्रयोग के बारे में भी वह अपवाद क्यों बने ? अग्रलेख की सफलता इसी बात में है कि उसका लेखक जो कुछ कहना चाहता था उसे वह सही ढंग से कह सका या नहीं ? वह पाठक की दृष्टि से सुसंगत है या नही ? पाठक के मन में जो प्रतिक्रिया और विचार-शृंखला वह पैदा करना चाहता था वह कर सका या नहीं ? और इस दृष्टि से अच्छे अग्रलेख की उसी तरह कोई कीमत नहीं आंकी जा सकती जैसे किसी अच्छी कविता की।

अग्रलेख-लेखक का काम इतना ही है कि वह किसी केंद्रीभूत विचार पर अपना ध्यान केंद्रित करे और उसे पाठक के मन पर उतार दे। पाठक सहज ही जो बात अनुभव करता है, अग्रलेख उसके लिए उसे युक्तियां देता है। जनता अग्रलेख को अपने मत के समर्थन में तर्क जुटाने के लिए पढ़ती है। अच्छा अग्रलेख पाठक को चिंतन के लिए प्रेरित करता है। संपादक की निष्पक्षता पर यदि पाठक को विश्वास हो तो वह संपादक के मत से सहमत भी होता है। पर केवल एक संपादकीय से पाठक का मत-

परिवर्तन करना संभव नहीं। वास्तव में तो संपादकीय लेख का मुख्य कार्य पाठक को विचार करने के लिए प्रेरित करना है। किसी दल, वर्ग, या संप्रदाय का समर्थन या विरोध संपादक का काम नहीं। हमेशा समाधान देना या 'सही' होने का गर्व भी इष्ट नही। यह संभव है कि किसी राष्ट्रीय या अंतर्राष्ट्रीय मुद्दे पर कभी वह ऐसा प्रबल संघर्ष करे मानो धर्मयुद्ध कर रहा हो, पर ऐसे अवसर हमेशा नहीं आते। जो संपादक चाहता है कि सार्वजनिक हितों के विषयों पर तर्कसम्मत और निष्पक्ष विचार-विनिमय हो, उसे वैसी परिस्थितियों के निर्माण के लिए सदा तत्पर रहना चाहिए।

किन बातों से बचें ?

जैसे कोई वैज्ञानिक सत्य का अन्वेषण करता है, वैसे ही संपादकीय लेखक को भी सत्य का अन्वेषण करना होता है। अपने व्यवसाय और समाज के प्रति यही उसकी ईमानदारी है। निष्कर्ष निकालते समय उसे हेत्वाभासों से बचना चाहिए। एक संपादक ने किसी लेखक से पूछा "क्या आपने पाश्चात्य लेखकों की रचनाओं में से चोरी करना छोड दिया है ?" अब यदि इस प्रश्न का उत्तर लेखक 'हां' मे दे तो उसका अर्थ होगा. कि वह अब से पहले तक पाश्चात्य लेखकों की रचनाओं में से चोरी करता आ रहा है। यदि प्रश्न का उत्तर 'न' में दिया जाय तो अर्थ होगा कि वह अब भी चोरी करता है। इसी प्रकार का एक और प्रश्न है --"क्या आपने अपनी पत्नी को पीटना छोड़ दिया है ?" इस प्रश्न का भी 'हां' या 'न' में उत्तर देना खतरे से खाली नहीं है। न्याय-शास्त्र की परिभाषा में इसे "उभयतः पाशा रज्जुः" अर्थात् डबल फंदे वाली रस्सी कहा जाता है क्योंकि इसके दोनों सिरों पर फंदा है। इसी प्रकार के और अनेक हेत्वाभास हो सकते है।

अग्रलेख में जिन अन्य बातो से बचना चाहिए, वे हैं निर्जीवता, व्यर्थता, अज्ञानता, उग्रता, कट्टरता और छल। एक और चीज है जिससे बचने की सलाह अग्रलेख के लेखकों को दी जाती है। पाश्चात्य पत्रकारों ने उसका नाम रखा है—'अफगानिस्तानिज्म'। इसका अभिप्राय है कि बहुत दूर की कौड़ी लाने की फिराक मे, भारत में बैठकर होनोलूलू और टिबकटू के बारे मे अग्रलेख लिखने का प्रयास करना दुस्साहस मात्र है। इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि अपनी सिद्धांतप्रियता और कट्टरता की आड़ में कही विरोधी के साथ अन्याय न कर बैठें। जनता के हितों के समर्थन में प्रबल आंदोलन चलाने का संपादक को अधिकार ही नहीं है बल्कि यह उसका कर्त्तव्य है, पर इस आंदोलन में इतना उग्र और आक्रामक रुख नहीं अपनाना चाहिए कि समाचार-पत्र के कार्यालय पर ही ताला पड़ जाय।

कांतासम्मत : अग्रलेख सबंधी कुछ अन्य दोष भी हैं जिनसे संपादक को सदा बचना चाहिए। जैसे बिना गंतव्य स्थान का निश्चय किये चल पड़ने से पथिक कभी मंजिल पर नही पहुंच सकता, वैसे ही संपादक को भी लिखने से पहले लेख का उद्देश्य मन में निर्धारित कर लेना चाहिए—इस सीमा तक कि अग्रलेख का सार एक वाक्य में बताया जा सके। अपर्याप्त तथ्यों के आधार पर अपनी लेखनी से कतिपय निष्कर्षों की घोषणा किसी भी संपादक को शोभा नहीं देती। जो भी अग्रलेख लिखा जाय,

उसमें साहित्यिक पुट रहना चाहिए, असाहित्यिक लेखन को कोई भी पाठक पसंद नहीं करता। अग्रलेख कभी लापरवाही से न लिखा जाय, लिखने में पूरी सावधानी बरती जाय। परम अतिशयता-बोधक (सुपरलेटिव डिग्री) वाक्यों के प्रयोग से सदा बचना चाहिए। अधूरे वाक्य, अपरिचित और अप्रचलित शब्दों का प्रयोग गलत वर्तनी, संज्ञा का विशेषण की तरह प्रयोग और मध्यम पुरुष का प्रयोग भी पाठक के मन में संपादक की योग्यता के प्रति शंका पैदा करते हैं। हीनोपमा, या शब्दालंकारों और अर्थालंकारों का पंगु प्रयोग भी संपादक का मान घटाता है। लंबे-लंबे वाक्य, या सुदीर्घ पैरेग्राफ और बहुत लंबा (या बहुत छोटा) अग्रलेख भी पाठक के लिए रुचिवर्द्धक नहीं हो सकता।

संपादक सर्वज्ञ नहीं होता, उसके मन में भी संदेह और शंकाएं होती हैं। इन संदेहों और शंकाओं को छिपाने के लिए, या विवाद से बचने के लिए, या अपनी निष्पक्षता प्रकट करने के लिए कुछ खास ढंग के वाक्य-खंड प्रयुक्त होते हैं। जैसे—'जरूरी प्रतीत होता है', 'ऐसा हो सकता है', 'यह देखना शेष है', 'एक तरह से', 'एक रास्ता यह भी है', 'यह जानना कठिन है', 'आशा के सबल आधार', 'स्थापना सही प्रतीत होती है', 'यह स्पष्ट लगता है', 'किसी कदर'—इत्यादि वाक्य-खंडों के प्रयोग से लेखक के युक्तियुक्त होने का आभास होता है, कम से कम यह तो लगता ही है कि लेखक में दुराग्रह नहीं है। पर इन वाक्य-खंडों के बारंबार प्रयोग से लेखक का अज्ञान ही सामने आता है। यों अपने अज्ञान को छिपाने के लिए भी संपादक लोगों ने खास ढंग की एक शब्दावली बना रखी है। जरा उसका भी मुलाहिजा लें—'सावधानीपूर्वक अध्ययन की आवश्यकता है', 'सही दिशा मे एक कदम है', 'उसके बारे मे कुछ न कुछ किया जाना चाहिए', 'इसकी जिम्मेदारी सीधी उन कंधों (जो कंधे सब से निकट नजर आयें) पर है', 'यह चेतावनीपूर्ण स्थिति है', 'शाश्वत जागरूकता आवश्यक है', 'कटु वास्तविकताएं', 'नग्न तथ्य', 'दोषपूर्ण चिंतन', 'हम कहने का साहस करते हैं', आदि-आदि।

अच्छा संपादकीय लिखने में समय लगता है। कभी-कभी ऐसे संपादकीय लेख पढ़ने को मिलते हैं जिन्हें देखकर लगता है कि अच्छे-भले विषय को भी चक्की के दो पाटों के बीच में रखकर पीस दिया गया हो, उसका कचूमर निकाल दिया गया हो, या जैसे किसी कसाई के छुरे के नीचे रखकर उसे जिबह कर दिया गया हो। इसे देहाती भाषा में रांध काटना या घास काटना कह सकते हैं। एक बार मध्यप्रदेश के एक प्रमुख पत्र के संपादक दस-पंद्रह दिन के लिए दिल्ली आये, तो उन्होंने बड़े गर्व के साथ कहा : "मैं तो आगामी १५ दिन के लिए सब अग्रलेख पहले से ही लिखकर यहां आया हूं।" ऐसे अग्रलेखों की क्या कीमत होगी और उनके पीछे कितना चिंतन तथा पाठकों का मार्गदर्शन होगा, यह स्वतःसिद्ध है। अपने पाठकों पर उद्देश्यहीन, तर्कहीन और असंगत वाक्यों की बौछार व्यर्थ है। अच्छा गद्य वह है, जिसमें पद्य की-सी लय हो। जब तक संपादकीय लेख में अर्थगांभीर्य, वाग्-वैदग्ध्य और कुछ चमत्कार न हो, तब तक पाठक को उसमें आनंद नहीं आता। संपादक को यह भी ध्यान रखना चाहिए कि प्रभावोत्पादन के लिए चिल्लाना जरूरी नहीं है। मक्खियों को मारने के

लिए कोई समझदार व्यक्ति हथौड़े का प्रयोग नहीं करेगा। कभी ऐसे अवसर भी आ सकते हैं जब सचमुच हथौड़े की जरूरत हो। अपने हथौड़े या गदा को उचित अवसर के लिए सुरक्षित रखिए। अनावश्यक विशेषणों से बात में जोर नहीं आता। इसके अलावा अपनी लेखनी से कभी किसी को बदमाश और बेईमान मत कहिए, हां सिद्ध करिए कि अमुक व्यक्ति सचमुच बदमाश और बेईमान है।

अग्रलेख कैसे लिखे जाते हैं ?

इतने अंतरंग और बहिरंग विश्लेषण के बाद अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि अग्रलेख लिखा कैसे जाय ? विमान-चालन के लिए कोई कह सकता है—उसमें क्या रखा है, विमान मे बैठो और उसे उड़ाना शुरू कर दो। उचित प्रशिक्षण पाकर विमानचालक बन जाने के पश्चात् यह काम इतना ही आसान हो सकता है, पर बिना प्रशिक्षण प्राप्त किये किसी नौसिखिये के लिए विमान चलाना संभव नही है। यही बात अग्रलेख के लेखक के साथ है। यहां 'पंडित सोई जो गाल बजावा' या 'ढाई आखर प्रेम का पढे सो पंडित होय' वाली कहावत लागू नहीं होती। अग्रलेख-लेखन के लिए भी उचित प्रशिक्षण, पर्याप्त अनुभव और अभ्यास अपेक्षित है।

सब से पहले तो विषय तलाश करिए, जिस पर अग्रलेख लिखा जाना है। समाचार-पत्र कार्यालयों मे यह काम प्रायः मुख्य संपादक करता है। प्रतिदिन निश्चित समय पर वह अपने सहयोगी अग्रलेख-लेखकों की बैठक बुलाता है, उनमे उस दिन के घटनाचक्र के विषय में विचार-विनिमय करता है और फिर यह निश्चय करता है कि अमुक घटना-विकास के बारे मे हमारे समाचार-पत्र को क्या विचार-दिशा अपनानी चाहिए और उसके बाद अपने सहयोगियों को उनकी रुचि और योग्यता के अनुसार विषय बाट देता है कि अमुक-अमुक विषय पर अमुक-अमुक व्यक्ति अग्रलेख लिखेगा।

फिर अग्रलेख-लेखक अपने-अपने विषय के अनुसार सामग्री जुटाना प्रारंभ करता है। पुस्तकालय में रखे संदर्भ-ग्रंथों और समाचार-पत्रों की विषयवार संचित कतरनों की सहायता से वह उस विषय के संबंध में अधिकतम और नवीनतम जानकारी हासिल करता है। साथ ही ताजा समाचारों पर भी पैनी नजर डालता है क्योंकि घटना-प्रवाह इतनी तेजी से परिवर्तित होता है कि लिखते-लिखते ही अकस्मात् सारा लिखा हुआ असंगत और कालातीत बन सकता है। फिर जो कुछ लिखना होता है उसकी रूपरेखा वह अपने मस्तिष्क में तैयार करता है और उसके बाद लिखना प्रारंभ करता है। पहले विषय-प्रवेश, फिर उसका क्रमिक विस्तार और अंत में निष्कर्ष—इस प्रकार प्रत्येक सामान्य अग्रलेख में प्रायः तीन अनुच्छेद (पैराग्राफ) होते हैं। कभी-कभी निष्कर्ष अग्रलेख के शुरू में ही बता दिया जाता है ताकि पाठक प्रारंभ में ही निश्चय कर सके कि अग्रलेख उसके मतलब का है या नहीं।

लिखने के बाद लेखक स्वयं अपने लिखे हुए को पढ़ता है, उसे संवारता है, देखता है कि उसे और छोटा तो नहीं किया जा सकता। अग्रलेख-लेखक प्रायः आपस में एक दूसरे के लिखे हुए को पढ़ते हैं ताकि प्रमाद या अनवधानता के कारण कहीं कोई लेखनी-स्खलन (पेन-स्लिप) न रह जाय (एक बार अग्रलेख में द० वियतनाम के स्थान

पर सब जगह द० कोरिया और उ० वियतनाम के स्थान पर सर्वत्र उ० कोरिया जा रहा था तथा एक अग्रलेख में पोखरन का परमाणु-विस्फोट अंतरिक्ष में करा दिया गया। दो व्यक्तियों की नजर से गुजरने के बाद इस प्रकार की गलती की संभावना बहुत कम हो जाती है।) अंत में मुख्य संपादक सब अग्रलेखों को स्वयं देखता है और उनमें यथोचित संशोधन, परिवर्तन और परिवर्धन करता है। उसके बाद वे अग्रलेख कंपोज होने के लिए प्रेस में भेज दिये जाते हैं।

कभी-कभी घटनाचक्र मे आकस्मिक परिवर्तन हो जाने से अखबार के छपते-छपते मशीन रुकवा कर भी मैटर में आवश्यक परिवर्तन किये जाते हैं। जो संपादक इतनी निगरानी नहीं रखते, वे कभी-कभी विद्रूप के शिकार हो जाते हैं। मान लीजिए कि कोई मान्य और लोकप्रिय नेता बीमार है, समाचार आया कि उसके स्वास्थ्य में सुधार हो रहा है। राष्ट्र के लिए उस नेता के जीवन की उपयोगिता समझते हुए आपने उसके स्वास्थ्य और चिर-जीवन की कामना करते हुए अग्रलेख लिख दिया। अकस्मात् आधी रात के पश्चात् उस नेता का स्वर्गवास हो गया। अगले दिन प्रातः समाचार-पत्र के प्रथम पृष्ठ पर उस नेता के स्वर्गवास का समाचार प्रमुख स्थान पर जा रहा होगा जब कि समाचार के संपादकीय पृष्ठ पर अग्रलेख मे आप उस नेता के स्वास्थ्य की कामना कर रहे हैं। इस प्रकार की असंगतियों से बचने के लिए ही जब किसी बड़े नेता की गंभीर दशा का समाचार मिलता है तब संपादकगण उसकी जीवनी और राष्ट्र के लिए किये गये उसके कार्यों का सचित्र विवरण तथा अन्य सामग्री पहले से ही तैयार रखते हैं, ताकि अवसर आने पर वे पिछड़ न जायं।

शीर्षक और प्रथम वाक्य : अग्रलेख के शीर्षक और पहले वाक्य का भी बहुत महत्व होता है। शीर्षक की तुलना तो 'शो-विंडो' से की जाती है जो दूर से ही ग्राहक को आकर्षित कर अपने पास बुलाती है। प्रथम वाक्य ऐसा जायकेदार लुकमा होता है कि उसके मुह मे आते ही थाली में परोसा सारा भोजन चट कर जाने को जी चाहता है। यदि पाठक ने सहज भाव से रुचिपूर्वक सारा अग्रलेख पढ़ लिया तो लेखक का श्रम सार्थक हो गया। पाठक उस अग्रलेख से सहमत होता है या असहमत, यह बाद की बात है। उसकी प्रमुख सफलता इसी बात में है कि वह अधिक से अधिक पाठकों द्वारा पढ़ा जाय। अग्रलेखों को वैसे ही सब लोग नहीं पढ़ते। जो अपेक्षाकृत अधिक जिज्ञासु लोग उन्हें पढ़ते भी हैं, उनके पल्ले यदि बारंबार बोरियत ही पड़े, तो वे भी पढ़ना छोड़ देंगे। अग्रलेख में प्रथम वाक्य का क्या महत्व है यह इस बात से भी स्पष्ट हो जायगा कि एक सुयोग्य साथी वर्षो से अग्रलेख लिखते आ रहे है, परंतु 'अग्रलेख का प्रथम वाक्य क्या हो'—इस विषय पर प्रतिदिन वे अपने साथियों से अवश्य परामर्श करते है।

अग्रलेख-लेखकों का भी अपना मन और रुझान होता है, पर कभी-कभी उन्हें मन मारकर ऐसे विषयों पर भी अग्रलेख लिखने पड़ते हैं जिनमें स्वयं उनको भी रस नहीं आता। किसी राजनीतिक दल के समर्थन में, या नागरिक समस्याओं के संबंध में या नैतिकता संबंधी या, किसी दूरस्थ घटना के संबंध में अग्रलेख लिखना प्रायः अरुचिकर कार्य समझा जाता है। उसी अनुपात में महत्वपूर्ण राष्ट्रीय मामलों पर, या ललित-कलाओं के संबंध में, या किसी को श्रद्धांजलि अर्पित करने, या संपादक के अपने निजी

अनुभव एवं चिंतन से प्रसूत विनोदात्मक अग्रलेख में लिखने वाले का मन भी खूब रमता है।

अग्रलेखों के प्रकार

कुछ प्रमुख पत्रों ने अग्रलेखों की सामान्य दैनिक परंपरा से हटकर रविवार के दिन गैर-राजनीतिक या ग्रामीण जनता संबंधी, या हल्के-फुल्के अग्रलेख देने प्रारंभ किये हैं। उनमें एक प्रकार उद्धरण-प्रधान लेखों का भी है। साहित्यिक पुट अधिक होने के कारण शिक्षित और बुद्धिजीवी लोगों में ऐसे उद्धरण-प्रधान अग्रलेख लोकप्रिय भी हैं। आम तौर पर तो पाठक इसी बात से चकित होता है कि संपादक का ज्ञान कितना गहरा है, कितनी भाषाओं का वह पंडित है, और संस्कृत के कितने श्लोक, उर्दू और फारसी के कितने शेर, कुरान की कितनी आयतें, रवि बाबू के कितने गीत, तुकाराम के कितने अभंग, कबीर की कितनी साखियां और तिरवल्लुवर के कितने पद तथा अन्य अनेक कितनी सूक्तियां उसे कंठस्थ है। पर पाठक को क्या पता कि आजकल सब प्रकार के उद्धरणों के संकलनों की पुस्तकें तैयार है। अलबत्ता उन उद्धरणों के यथास्थान प्रयोग के लिए अक्ल चाहिए। पर उद्धरणों की अधिकता से अग्रलेख उधार लिया हुआ-सा लगता है। यों ऐसे अग्रलेखों मे श्रम भी बचता है, क्योंकि स्थान तुरंत भरता जाता है। यदि उद्धरण-प्रधान अग्रलेखों में किसी एक केंद्रीय विचार को सामने रखकर उसका विस्तार करते हुए इस प्रकार ताना-बाना बुना जाय कि लेख की समाप्ति पर वृत्त पूरा होता लगे, तो उस सुसंगत-सुगठित लेख को पढ़कर पाठक जितना आनंदविभोर होगा उतना ही वह बोर होगा असंगत, बेतुके, ऊटपटाग उद्धरणों की भरभार से।

सामान्यतया समाज की सहायता के लिए जो अग्रलेख लिखे जाते है उनमे कुछ तो कर्तव्य-बोधक होते है—जैसे बाढ़, अकाल या भूकंप की विभीषिका के उपस्थित होने पर विपद्ग्रस्त लोगों की सहायता के लिए जनता को प्रेरित किया जाता है। कुछ उत्साह-वर्धक अग्रलेख होते है—जैसे भारत-चीन या भारत-पाक संघर्ष के समय जनता का मनोबल ऊंचा रखने के लिए प्राय: लिखे जाते है। कुछ अग्रलेख पक्ष-समर्थक होते हैं—खास तौर से राजनीतिक दलों की ओर से प्रकाशित होने वाले दलीय पत्रों में ऐसे अग्रलेख अधिक मिलेंगे। कुछ विवादी अग्रलेख होते है—जैसे हिंदी के समर्थक पत्र हिंदी के बारे में और अंग्रेजी समर्थक पत्र अंग्रेजी के बारे में प्रायः लिखते हैं, या संप्रदाय विशेष के पत्र अपने संप्रदाय के समर्थन में और दूसरे संप्रदाय के विरोध में ऐसे लेख लिखते हैं। कुछ अग्रलेख होली-दिवाली-विजयादशमी आदि पर्वों पर तथा स्वतंत्रता-दिवस और गणराज्य-दिवस पर भी लिखे जाते हैं। कुछ अग्रलेख मौसम संबंधी भी होते हैं—जैसे वसंत, ग्रीष्म, हेमंत आदि पर। हिंदी के समाचार-पत्रों में ऐसे अग्रलेख प्राय: कम होते हैं, जबकि विदेशों के पत्रों में मौसम संबंधी अग्रलेखों का भी अच्छा चलन है और वहां के लोग उन्हें चाव से पढ़ते हैं।

अग्रलेखों के विषयों के उक्त सामान्य क्षेत्र के अलावा एक विशिष्ट क्षेत्र भी है और वह क्षेत्र है, १. राजनीतिक, २. शिक्षा, ३. श्रमिक, और ४. अपराध का। इन चारों विषयों से संबद्ध समस्याओं पर लेखनी उठाते हुए संपादक के सामने मुख्य लक्ष्य

केवल जन-हित होना चाहिए, वर्ग-हित नहीं।

लेखक का पुरस्कार

ऊपर हम कह चुके हैं कि अच्छे अग्रलेख का मूल्य पैसों में नहीं आंका जा सकता। प्रश्न उठता है कि अग्रलेख-लेखक, जो इतनी मगजपच्ची करता है, आखिर उसका पुरस्कार क्या है? अग्रलेख-लेखक के दो पुरस्कार हैं—प्रथम तो उसे आत्माभिव्यक्ति का अवसर मिलता है, और दूसरे उसे आनंद की अनुभूति होती है। साहित्य में जिसे 'स्वांतः सुखाय' की संज्ञा दी गयी है, वही बात यहां भी है। जनता प्रायः अपना मुंह बंद किये क्षोभ-आक्रोश और अभाव-अभियोग की जिंदगी जीने पर विवश होती है। संपादक जनता को वाणी देता है। वह चाहता है कि उसके हीरे-मोतियों जड़े शब्द अधिक से अधिक लोगों तक पहुंचें। उसके सुझाये गये सुझाव के अनुसार कार्य होता हुआ जानकर उसे बड़ी प्रसन्नता होती है। यदि उसके सुझावों पर किसी ने भी ध्यान नहीं दिया, तब भी यही क्या कम है कि उसने अपना उद्‌गार वक्ष से बाहर निकालकर जनता के सामने रख दिया, उसका कर्तव्य पूरा हो गया। शायद उससे कभी, कहीं, कोई लाभान्वित हो।

पांचजन्य

यदि महाभारत को एक विस्तृत समाचार-पत्र माना जाय तो श्रीमद्‌भगवद्‌गीता से बढ़कर मानव-जाति का हितकारक संदेश और कहां मिलेगा? इसलिए हे अग्रलेख लिखने वाले संपादक-प्रवर, तू भी मानव-जाति के हित के लिए प्रतिबद्ध है। अपना पांचजन्य शंख बजाये जा, जनता को जगाये जा। रवि बाबू कह गये हैं: "जदि तोर डाक शुने केउ ना आशे, तबे एकला चलो रे, एकला चलो रे।"

समाचार-पत्रों की भाषा

हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार, विकास एवं परिमार्जन में पत्र-पत्रिकाओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। हिंदी गद्य के अभ्युत्थान की प्रेरणा समाचार-पत्रों से ही प्राप्त हुई और आधुनिक हिंदी गद्य के अनेक कृती साहित्यकारों ने, जो समाचार-पत्रों के संपादक थे, अपने कृतित्व को समाचार-पत्रों के माध्यम से प्रस्तुत किया तथा अन्य गद्यकारों को भी प्रभावित किया। न केवल साहित्यिक दृष्टि से पत्र-पत्रिकाओं का योगदान हिंदी की समृद्धि मे उल्लेखनीय है, अपितु भाषा की दृष्टि से भी वह महत्वपूर्ण है। उदाहरण के लिए, 'भाषा की अस्थिरता' के ऐतिहासिक विवाद को लिया जा सकता है। 'सरस्वती' में आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने, 'भारतमित्र' में बाबू बालमुकुंद गुप्त ने, 'बंगवासी' में गोविंदनारायण मिश्र ने तथा अन्य पत्र-पत्रिकाओं में श्री अंबिकाप्रसाद वाजपेयी ने भाषा की अस्थिरता के सभी पक्ष देख डाले और फलस्वरूप भाषा दस वर्षों के भीतर ही स्थिर होने लगी।[1] इसी प्रकार गद्य-शैलियों के विकास में भी समाचार-पत्रों ने, और विशेष रूप से मासिक पत्रों ने, सहायता दी है।[2]

लार्ड टेनीसन की निम्नलिखित पंक्तियां आधुनिक समाचार-पत्रों के विषय में सटीक प्रतीत होती हैं—

"I chatter, chatter as I flow,
To join the brimming river.
For men may come and men may go,
But I go on for ever."

समसामयिक युग में समाचार-पत्र जन-संपर्क के अत्यंत जीवंत और महत्वपूर्ण माध्यम हैं। जन-संपर्क के अन्य माध्यम—आकाशवाणी और दूरदर्शन तथा चलचित्र आदि—श्रव्य और दृश्य होने के कारण भाषा के स्वरूप को उतना प्रभावित नहीं करते

१. श्रीकृष्ण लाल, 'आधुनिक हिंदी साहित्य का विकास : १९००—१९२५', पृ० ३६१
२. रामरतन भटनागर, 'हिंदी गद्य', पृ० १५५

जितना समाचार-पत्र। समाचार-पत्रों की भाषा का प्रभाव जन-मानस पर उस प्रकार क्षणिक नहीं होता, जिस प्रकार दृश्य और श्रव्य साधनों की भाषा का। वह अपेक्षाकृत स्थायी होता है तथा अपना भाषिक इतिहास भी बनाता है। समसामयिक युग में भाषा के स्वरूप को प्रभावित, परिवर्तित और विकसित करने में समाचार-पत्रों की भूमिका महत्वपूर्ण है। ऐसी स्थिति में जबकि हिंदी एक भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो चुकी है, मासिक अथवा अन्य दीर्घावधि नियतकालिकों द्वारा इसके स्वरूप-विकास की संभावना उतनी नही, जितनी दैनिक समाचार-पत्रों के द्वारा। दीर्घावधि नियतकालिकों के संपादक समय की पर्याप्तता के कारण रचनाओं की भाषा में बार-बार संशोधन कर उसे अधिकाधिक निखारने में समर्थ होते हैं, किंतु दैनिक पत्रों की प्रकृति की तात्कालिकता के कारण ऐसा संभव नहीं है। कहा भी गया है कि पत्रकारिता जल्दी में लिखा गया साहित्य है। इसके अतिरिक्त पूरा समाचार-पत्र एक लेखनी का परिणाम नही होता। ग्रामों के अर्द्धशिक्षित संवाददाताओं से लेकर प्रधान संपादक तक की अनेक लेखनियां समाचार-पत्रों की भाषा को स्वरूप प्रदान करती हैं। हिंदी दैनिकों के समक्ष तो अन्य कई विवशताएं हैं, जैसे अंग्रेजी में प्राप्त समाचारों का अनुवाद, टाइप के फैलाव के कारण प्राप्त समाचारों का संक्षेपीकरण, अंचलों में हिंदी भाषा के विविध क्षेत्रीय रूप, वर्तनीगत वैविध्य आदि। कहने का तात्पर्य यह है कि संवाददाता, संपादकीय विभाग के पत्रकार, कंपोजीटर, प्रूफरीडर आदि तथा आंचलिकता, स्थानीय शैलीगत प्रयोग, हिंदी समाचार-पत्रों का अंग्रेजी-अनुगामित्व, यांत्रिक एवं तकनीकी सीमाएं आदि कारणों से समाचार-पत्रों की भाषा का स्वरूप बनता-बिगडता है। इसके बावजूद प्रत्येक समाचार-पत्र अपने व्यक्तित्व मे समन्वय रखने का प्रयत्न करता है।

एक ओर जहां अंग्रेजी पत्रों की तुलना में हिंदी पत्रों की कुछ सीमाएं हैं वहीं दूसरी ओर हिंदी पत्रों के कुछ विशेषाधिकार भी है। हिंदी के समाचार-पत्र लोकप्रिय होते है तथा समाज के सभी वर्गों द्वारा पढे जाते है। वे जीवन के राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, व्यावसायिक, खेलकूद एवं चलचित्र आदि सभी पक्षों को प्रस्तुत करते हैं तथा औसत भारतीय परिवार के सभी सदस्यों—अर्द्धशिक्षित और शिक्षित तथा बच्चों, महिलाओं और वयस्कों तक—के लिए पठनीय सामग्री प्रस्तुत करते हैं। अतः हिंदी पत्रकार विविध स्तंभों में भाषा की स्वरूप-रचना के समय सभी वर्गों की ओर दृष्टि रखता है। वर्तमान जीवन की नव्यतम स्थितियों को सब से पहले लिखित रूप में पाठकों तक पहुंचाने का उत्तरदायित्व दैनिक समाचार-पत्रों का है। किसी घटना या स्थिति विशेष के लिए शब्द, भाषा या अभिव्यंजना पद्धति को गढ़ने की समस्या का सामना सर्वप्रथम समाचार-पत्र ही करते हैं। इसके लिए उन्हें अनेक बार प्रचलित पद्धति से हटना पडता है तथा व्याकरणिक मान्यताओं का उल्लंघन भी करना पड़ता है। ऐसा वे स्वयं को अपने पाठकों की बौद्धिक क्षमता और अवधारणा-शक्ति के अनुरूप बनाये रखने के लिए करते है। कभी किसी नयी और जटिल पद्धति को लोकप्रिय बनाने की जिम्मेदारी भी समाचार-पत्रों पर आ पड़ती है। ऐसे अनेक कारणों से उनकी भाषा में व्यापकता, सर्वजनसुबोधता, प्रयोगधर्मिता और लचीलापन होता है, जो उसे एक विशिष्टता प्रदान करता है। भाषाशास्त्रियों ने इस तथ्य की ओर बार-बार संकेत

किया है कि प्रयोग-क्षेत्रों के अनुसार भाषा एक विशिष्ट स्वरूप धारण कर लेती है और अपनी शब्दावली या तो स्वयं विकसित कर लेती है अथवा प्रचलित शब्दावली में से ही चुन लेती है। इस स्वरूप और शब्दावली के कारण ही विशिष्ट क्षेत्र में प्रमुख भाषा सामान्य और साहित्यिक भाषा से अलग प्रतीत होने लगती है। पत्रकारिक भाषा की भी यही स्थिति है।

आधुनिक युग में पत्रकारिता पर तो काफी, अनुसंधान और विचार हुआ है, किंतु पत्रकारिक भाषा का पक्ष अछूता रह गया है। समाचार-पत्रों में प्रयुक्त भाषा का स्वरूप विशिष्ट है अवश्य, परंतु यह विज्ञान और प्रोद्योगिकी की भाषा की तरह विशिष्ट नहीं है जिसका जनता से कोई संबंध ही न हो। समाचार-पत्रों की भाषा साहित्यिक नहीं होती किंतु वह एकदम आमफहम भी नहीं होती। उसकी स्थिति इन दोनों प्रवृत्तियों के मध्य में है। समाचार-पत्रों द्वारा प्रयुक्त भाषा का प्रभाव-क्षेत्र व्यापक है फलतः सामान्य लोक-व्यवहार में वही भाषा चलती है जिसे दैनिक समाचार-पत्र चलाते हैं। अतएव पत्रकारिक भाषा की कतिपय विशिष्ट प्रवृत्तियों पर प्रस्तुत प्रसंग में विचार किया जायगा।

वर्तमान युग में नवीन परिस्थितियों को व्यक्त करने के लिए समाचार-पत्र भाषा के जिस स्वरूप को अपनाते हैं, वह साहित्य में प्रयुक्त भाषा से विलक्षण होता है। वे संकर भाषा का प्रयोग करते हैं। अंग्रेजी, हिंदी तथा प्रचलित अरबी-फारसी के शब्दों की संस्कृत पद्धति की संधियां और समास—कांग्रेसाध्यक्ष, मैट्रिकोत्तर, कम्युनिस्टेतर (नवभारत टाइम्स, बंबई), परगनाधिकारी (न०भा०टा०, बंबई), थानाध्यक्ष (देवदूत, प्रयाग), थानांतर्गत (न०भा०टा०, दिल्ली), कांग्रेसजन, सरकिट-भवन (न० भा०टा०, बंबई), नाटो-अभ्यास (न०भा०टा०, दिल्ली), कमीशन-लिप्सा (न०भा०टा० बंबई), गैरडिग्रीधारी (राजस्थान पत्रिका, जयपुर), बैटरीचालित (हिंदुस्तान, दिल्ली) आदि, परसर्गों के विविध अर्थों में प्रयोग, मुद्रण-वर्णों एवं यंत्रों, समाचार-पत्र के कालम के स्थान तथा पत्र की साज-सज्जा के अनुरूप भाषा में यथेष्ट परिवर्तन, जनता को आकर्षित करने के लिए भाषा का चमत्कारिक एवं सम्मोहक शैलीगत प्रयोग, विविध स्तंभों में प्रयुक्त रूढ शब्दावली, नवीन वस्तुओं, आविष्कारों एवं आंदोलनों के लिए नये शब्दों की रचना, राजनीतिक प्रतिबद्धता के अनुरूप घटनाओं की व्याख्या और वर्णन-शैली, प्रादेशिकता और स्थानीय रंग का मिश्रण आदि समाचार-पत्रों की भाषा की कतिपय प्रमुख प्रवृत्तियां हैं।

विशुद्धता का आग्रह

आधुनिक हिंदी दैनिकों में भाषा के संबंध में विभिन्न दृष्टिकोण पाये जाते हैं। वैसे समाचार-पत्रों की भाषा में किसी भी प्रकार का आग्रही दृष्टिकोण व्यावसायिक दृष्टि से घातक हो सकता है। परंतु प्रत्येक पत्र का दृष्टिकोण उसकी भाषा से झलक ही जाता है। वाराणसी से प्रकाशित 'आज' में प्रचलित शब्द 'राष्ट्रीयकरण' के स्थान पर 'राष्ट्रीकरण', 'आवागमन' के स्थान पर 'गमनागमन' और 'बैंक' के स्थान पर 'बंक' का प्रयोग यह बतला देता है कि उसका आग्रह व्याकरणिक विशुद्धता और हिंदीकृत रूपों पर

है जबकि इसी पत्र में 'रिवाल्वरधारी' जैसे संकर शब्द भी प्रयुक्त होते हैं। 'हिंदुस्तान', दिल्ली और 'नवभारत टाइम्स', बंबई में प्रचलित शब्द 'संवैधानिक' के स्थान पर 'सांविधानिक' का प्रयोग भी संस्कृतोन्मुख वृत्ति का परिचायक है। इन्हीं पत्रों में संसत्सदस्य और वृहत्सभा जैसे हलसंधिमूलक रूप भी प्रयुक्त होते हैं जबकि हिंदी के अनेक वैयाकरण यह मानते हैं कि हिंदी की शब्द-रचना में हल चिह्न स्वीकार नहीं किया गया है। 'आत्मनिर्भर' के स्थान पर 'आत्मभरित', 'दोनों' के स्थान पर 'उभय', 'स्वचालित' के स्थान पर 'आत्मनियामक' आदि विशिष्ट पर्याय भी पत्र का भाषा संबंधी दृष्टिकोण सूचित करते हैं। नवभारत टाइम्स, बंबई के इस प्रकार के प्रयोग द्रष्टव्य हैं—Launch जलावतरण, Serics मालिका, Balance sheet तुलन-पत्र, Automatic आत्मनियामक, Pending लंबित, Doubles युगल आदि। भारत, प्रयाग में लाटरी के ड्रा के लिए 'कर्षण' शब्द का प्रयोग किया जाता था। नवभारत टाइम्स, बंबई में धारा १४४ को 'जमावबंदी' तथा कर्फ्यू को 'संचारबंदी' लिखा जाता है तथा सामान्यतः प्रचलित 'गृह मंत्री' और 'विदेश मंत्री' के स्थान पर 'स्वराष्ट्र मंत्री' तथा 'परराष्ट्र मंत्री' 'नागरिक उड्डयन मंत्री' को 'नागर विमानन मंत्री' लिखा जाता है। इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि पत्र का भाषा के संबंध में अपना विशिष्ट दृष्टिकोण है। समाचारों की भाषा-शैली में भी यह आग्रह लक्षित किया जा सकता है—

१. "श्री गोयनका ने स्पष्टीकरण की अनुमति मांगी। सभाध्यक्ष ने कहा—'संप्रति नहीं'

(नवभारत टाइम्स, बंबई, ६-१२-७४)

२. "यदि सदन की कार्रवाई में अड़ंगा डालने की कोई कोशिश हुई तो वह प्रपीड़क, असांसदिक और अलोकतांत्रिक होगी।"

(नवभारत टाइम्स, बंबई, ५-१२-७४)

३. "ये सभी शांतिदूत पिछले कई महीने से बिहार की दमित, नमित और पददलित जनता की सेवा कर रहे थे।"

(नवभारत टाइम्स, बंबई, २८-१०-७४)

समाचार की विषय-वस्तु के कारण भी उसकी भाषा का विन्यास प्रभावित हो जाता है और उसमें विशुद्धता और साहित्यिकता का पुट आ जाता है, जैसे—

पटनीटाप में नये पर्यटन कुटीर

" जम्मू-कश्मीर राजमार्ग पर जम्मू शहर से २१० किलोमीटर दूर सुरम्य पर्वतीय पर्यटन-स्थल पटनीटाप में पर्यटको की आवास-सुविधा में वृद्धि के लिए छह नये पर्यटन-कुटीर बनाये गये हैं। चीड़ तरु-समूह के मध्य स्थापित इन कुटीरों के निर्माण में चार लाख रुपये व्यय हुए हैं।

" सात हजार फुट की ऊंचाई पर पर्वत-शिखर पर स्थित पटनीटाप की सपाट भूमि मखमली घास से ढकी तथा चीड़ और देवदारु तरुओं से आवृत है। चारों ओर छायी हरीतिमा तथा ग्रीष्म ऋतु में भी मंद-मंद गति से चलता शीतल वायु पटनीटाप का प्रमुख आकर्षण है।··· " (नवभारत टाइम्स, दिल्ली २४-८-७४)

लोकोन्मुखता

समाचार-पत्र का भाषा संबंधी दृष्टिकोण कितना ही शुद्धतावादी क्यों न हो, उसे अपने पाठक-वर्ग के अनुरूप भाषा को ढालना पड़ता है। समाचार-पत्र जनता की चीज है और किसी भी क्षेत्र में उसे जनता से दूर नहीं जाना चाहिए। एक आदर्श समाचार-पत्र को अपनी बात उस भाषा में करनी चाहिए, जिसे जनता पूरी तरह समझती हो। इस संबंध में डेनियल डेफो का कथन कभी पुराना नहीं पड़ सकता—"यदि कोई मुझसे पूछे कि भाषा का सर्वोत्तम रूप क्या हो, तो मैं कहूंगा कि वह भाषा, जिसे सामान्य वर्ग के भिन्न-भिन्न क्षमता वाले पांच सौ व्यक्ति (मूर्खों और पागलों को छोड़कर) अच्छी तरह समझ सकें।" दैनिक समाचार-पत्रों की प्रकृति ही ऐसी होती है कि वे न तो आग्रहवादी हो सकते हैं और न परहेजवादी। अपराध-समाचारों के संपादन में अरबी-फारसी के फरार, जब्त, बरामद, पुनर्दखल, तफ्तीश, तलाशी, गिरफ्तारी, वारदात, सुराग, नकबजनी, कैद, हिरासत, नजरबंद, इस्तगासा, जमानत, जालसाजी, ज्यादती, गिरोह, रिहाई, चालान, जाली, जुर्माना, दावा तथा अंग्रेजी के वारंट, रिमांड आदि तथा अन्य विदेशी भाषाओं से आगत शब्दों से परहेज करना संभव नहीं है। अन्य प्रकार के समाचारों में भी कार्रवाई, मुद्दे, वहस, कारगर, लागू, नामजद, मसौदा, बयान, माफी, जांच, पेशकश, बहाल, निगरानी, कारोबार, वसूली, मुनाफा, दौरा, रवाना, वायदा, राहत, खरीदो, गुमराह, तबाही, तौर-तरीके, दस्तावेज, कागजात, इस्तीफा आदि तथा कंपनी, मजिस्ट्रेट, लायसेंस, स्टंट, सीलिंग, पासपोर्ट, बायकाट, बोगस, रिपोर्ट, वीटो, सप्लाई, हाईकमांड, कोटा, कोरम, कर्फ्यू, लेवी, रिकार्ड आदि का मुक्त रूप से प्रयोग होता है। कभी-कभी इन शब्दों के हिंदी पर्याय भी उसी समाचार के शीर्षक या पाठ्य अंश में एक साथ प्रयुक्त होते हैं। बोलचाल की ठेठ शब्दावली तथा युग्म शब्दों (एक ही अर्थ वाले दो भिन्न जातीय शब्द) तथा पुनरावृत्ति मूलक शब्दों का प्रयोग भी समाचार-पत्रों की भाषा में बहुत अधिक होता है। ठेठ शब्दावली में—झड़प, हुल्लड़, हथकंडे, बावेला, धमकी, चपेट, ठप्प, घोटाला, भिड़ंत, हौवा, लताड़, अटकल, घपला, अंधाधुंध, भरमार, भंडाफोड़, मिलीभगत, हाथापाई, हड़कंप, भगदड़ आदि तथा युग्म एवं द्वित्वमूलक शब्दों में—रोकथाम, लूटपाट, घुसपैठ, उलटफेर, लूटखसोट, तोड़फोड़, शोर शराबा, शोरगुल, गुलगपाड़ा, छीनाझपटी, दिनदहाड़े, छानबीन जोश-खरोश, साठ-गाठ, उठापटक, मारपीट, धक्का-मुक्की, छिन्न-भिन्न, रेलमपेल, खुल्लमखुल्ला, गुत्थमगुत्था, गरमागरम, टालमटोल, तितर-बितर, नोकझोंक, पकड़-धकड़, दौरदौरा, छेड़छाड़, ठसाठस, चखचख, टोकाटोकी, दमखम, बोलबाला, ठाठ-बाट, हलचल, चिल्ल-पौं, हो-हल्ला आदि का धड़ल्ले से प्रयोग होता है। वर्तमान हिंदी समाचार-पत्रों में जन-प्रचलित भाषा की ओर झुकाव हर स्थिति में रहता ही है। यह भी कहा जा सकता है कि गांधीजी की कल्पना की हिंदुस्तानी अपने राजनीतिक स्वरूप में तो नहीं, किंतु स्वाभाविक भाषिक स्वरूप में अवश्य प्रयुक्त होती है।

प्रयोगधर्मिता

कतिपय हिंदी समाचार-पत्रों की भाषा में प्रयोगशीलता की प्रवृत्ति भी पायी

जाती है। ऐसे दैनिक समाचार-पत्रों में स्थानीय रुचि के कुछ समाचारों को ललित साहित्य की शैली में लिखा और प्रस्तुत किया जाता है। दैनिक समाचार-पत्रों में यह प्रवृत्ति होती तो है किंतु अपेक्षाकृत सीमित रूप में और इतनी अस्पष्ट कि उसे सूक्ष्म अध्ययन के बिना खोज पाना संभव नहीं है। साप्ताहिक पत्रों में यह प्रवृत्ति स्पष्ट रूप से उभरती है। हिंदी के साप्ताहिकों में 'दिनमान' में भाषा की प्रयोगशीलता स्पष्ट है। मेरे मत में, हिंदी की समस्त पत्र-पत्रिकाओं में भाषा के प्रति सर्वाधिक सचेत दृष्टि 'दिनमान' में ही पायी जाती है। हिंदी के स्वरूप-विकास के लिए अकेले 'दिनमान' ने जितना कार्य किया है, उतना संभवतः अन्य किसी पत्र ने नहीं किया। भाषा-प्रयोगों के संबंध में उसका अपना दृष्टिकोण अन्य सभी पत्रों से विलक्षण प्रतीत होता है। भाषा की एकरूपता जो अन्य सभी पत्रों में अनुपलब्ध है, 'दिनमान' में देखी जा सकती है। इसका श्रेय इसके संस्थापक-संपादक श्री स० ही० वात्स्यायन 'अज्ञेय' को है।

अनुवाद की भाषा

हिंदी समाचार-पत्रों की भाषा को बनाने-बिगाड़ने वाला एक महत्वपूर्ण तत्व है—अनुवाद। अनुवाद हिंदी समाचार-पत्रों की विवशता है। आज भी देश के सर्वोत्तम समाचार-अभिकरण अंग्रेजी में ही समाचार संप्रेषित करते हैं। हिंदी के समाचार-अभिकरण अभी इस स्थिति में नहीं हैं कि दैनिक समाचार-पत्र अकेले उन पर निर्भर रह सकें। फलतः हिंदी पत्रों को अंग्रेजी में प्राप्त सामग्री का अनुवाद करना पड़ता है। इस कारण हिंदी के समाचार-पत्रों में भाषा का स्वरूप अंग्रेजी की वाक्य-रचना, शब्दावली और व्याकरणिक प्रवृत्तियों से प्रभावित होता है। समाचार-पत्रों में तो कभी-कभी समाचार 'अनुवाद का अनुवाद होने के कारण मूल से बहुत दूर हो जाते हैं। समाचार-अभिकरणों के संवाददाता भारतीय भाषा के व्याख्यान को अंग्रेजी में अनूदित करते हैं और पत्र-कार्यालय के अनुवादक उसे पुनः हिंदी अथवा अन्य भारतीय भाषा में अनूदित करते हैं। उन्हें अनुवाद के लिए समय भी कम मिलता है तथा अनुवाद के साथ-साथ संपादन और संक्षेपण कर समाचार का स्वरूप भी निर्धारित करना पड़ता है, क्योंकि हिंदी के पत्रों में अंग्रेजी-पत्रों की तुलना में स्थान की भी कमी होती है। इस स्थिति के अनेक दुष्परिणाम हुए—समाचार-पत्रों में प्रयुक्त होने वाली हिंदी अंग्रेजी की अनुचरी बनकर कांतिहीन और अवरुद्ध गति वाली हो गयी।[1] दूसरे, अनुवाद की जूठन तथा अंग्रेजी वृत्ति से तैयार किये गये समाचारों के द्वारा राष्ट्रभाषा की पत्रकारिता का प्रभाव जन-मानस पर सीमित ही रहा तथा भाषा की दृष्टि से हिंदी पत्रकारिता अपने मौलिक स्वरूप की स्थापना नहीं कर सकी।[2] अनुवाद के कारण समाचार-पत्रों में हुए गलत प्रयोग जैसे : थर्ड डिग्री मेथड—तीसरे दर्जे के हथकंडे, कब्स (स्काउट)—शेर के बच्चे, टैंक वार फेयर—तालाब-लड़ाई, रेलवे स्लीपर—रेलवे स्टेशन पर सोने वाले, रेड लेटर डे—लालपत्र दिवस, टु टेम दि रिवर्स—नदियों को पालतू बनाना, पर हेड

१. प्रेमनाथ चतुर्वेदी, 'समाचार संपादन', पृ० ६६
२. वही, पृ० २६

इनकम—प्रति नरमुंड के पीछे होने वाली आय आदि उपहास के विषय बन गये हैं और पुस्तकों में लेखबद्ध हो गये हैं।[1] आधुनिक हिंदी समाचार-पत्रों में इस प्रकार की 'छाया-कलुषित भाषा' के अनेक उदाहरण खोजे जा सकते हैं—'जापान के लिए रवाना' में 'लिए' अंग्रेजी के 'फार' का प्रतिनिधि है, जबकि हिंदी में इसकी आवश्यकता ही नहीं है, केवल 'जापान रवाना' पद ही पर्याप्त है। 'बच्चों में पुरस्कार-वितरण' में 'में' विभक्ति अंग्रेजी के 'एमंग' के प्रभावस्वरूप आयी है, हिंदी में यह संप्रदान कारक का विषय है, अत: 'को' का प्रयोग किया जाना चाहिए। इसी प्रकार, 'रेल कर्मचारियों का वेतनमान उठाना आवश्यक', 'अध्यादेश का बचाव', 'निर्णय लिया', 'भाषण' 'दिया', 'बैठक या सम्मेलन बुलाना' आदि प्रयोगों में रेखांकित शब्द अंग्रेजी की 'रेज', 'डिफेंड', 'टेक', 'डिलीवर', 'काल या समन' क्रियाओं के प्रभावस्वरूप आये हैं। अब इस प्रकार के प्रयोग पत्रकारिता में स्वभाव का अंग बन गये हैं, इस कारण मूल सामग्री चाहे अंग्रेजी में हो या न हो अंग्रेजी का प्रभाव भाषा में आ ही जाता है।[2] अंग्रेजी वाक्य-रचना का अनुवाद में भी अनुसरण करने के कारण वाक्य लंबे जटिल और अस्पष्ट हो जाते हैं। उदाहरण देखिए—

१. "समाचार-अभिकरण ए०पी०पी० ने कूटनीतिक प्रेक्षकों को उद्धृत करते हुए कहा कि श्री भुट्टो की यात्रा की समाप्ति पर जारी संयुक्त विज्ञप्ति में शिमला-समझौते की व्यवस्था के अनुरूप भारत और पाकिस्तान के बीच विद्यमान विवादों के निपटारे के लिए दक्षिण एशिया में स्थायी शांति के उद्देश्य से जम्मू और कश्मीर का प्रश्न निपटाने की आवश्यकता पर बल दिया गया है।"

२. "विपक्षी नेता श्री अताउर्रहमान खान जो, कभी पूर्व पाकिस्तान के मुख्य मंत्री रहे थे, जातीय समाजतंत्री दल के, जिसके नेता इन दिनों जेल मे हैं, द्वितीय वार्षिक सम्मेलन में भाषण करने के लिए राजी हो गये।"

इस प्रकार की वाक्य-रचना मे समाचार की दृष्टि से महत्वपूर्ण बात—'भाषण करने को राजी हो गये हैं'—पीछे छूट जाती है तथा पाठक अन्य बातों में उलझ जाता है।

३. "शिक्षा मंत्री श्री चागला ने, जो कल रात अखिल भारतीय हिंदी साहित्य सम्मेलन की प्रथम अनौपचारिक बैठक का उद्घाटन करने कानपुर पधारे थे, कहा कि 'हिंदी का भविष्य उज्ज्वल है'।"

इस वाक्य में महत्वपूर्ण बात को अत्यंत गौण स्थान प्राप्त हुआ है जबकि अनावश्यक जानकारी को महत्वपूर्ण स्थान मिल गया है। यदि हिंदी की प्रवृत्ति को ध्यान में रखकर खंडात्मक वाक्य-रचना की जाती तो यह दोष नहीं होता। समाचार-अभिकरणों द्वारा अंग्रेजी मे संप्रेषित सामग्री में अंग्रेजी के मुहावरों, कथन-प्रणालियों और लाक्षणिक पदबंधों का प्रयोग किया जाता है। हिंदी समाचार-पत्रों मे जो इनका

१. के० एम० नारायणन, 'संपादन-कला', पृ० २० तथा प्रेमनाथ चतुर्वेदी, 'समाचार संपादन', पृ० १७

२. अनुवाद संबंधी त्रुटियों के उदाहरणों में समाचार-पत्रों के नाम नहीं दिये जा रहे हैं।

अनूदित रूप प्रस्तुत किया जाता है, उसमें अंग्रेजी मूल की गंध बराबर आती रहती है। इस कारण कभी-कभी भाषा दूषित हो जाती है, जैसे—

१. "आपने कहा कि यदि सरकार इस दिशा में गंभीर है तो उसे चाहिए कि सभी तस्करों को जेल के सींकचों के पीछे भेजे।" (यू०एन०आई०) (यहां Serious और Behind the Bars का शाब्दिक अनुवाद किया गया है, जो बुरी तरह खटकता है।

२ "बरामदशुदा असली रिवाल्वर को सरकार के हित में जब्त कर लिये जाने का आदेश भी विद्वान न्यायाधीश ने दिया है।" (Forfeit to the Govt. का भद्दा अनुवाद)

३. "अमेरिका शिमला समझौते के प्रतिकूल नहीं जाएगा" (will not go against का शाब्दिक अनुवाद)

४. "आगे किसी भी कार्रवाई से पूर्व सदन को विश्वास में लिया जाएगा।" (to take in confidence का शाब्दिक अनुवाद; जो हिंदी की प्रकृति के अनुकूल नहीं है)

५. "२४ फरवरी को जम्मू-कश्मीर का मुख्यमंत्री पद सम्हालने जा रहे शेख मोहम्मद अब्दुल ने कहा है..." (Going to take over as. का अनुवाद)

वस्तुतः अंग्रेजी के कोशगत पर्यायों के आधार पर किये गये अनुवाद की भाषा शिथिल और बहुधा निरर्थक और अस्पष्ट होती है। श्री सत्यदेव विद्यालंकार ने 'नव-भारत' के सह-संपादकों को संकेत करते हुए, ६-५-४७ को कहा था कि हम लोग शुद्ध हिंदी न लिखकर अंग्रेजी हिंदी लिखते हैं। यदि हिंदुस्तानी से बचना अभीष्ट है तो अंग्रेजी हिंदी से बचना और भी आवश्यक है। इसी से भाषा में स्वाभाविकता और सुंदरता नहीं आ पाती। पराड़करजी का मत था कि समाचार-पत्र की भाषा ऐसी होनी चाहिए कि उसमें अनुवाद की गंध तक न आये।[1] इसके लिए आवश्यक है कि अनुवादक हिंदी की प्रकृति से पूर्णतः परिचित हो तथा कोशगत पर्यायों का मोह छोड़कर समान मूल्य के शब्दों को ग्रहण करे। यह विचार करना अभीष्ट है कि जिन परिस्थितियों में एक शब्द, पदबंध या मुहावरा अंग्रेजी में प्रयुक्त होता है, ठीक उन्ही परिस्थितियों में हिंदी किन शब्दों, पदबंधों या मुहावरों को स्वीकार करेगी। वे ही समान मूल्य के शब्द कहे जायंगे। उदाहरण के लिए—अंग्रेजी के 'यस सर' का कोशगत पर्याय होगा—'हां, श्रीमान्', किंतु समान मूल्य का शब्द होगा—'जी हां'। अंग्रेजी वाक्य-रचना के बंधन को छोड़कर छोटे-छोटे खंडवाक्यों के प्रयोग से समाचारों की भाषा स्पष्ट, स्वाभाविक और बोधगम्य हो जाती है। अनुवाद में सरल, तद्भव और प्रचलित शब्दों के स्थान पर तत्सम शब्दावली के प्रति आग्रह के कारण समाचारों की भाषा बोझिल हो जाती है, अतः पाना, लेना, देना आदि के स्थान पर प्राप्त करना, ग्रहण करना तथा प्रदान करना आदि प्रयोगों से बचना चाहिए। अंग्रेजी में परोक्ष कथन और कर्मवाच्य का

१. प्रेमनाथ चतुर्वेदी, 'समाचार संपादन', पृ० १६

अधिक प्रयोग होता है जो हिंदी में प्रायः नहीं होता। कर्मवाच्य और परोक्ष कथन वाली भाषा हिंदी की प्रकृति से मेल नहीं खाती, इसलिए यथासंभव अनुवाद करते समय उसे प्रत्यक्ष कथन तथा कर्तृवाच्य में बदलने का प्रयत्न करना चाहिए। परंतु अंग्रेजी पद्धति से अचेतन रूप में प्रभावित होने के कारण हिंदी समाचारों की भाषा का विन्यास भी कर्मवाच्य में ही होता है। इसी कारण, हिंदी के समाचार-पत्रों में 'द्वारा' शब्द का प्रयोग जगह-जगह होता है और 'करने', 'लेने', 'देने' जैसी सीधी क्रियाओं को 'किये जाने', 'लिये जाने', 'दिये जाने' जैसे रूप धारण करने पड़ते हैं। 'प्रधान मंत्री की घोषणा' के स्थान पर 'प्रधान मंत्री द्वारा घोषणा' तथा 'सरकार निर्णय करे' के स्थान पर 'सरकार द्वारा निर्णय किया जाना चाहिए' जैसे प्रयोग हिंदी के पत्रकार को आसान प्रतीत होते हैं।

असावधान एवं शिथिल भाषा

दैनिक समाचार-पत्रों का प्रायः सभी कार्य घड़ी की सुई पर दृष्टि रखकर किया जाता है। एक कार्य मे विलंब हो जाने पर पूरी कार्य-शृंखला विलंबित हो जाती है और पत्र का प्रकाशन निश्चित समय पर कठिनाई से हो पाता है। दैनिक समाचार-पत्रों के कार्यक्रम की इस जल्दबाजी का प्रभाव भाषा पर भी पड़ता है। समयाभाव के कारण समाचारों को कभी-कभी जल्दी-जल्दी और असावधानीपूर्वक लिखा जाना है। भाषा की त्रुटियों को जानते हुए भी छोड दिया जाता है। ये त्रुटियां एक सस्करण छप जाने के बाद मशीन रुकने पर सुधारी जाती हैं। इसी कारण समाचार-पत्रों के डाक-संस्करणों में भाषा की त्रुटियां प्रायः दिखायी देती हैं, जबकि नगर-संस्करण या प्रभात-संस्करण, जो अंत में छपता है, भाषा के दोषों से अपेक्षाकृत मुक्त रहता है। अनेक छोटे समाचार-पत्रों में आर्थिक सीमाओं के कारण योग्य एवं अनुभवी पत्रकार नही रखे जाते। इस कारण भी मध्यम और छोटे स्तर के समाचार-पत्रों में भाषा की अपरिपक्वता, असावधानता और शिथिलता पायी जाती है। तुच्छ स्वार्थों की पूर्ति के उद्देश्य से निकलने वाले छोटे-छोटे पीत-पत्रों की हल्की, उत्तेजक और बरबस झटका देने वाली भाषा का पीला रंग अलग ही दिखायी देता है।

एकरूपता का अभाव

आजकल के हिंदी समाचार-पत्रों में प्राप्त भाषा के स्वरूपों की चर्चा और विश्लेषण तथा प्रसंगवश उनके गुण-दोषो की चर्चा भी उपर्युक्त पंक्तियों में की गयी है, परंतु कुछ ऐसी बातें जो समाचार-पत्र के स्वरूप और दृष्टिकोण से निरपेक्ष हों, सभी समाचार-पत्रों मे पायी जाती हैं, उनमे सब से अधिक खटकने वाली बात है—समाचार-पत्रों की भाषा में एकरूपता का अभाव। भिन्न-भिन्न हिंदी पत्र भाषा संबंधी स्थूल विषयों, जैसे शब्द, वर्तनी, व्यक्तिवाचक नामों का स्वरूप, नवरचित शब्द आदि का भिन्न-भिन्न रूपों में प्रयोग करते ही हैं, किंतु कभी-कभी एक ही समाचार-पत्र एक ही पृष्ठ पर और यहां तक कि एक ही समाचार में एक शब्द को भिन्न-भिन्न रूप में लिखता है। एक ही प्रतिष्ठान के दो समाचार-पत्र भी इस विषय में एक-सी नीति नहीं

रख पाते हैं। अंग्रेजी पत्रों से तुलना करें तो हमें ज्ञात होगा कि यह केवल हिंदी पत्रों की ही कमजोरी है। इसके कई कारण हैं—हिंदी भाषी क्षेत्र में अलग-अलग स्थानों में हिंदी के अलग-अलग रूप पाये जाते हैं। प्रत्येक हिंदी भाषी अनिवार्य रूप से द्विभाषी है, अतः वह अपनी प्रादेशिक भाषा, शब्दावली, प्रयोगों और मुहावरों से प्रभावित होता है। भिन्न-भिन्न क्षेत्रों के संवाददाताओं द्वारा भेजे गये समाचारों और यहां तक कि कार्यालयीन पत्रकारों द्वारा लिखित सामग्री को भी एक लेखनी का अंतिम स्पर्श दिया जाना आवश्यक है। भाषा की बहुरूपता से पत्र का सम्मान प्रभावित होता है। दूसरे, हिंदी के अनेक शब्दों की वर्तनी के विषय में अभी तक एकरूपता कायम नहीं की जा सकी है, क्योंकि संस्कृत के व्याकरण से हिंदी के शब्दो की वर्तनी को अनुशासित किया जाना असंस्कृतज्ञ हिंदी-प्रेमियो को स्वीकार नहीं है तथा उच्चारण के आधार पर वर्तनी को स्वीकार करने में भी बाधाएं हैं। संस्कृतवादियों, हिंदी-प्रेमियों तथा उच्चारणवादियों के अपने-अपने तर्क हैं। इस संबंध में शासकीय संस्थाओ के प्रयत्नो का भी उचित परिणाम नही निकल सका है। अतः इस समस्या का निराकरण समाचार-पत्रो को अपने स्तर पर करना चाहिए। जिन विवादग्रस्त शब्दों का प्रायः प्रयोग समाचार-पत्रों में किया जाता है, उनकी वर्तनी के विषय में सभी हिंदी पत्र मतैक्य रख सकें तो सामान्य पाठक भाषा के विविध रूपों से भ्रमित नही होगा, एक पत्र के स्तर पर तो यह व्यवस्था कायम की ही जा सकती है। जिन शब्दों की वर्तनी परंपरा से निश्चित है, उन्हें उसी रूप में तथा जिन शब्दों की वर्तनी में विवाद है, उन्हें उच्चारण के आधार पर लिखा जा सकता है।

हिंदी समाचार-पत्रों में अन्य भारतीय भाषाओं तथा विदेशी भाषाओं के व्यक्तिवाचक नामों की वर्तनी मे भ्रमजनक अनेकरूपता पायी जाती है। हिंदी में जैसा बोला जाता है वैसा ही लिखा जाता है जबकि अन्य भाषाओं के शब्दो के प्रसंग में यह तथ्य सही नही है, अतः उनके उच्चरित रूप और लिखित रूप दोनों पर विचार करना आवश्यक है। हिंदी के समाचार-पत्रों को मूल सामग्री अंग्रेजी में प्राप्त होती है। यही हिंदीतर भाषाओं के शब्दों की वर्तनीगत अशुद्धि का मूल कारण है। हिंदी का अपना शब्द 'बंद' बहुत दिनों तक 'बंघ' लिखा जाता रहा, क्योंकि प्रेस ट्रस्ट के समाचारो में इसकी वर्तनी 'Bundh' होती थी। एक पत्र में तथाकथित तस्कर का नाम 'सुकुर नारायण बखिया' और 'शुक्रनारायण बाखिया' दोनों रूपों में लिया गया। चागला या छागला मे किसे शुद्ध माना जाय? रोमन लिपि के चमत्कार के ही कारण सुब्रत मुखर्जी सुब्रतो मुखर्जी, रणजी ट्राफी रंजी ट्राफी, लाओस लागोस, शुभलक्ष्मी सुब्बालक्ष्मी तथा भंडारनायक और सेनानायक भंडारनायके और सेनानायके हो गये है। इसी प्रकार फ्रांस के द गाल डि गाल, इंडोनेशिया के सुकर्ण सुकार्णो तथा कंबोदिया के नरोत्तम सिंहनख नरोदम सिहानुक हो गये हैं। आजकल फर्नाण्डीस, फर्नाण्डीज फर्नेण्डीज; डीगो गार्सिया दिएगो गार्सिया, डिएगो गार्सिया, डीगो गरसिया, डियागो गार्शिया; किसिंजर कीसींगर; कुर्ट कुर्त वाल्डेहिम; बाल्डहाइम, वाल्दहाइम; इथियोपिया इथोपिया, यथोपिया; जोर्डन यर्दन, युर्दान; मलेशिया, मलयेशिया; अमरीका, अमेरिका; आदि अनेक रूप पाये जाते हैं।

अंकों के मुद्रण की पद्धति में भी अनेकरूपता पायी जाती है। कुछ समाचार-पत्र (नई दुनिया, इंदौर तथा राजस्थान पत्रिका, जयपुर) रोमन अंकों को अपनाते हैं जबकि शीर्षकों के टाइप में नागरी अंकों का ही प्रयोग करते हैं। संख्याओं के प्रयोग की पद्धति भी एकरूप नहीं है। कभी-कभी पांच अंकों की संख्या भी अंकों में ही छाप दी जाती है और छोटी संख्या को अक्षरों में छापा जाता है। इस संबंध में भी नीति निश्चित करने की आवश्यकता है।

संक्षिप्ति का अनुसरण समाचार-पत्रों के लिए एक अनिवार्यता है। कुछ नाम ऐसे होते हैं जो समाचार-पत्रों में बार-बार स्थान पाते हैं, उन्हें संक्षिप्त रूप में प्रकाशित किया जाता है। भारतीय पद्धति के अनुसार संक्षिप्ति के लिए नाम का प्रारंभिक भाग चुना जाता है, जबकि विदेशी पद्धति उपनाम के चयन की है। नाम के रोमन आद्याक्षरों को चुनकर भी यह प्रयोजन सिद्ध किया जाता है जबकि आजकल नागरी वर्णों को भी संक्षिप्ति के लिए चुन लेते हैं। इस प्रकार समाचार-पत्र प्रमुख व्यक्तियों के नामों को कई रूपों में लिखते हैं—जैसे श्रीमती गांधी, इंदिराजी, देवी इंदिरा। जयप्रकाश, जयबाबू, जे०पी०। इस प्रकार के प्रयोगों पर कोई आपत्ति नहीं है, किंतु कभी-कभी नाम का ऐसा अंश चुन लिया जाता है जो मूल नाम को भाषिक दृष्टि से अभिव्यक्त नहीं कर पाता, जैसे श्री जगजीवनराम के लिए केवल 'राम' का प्रयोग। उत्तम तो यह होगा कि संक्षिप्ति के लिए नागरी आद्याक्षरों के प्रयोग की परिपाटी प्रारंभ की जाय। इसी प्रकार मीसा, मिसा और आंसुका के प्रयोग में भी भ्रांति है। तीनों शब्दों का प्रयोग एक ही पत्र में देखा जा सकता है। कठिनाई यह है कि कहीं हिंदी-पत्रों का ग्रामीण पाठक मीसा और आंसुका को अलग-अलग कानून न समझ बैठे।

समाचार-पत्रों की भाषा का आदर्श

यह तो हुई समाचार-पत्रों की भाषा के बाह्य रूप और उसके गुण-दोषों की प्रासंगिक चर्चा। इनके अतिरिक्त समाचार-पत्रों की भाषा में जो आंतरिक गुण या विशेषताएं होनी चाहिए, उन पर भी विचार अभीष्ट है। समाचार-पत्रों की भाषा का आदर्श रूप क्या हो—इस प्रश्न के उत्तर में भिन्न-भिन्न विचार सुनने को मिलेंगे। समाचार-पत्रों की भाषा का स्वरूप परिस्थिति और पाठक-सापेक्ष होता है। समाचार-पत्र अपने प्रसार क्षेत्र की सामाजिक, शैक्षणिक और बौद्धिक सीमाओं और पाठक-वर्ग की अवधारणा-शक्ति को ध्यान में रखकर भाषा का प्रयोग करते हैं। इसका यह तात्पर्य कदापि नहीं कि उनकी भाषा सदा एक-सी, नीरस और हलके किस्म की होती है। समाचार-पत्र अपने पाठक-वर्ग की अवधारणा-शक्ति को धीरे-धीरे विकसित करते हैं और उन्हें भाषा के नवीन प्रयोगों और शब्दों से अनायास और अनजाने ही परिचित कराते चलते हैं। फिर भी, भारत जैसे देश में जहां साक्षरता का प्रतिशत बहुत कम है; हिंदी के समाचार-पत्रों की भाषा से साहित्यिक गरिमा और गठन की अपेक्षा करना उचित नहीं होगा। विदेशों में साहित्य और पत्रकारिता का अंतर बहुत कुछ कम हो गया है। साहित्य वहां अपने उच्चासन से थोड़ा नीचे उतरा है और पत्रकारिता अपने साधारण स्तर से थोड़ा ऊपर पहुंची है। श्रेष्ठ पत्रकार कभी-कभी एकदम नीरस प्रसंगों

में भी काव्यात्मक शैली का प्रयोग कर पाठकों को चमत्कृत कर देते हैं। किंतु वर्तमान प्रसंग में हिंदी का पत्रकार भाषा के प्रयोग के लिए साहित्यकार की तरह स्वच्छंद नहीं है। साहित्यिक भाषा और अभिव्यंजना पद्धति के प्रयोग की संभावनाएं एवं क्षमता रहते हुए भी पत्र की भाषा सामान्य पाठक से दूर नहीं जानी चाहिए। साहित्य की भाषा गूढ़ और कभी-कभी अनेकार्थवती होती है, जबकि पत्रकारिता में अनेकार्थता की संभावना भाषा का दोष है। पत्रकारिक भाषा का आदर्श रूप उसकी एकार्थनिष्ठा और स्पष्टता में है। वर्तमान जीवन की जटिल परिस्थितियों में समाचार-पत्रों से अधिकाधिक स्पष्टता की अपेक्षा की जाती है। साहित्य का पाठक अधिक समय दे सकता है, जबकि समाचार-पत्र का पाठक जीवन-संग्राम में व्यस्त जीव होता है। उसके पास समय का अभाव रहता है, अतः सामान्य पाठक की सुविधा के लिए समाचार-पत्रों की भाषा सुलझी हुई होनी चाहिए और उसमें सूत्रात्मकता या संक्षिप्ति का गुण अनिवार्य रूप से होना चाहिए। समाचारों में अलंकरण और चमत्कृति की संभावनाएं होती हैं और अच्छे पत्रकार इन संभावनाओं का पूरा दोहन भी करते हैं, परंतु लोक की अपेक्षाओं का नियंत्रण यहां भी बना रहता है। शीर्षकों के चयन तथा प्रयोग में अलंकृत और चमत्कारपूर्ण भाषा का प्रयोग कुछ समाचार-पत्रों में प्राप्त होता है। राजनीतिक समीक्षा, वृत्तलेख या रूपक तथा सामयिक टिप्पणियों में विशिष्ट शैलीगत प्रयोग किये जा सकते हैं। इनमें हलकी व्यंजकता से औत्सुक्य और प्रभावोत्पादकता की सृष्टि होती है। ये दोनों तत्त्व समाचारों की भाषा में कथा-सुलभ प्रवाह और जिज्ञासा उत्पन्न करते हैं और इन्हीं के कारण संपूर्ण समाचार पाठक के लिए आदि से अंत तक पठनीय बन पाता है। अतएव समाचारों की भाषा को साहित्य और पत्रकारिता की मध्यवर्तिनी भूमि पर प्रतिष्ठित करने का यत्न होना आवश्यक है।

आज के पाठक ने समाचार-पत्रों को अपना विश्वास सौंप रखा है। सामान्य जीवन में वह अपने निकटतम और प्रियतम व्यक्ति की बात को भी बिना जांच-पड़ताल के स्वीकार नहीं करता. किंतु समाचार-पत्र में प्रकाशित प्रत्येक सूचना को सामान्यतः सही मानता है। पाठक के इस विश्वास की रक्षा पत्रकार का पवित्र दायित्व है। इस दायित्व की पूर्ति के साधन के रूप में पाठक और पत्रकार के बीच भाषा रहती है। समाचार-पत्रों को अपनी संपूर्ण क्षमता से वर्तमान जीवन की जटिल परिस्थितियों में से सत्य को खोज निकालना पड़ता है, किंतु यह सारा श्रम उस समय व्यर्थ हो जाता है जब पूरी ईमानदारी के बावजूद भाषा की अस्पष्टता, अपूर्णता या अक्षमता के कारण पाठक सत्य का साक्षात्कार करने से वंचित ही नहीं रह जाते अपितु यह महसूस करते हैं कि उनके साथ धोखा हो गया। पत्रकार-कला की पूर्ति अन्वेषित सत्य की यथातथ्य और सही अभिव्यक्ति में है। इसके लिए पत्रकार-कला के आरंभिक उपकरण के रूप में भाषा पर अधिकार और उसका सावधानीपूर्वक प्रयोग अनिवार्य है। यह सही है कि वस्तुनिष्ठता पर अधिक बल देने से भाषा कभी-कभी शिथिल और अरोचक हो जाती है, परंतु समाचार लिखते समय इस तथ्य के प्रति सजगता होनी चाहिए कि कहीं भाषा भिन्न आशय को व्यक्त न करने लगे।

समाचारों की भाषा आनुमानिक (Inferencial) नहीं होनी चाहिए। यदि

घटनाओं के कारणों और परिणामों के विषय में पत्रकार अपने अनुमान व्यक्त करना ही चाहें तो वे पर्याप्त सावधानीपूर्वक, सुदृढ़ आधारों पर तथा अनुभव की गहरी पृष्ठ-भूमि लिये हुए हों। यदि समाचारों का संग्राहक या लेखक दृढ़ निश्चयपूर्वक न कह सके तो उसे प्रतिबद्ध नहीं होना चाहिए तथा अपनी स्थिति को स्पष्ट रखना चाहिए। समाचार-अभिकरणों तथा समाचार-पत्रों के संवाददाता 'कहा जाता है···', 'बताया जाता है···', 'सुविज्ञ सूत्रों से पता चला है···' आदि पदावली के द्वारा अपनी स्थिति को स्पष्ट रखते हैं। उपर्युक्त पदावली अब समाचार-पत्रों में रूढ़ हो गयी है और घिस चुकी है, फलतः इसमें निहित अर्थ और आशय अब समाप्तप्राय है। समाचार को पढ़ते समय पाठक इसकी ओर ध्यान ही नहीं देता। वह इसे भरती की शब्दावली मानता है। अतएव समाचार के पाठ्य अंश में सूत्रों का उल्लेख करने की नवीन पद्धति अपनायी जानी चाहिए।

समाचार की भाषा को रूप देते समय सामाजिक और वैधिक उलझनों के प्रति सजग रहना पड़ता है, क्योंकि इस प्रकार के प्रकरणों में भाषा ही लेखक की मंशा की व्याख्या करती है और उसका बचाव कर सकती है। भाषा में अनेक शब्द ऐसे होते हैं, जिनके मूल अर्थ लुप्त हो चुके है और सामाजिक व्यवहार में वे, बुरे अर्थों में प्राय: अपमानजनक अर्थों में प्रयुक्त होते हैं। किसी अधिकारी को 'नौकरशाह' कहना अप-मानजनक है जबकि इसके मूल अंग्रेजी के ब्यूरोक्रेट का अर्थ मूल रूप से बुरा नहीं था। अतः जब तक जान-बूझकर ऐसे प्रयोग न करना हो तब तक शब्दों का सोच-समझकर प्रयोग करना चाहिए। 'तानाशाही' और 'सत्ता का केंद्रीकरण' में अवधारणा की दृष्टि से कोई भेद नहीं है, किंतु तानाशाही के साथ दमन और अत्याचार का भाव जुड़ जाने से यह शब्द हीन अर्थों में प्रयुक्त होता है।

समाचारों में जिस शब्दावली का प्रयोग हो वह ठीक अर्थों का द्योतन कर सके, जैसे राजनीतिज्ञ लिख देने से यह स्पष्ट नहीं होता कि व्यक्ति विधायक, संसद सदस्य, पार्षद, कांग्रेस जन, जनसंघी आदि में से कौन है। सटीक शब्दों का प्रयोग होना चाहिए जो सूक्ष्म से सूक्ष्म जानकारी को भी व्यक्त कर सकें। विवादग्रस्त विषयों पर सधी हुई भाषा में दोनों पक्षों के तथ्यों को सूक्ष्मतापूर्वक सटीक शब्दावली में प्रस्तुत कर देना चाहिए। दैनंदिन प्रयोग की भाषा की अपनी सीमाएं होती हैं। विवादग्रस्त प्रकरणों में पत्रकार के मन को भाषा की व्यंजना ध्वनित कर ही देती है, परंतु आदर्श स्थिति यह है कि समाचारों को विचारों से मुक्त ही रहने दिया जाए, क्योंकि इस प्रयोजन के लिए समाचार-पत्रों के पास अनेक स्तंभ हैं, जैसे संपादकीय, समीक्षा तथा सामयिक टिप्पणियां। समाचारों को वस्तुनिष्ठ, अनानुमानिक तथा निष्पक्ष रहने दिया जाना चाहिए। यह आदर्श स्थिति है जो आजकल के समाचार-पत्रों में प्राप्य नहीं है। कई बार समाचार-पत्रों में भाषेतर प्रतीकों से भी भाषा का काम लिया जाता है और पत्र के विचारों को अप्रत्यक्ष तरीके से व्यक्त किया जाता है। समाचार को पत्र में प्राप्त स्थान, टाइप का आकार, विशिष्ट टाइपों का प्रयोग आदि भी समाचार-पत्र के मत व्यक्त करते हैं। शीर्षक देकर पूरा स्थान रिक्त छोड़ देने से भी उसी प्रयोजन की सिद्धि होती है जो भाषा द्वारा सिद्ध किया जाता है।

समाचारों की भाषा में शब्दों का जंजाल या शाब्दिक सम्मोहन, जिससे पाठक मुग्ध हो जाय और लेखक की सराहना करने लगे, किंतु तथ्य या जानकारी के रूप में उसके हाथ कुछ न लगे, अच्छी स्थिति नहीं मानी जाती। शाब्दिक बाजीगरी का एक दुष्परिणाम यह होता है कि शब्द अपना अर्थ खो बैठते हैं और पाठकों का शब्दों पर से विश्वास उठ जाता है, जैसा कि आजकल विज्ञापनों के प्रसंग में हो रहा है। समाचारों को विश्वस्त बनाये रखने के लिए उन्हें विज्ञापनबाजी की भाषा से बचाकर रखना होगा। वस्तुतः भाषा पत्रकार के हाथों मे अमोघ शक्ति के रूप में है जिसका उपयोग उचित विधि से समाज के हित में करना होता है। इस शक्ति का दुरुपयोग कर समाचार-पत्र समाज का भारी अहित कर सकते हैं।

हिंदी समाचार-पत्रों के पाठकों में उन लोगों का अनुपात बहुत कम है जो किसी विषय पर पत्र की धारणा को जानने के लिए उत्सुक रहते हैं। अधिक संख्या समाचारों से तृप्त होने वाले पाठकों की है। अतएव संपादकीय टिप्पणियों में गंभीर भाषा में प्रबुद्ध वर्ग के उपयोग की सामग्री, समस्याओं का विश्लेषण और विचार प्रस्तुत किये जाते है। संपादकीय या अग्रलेख समाचार-पत्र की आत्मा होता है और वही पत्र की नीति को व्यक्त करता है। ऐसे लेखों की भाषा पत्र की नीति की अनुगामिनी होती है और उसका विन्यास इस तरीके से किया जाता है कि वह किसी भी विषय पर पत्र के दृष्टिकोण की व्याख्या कर सके तथा सराहना, आलोचना, चिंता, संताप, निंदा, उपेक्षा, उपालंभ, कटाक्ष, स्वागत, निराशा आदि के स्वर ध्वनित कर सके। संपादकीय लेखों की कई प्रकार की शैलियां हो सकती है। पुराने हिंदी पत्रकारों मे अनेक हिंदी के अच्छे शैलीकार थे। आजकल के हिंदी समाचार-पत्रों में सूचनात्मक या निर्वचनात्मक संपादकीय सब से अधिक होते है। आलोचनात्मक और व्यंग्यात्मक शैली के संपादकीय भी यदा-कदा देखने में आते हैं, किंतु प्रत्येक स्थिति में संपादकीय लेखो की भाषा में शिष्टता का होना आवश्यक है। भाषा के स्वर में उतार-चढ़ाव विषय-वस्तु और शैली के अनुरूप हो सकता है। समाचार-पत्रों मे भाषा के पांडित्य-प्रदर्शन की संभावना बिलकुल नही होती—चाहे समाचार लिखना हो या संपादकीय।

समाचार-पत्र जनसाधारण के लिए भाषा के शिक्षक का कार्य करते हैं। सामान्य पढ़ा-लिखा व्यक्ति समाचार-पत्रों के माध्यम से न केवल भाषा अपितु अनेकानेक विषयो की शिक्षा ग्रहण करता है। ऐसी स्थिति में यदि समाचार-पत्रों में भाषा के शिथिल, असंयत, दुरूह और भ्रामक प्रयोग होते हैं तो वे पूरे के पूरे समाज की भाषा को प्रभावित करते है। जिस प्रकार शिक्षक की भाषा के दोष छात्रों की भाषा को भी प्रभावित करते हैं, उसी प्रकार समाज समाचार-पत्रों के दूषित प्रयोगों का अनुकरण करने लगता है। जनसाधारण समाचार-पत्रों पर न केवल सामान्य ज्ञान के लिए अपितु भाषा, मुहावरों, व्याकरण तथा शब्दों की वर्तनी के लिए भी निर्भर रहता है। समाचार-पत्रों की स्तर की भिन्नता के आधार पर उनका पाठक-वर्ग भी भिन्न होता है। कोई भी पाठक किसी वाचनालय में सर्वप्रथम उस पत्र को उठाता है, जिसे वह अपने मानसिक, बौद्धिक और वैचारिक स्तर के अनुरूप पाता है। राष्ट्रीय स्तर

के समाचार-पत्र या व्यापक प्रसार वाले मध्यमवर्गीय प्रादेशिक समाचार-पत्र किसी सीमा तक भाषा के विषय में प्रयोगशील दृष्टिकोण अपना सकते हैं क्योंकि उनके पाठक-वर्ग का एक बड़ा भाग शिक्षित होता है तथा भाषा की एकरसता को नापसंद करता है। इन्हें संतुष्ट करने के लिए समाचार-पत्रों को भाषा की एकरसता को तोड़कर उसे गतिशील और प्रयोगधर्मी स्वरूप प्रदान करना पड़ता है। अतः ऐसे पत्रों में शब्दावली, मुहावरे और शैली की दृष्टि से सुबोध और दुर्बोध, प्रचलित और अप्रचलित, आंचलिक तथा अभिजात रूपों का प्रयोग एकसाथ पाया जाता है। बोधगम्यता की दृष्टि से यह आवश्यक है कि समाचार-पत्रों की भाषा न तो अव्याकरणिक ही हो और न व्याकरण की रक्षा के लिए लोकप्रिय प्रयोगों की उपेक्षा करे। पाठकीय मनोवृत्ति और अपेक्षाओं तथा पत्र की प्रकृति के अनुरूप व्याकरण का अनुशासन मान्य किया जाना चाहिए।

भाषा की रचना और विकास में समाचार-पत्रों का योगदान

भाषा विद्वानों और कोशकारों की रचना नहीं होती, अपितु वह आदिम काल से चली आ रही असंख्य पीढ़ियों के कार्यों, जरूरतों, संबंधों, रुचियों आदि के कारण जन्म लेती है। भाषा का आधार यह संसार और इसमें घटित होने वाले परिवर्तन है। भाषा की रचना सामान्य परिस्थितियों में नहीं होती। भाषा परिवर्तनों में ही जन्म लेती है और उनसे ही विकसित होती है। जब मनुष्य के सामने नयी घटनाएं, नये अनुसंधान, विकास की नयी परिस्थितियां अथवा सामाजिक राजनीतिक फेरबदल, युद्ध, क्रांति, आंदोलन आदि के नये-नये रूप उपस्थित होते है तब उन्हें व्यक्त करने के लिए उसे नयी भाषा और नयी शब्दावली की जरूरत होती है। वर्तमान युग में यह आवश्यकता सर्वाधिक तीखे रूप में समाचार-पत्रों, समाचार-अभिकरणों और संवाददाताओं को महसूस होती है। समाज में दैनंदिन व्यवहार में प्रयुक्त शब्दावली के एक बड़े भाग की रचना पत्रकारिता ही करती है और उसे प्रचलन में भी लाती है। समाचार-पत्रों द्वारा भाषा के विकास के दो पक्ष हैं—शब्दावली की रचना और शब्दावली का प्रचलन। समाचार-पत्र इन दोनों दिशाओं में कार्य करते हैं। शब्दावली का प्रचलन भी उतनी ही महत्वपूर्ण दिशा है जितनी कि शब्दावली की रचना। 'भारतीयकरण' और 'आत्मा की आवाज' जैसे प्रयोगों को दूर-दूर तक फैलाने वाले समाचार-पत्र ही थे। आज सामान्य पाठक इन शब्दों के आदि-प्रयोक्ता के रूप में संबंधित राजनीतिज्ञों को नहीं अपितु समाचार-पत्रों को जानता है।

आधुनिक युग में समाचार-पत्रों के माध्यम से जो शब्द आये है उनके कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

जमावबंदी (धारा १४४), **संचारबंदी** (कर्फ्यू), **दलबदलू** (हीन अर्थों में प्रयुक्त), **नक्सलवादी, नक्सली,** (नक्सलबाड़ी ग्राम के आतंकवादी उपद्रवों के बाद प्रकाश में आया तथा अब प्रत्येक आतंकवादी के लिए प्रयुक्त होता है), **वाटरगेट** (प्रत्येक राजनीतिक जासूसी षड्यंत्र के अर्थ मे प्रयुक्त होने लगा है)—'ब्रिटेन में भी वाटरगेट' (वीर अर्जुन, दिल्ली), **बंधक** (अब विमान-अपहर्ता द्वारा रोके गये यात्रियों के अर्थ

में प्रयुक्त होता है (न०भा०टा०, दिल्ली)। अंग्रेजी के शब्दों में हिंदी के प्रत्यय जोड़कर **ब्लैकिए, ब्लैक मार्कीटिये** बनाया गया। इसी प्रकार **न्यूक्लीय क्षेत्र** (न०भा०टा० बंबई) भी प्रयुक्त होता है। कलक्टर कार्यालय के लिए **कलक्टरी** और न्यायालय के लिए **जजी** लोकभाषा से ग्रहण कर लिये गए हैं।

शब्दों का कुछ भाग निकालकर नयी संज्ञा की रचना के कई उदाहरण समाचार-पत्रों में पाये जाते हैं। वेस्ट इंडीज के लिए **विंडीज** (युगधर्म, जबलपुर) पाकिस्तान के लिए **पाक** और रावलपिंडी के लिए **पिंडी**। इसी प्रकार १९६९ में भारतीय राजनीति में आया शब्द 'इंडीकेट' दो शब्दों के अंशों को मिलाकर नये अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए बनाया गया था। शब्दों के आद्याक्षरों को चुनकर अनेक संज्ञाएं बनायी गयी हैं और बनायी जाती रहती हैं—मीसा, आंसुका, किमलांप, भाक्रांद, भालोद, संविद, भाकपा, असुर, द्रमुक, सीसुद, जीबीनि, इंटक, एटक, हुडको, डेसू, बेस्ट आदि।

दो शब्दों को मिलाकर नया अर्थ व्यक्त करने वाले संकेत शब्द बना लिये जाते हैं—नाटो-अभ्यास (नाटो देशों द्वारा हिंद महासागर में किया जाने वाला नौसैनिक युद्धाभ्यास : न०भा०टा०, दिल्ली)।

'परमाणु ब्लैकमेल' या 'आणविक धौंसपट्टी - श्री भुट्टो द्वारा दी गयी यह धमकी कि यदि पाक को शस्त्र सहायता पर रोक लगायी गयी तो वे भी आणविक हथियार बनायंगे (न०भा०टा० और हिंदुस्तान, दिल्ली)।

मटका-बादशाह, छाता-सैनिक, जय-लहर या जयप्रकाश-लहर, आंसुका-कैदी और मेघ बम आदि इसी प्रकार के शब्द हैं।

सादृश्य के आधार पर शरणार्थी के अनुकरण पर प्रत्यर्पणार्थी (वे शरणार्थी जिन्हें स्थिति सामान्य होने पर लौटाया गया), सिंडीकेट के अनुकरण पर इंडीकेट, उत्तराधिकारी के अनुकरण पर पूर्वाधिकारी आदि प्रयोग भी पाये जाते हैं।

अपनी भाषा के अभावों की पूर्ति के लिए अन्य भाषा से गृहीत शब्दों का हिंदीकरण कर लिया जाता है। इस कारण भी कुछ शब्द मिलने-जुलते रूप में तथा कुछ अनुवाद के रूप में प्राप्त होते हैं : अंतिमेत्थम, किरासन (केरोसीन), कुतल, (क्विटल) मार्कीट, अतल्लातिक, डिपुओं, गारद, कमान, लातीनी आदि मे हिंदी की प्रकृति के अनुरूप परिवर्तन कर लिया गया है। खेलकूद की शब्दावली हमारे यहा अभी भी अंग्रेजी में प्रयुक्त होती है। कुछ समाचार-पत्रो ने इनके अनुवाद का प्रयत्न किया है—हाकी में हेटट्रिक के लिए तिकड़ी प्रचलित है ही। क्रिकेट में 'स्पिनर' के लिए 'भंवरदार गोलंदाज', 'लीड' के लिए 'बढ़त', 'एल०बी०डब्ल्यू० के लिए 'पगबाधा' और 'क्लीन बोल्ड' के लिए 'डंडे बिखेर' ('देशबंधु', भोपाल—भोपाल में प्रचलित मुहावरा—झंडे बिखेरना—के आधार पर) शब्दों का प्रयोग दृष्टिगत हुआ है।

नये-नये आंदोलनों के कारण भी कुछ नये शब्द प्रकाश में आये हैं—'रिले हंगर स्ट्राइक के लिए 'बदली अनशन', 'कलम बंद', 'नियमानुसार कार्य' आदि।

कुछ पत्रों में ऐसे भी प्रयोग पाये गये हैं जो भाषा में स्वीकरणीय नहीं हो सकते जैसे, १३ मिनटी भाषण, त्यागपत्री राष्ट्रपति (निक्सन के लिए प्रयुक्त), शंट करना (क्रिया का प्रयोग)—जैसे, ललितनारायण मिश्र को शंट करने की मांग।

भाषा की रचना में ऐसी स्थिति प्रायः उत्पन्न होती है कि कुछ शब्द किसी घटनाक्रम से संबद्ध होकर समाज के सामने आते हैं, किंतु जैसे ही उस घटनाक्रम की चर्चा समाप्त होती है, वे शब्द भी लुप्त हो जाते हैं। अंतः समाचार-पत्रों द्वारा निरंतर रची जाने वाली शब्दावली में से कुछ शब्द अल्पजीवी होते हैं तथा कुछ दीर्घजीवी। कभी-कभी समान प्रकृति की घटनाओं की पुनरावृत्ति के कारण लुप्त शब्दावली पुनः जीवन धारण कर लेती है। राजनीतिक घटनाएं और परिवर्तन, वैज्ञानिक प्रगति, नये अनुसंधान, आर्थिक विकास, आंदोलन, अपराध आदि अनेक ऐसे विषय हैं जो हर काल में समाचार-पत्रों पर छाये रहते हैं, अतः इनके फलस्वरूप निर्मित शब्दावली दीर्घजीवी और अपेक्षाकृत स्थायी होती है।

स्वतंत्रता के बाद हिंदी के विकास के लिए जितने प्रयत्न हुए है, उनकी सफलता का श्रेय समाचार-पत्रों को भी है। शासकीय एवं अशासकीय प्रयत्नों के फलस्वरूप वैज्ञानिक, तकनीकी तथा राजकाज का जो हिंदी शब्दावली निर्मित हुई, उसे जन-जन तक पहुंचाने का कार्य समाचार-पत्रों द्वारा ही किया गया। निःसंदेह, इस शब्दावली का वह भाग, जिसकी आवश्यकता अपने दैनंदिन जीवन में सर्वसाधारण को होती है, समाचार-पत्रों द्वारा ही प्रचारित किया गया। विकासशील देश होने के कारण ग्रामीण पुनर्निर्माण, नगरीय विकास, कृषि तथा उद्योगों की उन्नति आदि के क्षेत्र में पिछले २८ वर्षों में जो प्रयत्न हुए है, उनकी सूचना समाचार-पत्र समय-समय पर देते रहे है। फलतः इनसे संबद्ध हिंदी शब्दावली भी गांव-गाव तक फैलती रही है। वस्तुतः हिंदी के वर्तमान स्वरूप के प्रचार-प्रसार में दैनिक समाचार-पत्रो द्वारा इस प्रकार किये गये योगदान का मूल्यांकन करने के हेतु सर्वेक्षण किया जाना चाहिए।

वर्तमान युग में समाचार-पत्रों के दायित्व-विस्तार के फलस्वरूप वे केवल सूचक ही नही रहे अपितु अन्वेषक, आलोचक, व्याख्याकार, परामर्शदाता, मार्गदर्शक आदि अनेक रूपों में समाज मे सक्रिय है। भाषा का जो स्वरूप समाज के हर वर्ग तक समाचार-पत्रों के पठन-पाठन तथा ग्रामों मे समाचारों के वाचन द्वारा पहुंचता है, वह है भाषा का पत्रकारिक स्वरूप। समाचार-पत्र ऐसा समर्थ माध्यम है जिससे किसी भाषा के प्रचार और लोकरुचि के निर्माण में अत्यधिक सहायता मिलती है। समाचार-पत्रों का दैनिक रूप तथा उनकी सर्वसुलभता से उनकी भाषा को व्यापक होने का अवसर मिलता है। "प्रेस आज का सब से शक्तिशाली यंत्र है···प्रेस वह गंगा है, जिसमें स्नान करने के बाद व्यक्तिगत विचार सामाजिक हो जाते हैं। एक बार जो बात प्रेस रूपी गंगा में स्नान करके निकली, वह पब्लिक हो गयो।" डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी का यह कथन (प्रेस) समाचार-पत्र की भाषा पर भी चरितार्थ होता है। (समाचार-पत्रों द्वारा प्रयुक्त एक-एक शब्द उसके प्रसार-क्षेत्र की व्यवहार भाषा का स्थायी अंग बन जाता है। विद्वानों की मान्यता तो यह है कि समाचार-पत्र राष्ट्रभाषा के लिखित स्वरूप का मानकीकरण करते है।

सामान्यतः हिंदी समाचार-पत्र का पाठक, जब किसी समाचार या घटना के विषय में चर्चा करता है तब वह उसी भाषा का प्रयोग करता है, जो उसे समाचार-पत्रों से मिलती है'। स्वातंत्र्योत्तर काल में पत्रकारिता के सर्वतोमुखी विकास,

संचार साधनों के विस्तार और व्यापक जन-आवृति के कारण ग्रामीण क्षेत्र भी आधुनिक प्रगति से जुड़ गये हैं। ग्रामीण जनता भी समाचार-पत्रों को पढ़ती है, उनके द्वारा दिये समाचारों और विचारों पर चर्चा करती है तथा उनके द्वारा दी गयी भाषा का व्यवहार करती है। अन्य नियतकालिक पत्र-पत्रिकाओं की तुलना में दैनिक पत्रों की भाषा का प्रभाव सघन होता है, क्योंकि हर २४ घंटे बाद उसका नवीनीकरण होता रहता है और यह अवधि इतनी छोटी है कि सामान्य साक्षर पाठक भी कल के समाचार की भाषा का सूत्र आज के समाचार की भाषा से आसानी से जोड़ सकता है। धीरे-धीरे समाचार-पत्रों का भाषा का यह प्रभाव स्थायी हो जाता है।

समाचार-पत्र अपनी भाषा की इस शक्ति से हिंदी के मानक स्वरूप की स्थापना कर सकते हैं किंतु आजकल हिंदी समाचार-पत्रों में भाषा के प्रति सजगता का अभाव पाया जाता है। इस कारण हिंदी समाचार-पत्रों की भाषा में अनेकरूपता, मिश्रित रूप, कहीं अतिवादी तो कहीं उपेक्षामूलक दृष्टिकोण पाया जाता है। पत्रकारिता के इस पहलू की आज तक उपेक्षा हो रही है। राष्ट्रीय स्तर के हिंदी पत्र भी इस विषय में मौन हैं। फलतः इस विषय पर स्वतंत्र पुस्तकों का अभाव है। पत्रकार-कला संबंधी पुस्तकों में प्रसंगवश भाषा की संक्षिप्त चर्चा मिलती है, किंतु वह भी फार्मूले के रूप में है तथा स्थूल तथ्यों की ओर ही इंगित करती है। भाषा संबंधी कठिनाइयों के समाधान की दिशा में कोई ठोस सुझाव नहीं दिये गये हैं। पत्रकार-कला संबंधी संस्थाएं तथा स्वयं समाचार-पत्र संगोष्ठियों, सम्मेलनों आदि के द्वारा इस दिशा में किसी सुविचारित नीति का निर्धारण कर सकते हैं। समाचार-पत्रों की भाषा में बढ़ती हुई अराजकता को दूर करने के लिए हिंदी पत्रकारिता को आज पुनः किसी 'महावीर प्रसाद द्विवेदी' की आवश्यकता है।

समाचार-संकलन

"मुझे गर्व है कि मै एक समाचारदाता हूं। मुझे अपने कार्य में पूरा संतोष मिलता है। मैं किसी देश का राष्ट्रपति बनना पसंद नहीं करूंगा, बल्कि राष्ट्रपति के क्रियाकलापों के समाचार एकत्र करूंगा। मैं धन का कोष नहीं, शब्दों का कोष तलाशता हूं।"

ये शब्द है प्रख्यात पत्रकार एडविन ए० लाहये के, जो वाशिंगटन ब्यूरो आफ नाइट पेपर्स के बरसों अध्यक्ष रहे। वस्तुतः इन शब्दों में लाहये की ही नहीं, प्रत्येक पत्रकार की आत्मा का वास है। पत्रकार चाहे डेस्क पर हो या किसी क्षेत्र विशेष में —उसकी अपनी दुनिया होती है। उसकी लेखनी घटनाओं के मानसरोवर में डुबकी लगाती है, हंस की भांति शब्दों के मोती चुनती है और समाचारों की मुक्तामाला पाठक को समर्पित कर देती है। कितना पवित्र है यह व्यवसाय। कितना महान है यह कार्य! कदाचित् इसीलिए कुछ विद्वानों ने इसे चौथी रियासत की संज्ञा दी है।

विंस्टन चर्चिल विश्व के महत्तम राजनीतिज्ञों में थे, किंतु अपने को पत्रकार कहने में गर्व अनुभव करते थे। एक बार जब वे गृहसचिव थे तब सिडनी स्ट्रीट के 'युद्ध' को अपनी आंखों से देखने के लिए निकल पड़े। उन्होंने कुछ फोटो स्वयं लिये और संवाद भी लिख भेजा। प्रधानमंत्री एस्क्विथ ने समाचार-पत्र में जब उनके चित्र देखे तब वे बोले—"मैं भली भांति जानता हूं कि फोटोग्राफर उस समय क्या कर रहा होगा। शायद इसीलिए गृहसचिव को यह कार्य भी संभालना पड़ा।"

प्रधानमंत्री महोदय भूल गये थे कि चर्चिल राजनीति में आने से पहले एक बड़े पत्रकार थे। उन्होंने युद्धों को अपनी आंखों से देखा था। हथेली पर जान रख कर उन्होंने समाचार एकत्र किये थे। एक बार उन्हें युद्धबंदी भी बनना पड़ा, किंतु मौका देखकर वे भाग निकले। बड़ी लोमहर्षक कहानियां है, इस महान पत्रकार के जीवन की। आज भी पत्रकारिता के इतिहास में उनके युद्ध-संवाद-लेखन अपूर्व माने जाते हैं।

हम यहां इसी पृष्ठभूमि में देश-विदेश के समाचारदाताओं और संवाददाताओं के अनुभव पर आधारित विभिन्न प्रकार के समाचार-संकलन की चर्चा करेंगे तथा एक अच्छे समाचारदाता एवं संवाददाता बनने की कला का भी उल्लेख करेंगे।

समाचार के प्रकार

समाचार दो प्रकार के होते हैं—

(अ) प्रत्याशित समाचार

(आ) अप्रत्याशित समाचार

समाचार नगर या गांव में घूमने से ही नहीं मिलते, बल्कि समाचार-पत्रों के कार्यालयों में स्वयमेव भी आते रहते हैं। समाचार-संपादक या मुख्य समाचारदाता का कर्तव्य होता है कि वह दैनंदिनी में अंकित करे कि अमुक कार्य अमुक समाचारदाता को करना है। नगरपालिकाओं, नगर-निगमों, विधान-सभाओं, संसद् भवनों तथा विभिन्न संस्थाओं की बैठकों की कार्यवाही के समाचार-संकलन के लिए समाचार-दाताओं या संवाददाताओं को भेजा जाता है। किसी राजनीतिक दल का उत्सव हो या कोई सरकारी सम्मेलन हो, या प्रेस-सम्मेलन हो या भेंटवार्ताएं —ये सब प्रत्याशित समाचारों की श्रेणी में आते है। खेलकूद, नाटक, चलचित्र या अन्य सांस्कृतिक गतिविधियों के समाचार पूर्व-निश्चित रहते हैं।

अप्रत्याशित समाचारों मे दुर्घटना, हत्या, आग, डकैती, चोरी, बलात्कार आदि के समाचार आते है। इस प्रकार के समाचारों के लिए समाचारदाता या संवाददाता को पुलिस स्टेशन, रेलवे स्टेशन, बस स्टैंड, अग्निशामक दल, अस्पताल, टाउनहाल आदि से संपर्क रखना अनिवार्य होता है। वह प्रतिदिन इन कार्यालयों का 'नयी खबर' के लिए चक्कर लगाता है या उनसे दूरभाष के माध्यम से संपर्क स्थापित करता है।

समाचार-पत्र इसी प्रकार के समाचारों का पुज होता है। इस पुज को समाचार-संग्राहक तथा समाचार-समितियां हस्तलिपि, टंकन, दूरमुद्रण, तार अथवा सामान्य डाक से समाचार-पत्र के कार्यालय तक पहुंचाती है, उप-संपादक इनका शोधन करते हैं और मुद्रणालय छापकर पाठक तक भेज देता है। प्रसिद्ध ब्रिटिश पत्रकार लार्ड नार्थ-क्लिफ के शब्दो मे समाचार-संग्राहक समाचार-पत्र को लिखता है, जबकि उपसंपादक उसे गढ़ता है, निखारता है। समाचार-संग्राहक समाचारों की खोज में सड़कों, गलियों और मुहल्लों में घूमता है, समाचार सूघता है, खोजता है, निकालता है और बनाता है। उसका प्रत्येक समाचार उप-संपादक के सम्मुख आता है, जिसे पढ़कर वह कभी मुस्कराता है तो कभी क्रुद्ध होता है। दोनों को ही स्तिथप्रज्ञ बनकर अपनी भूमिका निभानी पड़ती है। संवाददाता को मानसिक थकान के साथ-साथ शारीरिक थकान भी होती है, लेकिन वह उसकी परवाह नहीं करता। वह अपना दायित्व बड़ी कुशलता के साथ निभाता है। उसके समाचार कभी एटम बम की भांति विस्फोटक होते हैं तो कभी एकदम करुणाजनक!

अच्छे संवाददाता के गुण

एक अच्छे समाचारदाता का कार्य एक अच्छे साहित्यकार से बहुत भिन्न होता होता है। पत्रकारिता साहित्य को स्पर्श तो करती है, पर पूर्ण साहित्य नहीं बन सकती। संवाददाता किसी पत्र की आंख, कान और हाथ होता है। वह घटनाओं का अवलोकन करता है, वहां कही गयी बातों का 'श्रवण' करता है और फिर उसे लेखनी

के माध्यम से समाचार का रूप देता है।

जो व्यक्ति जीवन में खतरे मोल नहीं ले सकते, उन्हें इस व्यवसाय में नहीं आना चाहिए। जोखिम संवाददाता का आनंद है। वह किसी दुर्घटना या अपराध की तह में जाना चाहता है या युद्ध का वर्णन प्रत्यक्षदर्शी बन कर करना चाहता है। संवाददाता को लेखनी के धनी होने के साथ-साथ सहनशीलता, धैर्य, गोपनीयता, परिश्रम, चातुर्य, वाक्पटुता तथा दूरदर्शिता आदि गुणों से युक्त होना चाहिए।

समाचारदाताओं को प्रायः चार श्रेणियों में रखा जाता है—

(१) कार्यालय समाचारदाता—ये समाचार-पत्र कार्यालय के नियमित वेतन-भोगी होते हैं तथा नगर में उपलब्ध समाचारों का संकलन करते हैं।

(२) विशेष संवाददाता—यह समाचारों के संकलन के साथ उनका विश्लेषण एवं विवेचन भी करता है।

(३) मुफस्सिल या नगरेतर संवाददाता—ये नगर से बाहर के स्थानों के समाचार भेजते हैं।

(४) विदेश संवाददाता—ये किसी भी अन्य देश में रहते हैं और वहां के समाचार भेजते हैं।

दूसरे वेतन-आयोग ने संवाददाताओं को निम्नलिखित चार श्रेणियों में रखा है—

(अ) विशेष संवाददाता—ये समाचार-पत्र के सहायक संपादक, संपादकीय लेखक एवं समाचार-संपादक के समकक्ष होते हैं।

(आ) मुख्य कार्यालय संवाददाता—इन्हें अंग्रेजी में 'चीफ रिपोर्टर' कहते हैं, जो विशेष संवाददाताओं के बाद दूसरी श्रेणी मे आते हैं।

(इ) उपमुख्य कार्यालय संवाददाता या वरिष्ठ कार्यालय संवाददाता, तीसरे वर्ग में आते हैं।

(ई) चौथे वर्ग में कार्यालय समाचारदाता तथा संवाददाता आते हैं।

समाचार समितियों के समाचार-संग्राहकों का श्रेणी-विभाजन कुछ भिन्न प्रकार का है। यहां पहला वर्ग है—विशेष संवाददाताओं, मुख्य कार्यालय-संवाददाताओं तथा विदेश संवाददाताओं का। दूसरा है—वरिष्ठ संवाददाताओं तथा प्रधान संवाददाताओं का। तीसरा वर्ग है—संवाददाताओं तथा कार्यालय समाचारदाताओं का।

वेतन-आयोग द्वारा किये गये इस वर्गीकरण के अनुसार ही समाचार-पत्रों के कार्य निर्धारित होते हों ऐसी बात नही है। कई कार्यालयों में विशेष संवाददाता होते ही नहीं। वहां कार्यालय समाचारदाताओं और मुख्य कार्यालय-समाचारदाताओं को सारा कार्य-भार वहन करना होता है। छोटे पत्रों में तो बेचारे अकेले समाचारदाता को ही सारा कार्य करना पड़ता है। उसे टाउन हाल से लेकर अदालतों तक के चक्कर काटने होते हैं। बड़े पत्रों की आर्थिक स्थिति अच्छी होती है, अतः वहां अधिक संख्या में समाचारदाता तथा संवाददाता नियुक्त कर लिये जाते हैं, किंतु छोटे पत्रों में ऐसा संभव नहीं होता।[1]

१. रिपोर्टर के लिए सही हिंदी शब्द समाचारदाता है जबकि संवाददाता का सही अर्थ है Correspondent, किंतु अब दोनों के लिए मात्र संवाददाता शब्द का प्रयोग होने लगा है।

संवाददाता को 'आलराउंड', 'डायनेमिक' या 'हरफन मौला' होना चाहिए। उसके लिए प्रत्येक विषय का थोड़ा-बहुत ज्ञान आवश्यक है। उसकी दिलचस्पी राजनीतिक विषयों में जितनी गहरी हो, उतनी ही अपराधों की छानबीन में भी उसकी पैठ होना चाहिए। एक विषय-विशेष का संवाददाता किसी कारणवश अनुपस्थित होता है तो अन्य किसी भी संवाददाता को उससे भिन्न विषय की रिपोर्ट लेने के लिए भेज दिया जाता है। अतः प्रत्येक संवाददाता में प्रत्येक प्रकार का संवाद लिखने की क्षमता अपेक्षित है।

समाचार-स्रोतों का उपयोग

संवाददाताओं का कर्तव्य है कि समाचारों के स्रोतों की एक सूची तैयार करें। उन्हें यह पता होना चाहिए कि नगर का स्वायत्त-शासन किसके हाथ में है? पुलिस का सर्वोपरि अधिकारी कौन है? अस्पताल का इंचार्ज कौन है। कालेजों के प्रिंसिपलों के क्या-क्या नाम हैं? उन्हें नगर के प्रमुख उद्योगपतियों, वकीलों, बुद्धिजीवियों तथा सामाजिक कार्यकर्ताओं के बारे में भी जानकारी प्राप्त करनी चाहिए। संवाददाता की डायरी एक 'रेडीरेकनर' की भांति होनी चाहिए। उसके लिए नगर की सड़कों, गलियों तथा अन्य भौगोलिक परिस्थितियों का भी ज्ञान होना अपेक्षित है।

विक्टर 'अनंत' तथा कुछ अन्य संवाददाताओं ने समाचार-स्रोतों का उपयोग करने के निम्नलिखित तरीके बताये हैं —

१. सर्वप्रथम, संपर्क-सूत्र स्थापित करने चाहिए। लोकसभा हो या विधानसभा, विदेश मंत्रालय हो या कोई निजी कारखाना, सर्वत्र कोई न कोई सूचनाधिकारी होता है या कोई प्रमुख व्यक्ति वांछित सूचना-स्रोत बन सकता है।

२. जब एक बार संस्था का निरीक्षण एवं अध्ययन कर लिया गया तो फिर उसके मुखिया या मुखिया के निजी सहायक से मिलना चाहिए। कई बार बड़े अफसरों की अपेक्षा छोटे सहायकों से अधिक सूचनाएं मिल सकती हैं। बड़े अफसरों को किसी बड़े काम के लिए रखना चाहिए। हा, उनसे मिलना भी परम आवश्यक होता है। उनसे बार-बार समाचार पूछना अच्छा नही, केवल अनौपचारिक संबंध रखना पर्याप्त होगा।

३. संपर्क स्थापित करना जितना जरूरी है, उतना ही आवश्यक उन्हें अनवरत रूप से बनाये रखना है। यह नहीं समझना चाहिए कि अमुक व्यक्ति से एक बार काम निकल गया, दोबारा उसकी आवश्यकता ही नही पड़ेगी। उसका दूरभाष नंबर, पूरा पता तथा अन्य आवश्यक जानकारी डायरी में दर्ज रखनी चाहिए।

४. अपने संपर्क-सूत्र से आत्मीयता रखनी चाहिए। यदि वह आपके बारे में कुछ पूछना चाहे तो उसे निःसंकोच बता देना चाहिए। यह महसूस मत होने दीजिए कि आप कुछ छिपा रहे हैं।

५. चुगली से बचिए। इधर की उधर लगाना घृणित कार्य है। वैसे चुगलखोर एक दिन गिरफ्त में जरूर आ जाता है।

६. सभी दलों के अध्यक्षों से संपर्क बनाये रखना जरूरी है, किंतु याद रखिए,

आप स्वयं राजनीतिज्ञ न बन जायं। एक सच्चे पत्रकार के कर्तव्य का निर्वाह कीजिए। आपका कर्तव्य है—समाचार एकत्र करना, सही स्थिति जनता तक पहुंचाना और शासन तथा जनता के बीच एक अच्छा सेतु बनना।

७. संवाददाता को मनोविज्ञान तथा समाज-विज्ञान का भी अच्छा खासा अध्ययन करना चाहिए। उसे बच्चों के मनोविज्ञान से लेकर युवक और युवतियों के मानसिक अंतरपटल को समझने तक का ज्ञान होना चाहिए। स्मरण रखिए, कोई भी व्यक्ति भीड़ या समूह में जो व्यवहार करता है वह कई बार उसके निजी व्यवहार से भिन्न होता है। अतः उससे अकेले मे मिलना अधिक लाभप्रद होता है।

८. कभी-कभी आपको अपने सूचना-स्रोत को समाचारों से अवगत भी कराना पडता है। अच्छा होगा यदि वह समाचार पुष्ट एवं विश्वसनीय हो तथा किसी अधिकृत स्रोत से प्राप्त हुआ हो। अफवाह पर आधारित समाचार देकर भ्रमित करना गलत है।

९. राजनीतिक समाचारों के संकलन के लिए अन्य स्रोत भी होना चाहिए। कभी-कभी दो-तीन स्रोत मिलकर एक समाचार का निर्माण करते हैं। स्मरण रखिए, उनकी पुष्टि के लिए चैकिंग तथा पुनः चैकिंग आवश्यक है।

१०. अपने सूचना-स्रोत का विश्वास सदैव बनाये रखना चाहिए। स्रोत तथा अपने बीच हुई कोई भी अप्रकाशनीय ('आफ दि रिकार्ड') बात अन्यत्र बताना ठीक नही है। अपने सहकर्मी संवाददाता को भी नही बताना चाहिए।

११. विभिन्न संस्थाओं द्वारा प्रकाशित उद्योग समाचार बुलेटिन, पाठकों के पत्र तथा संस्थाओं के मुखपत्रों को देखते रहना चाहिए। प्रायः अनेक संवाददाता इस ओर ध्यान नही देते। एक अच्छे संवाददाता के लिए ये सब समाचारों के स्रोत बन सकते हैं।

१२. अन्य संवाददाताओं से समाचार लेने के बजाय स्वयं समाचार एकत्र करना श्रेयस्कर होता है। भारतीय पत्रकारो के 'समूहों' की भांति लंदन की 'फ्लीट स्ट्रीट' के पत्रकार भी प्राय ऐसा ही करते हैं। यही कारण है कि अनेक पत्रों में एक-जैसे समाचार प्रकाशित होते हैं।

१३. प्रत्येक संवाददाता को प्रेस एक्ट, सेंसर नियमों तथा अन्य सभी प्रकाशन संबंधी बातों की जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिए।

छह ककार (पांच डब्ल्यू तथा एक एच)

१८८० से पूर्व समाचार-लेखन की कोई वैज्ञानिक पद्धति नहीं थी। संवाददाता दैनिक घटनाओं को कालक्रमानुसार रख कर अपने कर्तव्यों की इतिश्री मान लेते थे। व्यवस्थित रूप में उनका आख्यान उनका मंतव्य नही होता था। शनैः-शनैः समाचार-पत्रों का प्रसार होता गया। समाचार-पत्र में स्थान का महत्व बढा और मूल्य का भी। अतः समाचारो को व्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत किया जाने लगा। एडविन एल० शूमैन ने १८९४ में अपने 'प्रैक्टिकल जर्नलिज्म' नामक ग्रंथ में पत्रकारिता के इन विशिष्ट तथ्यों की ओर सर्वप्रथम इंगित किया।

रुडयार्ड किप्लिंग ने सर्वप्रथम समाचार-लेखन के पांच डब्ल्यू तथा एक एच को उल्लेख किया (इन्हें हिंदी में छह ककार कहते हैं।) ये छह तथ्य आज भी न केवल समाचार-संकलन जगत के प्रत्युत पत्रकारिता-जगत के भी आधार स्तंभ हैं —

१. क्या हुआ, अर्थात क्या घटना घटित हुई ?

२. कहां हुआ, अर्थात किस स्थान पर घटना घटित हुई ?

३. कब हुआ, अर्थात किस समय घटना घटित हुई ?

४. किसने घटना घटित की, अर्थात किसके साथ क्या घटना घटित हुई ?

५. क्यों घटना घटित हुई अर्थात घटना का क्या कारण था ?

६. कैसे घटना घटित हुई ?

यह आवश्यक नहीं कि किसी समाचार-विवरण या संवाद-लेखन में इन सभी तथ्यों का समावेश हो, किंतु इन सबको दृष्टि में रखकर इनमें से अधिकांश के उत्तर दे सकना ही समाचार-संग्राहक की सब से बड़ी सफलता होती है।

पीछा करना

अधूरे समाचारों के शेष तथ्यों का संग्रह करके उन्हें पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करना 'पीछा, करना कहलाता है—यह कार्य चाहे एक दिन में संपन्न हो चाहे अधिक दिनों में। उदाहरण के लिए, मैचों के विवरण या हत्याकांड की जांच आदि। इसे पत्रकारिता की भाषा में 'फालो-अप' या अनुवर्त्तन पद्धति कहते हैं। इसका मतलब यही होता है कि किसी भी समाचार के तब तक पीछे पड़े रहना, जब तक कि वह खत्म न हो जाय।

यदि किसी समाचार में पाठकों की रुचि जागृत हुई हो तो समाचार-पत्र का कर्तव्य हो जाता है कि उस समाचार के और अधिक विवरण प्रस्तुत करे। संवाददाता को तब और अधिक अन्वेषण करता पड़ता है। वह गहराई में जाकर समाचार संकलित करता है और समाचार लिखकर उप-संपादक की मेज तक पहुंचा देता है।

योजनाओं के प्रारूप, भवन-निर्माण, वित्तीय लक्ष्य आदि के ब्योरे दिन-प्रतिदिन दिये जा सकते हैं। यदि प्रतिदिन ऐसा संभव न हो तो कुछ दिनों के अंतराल से उन्हें प्रस्तुत किया जा सकता है। अदालतों के प्रमुख मुकदमों का आवर्तन अपेक्षित होता है। हाल ही में विद्या जैन हत्याकांड के मुकदमे का फैसला सुनाया गया था। उसे अखबारों में लीड मिली। साप्ताहिक पत्रों ने इंटरव्यू छापे। दिन पर दिन नयी-नयी बातें सामने आती रहीं।

हमारे यहां बहुत-से समाचार इसलिए महत्वपूर्ण नहीं लगते कि उन्हें सही ढंग से प्रस्तुत नहीं किया जाता। इसका अर्थ यह हुआ कि उनका ठीक प्रकार से पीछा नहीं किया गया। उदाहरणार्थ देखिए एक समाचार—

> " बेकार खाद्यान्नों को पशुओं को खिलाने तथा अन्य उपयोग के लिए एक राष्ट्रीय संस्थान की स्थापना की गयी है। खाद्य एवं कृषि मंत्रालय ने इस संबंध में एक अध्ययन-दल के निर्माण की सिफारिश की है।
>
> " आठ सदस्यों के इस दल के अध्यक्ष भारतीय पशु-चिकित्सा अनुसंधान संस्थान

के भूतपूर्व निदेशक डा० एन० डी० केहर होंगे। यह दल मुर्गी-पालन के लिए खाद्यान्नों के उपयोग का अध्ययन करेगा।"

इस खबर में कई बातें छूट गयी हैं या इस समय नहीं कही गयी हैं लेकिन एक प्रबुद्ध पाठक उन्हें जानना चाहेगा। जैसे देश में बेकार खाद्यान्न क्या-क्या होते हैं? उनकी मात्रा कितनी होती है? पशुओं की कुल संख्या कितनी है? उन्हें यह खाद्यान्न खिलाने का क्या असर होगा? मुर्गी-पालन के लिए बेकार खाद्यान्न की क्या उपयोगिता है—आदि अनेक रोचक तथ्यों का पता लगाकर एक संवाददाता अगले दिन या किसी आगामी अवसर पर इस विषय में एक विस्तृत समाचार दे सकता है। यह तभी हो सकता है जबकि समाचारों का पीछा किया जाय। इस पद्धति के द्वारा पाठक को न केवल पूरे समाचार मिलते हैं बल्कि समाचारों में उसकी रुचि भी बनी रहती है।

फरवरी मास के अंतिम दिन में अगले वर्ष का बजट तैयार हो जाता है। यद्यपि बजट की प्रति गोपनीय रखी जाती है किंतु एक सुलझा हुआ पत्रकार अगले करों के बारे में कुछ न कुछ भांप ही लेता है।

विज्ञापन, नगरपालिकाओं के नोटिस, श्रम अदालतों के फैसले आदि से अनेक अनुवर्तन समाचार बनाये जा सकते है।

पत्रकार-परिषद

पत्रकार-परिषद या पत्र-प्रतिनिधि सम्मेलन में जाने से पूर्व संवाददाता को विषय का अच्छा अध्ययन कर लेना चाहिए। ऐसा न हो कि वह जो प्रश्न पूछ रहा है उसकी मूल बातें भी ठीक से न जानता हो। इस संबंध में कुछ आवश्यक निर्देश ये हैं—

१. पत्रकार-परिषद में एक या दो से अधिक प्रश्न मत पूछिए।

२. पहले से ही तैयारी करके जाइए।

३. बैठने के लिए अच्छा स्थान ग्रहण कीजिए ताकि आपकी बात वक्ता तक आसानी से पहुंच सके।

४. परिषद शुरू होने से कुछ समय पूर्व पहुंचना अच्छा है।

५. 'हां' या 'ना' के उत्तरों से बचने के लिए घुमा-फिराकर अपनी बात निकलवाने की चेष्टा कीजिए। वक्ता, विशेष रूप से राजनीतिज्ञ, बड़े संक्षिप्त और सधे हुए उत्तर देते हैं। अतः संवाददाता की विशेषता इसी मे है कि वह अपने स्रोत को अपनी ओर आकर्षित करके उससे बात कहलवा सके।

६. "मैं तो समझता हूं कि यह बात यों होगी" या "मेरा ख्याल है इस विषय का अर्थ यह है—आपका क्या विचार है?" ऐसे वाक्यों से जो प्रश्न पूछा जायगा वह सही दिशा में नहीं जायगा। अतः सीधा उत्तर प्राप्त करने के लिए "क्या यह तथ्य सही है?" या "क्या यह बात सत्य है" कहना अधिक उपयुक्त होगा।

७. वक्ता से बहस न कीजिए, अन्यथा वह नाराज होकर अन्य प्रश्नों का भी उत्तर नहीं देगा।

८. देखने में आया है कि कुछ पत्रकार प्रश्न पूछने से पूर्व लंबी-चौड़ी भूमिका बांधते हैं और तब कहीं असली प्रश्न पूछते हैं। शायद वे समझते हैं कि इससे वक्ता

तथा उनके साथियों पर उनकी विद्वता का प्रभाव पड़ता है, किंतु होता उल्टा है क्योंकि कभी-कभी वे प्रश्न के साथ ही उसका उत्तर भी दे जाते हैं। यह तरीका गलत है।

९. एक बार एक ही संवाददाता को बोलना चाहिए।

१०. एक-दूसरे की बात काटने का प्रयास अशोभनीय है।

११. संवाददाता को चाहिए कि अपने एक-दो प्रश्नों को ही इस ढंग से प्रस्तुत करे कि वह वक्ता पर छा जाय।

१२. उल्लेखनीय है कि कुछ वक्ता सीधे प्रश्न पूछने की परिपाटी पसंद करते हैं और कुछ पहले संक्षिप्त भाषण देते हैं। उदाहरणार्थ, जवाहरलाल नेहरू संवाददाताओं से सीधे प्रश्न पूछने के लिए कह देते थे, जबकि लालबहादुर शास्त्री पहले संक्षिप्त भाषण करते थे और तब संवाददाताओं के प्रश्नों के उत्तर देते थे। संवाददाता को दोनों प्रकार की स्थितियों का सामना करने के लिए तैयार रहना चाहिए।

१३. प्रत्येक संवाददाता को प्रयास करना चाहिए कि वह अपने ढंग से 'इंट्रो' देने के लिए प्रश्न पूछे। दूसरे की नकल करना भद्दा तरीका है। हां, यदि लीड या 'इंट्रो' किसी अन्य पत्रकार के प्रश्न में आ चुकता है तो उसका प्रश्रय लेना ही पड़ता है किंतु उसे भी अपने ढंग से लिखना चाहिए।

१४. स्मरण रखिए, संवाददाता न तो किसी का प्रचारक होता है और न ही मूर्तिभंजक। उसे नीर-क्षीर विवेक से काम लेना चाहिए और अपने ढंग से संवाद लिखना चाहिए।

'न्यूयार्क टाइम्स' के क्लिफटन डेनियल ने लिखा है कि जब निकिता ख्रुश्चोफ संयुक्तराष्ट्र अमेरिका पहुचे तो सभी अमेरिकन पत्रो ने उनका विरोध किया और उनके बारे में कुछ नही छापा। उन दिनों रूस और अमेरिका के संबंध परस्पर सौहार्दपूर्ण नहीं थे। ख्रुश्चोफ के समाचार के प्रकाशन का अर्थ था—अराष्ट्रीयता। "मेरे भीतर जो सही पत्रकार बैठा था उसने स्वस्थ दिशा में चिंतन किया। फलतः मैंने एक २७ कालम का संवाद तैयार किया और ख्रुश्चोफ का चित्र 'टाइम्स' के मुखपृष्ठ पर प्रकाशित कर दिया। इस पर जो प्रतिक्रियाए मुझे अपने देशवासियो से सुननी पड़ी, उनमे हमारे रूसी मेहमानों को गालिया तक दी गयी थी।"

वास्तव में अच्छे पत्रकार का कर्तव्य यही है कि वह अपने व्यवसाय के साथ ईमानदारी बरते, उसके पाठक यदि सही दिशा में नहीं सोचते तो उनको दिशा प्रदान करे। एक बार दिल्ली दूरदर्शन पर किसी प्रसिद्ध साप्ताहिक-पत्र के प्रधान संपादक ने यह कहा था कि मैं तो वही सामग्री प्रकाशित करता हूं जिसे मेरा पाठक पसंद करता है। वास्तव में हमारे पत्रकारों को अभी बहुत कुछ सीखना है। वे सरकार या उद्योगपतियों की कठपुतली नहीं हैं और न ही सस्ती लोकप्रियता के वाहक। उन्हें तो स्वस्थ समाज का निर्माण भी करना है। नग्न अथवा अर्धनग्न चित्रों को सैक्स सामग्री के साथ छापकर वे सस्ती वाहवाही भले ही लूट लें किंतु इससे उनके व्यवसाय की पवित्रता कलंकित हुए बिना न रहेगी।

कुछ संवाददाता भी बलात्कार तथा यौन-अपराधों के समाचार विस्तार के साथ लिखते हैं और उप-संपादक भी उनमें लोकप्रियता की गंध पाकर कुछ न कुछ और

नमक-मिर्च मिला देते हैं। प्रधान संपादक को यह सब देखने का अवसर ही कहां है ? अतः यह सामग्री काफी 'गर्मागर्म' बनकर बाजार में जाती है। खूब बिकती है। युवक-युवतियों पर इसका क्या प्रभाव पड़ता है, इसकी वे लेशमात्र भी चिंता नहीं करते।

संवादों के प्रकार

संवादों के कुछ प्रमुख प्रकारों को हम निम्नलिखित वर्गों में विभाजित कर सकते हैं—

१. दुर्घटना-संवाद
२. अपराध-संवाद
३. युद्ध-संवाद
४. संसदीय संवाद
५. विविध संवाद

दुर्घटना-संवाद

बस-ड्राइवर ज्यों ही बस के अड्डे से अपनी बस बाहर निकालने को होता है, उसे कई बड़े-बड़े बोर्ड दिखायी पड़ते हैं—-

'आज दुर्घटना न हो।'
'बैटर लेट दैन नैवर।'
'सावधानी से चलिए।' आदि-आदि।

किंतु इन सब के बावजूद दुर्घटनाएं होती है। उनका न कोई समय निर्धारित होता है और न स्थान। वे अपनी गलती से हों या किसी अन्य व्यक्ति की, दुर्घटना तो दुर्घटना ही है।

दुर्घटना यदि संवाददाता स्वयं अपनी आंखों से देख पाता है तो उसके वर्णन में सत्य का पुट अधिक रहता है। वह अपने संवाद को जीवंत रूप में लिखता है। उसका यह अनुमान निःसंदेह रोमांचकारी होता है। दुर्घटनाएं कई प्रकार की होती हैं, जिनमें मुख्य हैं—

१. विमान दुर्घटना
२. रेल दुर्घटना
३. सड़क दुर्घटना
४. अन्य वाहन संबंधी दुर्घटनाएं
५. अग्निकांड
६. भूकंप
७. बाढ़ तथा प्राकृतिक प्रकोप

सभी प्रकार की दुर्घटनाओं में हताहतों की संख्या, स्थान, समय, कारण तथा बचाव-संबंधी विवरण अपेक्षित होते हैं। हताहतों में स्त्री-पुरुष तथा बच्चों की संख्या पृथक्-पृथक् देनी चाहिए। क्या दुर्घटना में कुछ लोग बाल-बाल बचे ? कितने अस्पताल भेज दिये गये ? यदि संभव हो तो उनसे साक्षात्कार पर आधारित समाचार भी एकत्र

करना वांछनीय होता है। दुर्घटनाग्रस्त लोगों के नाम तथा पते दिये जायं तो अच्छा होगा। पुलिस के कथन उद्धृत किये जा सकते हैं। क्या किसी ड्राइवर या कंडक्टर की गिरफ्तारी हुई है ? इसका उल्लेख भी करना चाहिए। अस्पताल जाकर डाक्टर का बयान लेना उपयुक्त होगा। उसे ही प्रमाण मानना चाहिए। दुर्घटना संबंधी समाचारों का संकलन करते समय संवाददाता का ध्यान मानवीय पक्ष पर जरूर जाना चाहिए। जैसे कि पाठकों को यह जानकर गहरा संतोष मिलता है कि दुर्घटना के समय एक नव-विवाहित जोड़े में से जो पति उछलकर खिड़की के बाहर गिर पड़ा था, वह बेहोश ही हुआ है, मरा नहीं या ध्वस्त हुए हवाई जहाज में सीट पर बैठी मा तो दहशत के कारण मर गयी किंतु उसकी गोद में पड़े हुए बच्चे को एक खरोंच तक नही आयी।

हम यहां विगत ११ जून की एक विमान दुर्घटना का संवाद प्रस्तुत कर रहे हैं यह संवाद १२ जून १९७५ के 'नवभारत टाइम्स' के मुखपृष्ठ पर छपा था—

"बंबई में विमान जला"

"हांगकांग से बरास्ता बंबई होकर जाने वाला एयर फ्रास का एक विमान बोइंग ७४७ आग लग जाने से आज सुबह ढाई बजे के लगभग सांताक्रुज हवाई-अड्डे पर पूरी तरह जलकर नष्ट हो गया। जलते हुए जहाज से निकलने के प्रयत्न में चार यात्रियों के घायल होने का समाचार है।

"विमान में ३७४ यात्री एवं १८ कर्मचारी थे। बंबई से १४२ यात्रियों को लेने के बाद जब यह विमान उड़ने की तैयारी कर रहा था तभी विमान-चालक ने आग लगने की सूचना दी और विमान को रोक दिया। यात्रियों ने तुरंत उतरना शुरू कर दिया। विमान के चारों इंजन चालू होने के कारण तात्कालिक अग्निसेवा भी शीघ्र आग बुझाने में सफल न हो सकी।

"मामूली रूप से घायल हुए चारों यात्रियों को पास ही के नानावती अस्पताल में दाखिल करा दिया गया है। जहाज और सारा सामान पूरी तरह नष्ट हो गया। बंबई से चढ़े हुए यात्रियों को वापस भेज दिया गया और अन्य यात्रियों को होटलों में ठहरा दिया गया है। रनवे सभी उड़ानों व आने वाले विमानों के लिए बंद कर दिया गया है।

"नागरिक विमानीय विभाग के क्षेत्रीय निदेशक श्री एच० डी० कृष्णप्रसाद सहित अन्य उच्चाधिकारियों एवं भारत के अंतर्राष्ट्रीय विमान-विभाग के कार्यवाहक निदेशक श्री जी० एन० लोकरे ने हवाई अड्डे पर जाकर निरीक्षण किया। एक प्रवक्ता के अनुसार टायर के फट जाने को घटना का कारण बताया गया है।"

इस समाचार में हमें प्रायः छह ककारों का उत्तर मिल जायगा।

१. क्या ? विमान दुर्घटना।

२. कहां ? बंबई में।

३. कब ? १२ तारीख को सुबह ढाई बजे।

४. कौन ? ३७४ यात्री एवं १४ कर्मचारी।

५. क्यों ? टायर फटना।

६. कैसे ? शेष समाचार देखिए।

उक्त विश्लेषण से स्पष्ट हो जाता है कि अच्छे संवाददाता को पूरे तथ्यों से अवगत होने के बाद ही समाचार लिखना चाहिए। यदि अग्निकांड का संवाद देना है तो उसके लिए अग्निशामक दल से पूरे विवरण प्राप्त करने होंगे। आग लगने का कारण जानने के बाद हानि के आंकड़े जानना चाहिए। आग कब लगी? कितनी देर बाद अग्निशामक दल बुझाने के लिए घटनास्थल पर पहुंचा? इसी संदर्भ में कई साहसभरी घटनाएं भी एकत्र की जा सकती हैं।

प्राकृतिक प्रकोपों के संवाद लिखते समय जान-माल के विवरण अवश्य देना चाहिए। हाल ही में पटना में बाढ़ आयी। उसका मार्मिक चित्र प्राय: सभी पत्रों ने रोमांचकारी ढंग से प्रस्तुत किया। बाढ़ के विवरण देते समय नदियों के नाम दिये जाना चाहिए। मकान, स्कूल, सार्वजनिक स्थान, मवेशी, सभी की स्थिति का विस्तार से वर्णन होना चाहिए। भूकंपों के वर्णन भी कुछ-कुछ इसी प्रकार से लिखने होंगे।

अपराध-संवाद

अपराध का अर्थ है—प्रचलित कानून का उल्लंघन करना। किसी की जेब काट ली गयी। अमुक व्यक्ति को छुरा मार दिया गया। एक युवती के साथ बलात्कार किया गया। किसी दु:खी ने आत्महत्या कर ली। तस्करी करते हुए कुछ सफेदपोश गिरफ्तार। अमुक गांव में डाका पड़ गया। सेंध लगाकर चोरी की गयी, आदि-आदि। ये सब अपराधों के विभिन्न रूप हैं जिनका विवरण घटनास्थल पर जाकर प्राप्त किया जा सकता है। थाना, कचहरी अथवा जेल से उपयुक्त जानकारी प्राप्त की जा सकती है। हत्या संबंधी मामलों में समाचार की गंभीरता और बढ़ जाती है। अत: मृतक का नाम, आयु तथा वेशभूषा आदि का विवरण देना चाहिए। अपराध का स्थान, समय, कारण आदि अन्य समाचारों की भांति ही दिये जाना चाहिए। गिरफ्तार व्यक्तियों के नाम भी देने उपयुक्त होंगे। यहां एक सावधानी यह रखनी चाहिए कि अपराध संबंधी तथ्यों को बिल्कुल निष्पक्ष ढंग से रखा जाय। किसी व्यक्ति को मुजरिम सिद्ध करने या बरी करने का काम संवाददाता का नहीं है। अपराध-समाचारों में व्यक्तिगत पूर्वग्रहों को समाविष्ट करने का मतलब है संबंधित लोगों की जान से खिलवाड़ करना।

चोरी तथा डकैती के संवाद-लेखन में पुलिस काफी सहायता कर सकती है। उल्लेखनीय है कि प्राय: सभी विभागों में सूचना-अधिकारी होते हैं जो बहुत कुछ सामग्री प्रदान कर सकते हैं।

वेश्यावृत्ति, सांप्रदायिक दंगे, आगजनी आदि भी अपराध संवाद-लेखन के ही अंग हैं। पाठक की रुचि अपराध संबंधी समाचार पढ़ने में इसलिए नहीं होती कि वह अपराधी बनना चाहता है बल्कि इसलिए होती है कि वह सावधान रहे। 'कहीं यह वारदात मेरे साथ हो गयी होती तो?', 'हे प्रभु कैसे-कैसे लोग हैं?', 'बहुत बुरा हुआ', 'अच्छा हुआ, जैसी करनी वैसी भरनी!' आदि कई प्रकार के वाक्य पाठक के मुख से अनायास ही निकल पड़ते हैं।

इसी संदर्भ में अदालतों के समाचार आते हैं। मुकदमों के संवाद-लेखन के लिए संवाददाता को न्यायालयों में जाना पड़ता है। स्मरण रहे, न्यायालयों की मानहानि से

बचने के लिए शिष्टाचारों, नियमों आदि का ज्ञान होना अत्यंत आवश्यक है। हाल ही में विद्या जैन हत्याकांड का फैसला सुनाया गया। सारे संवाददाताओं ने अपना विवरण बड़ी सावधानी के साथ प्रस्तुत किया।

युद्ध-संवाद

महाभारत के संजय को यदि हम विश्व का पहला रिपोर्टर मानें तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। विश्व के महत्तम युद्ध-संवाददाता विंस्टन चर्चिल की चर्चा करते हुए हम शुरू में ही बता चुके हैं कि उन्होंने किस प्रकार युद्धबंदी बनकर सही समाचार उपलब्ध किये। कुछ अन्य सुप्रसिद्ध युद्ध-संवाददाताओं अथवा लेखकों के नाम हैं— जोमिनी क्लाइटिज, मैक्यावली, फुलर लिडिल हार्ट, मांटगुमरी, कोलिन तथा मोकलिन आदि। द्वितीय महायुद्ध के समय श्री डी० आर० मनकेकर तथा १९७१ के बंगलादेश स्वातंत्र्य-संग्राम के समय डा० धर्मवीर भारती ने युद्ध संवाद-संकलन और लेखन के उत्कृष्ट कीर्तिमान स्थापित किये थे।

युद्ध की सर्वप्रमुख नीति यह है कि दुश्मन को हमारी गतिविधियों का पता न चले। हमारी युद्ध-संचालन नीति गोपनीय बनी रहे। हमारे अस्त्र-शस्त्रों के बारे में उसे भनक तक न पड़े। लेकिन पत्रकारिता की स्थिति इससे विपरीत होती है। अतः यहां से प्रतिबद्ध पत्रकारिता का जन्म होता है। युद्ध-संवाददाता को कतिपय मर्यादाओं का पालन करना पड़ता है। युद्ध सरकारी स्तर पर लड़े जाते हैं, अतः युद्ध-संवाददाताओं को पूर्वमेव प्रशिक्षण दिये जाते हैं।

युद्ध-संवाददाताओं के लिए निम्नलिखित बातों का पालन करना अनिवार्य होता है—

१. गोपनीयता बरतना।

२. सही खबरें पाठक तक पहुंचाना।

३. सैनिक वर्दी पहनना। उल्लेखनीय है कि प्रत्येक युद्ध-पत्रकार को कोई न कोई रैंक दिया जाता है। उसे अपने रैंक के अनुसार वर्दी पहननी पड़ती है तथा सैन्य शिष्टाचार का पालन करना पड़ता है।

४. अपने लिखित समाचार पहले गुप्तचर विभाग के अधिकारी को दिखाना, जो उसे पढ़ने के बाद प्रकाशन के लिए अनुमति देता है।

५. सूचना-विभाग के क्रियाकलापों से परिचित होना। युद्ध-भूमि तक ले जाने के लिए भारत सरकार के प्रशिक्षित सूचनाधिकारी तैयार रहते हैं।

६. सेना के रैंकों, कार्यों तथा अन्य आवश्यक बातों का पूरा परिचय प्राप्त करना।

७. इस बात को समझ लेना कि सब से पहले बेसकैंप में वरिष्ठ अधिकारी युद्ध संबंधी सूचनाएं देता है। फिर एक स्थिति-विवरण (सिटरेप) तैयार किया जाता है जो बटालियन से ब्रिगेड, ब्रिगेड से डिविजनल मुख्यालय और अंततः कमांड मुख्यालय भेजा जाता है।

८. कुछ कोड शब्दों की जानकारी प्राप्त करना।

९. जनता का मनोबल बनाये रखने के लिए उत्साहवर्धक समाचार लिखना।

१०. संतुलित समाचार देना। जब युद्ध में हार होती है तब प्रेस ही बड़ा आलोचक होता है। लेकिन युद्ध संवाददाता यदि संतुलित समाचार दे तो हार भी जीत में बदल जाती है। अत: उसका बहुत बड़ा दायित्व है।

युद्ध में तीन प्रकार के मोर्चों की ओर प्रत्येक युद्ध-संवाददाता का ध्यान जाना आवश्यक होता है—

१. स्क्रीनिंग ग्राउंड--इसे छोड़ने पर कोई विशेष अंतर नहीं पड़ता। युद्ध में शत्रु को चकमा देने के लिए भी ऐसे कुछ स्थान खाली कर दिये जाते हैं।

२. वाइटल ग्राउंड—इन्हें छोडना हितकर नहीं होता। भारतीय सेना ने शत्रु को मुनव्वर तवी नदी पार नही करने दी। डेरा बाबा तथा छंब-जौरिया की लड़ाई भी इसीलिए इतनी घमासान और भयंकर थी।

३. टारगेट ग्राउंड—यह लड़ाई सर्वाधिक महत्वपूर्ण होती है। इसकी रक्षा के लिए प्राणों की बाजी लगानी होती है। चिनाव का पुल बचाने के लिए हमारे जवान जान पर खेल गये थे। वास्तव में अमृतसर का भी उतना सामरिक महत्व नहीं है, जितना रावी तथा चिनाब के पुलों का है।

उपर्युक्त तथ्यों के परिप्रेक्ष्य में ही युद्ध-संवाद लिखने पड़ते हैं। हां, कभी-कभी इन संवादों में शहद के माधुर्य का आनंद भी मिलता है। उदाहरणार्थ, शकरगढ़ में गन्ना अधिक होता है। रास्ता खराब था। अत: उस पर हमारे सैनिकों ने गन्ने बिछा दिये। किसी संवाददाता के दिमाग मे एक बढ़िया विचार आया—'स्वीटेस्ट रोड आन अर्थ (धरती की सब से मीठी सड़क)।...और उसी पर उसने एक मजेदार संवाद लिख भेजा।

पिछले युद्ध में भारतीय पत्रों में सब से सुंदर शीर्षपंक्ति 'स्टेट्समैन' की रही, जिसमें लिखा था--'इट इज वार' (यह युद्ध है) अथवा 'युद्ध शुरू हो गया'। बड़ा सीधा-सादा शीर्षक था और सर्वाधिक प्रभावशाली।

युद्ध-संवादों में शौर्य, साहस तथा मनोबल बनाये रखने की कहानियों के अतिरिक्त मानवीय रुचियों पर आधारित छोटे-बड़े समाचार तैयार करते रहना चाहिए। हां, इतना अवश्य ध्यान रखें कि जब तक सूचनाधिकारी पूरी रिपोर्ट की व्याख्या न करे तब तक संवाद न लिखा जाय अन्यथा गलती रहने की संभावना रहेगी।

संसदीय संवाद

संसद या विधानसभाएं शब्दों के कारखाने कहलाती हैं, जहां दुनिया का प्रत्येक विषय, किसी न किसी रूप में टपक पड़ता है। यद्यपि प्रतिदिन की कार्यवाही की विवरण पुस्तिका छापी जाती है, किंतु उसको ज्यों का त्यों समाचार-पत्रों में नहीं दिया जा सकता; केवल साराश ही दिये जा सकते हैं और वे भी रोचक, ज्वलंत, उपयोगी और समाचार की महत्ता के अनुसार।

संसदीय संवाददाता का कर्तव्य है कि वह पहले संसद तथा विधान-सभाओं के गठन का पूरा परिचय प्राप्त करे। उसे सरकारी तथा विरोधी पक्षों के बारे में पता होना

चाहिए। कब अधिवेशन बुलाये जाते हैं ? कौन बोला ? क्या विषय था ? बहस कितनी देर चली। उपलब्धियां क्या रहीं। यदि बजट पर बहस थी तो किन आम चीजों पर छूट दी गयी ? क्या संशोधन हुए ? शून्यकाल क्या होता है ? विधायकों का व्यवहार कैसा था। इत्यादि सभी बातें इस प्रकार के संवाद-लेखन का अंग बनती हैं।

संवाददाता यदि राजनीतिशास्त्र का ज्ञाता है तो उसे और अधिक सुविधा रहेगी। उसे पांच घंटे की कार्यवाही १००० शब्दों में लिखनी पड़ती है और उसमें भी मूल बातें नहीं छोड़ी जा सकतीं। किसी समाचार से संसद की मानहानि न हो इस बात का भी उसे पूरा ध्यान रखना होता है। उल्लेखनीय है कि संवाददाता को स्पीकर के निर्णय की आलोचना का कोई अधिकार नहीं है। वह अपनी खबर में उसका न तो विरोध ही कर सकता है और न ही उसे तोड़-मरोड़ कर हास्यास्पद बना सकता है।

अच्छे संसदीय संवाददाता के लिए यह आवश्यक है कि उसमें लंबे समय तक बैठने और सुनने का धैर्य हो। प्रायः यह देखा जाता है कि प्रश्नोत्तर-काल में पत्रकार-दीर्घा खचाखच भरी रहती है और ज्यों ही गंभीर बहस प्रारंभ होती है, संवाददाता या तो बाहर चले जाते है या दीर्घा में बैठे-बैठे ऊंघते हैं। नतीजा यह होता है कि संसद की उत्तेजनात्मक कार्यवाही को, जो प्रायः प्रश्नोत्तर-काल में होती है, अखबारों में अनावश्यक महत्व मिलता है। जो संवाददाता धैर्यपूर्वक सदन की दीर्घा में बैठने और सुनने के अभ्यस्त है, उनकी संसदीय नियमों, शिष्टाचार तथा राजनीति संबंधी जानकारी कई संसत्सदस्यों से भी अधिक होती है और उसकी झलक उनके द्वारा प्रदत्त समाचारों में स्पष्ट दिखायी देती है।

यह ठीक है कि संसदीय संवाददाता का प्रथम कर्तव्य कार्यवाही की यथावत रिपोर्टिंग करना है किंतु यदि वह संसदीय मामलों का अच्छा जानकार है तो वह अपनी संसद-समीक्षा के द्वारा सदन के विचारार्थ अनेक नये सुझाव, नये प्रस्ताव तथा गुत्थियों के सर्वस्वीकार्य हल प्रस्तुत कर सकता है।

एक कुशल संसदीय संवाददाता केवल दीर्घा में ही नहीं बैठता है बल्कि सत्तारूढ़ और विरोधी दलों के संसत्सदस्यों से प्रत्यक्ष एवं घनिष्ठ संपर्क भी स्थापित करता है ताकि वह सदन में कहे जाने वाले प्रत्येक शब्द के निहित अर्थ को भली भांति समझ सके तथा आवश्यकता होने पर किसी बात को, जो किसी कारण से सदन में नहीं कही गयी हो, बाद मे व्यक्तिगत संपर्क के कारण उगलवा सके। इस कार्य के लिए संसद का केंद्रीय कक्ष अत्यंत उपयुक्त स्थान है किंतु उसमें केवल वरिष्ठ संवाददाताओं को ही जाने दिया जाता है।

आजकल प्रत्येक मंत्रालय के साथ संसत्सदस्यों की एक सलाहकार समिति जुड़ी रहती है। इसमें सबंधित विषय पर खुलकर बहस होती है। इसके संवाद निकालना कठिन भी हैं और उत्तरदायित्वपूर्ण भी। अमेरिकी कांग्रेस की समितियों की तरह इन समितियों की कार्यवाही में जनसाधारण भाग नहीं ले सकते, पत्रकार भी नहीं। अतः इनके विशिष्ट समाचार वही संवाददाता निकाल पाता है, जिसके संसत्सदस्यों और अफसरों से घनिष्ठ संपर्क हों। गोपनीय होने के कारण इन समाचारों के प्रति जनता में

अपेक्षाकृत अधिक जिज्ञासा होती है।

सेंसर अथवा आपात्कालीन स्थिति में प्रेस की सीमाएं सिकुड़ जाती हैं। संवाददाता को कई बार केवल श्रोता ही बनकर रह जाना पड़ता है। उसे जो बनी-बनायी रिपोर्ट मिलती है उस पर ही वह अपने समाचार की आधारशिला रखता है। अतः सेंसर के नियमों का पालन करने के लिए उन्हें भली भांति पढ़ लेना चाहिए।

विविध संवाद

विभिन्न प्रकार के संवादों के संकलन की कला में जो आवश्यक तत्व प्रारंभ में बताये गये हैं वे तो लागू होते ही हैं किंतु प्रत्येक प्रकार के संवाद के अपने गुर होते हैं। शास्त्रीय संगीत-सम्मेलन का संवाद-लेखन वह व्यक्ति कैसे कर सकता है, जिसे राग मालकौस और यमन का अंतर पता नहीं है या जिसने पलुस्कर, कुमार गंधर्व या गंगूबाई हंगल का नाम भी नहीं सुना है। इसी प्रकार दिल्ली जैसे शहर मे होने वाले अनेक अंतर्राष्ट्रीय स्तर के परिसंवादों, सम्मेलनों और गोष्ठियों का संवाद-लेखन करने के लिए या तो जानकार लोगों को नियुक्त किया जाता है या जो लोग नियुक्त किये जाते हैं उन्हें विशेष तैयारी करनी पड़ती है। वास्तव में ऐसे अवसरों पर पत्र के संपादक के विवेक की परीक्षा होती है। उसे अपने गिने-चुने सहकर्मियों मे से खास-खास विषयों का संवाद-लेखन करने के लिए उपयुक्त व्यक्तियों को चुनना पड़ता है। वस्तु-स्थिति तो यह है कि हिंदी के बड़े-बड़े समाचार-पत्रों के पास भी ऐसे संवाददाता और समाचारदाता नहीं है जो हिंदी के अलावा अन्य भारतीय और विदेशी भाषाएं साधिकार जानते हों तथा उन्हें अर्थ-नीति, कला, रण-नीति, विज्ञान, विदेश-नीति, समाजशास्त्र आदि का विशेष ज्ञान हो। आजकल कूटनीतिक संवाद-संकलन की नयी विधा का विकास हुआ है, जिसके अंतर्गत वरिष्ठ संवाददाता विदेश मंत्रालय, राजदूतावासों तथा अन्य स्रोतों से विदेश-नीति संबंधी समाचार एकत्रित करके उनका व्याख्यात्मक प्रस्तुतीकरण करते हैं। यह भी एक विशिष्ट कार्य है। इस क्षेत्र में भी अभी संतोषजनक प्रगति नहीं हुई है।

जो भी हो, संवाददाता समाचार-पत्र के आंख और कान होते है। उनकी सफलता जितनी उनके जागरूक रहने में है, उतनी ही निष्पक्ष, निर्भीक और संतुलित रहने में भी है।

भेंटवार्ता कैसे करें ?

भेंटवार्ता, साक्षात्कार या इंटरव्यू पत्रकारिता का एक ऐसा अनोखा अंग है जिसे बहुत ही सरल समझ लिया गया है। किंतु वास्तविकता यह है कि पत्रकारिता के हर अंग को सही रीति से समझा जाय तो कोई भी सरल नही है, क्योंकि पत्रकार का लिखा हुआ एक ही शब्द, एक ही वाक्य स्थिति को बिगाड़ सकता है, सुधार सकता है और निरर्थक को सार्थक तथा सार्थक को निरर्थक भी बना सकता है। भेंटवार्ता की एक भी बात यदि एकदम सही अर्थ नही देती अथवा उसमें भेंटकर्ता के मन की बात अधिक और भेंटदाता की कम है तो यह सही पत्रकारिता नहीं होगी। इसीलिए सरल समझी जाने वाली भेंट-कला उतनी सरल नहीं है और इसी कारण उस पर उचित ध्यान देना बहुत आवश्यक है।

जहा तक भेंटवार्ता का संबंध है वह समाचार-संकलन की ही एक विशिष्ट विधा है। इसके दो भाग किये जा सकते है : एक, विशिष्ट व्यक्तियों से साक्षात्कार, जो समाचार की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण होते है तथा आम तौर पर प्रथम पृष्ठ की सामग्री बनते हैं। दूसरे, कम प्रसिद्ध व्यक्तियों, या बिलकुल अनजान व्यक्तियों से भेंटवार्ता, जो अपने समाचार-मूल्य के कारण नही बल्कि कुछ रोचक मानवीय तत्वों, अंदरूनी सामग्री या किसी अनोखी घटना के कारण समाचार-पत्र के कालमों की शोभा बन जाती है। पहली श्रेणी मे नेताओं और राजनीतिज्ञों के साक्षात्कार आ सकते है और दूसरे वर्ग में ऐसे लोगों की भेटवार्ता सम्मिलित की जा सकती है, जो अपनी दीर्घायु (१०० वर्ष या उससे अधिक) के कारण, या किसी गंभीर घटना के शिकार होने पर भी उससे बच निकलने के कारण या अधिक बच्चों वाली स्त्री होने के कारण, या ऐसी ही किसी अन्य परिस्थिति के कारण एक प्रकार की विशिष्टता प्राप्त कर लेते है। दोनों दो प्रकार के होते हैं और दोनों का दो प्रकार का प्रभाव होता है। यह भी कहा जा सकता है कि आम तौर पर दोनो वर्गों की भेंटवार्ताओं को पढ़ने वाले भी दो प्रकार के होते हैं। अतः दोनों प्रकार की भेटवार्ताओं का आयोजन भिन्न प्रकार से होना चाहिए। उनकी तैयारी और उनका लेखन भी बिल्कुल अलग तरीकों से होना चाहिए।

आजकल कुछ पत्रों में भेंटवार्ता का एक नया ढंग चल पड़ा है, जिसे सही रूप में भेंटवार्ता न कहकर कुछ और ही कहना चाहिए, क्योंकि केवल प्रश्नोत्तर ही भेंट-वार्ता नहीं होते। शायद इसीलिए वे पत्र ऐसे भेंट-समाचारों को—जो सही अर्थों में समाचार भी नहीं होते—साक्षात्कार करके रिपोर्ट लिखने वाले के नाम के साथ 'भेंट-वार्ता के प्रस्तुतकर्त्ता' शब्द छापते हैं। ऐसी भेंटवार्ताएं न तो कोई नयी बात कहने में सफल होती हैं और न ही उनका प्रभाव पड़ता है, प्रभाव पडता भी है तो कुछ व्यक्तियों के स्वार्थों की पूर्ति की दिशा में। ऐसे साक्षात्कार अधिकतर राजनीतिक नेताओं, मंत्रियों अथवा उद्योगपतियों के होते है जिनमें पुरानी बातों को प्रश्नोत्तरों के रूप मे दुहरा दिया जाता है। उनके साथ भेंटदाताओं के चित्र भी छाप दिये जाते हैं।

इस प्रकार की भेंटवार्ता में एक और बात भी देखी जाती है। प्रश्न तो खैर किसी भी तरह के और किसी के भी हो सकते है, उत्तर स्वयं भेंटदाता ने भेंटकर्ता को दिये हों, यह जरूरी नही है। आम तौर पर वे भेंटदाता के किसी भाषण या वक्तव्य के अंश होते हैं। वही से वे सीधे ले लिये जाते है और पाठकों को यह बताने की कोशिश की जाती है कि समाचारदाता या संवाददाता ने नेता से सीधा साक्षात्कार किया है। सही ढंग की पत्रकारिता में ऐसी भेंटवार्ताएं पसंद नही की जाती और उनका प्रभाव भी सीमित पड़ता है। उन्हें साक्षात्कार या भेंटवार्ता कहना ही एकदम अनुचित है।

विषय का ज्ञान आवश्यक

वास्तविक भेंटवार्ता के लिए जितनी तैयारी भेंट देने वाले को करनी पड सकती है उससे कम तैयारी भेंटकर्ता को नही करनी होती। यदि आप किसी नेता से साक्षात्कार करने जा रहे हैं तो पहले आपको उसके हाल के वक्तव्यों आदि पर गहरी दृष्टि डालनी होगी। जिन विषयों पर आपको साक्षात्कार करना है उनका ज्ञान आपको होना आवश्यक है। यदि राजनेता किसी घटना-विशेष अथवा यात्रा-विशेष के बाद लौटा हो तो उसके बारे में भी तब तक की प्रकाशित जानकारी का होना बहुत जरूरी है। यह बातें समाचार-साक्षात्कार के लिए तो बहुत आवश्यक है ही, मानवीय दिलचस्पी के विषयों से संबद्ध अन्य भेंटवार्ता के लिए भी अत्यंत आवश्यक है। इसके अलावा एक बात और है। आपको भेंट में से समाचार निकालने की कला मे पारंगत होना चाहिए, अन्यथा भेंटवार्ता पिछली, पुरानी बातों को दुहराने की कसरत मात्र रह जायगी। इस लिए भी यह आवश्यक है कि आपको उस विषय की उस समय तक की प्रकाशित, या ज्ञात बातों की ठीक-ठीक जानकारी हो तथा उससे संबंधित अन्य महत्वपूर्ण बातें भी आपकी दृष्टि में हों।

यह बात एक उदाहरण देकर स्पष्ट की जा सकती है। मान लीजिए आपको भारत के तेल मंत्री से भेंटवार्ता करनी है। इसके लिए आपको इतना तो मालूम होना ही चाहिए कि फिलहाल अपने देश मे तेल का उत्पादन कितना है, आयात कितना है और कहां-कहां तेल की खोज करने का प्रश्न विचाराधीन है। जरूरी नही कि सभी बातों की पूरी-पूरी जानकारी आपको हो, क्योंकि कुछ नये तेल क्षेत्रों के बारे मे तो मंत्री जी भी बतायंगे ही, यदि आप उनसे बात निकलवा सकते हैं तो; फिर भी मोटी-मोटी

बातों की जानकारी के बिना भेंटवार्ता सजीव और 'समाचारी' नहीं बन सकेगी।

अनेक बार भेंटकर्ता को भेंटदाता के बारे में कुछ ऐसी बातों की भी जानकारी होती है जो कभी-कभी उसने बहुत पहले पढ़ी थीं। कुछ बातें तो ऐसी होती हैं जो स्वयं भेंटदाता को याद नहीं होतीं या उसके ध्यान से उतर गयी होती हैं। मेरे मित्र डा० वैदिक ने जब अफगानिस्तान के राष्ट्रपति सरदार मुहम्मद दाऊद से साक्षात्कार किया था तब कुछ पुरानी बातें याद दिलाने से सरदार दाऊद का स्नेह-भाव और बढ़ गया था। ऐसी बातों से न केवल भेंटकर्ता के बारे में भेंटदाता की अच्छी धारणा बन जाती है बल्कि उसका अच्छा प्रभाव भी पड़ता है जो भेंटवार्ता को सफल तथा सजीव बनाने में सहायक होता है।

आत्मीयता का वातावरण बनाइए

इसी प्रकार भेंट से पहले ऐसे तथ्यों का पता लगा लेना चाहिए, जिनमें भेंटकर्ता और भेंटदाता के बीच कुछ नैकट्य स्थापित हो सके। उस व्यक्ति को, जिससे साक्षात्कार करने आप गये हैं, संभवतः यह पूरी तरह नहीं मालूम होता कि आप कौन हैं, क्या-क्या करते रहे हैं, कहां पैदा हुए हैं आदि। यदि आप इन प्रश्नों पर उसके साथ किसी प्रकार की निकटता स्थापित कर सकते हैं तो दोनों के बीच अधिक आत्मीयता का वातावरण स्थापित हो सकता है। मुझे दो घटनाएं याद हैं, जो भेंटवार्ता में बहुत सहायक बन गयी थीं। पहली स्वर्गीय डा० राममनोहर लोहिया के संबंध में है और दूसरी कैनेडा के भूतपूर्व गवर्नर-जनरल के संबंध में। जब मैं पहली बार दिल्ली में डा० लोहिया से भेंटवार्ता करने गया तब मुझे उनके क्रांतिकारी जीवन, १९४२ के आंदोलन में उनके योगदान और साथ ही साथ उनकी प्रारंभिक शिक्षा (मैट्रिक तक) के बारे में पूरी-पूरी जानकारी थी। मुझे यह भी मालूम था कि डा० लोहिया ने किस स्कूल से मैट्रिक पास किया था। संयोग की बात है कि मैंने भी उसी स्कूल से मैट्रिक किया था और जब यह बात लोहियाजी को मालूम हुई तब उनके और मेरे बीच एक प्रकार का तादात्म्य स्थापित हो गया। भेंटवार्ता तो अत्यंत संतोषजनक रही ही, लोहिया जी इस तथ्य को कभी नहीं भुला पाये कि हम दोनों एक ही स्कूल (मारवाड़ी विद्यालय हाई स्कूल, बंबई) के विद्यार्थी थे।

कुछ दूसरे प्रकार का रिश्ता मैंने कैनेडा के गवर्नर-जनरल सर रोलैंड मिशनर से जोड़ लिया था। मुझे उनके जीवन के बारे में कुछ मोटी बातें ही मालूम थीं, अधिक नहीं। जब मैं उनसे भेंटवार्ता के लिए गया था तब वह भारत में कैनेडा के हाई कमिश्नर बन कर आये-आये ही थे। मैंने मौका देखकर कहा कि मैं भी एक प्रकार से कैनेडा में ही पैदा हुआ हूं। उन्हें यह बात सुनकर सुखद आश्चर्य हुआ और उन्होंने बहुत उत्सुकता से पूछा कि कहां और कब ? मेरे उत्तर से वह बहुत आनंदित हुए और उस विनोदी वातावरण में दोनों के बीच का अंतर कुछ कम अवश्य हो गया। मैं अब भी कैनेडा के किसी विशिष्ट नेता के साथ बातचीत में उसी तथ्य का प्रयोग करता हूं जो बातों को अधिक मधुर बनाने में बहुत सहायक होता है। वह तथ्य यह है कि मैं एक ऐसे अस्पताल में पैदा हुआ था जो कैनेडा के मिशनरी चलाते थे और मेरे जन्म के समय एक कैनेडियन

लेडी डाक्टर प्रमुख चिकित्सक के रूप में उपस्थित थीं, जो मेरी मां को अपनी बेटी कहती थीं। मेरे 'एक प्रकार से कैनेडा में जन्म' लेने की बात इस पृष्ठभूमि में भ्रामक नहीं कही जा सकती और उसने सदा ही मिलने-जुलने और भेंटवार्ता को सरल बनाने में मेरी मदद की है।

कोई गलत बात न छापिए

राजनीतिक नेताओं से भेंटवार्ता में सब से अधिक ध्यान इस बात का रखना चाहिए कि कोई बात गलत न छप जाय। कुछ बातें हवा में हों और अगर आप उन्हें अपने भेंटदाता के मुंह से कहलवा सकें तब तो वह बडा ही महत्वपूर्ण समाचार बन जायगा। परंतु यदि उसने वे बातें नहीं कही हों और आपने वे उसके नाम से 'मेड़ दी हों' तो अनर्थ हो सकता है। कुछ समय पहले एक पत्र ने विशेष रूप से और कुछ दूसरे पत्रों ने आंशिक रूप से यही अनर्थ किया था। दोष न पत्र का था न शायद संपादकों का। असली दोष उस व्यक्ति का था जिसने भेंट की और भेंटवार्ता के आधार पर एक लेख लिखकर प्रकाशन के लिए संपादक को दे दिया। प्रेस कांफ्रेंस में भी उसने ये ही बातें कह दी। संपादक ने अपने संबंधों के कारण लेख छाप दिया और प्रेस कांफ्रेंस में गये संवाददाताओं ने भी पूरी ईमानदारी से उनका उपथोग किया, क्योंकि बात अच्छी थी, सनसनीखेज थी और समाचारत्व का तत्व तो उसमें था ही। नहीं थी तो केवल एक बात। उसमें सत्य नही था। पर यह बात न तो संवाददाताओं को मालूम हो सकती थी, न संपादक को ही। भेंटकर्ता ने या तो जानबूझकर अथवा अज्ञानवश ऐसी बाते लिख दी थीं जिनका खंडन बाद में भेंटदाता की ओर से करना पडा था।

यह घटना श्रीलंका की प्रधानमंत्री श्रीमती सिरिमावो बंडारनायक की भेंटवार्ता की है। एक व्यक्ति ने किसी प्रकार साक्षात्कार किया, कैसे किया, कब किया और किन परिस्थितियों में किया यह मुझे मालूम नहीं। मुझे तो खंडन और स्पष्टीकरण आने पर ही मालूम पड़ा। भेंटवार्ता का मनसनीखेज तथ्य यह था कि हिंद महासागर के दिएगो गार्सिया द्वीप पर अमेरिकी सैनिक अड्डा बनाने के विरोध में भारत और श्रीलंका के युवजन मिलकर आदोलन करेंगे और यदि अमेरिका ने अपने इरादे नही छोड़े तो श्रीलंका उसके साथ अपने राजनीतिक संबंध तोड़ लेगा। ये दोनों बातें बहुत 'समाचारी' और सनसनीखेज थी, परंतु भेंटकर्ता इस बात को भूल गया कि पत्रकार के लिए सब से अधिक आवश्यक और पुनीत वस्तु है 'सत्य'। तथ्य सही होने चाहिए फिर चाहे उन पर कैसी भी टीका-टिप्पणी की जाय। यहां तो तथ्य ही नहीं थे, और थे भी तो सत्य से कोसों दूर। ऐसी स्थिति में श्रीलंका के हाई कमिश्नर को एक स्पष्टीकरण जारी करना पडा, जिसे वह खंडन कह कर अपने रोष का परिचय नहीं देना चाहते थे। संवाददाताओं को, विशेष रूप से भेंटकर्ताओं को ऐसे असत्य से बचना चाहिए। प्रलोभन अवश्य होता है; पर अपने मन की बात अन्य के मुख से कहलवाना आसान नहीं। यदि कहलवा सकें तो वाह-वाह, अन्यथा पत्रकारिता के लिए कलंक!

साक्षात्कार करना और उसमें से काम की बातें निकाल लेना एक बात है, परंतु उन्हीं को अच्छी प्रकार से लिखकर पाठकों को एक सुपाठ्य, ज्ञानवर्द्धक विवरण

देना दूसरी बात है। लिखना भी एक कला है, जिसका सही ढंग से अध्ययन-अभ्यास करना ही चाहिए। इस लेखन का एकमात्र उद्देश्य यह होना चाहिए कि आपके पाठक अधिक से अधिक रोचक ढंग से अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त करें और साथ ही साथ उनका मनोरंजन भी हो। किसी राजनेता की भेंटवार्ता हो तो पाठकों को कुछ नयी बातें मालूम हो सकें। इसमें, जहां तक मेरा मत है, स्वांतः सुखाय जैसी बात नहीं होनी चाहिए क्योंकि भेंटवार्ता आप किसी पुस्तक के लिए नहीं लिखते जिस पर अकेले आपका ही नाम होता है और जो समाचार-पत्र से अनेक प्रकार से भिन्न होती है समाचार-पत्र में अनेक व्यक्तियों का योग होता है, संपादक का नाम जाता है और उस का प्रकाशक कोई और होता है। इसके अतिरिक्त 'जल्दी में लिखा गया साहित्य' होने के बावजूद समाचार-पत्र का प्रभाव बहुत व्यापक होता है और उसका प्रसार भी उतना ही विस्तृत होता है। इसलिए उसकी लेखन-शैली भी पुस्तक से भिन्न, सरल परंतु साथ ही जानकारी देने वाली होनी चाहिए।

साक्षात्कार में जो भी जानकारी आपको प्राप्त हो गयी है उसे अपने विवरण में देते समय इस बात का ध्यान अवश्य रखें कि किसी प्रकार से भेंटदाता को उससे आघात न लगे। हो सकता है कि उसने कोई बात आपको जानकारी बढ़ाने अथवा स्नेह-संबंध बन जाने के कारण बता दी हो, परंतु वह उसे प्रकाशित नहीं करवाना चाहता हो। या कोई बात असावधानी के क्षणों में उसके मुख से निकल गयी हो। आपको तो भेंट-वार्ता के समय एकदम चुस्त और सतर्क रहना है, जिससे उसके मुख से निकले शब्दों को आप पूरी तरह पकड सकें, कहीं भी आपको यह कहने की आवश्यकता न पड़े—"क्षमा कीजिए, मैंने सुना नहीं", या "आपने क्या कहा, कृपया दुहरा दीजिए।" इस असावधानी को दूर रखना होगा और जो भी बात 'आफ द रेकार्ड' हो, छापने के लिए न हो, उसे कदापि नहीं छापना चाहिए। इससे आपका और आपके भेंटदाता का पारस्परिक विश्वास बढ़ता है और भविष्य में समाचार प्राप्त करने के आपके साधन भी बढ़ जाते हैं।

राजनीतिज्ञों आदि से समाचार-साक्षात्कार करने के अतिरिक्त यदि अन्य व्यक्तियों से भेंटवार्ता की जाय तो उनके बोलचाल के तरीकों, स्वभाव की बारीकियों, तकिया कलाम आदि का भी उल्लेख करना चाहिए जिससे पाठक के सामने उस व्यक्ति का चित्र खिंच जाय। इसका भी ध्यान रखना चाहिए कि कोई ऐसी बात आप न लिख दें जिससे उस व्यक्ति को ठेस लगे, वह समझे कि उक्त बात आपने मजाक उड़ाने के लिए लिखी है। यह हो सकता है कि आप ऐसे किसी व्यक्ति से भेंटवार्ता कर रहे हों, या किसी प्रकार आपने उसे दो-चार प्रश्नों के उत्तर देने के लिए पकड़ लिया हो, जिस की आलोचना करना ही आपका उद्देश्य हो अथवा वह इतना अधिक विवादग्रस्त व्यक्ति हो कि उसकी हंसी उडाने के लिए ही समाचार-पत्र के कालमों का उपयोग करना हो। वह दूसरी बात होगी, उसमें आप स्वतंत्र हैं। ऊपर वाले सिद्धांत केवल सामान्य भेंट-वार्ताओं के लिए ही लिखे गये हैं।

अल्प समय का पूरा-पूरा उपयोग

भेंटवार्ता में समय का बहुत ध्यान रखना चाहिए। अक्सर व्यस्त राजनेता

नेता के पास बहुत ही सीमित समय रहता है और आपको उसमे बहुत सारी बातें जानने की इच्छा रहती है। उस हालत में या तो आप वार्तालाप को इतना रोचक बनाइए कि समय की पाबंदी आप मे आप टूट जाय या फिर अपने प्रश्न को इस तरह सामने रखिए कि व्यर्थ समय नष्ट न हो। मुझे ऐसे साक्षात्कार भी याद है जो केवल १५ मिनट के लिए थे, परंतु पौन घंटे तक बातचीत होती रही और फिर भी दोनों पक्षों की ओर से दुबारा मिलने का फैसला हुआ। यही भेंटकर्ता की सफलता है।

पर यह नही समझना चाहिए कि समय बढ़ने के अवसर अक्सर मिल जाते हैं। दैनिक पत्रों मे काम करने वाले संवाददाताओं का अनुभव कुछ दूसरा ही है। कभी-कभी तो मागने मे भी समय नही मिलता और भेंटवार्ता भी अनुपयुक्त वातावरण मे करनी होती है। आस-पास भीड़ होती है और पहले से कोई कार्यक्रम या प्रश्नोत्तर भी तय नहीं होते। ऐसे ही दो अवसरों का मैं उल्लेख करूंगा। एक, जब नेपाल की भूतपूर्व महारानी (अब राजमाता) रत्नराज्य लक्ष्मी देवी के साथ मेरी भेंटवार्ता हुई। दूसरा जब ईरान की शाहबानू से 'हिंदुस्तान टाइम्स' की संवाददात्री श्रीमती प्रभा दत्त की भेंटवार्ता हुई।

ईरान के शाह अपनी शाहबानू फराह के साथ दिल्ली आये थे। मलिका से भेंटवार्ता का समय मिलना असभव था, इसलिए प्रभा हवाई अड्डे पर आगमन के समय कुछ क्षण 'चुराने' के प्रयत्न में थी। इधर शाह ने अपने स्वागत मे राष्ट्रपति के भाषण का उत्तर देना शुरू किया, उधर प्रभा ने पास ही खड़ी शाहबानू की ओर कदम बढ़ाया। प्रधानमंत्री श्रीमती गांधी ने यह दृश्य देखा और साथ ही देखा कि प्रभा ने हाथ जोड़-कर मूक भाषा में ही भेंटवार्ता की विनती की। इंदिराजी मुस्करा दी और प्रभा को मौका मिल गया। वहीं घुटनों के बल बैठकर प्रभा ने जल्दी-जल्दी तीन-चार सवाल शाहबानू से कर दिये (एक साथ नही) और उनके उत्तर भी प्राप्त कर लिये। बाद में कार्यालय में अन्य सूचनाओं को मिलाकर एक अच्छी खासी रिपोर्ट तैयार हो गयी। सभी ने प्रभा के प्रयत्न की सराहना की।

मैं उतना सौभाग्यशाली नही था, इसलिए भी कि मुझे एक महिला से साक्षात्कार करना था जो भेंटवार्ता के लिए तैयार नहीं हुई थी। नेपाल की महारानी रत्ना से जब मैंने एक समारोह में बातचीत करने का प्रयत्न किया तब उनके मुख से केवल दो वाक्य निकलवा पाया। एक यह कि वे नेपाल की महिलाओं की ओर से भारत के लिए शुभकामनाएं लायी हैं और दूसरा यह कि महारानी स्वयं कल्याण-कार्यों मे बहुत सक्रिय है और वहां के कार्यक्रम के बाद दिल्ली के एक कल्याण-केंद्र मे जायगी। तीसरा वाक्य भी था, परंतु उसमें कहा गया था कि महारानी कोई भेंटवार्ता नही देना चाहती, इसके बावजूद मेरा काम कुछ न कुछ बन ही गया था और अन्य जानकारी जोड़कर भेंट-वार्ता के समान एक स्टोरी (समाचार-कथा) तैयार हो गयी थी। मुझे उससे अधिक संतोष नही था। परंतु जैसी परिस्थिति थी, उसमें यही संभव था। अच्छे ढंग से लिख कर एक अल्प भेंटवार्ता प्रभावी और पठनीय बना दी गयी थी। वैसे उन दोनों रानियों की भेंटवार्ताएं सही ढंग से ली गयी भेंटवार्ताएं नहीं थीं, परंतु न होने से तो अच्छी थीं और दैनिक पत्रों मे काम करने वालों को कभी-कभी इससे ही संतोष करना पड़ता है।

फीचर कैसे लिखें ?

भारतीय पत्रकारिता का यह अभिशाप है कि हमारे पत्रों का ९० प्रतिशत स्थान लंबे वक्तव्यों तथा उबा देने वाले भाषणों से ही भर जाता है। उनके कारण पत्र बिलकुल नीरस, एक ही रंग के और निष्प्राण से प्रतीत होने लगते हैं। उनमें 'फीचरों' तथा लेखों के लिए बहुत थोड़ी जगह बच पाती है। जो हो, लंबे वक्तव्यों को अब काफी काट-छांट कर छापने की प्रवृत्ति बढ़ रही है, ताकि फीचर लेख आदि को काफी स्थान दिया जा सके।

यदि यह कहा जाय कि हिंदुस्तान में 'फीचर' लिखना बहुत कम लोगों को आता है, बहुत कम लोग लिखते हैं और बहुत कम पत्र छापते हैं तो कोई ज्यादा गलत बात न होगी। ऐसा होने के कुछ कारण भी हैं। १९४७ तक देश के अधिकतर पत्र अंग्रेजों के खिलाफ लिखने और देशप्रेम का प्रचार करने में बड़े जोर-शोर से लगे रहे। हर दिन लंबे-लंबे लेख और संपादकीय छपते थे और वे लोगों को सरकार के खिलाफ बगावत करने के लिए प्रेरित करते थे। कुछ अखबार ऐसे भी थे जो दिन-रात कांग्रेस और राष्ट्रीय नेताओं की निंदा करने मे जुटे रहते थे। एक कारण यह भी था कि हमारे देश में शिक्षित लोगों की कमी है और इसलिए 'फीचर' लिखने वालों का अभाव रहा। जब अच्छे 'फीचर' लिखे ही नही जा सकते थे तो छपने का कोई सवाल ही नहीं उठता था। हमारे देश में पत्रकारिता अभी तक बहुत जोर-शोर से नहीं बढी है और फोटोग्राफी मे अभी बहुत पीछे है, दुनिया के बड़े-बड़े देशों से। सालों तक सब का ध्यान पत्रकारिता के उसी पहलू पर गया, जो देशवासियों को अंग्रेजों के खिलाफ झंडा उठाने के लिए प्रेरित करे। जो कोई अखबार निकाल सकता था वह अखबार निकालता था और सरकार की कटु निंदा करता था। मनोरंजक 'फीचर' लिखने की ओर किसी का ध्यान भी नहीं जाता था। देश में बड़े-बड़े नेताओं ने अपने-अपने अखबार निकाले थे। गांधीजी 'हरिजन' का संपादन करते थे, डा० पट्टाभि ने 'जन्मभूमि' निकाला था, लाला लाजपतराय ने 'दि पीपुल' नामक अखबार चलाया था, सुरेंद्रनाथ बनर्जी ने 'दि बंगाली' का संपादन किया था और सुभाषचंद्र बोस ने 'दि फारवर्ड

ब्लाक' को जन्म दिया था।

पहले भी 'इलस्ट्रेटेड वीकली आफ इंडिया' और कुछ इने-गिने पत्रों में कुछ 'फीचर' छपते थे, और अब भी छपते हैं। आजकल 'धर्मयुग' तथा भारतीय भाषाओं के कुछ साप्ताहिक अखबारों में अच्छे फीचर छपते हैं। बहुत से दैनिकों में भी अब 'फीचर' छपने लगे हैं, लेकिन उनका स्तर अभी बहुत ऊंचा नहीं है। उनकी कठिनाइयां भी हैं। पूरी आशा है कि कुछ सालों के बाद हमारे देश के बहुत से पत्र-पत्रिकाओं में रोचक और सुंदर 'फीचर' छपने लगेंगे। पत्रकार और पत्र-पत्रिकाएं यदि अच्छी तरह से 'फीचर' लेखन में कामयाबी पाना चाहते हैं तो इस बात का ध्यान रखना पड़ेगा कि वह विलायती अखबारों की नकल न करें और उन चीजों की तरफ अपना ध्यान ले जायं जो हमारे देशवासियों को आकर्षित करेंगी और उनकी समस्याओं पर रोशनी डालेंगी।

'फीचर' को अच्छी तरह से समझाने के लिए हमें 'फीचर' और लेख में फर्क समझना चाहिए, गोकि दोनों का खबरों से कोई संबंध नहीं है और दोनों की कामयाबी सुंदर गद्य और शैली पर निर्भर है। किताब पढ़कर, आंकड़े जमा करके लेख लिखे जा सकते हैं, लेकिन 'फीचर' लिखने के लिए अपने आंख, कान, भावों, अनुभूतियों, मनोवेगों और अन्वेषण का सहारा लेना पडता है। लेख लंबा, अरुचिकर, भारी भी हो सकता है, लेकिन यह बातें 'फीचर' की मौत हैं। 'फीचर' को मजेदार, दिलचस्प और दिलपकड़ होना पड़ेगा, यदि लेखक चाहता है कि उसे बहुत से लोग पढ़ें और उन्हें मजा आये। एक मानी में लेख लिखना आसान है और 'फीचर' लिखना उससे कठिन काम है। किसी समस्या का अध्ययन कर आप एक लेख तो लिख सकते हैं परंतु 'फीचर' लिखने के लिए आपको एक नया और दिलचस्प तरीका अपनाना पड़ेगा। 'फीचर' एक प्रकार का गद्य-गीत है। जो नीरस, लंबा और गंभीर नही हो सकता। 'फीचर' की खास बात यह है कि उसे मनोरंजक और तड़पदार होना चाहिए। जिसमे लोगों के दिल हिलें या चित्त प्रसन्न हों, या पढ़कर दिल में गम का दरिया बहे। मिसाल के लिए अगर आप देश के फकीरों की समस्या पर लिखना चाहें तो किताबें पढ़कर और आंकड़े जमा करके लिख सकते हैं, लेकिन यदि आप किसी फकीर के गम और दर्द की कहानी सुनाना चाहते हैं तो आपको उसके पास बैठना पड़ेगा और उसकी कहानी सुननी पड़ेगी और उसके दुख का अनुभव करना पड़ेगा। 'फीचर' का महत्व इसी बात में है कि वह किसी बात को थोड़े से शब्दों में रोचकता और असर के साथ कहे।

लेख हमें शिक्षा देता है, 'फीचर' हमारा मनोरंजन करता है। लेख आवश्यकता से अधिक छोटा तथा पढ़ने में जी उबा देने वाला होने पर भी अच्छा हो सकता है। फीचर मुख्य रूप से विनोद और आनंद के लिए लिखा जाता है। लेख जानकारी बढ़ाने वाला होना चाहिए और उसमें दिलचस्प या उससे निकलने वाले नतीजों का समावेश किया जा सकता है। 'फीचर' में आपको अपनी मनोवृत्ति और अपनी समझ के मुताबिक किसी विषय का या व्यक्ति का चित्रण करना पड़ता है। 'फीचर' लिखने में हास्य और कल्पना का विशेष हाथ रहता है।

विशेषतः ऐतिहासिक 'फीचर' लिखते समय हमें निर्देश ग्रंथों का प्रयोग करने की आवश्यकता पड़ती है। इसे मैं एक उदाहरण देकर समझाऊंगा। एक बार मैं

खुसरू बाग गया, जो इलाहाबाद का एक ऐतिहासिक बाग है। मैंने एक चौकोर पत्थर देखा जिस पर शाहजादा खुसरू की दुःखमय कहानी लिखी हुई थी। यह अपने भाई खुर्रम द्वारा कत्ल कर दिया गया था, जो बाद में शाहजहां के नाम से बादशाह हुआ। मुझे इस कहानी में, यद्यपि यह दुःखपूर्ण थी, मनुष्य की अभिरुचि बढाने वाली यथेष्ट सामग्री प्रतीत हुई। इसने मेरी कल्पना को उभाड़ा और मेरी जिज्ञासा को प्रज्वलित कर दिया जो तभी शांत हुई जब मैंने खुसरू के व्यक्तित्व का पुनर्निर्माण करने योग्य काफी मसाला इकट्ठा कर लिया।

हिंदुस्तान में बहुत दिनों तक ज्यादातर 'फीचर' व्यक्तियों के बारे में ही लिखे गये क्योंकि इतिहास उनके साथ जोरों से जुड़ा था। दूसरा 'फीचर' जो देश में काफी चलता है उसे हम पौराणिक 'फीचर' कह सकते हैं। करीब-करीब हर साल होली, दीवाली, दशहरा, कुंभ इत्यादि के मौकों पर पुरानी बातों को दुहराते हैं। इसलिए यह 'फीचर' नीरस और निस्तत्व-सा लगने लगा है। अक्सर इसमें विचारों की एक बंधी हुई परंपरा का अनुसरण किया जाता है। मनुष्य में दिलचस्पी बढ़ाने वाले 'ह्यूमन फीचर' का जन्म अभी कुछ सालों पहले ही हुआ है। इसके बारे में लिखना हमने विदेशी पत्रों से सीखा है। अब भारत में पत्रकार अनोखे, विचित्र, असाधारण और अलौकिक विषय ढूंढ़ते हैं और कुछ अखबार उन्हें अच्छी तरह से छापते है। चित्रमय 'फीचर' भी लोग बहुत पसंद करते हैं लेकिन बहुत से अखबार उन्हे अच्छी तरह से छापते नहीं हैं। कुछ पत्र 'कामिक' वगैरह छापते है। जवाहरलाल नेहरू ने इसके संबंध में कहा था, "मुझे यह देखकर आश्चर्य होता है कि भारत के कुछ पत्र 'कामिक' प्रकाशित करते हैं, मैं तो उनसे बचने के लिए पैसा भी खर्च करने के लिए तैयार हो जाऊंगा।" ये 'विनोद-चित्र' हमें हकीकत में रंजीदा करते है।

'फीचर' लिखनेवालों को किसी तरह का पथप्रदर्शन शायद ही कभी प्राप्त होता है। उन्हे अपनी ही आंतरिक प्रवृत्ति, ज्ञान और अनुभव का भरोसा करना चाहिए। उन्हें 'फीचर' तैयार करने की, और लेख लिखने की भी, कला या प्रविधि कभी सिखायी नही जाती। 'फीचर' लिखने की कोई पुरानी परंपरा भी उनके सामने नही है। इस कला के कोई अच्छे बढिया उदाहरण भी आसानी से उपलब्ध नही, जिनके आदर्श पर वे अपने 'फीचर' तैयार कर सकें या जिन्हें देखकर वे आंतरिक प्रेरणा प्राप्त कर सकें। 'फीचर' लिखने वालों को इस कला के संबंध में जो थोड़े से विचार ज्ञात हो सके है, वे 'लाइफ' तथा 'पिक्चर पोस्ट' जैसे अमेरिकी एवं ब्रिटिश पत्रों को यदाकदा पढने से संगृहीत किये गये है।

मैंने अपने चालीस साल के पत्रकारिता के जीवन में दर्जनों 'फीचर्स' लिखे हैं। शुरू-शुरू में मुझे कई बार बुरी तरह निराश होना पड़ा। २५ साल हुए मैंने धोबी, माली, खानसामा, घरेलू, नौकर इत्यादि पर एक 'फीचर' लिखा। बारह अखबारों के दरवाजे खटखटाये और सब ने वापस कर दिया। बहुत जोर डालने पर एक अखबार ने छाप दिया। मैंने संपादकजी को समझाया कि बड़े लोगों पर तो लोग लिखेंगे ही, कभी-कभी गरीब और छोटे लोगों के बारे में भी छापना चाहिए। यह बात उनकी समझ में आ गयी और मेरी मेहनत बेकार नहीं गयी।

अब सवाल यह है कि 'फीचर' लिखा कैसे जाय ? मैं आपके सामने कुछ मिसालें पेश करता हूं जिससे आपको कुछ अंदाज हो सकेगा। एक दिन मैं एक हज्जाम की दुकान पर गया। वहां एक तस्वीर टंगी थी, जिसमें नाई गांधीजी की हजामत बना रहा था। उसके नीचे गांधीजी का दिया हुआ सर्टिफिकेट लगा हुआ था। एकदम ख्याल आया कि इस तस्वीर के सहारे एक बड़ा अच्छा 'फीचर' लिखा जा सकता है। नाई मेरे बाल काटता रहा और मैं उससे उस तसवीर और गांधीजी से उसकी जो बातचीत हुई थी उस पर बात करता रहा। नाई ने बड़ी दिलचस्प कहानी सुनायी और यह बताया कि उसने किस हिकमत से बापू से सर्टिफिकेट लिया। मैंने उससे जब यह कहा कि जरा तस्वीर दे दो, कल ही वापस कर दूंगा, तो उसने मना कर दिया और कहा कि वह इस तस्वीर के साथ खिलवाड नहीं कर सकता। मैं एक ऐसे आदमी को बुला लाया जिसने मुझे चंद घंटो के लिए तस्वीर दिलवा दी। मैंने उससे निगेटिव और तस्वीर निकलवायी। और फिर एक 'फीचर' लिखा। गांधीजी को स्पीच देते तो बहुत से लोगों ने देखा होगा, परंतु हजामत बनवाते हुए नहीं। इसलिए यह अच्छा खासा 'फीचर' बन गया।

सालों तक मैंने खबर के लिए आनंद-भवन में चक्कर काटे थे और दिन भर वहां अखबार के लिए खबर सूघता रहता था। एक दिन श्रीमती इंदिरा गांधी ने कहा, "बुद्धी खानसामा अभी रूस से लौटकर आया है जो वहां मिसेस पंडित का खाना बनाता था। रूस के बारे में बड़ी दिलचस्प बातें सुनाता है।" एकदम ख्याल आया कि एक हिंदुस्तानी रसोइए की राय रूस के बारे में दिलचस्प होगी क्योंकि वह राजनीतिज्ञ नहीं है और उसने वहां इंसान को इंसान की तरह देखा है। मैंने बुद्धी को अपने घर बुलाया और उससे रूस के बारे में एक घंटे तक बातचीत की। उसने बड़ी दिलचस्प बातें सुनायी। 'रूस से लौटा हुआ रसोइया' एक अच्छा 'फीचर' बन गया। कई अखबारों ने छापा और लोगों को पसंद आया।

बहुत साल हुए, बेहद हसीन प्रसिद्ध टेनिस खेलनेवाली गसी मारेन अमेरिका से हिंदुस्तान आयीं। उनकी खूबसूरती और उनकी पोशाक उनके टेनिस के खेल से ज्यादा मशहूर थी। लोग उनके पीछे-पीछे घूमते थे और सब अखबारवालों ने उनके टेनिस के खेल की जोरों से चर्चा की। मैंने अपना दिमाग गसी की और बातों पर लगाया और लिखने के लिए एक नया विषय बनाया। गसी मेरी मोटर में संगम (प्रयाग) गयी और मैंने उनकी ऊंट के साथ तस्वीर खींची। गसी को लाखों आदमियों ने टेनिस खेलते देखा था, लेकिन उनकी फोटो कभी ऊंट के साथ नहीं खिंची थी। वे मेरे साथ साड़ी खरीदने गयीं और साड़ी की देखभाल करते मैंने तस्वीर खींची। मैं उनको और उनके साथी टाड को आनंद-भवन ले गया और उनमें से एक को गांधी टोपी पहना कर तस्वीर खींची। मैंने यह सब काम करके लिखने के लिए एक विषय बनाया और यह 'फीचर' धड़ाके से बिका।

'फीचर' लिखने के लिए दिल व दिमाग दोनों को इस्तेमाल करना होता है। अच्छा आरंभ और खूबसूरत अंत करने पर 'फीचर' की कामयाबी निर्भर है। लोग उसी बात को पसंद करते हैं जो थोड़े से शब्दों में खूबसूरती से कही गयी हो।

फोटो-पत्रकारिता

फोटो के माध्यम से समाचारों के प्रसारण की शुरुआत सब से पहले १८४२ में 'इलस्ट्रेटेड लंदन न्यूज' ने की थी। बाद में संयुक्त राज्य अमेरिका से अनेक सचित्र समाचार-पत्र और पत्रिकाएं प्रकाशित होनी शुरू हुईं।

१८३९ में विलियम हेनरी फाक्स ने एक प्रक्रिया का आविष्कार किया जिसके द्वारा 'निगेटिव' से 'पाजिटिव' अर्थात वास्तविक चित्र बनाना सुलभ हो गया। तब भी फोटो को ज्यों का त्यों छापने के लिए 'हाफटोन' प्रक्रिया काफी समय बाद प्रचलित हुई। यह ऐसी प्रक्रिया थी जिसके द्वारा चित्रों की छपाई तुरंत हो जाती थी और वह आसान और सस्ती भी होती थी। स्टीफन एच० हार्गिन के प्रयोगों के फलस्वरूप हेनरी जे० न्यूटन का सुप्रसिद्ध छायाचित्र 'झोंपड़ियों का शहर' ४ मार्च के 'न्यूयार्क ग्राफिक' में १८८० में छपा था। मगर फोटो-पत्रकारिता को सही महत्व अमेरिका-स्पेन युद्ध, प्रथम विश्वयुद्ध तथा स्पेन के गृहयुद्ध के दिनों में मिला। मेथ्यू ब्राडी, जिमी हेयर, जे० सी० हैमंट तथा राबर्ट कापा जैसे अच्छे फोटोग्राफरों ने आने वाली पीढ़ियों के लिए इन युद्धों का बहुत रोचक चित्रमय विवरण छोड़ा है। उस समय के समाचार-पत्रों से संबद्ध फोटोग्राफरों ने फोटो-पत्रकारिता की महत्ता बढ़ाने में बहुत योग दिया। बीसवीं सदी के तीसरे दशक में पत्रकारिता के इस रूप को तनिक बदनामी भी मिली। हुआ यह कि उस समय के कुछ समाचार-पत्रों ने कृत्रिम—जोड़-तोड़कर बनाये हुए—ऐसे 'कंपोजिट' फोटो छापे, जो झूठे थे। इसके लिए दोषी पत्र थे—'डेली ग्राफिक', 'डेली मिरर' तथा 'डेली न्यूज'। चाहे कुछ भी कारण रहा हो, आज के परिप्रेक्ष्य में, इस तरह का काम क्षम्य नहीं माना जा सकता।

किसी भी चित्र को लें, यह स्वाभाविक है कि पाठक या दर्शक उसे सच मानता है। यही सच्चाई पत्रकारिता के इस पक्ष को बल देती थी। आज का पाठक शायद ही इस बात का विश्वास कर पाये कि मात्र एक फोटो ने अब्राहम लिंकन को १८६० में राष्ट्रपति का चुनाव जीतने में अद्भुत सहायता की थी। यह चित्र स्वयं लिंकन का ही था, जिसे मेथ्यू ब्राडी ने खींचा था। तब लिंकन के बारे में यह प्रचारित किया गया

था कि वह गंवार-जंगली-सा व्यक्ति है। अकेले दाढ़ी के उस चित्र ने लिंकन के विरुद्ध इस तरह के प्रचार का मुंहतोड़ जवाब दिया था। एक दूसरा उदाहरण एक ऐसे चित्र का है जिसमें अमेरिका के मेरीलैंड के सीनेटर मिलार्ड टार्याडिग को कम्युनिस्ट नेता अर्ल ब्राउडर के साथ मैत्रीपूर्ण बातचीत करते हुए दिखाया गया था। यह एक कंपोजिट चित्र था जिसका तब बहुत प्रचार किया गया। परिणाम यह हुआ कि टार्याडिग अगले चुनाव में पटकनी खा गये।

यह धारणा, कि कैमरा घटनाओं का वास्तविक रूप अंकित करता है और उसे एक माध्यम के रूप में प्रयुक्त करने वाला फोटोग्राफर उन घटनाओं का गवाह होता है, ज्यों-ज्यों पुष्ट होती गयी प्रामाणिक और अच्छे चित्रों की माग पत्र-पत्रिकाओं मे बढ़ती गयी। परिणामस्वरूप छायांकन सिंडीकेट का जन्म हुआ। इस दिशा में अमेरिकन प्रेस ने अगुवाई की। बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक में 'न्यूयार्क टाइम्स' के 'वाइल्ड वर्ल्ड', 'हर्स्ट् स इंटरनेशनल न्यूज फोटोज', 'ए० सी० एम० ई०', 'यू० पी०' आदि ने सिंडिकेटो की शुरुआत की। १६२६ मे 'एसोसिएटेड प्रेस' ने समाचार-सेवा प्रारंभ की थी; १६३५ में उसने फोटो-सेवा शुरू कर दी। उसके कुछ समय बाद रेडियो-सेवा शुरू हुई। आज तो हमे सादे और रंगीन दोनों तरह के चित्रों के लिए तार और रेडियो के माध्यम उपलब्ध हैं। भारत में रंगीन चित्रों की सेवा अभी प्रारंभ होनी है।

केवल फोटोग्राफी से फोटो-पत्रकारिता को आज का स्तर प्राप्त नहीं हो गया है, प्रतिकृतिया या प्रतियां बनाने की प्रक्रिया के विकास ने भी उसमें बराबर की भूमिका अदा की है। समानांतर पंक्तियों के पर्दे के माध्यम से १८८० मे पहले-पहल 'हाफटोन' चित्र 'झोंपडियों का शहर' (जिसका उल्लेख ऊपर किया गया है) की प्रतिकृतिया छपीं। आज के 'क्रास लाइन स्क्रीन' पद्धति को फ्रेडरिक यूजीन आइव्स तथा दूसरे लोगों ने विकसित किया। उसमे बाद मे लेवी बंधुओं ने बहुत कुछ सुधार किया। किसी भी छपे हुए छायाचित्र का स्तर छपाई की प्रक्रिया, कागज तथा स्याही आदि बातों पर निर्भर करता है। दुर्भाग्य से इस देश में अनुसंधान और विकास तथा विदेशी मुद्रा की कमी के कारण हम उस स्तर तक नही पहुंच सके है जो हम विकसित देशों में देखते हैं।

फोटो-पत्रकारिता में केवल कैमरे का ही महत्व नहीं है, उसके पीछे खड़े व्यक्ति का भी महत्व है। इसके लिए या तो वह स्वाभाविक प्रतिभा लेकर उत्पन्न होना है, या फिर उसे कैमरा, उसके विभिन्न लेंस, सूक्ष्मग्राही साज-सामान तथा इन सबको मिलाकर उनकी क्षमता को समझने के लिए प्रशिक्षित होना जरूरी होता है।

एक फोटो-पत्रकार को विदित होना चाहिए कि वह किस कोण तथा किस दृष्टि से किस कैमरे की फिल्म का उपयोग करे। उसमें सही तथा निर्णयात्मक क्षण को पकड़ने की क्षमता होनी चाहिए। समाचार-संग्रह में पूर्वानुमान सब से महत्वपूर्ण है। यदि आप निश्चित तथा निर्णयात्मक क्षणों का पूर्वानुमान नही लगा पाते तो आप केवल बेजान मशीनी चित्र देंगे, उससे अधिक कुछ नहीं।

एक अच्छा फोटोग्राफर केवल बटन दबानेवाला नहीं होता है। उसमें ऐसी अंतर्दृष्टि तथा समझ होनी चाहिए कि जो कुछ वह देखता है वह पाठकों को भी दिखा

सके। वह यह सब कर सकता है बशर्ते कि उसमें एक कलाकार की कुशलता हो, और साथ ही एक अच्छे कारीगर के गुण भी हों। यद्यपि कैमरे की अपनी सीमाएं हैं पर उन सीमाओं को पार किया जा सकता है, खासकर उस व्यक्ति द्वारा जो कैमरे के उपयोग की कला में माहिर है। जिस प्रकार एक कलाकार अपने रंग तथा ब्रश चुनता है, विषय चुनता है, अपने दृष्टिकोण के अनुसार उन वस्तुओं का चित्रण करता है, उसी प्रकार फोटोग्राफर घटनाओं को अपने दृष्टिकोण के अनुसार चुनता है और उनके लिए उपयुक्त उपकरण काम में लाता है। मनुष्य की आंख बहुत कुछ देखती है और उस देखे हुए का प्रकाश, छाया, रंग आदि के आधार पर अलग-अलग ढंग से अर्थ लगाती है। इसलिए चित्र खीचने की कला में जितना पारंगत होना आवश्यक है उतना ही आवश्यक अपनी आंख को बढ़िया दृश्य पर टिकाना है। आपके पास कितना ही आधुनिक और कीमती कैमरा हो किंतु यदि आपकी आंख पैने, मार्मिक और जीवंत दृश्यों को पकड़ने में असमर्थ है तो आप एक फोटोग्राफर शायद बन जायं लेकिन उच्चकोटि के फोटो-पत्रकार नहीं बन सकते।

आज की दुनिया में एक फोटो-पत्रकार महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। आइजनहावर ने एक बार कहा था, "सब राष्ट्रों की जनता के बीच मेल-मिलाप उत्पन्न करने में फोटो-पत्रकार की बहुत बड़ी देन होती है। दुनिया की समस्त भाषाओं में फोटो-समाचारों की भाषा सब से ज्यादा सरल होती है। आज के युग में जबकि अगणित मनुष्यों पर अत्याचार हो रहे है तथा कई देशों में व्यक्तिगत स्वतंत्रता नष्ट हो रही है, चित्र व्यक्ति की स्वतंत्रता को बरकरार रखते हैं," क्योंकि वे सच्चाई को ज्यों का त्यों पेश कर देते है। मगर किसी भी मूल्य पर एक फोटो-पत्रकार को झूठे चित्र नहीं देने चाहिए। ऐसे चित्र भी छपने के लिए नहीं देने चाहिए जो सामाजिक तथा राजनीतिक समस्याएं उत्पन्न करने में सहायक हों।

एक फोटोग्राफर के रूप में मुझे अपने जीवन की एक घटना याद आती है। पंजाबी सूबा आंदोलन का समय था। मैं दिल्ली मे गुरुद्वारा शीशगंज, जहां से आंदोलन आरंभ होना था, फोटो-सामग्री जुटाने पहुंचा। कुछ ही मिनटों मे मैंने देखा कि आंदोलन ने हिंसात्मक रूप धारण कर लिया तथा सूबा समर्थकों और विरोधियों में छिड़ गयी है। संघर्षरत गुटों को अलग करने के लिए पुलिस को अश्रु-गैस का प्रयोग करना पड़ा। ईंटें फेंकी जाने लगी। गाडियां जलायी गयी। सिंगल लेंस कैमरे के ४०० एम० एम० लेंस का प्रयोग करते हुए मैं पूरा दृश्य देख रहा था। एकदम मैंने देखा कि कमजोर-सा दिखायी देने वाला एक व्यक्ति हाथ जोडकर एक हट्टे-कट्टे व्यक्ति से प्राणदान मांग रहा था। इस गिड़गिड़ाते हुए आदमी को मारने के लिए उस व्यक्ति ने अपनी तलवार खींच रखी थी। मैंने इस घटना के एक-दो चित्र लिये, लेकिन उन्हें अपने अखबार में नहीं दिया। इसी तरह के एक अन्य मौके पर, सांप्रदायिक झगड़े के समय, मैं घटनास्थल पर पुलिस के पहुंचने से पहले उपस्थित था। मैंने संघर्षरत लोगों के चित्र लिये, लेकिन उन्हें भी प्रकाशित नही करवाया। ऐसे अनेक राजनीतिक तथा सामाजिक मौके आते रहते हैं जब एक फोटोग्राफर को देश तथा मानवता के प्रति उत्तरदायित्व निभाते हुए अपने अनेक अच्छे चित्रों का मोह छोड़ना पड़ता है। इसका अर्थ

यह नहीं कि आप सामाजिक बुराइयों के खिलाफ लड़ें नहीं। मनुष्य को चाहिए, जहां तक संभव हो वह अपने चित्रों द्वारा समाज तथा मानवता की सहायता अवश्य करे। मुझे आज तक बिना बांह की शांति नामक लडकी की याद है। उसकी बांहें नहीं थीं। शांति बहुत निर्धन परिवार की लड़की थी। दिल्ली में वह रोजी के लिए सड़क के किनारे अपने पैरों से भुट्टे भूना करती थी। मेरे आग्रह पर मेरे समाचार-पत्र ने शांति का एक चित्र तथा उसका विवरण छापा। इसका परिणाम यह हुआ कि रोटरी क्लब ने उस लड़की के रहने-सहने मे सहायता की। लड़की सुंदर थी। बाहें न होने पर भी उसकी तस्वीरों के कारण बहुत से युवकों ने उससे शादी का प्रस्ताव किया। कालांतर में उसका विवाह भी हो गया।

मुझे प्रारंभ के दिनों की याद आती है। स्टाफ फोटोग्राफर के रूप में मैं अपने अखबार में अकेला था। मुझको एक मोटर साइकिल दी गयी थी। रोज मैं अपने घर से सबेरे छह बजे चलता था तथा दिल्ली की बडी तथा छोटी गलियों मे घूमता हुआ प्रातः साढे दस बजे तक कार्यालय पहुंच जाया करता था। इससे मुझे शहर का भौगोलिक ज्ञान तो हुआ ही, साथ ही इसने असामाजिक आदतों तथा गंदगी के विरुद्ध फोटो-अभियान चलाने में भी मेरी अनिर्वचनीय सहायता की। पुरानी दिल्ली श्मशान भूमि पर व्याप्त जघन्य भ्रष्टाचार को मैं फोटो के माध्यम से लोगों के सामने ला सका। मुझे याद है कि मैं प्रातः छह बजे निगमबोध घाट पर गया था। वहां यह देखकर मैं क्षुब्ध रह गया कि एक बिना जले हुए शव के एक अंग को कुछ कुत्ते घसीट रहे हैं। उस दृश्य के कुछ चित्र लेने के बाद मैंने यमुना में स्नान करने वाले लोगों से बात की। उन्होंने मुझे बताया कि यह तो यहां आम तौर पर होता रहता है। उन लोगों ने नगरपालिका को भी शिकायत की थी, लेकिन उसका कुछ परिणाम नहीं निकला। मैंने यह बात अपने संपादक को बतायी। उन्होंने मुझे दूसरे दिन कुछ और चित्र लेने के लिए भेजा। मगर हम उन चित्रों को नहीं छाप सके क्योंकि वे तस्वीरें इतनी वीभत्स और भयानक थीं कि उन्हें छापना ठीक नहीं लगा। इससे एक नयी दिशा मे पहल हुई। हमारे अखबार ने निगमबोध घाट पर चलने वाली इस धांधली पर एक लंबा विवरण छापा, जिससे यह प्रकट हुआ कि शव-दाह के लिए लकड़ी बेचने वाले अधिकारी बाटों की हेराफेरी करके इतनी कम लकड़ी देते है कि उससे एक शव पूरी तरह जल ही नहीं सकता, इसीलिए अधजले शव के टुकड़ों को कुत्ते घसीटते है। यह छपते ही नगरपालिका में बहुत शोरगुल हुआ। उसके सदस्यों को यह भी पता चला कि हमारे पास इस प्रकरण के सचित्र प्रमाण है तो सख्त कदम उठाया गया। मृत लोगों के बहाने पैसा बनानेवाली बुरी प्रवृत्ति समाप्त हो गयी।

एक दूसरा उदाहरण : मैंने ... के कारखानों में व्याप्त गंदगी तथा खाद्य-विभाग के अधिकारियों की ढील पर भी कैमरे से चोट की। एक दिन मैं एक बर्फ के कारखाने के सामने यह जानने के लिए रुक गया कि वहां हलचल क्यों हो रही है ? मुझे पता चला कि कारखाने ने बर्फ की एक सिल्ली बेची है जिसके बीच मे एक बड़ा चूहा जम गया था और कोई व्यक्ति उस सिल्ली को नगरपालिका कार्यालय ले गया है। अव्यवस्थित यातायात की भीड़भाड़ में दो-तीन मील चलकर सिल्ली को नष्ट किये जाने के

कुछ ही मिनट पहले मैं नगरपालिका के स्वास्थ्य विभाग में पहुंचा और उस सिल्ली का चित्र लेने में सफल हो गया। चित्र समाचार-पत्र के प्रथम पृष्ठ पर प्रकाशित हुआ। इससे हमारे कार्यालय में इतने टेलीफोन आये कि हमें आश्चर्य हुआ। उस चित्र ने हजारों लोगों के रोंगटे खड़े कर दिये। स्वास्थ्य विभाग की लापरवाही, जहां तक मुझे पता है, कुछ दिनों के लिए कम हो गयी।

मैं आपको सामाजिक बुराइयों के निवारण की अनेक कहानियां बता सकता हूं। मेरे साथियों ने फोटो के आधार पर कई कहानियां तैयार की है। लेकिन यहां मैं दिन-प्रतिदिन के जीवन में फोटो-पत्रकारिता की रचनात्मक भूमिका पर ही कुछ कहना चाहूंगा।

क्या आप यकीन करेंगे कि वियतनाम युद्ध के अंतिम दिनों में मात्र वे फोटो-समाचार ही थे जिनके कारण अमेरिका को ल्दी से जल्दी वियतनाम से लौटने के लिए बाध्य होना पडा। यहां मै उस बहादुर फोटोग्राफर के बारे मे बताना उचित समझता हूं जिसे वियतनाम मे अमेरिकियों तथा अमेरिका-समर्थकों को ले जाने वाले आखिरी जहाज में जगह नहीं मिली। अंतिम जहाज मे जगह नही मिलने का मतलब था—दुश्मन के हाथ में पडकर मारे जाना। लेकिन उसे अपने बारे में कोई चिंता नही थी। उसने चलते हुए हवाई जहाज में अपने फोटो-समाचारों का संग्रह तथा कैमरा फेंक दिया और और कहा, "कृपया इसको मेरे संपादक को दे दीजिए।" अपने काम के लिए इस लगन तथा प्रेम की आवश्यकता हर फोटो-पत्रकार के लिए दरकार है। यहा मुझे प्रिय रामरखा की याद आती है। प्रिय रामरखा नैरोबी मे बसे एक भारतीय थे जिन्होंने नाइजीरिया के गृहयुद्ध में किये गये अमानुषिक अत्याचारों की कहानी रंगीन चित्रों द्वारा दुनिया के सामने रखी थी। यह व्यक्ति दोनों तरफ से चलती हुई गोलियों के बीच मारा गया था लेकिन उसने संसार की अंतरात्मा को जगा दिया। दूसरी ओर मुझे बंगलादेश की एक भयानक घटना की याद आती है। १९७१ के आत्मसमर्पण के तुरंत बाद मै ढाका में था। एक दिन अपराह्न में मैं ढाका इंटरकांटीनेटल होटल में जा रहा था कि मुक्तिवाहिनी के कुछ लड़कों ने मुझे मैदान मे हो रही एक महत्वपूर्ण सभा में बुलाया, जहां दोषी रजाकारों को पेश किया जा रहा था। कई पत्रकार और फोटोग्राफर वहा पहुंचे थे। केवल प्रसवालों को दिखाने के लिए रजाकारों को शूट किया जा रहा था। यह पता लगते ही अनेक पत्रकारों ने समाचार-संग्रह का विचार छोड़ दिया। कुछ पत्रकार उसका विवरण देने के लिए अवश्य रुके रहे। उनके सामने रजाकारों की खाल उतारी गयी तथा उनको संगीनों से रुक-रुक कर मारा गया ताकि फोटोग्राफर चित्र ले सकें। जिन्होंने उसका विवरण दिया उन्होंने सोचा कि उन्हें बहुत अच्छी कहानी मिल गयी लेकिन उसका मूल्य चार हत्याएं था। मगर इसे मैं बहुत ही अनैतिक समझता हू।

एक फोटो-पत्रकार को अपना काम चुपचाप बिना प्रदर्शन के करना चाहिए। उसके चित्र लेने के प्रदर्शन से वास्तविक स्थिति और विकृत हो सकती है। मैंने कुछ फोटो-पत्रकारों को देखा है कि वे आंदोलनकारियों को नारे लगाने के लिए उकसाते हैं ताकि उनके चित्र अधिक जीवंत बन सकें। इस प्रकार की परिस्थितियों में एक फोटो-पत्रकार को अपने उत्तरदायित्व को समझना चाहिए।

मैं यह नहीं कहता कि फोटो-पत्रकार को अपने चित्रों के लिए नाटकीयता या विशेष व्यवस्था का सहारा एकदम नहीं लेना चाहिए, लेकिन जो कुछ भी किया जाय वह समाज के हित में हो। १९३९ में बिहार में अकाल पड़ा था। मैं एक ऐसे जंगल में से गुजर रहा था जहां सड़कें नहीं थी। मुझे एक सामाजिक कार्यकर्ता ने सूचना दी कि रास्ते से हटकर दो-तीन मील दूर एक परिवार के लोग अपने एक बूढ़े को भूखों मरने के लिए वैसे ही छोड़कर चले गये हैं। उस जगह पहुंच कर मैंने देखा कि मरणासन्न आदमी अपनी झोंपड़ी के अंधेरे व गंदे कोने में पड़ा हुआ है। अंधेरे के कारण वहां चित्र लेना असंभव था। सामाजिक कार्यकर्ताओं की सहायता से मैं उस बूढे आदमी को झोंपड़ी के बाहर धूपवाले आंगन में ले गया जहां उसके बच्चो ने उसके खाने के लिए महुए के कुछ फूल सूखने के लिए डाल दिये थे। मैंने उस कृशकाय आदमी का चित्र लिया, जिसे कई पत्रों ने सहर्ष छापा। विशेष बात यह हुई कि इंगलैंड में एक समाचार-पत्र ने दान एकत्र करने के लिए इस चित्र का विज्ञापन के रूप में इस्तेमाल किया। उसका काफी प्रभाव पडा और उससे वस्तुतः बहुत सहायता मिली। उसी क्षेत्र में मैंने एक सूखा तथा दरारों वाला तालाब देखा था। उसमें लगातार तीन वर्ष से पानी नहीं बरसा था। उस चित्र को जीवंत बनाने के लिए मैंने एक दुबली-पतली गाय को उस तालाब मे हांक दिया। इस चित्र से भी दान-संग्रह अच्छा हुआ। अतः रचनात्मक उद्देश्य से ऐसे चित्रों को या उनके आधार पर किसी समाचार को प्रभावी बनाने का प्रयत्न अनैतिक बिल्कुल नही कहा जा सकता।

चाहे फोटो-पत्रकार किसी भी दैनिक अथवा साप्ताहिक से संबंधित हो, अपने काम से वह उस पत्र मे एक स्तंभकार या संवाददाता की भांति अपना स्थान बना लेता है। बडी बात यह है कि वह घटना-स्थल पर उपस्थित होता है। कालेज के दिनों की बात है। मुझे ठीक तारीख याद नही, लेकिन मुझे याद है कि किसी ने मुझे कालेज मे बताया कि विश्वविद्यालय मे कुछ हंगामा हुआ है। मै अपना कोडक फोल्डिंग ब्राउनिग कैमरा लेकर उस स्थान पर जल्दी से पहुंच गया। वैसे मै हमेशा अपना कैमरा साथ रखता था। उस दिन छात्रों पर अश्रुगैस छोडने के बाद अंग्रेज सरकार की पुलिस ने गोली चलायी थी। जब मैं पहुंचा, गोली चलायी जा चुकी थी। फिर भी गड़बडी और मृत लोगों के चित्र मैंने ले लिये। छात्रो का हुजूम अब भी वहा था। किसी ने मुझसे धीरे से कहा कि "पुलिस फोटोग्राफरों के कैमरे से फिल्म निकालकर जब्त कर रही है।" मुझे तुरंत सुबुद्धि आयी। कैमरा जेब में डाला, दूसरे छात्रों के साथ मिल गया और बाद मे चुपचाप बाहर निकल गया। पुलिस मुझे एक प्रेस फोटोग्राफर के रूप मे नही जानती थी। इससे मेरे निकल आने मे आसानी हुई। एक फोटो-पत्रकार के रूप में मेरा यह पहला अनुभव था। मुझे याद है कि मैं बहुत अधिक डरा हुआ था, कान में कही हुई वह बात कि 'पुलिस फिल्म जब्त कर रही है' मेरे दिमाग में घूम रही थी। मेरे पिता फौज में डाक्टर थे और मेजर के पद पर थे। मैं इतना घबरा गया था कि मैं अपने कमरे में आया और लेट गया। यह शायद मेरे लिए अच्छा रहा। एक घंटे बाद मैं उठा और सीधा फिल्म धुलाने के लिए फोटोग्राफर की अपनी खास दूकान पर गया। उसने मुझे 'ट्रिब्यून' जाने के लिए कहा और यह भी बताया कि यह सब गुप्त

रखा जायगा कि चित्र कहां से मिले। दूसरे दिन सबेरे मैंने अपने खींचे हुए चित्रों में से एक चित्र को 'ट्रिब्यून' में देखा। मेरी खुशी का ठिकाना न रहा। मैंने सोचा कि यदि मैं उस स्थान पर न पहुंचा होता, और वह भी समय पर, तो उस घटना का सचित्र विवरण उपलब्ध ही नहीं होता।

इस संबंध में मुझे एक और घटना याद आती है : दिल्ली में बाढ़ आयी हुई थी। समाचार आया कि जगतपुर गांव के लिए बाढ़ का खतरा उत्पन्न हो गया है। मैंने सोचा, क्यों न मै गांव पहुंचू। उस जगह पहुंचने में बहुत परेशानी हुई। एक टट्टू किराये पर लेना पड़ा। पानी तेज बह रहा था और गहरा था, टट्टू के मालिक ने आगे जाने के लिए मना कर दिया। मैं कंधों तक पानी में कैमरा सिर के ऊपर उठाये हुए चला। मगर अपने इस प्रयास की वजह से मैं पानी में कटते हुए गांव, बाढ़ की विभीषिका तथा कंधों तक चढे पानी मे सामान सिर पर रखे हुए गांव छोड़ते हुए लोगों की तस्वीरें लेकर आया। पानी में डूबे हुए कनस्तरों में दूध लाते हुए ग्वालों के रोचक चित्र भी मैंने लिये। चित्रों के कारण ही अधिकारियों ने उस रात जगतपुर को 'पूर्ण सुरक्षित' कहने की अपनी रट को छोड़ा था। क्योंकि जब मैने रात की ड्यूटी वाले उप-संपादक को वे चित्र दिखाये तो वे कहने लगे, "सरकारी तथा स्टाफ की रिपोर्ट कुछ और कहती है और तुम्हारे चित्र कुछ और। तुम गलत जगह पर चले गये होगे।" मैंने संपादक को फोन किया। उन्हें पता था कि मैं उस स्थान पर गया था। उन्होंने उप-संपादक से कहा कि मेरा इंटरव्यू लिया जाय और उन तस्वीरों के आधार पर समाचार प्रकाशित किया जाय। मैं सोचता हू यदि मैंने अपने अवचेतन को इस प्रकार दीक्षित न किया होता तो शायद तब मैं सही माने में फोटो-पत्रकार का कर्त्तव्य पूरा नहीं कर पाता। अवचेतन में समाचार-संग्रह की लगन परम आवश्यक है। कुछ व्यक्तियों में जन्म से लगन होती है। पर उसके लिए दूसरों को प्रशिक्षित भी किया जा सकता है। एक दिन मुझे याद है, मै ड्यूटी पर नही था। फिर भी यह जानने के लिए कि कोई 'इमर्जेंसी' तो नही है, मैंने यों ही अपने कार्यालय में फोन मिलाया। मालूम हुआ केवल आधा घंटा पहले एक विमान दुर्घटना हो गयी है। मेरे दौड पडने के लिए यह सूचना काफी थी।

फोटो-पत्रकारिता के दूसरे आवश्यक तत्व गति तथा प्रासंगिकता हैं। एक फोटो कितना ही सुंदर क्यो न हो, समाचार-पत्र के लिए वह व्यर्थ है, यदि उसमे प्रासंगिकता का अभाव है।

फोटो-पत्रकार को गति के लिए स्वयं को प्रशिक्षित करना पड़ता है। कभी-कभी जल्दी मे अच्छे चित्र छोड़ने भी पड़ते हैं। यदि आप अपने प्रतियोगी फोटो-पत्रकारों से अधिक अच्छा कार्य करते हैं तो पैसे की कमी मे आपका कार्य नहीं रुकता। मैं उन दिनो की याद करता हू जब दलाई लामा तिब्बत से भागे थे तो मुझे उनके भारत-प्रवेश के दृश्य लेने का काम सौंपा गया था। किसी को यह नही मालूम था, और कोई बताता भी न था, कि दलाई लामा कब और कहा से भारत मे प्रवेश करेंगे। कई दिनों तक पत्रकार गंगटोक मे प्रतीक्षा करते रहे, फिर वे तेजपुर चले गये। हुआ यह कि स्व० पं० जवाहरलाल नेहरू ने विश्व प्रेस की प्रार्थना पर सरकार का एक वरिष्ठ

अधिकारी उनसे संपर्क करने के लिए भेजा। दो दिन पहले हमें बताया गया कि दलाई लामा फुटहिल्स से प्रातः सात बजे भारत में प्रवेश करेंगे। जब मैंने उनके चित्र ले लिये तो मैं तुरंत उन्हें दिल्ली और बंबई भेजने की उधेड़-बुन में लग गया। दोनों स्थान तेजपुर से एक हजार मील से अधिक दूर हैं और उनका वहां से सीधा हवाई जहाज से संबंध नही है। मै बहुत चिंतित था और चाहता था कि मेरे चित्र सब से पहले छपने चाहिए। मैंने इंडियन एअर कार्पोरेशन मे विमान चार्टर करने की योजना बनायी। मैंने चुपचाप समय-तालिका, व्यय आदि का हिसाब लगाया और विमान चार्टर करने का निर्भीक निर्णय कर लिया। मेरे मित्र तथा पत्रकार जान एम० लेवेशक ने, जिनसे मैं सदैव प्रेरणा लेता रहा हूं, मेरी बहुत सहायता की। वे एक अमेरिकन टेलीविजन कंपनी के लिए कार्य कर रहे थे। उन्होंने दलाई लामा के पहुंचने की पूर्व-संध्या को अनेक टेलीविजन प्रतिनिधि इकट्ठे कर लिये थे और सबने मिलकर एक विमान चार्टर किया। हमारी योजना सफल रही, प्रत्येक व्यक्ति का खर्च लगभग एक हजार रुपया आया। मैं जिस समाचार-पत्र में हू उसने दिल्ली तथा बंबई के अन्य सभी पत्रों को मात दे दी। मैं नियत समय पर अपने चित्र पहुंचाने में सफल रहा। हमारे एक अन्य समाचार-पत्र ने इस बात के लिए पाठकों मे बाद में क्षमा मांगी कि वह चित्र प्रकाशित नहीं कर सका, हालांकि उसका फोटोग्राफर उस दिन वहां उपस्थित था। दूसरे समाचार-पत्र ने लंदन होकर यू० पी० के द्वारा चित्र प्राप्त करने की कोशिश की, लेकिन उसको चित्र नही मिल पाये। मेरा तो यह एक झपट्टा-मात्र था।

अपने प्रतिद्वंद्वियों से आगे निकलने की एक अच्छी प्रवृत्ति स्वयं ही विकसित हो जाती है। यदि आप चित्रों को शीघ्रातिशीघ्र भेजने और उसके अनुसार समाचार-संग्रह की तरकीब को विकसित करने में स्वय को प्रशिक्षित कर लेते हैं तो यह प्रवृत्ति बड़े काम की सिद्ध होती है।

पंजाबी सूबा आदोलन के अंतिम दौर में संत फतेहसिंह ने अमृतसर मे आत्म-दाह करने की घोषणा की थी। तिथि और समय की भी घोषणा हो चुकी थी। दुनिया भर के पत्रकार वहां पहुंच गये थे। सरकार ने शहर तथा स्वर्ण मंदिर के पास ४८ घंटे का कर्फ्यू लगा दिया था। स्वर्ण मंदिर मे जाने की किसी को भी आज्ञा नहीं थी। इसके लिए पंजाब के मुख्यमंत्री से की गयी प्रार्थनाएं बेकार गयी।

आत्मदाह के कुछ घंटे पहले पता चला कि लोकसभा के तत्कालीन अध्यक्ष एक योजना लेकर संत फतेहसिंह के पास आ रहे हैं। हमें अधिकारियों से, अमृतसर हवाई अड्डे पर, अध्यक्ष के आगमन का समाचार संग्रह करने की अनुमति मिल गयी थी। अब मेरी योजना प्रारंभ हुई। मेरे पास कार थी। मैंने सोचा अगर किसी तरह से मेरी कार पुलिस की कार तथा अध्यक्ष की कार के बीच मे आ जाय तो मुझको अध्यक्ष के काफिले का अंग समझ लिया जायगा और मोटरों की उस पंक्ति मे मैं भी स्वर्ण मंदिर मे घुस जाऊंगा। यदि अकेला कार मे चलता तो आसानी से पकडा जा सकता था। मैंने अपनी योजना एक-दो टेलीविजन कैमरावालों को बतायी। वे मेरी कार की पिछली सीट पर बैठने के लिए तुरत तैयार हो गये। ज्यों ही अध्यक्ष की कार हवाई अड्डे से चली, मैंने भी हार्न बजाया और अध्यक्ष के एकदम पीछे अपनी

योजना के अनुसार चल दिया। दूसरे पत्रकारों ने मुझको देखा और वे पुलिस तथा अंगरक्षकों की गाड़ी के पीछे चल दिये। स्वर्ण मंदिर के बहुत पहले ही उनको रोक दिया गया। मगर मैं उन दो टेलीविजन वालों के साथ अंदर पहुंच गया। किसी तरह पुलिस को इस कार्रवाई का पता चल गया। पुलिस ने लाउडस्पीकर पर घोषणा की कि यदि मैं तुरंत बाहर नहीं आया तो मुझे गिरफ्तार कर लिया जायगा। संतजी अपना उपवास तोड़ने तथा आत्मदाह न करने के लिए तैयार हो गये। इस बीच मैंने अपना काम पूरा कर लिया था, मगर समस्या थी कि चित्र दिल्ली कैसे पहुंचे। शाम के लगभग सात बजे थे। मैंने देखा कि सरदार हुकुमसिंह अपनी कार की ओर जा रहे हैं। मैं उनके पास पहुंच गया और उनकी जेब में अपनी फिल्म खिसका दी। मैंने उनसे कहा, "महोदय, आपकी जेब में जो फिल्म पड़ी है, उसमें मैंने संतजी को रस देते हुए आपका चित्र लिया है। यह आपके प्रयत्न की सफलता का प्रमाण है। मैं सोचता हूं कि आप सीधे हवाई जहाज से दिल्ली जा रहे हैं। यदि मेरे समाचार-पत्र से कोई व्यक्ति दिल्ली के हवाई अड्डे पर आपसे संपर्क नही करे तो यह फिल्म आप फेंक दीजिएगा। आपने लाउडस्पीकर पर सुना ही होगा कि मुझे गिरफ्तार कर लिया जायगा।" सरदार हुकुमसिंह बोले, "अच्छा, तो आप अभियुक्त हैं। मैं तुम्हारी हिम्मत की दाद देता हूं, चिंता मत करो, फिल्म तुम्हारे कार्यालय पहुंच जायगी।"

मैं अपनी तारीफ नहीं कर रहा हूं, मैं युवा फोटो-पत्रकारों की आत्मविश्वास, सूझ और योजना बनाने तथा पूर्वानुमान लगाने की योग्यता को विकसित करने की बात कह रहा हूं। अच्छे स्थानों पर संपर्क जीवंत रखने चाहिए। लोगों से संबंध तथा संपर्क बनाये बिना वे कभी भी एक सफल फोटो-पत्रकार नही बन सकते।

१९७२ मे शिखर-वार्ता के लिए श्री भुट्टो शिमला आये थे। वार्ता लगभग असफल हो चुकी थी। कुछ फोटो-पत्रकार शिमला से जा चुके थे। जो रह गये थे वे होटलों में आराम फरमा रहे थे। यह मेरा सौभाग्य था कि मैं ऐतिहासिक शिमला-समझौते पर हस्ताक्षर के वक्त का समाचार-चित्र दे सका। उस क्षण भारत सरकार तक के फोटोग्राफर भी उपस्थित नही थे। कारण यह था कि मेरा जिस व्यक्ति से संपर्क था उसने मुझे उस स्थान पर ठीक समय पर पहुंचने के लिए सूचित कर दिया था। वास्तव में भारतीय अधिकारी ने मुझसे कहा, "बेदी, पूरा समारोह आपकी पहुंच की प्रतीक्षा कर रहा है।" इधर मै पहुंचा और उधर कुछ ही सेकिंड में श्री भुट्टो तथा श्रीमती गांधी हस्ताक्षर करने के लिए अंदर आये।

यह सब कुछ पढ़कर आप सोचेंगे कि मैं एक सफल तथा संतुष्ट फोटोग्राफर रहा हूं। लेकिन विश्वास कीजिए यह बात पूरी तरह से सही नहीं है। जो आदमी पत्रों के कार्यालय में छापने की दृष्टि से चित्र छांटने का निर्णय करते हैं, वे प्रायः फोटोग्राफी के बारे में अनभिज्ञ होते है। या तो सही चित्र चुनने का उन्हें प्रशिक्षण नहीं मिलता या उनके दिमाग मे कुछ और बातें होती है। जब कभी मेरे समाचार-पत्र में छपे किसी खराब चित्र की ओर मेरा ध्यान दिलाया गया, तो मैंने भी यह पाया कि चयन गलत हो गया है। डेस्क पर काम करने वालों की दूसरी कमी है कि वे चित्र का आकार ठीक निश्चित नहीं कर पाते।

कई बार कहानी और चित्र एक दूसरे से मेल नहीं खाते हालांकि अपने-अपने ढंग से दोनों बढ़िया होते हैं। विदेशों में फोटो-संपादक, नगर-संपादक तथा ऐसे अनेक संपादक होते हैं जिन्हें निश्चित काम सौंप दिया जाता है। उनके विभिन्न कार्मों में समन्वय होता है। वास्तव में हर जगह प्रतिदिन सबेरे संपादक अपने अंतर्गत कार्य करने वाले विभिन्न विभागाध्यक्षों की बैठक बुलाता है और इस बैठक में फोटो-पत्रकारों के लिए आम रूपरेखा निश्चित कर दी जाती है तथा संपादक की सलाह के अनुसार प्रत्येक चित्र के लिए स्थान निश्चित कर दिया जाता है। जब फ़ोटोग्राफर बाहर जाता है तो उसे मालूम होता है कि उसे क्या लाना है। चित्र-संपादक स्वयं निर्णय करता है तथा संबंधित व्यक्तियों को उसके बारे में सूचित करता है। पाठकों के लिए जो कुछ भी महत्वपूर्ण है, वह कुछ नहीं छूटता है। भारत में ऐसी व्यवस्था बहुत कम अखबारों में है।

आम तौर से हमारे समाचार-पत्रों में चित्र-संपादक जैसे पद नहीं होते। जब देश में न्यूजप्रिंट की कमी आयी तब अंग्रेजी के अखबार इस क्षेत्र में फोटो-पत्रकारिता का आदर करने लगे। फिर भी देश की भाषाओं ने, विशेष रूप से हिंदी के समाचार-पत्रों ने अपने स्टाफ पर सुप्रशिक्षित फोटोग्राफरों को रखने का प्रयत्न ही नहीं किया। या तो वे सरकारी फोटो-विभाग की शरण में जाते हैं या स्वतंत्र फोटोग्राफरों से चित्र प्राप्त करते हैं। वास्तव में साज-सज्जा, सूक्ष्मग्राही सामग्री और सब से अधिक न्यूजप्रिंट तथा अन्य प्रकार के कागज के न मिलने के कारण हमारे देश में फोटो-पत्रकारिता की प्रगति अभी रुकी हुई है।

दूसरी महत्वपूर्ण बात, जिसकी ओर न तो संपादकों ने और न ही फोटो-पत्रकारों ने ध्यान दिया है, वह है इस क्षेत्र में बुनियादी शिक्षा का अभाव। यदि एक फोटोग्राफर को पर्याप्त सैद्धांतिक शिक्षा नहीं मिली है तो वह कभी भी एक अच्छा फोटो-पत्रकार नहीं बन सकता। अपवाद तो हर जगह होते हैं।

पत्रकारिता— जासूसी और वकालत

आम लोग वैसे 'जासूसी' को कोई घटिया-सी चीज समझते हैं; और इस लेख का शीर्षक देखकर उन्हें आश्चर्य होगा। शायद कुछ पत्रकार भाई इस बात पर घोर आपत्ति भी करें, कि सफल पत्रकार सफल जासूस भी होता है। पर इन दोनों का समन्वय कितनी बड़ी शक्ति पैदा कर सकता है, यह सुप्रसिद्ध अमेरिकी पत्रकार जैक ऐंडरसन की एक बात से स्पष्ट हो जाता है जो उसने २६ फरवरी १६७२ को अमेरिका के 'इनलैंड डेली प्रेस एसोसियेशन कन्वेंशन' को भारत-पाकिस्तान युद्ध पर अमेरिकी सरकार के रवैये के बारे में कहा था, "हमारे राष्ट्रपति ने झूठ बोला है। राष्ट्रपति के बारे में यह कहना अच्छा नहीं लगता पर 'झूठ' के अलावा और कोई उपयुक्त शब्द है भी नहीं। मैं फिर आपसे स्पष्ट कहना चाहता हूं—राष्ट्रपति ने झूठ बोला है और बहुत बड़ा झूठ बोला है। यह झूठ सोच-समझ कर, जान-बूझकर बोला गया और इससे संयुक्त राज्य के संविधान का उल्लंघन हुआ है।" ऐसी बात कहने की शक्ति केवल उसी में हो सकती है जो सफल पत्रकार, सफल जासूस और सफल वकील—तीनों के गुणों से परिपूर्ण है—जैसा कि जैक ऐंडरसन है।

ऐंडरसन ने अपनी पत्रकारिता और जासूसी से न केवल पत्रकारिता में ऊंचे कीर्तिमान स्थापित किये, वरन् पत्रकारिता को एक नया मोड़ भी दिया। जब उसने अपने 'पेंटागान पेपर्स' को—जिनमें वियतनाम में अमेरिकी सरकार की अंदरूनी नीति का पर्दाफाश किया गया था—प्रकाशित किया, तब उसने यह सिद्ध कर दिया कि पत्रकारिता थोथी सूचना सेवा नहीं है।

ऐंडरसन की ही शृंखला के दो स्तंभ हुए—बाब वुडवर्ड और कार्ल बर्नस्टाइन, जो 'वाटरगेट' के माध्यम से पत्रकारिता में ऐसी बाढ़ लाये कि उसमें राष्ट्रपति तक ढह गये!

वैसे, शक्तिशाली पत्रकारिता कभी भी थोथी सूचना सेवा नहीं रही। वह किसी न किसी रूप में राष्ट्र अथवा मानव की विचारधारा को प्रभावित करती रही। और कभी-कभी पत्रकारिता ने सिंहासन तक हिला दिये। उन्नीसवीं शताब्दी

के अंतिम चरण मे फ्रास में कैप्टन ड्रेफस का मुकदमा एक ऐसी ही मिसाल माना जा सकता है। १८९४ के दिसंबर में फ्रांस में तृतीय गणतंत्र के दौरान फ्रांसीसी सेना के कैप्टन ड्रेफस पर कोर्ट मार्शल हुआ और उसे जर्मनों तक राष्ट्रीय सुरक्षा संबंधी जरूरी कागजात पहुंचाने का दोषी पाया गया। सेना की एक पूरी टुकड़ी के सामने उसकी वर्दी उतार ली गयी, उसकी तलवार तोड दी गयी और 'डेविल्स आइलैंड' में उसे आजीवन कारावास के लिए भेज दिया गया। ड्रेफस अंत तक अपनी बेगुनाही, पर जोर देता रहा—पर उसकी किसी ने एक न सुनी। कैप्टन ड्रेफस यहूदी था और ऐसे भी किसी को एक यहूदी के प्रति सहानुभूति नहीं थी।

बात आयी-गयी हो गयी—और शायद यही समाप्त भी हो जाती, यदि एल्फ्रेड ड्रेफस के भाई मैथ्यू ड्रेफस ने, जिसे अपने भाई की बेगुनाही पर पूरा भरोसा था, पत्रकारिता की सहायता से बात फिर उभारी न होती। कहा जाता है कि जनता की स्मरणशक्ति बहुत कम होती है। कैप्टन एल्फ्रेड ड्रेफस कारावास में अपने दिन काट रहा था। जनता धीरे-धीरे सारी घटना को भूलती जा रही थी। यदि इस विषय में कुछ करना था तो सब से आवश्यक था—इस घटना को फिर पुनर्जीवित करना। इसी उद्देश्य से मैथ्यू ड्रेफस ने एक अंग्रेज पत्रकार से अनुरोध कर वेल्स के एक पत्र में झूठी खबर छपवायी कि कैप्टन ड्रेफस जेल से निकल भागने में समर्थ हो गये हैं। बात झूठी थी—पर इसके दो परिणाम हुए। एक तो यह कि कैप्टन ड्रेफस पर पहरा और कड़ा हो गया और दूसरा महत्वपूर्ण परिणाम यह हुआ कि इस घटना में लोगों की दिलचस्पी बढ़ी। उसी समय फ्रांस के अखबार 'ल एक्लेयर' ने एक लेख छापा जिसमें कहा गया कि कैप्टन ड्रेफस के खिलाफ और भी कई सबूत थे—और उसका जेल में रहना ही उचित था। यह बात वैसे उतनी ही गलत थी जितनी मैथ्यू ड्रेफस के लिखवाये लेख में कही गयी बात। उसी समय फ्रांस की सेना के गुप्तचर विभाग के प्रमुख मेजर पिकार्ट ने इस मामले की और छानबीन की तथा पता लगा लिया कि जर्मनों को दिये गये उस गुप्त दस्तावेज की लिपि कैप्टन ड्रेफस की नहीं, एक मेजर एस्टरहजी की थी। देश के प्रमुख सैनिक अधिकारियों को यह बात जरा भी पसंद नहीं थी कि मामले को फिर उभारा जाय; नतीजा यह हुआ कि मेजर पिकार्ट को ही उनके पद से हटा दिया गया।

बात यहां भी समाप्त हो जाती, यदि उसी समय फ्रांस के एक और अखबार 'मैतां' ने उस दस्तावेज का चित्र न छापा होता। अब जो बात केवल मेजर पिकार्ट तक सीमित थी, वह जनता के सामने आ गयी, क्योंकि यह घटना थोड़ी अजीब थी और क्योंकि कैप्टन ड्रेफस एक यहूदी था, यह शीघ्र ही राष्ट्रीय स्तर पर चर्चा का विषय बन गयी। देश के सभी समाचार-पत्रों ने इसे प्रमुख विषय बनाया और बात यहां तक बढ़ी कि, जैसा कि एक इतिहासकार ने लिखा है, "सारे फ्रांस पर जैसे मिर्गी का दौरा आ गया हो। परिवारों की घरेलू शांति नष्ट हो गयी; बाप-बेटे में मतभेद हो गया; पति-पत्नी में बहस छिड़ गयी।" जब ड्रेफस के परिवार वालों ने एक प्रतिष्ठित व्यक्ति केसनर तक अपनी फरियाद पहुंचायी तो केसनर ने, जिसका स्वयं विश्वास था कि कैप्टन ड्रेफस निरपराध है, अपने मित्र जनरल बिलो को कहा।

पर जनरल बिलो ने उल्टे अखबारों को प्रेरित किया कि वे केसनर के खिलाफ प्रचार करें। अंत में केसनर ने एक अन्य उच्च अधिकारी को सारी घटना की फिर से जांच करने का अनुरोध करते हुए एक खुला पत्र लिखा जिसे 'टेम्प्स' ने छापा। जनता की तरह, समाचार-पत्रों के भी दो दल हो गये। बात यहां तक बढ़ी कि 'सोलील' नाम के पत्र के संपादक ने, जो आम तौर पर प्रशासन-पक्षीय पत्र माना जाता था, जब अपने व्यक्तिगत विश्वास के आधार पर पुनर्जांच का समर्थन किया तो उसके पाठकों ने इतना विरोध किया कि उसे अपना रुख बदलना पड़ा और उसके संपादक पौल डी कासनयाक को हटा दिया गया। पत्रकारिता में व्यक्तिगत विश्वासों के लिए यह एक प्रमुख बलिदान गिना जायगा।

बात और भी बढ़ी। 'मेती' के संपादक ब्रर्नार्ड लजोर ने फिर एक बार दस्तावेज की प्रति छापी, दूसरी ओर 'लिब्र पेरोल' ने मेजर पिकार्ट की ही निंदा की! अंत में बात को समाप्त करने के लिए प्रशासन ने यह तय किया कि मेजर एस्टरहेजी पर मुकदमा चलाया जाय। उस समय भी यही योजना रही कि मुकदमे में उसे निर्दोष साबित कर दोषारोपण अंततः कैप्टन ड्रेफस पर ही किया जाय।

मुकदमा शुरू हुआ और तीन मिनट में समाप्त हो गया। मेजर पिकार्ट को षड्यंत्र में शामिल होने का दोषी ठहराया गया और मेजर एस्टरहेजी को रिहा कर दिया गया। प्रशासन ने चैन की सांस ली।

पर यह सांस बडी गहरी न थी। अब तक तो समाचार-पत्रों ने वकील का पार्ट अदा किया था, पर अब सुप्रसिद्ध अखबार 'फिगारो' ने जासूसी भी शुरू की। खोजबीन के बाद अखबार ने मेजर एस्टरहेजी की भूतपूर्व प्रेमिका और रखैल से कुछ ऐसे पत्र प्राप्त किये, जिनके प्रकाशन से सारे केस मे फिर जान आ गयी। उसी समय पुनर्जांच के समर्थकों ने प्रसिद्ध फ्रांसीसी उपन्यासकार एमिल जोला से संपर्क स्थापित किया। और जोला ने, जो स्वयं कैप्टन ड्रेफस को व्यक्तिगत रूप मे नहीं जानते थे, एक नये अखबार 'ल अरोर' मे फ्रास के राष्ट्रपति के नाम एक खुली चिट्ठी लिखी—"मैं दोषारोपण करता हूं।" इसमें उन्होंने फ्रांस के उच्च सैनिक अधिकारियों की निंदा करते हुए कैप्टन ड्रेफस के मामले की फिर से जांच करवाने की मांग रखी। इस पत्र के कारण न केवल जोला का पूरा पाठक वर्ग वरन् फ्रांस के उस समय के जाने-माने बुद्धिजीवी—अनातोले फ्रांस, क्लौड मोने, चार्ल्स रिशे तथा मार्सेल प्राउस्ट भी मैदान में आ गये। पर दूसरी ओर सैनिक अधिकारी भी चुप बैठने वाले न थे। जोला पर मुकदमा चलाया गया और उन्हें एक वर्ष के जेल की सजा दी गयी जिससे वे इंग्लैंड भागने से ही बच सके।

पर मामला ठंडा नहीं पडा। और जैसे-जैसे वह गर्म होता गया, एक मंत्रि-मंडल के बाद दूसरे का पतन भी होता गया। अंत में हार मानकर जून १८९९ में फ्रांस की सर्वोच्च अदालत ने मुकदमा फिर से चलाया, पर फिर कैप्टन ड्रेफस को दोषी पाकर इस बार दस वर्ष की सजा दी। फ्रांस की जनता और उसके अखबारों ने एक बार फिर आवाज उठायी और अदालत को दस दिनों में ही अपना फैसला बदलना पड़ा। पर ड्रेफस के समर्थक इससे भी संतुष्ट नहीं हुए। अंत में १९०६ में कैप्टन

ड्रेफस को पूर्णतः निरपराध घोषित किया गया और पूरे सम्मान के साथ अपने पूर्व पद पर प्रतिष्ठित किया गया। मेजर पिकार्ट को भी अपना पद वापस दिया गया और वे बाद में क्लेमांसो के मंत्रिमंडल में युद्धमंत्री बने। जोला जिनकी मृत्यु १९०२ में हो चुकी थी, उन्हें न्याय के संघर्ष का सिपाही माना गया और उनके पार्थिव अवशेषों को फ्रांस के 'पैन्थियन' में रखा गया। इस तरह इस घटना का अंत हुआ। अगर हम यह कहें कि इस सारी घटना में कैप्टन ड्रेफस का सब से बड़ा वकील समकालीन पत्रकारिता ही थी, तो कोई अतिशयोक्ति न होगी।

इस दशक में अमेरिका ने पत्रकार-कला के उक्त क्षेत्र में नये कीर्तिमान स्थापित किये हैं। आज शायद वही ऐसा देश है, जहां 'इनवेस्टिगेटिव जर्नलिज्म' अर्थात् जिस विषय की हम चर्चा कर रहे हैं—पत्रकारिता में जासूसी—वह वहां के पत्रकारिता पाठ्यक्रम का अंग बन गयी है। यही कारण भी है कि वहां पत्रकारिता इतनी सशक्त हो गयी कि जिसके कारण शासन ही डोल गया! लेखक का इशारा 'वाटरगेट' काड की ओर अवश्य है, पर यदि अमेरिकी पत्रकारिता के इतिहास में 'वाटरगेट' न भी होता, फिर भी वहां की पत्रकारिता, व्यक्ति की और पत्रकारिता की स्वतंत्रता का जीता-जागता प्रमाण होती। वह भी शायद इसलिए कि वहां की पत्रकारिता में वकालत और जासूसी के तत्व बड़े जबर्दस्त ढंग से आ गये हैं। उदाहरण के लिए एक और घटना को लीजिए—'माई लाई' कांड।

१६ मार्च १९६८। दक्षिण वियतनाम का एक छोटा-सा गांव—टुकुंग। इसी गांव का पुराना नाम था 'माई लाई'। इस दिन अमेरिकन लेफ्टिनेंट कर्नल फ्रेंक बारकर की टुकड़ी ने इस गांव पर इस भ्रम में धावा बोल दिया कि यहां वियतकांग के छापामार शरण ले रहे है। बात बिल्कुल गलत निकली और जब यह टुकड़ी गांव में घुसी तब वहां केवल बूढे, औरतें और बच्चे थे। लेकिन कैप्टन मेडिना ने इस बात को अनदेखा कर गांव को कब्जे में करने की आज्ञा दी। इस दौरान कंपनी की पहली प्लाटून के कमांडर लेफ्टिनेंट विलियम कैली ने अपने सैनिकों को सारे नागरिकों को समाप्त कर देने की आज्ञा दी और कुछ ही देर में सैनिकों ने नागरिकों को गोली से भून डाला। यहां तक कि इस छोटे से गांव में उस दिन वही दृश्य था जो द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान 'बाबी यार' में रहा होगा, जिस दिन नाजियों ने हजारों-हजारों यहूदियों को एक गड्ढे के किनारे खड़ा कर पीछे से गोलियों से छलनी कर दिया था ताकि उनकी लाशें बनी-बनायी कब्रों में गिरें और उन्हे मिट्टी से पाटने में ज्यादा दिक्कत न हो। लेफ्टिनेंट कैली ने भी गड्ढे में उसी प्रकार निरीह वियतनामियों को ढकेल कर गोलियों से भून डाला। जब एक बूढ़ा, जो कोई बौद्ध पुजारी था, कैली से अपने प्राणों की भीख मांगने लगा, कैली ने अपनी बंदूक के हत्थे से उसे वापस गड्ढे में ढकेल दिया और गोली बरसा दी। इसी प्रकार उसने एक शिशु की हत्या की। जब 'माई लाई' के ऊपर उड़ान भरते हुए एक हेलीकोप्टर से वारंट अफसर थामसन ने यह हत्याकांड देखा तो उसने कैली को सलाह दी कि वह वियतनामियों से वह गांव खाली करने को कह दे। पर कैली ने जवाब दिया कि "गांव केवल हथगोलों से ही खाली किया जा सकता है।" कुछ देर के बाद सारे गांव पर मौत की शांति छा गयी। इस हत्याकांड में कितने

लोग मारे गये, इसका सही अंदाज कभी भी नहीं लग सका। लेफ्टिनेंट कैली पर मुकदमे के दौरान १०२ आदमियों की हत्या का आरोप लगाया गया और उसे कम से कम २२ लोगों की हत्या का दोषी ठहराया गया। जो इक्के-दुक्के इस हत्याकांड से किसी तरह बच गये उन्होंने बताया कि तीन सौ से लेकर छह सौ लोग मारे गये थे। सही संख्या जो भी कुछ रही हो, इसमें संदेह नही कि यह सैकड़ों में थी। लेकिन फिर भी इस घटना ने कोई विशेष हलचल पैदा नही की। 'माई लाई' के जो कुछ लोग बच निकले थे, उन्होंने राष्ट्रीय मुक्ति मोर्चे को एक पत्र इसके बारे में लिखा जो २५ मार्च १९६८ को प्रकाशित हुआ। हनोई के एक संवाददाता सम्मेलन में इसकी कुछ चर्चा भी हुई, पर यह लहर अमेरिका तक जोरों से नही पहुंची। फिर एक सैनिक रिडेनहावर ने, जिसने यह सारी कहानी कैली के सैनिक टुकड़ी के लोगों से सुनी, इस सारी घटना का विवरण देते हुए राष्ट्रपति निक्सन, रक्षा मंत्री, २३ कांग्रेस सदस्य तथा उच्च सरकारी अधिकारियो को लिखा। पूरी जाच का आदेश दिया गया, कई लोगों की गवाही ली गयी. कुछ जांच-अधिकारी 'माई लाई' भेजे गये और ५ सितंबर १९६९ को कैली के खिलाफ मुकदमा दायर किया गया।

मुकदमा गुप्त रूप से चला लेकिन इसकी भनक अमेरिकन प्रेस को पड गयी। ६ सितंबर को पसिद्ध समाचार-एजेंसियों---'एसोसियेटेड प्रेस' तथा 'युनाईटेड प्रेस इंटरनेशनल'- ने इसे प्रसारित किया तथा दस सितंबर को 'एन० बी० सी० हंटले-ब्रिकले' टेलीविजन ने इस मुकदमे को अपने समाचारों में स्थान दिया लेकिन फिर भी 'माई लाई' अभी तक अमेरिकी लोगों के दिमाग पर छाया नहीं था। फिर एकाएक १३ नवंबर को जैसे समाचार क्षेत्र मे एक बम फूट पड़ा हो। देशभर के तीस समाचार-पत्रों ने इस घटना के पूरे विवरण को प्रमुख रूप से छापा। २० नवंबर को 'दी क्लीवलैंड प्लेन डीलर' ने इस हत्याकांड के कुछ चित्र छापे जो एक सैनिक फोटोग्राफर रोनाल्ड हेबरले ने लिये थे। फिर तो जैसे एक तूफान-सा आ गया। समाचार-पत्रों में इस घटना से संबंधित सैनिकों द्वारा दिये गये वक्तव्यों को छापने के लिए एक होड़-सी लग गयी। घटना से सबंधित समाचारों ने इतना जोर पकड़ा कि लेफ्टिनेंट कैली के बचाव तथा विरोध, दोनो पक्षों के वकीलों ने इस तरह के समाचारों पर अदालती पाबंदी की मांग की पर २ दिसबर को यह माग अस्वीकार कर दी गयी। समाचारों ने घटनाक्रम को इतना प्रभावित किया कि २६ नवंबर को राष्ट्रपति के प्रेस सलाहकार को जनता को यह आश्वासन देना पड़ा कि जो लोग इस मुकदमे में अपराधी पाये जायंगे, उन्हें सैनिक न्याय के अनुरूप दंड दिया जायगा। ८ दिसंबर को राष्ट्रपति निक्सन ने स्वयं एक संवाददाता सम्मेलन में कहा कि ऐसा लगता है कि 'माई लाई' में जो कुछ हुआ वह अवश्य ही एक नरमेध था और उसे किसी भी तरह न्यायसंगत नहीं बताया जा सकता। जो बात शायद दबी रह जाती और जिसे उभारने में अमेरिकी प्रशासन की कोई दिलचस्पी भी नही थी उसने पत्रकारिता के माध्यम से इतना जोर पकड़ा कि जब लेफ्टिनेंट कैली का मुकदमा फिर शुरू हुआ तब बचाव पक्ष के वकील ने कहा कि प्रेस और रेडियो ने इस हत्याकाड का जिस प्रकार प्रचार किया है, उस स्थिति में यह संभव नहीं कि लेफ्टिनेंट कैली को उचित न्याय मिल सके। लेकिन मुकदमा तो चलना ही था और यह कोर्ट

मार्शल जिसमें एक सौ चार लोगों ने गवाहियां दीं और जो छियालीस दिन तक चला वह अमेरिकी इतिहास में सब से लंबा कोर्ट मार्शल का मुकदमा था। २९ मार्च १९७१ को लेफ्टिनेंट कैली को चार मुद्दों पर दोषी पाया गया और उसे आजीवन कारावास की सजा दे दी गयी।

लेकिन इस सजा से अमेरिकी जनता और प्रेस पर दूसरा प्रभाव पड़ा। समाचार-पत्रों ने इस हत्याकांड के दूसरे पहलुओं की खोज की और यह तथ्य सामने रखा कि जिन लोगों ने 'माई लाई' के हत्याकांड में भाग लिया था वे मानसिक रूप से स्वस्थ नहीं थे। एक पत्रकार मार्टिन गर्शेन ने, जिन्होंने बाद में 'डू और डाई : दी ट्रू स्टोरी आफ माई लाई' नामक पुस्तक लिखी, इस घटना से संबंधित पांच लोगों से भेंट करके कुछ नये पहलू सामने रखे, जैसे कि 'माई लाई' हत्याकांड के कुछ ही दिन पहले उस विशेष सैनिक टुकड़ी ने अपने कई जवान खो दिये थे, उनमें स्वयं एक भय छा गया था। वे अधिकतर अशिक्षित और मोटी बुद्धिवाले सैनिक थे जिन्हें केवल यह सिखाया गया था कि वियतनामी तुम्हारे दुश्मन हैं और उनकी हत्या करना तुम्हारा धर्म और कर्त्तव्य है। अपने एक भाषण मे गर्शेन ने कहा भी कि 'माई लाई' अमेरिकन जनता के लिए असंभव होता यदि अमेरिका में स्वतंत्र प्रेस नही होता और दूसरी ओर यह भी कहा कि इस घटना से यही शिक्षा मिलती है कि जिन्होंने हत्याकांड में भाग लिया उनके पीछे प्रेरणा पूरी अमेरिकन जनता की थी। और इसलिए अमेरिकी जनता को चाहिए कि हत्यारों को खोजने के लिए वह दर्पण मे अपना ही चेहरा देखें। इस प्रकार एक बार फिर प्रेस सक्रिय हुआ लेकिन इस बार लेफ्टिनेंट कैली के पक्ष में। और एक बार फिर एक अप्रैल को राष्ट्रपति निक्सन को कहना पडा कि वे स्वयं कैली के अपराध की समीक्षा करेंगे। अंतत. कैली के आजीवन कारावास की सजा को बीस वर्षों की सजा में बदल दिया गया।

इस घटना में हम पाते है कि पत्रकारिता ने दोनों पक्षों के वकील का कार्य किया। एक बाढ़ मे उसने हत्याकाड के अपराधी के दंड की मांग की, फिर उसी ने दूसरी ओर उस सजा को नर्म करने की मांग की। यदि अमेरिका मे सशक्त पत्रकारिता न रहती तो ये दोनों पहलू छिपे रह जाते। इस घटना के प्रचार से और भी दूरगामी प्रभाव पड़े जिनमें वियतनाम मे अमेरिकी हस्तक्षेप को समाप्त करना प्रमुख था।

जब राष्ट्रपति निक्सन और पत्रकारिता की एक साथ चर्चा होती है तो फिर 'वाटरगेट' ही सामने आता है। वाटरगेट' काड के बारे मे तो वैसे साहित्य का 'गेट' इस प्रकार खुल गया है कि एक बाढ़-सी आ गयी है, और अभी भी यह दौर समाप्त नहीं हुआ है। एक समय ऐसा लगता था कि 'वाटरगेट' मामले को प्रकाश में लाने वाले 'वाशिंगटन पोस्ट' के दो संवाददाताओं—कार्ल बर्नस्टाइन और बाब वुडवर्ड—की अपनी किताब 'आल द प्रेसिडेंट्स मेन' इस संबंध में अंतिम पुस्तक होगी, पर नहीं, उस किताब को छपे करीब डेढ़ वर्ष हो गया और अभी भी किताबें निकल रही हैं।

खैर, जो भी हो, इस बात को अस्वीकार नही किया जा सकता कि 'वाटरगेट' कांड में प्रशासन और समाचार-पत्रों की लड़ाई मे अंततः विजय समाचार-पत्रों के हाथ ही रही। बीच में जब घटनाचक्र तेजी से चल रहा था—नये-नये तथ्य प्रकाश

में आ रहे थे तो कई अवसरों पर प्रेस की स्वतंत्रता पर जबर्दस्त वार हुए थे। वैसे उसके पहले भी अमेरिकी उप-राष्ट्रपति स्पेरो एग्न्यू ने 'प्रेस की स्वतंत्रता' पर पाबंदियां लगाने की बात की शुरुआत कर दी थी पर 'वाटरगेट' कांड में यह विचार कार्य में परिणत हो गया। टेलीविजन स्टेशनों और समाचार-पत्रों के मालिकों को चेतावनी दे दी गयी थी कि यदि वे प्रशासन के विरुद्ध आलोचनात्मक रवैये से बाज नहीं आयंगे तो उनके लाइसेंस रद्द कर दिये जायंगे, 'वाटरगेट' से संबंधित प्रशासन के लोगों को किसी भी संवाददाता से बात तक करने की मनाही कर दी गयी। यहां तक कि अमेरिका के प्रसिद्ध इतिहासकार हेनरी स्टील कोमांजर ने लिखा था कि "हमारे इतिहास में कभी भी सरकार ने इस प्रकार संविधान द्वारा सुरक्षित प्रेस की स्वतंत्रता की अवहेलना नहीं की थी। इन सब बातों को देखते हुए यह मानना पड़ेगा कि इन प्रतिकूल परिस्थितियों में 'वाशिंगटन पोस्ट' के उन दो संवाददाताओं को तथ्यों तक पहुंचने में अपनी जासूसी बुद्धि का जो इस्तेमाल करना पड़ा वह शायद पत्रकारिता के इतिहास में अद्वितीय मिसाल है।"

ये दो संवाददाता—बर्नस्टाइन और वुडवर्ड—किस प्रकार इस मामले का रहस्योद्घाटन कर सके, यह तो एक लंबी कहानी है जिसका हर मोड़ उनकी किताब में बखूबी दिया गया है। अत: यहां केवल कुछ प्रमुख बातों की ही चर्चा की जा सकती है।

जब १७ जून १९७२ को सुबह नौ बजे वुडवर्ड को फोन पर सोते से जगाकर उसके संपादक ने उसे कहा कि वह वहां के 'वाटरगेट' नामक मकान में चोरी करते जो पांच लोग पकड़े गये हैं उसकी रिपोर्ट दे, तो वुडवर्ड ने मन ही मन सोचा कि यह भी आम दिनों की आम चोरी की घटनाओं में से एक है। जब उसे पता चला कि उसके एक और सहयोगी बर्नस्टाइन को भी यह काम सौंपा गया है तो उसे थोड़ी निराशा भी हुई कि ऐसे मामूली काम पर दो आदमियों को लगाया गया। 'वाशिंगटन पोस्ट' भी वुडवर्ड से सहमत था इसीलिए इस काम पर उसके प्रमुख संवाददाता नहीं लगाये गये। वुडवर्ड तथा बर्नस्टाइन क्रमशः उनतीस तथा अट्ठाईस वर्ष के थे और इस अखबार मे नये-नये आये थे।

चोरी की आम घटनाओं की तरह यह घटना भी दब ही जाती। लेकिन विधाता को कुछ और ही मंजूर था। जब पांचों मुजरिमों को न्यायालय में पेश किया गया तो उनमें से एक, जेम्स मक्कोर्ड, ने अनजाने में यह कह दिया कि वह किसी समय सी० आई० ए० में रह चुका था। बात यही से फैलती गयी। जब दोनों संवाददाताओं ने मक्कोर्ड के बारे मे और पता लगाने की कोशिश की तो यह तथ्य सामने आया कि उसका संबंध उस समिति मे रह चुका है जो राष्ट्रपति के पुनर्निर्वाचन का कार्य करती थी। एक और बात जो बाद में आगे संवाददाताओं के हक में बहुत आगे बढ़ गयी। वह यह थी कि गिरफ्तार हुए दो चोरों की डायरियों में हावर्ड हंट का नाम था जिसके बारे में यह पता चला कि उसकी भी जड़ें राष्ट्रपति-निवास तक फैली हुई हैं। बस इन दो बातों से राष्ट्रपति का संबंध इस घटना से जुड़ गया। इसके बाद घटनाओं की धारा ने दो मोड़ लिये। एक ओर तो राष्ट्रपति के प्रवक्ता इस बात को नकारने में लगे हुए थे कि वाटरगेट की चोरी के साथ राष्ट्रपति निक्सन अथवा उसके किसी

भी कर्मचारी का संबंध नहीं है और दूसरी ओर 'वाशिंगटन पोस्ट' के दोनों संवाददाता इस घटना की जड़ों तक जाकर यह दिखाना चाह रहे थे कि न केवल राष्ट्रपति का संबंध इससे है बल्कि उनके प्रयत्नों से इस सारे घटनाचक्र पर पर्दा डालने की कोशिश भी की जा रही है ।

यह बात जितनी आसानी से यहां कही गयी है, काम यथार्थ में उतना ही कठिन था । जब एक बार यह बात सामने आ गयी कि इस रहस्योद्घाटन के पीछे 'वाशिंगटन पोस्ट' का हाथ है तब राष्ट्रपति के कर्मचारियों पर इस बात की नजर भी रखी जाने लगी कि वे कब और कहां किससे मिलते हैं, और यह भी हिदायत दी गयी कि कोई भी कर्मचारी किसी संवाददाता से बातें नहीं कर सकता । अपनी किताब में वुडवर्ड और बर्नस्टाइन दर्शाते हैं कि किस प्रकार उन्हें संबंधित लोगों से बात तक करने के लिए पापड़ बेलने पड़े । अधिकतर लोग उनके मुंह यह कह कर बंद कर देते थे कि मेरी और अपनी भलाई के लिए कृपया यहां से चले जाइए ?

लेकिन इन दोनों संवाददाताओं ने सधे जासूसों की तरह हिम्मत नहीं हारी । उन्हें जहां कही भी यह आशा रहती कि इस केस में थोड़ी-सी भी जानकारी मिल सकती है, वहां ये रात के अंधेरे में जाते । एक चीज ने उनका बड़ा साथ दिया, वह था उनका भाग्य । जब भी वे ऐसी स्थिति में पहुंचे कि अब इस संबंध में और तथ्य नहीं प्राप्त हो सकते, उन्हें कोई न कोई ऐसा व्यक्ति मिल गया जो उन्हें आगे का थोड़ा-सा संकेत दे सके । जब ये वाटरगेट के एक चोर के बैंक मे जमा करवायी धनराशि का रहस्य खोजते-खोजते हिम्मत हार ही बैठे थे कि उन्हें राष्ट्रपति के एक ऐसे कर्मचारी, ह्यू स्लोन ने मदद दी जो वहां से अपना त्यागपत्र दे चुका था । जब उन्होंने इस घटना के संबंध में पूरी जाच-पडताल कर एक रात को सीधे राष्ट्रपति के निकट सहयोगी जान मिचेल को टेलीफोन पर यह बताया कि दूसरे दिन उनके अखवार में यह कहानी छपने वाली है, तो केवल उसकी प्रतिक्रिया से उन्हें पता चल गया कि वे सही रास्ते पर है । एक बार और ऐसे ही अवसर पर उन्हें कैथेरिन शेनो नामक स्त्री ने मदद की, जिसका संबंध एक ऐसी समिति 'दी प्लंबर्स' से था जो राष्ट्रपति की गुत्थिया सुलझाने का काम करती थी । मिस शेनो ने भी 'व्हाइट हाउस' से इस्तीफा दे दिया था । पर सब से अधिक जिसने मदद की उसका नाम संवाददाताओं ने उसकी आवाज के भारीपन के कारण रखा 'डीप थ्रोट' (गहरा गला) । यह असल में कौन था—यह खेल सिर्फ उन दोनों संवाददाताओं को ही मालूम रहता था ।

सच पूछा जाय तो इस सारे कांड में ऐसी घटनाएं भरी पड़ी हैं । कहने का अर्थ इतना ही है कि वुडवर्ड और बर्नस्टाइन पत्रकार थे, कोई मंजे हुए जासूस नहीं, लेकिन 'जासूसी पत्रकारिता' की जो उन्होंने मिसाल दी है वह शायद अद्वितीय है । यहां एक बात की चर्चा आवश्यक हो जाती है । जासूसी और वकालती पत्रकारिता तभी सफल हो सकती है जब उसके प्रबंधकों और व्यवस्थापकों में इतनी हिम्मत हो कि वे अपने संवाददाताओं पर भरोसा रखें और छापना जारी रखें । कठिनाइयां तो आयंगी ही । 'वाटरगेट कांड' पर अमेरिका में भी 'वाशिंगटन पोस्ट' पर प्रतिकूल प्रतिक्रिया हुई । जब 'पोस्ट' ने इस घटना की चर्चा बंद नहीं कि तो पहले तो 'व्हाइट

हाउस' के समारोहों के लिए उसे आमंत्रित करना बंद कर दिया गया। फिर 'पोस्ट' द्वारा फ्लोरिडा में संचालित दो टेलीविजन केंद्रों के अधिकारों का मामला 'संघीय संचार आयोग' में ले जाया गया। एक समय 'पोस्ट' के शेयरों के भाव पचास प्रतिशत तक नीचे आ गये लेकिन यह पोस्ट के संपादक बेंजामिन ब्रैडली तथा उसके मालिक कैथेरिन ग्राहम की ही हिम्मत थी कि उन्होंने अपने संवाददातओं की पीठ ठोंकी और प्रशासन के विरुद्ध मोर्चा बनाये रखा। यहां तक कि राष्ट्रपति निक्सन के प्रेस सचिव श्री जीगलर ने विभिन्न अवसरों पर सोलह बार 'वाशिंगटन पोस्ट' की भर्त्सना की और निस्संदेह ऐसे कई अवसर आये होंगे जब दोनों संवाददाताओं के साथ 'पोस्ट' के प्रबंधक भी हिम्मत हार गये होंगे; पर ब्रैडली ही ऐसा आदमी था जिसने सब की हिम्मत बनाये रखी और अंत में राष्ट्रपति ने इस सारी घटना पर जो पर्दा डाल रखा था, वह उठ ही गया। आगे की कहानी, अर्थात् कैसे राष्ट्रपति निक्सन के विरुद्ध मुकदमा चला, कैसे 'व्हाइट हाउस' मे रेकार्ड किये टेप की बात प्रकाश में आयी और किस प्रकार राष्ट्रपति निक्सन को न चाह कर भी इस्तीफा देना पड़ा, यह सर्वविदित ही है।

यह तो रही बड़े व्यक्तियों और बड़े अखबारों की बात। जापान में भी प्रधानमंत्री तनाका के पतन के पीछे पत्रकारिता का कितना बड़ा हाथ रहा है, यह भी काफी जाना-माना प्रसंग है। पर किस प्रकार एक छोटा अखबार अपनी हिम्मत और अंदरूनी बातों का पता लगाकर तथ्य को प्रकाश में ला सकता है, इसका एक जोरदार उदाहरण है 'बायज टाउन' की घटना। जो पत्र इस घटना से जुड़ा था, वह था एक छोटे से नगर 'ओमाहा' का एक छोटा-सा अखबार 'दी सन।'

'दी सन' एक साप्ताहिक अखबार था और ऐसे अखबारों को अपने पाठकों को बनाये रखने के लिए नयी-नयी सामग्री की खोज मे लगा ही रहना पडता है। इसी दृष्टि मे 'सन' के संपादक ने तय किया कि अपंग और अनाथ बच्चों की देखभाल करने के लिए एक स्थानीय संस्था 'बायज टाउन' के बारे मे एक लेख लिखा जाय। 'बायज टाउन' की स्थापना १९१७ में एडवर्ड जे० फ्लैनेगन नामक पादरी ने की थी। जब संस्था शुरू हुई तब उसकी आर्थिक हालत विशेष अच्छी न थी; लेकिन १९३८ में एक प्रसिद्ध अमेरिकी फिल्म कंपनी ने 'बायज टाउन' पर एक फिल्म बनायी जो इतनी प्रसिद्ध हुई कि वह अभी भी कभी-कभी टेलीविजन पर दिखायी जाती है। इससे न केवल 'बायज टाउन' प्रख्यात हो गया, उसकी प्रतिष्ठा बढ़ गयी वरन् उसकी आर्थिक स्थिति भी बड़ी मजबूत हो गयी। इसके संपादक फादर फ्लैनेगन ने एक करोड डालर के खर्चे से बच्चों के लिए नया स्कूल, खेल का मैदान और प्रशिक्षण केंद्र बनवाया। पर १९३८ के बाद से 'बायज टाउन' पर कोई बड़ा खर्च नही किया गया। जब १९७१ में 'सन' ने 'बायज टाउन' के इतिहास तथा उसके कार्यकलापों पर लेख प्रकाशित करने की सोची तो उस समय उनके मन मे संस्था के प्रति केवल श्रद्धाभाव था और इसके खिलाफ कुछ प्रकाशित करने के बारे में उन्होंने सोचा तक न था। पर जैसे ही उन्होंने इस मामले को शुरू किया तो उन्होंने महसूस किया कि 'बायज टाउन' के अधिकारी किसी भी सूचना को अखबार में देने के विरुद्ध थे। उन्होंने 'सन' की बात को न केवल टालना चाहा वरन् अपनी ओर से उन्हें हतोत्साहित भी किया। जब 'सन' ने यह

जानना चाहा कि 'बायज टाउन' के चंदे की आमदनी को किन-किन मुद्दों पर खर्च किया जाता है, तो संस्था के अधिकारी ने केवल यह कह कर टाल दिया कि हजार बच्चों की देखभाल पर काफी खर्च बैठता है।

पर 'सन' के संपादक को इसमे संतोष नही हुआ। फिर यह विचार किया गया कि चौबीस वर्षीय रिपोर्टर डूग स्मिथ को यह कार्य सौपा जाय।

जैसा कि हर जासूस को महत्वपूर्ण केसों मे कभी न कभी एक ऐसी स्थिति का सामना करना पड़ता है, जब उसे लगता है कि उसके सारे सुराग खतम हो गये है और उसे यह केस बीच मे ही छोड़ना पड़ेगा, उसी प्रकार 'सन' को भी ऐसा लगा कि देश भर मे प्रसिद्ध इस संस्था को छेडना अच्छा नही होगा और इस केस में आगे बढ़ने की कोई गुंजायश भी नही दीख रही थी। फिर जैसा कि हर सफल जासूस के साथ होता है कि ऐसी स्थिति मे ही कोई छोटी सी बात ऐसी हो जाती है जिससे आगे का रास्ता काफी खुल जाता है, वैसा ही 'सन' के साथ उस समय हुआ जब 'बायज टाउन' के अपने डाकघर के पोस्टमास्टर ने एक छोटी सी बात कही, "जितनी चिट्ठियां यहां से जाती है उस हिसाब से तो यहा रुपयों की वर्षा होनी चाहिए।" बस, आगे की गली दिख गयी। पूछताछ करने पर पता लगा कि 'बायज टाउन' के डाकघर से एक वर्ष मे करीब पाच करोड चिट्ठियां तक भेजी गयी। हिसाब लगाया गया तो अनुमान यह निकला कि यदि चंदे के लिए इतनी चिट्ठियां भेजी जाती हैं तो सालाना कम से कम एक करोड डालर का चंदा अवश्य आता होगा। उसी बीच एक बात का पता और लगा और वह यह कि संस्था मे कुल ६६० बच्चे थे, न कि एक हजार, जितना वहा के अधिकारी ने बताया था। फिर कुछ और हिसाब लगाने के बाद यह अनुमान लगाया गया कि 'बायज टाउन' के पास करीब दस करोड डालर की संपत्ति है लेकिन वहा का खर्चा बिल्कुल मामूली है। अब 'सन' को चिंता एक ही थी—किस प्रकार 'बायज टाउन' की कुल संपत्ति का पता लगाया जाय।

उसी दौरान यह पता चला कि १९६९ की कर संशोधक धारा के अनुसार यह आवश्यक था कि हर ऐसी धार्मिक सामाजिक संस्था जो बिना लाभ के कार्य करती थी वह आंतरिक कर सर्विस मे अपने आय-खर्च का हिसाब दे। अब 'सन' की चेष्टा यही हो गयी कि किस प्रकार 'बायज टाउन' की रिपोर्ट को हासिल किया जाय। बीस दिनो की लगातार चेष्टा के बाद वह रिपोर्ट प्राप्त हो गयी। पता चला कि १९७० के अंत तक 'बायज टाउन' की कुल संपत्ति उन्नीस करोड डालर से भी अधिक थी। और अधिक छानबीन के बाद यह भी पता चला कि इतनी अथाह संपत्ति के बावजूद वहा के कर्मचारियों को शिकायत थी कि उनकी तनखा ठीक से नही दी जाती, वहा के बच्चों को शिकायत थी कि उनकी देखभाल ठीक से नहीं होती थी, आदि-आदि। इन तथ्यों से लैस होकर 'सन' के कर्मचारियों ने 'बायज टाउन' के अधिकारियों से भेंटवार्ता के लिए समय मागा। पहले तो अधिकारियों ने टालमटोल की, पर बाद मे वार्ता के लिए राजी हो गये। पर वे स्थिति को पूरी तरह समझा नही पाये। आय और खर्च के बड़े अंतर का उनके पास एक ही जवाब था—हमारी बड़ी-बड़ी योजनाएं है और हम उन्हे कार्यान्वित करने की सोच रहे है।

अब सारी जानकारी हासिल कर 'दी सन' ने 'बायज टाउन—अमेरिका का सब से धनी शहर ?' शीर्षक से अपना लेख छापा। लेख के छपने के साथ 'दी सन' ने अपनी खोज के परिणाम प्रसिद्ध समाचार एजेंसियों—ए०पी०, यू०पी०आई० तथा अनेक पत्रों और टेलीविजन स्टेशनों को भी दिये। इस घटना के क्या दूरगामी परिणाम हुए—यह इसी से स्पष्ट हो जाता है कि तत्काल 'बायज टाउन' के कार्यकारी निदेशक बदल दिये गये, और एक बार फिर कई बड़ी योजनाएं आरंभ हो गयीं। सब से बड़ी बात—अपंग बच्चों की देखभाल पर ज्यादा पैसा खर्च किया जाने लगा।

इसके और भी परिणाम हुए। लोगों का इस प्रकार के संस्थानों पर से भरोसा उठ गया, नये निदेशक ने शिकायत की कि वहां के कर्मचारी धृष्ट हो गये, वहां के लड़के और लड़कियां लापरवाह हो गये। पर इन बातों के कारण यह नहीं कहा जा सकता कि 'सन' ने कोई गलती की है।

हमने अभी तक विदेश की ही बात की है। जब हम पत्रकारिता के इस पहलू के संदर्भ में भारतीय पत्रकारिता के बारे में सोचते हैं तो हमारे समक्ष ऐसे सशक्त उदाहरण नहीं आते। पर ऐसा भी नही है कि हमारी पत्रकारिता बिलकुल ही स्पंदनहीन रही है। कई ऐसे मामले हैं—जिसमें एक घटना, जिसकी तुलना कुछ हद तक 'बायज टाउन' से की जा सकती है, 'हिंदुस्तान टाइम्स' द्वारा दिल्ली के 'नेहरू रिहैबिलिटेशन सेंटर' के बारे में पिछले वर्ष की लेखमाला के माध्यम से प्रकाश में लायी गयी है। लेकिन हमारी पत्रकारिता की सब से बड़ी कमजोरी यह रही है कि वह किसी मामले की गहराई तक नहीं जाती। अधिकतर मामलों में कई अखबारों का रुख प्रशासन को बदनाम करने का होता है। अतः अखबार में तथ्य कम प्रकाश में आते हैं, प्रोपेगेंडा अधिक। यदि हम उपर्युक्त विदेशी मामलों पर गौर करें तो हम पायंगे कि जरूरी बात यही है कि तथ्यों को प्रकाश में लाया जाय, न कि प्रशासन को बदनाम करने के लिए मनगढ़ंत चीजें छापी जायं।

सच्ची पत्रकारिता भी यही मानी जायगी। यदि पत्रकारिता निष्पक्ष भाव से समाज के सामने किसी तथ्य को लाती है तो वह एक सामाजिक उपकार करती है—भले ही उसका निशाना राष्ट्र की सर्वोच्च सत्ता क्यों न हो। पर आवश्यक यह है कि वह होनी चाहिए निष्पक्ष। शायद प्रसिद्ध यूनानी दार्शनिक सुकरात ने एक बार कहा था कि आवश्यक यह नहीं कि हम उत्तर दें, आवश्यक यह है कि हम सही सवाल करें। हम कह सकते हैं कि पत्रकार का काम यह बताना है कि सड़ांध कहां से आ रही है। और सड़ांध कहां से आ रही है—यह पता लगाने के लिए उसे जासूसी या वकालत का सहारा भी लेना पड़े तो वह उसके लिए गर्व की ही बात है।

साज-सज्जा

अमेरिका के प्रसिद्ध साहित्यकार मार्क ट्वेन ने कहा था :

"समाचार-पत्र का पहला कर्त्तव्य यह है कि वह सुंदर दीखे, दूसरा यह कि सच बोले।"

यह बात सौ साल पहले ठीक थी और आज भी सही है।

किसी चीज को खरीदते समय पहले उसकी पैकिंग पर आंख जाती है। चीज कैसी है, यह तो इस्तेमाल के बाद ही ठीक-ठीक मालूम हो पाता है। दिलचस्प बात यह है कि कोई वस्तु अपेक्षाकृत घटिया होने के बावजूद उसकी पैकिंग की बदौलत बिकती चली जाती है, जबकि अनाकर्षक पैकिंग में लिपटी बहुत बढिया वस्तु को पिछड़ जाना पड़ता है, हालांकि सच्चाई पैकिंग नही है, उसमें लिपटी चीज है, जिसके दाम ग्राहक ने दिये हैं।

उसी प्रकार साज-सज्जा पत्र-पत्रिकाओं का महत्वपूर्ण अंग है, हालांकि वह समूची पत्रकारिता नहीं है।

साज-सज्जा केवल सजावट नही है, कुछ कहने का, जोर डालकर कहने का पाठक की आख से उसके दिल-दिमाग तक उतर जाने का प्रभावशाली माध्यम है। अच्छी से अच्छी सामग्री बड़े बोसीदा ढग से छाप दीजिए, प्रायः बहुत कम लोग पढ़ेंगे। अपेक्षाकृत कम अच्छी सामग्री को सजाकर प्रकाशित कीजिए, वह चर्चा का विषय बन जायगी।

तीन-चार दशाब्दी पूर्व साज-सज्जा को बहुत अच्छी निगाह से नही देखा जाता था (तब सजी-धजी स्त्री पर भी उंगलियां उठती थी)। तब समय और समाज कुछ और था। जिंदगी की रफ्तार बहुत धीमी थी। वक्त काफी हुआ करता था। अव्वल तो ज्यादातर लोग अखबार खरीदते ही नही थे और जो खरीदते थे, वे शुरू से आखिर तक सारा पढ़ जाया करते थे। जमाने की करवटों के साथ 'कम समय मे अधिक' का सिद्धांत पनपा और साज-सज्जा का विकास हुआ।

साज-सज्जा का स्थान समाचार-पत्र में वही है जो भवन-निर्माण मे वास्तु-कला

का है। इसलिए यह बता देना बहुत जरूरी है कि जिस प्रकार सुंदर पैकिंग वाली घटिया वस्तु ज्यादा दिन तक नहीं बिक सकती, अच्छे शिल्पकार द्वारा बनाये गये सुंदर नक्शे से ही सुंदर मकान नहीं बन जाता—अच्छी सामग्री की नितांत आवश्यकता होती है—उसी प्रकार केवल साज-सज्जा के बलबूते पर किसी समाचार-पत्र को खड़ा किया या चलाया नहीं जा सकता। आवश्यक है कि उसमें समाचार और विचार हों और उन्हें कहने की क्षमता हो। एक ही स्थान (समाचार-पत्र) में अत्यंत महत्वपूर्ण और कम महत्वपूर्ण हर प्रकार के समाचारों और विचारों को सरलता से और तेजी के साथ सलीके से देकर पाठक तक पहुंचा देना ही समाचार-पत्र की सफलता का प्रमाण है। किंतु यह काम साज-सज्जा के बिना प्रभावशाली रूप से नहीं किया जा सकता।

साज-सज्जा के मूलभूत सिद्धांत क्या हैं? यह प्रश्न वैसा ही है कि कोई चित्र बनाने के मूलभूत सिद्धांत क्या हैं? भिन्न-भिन्न मत हैं। परंपरागत शैली से लेकर आधुनिक कला तक ढेरों मत हैं, जो देश और काल के साथ संबद्ध हैं तथा उनमें समय-समय पर परिवर्तन होता रहता है।

भारत में पत्रकारिता चूंकि ब्रिटेन से आयी, इसलिए यहां ब्रिटिश समाचार-पत्रों की शैली का पर्याप्त प्रभाव है। ब्रिटिश समाचार-पत्र सब से प्रमुख और महत्वपूर्ण समाचार को सब से ऊपर बायी ओर देते हैं और फिर समाचारों की महत्ता के अनुसार पृष्ठ के बीच में से होते हुए दायी ओर सब से नीचे तक चलते है। उनका कहना है कि पाठक का यह स्वभाव है कि उसकी आंखें बायें से दायें नीचे उतरती हैं। अमेरिकी पत्र सब से महत्वपूर्ण समाचार को पृष्ठ के ऊपर दायीं ओर देते है।

यह सिद्धांत आज भी प्रचलित है, किंतु इसमें परिवर्तन होता जा रहा है। कहने वालों का कहना है कि सुंदर वस्तु कहीं भी पड़ी हो, उस पर निगाह जायगी ही। पृष्ठ पर सुंदर चित्र कहीं भी छाप दीजिए, उस पर आंख जायगी ही। प्रश्न यह है कि कितनी जल्दी और आसानी से जायगी और उसकी प्रासंगिकता क्या है? इधर बीसेक साल से साज-सज्जा में जो परीक्षण हुए है उन्होंने कुछ पुराने सिद्धांतो को पुख्ता कर दिया है और कई नयी शैलियों को जन्म दिया है।

हमारे यहां के पत्रों में, विशेषतः हिंदी पत्रों मे परीक्षण और शोध बहुत कम होते हैं। स्वभावतः हम परिवर्तन से हिचकिचाते भी है, इसलिए हमें कई बातों के लिए यूरोपीय (खासकर ब्रिटिश) और अमेरिकी पत्रों से प्रेरणा लेने पर विवश होना पड़ता है। चूंकि इस प्रेरणा और पठन-परीक्षण मे निरंतरता नहीं है, इसलिए हम उन बातों को अपनाये हुए हैं जिन्हें ब्रिटेन या अमेरिका वाले या तो छोड़ चुके हैं या फिर छोड़कर उन्होंने पुनः अपना लिया है। उदाहरणतया, आज भी अधिकतर हिंदी पत्रों मे यह धारणा है कि दोकालमा शीर्षक वाले समाचार के नीचे दोकालमा शीर्षक समाचार नही लेना चाहिए, या फिर कहीं जरा-सी भी खाली जगह (सफेद जगह) छोड़ना स्थान का अपव्यय है।

करीब २६ वर्ष पूर्व पत्रकारिता में प्रविष्ट होने पर मुझे समाचार-संपादक ने बताया था कि यदि आपके लिखे हुए शीर्षक में एक अक्षर भी और आ सकने की गुंजाइश हो तो समझ लीजिए आपका शीर्षक 'गलत' है। बिलकुल उस पुराने कलाकार

की तरह का उनका रवैया था जो कैनवस पर रत्ती भर जगह बिना रंगे नहीं छोड़ना चाहता।

किसी भी कला की तरह साज-सज्जा की कला भी सीखी जा सकती है। लेकिन यह भी सच है कि अन्य ललित कलाओं की तरह किसी भी कला में निपुणता ईश्वर की देन भी है। फिर यह बहुत कुछ इस बात पर भी निर्भर करता है कि आपका संपूर्ण व्यक्तित्व क्या है? यदि आप कलात्मक ढंग से नहीं रहते, यदि सौंदर्य-बोध का अभाव है तो साज-सज्जा सीखकर भी आप उसमें पारंगत नहीं हो सकते।

साज-सज्जा की कला किसी भी पत्रकारिता विद्यालय में तब तक नहीं सीखी जा सकती जब तक आप समाचार-पत्र में काम न कर रहे हों, और साज-सज्जा का काम आपके काम का अंग न हो। चूंकि हमारे यहां इस कला की नितांत उपेक्षा हुई है, इसलिए बेहतर यही है कि आरंभ में संसार के विकसित समाचार-पत्रों से प्रेरणा ली जाय—नकल न की जाय। उनका सूक्ष्म अध्ययन कर उनके मोटे सिद्धांत अपनाये जा सकते है।

सीमाएं और समस्याएं

दुनिया के विकसित समाचार-पत्रों की नकल हम इसलिए नहीं कर सकते कि हमारी परिस्थितियां भिन्न हैं, हमारे पाठक उनसे भिन्न हैं। हमें दोनों को समझना होगा।

आधुनिक मशीनीकरण के बावजूद हमारे यहां ऐसे प्रशिक्षित लोगों का अभाव है जो पत्रकारिता के नवीनतम प्रयोगों से परिचित हों। हिंदी में शीर्षकों के लिए बहुत कम किस्म के 'टाइप' हैं—उन्हें भी तब तक बदला नहीं जाता जब तक वे टूटने नहीं लग जाते। अंग्रेजी मे शीर्षक की पंक्तियां भी मशीनें ही बनाती हैं। हमारे यहां एक बार मशीनीकरण के बाद उसमें सुधार नहीं हो पाता। मिसाल के तौर पर भारत के किसी भी अखबार के पास ब्लाक बनाने की इलेक्ट्रानिक मशीन नहीं है। ब्लाक बनाने के यंत्र तीस-चालीस साल पुराने हैं। आज भी कहीं-कहीं एक ब्लाक बनाने में आठ घंटे लग जाते हैं जबकि इलेक्ट्रानिक मशीन से आठ मिनट में ब्लाक तैयार हो जाता है। इसलिए कभी-कभी विकसित पत्र में लेख जमाने के बाद जितनी जगह बचती है, उसके आकार के अनुसार ब्लाक बनवा लिया जाता है। आज भी भारतीय समाचार-पत्रो मे, विशेषतः भाषायी पत्रों मे काम पुराने ढर्रे से चल रहा है जिसे बदलना असंभव तो नही, काफी कठिन जरूर है।

भाषायी पत्रों में अनुवाद की समस्या भी साज-सज्जा म बाधक है। अनुवाद और उसकी भाषा में ही इतना समय लग जाता है कि साज-सज्जा के लिए समय नहीं मिल पाता। सब से बडी समस्या यह है कि साज-सज्जा को पत्रकारों का अधिसंख्य वर्ग महत्वपूर्ण समझते हुए भी उस पर नाक-भौ चढ़ाता है। हमारी एक परंपरा रही है कि गंभीर बात को गंभीरता से ही प्रस्तुत किया जाना चाहिए। 'किसी एक व्यक्ति का चित्र एक कालम मे लिया जा सकता है, तो चारकालमा ब्लाक बनाने की क्या जरूरत है?'

पाठक भी पुरानी 'साज-सज्जा' का अभ्यस्त है। साज-सज्जा को वह सनसनी-पूर्ण पत्रकारिता समझता है। वह स्वयं तो बदलने से रहा, पत्रकार भी प्रायः इतना साहस नहीं करते कि इस बारे में कुछ करें।

'दिनमान' एक बड़े संस्थान का समाचार साप्ताहिक है। साज-सज्जा में वह पश्चिम के कई गंभीर साप्ताहिकों की नकल-मात्र है। यह सोचें बिना कि हमारी छपाई और कागज कैसा है, छोटे-छोटे ब्लाक छापे जाते हैं—कभी-कभी चेहरे तक साफ नजर नहीं आते। कैसी भी एक बढ़िया तस्वीर को 'दिनमान' भीतर के पूरे पृष्ठ की तो बात क्या, आधे पृष्ठ पर भी लेने को तैयार नहीं। पत्रकार तो पत्रकार, पाठक भी शायद यह सहन नहीं करेंगे, क्योंकि उनके मन में 'दिनमान' की तस्वीर कुछ और ही है। बड़े चित्र को सनसनीपूर्ण माना जायगा।

एक और समस्या स्थान की है। भारत के पत्र अपनी मर्जी से पृष्ठ-संख्या बढ़ा नहीं सकते। जगह कम है, सामग्री हम अधिक देना चाहते हैं। यह आम धारणा है कि साज-सज्जा में स्थान और समय का अपव्यय होता है, हालांकि बात उल्टी है। यदि आप सामग्री को इस तरह प्रस्तुत करते हैं कि साधारण पाठक उसे शीघ्रता मे ग्रहण नही कर पाता तो आप पाठक का वक्त और अखबार की जगह ज़ाया कर रहे हैं।

एक बात और है—हमारे अधिसंख्य पत्रकार एक पृष्ठ पर अधिक से अधिक समाचार देने के पक्ष में हैं। 'कुछ रह न जाय' का डर है या ज्यादा ईमानदारी, कहना मुश्किल है। यह बात क्यों भुला दी जाती है कि एक संतुलित पृष्ठ पर अ के पाठक के लिए दस पठनीय समाचार कहीं अच्छे है बजाय इसके कि तीस समाचार इस ढंग से दिये गये हों कि पाठक के लिए बोझ बन जायं। आखिर पत्रकारिता या साज-सज्जा का पहला सिद्धांत पाठक से आपका सीधा संबंध है, और यह संबंध सीमित स्थान और सीमित साधनों के प्रभावशाली प्रयोग से ही संभव है।

इस संबंध की स्थापना में विभिन्न अनुपातों को दृष्टि में रखना होगा और आपके पाठकों और पत्र की नीति के अनुसार उनको अपेक्षित महत्व देना होगा।

मुद्रण और संपादकीय विभाग की सीमाओं तथा साधनों का भरपूर उपयोग करना होगा। साथ ही किसी भी रद्दोबदल या देर से टपक पड़ने वाले महत्वपूर्ण समाचार के लिए गुंजाइश रखनी होगी।

साज-सज्जा के मूलभूत सिद्धांतों में दो प्रमुख हैं—एक तो यह कि किन समाचारों को उभारना है, किन पर जोर देना है; दूसरा यह कि एक तरह का 'संगठन' हो (दूसरे शब्दों में अराजकता न हो—जैसे एक ही तरह के चार समाचार चार विभिन्न स्थानों पर न हों)। संगठन का अर्थ है पृष्ठ का वजन एक-सा हो—मोड़ के ऊपर का हिस्सा जितना वजनी हो, उसी अनुपात में भार नीचे भी हो। इसके लिए समाचारों के शीर्षक और उनके प्वाइंट का भली भांति ज्ञान होना जरूरी है। यह भी जानकारी होनी चाहिए कि मोड़ के ऊपर या दायें-बायें में अनुपात कैसा होना चाहिए, दो या तीन चित्रों को संतुलित ढंग से कैसे किस स्थान पर रखा जाना चाहिए। सब से बड़ी बात यह है कि अखबार अखबार लगे, पोस्टर न बन जाय।

मैं दोहराना चाहूंगा—साज-सज्जा में संतुलन और स्पष्टता का ध्यान रखा

जाय। पाठक की आंखों पर अनावश्यक दबाव न पड़े। सारा अखबार पढ़ जाने के बाद उसे किसी के सामने यह न कहना पड़े कि अमुक समाचार कहां था। जिस चीज पर आप जोर देना चाहते हैं, उसके अलावा अपेक्षाकृत 'कम महत्वपूर्ण' समाचारों की उपेक्षा न कीजिए।

साज-सज्जा घिसी-पिटी न हो, अर्थात् हर रोज एक चित्र उसी जगह, वही दो या तीन कालम की प्रथम 'लीड', दायीं ओर दोकालमा शीर्षक और चित्र के नीचे दो-कालमा शीर्षक। पृष्ठ हर रोज नया लगना चाहिए। खूबी इसमें है कि पाठक कल्पना भी न कर सके कि कल का अखबार कैसा होगा।

साज-सज्जा का ढांचा एक-सा रखने में सब से आसानी की बात यह है कि देर से आने वाले समाचार को सरलता से खपाया जा सकता है, लेकिन तनिक कल्पना से पृष्ठ को ऐसा रूप दिया जा सकता है कि विलंब से आने वाले असंभावित समाचार को उसके महत्व के अनुसार स्थान दिया जा सके।

साज-सज्जा का एक सिद्धांत है—समाचार-पत्र में स्थान की बचत और संपादकीय और 'प्रेस' के विभाग में समय की बचत।

और सबसे आवश्यक बात यह है कि अनावश्यक साज-सज्जा से बचा जाय। पाठक यह न समझे कि आकर्षक शीर्षक और सुंदर चित्रों को बड़े प्यारे ढंग से सजा कर उसे मूर्ख बनाया गया है, वर्ना पढ़ने के लिए है ही क्या ?

हमारे यहां साज-सजावट की जिम्मेदारी छोटे अखबारों में समाचार-संपादक और बड़े अखबारों मे मुख्य उप-संपादक पर होती है। भारत की पत्रकारिता में वह युग अभी आरंभ नहीं हुआ है जब डिजाइनर या साज-सज्जा विशेषज्ञ रखा जाय। छोटे अखबारों में समाचार-संपादक और बडे पत्रों में मुख्य उप-संपादक समाचारों का चयन करता है, उप-संपादकों द्वारा अनूदित एवं संपादित समाचार और उनकी भाषा तथा शीर्षक देखता, 'ठीक' करता है और उससे यह भी अपेक्षा की जाती है कि वह साज-सज्जा की ओर भी ध्यान दे। इसलिए अधिसंख्य छोटे पत्रों में साज-सज्जा रामभरोसे छोड़ दी जाती है। परिणाम यह भी होता है कि प्रायः सारा जोर प्रथम पृष्ठ पर पड़ता है, शेष पृष्ठ कमजोर रह जाते हैं। इन सीमाओं के भीतर प्रथम पृष्ठ को कुछ संतुलित और संगठित तथा अन्य पृष्ठो को कामचलाऊ बनाकर अखबार निकाल देने वाले को हमारे यहां कुशल मुख्य उप-संपादक अथवा समाचार-संपादक कहा जाता है।

प्रशिक्षण या साधनों के अभाव में काम का एक परिणाम यह भी हो रहा है कि समाचार-पत्रों का पाठकों से सीधा या निकट का संपर्क नहीं है। १८ घंटे सैकड़ों आदमी काम करने के बाद जो अखबार निकालते हैं उसे कुछ मिनटो में 'पढ़' कर पाठक कहता है—कोई खास खबर नही है, इसीलिए जो अखबार लाखों में छपने चाहिए उनकी प्रसार-संख्या या तो हजारों में है या कुछ लाख में।

बात साज-सज्जा की है। अखबार खूबसूरत नहीं है, इसलिए उस पर नजर नहीं टिकती, चारों तरफ बदसूरती से घिरी जनता को सुबह भी खूबसूरती के दर्शन न हों तो क्या होगा या क्या हो रहा है—यह हमारे सामने है।

क्या करें ?

समाचार-पत्र को सुंदर बनाइए। काम करने का ढंग बदलिए। विश्वास कीजिए, सीमित साधनों में भी बहुत कुछ किया जा सकता है।

यदि यह मान लिया जाय कि साज-सज्जा की जिम्मेदारी मुख्य उप-संपादक पर है तो वह क्या करे, कैसे करे, कब करे ?

जैसा मैंने ऊपर कहा, साज-सज्जा के अनेक सिद्धांत हैं जिन पर गहरे मतभेद हो सकते हैं। उसे कैसे कब आरंभ करना है इस पर भी कई मत हैं।

खालिस हिंदुस्तानी तरीका यह है कि सारा मैटर या कम से कम अधिसंख्य महत्वपूर्ण समाचार आ जाने पर 'डमी' बनायी जाय। यह तरीका गलत है। बहुत से मेरे सहयोगी इस बात पर आश्चर्य करते हैं कि मैं कई बार घर से 'डमी' बनाकर दफ्तर ले जाता हूं, अर्थात् एक नक्शा बना लेता हूं कि आज प्रथम पृष्ठ तथा अन्य कुछ पृष्ठ, जो मेरे जिम्मे हैं, इस तरह के होने चाहिए। मकान बनाने से पहले नक्शा बनाया जाता है, ईंटें, सीमेंट तथा अन्य सामग्री बाद में जुटायी जाती है।

मैं तीन-चार नक्शे बना लेता हूं। कोई बिना चित्र का, कोई दोकालमा चित्र के साथ, कोई तीनकालमा चित्र के साथ और कोई चारकालमा चित्र के साथ। दो ब्लाक आने पर क्या होगा, यह भी तय कर लेता हूं। जैसे-जैसे समाचार आते जाते हैं, नक्शे में निशान लगाता चला जाता हूं। मुझे दोकालमा शीर्षक के तीन समाचार चाहिए, तीनकालमा शीर्षक का एक चाहिए, चार या पांचकालमा शीर्षक समाचार भी चाहिए। समाचारों का अभाव कभी नहीं हुआ।

लेकिन यह तरीका खतरे से खाली नहीं है, कभी-कभार मैंने धोखा भी खाया है। तब हाथ-पैर फूल जाते हैं, सारी योजना धरी रह जाती है।

मेरी राय में सर्वोत्तम उपाय यह है कि पाली का कार्यभार संभालने के कुछ देर बाद नक्शा बनाना शुरू कर दीजिए। रात्रि-पाली में यह बात कुछ सीमा तक आसान होती है। आपको प्रायः पता चल जाता है कि कौन-कौन से महत्वपूर्ण समाचार आ रहे हैं या आने वाले हैं। चित्रों के बारे में भी ठीक से मालूम कर लीजिए। अनेक प्रश्नों के उत्तर चाहिए—कितना विज्ञापन है ? पत्र की नीति के अनुसार क्या-क्या आवश्यक है ? आज छुट्टी तो नहीं थी या कल छुट्टी तो नहीं है (छुट्टी के दिन आम तौर पर खबरें कम आती हैं और अगले दिन छुट्टी हो तो पाठक के छुट्टी के मूड का अखबार निकालना होगा), कोई संवाददाता ऐन वक्त पर तो कुछ लानेवाला नहीं ? दिन में बिजली बंद तो नहीं रही ? इत्यादि।

मैं यह मान कर चल रहा हूं कि आप समाचार-पत्र की उत्पादन-क्रिया की सभी तकनीक से परिचित हैं। एक कालम में फलां टाइप के कितने अक्षर समाते हैं—इस प्रश्न से लेकर ब्लाक बनाने के तरीके और छपाई की मशीन की मोटी बातों की जानकारी आपको है। तिस पर भी काम शुरू करने से पहले फोरमैन से दो-चार मिनट बात कर उसकी कठिनाइयों का पता लगा लेना अच्छा है। एक मिसाल—डेढ़कालमा ब्लाक के साथ आप डेढ़ कालम का मैटर कंपोज कराना चाहते हैं, जो फोरमैन के लिए

संभव नहीं है। या, आप आज नया प्रयोग करने जा रहे हैं जिसके लिए काफी समय चाहिए।

यह जानना भी बहुत जरूरी है कि विज्ञापन क्या-क्या हैं ? उनमें कौन-कौन से और कैसे ब्लाक जा रहे हैं ? विज्ञापन का एक काला भद्दा ब्लाक आपकी सारी मेहनत पर पानी फेरने के लिए काफी है। फिर ऐसा न हो कि आपने विज्ञापन के पास ही मोटा शीर्षक दिया—'टाफी खाने से बच्चों में दंतरोग वृद्धि पर' और विज्ञापन हो किसी टाफी का !

सभी सवालों का जवाब लेकर 'डमी' बनाइए। आपके दिमाग में यह साफ नक्शा होना चाहिए कि छपने के बाद अखबार कैसा लगेगा। पाठक पहले क्या पढ़ेगा ? उसे क्या सब से अधिक आकर्षित करेगा ? वह आश्चर्यचकित होगा, चर्चा करेगा, दुखी होगा या मुस्करा देगा ?

आपके सामने कई समस्याएं हैं। एक समाचार निहायत छोटा है, आप उसे इस तरह लेना चाहते हैं कि वह बड़ा लगे—आकार में और महत्व की दृष्टि से भी। एक समाचार लंबा है—आप नहीं लेना चाहते लेकिन पत्र की नीति है उसे आज ही लेना पड़ेगा। ब्लाक जरूरत से ज्यादा बड़ा बन गया, इसे कटवाना है, इत्यादि।

कई मामलों में सहयोगियों का परामर्श काम आता है। कभी-कभी किसी छोटे से व्यक्ति (जैसे चपरासी) की राय भी बड़ी कीमती साबित होते मैंने देखी है।

आपके पास सभी गेली प्रूफ होने चाहिए। किसी समाचार को छोटा करना पड़ सकता है, किसी में कुछ जोड़ना पड़ सकता है, किसी का शीर्षक बदलना पड़ सकता है।

डमी बनाते समय यह ध्यान रहे कि पृष्ठ में संतुलन हो। बीच की तह के ऊपर जितना वजन आपने डाला है, लगभग उतना ही उसके नीचे होना चाहिए। अच्छा यह रहेगा कि सब से नीचे चार पांच कालम की एक लटकन (या [illegible]) डाल दी जाय। तह के नीचे चित्र भी कभी-कभी संतुलन में सहायक होता है। लेकिन एक बात का खयाल रहे—अखबार की [illegible] पर चित्र उस तह में नहीं आना चाहिए। इससे सुंदर से सुंदर चित्र का बेड़ा गर्क हो सकता है।

ये सभी बातें पेज बनाने से पहले सोची जा सकती है। निःसंदेह जितना समय हो उसी में काम होता है। कई बातें कुछ मिनट पहले और कई अनेक दिन पहले सोची जा सकती है। चांद पर आदमी के उतरने पर क्या शीर्षक होगा और समाचार का प्रस्तुतीकरण क्या होगा, दुनिया के अधिसंख्य अखबारों ने कई दिन पहले ही इसकी योजना बना ली थी। इसी प्रकार किसी मरणासन्न नेता की मृत्यु के समाचार तथा जीवनी के बारे में पूर्व योजना बनायी जा सकती है।

फिर भी अखबार तो अखबार है। पता नहीं कब क्या खबर आ जाय, ऐन मौके पर कौन-सा विज्ञापन निकाल दिया जाय। इन सब के लिए तैयार रहना चाहिए, इस बात के लिए भी कि एक बहुत ही महत्वपूर्ण समाचार, जो कंपोज हो चुका है, जिसका आकर्षक शीर्षक लगा दिया गया है और पृष्ठ पर उसे बड़ा उचित स्थान दिया जा चुका है, सेंसर के आदेश से आखिरी वक्त पर रोक लिया जाय। आपका कौशल इस

बात म ह कि कुछेक क्षणों में उसका विकल्प खोज लिया जाय।

इन सब बातों को देखते हुए साज-सज्जा का काम न तो रामभरोसे छोड़ा जा सकता है और न ही मेक-अप मैन पर। आपको डमी हाथ में लेकर 'स्टोन' पर खड़े होकर पेज बनवाना पड़ेगा। मेक-अप मैन की राय की भी उपेक्षा नहीं की जा सकती। कुछ तकनीकी पहलुओं की जानकारी उसे आप से अधिक है। कभी-कभी उसकी सलाह बहुत कीमती साबित होती है, जो न केवल पृष्ठ को अधिक वजन और संतुलन देती है बल्कि समय और स्थान की बचत भी कर जाती है। बेहतर यह रहेगा कि उसे डमी दो-एक घंटे पहले दिखा दी जाय, ताकि वह तैयार हो जाय।

'स्टोन' पर आपको किसी भी लंबे समाचार को काटने का पूरा अधिकार है, लेकिन अधिक काट-छांट करने से न केवल समय बर्बाद होगा बल्कि मेक-अप मैन का मूड खराब हो सकता है।

एक बात निश्चित है। आप अपनी डमी कितनी ही दोषरहित और पूर्ण बना लीजिए, पेज बनवाते समय उसमें रद्दो-बदल होगी ही, उस समय घबराना आत्मविश्वास का अभाव सिद्ध करेगा। तनिक तनाव अनिवार्य है, अधिक तनाव का प्रभाव संपूर्ण पृष्ठ पर पड़ेगा।

यदि पत्र की नीति ही ऐसी है कि साज-सज्जा में अधिक कुछ करने की गुंजाइश नहीं या 'ऊपर' से आदेश है कि नये प्रयोग न किये जायं तो बात दूसरी है। तब आप अधिक कुछ नही कर सकते, लेकिन यदि आपको पर्याप्त स्वतंत्रता है तो अखबार में आपका व्यक्तित्व पूरी तरह उभर कर आना चाहिए, यहां तक कि जो नहीं जानते, उन्हें भी अखबार देखकर पता चल जाय कि आप ड्यूटी पर थे, क्योंकि हर मुख्य उप-संपादक की अपनी शैली होती है। उसके शीर्षक, उसके प्रस्तुतीकरण का ढंग, उसके बनाये 'बक्से' या समतल अथवा सीधी साज-सज्जा या सफेद जगह छोड़ने या न छोड़ने की कला उसके विशिष्ट गुण हैं।

सफेद जगह छोडने का उतना ही महत्व है जितना पृष्ठ को काला करने का। सफेदी आंखों को राहत देती है, तस्वीर या किसी समाचार को उभार कर उसे मुखर करती है। सफेद जगह छोड़े बिना कोई भी साज-सज्जा अधूरी है।

आम तौर पर सारा जोर प्रथम पृष्ठ पर दिया जाता है। अधिकांश समाचार-पत्रों के शेष पृष्ठ उपेक्षित और अनाथ से लगते हैं। प्रथम पृष्ठ के बाद कदाचित सब से महत्वपूर्ण पृष्ठ अंतिम पृष्ठ है, क्योंकि पाठक अखबार खोलने से पहले प्रथम पृष्ठ से अंतिम पृष्ठ की ओर जाता है। इसलिए यदि प्रथम पृष्ठ के शेषांश हों (प्रायः न ही हों तो अच्छा है) तो उन्हें अंतिम पृष्ठ पर ले जाइए। अखबार खोलकर शेषांश ढूढ़ने और पढ़ने में पाठक को असुविधा होती है। अंतिम पृष्ठ पर दो-तीन मोटे शीर्षक और कोई चित्र होना चाहिए। यदि प्रथम पृष्ठ पर स्थान न हो तो वहां बक्से में समाचार का सार देकर पाठक से कहिए कि पूर्ण समाचार अंतिम पृष्ठ पर देखें यदि भीतर कोई महत्वपूर्ण लेख हो तो उसका उल्लेख भी प्रथम पृष्ठ पर कर देना चाहिए।

प्रथम और अंतिम पृष्ठ के पश्चात नंबर आता है संपादकीय पृष्ठ का, क्योंकि यहां एक तो संपादकीय लेख है, दूसरे हैं संपादक के नाम पाठकों के पत्र, जो बहुत ही

महत्वपूर्ण चीज है।

संपादकीय पृष्ठ पर यदि लेख हो तो उसे अधिक पठनीय बनाने के लिए चित्र दिया जा सकता है। भारत के समाचार-पत्रों में संपादकीय पृष्ठ प्राय: बड़ा नीरस होता है। इसलिए पाठक उसमें अधिक रुचि नहीं लेते। स्थान होने पर और जरूरत पड़ने पर इस पृष्ठ पर क्यों नहीं कोई चार-पांच या छह कालम का सुंदर-सा चित्र लिया जा सकता ? मैं तो यहां तक कहूंगा कि संपादकीय लेखों को अधिक पठनीय बनाने के लिए उनमें समय-समय पर एक कालम के चित्र दिये जायं। पाठकों के पत्रों के साथ कार्टून या चित्र (पाठकों के नहीं, पत्र से संबंधित) दिये जा सकते हैं।

अब रह जाता है पत्र का सब से बोझिल और नीरस पृष्ठ, और वह है 'व्यापार-पृष्ठ'। यह बात आज तक समझ से परे है कि इसे इतना गया-गुजरा पृष्ठ क्यों समझ लिया गया है जबकि अर्थव्यवस्था संबंधी समाचार इस पर जाते हैं और हजारों व्यापारी पाठकों की रुचि इसमें है। आखिर क्यों न इस पृष्ठ को भी पठनीय बनाया जाय ? क्यों न इस पर भी दो-एक चित्र दिये जायं और अन्य पाठकों की रुचि भी इसमें लगायी जाय ? आकर्षक शीर्षकों और चित्रों से किसी भी पृष्ठ को संतुलित किया जा सकता है, तो व्यापार-पृष्ठ को क्यों न संवारा-सुधारा जाय ?

साज-सज्जा[1] पत्रकारिता का एक अंग है, समूची पत्रकारिता नहीं है, किंतु बहुत ही महत्वपूर्ण अंग है। साज-सज्जा में आपका कौशल यह है कि समय और स्थान की बचत हो, गति हो तथा पाठक को अखबार पढ़ने में सुगमता एवं सुविधा हो। साज-सज्जा अलंकरण ही नहीं है, प्रभावशाली संप्रेषण भी है।

एक तस्वीर कभी-कभी इतना कुछ कह जाती है कि एक लाख शब्द भी न कह पायं। किसी अखबार को सजाने-संवारने में तस्वीरों का जितना बड़ा हाथ है, उतना ही उनके बिगाड़ने में भी हो सकता है। अगर तस्वीर के बिना पहला पृष्ठ नंगा लगता है तो गलत तस्वीर या गलत ढंग से छापी गयी तस्वीर अखबार की साज-सज्जा पर बदनुमा धब्बा बन सकती है।

चित्रों का चयन किसी भी समाचार-संपादक अथवा मुख्य उप-संपादक के लिए समस्या और सिरदर्द पैदा कर सकता है। प्रश्न यह है कि चयन के मापदंड क्या हैं ?

पहला है गतिशीलता, जिसे आम तौर पर 'एक्शन पिक्चर' कहा जाता है। लोग लाइन बनाकर खड़े हैं तस्वीर खिचवाने के लिए, या राज्यपाल सम्मेलन के अवसर पर तस्वीर खिचवाने के लिए कुर्सियों पर बैठे हैं—सब की आंखें कैमरे की तरफ हैं। ऐसी तस्वीर भद्दी तस्वीर है, दूसरी ओर किसी समारोह या सम्मेलन के अवसर पर कुछ लोग हैं—उनमें उभरते हैं दो व्यक्ति, जो कानाफूसी कर रहे हैं—यह बढ़िया तस्वीर है।

१. इस लेख में दैनिक पत्र की ही पृष्ठ-सज्जा की चर्चा की गयी है। पत्रिकाओं की पृष्ठ-सज्जा की कला मूलतः भिन्न होती है। अधिक समय उपलब्ध रहने के कारण पत्रिकाओं के पृष्ठों की काल्पनिक डमी न बनाकर पाठ-सामग्री को वस्तुत: पृष्ठ पर चिपका दिया जाता है, जिससे पृष्ठ का स्वरूप संपादक या उप-संपादक के समक्ष पूरी तरह से आ जाता है। ऐसी अवस्था में अरुचिकर होने पर पृष्ठ का विन्यास सरलता से बदला जा सकता है। (सं०)

१५ अगस्त १९७५ को बंगबंधु मुजीब की हत्या का समाचार मिला। मेरे हाथ एक चित्र लगा, जिसे मैंने नवभारत टाइम्स के प्रथम पृष्ठ पर लिया। कुछ क्षेत्रों में उसे किसी समाचार के साथ लिया जाने वाला १९७५ का सर्वश्रेष्ठ चित्र कहा गया। चित्र था—शेख मुजीब और खंडकर बगलगीर हो रहे हैं। चित्र कुछ वर्ष पुराना था, किंतु मौके के लिए इससे बेहतरीन चित्र मिलना मुश्किल था।

पं० नेहरू की मृत्यु पर आनंद बाजार पत्रिका ने जवाहरलालजी का चित्र प्रकाशित किया—कैमरे की तरफ उनकी पीठ थी। हाथ पीछे की तरफ थे। वह चल रहे थे।

ऊपर के उदाहरणों मे यदि मुजीब और खंडकर के अलग-अलग एक दर्जन चित्र होते तो वह बात न बनती। इसी तरह पं० नेहरू के बीस चित्र छापकर भी वह बात न होती।

चित्र में गति हो तो बेहतर, न हो तो उसमें जान डालिए। जान न डाली जा सके तो उसे रद्दी की टोकरी में डाल दीजिए। भद्दी तस्वीर छापने के बजाय न छापना कहीं बेहतर है।

चित्रों का चयन करते समय आपको अपने अखबारी कागज, ब्लाक बनाने की कला और छपाई का बुनियादी ज्ञान होना चाहिए। कई बार तस्वीर देखने में बहुत बढ़िया लगती है। लेकिन हो सकता है कि आपके यहां की छपाई उसका सत्यानाश कर दे। आम तौर पर काली कलात्मक तस्वीर अच्छे-खासे अखबार के पहले पृष्ठ को ले डूबती है। यह याद रहे कि चूंकि अखबार जल्दी में छपता है इसलिए तस्वीर चमकीली और भड़कीली होनी चाहिए। दूसरे शब्दों में, छपने पर उसमें उभार होना चाहिए।

आपको इस बात की जानकारी भी होनी चाहिए कि किसी चित्र में किन-किन अनावश्यक भागों को काट देना है। आपके हाथ में तीनकालमा चित्र है, यदि उसमें अनावश्यक तत्व हों तो काट दीजिए। अब दोकालमा चित्र बचा है, उसे तीन कालम का बनवाइए। चित्र उभर कर आयेगा। यह बात याद रखने की है कि आम तौर पर तस्वीर का ब्लाक ज्यादा से ज्यादा डेढ़ गुना बड़ा ही अच्छा बनता है। इससे अधिक बड़ा बनाने से वह आम तौर पर बेजान हो जाता है।

इसी तरह बड़ी तस्वीर का छोटा ब्लाक बनाने में कुछ बातों की जानकारी जरूरी है। इस संबंध में सब से जरूरी बात यह है कि आपको इस बात की तकनीकी जानकारी होनी चाहिए कि बड़ी तस्वीर का छोटा ब्लाक कितना बड़ा बनेगा। कहीं डाक टिकट के आकार का तो नहीं बनेगा। और फिर छोटा ब्लाक बनने से कहीं चित्र के महत्वपूर्ण अंश इतने छोटे तो नहीं हो जायंगे कि पहचाने न जायं!

फोटोग्राफर से तालमेल

यदि छायाकार आपके कार्यालय का है तो उससे तालमेल बहुत आवश्यक है। उसे आपकी जरूरत का पता होना चाहिए और आपको उसकी सीमाओं का। यह नहीं कि वह एक ही अवसर की चार-पांच तस्वीरें ले आये और आपको एक इस्तेमाल

करनी ही पड़े। बेहतर यह रहेगा कि किसी समारोह आदि में जाने से पहले आप दोनों की बातचीत हो जाय।

अवसर और अवसर

भारत के पत्रों में राजनीतिक चित्रों की भरमार रहती है। राजनीतिक नेताओं के चेहरे और चित्र प्रायः बड़े बोसीदा होते हैं। इन्हें जानदार बनाना आपके फोटोग्राफर और आपका काम है, वर्ना आपका पाठक जल्द ही इनसे ऊब जायगा।

बेहतर यह है कि कभी-कभी मानव-रुचि के चित्र छापे जायं। जीवन राजनीति से कहीं बड़ा है। राजनीति केवल एक छोटा-सा अंश है। पशु-पक्षी, सामाजिक समस्याएं एवं उनसे संबंधित समाचार, बच्चे, औरतें, अजूबे गर्ज कि इतने विषय हैं कि पाठक कभी ऊब नहीं सकता, बशर्ते कि आप चित्र छापने और प्रस्तुति का ढंग जानते हों।

इस संबंध मे चित्र-परिचयों का उल्लेख कर देना अप्रासंगिक नहीं होगा। चुटीला परिचय किसी भी चित्र को अधिक चमका और उभार सकता है। प्रायः हिंदी-पत्रों के चित्र-परिचय बड़े घिसे-पिटे होते है। उनके सब से खराब शब्द हैं—'चित्र में···।'

कभी-कभी चित्र-परिचय हास्यास्पद भी हो जाते हैं। यदि एक चित्र में श्रीमती गांधी और श्री जगजीवनराम दोनों हों, तो क्या जरूरत है यह लिखने की दायें कौन है और बायें कौन ?

मासिक पत्र की संपादन-कला

'लंदन टाइम्स' के भूतपूर्व संपादक एच० विखेम स्टीड ने एक बार अपने एक भाषण में कहा था, "पत्रकारिता कला है, वृत्ति है और जनसेवा है। जब तक कोई पत्रकार यह नहीं समझता कि उसका कर्त्तव्य अपने पत्र के द्वारा लोगों का ज्ञान बढ़ाना, उनका मार्गदर्शन करना है, तब तक उसे पत्रकारिता का चाहे जितना प्रशिक्षण दिया जाय, वह पत्रकार नहीं बन सकता। सच्चे पत्रकार के लिए यह भी आवश्यक है कि वह यह न भूले कि पत्र की व्यापारिक और व्यावसायिक पुष्टता के बल पर ही उसको अपने कर्त्तव्य की पूर्ति का संबल मिल सकता है।[1] ऐसे पत्रकारों में संपादक का स्थान सर्वश्रेष्ठ और सब से अधिक उत्तरदायित्वपूर्ण होता है। योग्य संपादक का नेतृत्व प्राप्त करके ही कोई पत्र लोक-जीवन को जागृत और गतिशील बना पाता है। प्रसिद्ध पत्रकार श्री कमलापति त्रिपाठी के शब्दों में, "संपादक का समाज के जीवन पर गहरा प्रभाव होता है, फलतः संपादक पर नैतिक जिम्मेदारी भी होती है। यदि पत्रों का लक्ष्य केवल धन कमाना नहीं है, यदि उनका आदर्श जनहित की रक्षा करना तथा साधारण मनुष्य का साथी, मित्र, उपदेष्टा तथा रक्षक होना है तो पथप्रदर्शक संपादक, संपादक होने के नाते, उस विशाल जनसमूह के प्रति उत्तरदायी है जिसकी सेवा करने के लिए उसका पत्र प्रकाशित होता है। पत्र स्वयं निर्जीव और जड़ पदार्थ है। कागज के टुकड़ों में जान नहीं हुआ करती। इतने परिश्रम से तैयार किया गया पत्र पाठकों के हाथ में पहुंचने के घंटे-दो घंटे बाद रद्दी की टोकरी में ही स्थान पाता है। फिर, उसका उपयोग भी रद्दी की ही भांति होता है। पर इतना अस्थायी और अल्पकालिक जीवन लेकर भी वह सामूहिक रूप से जन-हृदय पर जो स्थायी और दीर्घकालीन प्रभाव छोड़ जाता है, उसे कोई अस्वीकार नहीं कर सकता"।[2]

पत्रकार-मंडल में सर्वप्रधान होने के कारण पत्र के नीति-निर्धारण और रचनाओं

१. रा० र० खाडिलकर, 'आधुनिक पत्रकार कला', पृ० ६१
२. कमलापति त्रिपाठी, 'पत्र और पत्रकार', पृ० १८८-८६

के संशोधन-संपादन का कार्य मुख्यतः संपादक का होता है। प्रकाशित रचनाओं में अभिव्यक्त विचारों का उत्तरदायित्व भी उसी का होता है। इसके अतिरिक्त पत्र-पत्रिकाओं के प्रतिनिधि और नेता के रूप में सब से पहला नाम उसी का आता है।

परंतु संपादकों के कार्य और उत्तरदायित्व सभी स्थितियों में एक-जैसे नहीं होते। समाचार-पत्रों के संपादकों का कार्य-वृत्त अधिकांशतः समाचारों की धुरी पर घूमता है, जबकि साहित्यिक ढंग की पत्रिका के संपादकों की साम्राज्य-भूमि मूलतः विचारों तक सीमित होती है। माना कि दैनिक और साप्ताहिक पत्र-पत्रिकाओं के संपादकों की अपेक्षा मासिक पत्रिकाओं के संपादकों को अपने कार्य में अधिक समय और अवकाश मिलता है। किंतु यदि वह सुस्ती से काम करने की ओर प्रेरित होता है तो उसकी पत्रिका का जीवन और भविष्य भयावह होता है। ऐसे दृष्टांतों की कमी नहीं जब हिंदी-जगत में जीवन और समाज के विविध पक्षों का सफल प्रतिनिधित्व करनेवाले मासिक पत्रों ने जन्म लिया, उनके जन्मदाता संपादकों ने खून-पसीना एक करके उन्हें विकसित करने का प्रयत्न किया, परंतु बाद में उनके उत्तराधिकारियों ने अपनी कर्महीनता के कारण पत्र की उत्कृष्ट स्थिति को अपकर्ष की ओर मोड दिया। विकास के लिए अबोध गति से श्रम करना पड़ता है। श्रम के अभाव में पत्र अल्पायु हो जाते हैं और जनता प्रकाशित सामग्री की एकरसता से ऊब जाती है। पाठक एकरसता नहीं, विविधता चाहता है, सहजता नहीं तीव्रता चाहता है और शुष्कता नहीं रोचकता चाहता है। मासिक पत्र का संपादक इस वास्तविकता के प्रति सदा सजग रहता है और एकपक्षीय, संकीर्ण उद्भावनाओं का कभी समर्थन नहीं करता। ऐसे संपादक का संसार अनेक दिव्याशाओं से पूर्ण होता है। प्रकाशित सामग्री का अच्छी तरह संपादन कर लेने से ही यदि वह पूर्ण संतुष्ट हो जाय तो समाज की विविध भावनाओं और जिज्ञासाओं का प्रतिनिधित्व कर सकने में वह असमर्थ सिद्ध होगा। सामग्री-संपादन के लिए उसे तीस दिन का समय मिलता है। दैनिक और साप्ताहिक पत्र क्रमानुसार चौबीस घंटे और सात दिनों में संपादित होकर निकलते हैं। मासिक पत्रिका के संपादक को आपाधापी और शीघ्रता में काम नहीं करना पड़ता। वह प्रत्येक अंक में अपनी संपादन-क्षमता की सहायता से समस्त सामग्री को लोकप्रिय बनाने के लिए अनेक प्रकार की साधना करता है। साप्ताहिक और दैनिक संपादकों की अपेक्षा उसे विशेष सतर्क रहकर साधना के पथ से लक्ष्य का संधान करना पड़ता है।

मासिक पत्रिकाएं अनेक प्रकार की होती हैं। विज्ञान और विविध शास्त्रों की उलझी गुत्थियों को सुलझा कर गंभीर ज्ञान प्रदान करने वाली पत्रिका को विशेष सतर्कता से संपादित करना पड़ता है। जनता को अवकाश के क्षणों में मानसिक भोजन कथा-कहानी और अन्य मनोरंजक सामग्री से पूर्ण पत्रिकाओं में मिलता है। सैकड़ों पत्रिकाएं सांस्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, महिलोपयोगी, बालकोपयोगी तथा अन्य सामाजिक चेतना को उत्थान की ओर प्रेरित करने के लिए प्रकाशित होती हैं। योग्य संपादक संबंधित विषयों के विशेषज्ञ लेखकों की रचनाओं को सर्वग्राह्य शैली में संपादित करता है। स्वल्प सामग्री के आधार पर वह अपने संपादन-चातुर्य से पाठकों को अधिकाधिक ज्ञान देने का प्रयत्न करता है। अपनी संपादकीय टिप्पणियों को वह

यथासंभव सुस्पष्ट तथा निष्पक्ष रखने की नीति अपनाता है क्योंकि पाठक के मन पर इसका स्थायी प्रभाव पड़ता है। किसी प्रकार के पूर्वग्रह पर आधारित संपादकीय मंतव्य' में मौलिकता और चिंतन का अभाव रहता है। कर्तव्यनिष्ठ संपादक सर्वसाधारण की भावनाओं को अपनी तलस्पर्शिनी दृष्टि से ग्रहण करता है और अपनी पैनी प्रतिभा के योग से उसकी सम्यक मीमांसा और यथोचित विवेचना करता है। संपादक के लिए संकीर्ण राजनीति सब से बड़ी बाधा बन कर उसके कार्य-क्षेत्र में अवरोध उपस्थित करती है। इस प्रकार के संपादक अपने मन की बात कभी भी व्यक्त करने में सफल नहीं होते। ऐसी संपादन-नीति से उन्हें विवशतः दल विशेष की राय पाठकों पर लादनी पड़ती है। परंतु ऐसी वर्गवादी संकीर्णता को कभी सामाजिक समर्थन नहीं मिलता।

मासिक पत्र की सामग्री शिष्ट और सरस होनी चाहिए। विषय का क्रमबद्ध निरूपण और सामग्री की प्राजलता अत्यंत आवश्यक है। दैनिक और साप्ताहिक पत्रों की भांति मासिक पत्र में अतिसामयिक और अस्थायी प्रभाव से बचते हुए ठोस और महत्वपूर्ण सामग्री पाठकों को प्रदान करने के लिए संपादक भरपूर प्रयत्न करता है। सफल संपादक अपनी व्यापक दृष्टि और दीर्घ अनुशासन को अवश्य ध्यान में रखता है। प्रकाशित रचनाओं के विषय और वस्तु को संतुलित रूप से सुशिक्षित पाठकों के लिए उसे संपादित करना पड़ता है। उसके निर्भीक और आलोचनात्मक विचारों का स्थायी महत्व होता है। वह अपने मौलिक विचारों को अभिव्यक्ति देते समय अपनी लेखनी से तर्क और रस की धारा प्रवाहित करता है। यदि मनोरंजन मासिक पत्रों का उद्देश्य मान लिया जाय तो संपादक को 'मनोविज्ञान का सरस सूत्रधार' कहना अनुचित न होगा। अपने पत्र के प्रति पाठकों को अधिकाधिक आकृष्ट करने के लिए वह विधिवत् संतुलित सामग्री का प्रसार करने के प्रयत्न में निरंतर दत्तचित्त और प्रयत्नशील रहता है। सुयोग्य संपादक अपने पाठकों की परिष्कृत रुचि को सदैव प्रमुख मानता है। उसे पत्र में प्रकाशित साहित्य की विविध विधाओं (कविता, कहानी, एकांकी, निबंध, शब्द-चित्र, समीक्षा आदि) में पाठकों की पसंद का आवश्यक ध्यान रखना पड़ता है। विविध स्तंभों (यथा, महिला-मंडल, बाल-साहित्य, रजतपट, पुस्तक-परिचय, संकलनात्मक टिप्पणियां आदि) में भी संपादक की नीति पाठकों का मार्गदर्शन करती है। संपादक की निर्णायक बुद्धि, उसके संतुलित दृष्टिकोण तथा विविध विषयों के समावेश से दिनों-दिन पत्र की प्रगति होती है। पत्र के संपादन-कौशल की विशेषता तभी सिद्ध होती है जब पाठक के मन पर उसकी गहरी छाप पड़े। संपादक की योग्यता से पाठक का हृदय भी उल्लसित होता है। योग्यतापूर्वक संपादित पत्र में प्रकाशित प्रत्येक सामग्री पाठक को अपनी ओर तत्काल आकृष्ट करती है। किंतु यदि रचनाओं में स्वस्थ विचारों और सुरुचि का अभाव होता है तो पाठकों को उस आनंद की अनुभूति नहीं हो पाती जो लेखक-संपादक-पाठक के त्रिवर्ग का युगपत् काम्य होता है। दैनिक और साप्ताहिक पत्रों के विविध समाचारों और टिप्पणियों का उपयोग मासिक पत्रों में विशेष ढंग से करना भी संपादन-कला का महत्वपूर्ण दायित्व है। मासिक पत्रों में केवल चमत्कार और उत्सुकता प्रदान करने वाली रचनाओं की

अधिकता अवांछनीय है । उत्तेजनात्मक और गहरी आस्थापरक सामग्री से मासिक पत्र गरिष्ठ प्रतीत होने लगते हैं । किंतु संपादक अपने कौशल के बल पर ऐसी रचनाओं को भी सरस ढंग से उपस्थित करने में सफलता प्राप्त करता है । मासिक पत्र के संपादक को नवीन लेखक तैयार करने में सच्चा संतोष मिलता है । प्रमुख मासिक पत्रों में अनेक प्रसिद्ध लेखकों की पूरी रचनात्मक प्रक्रिया देखने को मिल सकती है । प्रमुख मासिक पत्रिकाएं वस्तुतः साहित्य, संस्कृति, समाज और भाषा के विकास मे अपना अप्रतिम योगदान करती हैं । कथाप्रधान मासिक पत्रिकाओं के संपादक सदा अच्छे कथाकारों की खोज मे लगे रहते है ।

कथा-साहित्य के विकास और उत्थान का वास्तविक श्रेय मासिक पत्रों के संपादकों को ही प्रदान करना चाहिए । अनुभवी संपादक विशिष्ट कहानियों में चित्रित भावना या स्थापित विचारों को एक पाठक की हैसियत से भी आसानी से हृदयंगम कर लेता है । संपादक को किसी भी रचना मे स्वाभाविक उत्कंठा जाग्रत रखने के उद्देश्य से आवश्यक संशोधन-परिवर्तन करने की छूट मिलनी चाहिए । पाठकों की कल्पना को अधिकाधिक तीव्र बनाने के लिए संपादक कहानियों का उचित उद्देश्य निर्धारित करने में सदा सतर्क रहता है । पाठक किसी भी रचना से तभी प्रभावित हो सकता है जब वह रचनाकार के कृतित्व और व्यक्तित्व से पूर्णतः परिचित हो जाय । प्रत्येक संपादक पत्र मे प्रकाशित विविध रचनाओं का परिवर्धन, संशोधन और संपादन करते समय सच्चे और निपुण मित्र की भांति रचनाकार की उपलब्धियों को मुखर करता है । धारावाहिक रूप मे प्रकाशित होने वाली रचनाओं मे सदैव इस बात को ध्यान में रखना चाहिए कि ऐसी रचनाएं असाधारण ढंग से पाठकों की जिज्ञासा को प्रत्येक अंक में जाग्रत रख सकें । धारावाहिक रचनाओं की कथावस्तु में उलझाव पाठक की कौतूहल-प्रवृत्ति को समाप्त कर देता है । जिस रचना को पत्र के आगामी अंक में पढ़ने के लिए पाठक जिज्ञासु न हो उसे धारावाहिक प्रकाशित करने का उद्देश्य ही समाप्त हो जाता है । कथाप्रधान मासिक पत्र का संपादक पाठकों की मानसिक प्रवृत्तियों का सूक्ष्म और सिलसिलेवार अध्ययन करता है और अपने पत्र में जनरुचि-प्रधान रचनाओं को ही विशेष महत्व देता है । यदि पत्र की सत्य-नीति को संपादक सफलतापूर्वक निभा ले जाता है तो पत्र की अधिकाधिक बिक्री बढ़ती है और साथ ही संपादक भी ख्याति प्राप्त करता है । उस पत्र के माध्यम से युग के प्रसिद्ध कथाकार अपनी विशिष्ट रचनाएं प्रकाशित करवाने के लिए प्रयत्नशील रहते है । प्रकाशित कहानियों का स्वरूप-निर्धारण करने की शक्ति भी संपादक में रहनी चाहिए। प्रबुद्ध संपादक मौलिक कथाकारों तक को कहानी लिखने के लिए विषय और विचार देता है, प्रेरणा देता है । अनुभवी और प्रख्यात लेखकों की रचनाओं के प्रकाशन के अतिरिक्त अन्यान्य महत्वपूर्ण समस्याओं पर लिखनेवाले लेखको का निर्माण करना संपादक की विशेषता मानी जाती है । संपादक नये रचनात्मक लेखकों के उचित और अनुचित तर्कों का निर्णय न्यायप्रिय विचारपति की तरह करता है । ऐसी कृतियों की त्रुटियो और असंगतियों पर संपादक की दृष्टि तत्काल पड़ती है । यदि संपादक चाहे तो किसी भी लेखक को विशेष विषय देकर उससे उत्तम रचनाओं का सृजन करा

सकता है। वह अपनी जानकारी और संगृहीत सामग्री के आधार पर नये लेखकों की सदा सहायता करता रहता है। मासिक पत्रों के अनेक संपादक सुप्रसिद्ध लेखकों के साथ रचनात्मक अनुबंध कर लेते हैं जिससे लेखकों को आर्थिक सुविधा मिलती है और उनकी प्रतिभा से साहित्य का नव-निर्माण होता है। यह कार्य वे ही संपादक कर पाते हैं जो अधिक धन व्यय करने में समर्थ हों। फिर भी योग्य और अनुभवी संपादक पैसों के अभाव में भी नये लेखकों को प्रेरणा देकर उत्साहित करते रहते हैं। मासिक पत्र का संपादक साहित्य की विभिन्न विधाओं पर नये और ताजे लेखकों की खोज में लगा रहता है। स्वयं उसे डाक से आयी हुई ढेर की ढेर रचनाओं को छांट कर कारयित्री प्रतिभाओं को परखने में विशेष श्रम करना पड़ता है। संपादक को बहुत-सी ऐसी रचनाएं भी मिलती हैं जिनमें से केवल कुछ ही अंश पत्रिका के उपयोग के योग्य होते हैं। ऐसे लेखकों को अपनी संपादन-नीति से परिचित कराकर उनकी रचना में से अभीष्ट स्वल्प सामग्री के उपयोग की स्वीकृति प्राप्त करके संपादक को विशेष सुख का आनंद मिलता है। सैकड़ों नये लेखकों और साहित्यकारों को ऐसे ही पारखी संपादकों ने अपने अथक परिश्रम से साहित्य-क्षेत्र में प्रतिष्ठित किया है। अनेक प्रख्यात मासिक पत्रों में लिखना प्रारंभ करके अनेक लेखको का कृतित्व और व्यक्तित्व साहित्य-जगत में प्रतिष्ठित हुआ है। इस प्रकार मासिक पत्र का योग्य संपादक साहित्यकार के व्यक्तित्व का प्रेरक और निर्माता होता है।

मासिक पत्रों के कुछ अन्य तथ्यों पर भी विचार कर लेना आवश्यक है। पत्र की पृष्ठ संख्या और आकार को ध्यान मे रखकर संपादक की निपुणता की परीक्षा होती है। प्रतिवर्ष संपादक को अपने पत्र के एक-दो विशेषांक भी प्रकाशित करने पड़ते हैं। संपादक पत्र की निर्धारित पृष्ठ संख्या की सीमा मे बंधकर ही उपयोगी सामग्री का चयन करता है। पत्र की पृष्ठसंख्या और आकार का निश्चय हो जाने पर निर्धारित उद्देश्य के अनुसार संपादक अपना कार्य प्रारंभ करता है। मासिक पत्रों के उद्देश्यों में भिन्नता होती है। परंतु प्रत्येक मासिक पत्र के संपादक का कर्त्तव्य है कि नवीन विषयों के अधिकारी लेखकों की रचनाओं को सरल ढंग से पाठकों को सुलभ कराने का प्रयत्न करे। संपादक अनावश्यक भूमिका और असंबद्ध विवरण से बचते हुए पाठक के मानसिक संतोष का ध्यान रख कर उपयोगी रचनाएं प्रकाशित करने का विशेष आग्रह रखता है। जी उबा देनेवाली रचनाओं से पाठकों के समय का अपव्यय करना ठीक नहीं कहा जा सकता। ऐसी असफल कृतिया पाठकों द्वारा कभी भी प्रशंसित नहीं होतीं।

संपादक एक पाठक की हैसियत से भी अपने पत्र में प्रकाशित रचनाओं की तात्विक उपलब्धि के गुण और दोष का स्पष्ट निर्णय करने वाला न्यायिक माना जाता है। सच्चा संपादक बिखरी भावनाओं और विचारों को संयोजित करने वाला आचार्य कहा जाता है। वह प्रख्यात लेखकों की रचना के गुण की बारीकी से परख करता है और किसी रचना को प्रकाशित करने से पूर्व अपनी निर्णायक कसौटी पर उसे हर पहलू से कसकर भली भांति देख-समझ लेता है। आज के व्यस्त जीवन में मासिक पत्रिकाएं स्वल्प अवकाश के समय की महत्वपूर्ण संगिनी मानी जाती हैं। मासिक पत्रों का गुण सरस मनोरंजन है। तथ्यहीन, निरर्थक और व्यर्थ के शब्दजाल में उलझी हुई भाषा से

पाठक के समय का दुरुपयोग होता है। कभी-कभी तीन-तीन, चार-चार परिच्छेद लगातार पढ़ जाने पर भी पाठक को यह ज्ञात नहीं हो पाता कि वस्तुतः लेखक का तात्पर्य क्या है। इस प्रकार की रचनाओं का कोई स्थायी महत्व नहीं होता है। आज-कल का व्यस्त पाठक भी समय-संकोच से ग्रस्त रहता है। अतएव वह चाहता है कि कम से कम समय में किसी रचना की मुख्य-मुख्य सारी बातें उसे स्पष्ट हो जायं। इस-लिए भावुकतापूर्ण शब्दावली में लिखित लंबे-लंबे वाक्यों और परिच्छेदों वाली रचना से वह बहुत शीघ्र ऊब जाता है। क्रमबद्ध रूप से, विषयानुरूप थोड़े-थोड़े अर्थगर्भित शब्दों का प्रयोग करने वाला लेखक उसे अपेक्षाकृत रुचिकर प्रतीत होता है। अच्छे लेखक सर्वदा व्यर्थ के शब्द-समूह के पचड़े मे न पड़कर अपना विचार थोड़े से शब्दों द्वारा स्पष्ट करने के पक्षपाती होते हैं। मासिक पत्रों में प्रकाशित कथा-साहित्य मे भी लंबे-चौड़े वर्णनात्मक उल्लेखों को आज का पाठक बिल्कुल पसंद नहीं करता है। आज के कथा-साहित्य मे भावना, विचार तथा जीवन-संघर्षों को बहुत थोड़े में परंतु सही-सही चित्रित करने वाला लेखक ही सफल होता है। रचनाओं का सब से बड़ा निर्णायक आज आलोचक नहीं, पाठक माना जाता है। अपनी रचनात्मक उपलब्धि की वकालत स्वयं करने वाले लेखकों को आज का पाठक उपहास्य समझता है। फलतः जो लेखक निपुण संपादकों की बुद्धि से लाभ उठा पाते है वे शीघ्र ही जनप्रिय हो जाते हैं। ऐसे लोक-प्रिय लेखक पाठकों पर कही भी अपने विचारों को जबर्दस्ती लादने का दुष्प्रयत्न नही करते। गंभीर विषयों से संबद्ध विस्तृत लेखों से भी यदि पाठक का मन रचनाकार से निरंतर एकरस आग्रह के कारण तंग आ जाय तो आश्चर्य नहीं।

संपादन के अंतर्गत दूसरा महत्वपूर्ण कार्य रचनाओं के क्रमनिर्धारण का है। प्रत्येक लेख का मूल्यांकन कर लेने के बाद संपादक अपने पत्र की नीति के अनुसार उनके क्रम का निर्धारण करता है। सामान्यतः आजकल के मासिक पत्र समाज के विभिन्न वर्गो के पाठकों को सर्वसामान्य रूप मे संतुष्ट करने वाली सामग्री का आयो-जन करते हैं। अतएव उनमे विविधता का समावेश अनिवार्यतः आवश्यक होता है। कभी-कभी हिंदी और भारतीय भाषाओं के मासिक पत्र अपनी वर्गीकृत भिन्नता के आग्रह के कारण महत्वपूर्ण निबंध और उपयोगी कथा-रचनाओं को चाहते हुए भी नही प्रकाशित कर पाते। मनोरंजक मासिक पत्रों के लिए आवश्यक है कि विविध विषयों से संबद्ध मुख्य लेख और दो-तीन मनोरंजक कहानियों को प्रत्येक अंक मे अवश्य स्थान दें। योग्य संपादक अपने विविध स्तंभों के अंतर्गत अधिक से अधिक सजीव सामग्री पाठकों को देना चाहता है। विविध स्तंभ के नाम पर व्यर्थ की खानापुरी करने की अपेक्षा रचनात्मक कृतित्व को नियोजित करना ही अधिक सार्थक होता है। फिर भी कभी-कभी प्रबंधकों की इच्छा के कारण संपादक को विवश होकर ऐसी रचनाओं को भी स्थान देना पड़ता है जो पत्रिका के अनुरूप नही होती। अधिकतर निर्भीक संपादक ऐसे अवसरों पर भी अपनी नीति से च्युत नही होते। वे पाठकों को नवीन ज्ञान-विज्ञान से परिचित कराने के लिए मनोरंजन के विभिन्न उपकरण जुटाते है। फिर भी नीति-निपुण संपादकों को कभी-कभी व्यवस्थापकीय आग्रह और अपनी नीति के बीच एक मध्यमार्ग निकालने के लिए विवश हो जाना पड़ता है।

ऐसे स्वाभिमानी साहित्यकारों की कमी नहीं है जो अपनी रचना के एक शब्द का परिवर्तन भी संपादक द्वारा अक्षम्य मानते हैं। परंतु अनुभवी संपादक अपनी व्यवहार-कुशलता के कारण इस प्रकार के प्रख्यात लेखक की रचना में भी परिवर्तन और संशोधन करने की अनुमति प्राप्त कर लेता है। अपने पत्र की ओर निरंतर अधिकाधिक पाठकों को आकर्षित करने के निमित्त संपादक को बड़ा परिश्रम करना पड़ता है। प्राय: प्रत्येक पत्र में एक ही दो ऐसी रचनाएं प्रकाशित हो पाती है जो सचमुच असाधारण कोटि की होती हैं और जिनसे पाठक के मन को संतोष और सुख मिलता है। ऐसी विशिष्ट रचनाओं के लिए संपादक स्थान का कभी भी मोह नहीं करता। अनेक पत्रों की व्यक्तिगत मान्यता और परंपरा होती है। ऐसे पत्रों की संपादक-समिति पहले ही निर्णय कर लेती है कि विविध विषयों के अनेक स्तंभों के लिए कितना स्थान सुरक्षित रखा जाय। जिन मासिक पत्रों मे इस निश्चित नीति का अभाव होता है उन पत्रों की सामग्री वैज्ञानिक ढंग से व्यवस्थित न होकर असंबद्ध और क्रमहीन हो जाती हैं। जिन मासिक पत्रों में सचित्र यात्रा-विवरण, जीवनी अथवा अन्य प्रकार की विशेष रचनाएं प्रकाशित होती है, उन पत्रिकाओं के संपादकों का कार्य भी विशेष जिम्मेदारी का होता है। कैसे चित्रों से पत्र की अधिक लोकप्रियता संभव है, इस परिकल्पना में ही संपादक का कम समय नहीं लगता। कभी-कभी निपुण से निपुण संपादक भी ऐसी रचनाओं को उचित रूप में प्रकाशित नहीं कर पाते।

दैनिक और साप्ताहिक पत्रों की भाषा जन-सामान्य की सामाजिक भाषा होती है, परन्तु मासिक पत्रों की भाषा युग के साहित्यकारों और बौद्धिक समुदाय से विशेष संबंध रखती है। अत: आवश्यक है कि मासिक पत्रों की विविध रचनाओं तथा संपादकीय लेखों की भाषा सुस्पष्ट, सहज, सरस और प्रसादगुण से परिपूर्ण हो। मासिक पत्र के संपादक की भाषा संबंधी जिम्मेदारी विशेष महत्वपूर्ण होती है। पत्रों में प्रकाशित होने वाली रचनाओं की भाषा पर संपादक का सर्वप्रथम ध्यान केंद्रित होता है। मासिक पत्रों मे प्रकाशित रचनाओं की भाषा का स्तर जन-सामान्य की दैनंदिन भाषा से ऊंचा होता है। दैनिक और साप्ताहिक पत्रों की भाषा मे अनेक प्रकार की त्रुटियां होती रहती हैं और उन पर कोई विशेष ध्यान नहीं देता, परन्तु मासिक पत्रों में इस प्रकार की त्रुटियां निश्चय ही अक्षम्य मानी जाती हैं। मासिक पत्रों की संपादन-समिति के पास समय का अभाव नहीं रहता है। मासिक पत्रों के संपादक ही एक प्रकार से भाषा का नियमन और निर्माण करते हैं और साहित्य-जगत में नवीन युग की प्रतिष्ठा करने के कारण साहित्य-महारथी कहे जाते हैं। अनेक मासिक पत्रों के लेखक आडंबरपूर्ण शैली में कठिन भाषा लिखकर पत्र की लोकप्रियता पर आघात करते हैं। सर्वसामान्य पाठक के लिए ऐसी रचनाओं का रत्ती भर भी उपयोग नहीं रहता। निपुण संपादक किसी भी रचना में भाव-संपत्ति या विचार-संपत्ति रहने पर आवश्यकतानुसार उसकी भाषा को सरस और सुबोध ढंग से संपादित करने के पश्चात् ही प्रकाशित करता है। वह रचनाओं में आयी हुई लेखक की व्यक्तिगत विचारधारा में प्राय: कोई परिवर्तन नहीं करता। अनेक रचनाओं मे स्पष्ट पुनरावृत्ति दोष दिखायी पड़ता है। ऐसी पुनरावृत्तियों को रचनाओं से विलग करना संपादक की जिम्मेदारी है। कथात्मक रचनाओं का

शिल्पतंत्र सरस, सरल और उपयोगी तभी माना जा सकता है जब कथानक की और तदगत चारित्रिक अभिव्यक्ति की क्षमता स्वाभाविक, सुंदर और सहज हो। किसी रचना को संपादित करने के पूर्व समझदार संपादक उसके लेखक से संशोधन की आवश्यक अनुमति अवश्य प्राप्त कर लेता है। बिना लेखक की अनुमति प्राप्त किये किसी भी रचना का संशोधन करना संपादक के न्याय-कर्मों में नहीं गिना जा सकता। मासिक पत्रों में प्रकाशित की जाने वाली विभिन्न रचनाओं का सिलसिलेवार संपादन संपादक के महत्वपूर्ण कार्यों में से माना जाता है। सर्वश्रेष्ठ और विशिष्ट रचनाओ को पत्र के प्रारंभ में स्थान देना पड़ता है। प्रथम प्रकाशित रचना के विषय का ध्यान रखते हुए अन्य रचनाओं के नियमन में भी क्रमभिन्नता आवश्यक है। किसी भी पत्र की सामग्री पर कोई भी पाठक पहले सरसरी निगाह फेरता है और यदि उसे तत्काल यह ज्ञात हो जाता है कि पत्र की प्रकाशित सामग्री में विषय की एकरसता है तो पत्र को विशेष रूप से पढ़ने की वह आवश्यकता ही नहीं समझता। मासिक पत्रों के संपादक के लिए व्यापक जानकारी की अत्यत आवश्यकता पड़ती है। उसे सदैव ऐसी सामग्री किसी भी क्षण लिखने को तैयार रहना पड़ता है जिससे पाठक का आत्मविश्वास जागृत हो जाय। संपादक अभ्यासशील अध्येता होता है। समसामयिक मौलिक प्रश्नों पर चिंतन करना भी उसके लिए नितांत आवश्यक है। संपादन का दायित्व निभाते समय वह कर्मनिष्ठ, सत्यप्रिय और चुस्त रहकर अपने संपादन-धर्म का पालन करता है। सच्चा संपादक समसामयिक लोकरुचि और लोकविश्वासो का प्रतिनिधि होता है एवं राष्ट्र के सर्वतोमुखी मंगलविधान पर निरंतर दृष्टि रखता है। समाचार-पत्र और मासिक पत्र समाज की घड़ी की दो छोटी-बड़ी सुइयों जैसे होते हैं। सब के लिए बोधगम्य भाषा में साहित्य प्रदान करने का सामाजिक दायित्व संपादक को निभाना पड़ता है। वह समाज की समसामयिक मनोरंजक रुचि को परिष्कृत करने का दायित्व लेकर अपने संपादकीय कर्तव्य मे प्रवृत्त होता है। देखा जाता है कि संपादन के क्षेत्र में प्रतिभावान निपुण और श्रमशील व्यक्तियो को ही सफलता प्राप्त होती है।

मानव-मन परिवर्तनप्रिय है। इसी कारण साहित्य की मान्यताएं भी स्थिर नहीं रह पाती। लोकरुचि उनमें निरंतर परिष्कार करती रहती है। आधुनिक विज्ञान की निरंतर आगे बढ़ती हुई उपलब्धियों ने तो एतत्संबंधी रहे-सहे संशय को भी दूर कर डाला है, परंतु साहित्य-क्षेत्र में इस तथ्य को अमान्य करने वालों की भी कमी नहीं है। परिणामतः समसामयिक रचनाओं को भी कुछ लोग प्राचीनता के चश्मे से अथवा प्राचीन रचनाओ को अर्वाचीन चश्मे से देखते हैं। स्वभावतः वे रचना और रचयिता के साथ न्याय नही कर पाते। परंतु सतर्क और सफल संपादक ऐसी असावधानता नहीं होने देता।

मानवता और समाज का कल्याण वर्तमान साहित्यिक पत्रकारिता में ही संभाव्य प्रतीत होता है। परन्तु इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए निर्भीकतापूर्वक मान्यताओं की मर्यादा का पालन करना आवश्यक है। संपादक की सफलता इसी में है कि वह परिश्रमपूर्वक इस उत्तरदायित्व को निभाने की चेष्टा करता रहे। हिंदी पत्रकारिता का श्रीगणेश कला और साहित्य की सेवाभावना से हुआ था, व्यवसाय से उसका विशेष

संबंध नहीं था। परंतु पाश्चात्य पत्रकारिता की अंधानुकृति के कारण भारतीय संपादकों को भी व्यवसाय-चक्र में उलझ जाना पड़ा। परंतु पाश्चात्य संपादक जहां अपनी नीति की व्यावहारिकता के कारण उत्तरोत्तर सफल होता रहा, वहां एतत्देशीय संपादक एकांगिता के कारण निरंतर पश्चात्पद ही हुआ। बहुत कुछ इसी का परिणाम है कि हमारे यहां परिश्रमशील, जिज्ञासु और तथ्यान्वेषी संपादकों की बड़ी कमी रही है। यद्यपि स्वतंत्र भारत में प्रेस-स्वातंत्र्य संविधान द्वारा मान्य है, फिर भी सरकार राष्ट्रीय हितों के लिए पत्रकारिता पर अनेक मर्यादित नियंत्रण रखती है। यद्यपि आजकल भारत में पत्रकारिता जनसामान्य मे प्रचलित होकर एक प्रतिष्ठित व्यवसाय का रूप ले चुकी है फिर भी पत्रकारिता की नैतिकता जनसमर्थित भावनाओं का सफल प्रतिनिधित्व आज सही अर्थों मे नहीं कर पा रही है।

१९५० में अखिल भारतीय संपादक सम्मेलन के अवसर पर श्री जवाहरलाल नेहरू ने पत्रकारों को संबोधित करते हुए कहा था, "जीवन में जो कुछ निकृष्ट है उसकी क्रमशः बढ़ोतरी को रोकने में सहायता करना पत्रकारों का काम है। पत्रकारों को अधिक ऊंचे दर्जे की तथा अधिक उज्ज्वल सामाजिक चेतना के निर्माण में ही सहायता नही करनी है वरन् जीवन की छोटी-छोटी बातों मे सामाजिक व्यवहार भी सिखाना है।" हिंदी पत्रकारिता को संबोधित करते हुए श्री नेहरू ने जिस बात का संकेत किया है उसके प्रति आज का संपादक आस्थावान् होता जा रहा है, यह शुभ लक्षण है।

मुद्रण-कला

पत्र-पत्रिकाओं के विकास में मुद्रण-कला का स्थान महत्वपूर्ण है। अच्छी तरह से मुद्रित सर्वांग सज्जायुक्त पत्रिकाएं सुसंपादित (किंतु सुमुद्रित नहीं) पत्रिकाओं से कहीं अधिक प्रसार पा जाती है—पाठकों में अधिक लोकप्रिय हो जाती हैं। इस दृष्टि से मुद्रण-कला के विविध अंगों का ज्ञान संपादक को होना आवश्यक हो जाता है। हिंदी पत्रिकाओं के विकास की दृष्टि से भी मुद्रण-कला के विकास का संक्षेप में परिचय पा लेना उपयुक्त होगा।

मुद्रण प्रारंभ करने की मूल प्रेरणा कहां से प्राप्त हुई, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता, तथापि अनुमान है कि प्रतिकृति अंकन की आवश्यकता ही मुद्रण के आविष्कार के मूल में रही होगी और आरंभ में बड़ी संख्या में प्रतिकृति अंकन की आवश्यकता मुद्रांकन के लिए ही पड़ी होगी। व्यक्तिगत चिह्न या राजकीय वर्चस्व के प्रतीक के रूप में जब मोहर या मुद्रा का व्यवहार प्रचुरता में होने लगा तो विशिष्ट लेखों को प्रामाणिकता प्रदान करने के लिए मुद्रांकन प्रारंभ किया गया।[1] इस मुद्रांकन या मुद्रा की प्रतिकृति के अंकन ने अंततः मुद्रण की प्रेरणा दी।[2] इस दृष्टि से मुद्रा और मुद्रण शब्दों की समीपता द्रष्टव्य है। चीनी भाषा में भी 'यिन' शब्द मुद्रा एवं समस्त प्रकार के मुद्रण का अर्थबोध कराने वाला है।[3]

१. 'मुद्रा' शब्द का प्रयोग हमारे यहां प्राचीन काल से मिलता है। व्यक्तिगत चिह्न के रूप में भगवान राम की 'मुद्रिका' हनुमानजी ने विरह-विदग्धा सीताजी को देने के लिए अशोक वाटिका में डाली थी। 'मुद्राराक्षस' में भी राक्षस की मुद्रा व्यक्तिगत चिह्न थी। 'राजकीय मुद्रा' के रूप में 'मुद्रा' का प्रयोग कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी मिलता है। देखिए, स्वामी ओमानंद, 'हरियाणे के प्राचीन मुद्रांक' (झज्जर, १९७५)

२. डगलस मेकमुर्टी, 'दि बुक, दि स्टोरी आफ प्रिंटिंग एंड बुकमेकिंग', पृ० ६५

३. टेम्स फ्रांसिस केस्टर, 'इन्वेशन आफ प्रिंटिंग इन चाइना एंड इट्स स्प्रेड वेस्टवार्ड' (न्यूयार्क १९५६), पृ० ११

मुद्रण का आविष्कार

यद्यपि यह दावा किया जाता है कि विश्व साहित्य में वेद सब से प्राचीन ग्रंथ हैं और इनकी रचना भारत में हुई, तथापि मुद्रण-कला के आविष्कार का श्रेय भारत को प्राप्त नहीं है। कला के रूप में मुद्रण का आरंभ चीन में हुआ।[1] आज उसका नयी-नयी दिशाओं में विकास संयुक्त राज्य अमेरिका, यूरोप तथा जापान में हो रहा है।

बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए धार्मिक साहित्य की प्रतिलिपियां अधिक संख्या में प्राप्त करने के लिए मुद्रण का पहली बार प्रयोग चीन में हुआ।[2] ५५० ईसवी में भगवान बुद्ध की मूर्ति छापने के लिए मुद्रण-कला का प्रयोग किया गया। चीन में सहस्र बुद्ध गुफाओं में 'हीरक सूत्र' नामक पुस्तक मिली है। इसे ही संसार की सर्वप्रथम मुद्रित पुस्तक बताया जाता है।[3] इसमें ढाई फुट लंबे और एक फुट चौड़े छह पृष्ठ हैं, जो सारे के सारे सोलह फुट लंबे एक कागज पर चिपके हुए हैं। यह मुद्रण ब्लाक के रूप में हुआ है।

चीनी मिट्टी से पकाये हुए अलग-अलग हो सकने वाले टाइप चीन के पी शेंग नामक व्यक्ति ने १०४१ में बनाये थे। इन टाइपों को आग में पकाना पड़ता था और छपाई भी बढ़िया नहीं होती थी। इसलिए उसने टीन के टाइप भी बनाये किंतु यह गीली स्याही पर अच्छा काम नहीं करते थे। १३१४ में वांग चांग ने लकड़ी के टाइप भी बनाये थे। चीनी भाषा ऐसी थी कि उसमें टाइप बनाने की अपेक्षा लकड़ी के ब्लाक बनाना अधिक सरल था। इसलिए लकड़ी के टाइप ही चले।[4]

चीन में बने लकड़ी के टाइप तुंन हुआंग की गुफाओं से निकले हैं। इनकी लिपि उइगुर थी जो मध्य एशिया में प्रचलित थी और जो वर्णिक थी किंतु जो टाइप मिले हैं, वे शब्दों के टाइप हैं, वर्णों के नहीं। इस प्रकार वर्ण-टाइपों के आविष्कार का श्रेय पाते-पाते चीन रह गया जो अंततः जर्मनी के गुटनबर्ग को मिला।[5]

चीन से मुद्रण-कला जापान तथा कोरिया गयी। कोरिया के राजा जनरल यी ने धातु के टाइपों की फाउंड्री बनवायी थी। जनरल यी के पुत्र ताई त्सुग ने कई हजार टाइप ढलवाये थे। बौद्ध भिक्षुओं के प्रयासों से वर्णमाला वाली लिपि का प्रयोग आरंभ हुआ और उसके लिए टाइप भी बने जिनके आधार पर एक पुस्तक भी प्रकाशित हुई किंतु यह पुस्तक भी पूर्णतया वर्ण प्रधान न रही—उइगुर की भांति इसमें भी ध्वनि खंडों को चीनी भाषा के शब्दों तथा वाक्यों के रूप में लिखा गया। स्वयं चीन ने भी चीनी विश्वकोश छापने के लिए ढाई लाख टाइप ढाले[6] किंतु चीन और कोरिया के इन प्रयासों के बाद भी परिवर्तनीय टाइपों से सुदूर पूर्व में छपाई का प्रयास सफल नहीं रहा।

१. अनंत काकबा प्रियोल्कर, 'दि प्रिंटिंग प्रेस इन इंडिया' (बंबई, १९५८), पृ० १
२. वही, पृ० १
३. वही, पृ० १
४. मेकमुर्टी, क्र० २, पृ० ९५
५. वही, पृ० ९७
६. वही, पृ० १४, ९८, ९९

पूर्व से मुद्रण-कला पश्चिम में—यूरोप में—पहुंची या यूरोप में ही इस कला का स्वतंत्र रूप से विकास हुआ, इस संबंध में विद्वान एकमत नहीं हैं किंतु अधिकांश विद्वानों का मत यही है कि मुद्रण-कला समरकंद, ईरान तथा सीरिया के उसी रास्ते से यूरोप पहुंची जिस रास्ते से रेशम वहां पहुंचा था। तेरहवीं सदी में चीन गये रोमन मिशनरी तथा मार्को पोलो सरीखे यात्री चीन से मुद्रित सामग्री के नमूने लाये थे। यूरोप में भी अलग-अलग वर्णों के पृथक्-पृथक् टाइपों से मुद्रण प्रारंभ होने के बहुत पहले ब्लाकों के द्वारा ताशों तथा धार्मिक चित्रों की छपाई होती थी।[१]

टाइपों का आविष्कार

प्रत्येक वर्ण के पृथक् टाइप का आविष्कार करने का श्रेय सामान्यतः मेंज (जर्मनी) में जन्मे तथा स्ट्रासबर्ग में रहने वाले जान गुटनबर्ग को ही है। बताते हैं कि गुटनबर्ग स्वर्णकार का पुत्र था और बड़ी संख्या मे तेजी से बाइबिल छापने के उद्देश्य से उसने टाइपों का निर्माण किया था। गुटनबर्ग गरीब था, अतः अपनी छापेखाने की कला सिखाने का प्रलोभन देकर वह अपने भागीदारों से धन लगवाता था, हालांकि उसने प्रतिज्ञा यह की थी कि वह किसी के साझे में टाइप ढालने का कार्य नहीं करेगा।[२]

४२ लाइनों वाली बाइबिल १४५६ में या शायद इससे कुछ पहले ही छपी थी। यह गुटनबर्ग के प्रेस में छपी और यूरोप की प्रथम मुद्रित पुस्तक मानी जाती है। इस पुस्तक पर छपने के स्थान व तिथि का संकेत नहीं है। जो अन्य साक्ष्य सुलभ हैं, उनके अनुसार इसमें संदेह नही है कि इस बाइबिल के टाइपों को बनाने की तकनीक गुटनबर्ग की है किंतु इसका अधिकांश भाग या अंतिम भाग (पूर्णाहुति) फस्ट तथा शोफर के सक्षम हाथों की कृति है। संभव है कि इसे छापने की योजना गुटनबर्ग की रही हो या यह काम तब शुरू हुआ हो जब गुटनबर्ग व फस्ट की साझेदारी चल रही थी।[३] अब तक सुलभ जानकारी के आधार पर परिवर्तनीय टाइपों से छपाई का आविष्कार मेंज में १४४० तथा १४५० के बीच हुआ और प्राप्त साक्ष्य के अनुसार इसका श्रेय जान गुटनबर्ग को ही है।[४] वैसे टाइप के आविष्कर्ताओं के रूप में हारलेम (हालैंड) के कास्टर, ब्रूगेज (बेल्जियम) के जोनीज वाइटो तथा फस्टर (इटली) के पामकीलो कास्टेल्डे के नाम भी लिये जाते हैं।[५]

स्थूल रूप से यूरोप में मुद्रण-कला का प्रसार पंद्रहवीं शताब्दी में इस प्रकार हुआ—इटली (१४६५ ई०), फ्रांस (१४७० ई०), स्पेन (१४७४ ई०), इंगलैंड (१४७७ ई०), डेन्मार्क (१४८२ ई०), पुर्तगाल (१४९५ ई०) तथा रूस (१५५३ ई०)।

१. जान सी० टार, 'प्रिंटिंग टुडे' (लंदन, १९५०), पृ० १५
२. 'प्रिंटिंग इंप्रेशन्स' (न्यूयार्क, जुलाई १९६६), क्र० २, पृ० ७
३. मेकमुर्टी, क्र० २, पृ० १५२
४. वही, पृ० १६४
५. प्रियोल्कर, क्र० ४, पृ० २

भारत में मुद्रण का अभ्युदय

भारत में मुद्रण-कला का आरंभ सोलहवी शताब्दी में ईसाई मिशनरियों ने किया। विभिन्न संप्रदाय के ईसाइयों ने अलग-अलग प्रयास किये। सभी ने ईसाई धर्म की प्रचारात्मक धार्मिक पुस्तकें छापने के लिए अपने देशों से प्रेस एवं टाइप आदि मंगवाये थे। इनके लिए वे कागज भी विदेशों से मंगाते थे।

भारत में पहला प्रेस ६ सितंबर १५५६ को संयोगवश ही आ गया।[२] यह प्रेस पुर्तगाल से अबीसीनिया के लिए भेजा गया था। उन दिनों स्वेज नहर नहीं बनी थी और अबीसीनिया के लिए भारत होकर जाना पड़ता था। अबीसीनिया के लिए मनोनीत पेट्रिआर्क प्रेस के साथ थे। मार्ग मे वे गोआ रुके। जनवरी १५५७ में जब वे अबीसीनिया जाने की तैयारी कर रहे थे कि राजनीतिक कारणों से गोवा के गवर्नर ने इनको वहां रोक लिया। इस प्रकार यह प्रेस गोवा में ही रह गया। इस बात के बहुत से प्रमाण विद्यमान है कि अबीसीनिया के लिए भेजा गया वह प्रेस ही गोवा में स्थापित हुआ। यहीं सेंट जेवियर ने भारत भूमि में छपी सर्वप्रथम पुस्तक 'दौकत्रीना क्रिस्टाओ' १५५७ मे छपवायी थी।[३]

दूसरा प्रेस बंबई मे १६७४-७५ मे स्थापित किया गया। गुजराती धनिक भीमजी पारिख ने ईस्ट इंडिया कंपनी सूरत के प्रयास से मराठी में मुद्रण प्रारंभ करने के लिए इसे स्थापित किया था और इंगलैंड से इसे भेजते समय ईसाई धर्म के प्रचार में सहायता मिलने की भावना प्रधान थी।[४]

भारत मे प्रेस स्थापित करने का तीसरा प्रयास डेनिश मिशनरी बर्थालेम्यो जीगेनबल्ग ने किया। यह प्रेस प्रोटेस्टेंट ईसाई धर्म का प्रचार करने के लिए १७१२ में ट्राकूबर (मद्रास) मे स्थापित किया गया था।[५] इसी प्रकार श्रीरामपुर में ईसाई मिशनरियों ने मुद्रण की व्यवस्था की। बंबई मे मुद्रण की विस्तृत व्यवस्था अमेरिकी ईसाई मिशनरियों ने १८१६ मे की। बंगाल मे मुद्रण का विकास राजनीतिक कारणों से हुआ। अंग्रेजी शासकों ने शासित भारतीयों की भाषा सीखने के लिए बंगला भाषा का व्याकरण १७७८ मे हुगली (कलकत्ता) मे छपवाया।[६]

भारतीय भाषाओं में मुद्रण

इस प्रकार हम देखते है कि भारत मे मुद्रण-कला के अभ्युदय के पीछे विदेशियों द्वारा भारतीय जनता के समीप आने की उत्कट भावना ही मूल प्रेरणा थी फिर चाहे

१. प्रियोल्कर, पृ० २
२. वही, पृ०
३. वही, पृ० ३. ४, ५ व ६
४. वही, पृ० ३१
५. वही, पृ० ३१
६. वही, पृ० ५१, ५५, ८१

वे विदेशी ईसाई धर्म प्रचारक हों, चाहे अंग्रेज शासक। आरंभ में सभी प्रेसों में विदेशी भाषा के ही टाइप आये किंतु सभी का प्रयास भारत में भारतीय भाषाएं सीखकर उनकी लिपि के टाइप बनाने या बनवाने का रहा।

भारतीय भाषाओं में सब से पहले तमिल के टाइप बनाये गये। त्रिचूर के समीप जोन्नेस गोन्साल्वेज नामक स्पेनवासी ने १५७७ में मलाबरी टाइप तैयार किये जो आरंभ में तमिल पुस्तकों के भी काम आते थे। वास्तव में तमिल भाषा के टाइप बनाने का प्रथम प्रयत्न जीगेनबल्ग ने किया किंतु आकार मे बड़े होने के कारण ये टाइप काम में नहीं आ सके।[1]

देवनागरी लिपि में मुद्रण

प्रयोग के रूप में नागरी टाइप सर्वप्रथम यूरोप में बने। अस्थानासी किर्चेरी कृत 'चाइना इलस्ट्रेटा' १६७५ में प्रकाशित पहली ज्ञात पुस्तक है जिसमें नागरी लिपि छपी। इस पुस्तक के सातवें अध्याय (पृष्ठ १६२, १६३) में पांच प्लेटें हैं जिनमें पाणिनि का प्रथम सूत्र (अ०इ०उ०), बारहखडी के कुछ रूप और पीटग्नास्टर और आवेमारिया नाम से प्रसिद्ध बाइबिल की प्रार्थना है।[2] इसके अलावा रोम, एमस्टरडम, लीपजिग, बँक्रियानी आदि मे भी नागरी लिपि में छोटी-मोटी छपाई हुई।

१७७१ मे रोम से प्रकाशित गियोवानी क्रिस्टोफोरो अमापुजी और कैसियानस वैलिगती द्वारा संपादित 'एल्फाबेटम ब्राह्मणीकम सिउ इंदोस्तानम उनवर्सिटाटिस काशी' नामक पुस्तक खडी बोली की प्रथम व्याकरण या वर्णमाला पुस्तक है। इस पुस्तक में प्रथम बार नागरी के परिवर्तनीय टाइपों का प्रयोग प्रचुर परिमाण मे हुआ है। इसमें छपे नागरी के टाइप आकार में कुछ बड़े अवश्य है किंतु भारत में १८०२-१८०३ में बने नागरी टाइपों की तुलना मे आते है।[3]

भारतीय मुद्रण-कला का स्थायी आरभ कलकत्ता मे हुआ। भारत में बंगला और नागरी टाइप के जनक दो व्यक्ति थे—चार्ल्स विल्किस और पंचानन कर्मकार। विल्किस ही पहले अंग्रेज थे जिन्होंने बंगला का प्रथम व्याकरण १७७८ मे छापा और संस्कृत का अध्ययन ही नही किया बल्कि भागवत गीता हितोपदेश और शकुतला का अग्रेजी अनुवाद भी किया। इन्होंने सस्कृत व्याकरण १७७६ मे प्रकाशित किया किंतु १८०८ मे छापे उसके दूसरे संस्करण में देवनागरी लिपि के अक्षर प्रयोग किये गये। इसे छापने वाला प्रेस कलकत्ता के पास हुगली में था। इस व्याकरण में प्रयुक्त नागरी टाइप जितने सुदर टाइप भारत में उस समय तक नही बने थे।

चार्ल्स विल्किस ने १७६५ मे इस्पात के देवनागरी के अक्षर बनाये, उनसे मैट्रिक्स बनाये और फिर साचे। उन सांचों से टाइपों का एक फोंट अपने हाथ से ढाला। इस टाइप को प्रयोग करके सोलह पृष्ठों के प्रूफ भी तैयार कर लिये गये किंतु आग लग

१. कृष्णाचार्य, 'हिंदी के आदि मुद्रित ग्रंथ', पृ० ६
२. वही, पृ० ८
३. वही, पृ० १०, ११

जाने के कारण वे सारे टाइप फैल गये और खो गये अथवा बेकार हो गये। हर्टफोर्ड में ईस्ट इंडिया कालिज बनने पर संस्कृत व अन्य प्राच्य भाषाओं का पढ़ाया जाना प्रारंभ हुआ। उसके लिए संस्कृत व्याकरण छपाना जरूरी था और श्री विल्किस ने अपने मैट्रिक्सों से दोबारा टाइप ढाले। इस प्रकार चार्ल्स विल्किस ने देवनागरी के टाइप तो १७६५ में तैयार कर लिये थे किंतु उनका प्रयोग करके संस्कृत व्याकरण १८०८ में लंदन में छपा। इससे पूर्व ही विलियम कैरी ने मराठी का व्याकरण १८०५ में तथा संस्कृत व्याकरण १८०६ में प्रकाशित करा दिया जिसमें देवनागरी के टाइपों का प्रयोग किया गया था। इससे भी पूर्व श्रीरामपुर कालिज के छात्रों का शोध प्रबंध देवनागरी लिपि में छपा था। कलकत्ता के राष्ट्रीय पुस्तकालय में गिलक्राइस्ट की लिखी एक अन्य पुस्तक 'हिंदुस्तानी भाषा का व्याकरण' सुलभ है जो १७६६ में कलकत्ता के 'क्रोनिकल प्रेस' में छपी थी। संभवतः यह पुस्तक देवनागरी में छपी प्रथम पुस्तक है।

विल्किस के टाइप संबंधी विचारों और प्रारंभिक कार्य को पूर्णता देने का काम पंचानन कर्मकार ने किया। विलियम कैरी के प्रयास और प्रेरणा से पंचानन श्रीरामपुर मिशन में आ गये और इसके बाद भारत में नागरी टाइप निर्माण का क्रम चल पडा। आगे चलकर पंचानन के भतीजे मनोहर ने इस कला में इतनी दक्षता प्राप्त कर ली कि वह प्रायः सभी भारतीय भाषाओं में प्रयुक्त लिपियों के टाइप बनाने लगा। उसके द्वारा बनाये टाइप मिशन प्रेस में और बिक्री के रूप मे ४० वर्षों तक बाजार में छाये रहे। वह अंत तक लोहार जाति का हिंदू बना रहा और श्रीरामपुर १८६० तक पूर्वी देशों का टाइप-निर्माण केंद्र रहा।

इस प्रकार डाक्टर कैरी द्वारा बनवाये गये टाइप ही देवनागरी के प्रथम धातु टाइप थे जिनकी परंपरा आज भी विद्यमान है, भले ही सब से पहले भारत में मुद्रण गोवा या ट्रान्कूवर में हुआ हो किंतु मुद्रण के परिमाण और विविधता की दृष्टि से देखें तो श्रीरामपुर मिशन का मुद्रण कार्य ही वास्तव में ऐसा है जिसे हम भारत में मुद्रण का विधिवत श्रीगणेश मान सकते हैं।

संसार मे मुद्रण-कला का विकास कैसे-कैसे हुआ, इसका आरंभिक सर्वेक्षण कर लेने पर हम देखते हैं कि स्याही लगे एक उभरे मुद्रणीय धरातल पर कागज या किसी अन्य उपयुक्त वस्तु पर चित्र या लिखावट के छाप लेने का आविष्कार उतना महत्वपूर्ण नहीं था जितना कि अलग-अलग टाइपों के द्वारा छापने का आविष्कार था। परिवर्तनीय या चल-टाइप बना लिये जाने का परिणाम यह हुआ कि उन टाइपों से किसी भी आकार में कंपोज करके छपाई की जा सकती थी और उस छपाई के बाद उन टाइपों को फिर से विसर्जित करके किसी अन्य कार्य में भी लगाया जा सकता था।

टाइपों में छपाई करने की इस कला में पिछले ५०० वर्षों से बहुत विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है। यह अलग बात है कि टाइप से छपने वाले अक्षर की बनावट अर्थात् आकृति अनेक प्रकार की बनायी जाने लगी है। अर्थात् टाइपों की अनेक प्रकार की सीरीज प्रयोग में आने लगी हैं और सीधे टाइप से छापने के बजाय फ्लांग उठाकर प्लेट से रोटरी मशीन से तेजी के साथ छपाई होने लगी है।

मुद्रण के विविध प्रकार

मुद्रण एक पूर्ण प्रक्रिया है जिसमें कंपोज, प्रूफ संशोधन, पेज-मेकअप और मशीन से छपाई इत्यादि शामिल हैं। इसलिए मुद्रण की परिभाषा करना सरल नहीं है। मोटे तौर पर कहे तो कागज, कपड़े या ऐसी ही किसी अन्य उपयुक्त वस्तु (यथा टीन) पर प्रतिकृति अंकन और स्याही तथा दाब की सहायता से उस प्रतिकृति को कागज पर बड़ी संख्या में उतारे जा सकने का नाम मुद्रण है।

मुद्रण की अनेक प्रक्रियाएं हैं। इनमें से कुछ तो अभी परीक्षणात्मक दौर में ही है ? इन प्रक्रियाओं को हम मुख्य रूप से तीन वर्गों में विभाजित कर सकते हैं—

१. उभरे मुद्रणीय तल की छपाई अर्थात् लैटर प्रेस या टाइपोग्राफिक प्रणाली।
२. समतल मुद्रणीय तल की छपाई अर्थात् लिथोग्राफी या आफसैट छपाई।
३. दबे मुद्रणीय तल से छपाई अर्थात् ग्रेव्योर प्रिंटिंग, इंटेगलियो प्रिंटिंग अथवा डिप्रेस्ड प्रिंटिंग।

विभिन्न प्रकार की मुद्रण प्रक्रियाओं का यह वर्गीकरण मुद्रणीय तल की स्थिति के आधार पर किया गया है। अब हम उपर्युक्त तीनों वर्गों में आने वाली मुद्रण प्रणालियों का वर्णन करेंगे।

१. लैटर प्रेस या टाइप से मुद्रण की प्रणाली

भारत में यह प्रणाली आज भी सर्वाधिक प्रचलित है। इसमें टाइपों को कंपोज करके वांछित आकार का पेज बनाया जाता है और उसे मशीन पर छापा जाता है। टाइप अंग्रेजी का शब्द है जो ग्रीक शब्द 'टाइपोज' से निकला है। यह अक्षर धातु या लकडी के ऊपर आयताकार रूप में उल्टा खुदा होता है। टाइप मे खुदाई समूचे आकार की नही बल्कि ऊपर के थोड़े से भाग की ही होती है जिसे फेस कहते है और शेष भाग ठोस रहता है। इस टाइप फेस पर स्याही लगती है और मशीन की दाब से कागज पर उसकी प्रतिकृति सीधी छपती है।

टाइप प्रायः सीसा, सुरमा और रांगा, इन तीन धातुओं से मिली हुई धातु से ढाला जाता है जिसे 'टाइप एलाय' कहते है।

टाइप की मानक या स्टैंडर्ड ऊंचाई ९२/१०० इंच होती है। ब्रिटेन मे ·९१८ इंच होती है। यह टाइप अनेक प्वाइंटों और अनेक सीरीज के होते है। टाइप की प्वाइंट प्रणाली का विस्तार से वर्णन आगे किया जायगा। यहां टाइप के प्रत्येक भाग का वर्णन किया जाता है। (इन भागों के नाम अंग्रेजी में हैं और छापाखानों में यह नाम इतने प्रचलित हो चुके हैं कि उनका हिंदीकरण करने पर प्रेस में काम करने वालों के लिए उन्हें समझना भी कठिन होगा)।

टाइप के अंग

टाइप के दस अंग होते हैं—

१. काउंटर—कंपोज करने पर दो अक्षरों के मध्य रहने वाला स्थान।

२. **बाडी**—शोल्डर के नीचे तक का भाग।
३. **सेरिफ**—फेस का दाहिने-बायें निकला भाग।
४. **फेस**—टाइप के ऊपर का भाग जो छपता है।
५. **बिअर्ड**—वह भाग जो फेस और शोल्डर के मध्य तिरछा होता है।
६. **शोल्डर**—बिअर्ड के नीचे बाडी के ऊपर का भाग।
७. **पिन**—टाइप के बगल में बाडी पर बना निशान जिसमे बहुत ही बारीकी मे टाइप का नाम या बनाने वाले की मुहर उभरी होती है।
८. **निक**—प्रत्येक टाइप मे बनायी जाने वाली छोटी-सी गली (इससे कंपोजिटर को पता चल जाता है कि टाइप सीधा है या नहीं)।
९. **ग्रूव**—टाइप के नीचे का भाग जिसे ढलाई के बाद घिस कर साफ कर लिया जाता है।
१०. **फुट**—टाइप के नीचे का हिस्सा जिस पर टाइप खडा होता है।

प्वाइंट प्रणाली

फेस की बनावट की दृष्टि मे अनेक सीरीज के और नाप के हिसाब से अनेक प्वाइंटों के टाइप होते हैं। शुरू-शुरू मे विभिन्न देशों में अलग-अलग आकार के टाइप बनवाये गये, लेकिन संचार-साधनो मे द्रुत गति से विकास होने के कारण समस्त विश्व एक हो गया और विभिन्न देशों का साहित्य एक ही प्रकार के टाइप मे मुद्रित हो, इसके लिए यह आवश्यक हो गया कि विश्व भर के देश एक ही प्रकार की टाइप पद्धति अपनाये। प्वाइट प्रणाली एक जैसे मानक, आकार के टाइपों का निर्माण करने के लिए मार्गदर्शक पैमाना है। एक इंच में ७२ प्वाइंट होते हैं या दूसरे शब्दों मे कहें तो एक प्वाइंट इंच का बहत्तरवां भाग होता है। बारह प्वाइंट का पाइका प्वाइंट ·१६६०४४ इंच होता है। बारह प्वाइंट का एक 'एम' और छह प्वाइंट का एक 'एन' होता है।

इस प्वाइंट प्रणाली की सहायता से विभिन्न आकार के टाइप बनाये जाते है। अंग्रेजी मे चार प्वाइट से लेकर ७२ प्वाइंट तक और हिंदी मे आठ प्वाइंट से लेकर ७२ प्वाइंट तक के टाइप मिलते हैं। ७२ प्वाइंट से अधिक के भी टाइप मिलते है किंतु वजन में अधिक हो जाने के कारण इन टाइपों को लकडी का बनाया जाता है। लकड़ी के टाइप ½ इंच से लेकर १२½ इंच तक के मिलते है। विशेष कार्य के लिए चार फुट तक ऊंचे टाइप बनाये जाते हैं। इस प्वाइंट प्रणाली का सब से बड़ा लाभ यह रहता है कि टाइप चाहे जिस फाउंड्री का खरीदा जाय, उसे कंपोज करने में कोई दिक्कत नही पड़ती।

फेस की बनावट के हिसाब से अनेक प्रकार के टाइप टाइप-फाउंड्रियों ने बनाये हैं। देवनागरी में आम तौर पर बंबइया या कलकतिया टाइप ही चला करते थे किंतु पिछले १०-१५ वर्षों में टाइप के फेसों में अनेक प्रकार की विविधता आयी है। आज कम से कम एक दर्जन प्रकार के फेस हिंदी में सुलभ हैं। टाइपों के फेस तथा प्वाइंटों के आधार पर किसी भी प्रेस में बहुत अधिक टाइप रखना होता है।

एक नाप के या एक बाडी के टाइप में जितने अक्षर होते हैं, उन्हें सम्मिलित

रूप मे फोंट कहते हैं। एक फोंट में कुल अक्षर—पूर्ण एवं कर्ण, संयुक्त अक्षर, एक्सेंट, अंकों के टाइप, आधे टाइप, लीडर, ब्रेस, निशान, पूर्ण विराम, कौमा, क्वाड तथा स्पेस आदि सभी होते है। हिंदी के पूरे फोंट में ४५० टाइप आदि होते हैं।

कंपोज

टाइपों को एक स्टिक मे मिलाकर लाइन बनाना और इस प्रकार की लाइनों से पृष्ठ तैयार करना कंपोज कहलाता है। कंपोज दो प्रकार से किया जाता है—हाथ से और मशीन से।

हाथ से कंपोज : कंपोज हाथ से करने के लिए टाइप को लकड़ी के केसों में भरा जाता है। केस के प्रत्येक खाने में एक ही अक्षर के टाइप भरे होते हैं और कपोज करने वाला व्यक्ति पीतल की स्टिक मे अक्षरों को जोड़ता है। हाथ से कंपोज करने के लिए छपाई के बाद मैटर को पुनः विसर्जित करना पडता है यानी टाइप फिर अपने निर्धारित खानों मे डालने पडते है। कुछ समय के उपरात जब टाइप घिसकर पुराना हो जाता है तो टाइप से केस फिर से भरने पडते है।

मशीन से कंपोज : जब टाइप वाछित क्रम से इकट्ठे करने के लिए मशीन का प्रयोग किया जाय तो उसे मशीन से कंपोज करना कहते हैं। कंपोज करने वाली मशीन दो प्रकार की होती है—(क) मोनो टाइप, (ख) लाइनो टाइप।

मोनो टाइप मे दो मशीनें होती है—एक की-बोर्ड कहलाता है और दूसरा कास्टर। की-बोर्ड बहुत कुछ टाइपराइटर के आकार का होता है। उसके बटन पर हाथ मारने से कागज की रील मे दो महीन सुराख हो जाते है जो प्रत्येक अक्षर के लिए पृथक-पृथक नाप के होते है। कागज का गोल लिपटा हुआ यह बंडल (स्पूल) ढलाई वाली मशीन मे, जिसे कास्टर कहते है, बढ़ाया जाता है और उन छेदो के नाप के टाइप ढलते चले जाते है। इसमें एक-एक अक्षर अलग-अलग ढलता है और प्रूफ संशोधन में निकली त्रुटिया दूर की जा सकती हैं। इसका कागज का बंडल भविष्य में वही मैटर दोबारा ढालने के काम आ सकता है। इस पद्धति का यह भी लाभ है कि इसके मैटर को डिस्ट्रीब्यूट करके हाथ से भी कंपोज करना संभव है।

लाइनो टाइप : मशीन में पूरी की पूरी एक लाइन कंपोज होकर ढलती है। इसके लिए 'पंचिग' और 'कास्टिग' की दो पृथक-पृथक क्रियाए नहीं करनी पड़ती। इस प्रणाली से कंपोज करने पर पेज मेकअप में शीघ्रता हो जाती है किंतु दूसरी ओर यह असुविधा भी होती है कि प्रत्येक 'करेक्शन' के लिए पूरी की पूरी लाइन पुनः कंपोज करनी पडती है। लाइनो टाइप में पूरी लाइन बनने के कारण इसके मैटर को डिस्ट्रीब्यूट करने अथवा हाथ से कंपोज करने के लिए दोबारा प्रयोग नहीं किया जा सकता।

प्रूफ-संशोधन : कंपोजिग के उपरात यह देखना कि जो कंपोज किया गया है, वह शुद्ध है या नही, यदि नही तो कहा क्या अशुद्धि रह गयी है, क्या शुद्धि आवश्यक है। इसे प्रूफ-संशोधन कहते हैं। सामान्यतः कंपोज की गयी सामग्री—टाइप—पर स्याही लगाकर एक सादे कागज पर प्रूफ उठाया जाता है और मूल पांडुलिपि से मिला कर यह देखा जाता है कि कंपोज कहां तक शुद्ध हुआ है। यदि कंपोज करने में किसी

प्रकार की त्रुटि रह गयी है तो प्रूफ-संशोधक निर्धारित चिह्नों के द्वारा गलतियों का संकेत कागज के दोनों ओर करता जाता है। प्रूफ पढ़ने के चिह्न भारतीय मानक संस्था द्वारा मानकीकृत कर दिये गये हैं। प्रूफ-संशोधन चिह्नों को पृष्ठ ५६१ की तालिका मे दर्शाया गया है।

प्रूफ पढने के लिए आवश्यक है कि प्रूफ साफ उठा हुआ हो। इसके लिए प्रूफ उठाने की एक अच्छी मशीन भी होनी आवश्यक है। प्रूफ पढ़ने के लिए एक प्रूफ रीडर और एक कापी होल्डर रखा जाता है। कापी होल्डर पांडुलिपि को बोल कर पढ़ता जाता है। प्रूफ रीडर उसे सुनकर प्रूफ का मिलान करता जाता है और जहा अशुद्धि होती है, वहां चिह्न लगाकर सुधार करता जाता है। (यहां ध्यान देने की बात यह है कि पांडुलिपि में अशुद्धि-संशोधन हस्तलिखित पाठ में ही किया जाता है जबकि प्रूफ-संशोधन में अशुद्धि पर चिह्न लगाकर हाशिये में खाली जगह पर शुद्धि की जाती है) यदि कापी होल्डर सुलभ हो तो प्रूफ रीडर को स्वयं ऊंचा बोलकर नही पढना चाहिए। इससे गलतियों की संभावना अधिक रहती है।

प्रूफ रीडर के गुण तथा कर्तव्य

प्रूफ रीडर का कार्य अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। प्रूफ रीडर ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जो संबंधित भाषा का जानकार हो और प्रूफ रीडिंग की जिम्मेदारी समझता हो। (सभी लेखक अपनी रचना का अंतिम प्रूफ स्वयं ही पढ़ना पसंद करते हैं)। प्रूफ रीडर को पाडुलिपि में कोई परिवर्तन नही करना चाहिए। यदि कही उसे गलती दिखायी दे तो उसका संकेत लेखक को कर देना चाहिए। यह संकेत संबंधित स्थल पर चिह्न लगाकर हाशिये मे तीन प्रश्नचिह्न लगाकर किया जाता है।

अच्छे प्रूफ रीडर में तीन बातें होनी चाहिए

१. प्रूफ को सही पढना, २. प्रूफ को तेजी से पढ़ना और ३. प्रूफ को सफाई से पढ़ना।

अच्छे प्रूफ रीडर के लिए भाषा-ज्ञान के अतिरिक्त मुद्रण संबंधी दो-चार अच्छी पुस्तकों का भी अध्ययन आवश्यक है। उसे कंपोजिंग, छपाई तथा व्याकरण का भी अच्छा खासा ज्ञान होना चाहिए। प्रूफ रीडर का सामान्य ज्ञान भी पर्याप्त रहना चाहिए अन्यथा वह विविध विषयो की पुस्तकों आदि के प्रूफ पढने में मूल पाठ से मिलान तो अच्छा कर लेगा, किंतु कुशल प्रूफ-संशोधक की भांति लेखक की त्रुटियों को नहीं पकड़ पायगा।

छपाई की मशीनें

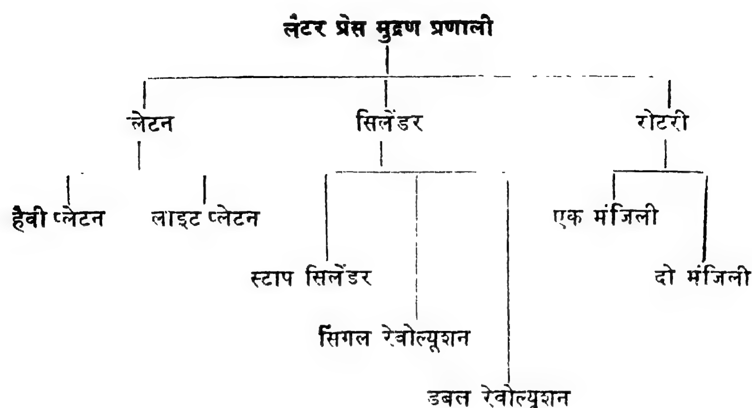
लैटर प्रेस मुद्रण प्रणाली में मोटे तौर पर निम्न तीन प्रकार की मशीनें प्रयोग की जाती है—

१. प्लेटन मशीनें
२. सिलेंडर मशीनें
३. रोटरी मशीनें

संशोधन-चिन्ह और उनके अर्थ

_⌐ L	पैरा
∂	अक्षर निकाला जाय
∂ (नीचे चाप)	अक्षर निकाल कर मिला दें
#	स्पेस (दूरी) देना
⁀ ‿	स्पेस कम करना
w.f.	गलत टाइप
X	टाइप उठा नहीं
⑥	टाइप को सीधा करें
⊔⊓	अक्षर अथवा शब्द स्थिति बदलना
||	पंक्तियों का मेल बिठाना
═	पंक्ति सीध मे की जाय
I/-	पूर्ण विराम
(,)	कामा, अर्ध विराम
(:)	विसर्ग अथवा कोलन
—	पंक्तियों के बीच की जगह कम की जाय
(;)	सेमी कोलन
-/	डैश
?/	प्रश्न चिन्ह
‘/ ’/	अवतरण चिन्ह
⟵⟶	पैरा अथवा पंक्ति मिलाना
⊥	लेड या स्पेस दबाना
(???)	सम्पादक से पूछ कर ठीक करना
(कापी देखो)	पांडुलिपि से मिलान करो

इन मशीनों में निर्माता-कंपनियों, आकारों आदि की दृष्टि से अनेक भेद होते हैं। यहां विस्तृत विवरण में न जाकर मोटे तौर पर मशीनों का विवरण नीचे एक चार्ट की सहायता से समझाने का प्रयास किया गया है—



प्लेटन मशीनें

इन मशीनों में फर्मा कसा हुआ एक जगह खड़ा रहता है और प्लेटन उस फर्मे को छूकर एक बार ही में पूरे फर्मे को छाप लेता है। यहां छापा उठाने वाला तल समतल (प्लेन) होता है। ये मशीनें बहुत बड़े आकार के फार्म छापने के लिए उपयुक्त नहीं होतीं, क्योंकि छापने के लिए आवश्यक बहुत अधिक दाब इनमें संभव नहीं होती। इस वर्ग की बड़ी से बड़ी मशीनें १८ × २३ आकार की ही छपाई कर पाती है। ये मशीनें छोटे-छोटे हैंडबिल, पत्र शीर्ष, परिचय-कार्ड, मंगल कामना कार्ड या ऐसी ही छोटी चीजें छापने के लिए अधिक उपयुक्त रहती है।

छोटे आकारों की मशीनों को लाइट प्लेटन और बड़े आकार की मशीनों को हैवी प्लेटन कहते है। इन मशीनों पर एक घंटे में १००० से लेकर २५०० शीट तक छप सकते है। इन्हें पैर तथा बिजली दोनों ही से चलाया जाता है। इन्हे ट्रेडिल मशीनें भी कहते है।

सिलेंडर मशीनें

इस प्रकार की मशीनों में मुद्रणी तल या फर्मा सीधा मशीन की समतल सतह पर पड़ा होता है और ऊपर से सिलेंडर या बेलन पर कागज लगा के छापा जाता है। इसी के कारण इन्हें सिलेंडर मशीन कहते हैं। ये मशीनें बहुत बड़ी-बड़ी होती हैं और बड़ी से बड़ी मशीन ३० × ४० आकार का कागज तक छाप सकती है। ये मशीनें अखबार, पत्रिकाएं, पुस्तकें, रंगीन चित्र आदि छापने के लिए सर्वथा उपयोगी होती हैं। इनसे एक घंटे में बारह हजार शीट तक छापे जा सकते हैं। ये अनेक प्रकार की मिलती हैं।

एक सिलेंडर वाली, कागज के एक तरफ छापने वाली मशीन को स्टाप सिलेंडर मशीन कहते हैं। इन पर सिलेंडर एक बार घूमकर रुक जाता है तब दूसरी बार कागज को लेता है।

सिंगल रेवोल्यूशन सिलेंडर मशीन में सिलेंडर एक कागज के छपने में एक मर्तबा और टू-रेवोल्यूशन मशीन में एक कागज के छपने में सिलेंडर दो बार घूमता है। जिस समय कागज छपता है, उस समय सिलेंडर नीचे बैठकर और बाकी ऊपर उठकर घूमता है। मशीन के चलाने पर सिलेंडर घूमना शुरू होता है और रोकने पर रुकता है। इस प्रकार की मशीनों का संसार में बहुत अधिक प्रयोग होता है। अब इनमें अनेक आटोमैटिक किस्म की मशीनें भी आने लगी हैं। आटोमैटिक मशीनें अपने आप कागज लेती हैं और छाप कर दूसरी तरफ अपने आप जमा करतो जाती हैं।

रोटरी मशीनें

औद्योगिक क्रांति तथा बीसवीं सदी की तेज रफ्तार में सिलेंडर मशीनें भी मंद सिद्ध हुईं। सादे तथा रंगीन अखबारों की पाठक-संख्या में तेजी से वृद्धि होने के कारण ऐसी मुद्रण-प्रणाली निकालने की आवश्यकता हुई जिससे लाखों की संख्या में अखबार छप सकें। फलत: रोटरी मशीनों का आविष्कार हुआ। रोटरी मशीन सिलेंडर मशीन का ही उन्नत रूप है। अब ३० से ६४ पृष्ठों तक के रंगीन चित्रदार समाचार-पत्र प्रति घंटा पचास हजार की रफ्तार से छापे जाने लगे है।

इन मशीनों में मुद्रणीय (टाइप वाला) तल और कागज वाला तल दोनों ही बेलनाकार (सिलेंड्रीकल) होते हैं। छपाई के समय मुद्रणीय तल वाला सिलेंडर और कागज वाला सिलेंडर दोनों विपरीत दिशाओं में घूमते हैं जिससे तेजी के साथ छपाई हो सकती है। इन मशीनों के लिए मुद्रणीय तल को समतल से बेलनाकार रूप में बदलना पड़ता है। इस प्रक्रिया को प्लानिंग कहते है। इसके लिए मैट (मोटा कार्ड) प्रयोग किया जाता है और उसे टाइप से कंपोज किये हुए या ब्लाक-युक्त मुद्रणीय तल पर भारी दबाव से दाबा जाता है और उसे गोलाकार मोल्ड मशीन की सहायता से बेलनाकार प्लेट में परिणत कर दिया जाता है।

इन मशीनों मे कागज काट कर नहीं लगाया जाता बल्कि गोल-गोल थानों के रूप में कागज के पूरे-पूरे के थान ही बढ़ाये जाते हैं। इनमें पूरा अखबार, छपकर मुड़कर और कट कर दूसरी तरफ से निकल जाता है।

ये रोटरी सामान्यत: नहीं लगायी जातीं, इसलिए बाजार में सहज सुलभ नहीं होती। आदेश देने पर बनायी जाती है। ये एक अखबार छापने के लिए एक मंजिली और दो अखबार छापने के लिए दो मंजिली होती हैं। इनमें रंगीन छपाई भी साथ में हो सकती है।

२. फोटो-लियो और आफसेट मुद्रण प्रणाली

लैटर प्रेस के बाद लिथोग्राफी मुद्रण की दूसरी पद्धति है। यह टाइप की छपाई (लैटर प्रेस) से सर्वथा भिन्न होती है। पत्थर का प्रयोग करके छपाई करने का परीक्षण

करते हुए, एलोइस सेनिफेल्डर नामक एक व्यक्ति ने १७६६ में इस प्रणाली का आविष्कार किया। इस प्रणाली में भी आज बहुत सुधार हो गया है और आज इसका नाम अप्रत्यक्ष आफसेट लिथोग्राफी हो गया है।

लिथोग्राफी में एक खास पत्थर प्रयोग किया जाता है जिसकी विशेषता यह होती है कि अगर उसे तर कर दिया जाय तो लिथोग्राफी वाली स्याही (जिसमें चिकनाई होती है) उस पत्थर पर गीली जगह नहीं जमती।

लिथो की छपाई की एक साधारण पद्धति यह है कि एक विशेष कागज पर एक विशेष स्याही से लिखा जाता है। लिखने के बाद वह कागज एक साफ लिथो पत्थर पर उलट कर रख दिया जाता है और प्रेस में दबाकर खिसकाया जाता है। पत्थर पर लिखाई उतर आने के बाद उस पर हल्के तेजाब का मसाला लगा दिया जाता है। इस से पत्थर का स्याही लगा भाग छोड़कर शेष भाग नीचा हो जाता है यानी उसे तेजाब काट देता है। उस स्याही पर तेजाब का असर नहीं होता। जब तेजाब अपना काम कर चुकता है तो पत्थर पर गोंद का पानी फेरा जाता है। ताकि यह स्याही वहीं रहे; फैले नहीं और पत्थर के बारीक छेद भर जायं।

लिथोग्राफी की छपाई साधारण लैटर प्रेस की छपाई से भिन्न होती है। लिथो मशीनों में दो किस्म के रोलर होते हैं—एक तो स्याही देते है और दूसरे पत्थर को गीला करते हैं। इसके रोलर सरेस के नही, चमड़े या रबर के होते हैं और नम करने वाले रोलर पर फलालेन चढ़ी होती है। अब लिथोग्राफी में पत्थर की जगह एल्यूमीनियम और जस्ते की चद्दरों का प्रयोग होता है।

आफसेट लिथोग्राफी का ही समुन्नत रूप है। दोनों में अंतर यही है कि लिथोग्राफी मे चद्दर या पत्थर से सीधी कागज पर छपाई होती है जब कि आफसेट मे एल्यूमीनियम की चद्दर पर से अक्षर रबर के रोलर पर उतर आते है और रबर के रोलर मे कागज पर छपाई होती है। जिनके पास जरा भी सुभीता है, वे लिथो की अपेक्षा आफसेट मशीनें लगाना पसंद करते हैं। आफसेट मुद्रण, यदि बड़ी संख्या में छपाई करनी पड़े तो सस्ती पड़ती है। इसमें दो रंग की छपाई साफ-साफ हो सकती है और ब्लाक बनाने का झंझट नहीं पड़ता है।

फोटो-लिथोग्राफी मे फोटोग्राफी और लिथोग्राफी दोनों ही प्रणालियों को संयुक्त रूप से काम में लाया जाता है। अब तो आफसेट प्रणाली ही एक तरह से फोटो-लिथोग्राफी है। इसके लिए रोटरी मशीनों का प्रयोग करना पड़ता है। इस प्रणाली की विशेषता यही है कि इसमें मुद्रण-तल समतल होता है। लैटर प्रेस की भांति उठा हुआ या ग्रेव्योर की भांति नीचे बैठा हुआ नही होता। इसके लिए फर्मों में 'मेक रेडी' की जरूरत नहीं होती।

३. फोटो ग्रेव्योर मुद्रण-प्रणाली

ग्रेव्योर मुद्रण-प्रणाली उक्त दोनों प्रणालियों से भिन्न होती है। इसमें मुद्रण-तल नीचा होता है यानी इसकी प्लेट हाफटोन के विपरीत गट्ठेदार बनायी जाती है। हाफटोन में छपने वाला हिस्सा (मुद्रण-तल) उभरा हुआ और बुंदकियों के रूप में होता है,

मगर फोटो ग्रेव्योर की प्लेट में मुद्रण-तल नीचा होता है। हाफटोन ब्लाक में बुंदकियों पर स्याही लगती है और फोटो ग्रेव्योर में निचले भाग में स्याही भरती है। कागज जब छपता है तो उस पर निचले भागों में भरी स्याही ही लगती है।

इसके छापने की एक खास मशीन होती है। इसकी स्याही खास और पतली होती है। इसमें दो सिलेंडर होते हैं। नीचे के सिलेंडर पर प्लेट कसी जाती है और ऊपर के सिलेंडर पर रबर की पैकिंग चढ़ी रहती है। जब मशीन घूमती है, स्याहीदान का रोलर प्लेट के ऊपर दबाकर उसके गड्ढों में स्याही भर देता है। जो स्याही गड्ढों के अलावा ऊपर चुपड़ जाती है, उसको एक छुरी जिसको डाक्टर ब्लेड कहते है, सिलेंडर को घूमते समय पोंछ डालती है और यह पुंछी हुई स्याही फिर स्याहीदान में लौटकर आ जाती है। कागज इस स्याही भरी गट्ठेदार प्लेट और दूसरे सिलेंडर के बीच में से छप कर निकलता है। इस पद्धति में रोटरी का प्रयोग होता है। आधुनिक ग्रेव्योर प्रणाली को फोटो ग्रेव्योर कहते हैं क्योंकि इसमें फोटोग्राफी तथा इंटेग्लियो प्रणाली (दोनों का) मिश्रण होता है।

कागज

छपाई कागज पर स्याही से होती है, इसलिए पत्रिकाओं के मुद्रण में इन दोनों का भी महत्व है। इन दोनों में भी कागज का अधिक महत्व है क्योंकि कागज छपाई प्रणाली के अनुसार रखना होता है और कागज के अनुरूप ही ब्लाकों की स्क्रीन तथा स्याही रखनी होती है। उदाहरण के लिए यदि ब्लाक को सामान्य सफेद कागज पर छापना हो तो उसकी स्क्रीन ६० से ८० तक रखनी होगी। यदि छपाई चिकने आर्ट पेपर पर होनी हो तो कागज की उत्कृष्टता के हिसाब से स्क्रीन १००-१२० या अधिक की रखनी होती है। आफसेट या फोटो ग्रेव्योर प्रणाली से छपाई हरेक कागज पर नहीं हो सकती, उसके लिए विशेष कागज की आवश्यकता होती है।

मुद्रण-कला के आविष्कार के मूल में कागज का उपयोग सर्वप्रथम आता है। यह सुनिश्चित तथा सर्वमान्य तथ्य है कि चीन ने पूर्ण विकसित कला के रूप में कागज-निर्माण कला बाहर भेजी। जब संसार में किसी को भी कागज के प्रयोग का ज्ञान नहीं था, उस समय चीन में अनेक प्रकार के कागजों का निर्माण होता था। कागज का आविष्कार १०५ ई० के आसपास हुआ माना जाता है। कागज बनाने की दिशा में प्रथम प्रयास २५६ ई० पू० के आसपास हुआ और कागज का निर्माण १०५ ई० में हुआ। चीनी बंदियों ने इस कला का ज्ञान समरकंद में अपने विजेता अरबों को आठवीं सदी में दिया और मूर प्रजाजनों ने १२-१३वीं सदी में अपने स्पेनिश विजेताओं को इसका ज्ञान दिया। तब से अब तक कागज के विकास की कहानी मानव-ज्ञान के विकास की कहानी है।

संसार में आज जितना कागज बनता है, उसका सर्वाधिक भाग छपाई में प्रयुक्त होता है। कागज किस चीज का बना है, उसमें स्याही को पार जाने से रोकने की कितनी क्षमता है, कागज कितना चिकना या खुरदरा है आदि दृष्टियों से कागज की अनेक किस्में हैं। इन किस्मों के दाम भी अलग-अलग हैं।

कागज हाथ और मशीन दोनों से बनता है। इसे बनाने में चार प्रकार का सामान प्रयोग होता है—(१) पुराने चिथड़े व कपड़े, (२) घास, (३) बांस, तथा (४) लकड़ी। इन सब चीजों को बारीक काट कर साफ करके रासायनिक पदार्थ मिला कर लुग्दी बनायी जाती है और साइजिंग सामग्री डाल कर कागज बनाया जाता है। प्राचीन काल में कागज मुख्य रूप से सूती चिथड़ों से ही बनता था और सर्वाधिक मजबूत रहता था। आज भी हाथ से बना कागज चिथड़ों एवं रद्दी कागज से बनता है।

यों तो कागज की अनेक किस्में हैं, किंतु कुछ किस्मों के नाम ही यहां गिनाये जाते हैं—मशीन फिनिश, मिल फिनिश, एंटीक शेड, फेदरवेट, एंटीक वोव, आइवरी फिनिश, इमीटेशन आर्ट, आर्ट पेपर, न्यूजप्रिंट, मेकेनिकल ग्लेज्ड, मेकेनिकल एंटीक, क्राफ्ट, रैपिंग, कवर, टिश्यू, ग्रीजप्रूफ, बैंक बोंड, वाइवुल, कार्ट्रिज, लेजर, मनीला, आफसेट, पार्चमेंट, सेफ्टी पेपर, आइवरी बोर्ड, मनीला बोर्ड, तथा मेनीफोल्ड।

इन किस्मों के कागजों में भी न्यूजप्रिंट, सफेद छपाई का कागज, बांड पेपर, मेपलिथो, सुपर कैलेंडर, आर्ट पेपर तथा आर्ट कार्ड का प्रयोग लैटर प्रेस के लिए किया जाता है। आफसेट छपाई विशिष्ट कागज पर ही हो पाती है। फोटो ग्रेव्योर छपाई सामान्यतः न्यूजप्रिंट पर की जाती है।

कागज अनेक आकारों में मिलता है और इन आकारों में भी हल्का तथा भारी कागज होता है। कागज का भाव प्रायः वजन के हिसाब से होता है, अतः कम खर्च वाला सस्ता यानी हल्का कागज होता है।

कागज के आकार नीचे दिये जाते हैं—

८ × १३; ८ × १३½; १० × १५; १३ × १५; १३½ × १६; १३.५ × १७; १५ × २०; १५ × २५; १५ × २६; १६.५ × २१; १६.५ × २६.५; १७ × २१; १७ × २२; १७ × २७; १७.५ × २२.५; १८ × २२; १८ × २३; २० × २५; २० × २६; २० × ३०; २०.५ × ३०.५; २२ × २८; २२ × २९; २२ × ३०; २२ × ३५; २२ × ३६, २२.५ × २८.५; २२.५ × ३५; २३ × ३६; २४ × ३६; २५ × ३०; २५.५ × २७.५; २५.५ × ३०.५; २६ × ३२; २६ × ४०; २६.५ × ३८; २७ × ३४; २७ × २०; २८ × ३४; २८.५ × ४३.५; २९ × ४४; ३० × ४० ३१ × ४१; ३६ × ४६।

इन आकारों के कागजों में से सब से अधिक प्रचलित आकारों के कागज ये हैं—

१७ × २७	२६ × ४०	३० × ४०
१८ × २२	१८ × २३	२० × २५
२० × २६	२२ × २८	२३ × ३६

इन्हीं आकारों के कागज बाजार में अक्सर मिलते है। अन्य आकारों के कागज प्रायः बाजार में कम ही मिलते हैं। यदि मिलते हैं तो कागजी किसी अन्य आकार के कागज में से काट कर निकाल देता है।

भावी विकास-दिशा

पुस्तक या पत्र-पत्रिका की छपाई का उद्देश्य अक्षरों के रूप में ध्वनि-चिह्नों को कागज सरीखी वस्तु पर अंकित करना है। यह देखना मुद्रक का काम है कि वह इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए क्या प्रक्रिया अपनाता है। पाठक तो केवल कागज पर मुद्रित अक्षरों को प्राप्त करके संतुष्ट हो जाते हैं। अगर पाठ्य-सामग्री को कागज पर अंकित करने की कोई ऐसी विधि निकल आय जिसमे धातु के टाइपों का प्रयोग आवश्यक न हो, तो पाठक को इससे कोई अंतर नहीं पडता। मुद्रक अवश्य ऐसा करना चाहेंगे। अब तक की सभी मुद्रण-प्रणालियों में टाइप से कंपोज करना, पेज बनाना आवश्यक होता है, अंतर केवल उसे मुद्रित करने की विधियों का ही होता है। यदि बिना टाइप प्रयोग किये मुद्रण संभव हो तो मुद्रक उसे अपनाना चाहेगा।

आज मुद्रण-जगत में प्रवृत्ति यह है कि धातु के टाइपों का प्रयोग न करके फोटो-मेकेनिकल पद्धति प्रयोग की जा सके और, मुद्रण-कार्य के सभी क्षेत्रों में हाथ से काम करने की अपेक्षा बिजली या इलैक्ट्रोनिक नियंत्रण संभव हो। इस दृष्टि से एक मुख्य आविष्कार है 'फिल्म सैटिंग'। इसमें धातु के टाइप प्रयोग किये बिना फिल्म पर अक्षर कंपोज हो सकते हैं।

आज इस पद्धति की कार्य-प्रणाली दो प्रकार की है। एक प्रणाली में मोनोफोटो और इंटरटाइप सेटर आते हैं जिसमें मशीन से कंपोजिंग तो होता है, लेकिन धातु से टाइप या लाइन डालने के स्थान पर कैमरे का प्रयोग है। दूसरी प्रणाली लाइनोफिल्म तथा फोटोन लूमीटाइप है जो परंपरागत कंपोजिंग प्रणाली से सर्वथा भिन्न है और जिसके लिए इलैक्ट्रोनिक यंत्रादि प्रयोग किये जाते हैं।

पहले तो यह सोचा गया कि फिल्म सैटिंग से लियोग्राफी और ग्रेव्योर छापा-खानों को ही सर्वाधिक लाभ होगा क्योंकि इन दोनों प्रणालियों वाले मुद्रणालयों को पुराने ढंग से ही मैटर कंपोज करना होगा और फिर फोटोग्राफ की सहायता से जस्ते की प्लेट या तांबे के सिलेंडर पर ऊपर वर्णित पद्धति से अंकित करना होगा। इसका अर्थ होगा कि या तो मुद्रकों को सारा कंपोजिंग विभाग रखना होगा और कुछ प्रूफ निकालने होंगे अथवा मैटर की सैटिंग अन्यत्र करानी होगी। फिर फिल्म सैटिंग पद्धति से या तो निगेटिव या पाजिटिव तैयार किया जा सकता है।

लेकिन फिल्म सैटिंग पद्धति से लैटर प्रेस के मुद्रकों को भी लाभ होगा। पाउडर रहित इंचिग मशीनों के आविष्कार के कारण यह सभव हो गया है कि मूल फिल्म सैटों से धातु की पतली प्लेटों की ऐसे इंचिग की जा सकती है कि मैटर का मुद्रणीय तल अन्य भाग मे ऊपर उठ जाय। इन प्लेटों को मोड़ कर सिलेंडर पर चढ़ाया जा सकता है और उनसे तेजी के साथ छपाई हो सकनी है। अगर अर्ध-गोलाकार अवस्था में इन प्लेटों को करके इंचिग की जाय तो फ्लांग उठाकर स्टीरियो बनाने की कष्ट-साध्य प्रक्रिया समाप्त की जा सकती है। लिथोग्राफी पद्धति का एक लाभ तो यह है कि वह लैटर प्रेस की अपेक्षा तेजी से छपाई कर सकते हैं। लेकिन फिल्म सैटिंग पद्धति से हल्की प्लेटें बनाना शुरू होने पर लैटर प्रेस लिथोग्राफी आदि की प्रतिस्पर्धा कर सकेंगे। फिल्म

सैटिंग पद्धति का एक लाभ तो यह होगा कि अब पुस्तकों आदि के टाइप-युक्त पृष्ठ संभालने की आवश्यकता न होगी बल्कि फिल्में रखना पर्याप्त होगा।

कुछ अन्य आविष्कार

मुद्रण के क्षेत्र में एक अन्य प्रगति-चरण है टाइप की आवश्यकता ही समाप्त करना। एक्सरोग्राफी नामक पद्धति के द्वारा मुद्रणीय सैटर की प्रतिकृति बिना दाब के कागज पर उतारी जा सकेगी। यह पद्धति अभी अमेरिका में विकसित की गयी है और केवल दफ्तरों के महत्त्वपूर्ण कागज-पत्रों तथा दुर्लभ पुस्तकों को पुनः मुद्रित करने के ही काम में लायी जाती है। व्यापारिक पैमाने पर अभी इसे प्रयोग किये जाने में बहुत समय लगेगा। इसके अलावा अन्य देशों में भी अनेक पद्धतियों के आविष्कार के प्रयास किये जा रहे हैं।

यही नहीं, प्रेसों में विभिन्न कार्य-प्रक्रियाओं में इलैक्ट्रोनिक्स का प्रयोग किया जा रहा है। इसको ब्लाक या प्लेट बनाने की पद्धति तथा फिल्म सैटिंग में प्रयोग किया जा रहा है। लेकिन इलैक्ट्रोनिक्स तो उन सभी कार्यों को करने में सक्षम है, जहां मानवीय श्रम की आवश्यकता पड़ती है। इसलिए मशीनों पर अनेक प्रकार की चैकिंग यथा बहुरंगी छपाई में रंग ठीक-ठीक छप रहे हैं या नहीं, इसके लिए रजिस्ट्रेशन कार्य में, अखबार में अंदर रंगीन पृष्ठ इंसेट करने, स्याही का गाढ़ापन और कागज पर टिकाऊपन, स्लिट काटने या गाइड नियंत्रण के लिए इलैक्ट्रोनिक्स का प्रयोग किया जाता है। इसके अलावा यह रंगीन ब्लाक बनाने के काम मे सहायता करता है।

इन सब प्रक्रियाओं के आविष्कार का यह अर्थ नही कि ये पद्धतियां बड़े पैमाने पर प्रयोग होने लगेंगी और मौजूदा मुद्रण-पद्धतियां बेकार हो जायंगी। भारत में अभी तो लैटर प्रेस का युग है। बहुत थोडी पत्र-पत्रिकाएं लिथोग्राफी या फोटो ग्रेव्योर का प्रयोग करती हैं। किंतु यह निश्चित है कि एक युग आयेगा जब फोटोग्राफिक और रासायनिक पद्धतियां मुद्रण के क्षेत्र मे अपना विशिष्ट स्थान बना लेंगी। मुद्रण के क्षेत्र में चाहे जो परिवर्तन आये, आविष्कार हों, पत्रकारो को तो अपनी लेखनी का प्रयोग करते हुए हाथ से लिखना ही होगा।

हिंदी मुद्रण की समस्याएं

मुद्रण की दृष्टि से हिंदी के दैनिक पत्रों की प्रमुख समस्या यह रही है कि हिंदी का टाइप प्रायः १२ पाइंट का होता है जिससे अंग्रेजी पत्रों की तुलना मे उतने ही स्थान में कम सामग्री आ पाती है। अंग्रेजी के दैनिक पत्रों का टाइप प्रायः छह पाइंट या आठ पाइंट का होता है। अंग्रेजी के पत्रों मे पृष्ठ संख्या भी अधिक होती है अतः उनमें समाचारों को सविस्तर दे पाना तथा अन्य सामग्री दे पाना संभव होता है। सामान्यतः हिंदी के पत्रों की पृष्ठ संख्या भी अंग्रेजी के पत्रों की तुलना में कम होती है अतः हिंदी दैनिकों के समक्ष समाचारों को संक्षिप्त करके देने के अतिरिक्त कोई और चारा नहीं होता।

पृष्ठ संख्या बढ़ाना उसके अन्य आर्थिक प्रश्नों से जुड़ा रहता है अतः उस पहलू

को छोड़कर मुद्रण-पक्ष की ओर ध्यान दें तो पाते हैं कि हिंदी के पत्रों में बारह पाइंट का ही टाइप चलता है। कुछ पत्रों ने इधर दस पाइंट टाइप देना आरंभ किया है। हिंदी में भी छह पाइंट का कम, आठ पाइंट का अनेक प्रकार का टाइप बनता है। किंतु इसके प्रयोग के संबंध में अधिकांशतः कठिनाई यह होती है कि टाइप की मात्राएं टूट जाती हैं।

सामान्यतः हिंदी टाइपों के विषय में यह धारणा प्रचलित है कि अक्षर के ऊपर या नीचे मात्राएं लगने से देवनागरी लिपि रोमन लिपि की तुलना में अधिक स्थान घेरती है। यह भ्रांत धारणा है। तनिक विचार करें और अपने बचपन की ओर मुड़कर देखें तो अंग्रेजी सीखने के दिनों में लिखने के लिए चार लाइन की कापी का प्रयोग होता था जो आज भी है। इन चार लाइनों में से बीच की दो नीली लाइनों में अक्षर मुख्यतः लिखे जाते हैं और उनसे ऊपर या नीचे की ओर अक्षर चलते हैं। ऊपर की ओर जाने वाले अक्षरों में बी डी एफ एच एल टी (b d f h l t) आदि हैं और नीचे की ओर जाने वाले जी पी क्यू वाई (g p q y) आदि अक्षर है। देवनागरी के अक्षर भी एक तरह से नीली लाइनों के बीच में बनते हैं और ऊपर की मात्राएं या नीचे लगने वाली मात्राएं उन अक्षरों के ऊपर नीचे की लाल रेखाओं के बीच आ जाती हैं। हिंदी में वर्णों की संख्या पर हाय-तोबा है तो रोमन लिपि मे लिखने के और पढ़ने के छोटे तथा बड़े (Capital) अक्षर अलग-अलग है। छब्बीस वर्ण चार प्रकार से लिखें तो कुल कितने वर्ण हो गये?

वैसे भी यदि १० पाइंट अंग्रेजी में छपी सामग्री का हिंदी अनुवाद छापा जाय तो १२ पाइंट टाइप में मुद्रित होने पर अंग्रेजी के बराबर स्थान ही घेरता है।

मात्राओं का टूटना

हिंदी के मुद्रण में सब से अधिक शिकायत होती है मात्राओं खासकर ए (े), ऐ (ै), ओ (ो), औ (ौ) की मात्रा टूटने की। अंग्रेजी में मोनो के स्थान पर लाइनो अधिक पसंद किया जाता है और हिंदी में यदि आठ या दस पाइंट का कंपोज मोनो के स्थान पर लाइनो से किया जाय तो मात्रा टूटने की समस्या नही आयेगी क्योंकि मुद्रण की दाब पूरी लाइन पर पड़ने से मात्राएं नही टूटेंगी। मोनो होने पर हर मात्रा का टाइप अलग होता है जो कमजोर रहता है। फिर बड़े पत्रों में रोटरी मशीन से छपाई होने की अवस्था में बनने वाला फ्लाग जब तैयार होता है तो उसे बनाते समय कितनी अधिक दाब की आवश्यकता पड़ती है, यह समाचार-पत्र के कार्यालय में जाकर ही जाना जा सकता है।

इस दृष्टि से यदि एक सीमा से आगे प्रसार संख्या होने पर फोटो ग्रेव्योर पद्धति अपनायी जाय तो टाइप टूटने आदि की समस्या ही नही रहे। इस दृष्टि से इंदौर की 'नई दुनिया' का प्रयोग अनुकरणीय है।

हिंदी के सभी प्रमुख दैनिक पत्र अंग्रेजी के पत्रों के पिछलग्गू है। फलतः हिंदी का पत्र उस समय छपता है, जब रोटरी मशीन खाली होती है। डाक संस्करणों के लिए गाड़ियां तो एक ही समय पर छूटती है, अतः अंग्रेजी का पत्र नवीनतम समा-

चार लेने की दृष्टि से देर से छपता है और हिंदी का समाचार-पत्र पहले छापा जाता है। इससे भी कभी-कभी हिंदी के पत्रों में देर से प्राप्त प्रमुख समाचार ही रह जाने की आशंका रहती है। इस संबंध में जब दृष्टि यह हो जायगी कि हिंदी का पत्र प्रमुख समझा जाय तो वह नवीनतम समाचारों के साथ बाद में छपेगा। यह दृष्टि-परिवर्तन भाषा के प्रति राष्ट्रीय मोह एवं विमोह के साथ जुड़ा हुआ है।

दैनिक हिंदी पत्रों को आज भी समाचार प्रधानतया अंग्रेजी भाषा की समाचार समितियों के माध्यम से मिलते हैं अतः संपादन के स्थान पर अनुवाद अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है। अनुवाद के बाद सुसंपादन की स्थिति नहीं आती। यदि आती है तो हस्तलिखित पांडुलिपि में ही काट-छांट हो जाने से प्रेस के लिए यह अधिक कष्टसाध्य हो जाती है। इसका प्रभाव समाचार-पत्र के अशुद्धि-रहित मुद्रण पर पड़ता है। हिंदी के समाचार-पत्र में अंग्रेजी के समाचार-पत्र की अपेक्षा अधिक अशुद्धियां मिल जायंगी।

हिंदी के दैनिको की स्थिति प्रायः अंग्रेजी दैनिक के उपोत्पाद की जैसी होती है, इसीलिए हिंदी दैनिक के लिए शीर्षको के विविध रूप के टाइप नही मंगाये जाते। हिंदी में आठ पाइंट से लेकर १४४ पाइंट तक के अनेक फेमों के टाइप हैं। इनमें से अनेक टाइप हिंदी के समाचार-पत्रों के शीर्षकों का आकर्षण बढ़ा सकते है किंतु ऐसा होता कम ही है।

इस प्रकार दैनिक पत्रों के मुद्रण से संबंधित समस्याओं में से कोई भी समस्या ऐसी नहीं है, जिसका समाधान कुछ प्रयास करने तथा अनुकूल इच्छा शक्ति होने पर न किया जा सके।

रेडियो पत्रकारिता

रेडियो पत्रकारिता एक विशिष्ट कला है। यह कला समाचार और टेलीविजन पत्रकारिता से कई रूपों में भिन्न है। रेडियो का माध्यम समाचार-पत्र से पृथक् है। एक ध्वनि पर आधारित है, तो दूसरा छपे हुए शब्दों पर। प्रायः यह सोचा जाता है कि समाचार-पत्र के लिए जिस लेखन-शैली का प्रयोग किया जाता है वैसी ही शैली रेडियो के लिए काम में लायी जा सकती है। लेकिन ऐसा नही होता है। रेडियो श्रव्य माध्यम है। समाचार-पत्र दृश्य माध्यम है, मगर उसे समझने के लिए व्यक्ति का शिक्षित होना आवश्यक है जो रेडियो के लिए अनिवार्य नहीं। रेडियो से प्राप्त ज्ञान श्रुति-ज्ञान है। इसी दृष्टि से रेडियो के लिए लिखी गयी रचना में एक विशेष प्रकार की भाषा-शैली आवश्यक हो जाती है। लिखित भाषा और श्रव्य भाषा में तात्विक भेद है, जिसे रेडियो पत्रकारिता के लिए समझना बहुत जरूरी है।

रेडियो पत्रकार के लिए यह आवश्यक है कि वह ऐसी भाषा का प्रयोग करे जो सरलता से श्रोताओं द्वारा ग्रहण की जा सके। यह भाषा स्वाभाविक एवं प्रवाहपूर्ण होनी चाहिए। उसका रूप प्रतिदिन की बोलचाल की भाषा के अनुरूप होना चाहिए। ऐसी भाषा का शब्दाडंबर से मुक्त होना अनिवार्य है। रेडियो सुनते समय श्रोता के पास इतना समय नही होता कि वह किसी से सुने गये शब्द का अर्थ पूछे। यदि वह ऐसा करता है तो शेष वार्ता से वंचित रह जाता है। समाचार-पत्रों के पाठक चाहें तो कठिन शब्द का अर्थ किसी से पूछ सकते हैं और साथ ही साथ उसको समझने के लिए उन्हें फिर से पढ़ भी सकते हैं। चाहे तो उसे सम्हाल कर रख सकते हैं और उचित मनःस्थिति मे उसका जब चाहे पठन कर सकते हैं। पाठक चाहे तो समाचार-पत्रों के कुछ अनुच्छेदों का चयन करके भी पढ़ सकता है, जबकि रेडियो-श्रोता के लिए यह कदापि संभव नहीं है। इसलिए रेडियो पत्रकार उन शब्दों का चयन करता है जिन्हें श्रोता आसानी से समझ पाता है और उनका अर्थ भी एक ही होता है। जहां तक संभव हो सके, मुहावरों और अलंकारों के प्रयोग से ऐसी भाषा मुक्त होनी चाहिए। रेडियो पत्रकार इस संबंध मे अधिक सतर्क होता है।

रेडियो के लिए समाचार-बुलेटिन तैयार करते समय रेडियो पत्रकार को निम्न लिखित बातों को ध्यान में रचना चाहिए।

१. वाक्य संक्षिप्त अर्थात् छोटे-छोटे हों। यदि कोई वाक्य बड़ा हो तो उसे दो या तीन वाक्यों में परिवर्तित करना अच्छा रहता है। प्रकट है, हम बोलते समय हमेशा छोटे वाक्यों का ही प्रयोग करते हैं। श्रोता भी शीघ्र एवं सरलतापूर्वक छोटे वाक्यों को ही समझ सकते हैं। जहां तक हो सके वाक्य में उतने ही शब्द हों जितने हम एक सांस में पढ़ सकें। मिश्रित और संयुक्ताक्षरों या दुरूह वाक्यों का प्रयोग करना उचित नहीं है। इस तरह के वाक्य-प्रयोगों से श्रोता को अर्थ समझने में कठिनाई होती है और अर्थ सहज बोधगम्य नहीं रह जाता है। एक बार ध्यान भंग हो जाने से फिर वार्ता को आगे समझने में कठिनाई होती है। अतः प्रत्येक वाक्य का स्पष्ट, सरल, प्रभावपूर्ण एवं संक्षिप्त होना अनिवार्य होता है।
२. एक वाक्य में एक ही प्रकार की सूचना निहित हो, अनेक सूचनाएं एक वाक्य में ठूसने का प्रयास नहीं करना चाहिए।
३. सूचनाओं को सरल और सबल वाक्यों में लिखना चाहिए।
४. आम बोलचाल के शब्दों का प्रयोग करना उचित होता है। कष्टसाध्य अप्रचलित, अप्रयुक्त, संदर्भहीन एवं क्लिष्ट शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। रेडियो की भाषा-शैली स्पष्ट और शालीन होना चाहिए।
५. समाचार लिखते समय केवल उन्हीं शब्दों को प्रयुक्त करना चाहिए जो उस जगह आवश्यक हों, अर्थात् जितने कम शब्दों का प्रयोग किया जाय, उतना उचित है।
६. जहां तक संभव हो सके पूरे नाम का ही प्रयोग करना चाहिए। लेकिन नामों एवं पदों को बार-बार लिखने से भाषा का प्रवाह नष्ट हो जाता है और श्रोता को समाचार समझने में कठिनाई होती है।

लोगों तक शीघ्रातिशीघ्र समाचार पहुंचाने के संचार-साधनों में रेडियो एक प्रबल माध्यम है। रेडियो के द्वारा दूर-दूर के गांव में बसे लोगों तक समाचार, अखबार की तुलना में, कई गुनी द्रुत गति से पहुंचते हैं।

रेडियो पत्रकारिता के विविध रूप हैं।

१. समाचार-दर्शन (न्यूजरील)

समाचार-दर्शन समाचारों को अधिक रुचि-संपन्न और रोचक ढंग से प्रस्तुत करने की विधि है। इसमें आंखों देखा हाल, व्याख्यानों और साक्षात्कार के अंश, घटनाओं का वर्णन और छोटी भेंटवार्ताओं को सम्मिलित किया जाता है जैसे कि समाचार-पत्र में समाचारों के अतिरिक्त, फोटो और रूपक इत्यादि प्रयुक्त किये जाते हैं। समाचार-दर्शन और समाचार-बुलेटिन में अंतर केवल इतना ही है कि समाचार-बुलेटिन में पत्रकार केवल एक ही व्यक्ति की आवाज में लिखित समाचार प्रस्तुत करता है जबकि समाचार-दर्शन विधि में वह समाचारों के साथ-साथ स्थल रेकार्डिंग के अंश भी

सम्मिलित करता है। कभी-कभी आंखों देखे हाल के अंश भी इस विधि में जोड़ लिये जाते हैं।

समाचार-दर्शन के लिए रेडियो पत्रकार को उचित सुविधाएं एवं शीघ्रगामी साधन तथा तकनीकी सुविधाएं उपलब्ध होना नितांत आवश्यक है। यह विधि समाचार-बुलेटिन विधि से अधिक खर्चीली है। इसके लिए विविध समाचारों के साथ उदाहरण देने के लिए स्थल-रेकार्डिंग बहुत जरूरी है और उन्हें उपलब्ध करने के बाद उनमें से उपयुक्त अंशों के संपादन के लिए समय और तकनीकी साधन भी तुरंत चाहिए। अतः रेडियो पत्रकार को टेप की संपादन कला में कुशल भी होना पड़ता है। साथ ही समाचारों को रोचक कड़ी में पिरोने की क्षमता भी उसमें होनी चाहिए।

रेडियो पत्रकार समाचार-दर्शन के लिए अपने साथी रिपोर्टर को घटनास्थल पर भेजता है। उदाहरणार्थ प्रधानमंत्री या कोई महत्वपूर्ण नेता भाषण देने वाला है तो रेडियो रिपोर्टर टेप रेकार्डर सहित वहां पहुच कर भाषण की रेकार्डिंग करेगा। फिर टेपांकित प्रोग्राम को स्टूडियो में सुना जाता है और भाषणों के उन अंशों का चयन कर लिया जाता है जो समाचार की दृष्टि मे सामयिक महत्व के होते हैं। इसी प्रकार यदि उसी दिन कही सामाजिक या सांस्कृतिक कार्यक्रम होने वाला है तो वहां जाकर भी कुछ रोचक अंश रेकार्ड कर लिये जाते हैं। इस प्रकार बहुत से प्रोग्राम अंशों का चयन करके रेडियो पत्रकार उन्हें एक कडी में पिरो देता है। व्याख्यान, वार्ताओं इत्यादि के अंशों के चयन की संख्या समाचार-दर्शन की अवधि पर निर्भर करती है। यदि समाचार-दर्शन की अवधि अधिक हो तो अधिक संख्या में कई कार्यक्रमों के अंश काम में लाये जा सकते हैं।

२. समाचार-बुलेटिन

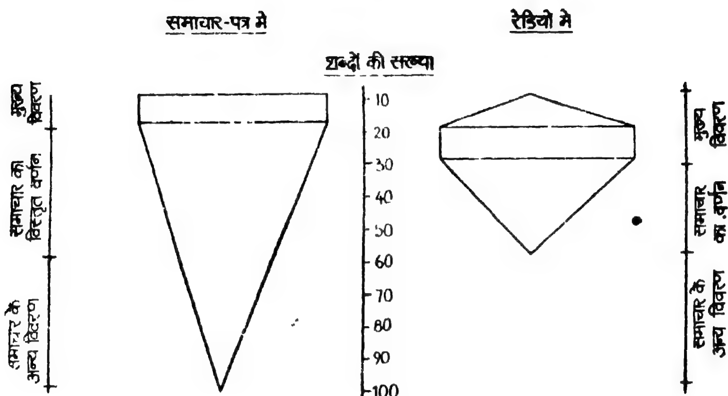
समाचारों को उनकी महत्ता के अनुसार बुलेटिन में क्रमबद्ध करके प्रस्तुत किया जाता है। समाचारों का संपादन रेडियो के समाचार-कक्ष में संपादक द्वारा किया जाता है। समाचार को सर्वदा आम बोलचाल की सरल भाषा में लिखा जाता है। इसके तीन मुख्य कारण हैं :

१. सभी श्रोता शिक्षित नहीं होते हैं।
२. लिखित भाषा की तुलना में, बोलचाल की भाषा में औसतन तीन-गुने कम शब्द प्रयोग में आते हैं।
३. रेडियो समाचार प्रसारण के समय श्रोता शब्द को केवल एक क्षण के लिए ही सुन पाता है।

समाचार-बुलेटिन के लिए संपादक को हर समाचार के बारे में सोचना होता है कि :-—

—क्या यह समाचार सरलतापूर्वक और शीघ्रता से समझा जा सकता है ?
—क्या यह समाचार उन श्रोताओं द्वारा समझा जा सकता है जो समाचारों को रेडियो पर कभी-कभी सुनते हैं ?
—क्या यह समाचार सामयिक है ?

छपित पत्रों में पत्रकार द्वारा समाचार 'इन्वर्टेड पिरामिड'—उल्टे शुंडाकार स्तंभ के आकार में लिखे जाते हैं, जबकि रेडियो समाचार 'वायलेट डायमंड' की तरह लिखा जाता है अर्थात् पत्रकार जब समाचार-पत्र के लिए समाचार लिखता है तो वह समाचार का सारांश या महत्वपूर्ण अंश प्रथम अनुच्छेद के कुछ वाक्यों (आमुख) में दे देता है। तत्पश्चात् समाचार के अन्य विवरण प्रस्तुत किये जाते हैं। रेडियो पत्रकार को समाचार का पूर्ण विवरण देने में कठिनाई होती है। पूरा समाचार २० या ३० शब्दों में ही लिखना होता है। वह समाचार-पत्र की तरह समाचार के अन्य विवरण समाचार-बुलेटिन में नहीं दे पाता है, तो भी उसको हर संवाद से संबंधित छह प्रश्न प्रत्येक समाचार के संबंध में हमेशा ध्यान में रखने पड़ते हैं—क्या, क्यों, कहां, कब, कौन और कैसे ?



उपर्युक्त चित्र मे स्पष्ट है कि समाचार-पत्र में समाचार का मुख्य विवरण विस्तृत वर्णन और अन्य विवरण दिये जाते हैं, जबकि वही समाचार रेडियो पत्रकार सीमित शब्दो में केवल मुख्य विवरण तथा शेष वर्णन के रूप में प्रस्तुत करता है।

रेडियो पत्रकार को चाहिए कि विवरण में कम से कम आंकड़ों को स्थान दे। जब भी ऐसा विवरण देना आवश्यक हो तो सरल और आसान शब्दों में दे। उदाहरणार्थ ५० प्रतिशत की जगह 'आधा' और ८.९९ लाख की जगह नौ लाख इत्यादि कहना श्रव्य-सुखद होता है। रेडियो समाचार-बुलेटिन वास्तव में निश्चित अवधि के लिए होता है। पंद्रह मिनट के बुलेटिन में १५०० से १८०० तक शब्द हो सकते हैं क्योंकि एक मिनट में १०० से १२० शब्द बोले जा सकते हैं।

ब्रिटिश ब्राडकास्टिंग कारपोरेशन के ट्रेनामन के अनुसार यदि हम समाचारों की संख्या एक बुलेटिन में बढ़ाते चले जायं तो श्रोता के लिए एक सीमा के बाद समाचारों को याद रखना मुश्किल होता जाता है।

उन्होंने इस पर शोध करने के बाद पाया कि कुल ११ समाचार १० मिनट के रेडियो-बुलेटिन में होने से श्रोताओं का ध्यान समाचारों में केंद्रित रहता है तथा वे समाचारों को याद रख सकते हैं। रेडियो पत्रकार को अनेक समाचारों को समाचार-बुलेटिन में ठूंसने का प्रयत्न कदापि नहीं करना चाहिए। यदि वह ऐसा करता है तो श्रोता सारे समाचारों को न तो याद रख सकेंगे और न एकचित्त होकर सुन सकेंगे।

समाचारों का चयन

संपादक के लिए ढेर सारे समाचारों में से महत्वपूर्ण और रोचक समाचारों का चयन करना एक कठिन कार्य है। उसके पास सीमित समय होता है और समाचार बराबर उसके पास विभिन्न स्रोतों से आते रहते हैं। इसलिए संपादन-कार्य निरंतर चलता रहता है। संपादक को सभी प्रकार के श्रोताओं की रुचि का ध्यान रखना होता है। समाचारों का चयन इस बात पर निर्भर करता है कि किस प्रकार का बुलेटिन उसे तैयार करना है। यदि वह जनरल बुलेटिन बना रहा है तो उसे देश-विदेश के महत्व-पूर्ण समाचारों को महत्व देना होगा। यदि वह प्रादेशिक बुलेटिन है तो प्रदेश के समाचारों को विदेशों के समाचारों से अधिक समय देना होगा।

शीर्ष-पंक्ति

शीर्ष-पंक्तियां समाचार-बुलेटिन शुरू होने के कुछ देर पहले संपादक द्वारा तैयार की जाती हैं। इन्हें हैडलाइंस या मुख्य समाचार भी कहा जाता है। ये समाचार-बुलेटिन के विवरण देने से पहले पढ़े जाते हैं। शीर्ष-पंक्तियां वास्तव में मुख्य-मुख्य समाचारों का निचोड़ होती हैं। संपादक को शीर्ष-पंक्तियां लिखने में कुशल होना अनिवार्य है। प्रायः १५ मिनट के बुलेटिन के लिए ६ से ८ तक और १० मिनट के लिए ४ से ६ तक मुख्य समाचार-शीर्ष-पंक्तियां क्रमबद्ध की जाती है। पांच मिनट के बुलेटिन के लिए शीर्ष-पंक्तियां तैयार नहीं की जातीं, क्योंकि समय बहुत कम होता है और संपादक पहले से ही सारे समाचार संक्षिप्त रूप में लिखता है। पंद्रह या दस मिनट के बुलेटिनों में शीर्ष-पंक्तियों को दोहराना अच्छा रहता है, इससे श्रोताओं को समाचार को याद रखने में सहायता मिलती है और यदि कोई श्रोता शुरू में बुलेटिन नहीं सुन पाता तो वह बाद में मुख्य समाचार फिर सुन सकता है।

रेडियो पत्रकार समाचार-बुलेटिन के लिए तीन तरह से समाचारों को क्रमबद्ध करता है: (१) किन देशों या राज्यों से समाचार आये हैं, (२) कौन-से सामयिक समाचार हैं, (३) भौगोलिक नैकट्य की दृष्टि से किन सामयिक समाचारों को क्रम-बद्ध किया जाय।

रेडियो समाचार-बुलेटिन के संपादक अपने बुलेटिन के प्रसारण के समय भी ताजे और महत्व के समाचारों को सम्मिलित करने का प्रयत्न करते हैं। प्रातः-बुलेटिन में रात के संवादों का कुछ अंश होता है।

दोपहर के समाचार-बुलेटिनों में सुबह के बाद होने वाली घटनाओं का विवरण प्रस्तुत किया जाता है। इस समय सब से अधिक लोग समाचार-बुलेटिन सुनते हैं।

अतएव समाचारों को सावधानी से संयोजित करने का प्रयत्न किया जाता है।

बुलेटिनों के प्रकार

स्थूल रूप में दो प्रकार के समाचार-बुलेटिन होते हैं : (अ) देश के श्रोताओं के लिए, तथा (ब) विदेशों के श्रोताओं के लिए। देश के श्रोताओं के लिए भी बुलेटिन दो प्रकार के होते हैं : सार्वदेशिक और प्रादेशिक। सार्वदेशिक बुलेटिन में मुख्यतः अंतर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय समाचार तथा विभिन्न प्रदेशों के महत्वपूर्ण समाचार होते हैं। प्रादेशिक समाचार-बुलेटिनों मे प्रदेश के समाचारों को महत्व दिया जाता है।

जो समाचार-बुलेटिन विदेशों के लिए होता है वह भी दो प्रकार का है : (१) विदेशी श्रोताओं के लिए, (२) प्रवासी भारतीयों के लिए।

रेडियो पत्रकार को विदेशी श्रोताओं के लिए बुलेटिन मे समाचार के साथ-साथ पूर्व संदर्भ भी देना होता है। प्रवासी भारतीय के लिए संदर्भों की आवश्यकता नहीं होती।

सूचना तथा प्रसारण मंत्रालय की १९७४-७५ की रिपोर्ट के अनुसार इस समय कुल २३३ बुलेटिन प्रसारित हो रहे हैं और ममाचार प्रसारण की कुल अवधि ३१.३६ घंटे हो गयी है। इम समय प्रतिदिन १०.४५ घंटे की अवधि के ७१ समाचार-बुलेटिन, जो १९ भाषाओं में हैं, देश-सेवा में; २५ भाषाओं में ७.५३ घंटे के, ६१ बुलेटिन विदेश प्रसारण सेवा में और प्रादेशिक प्रसारण सेवाओं में १९ भाषाओ तथा ३४ बोलियों में १२.५७ घंटे के १०१ बुलेटिन प्रसारित होते हैं।

आकाशवाणी के रेडियो पत्रकार समाचार प्रसारणों में विश्वसनीयता व तत्परता लाने की हर संभव कोशिश करते रहे हैं। उदाहरणार्थ इस वर्ष देश और विदेश के श्रोताओं को सब से पहले रेडियो ने भारत द्वारा किये गये परमाणु विस्फोट की सूचना दी थी।

एक आदर्श समाचार बुलेटिन, यदि वह दस मिनट का है तो उसकी अवधि को निम्न तरीके से विभाजित किया जा सकता है :

	मिनट	सेकंड	शब्दों की संख्या
प्रारंभ	०	१०	१० से १५
शीर्ष-पंक्तियां	०	५०	१०० से ११०
समाचार के मुख्य विवरण	८	२०	१००० से ११००
शीर्ष-पंक्तियों को दोहराना	०	३०	८० से ९०
समाप्ति	०	१०	१० से १५
	१०	००	१३०० से १३३०

श्री शरद दवे ने एक शोध निबंध में लिखा है कि जब उन्होंने लोगों से समाचार-बुलेटिन की भाषा के बारे में पूछा तो विश्वविद्यालय के एक प्रवक्ता ने कहा कि वाक्य ठीक नहीं बनाये गये और उनको तुरंत समझना कठिन है। एक शोधकर्ता ने कहा कि कोई भी समाचार ऐसा नहीं है जो कि मेरे लिए रोचक हो। एक प्राइवेट फर्म में काम करने वाले व्यक्ति ने कहा कि सरकारी तौर पर कहे गये समाचार मेरे लिए रोचक नही हैं। समाचारों के बारे में विभिन्न व्यक्तियों की विभिन्न प्रतिक्रियाएं होती है। भारतीय समाचारों की भाषा और समाचारों के प्रभाव का विवेचन अभी सही माने में हुआ नही। मगर संपादक का दायित्व इस बारे में किसी प्रकार भी कम नहीं होता। संपादक के पास अनेक महत्वपूर्ण समाचार होते है जो कि बुलेटिन में देने आवश्यक हो जाते है। संपादक न तो बुलेटिन की अवधि बढा सकता है न ही अधिक शब्दों का प्रयोग कर सकता है। उसकी कुशलता इसी बात पर निर्भर है कि वह किस प्रकार समाचारों को संयोजित करे और सीमित समय मे महत्वपूर्ण समाचारों को प्रसारण योग्य बना सके। इसीलिए यह कहा जाता है कि अच्छा समाचार-बुलेटिन तैयार करना एक कला है।

संदर्भ पत्रकारिता

जहां तक समाचार-पत्रों और पत्रिकाओं का संबंध है, सूचना, जानकारी अथवा संदर्भ के बिना उनका अस्तित्व एक अनगढ़ चट्टान की तरह होता है, तराशी हुई मूर्ति की तरह नहीं। पत्र-पत्रिकाओं का संपादकीय विभाग उनका 'मस्तिष्क' होता है जिसे संवाद-समितियों, अपने संवाददाताओं, पुस्तकालय एवं संबद्ध संदर्भ-विभाग से निरंतर जानकारी मिलती रहती है। साधारण समाचारों की पूर्ति तो समाचार एजेंसियां और संवाददाता भी कर सकते हैं, लेकिन जहां संपादकीय अथवा अन्य लेख लिखने या महत्वपूर्ण समाचारों में भी अतीत का संदर्भ जोड़ना आवश्यक होता है, वहां संदर्भ विभाग की उपयोगिता अपने आप प्रकट हो जाती है। यही कारण है संदर्भ-सेवा के लिए सभी बड़े-बड़े समाचार-पत्र प्रतिष्ठानों और पुस्तक-प्रकाशन प्रतिष्ठानों के अपने-अपने पुस्तकालय होते है। एक कुशल शिल्पी की मदद जिस प्रकार अच्छे औजार करते हैं, उसी प्रकार संदर्भ विभाग एक जागरूक पत्रकार की सहायता प्रतिक्षण करता है।

इस संदर्भ-सेवा को संदर्भ-पत्रकारिता भी कह सकते हैं, जिसका काम समाचारों, लेखों और टिप्पणियों के लिए सही तथ्य और आकड़े उपलब्ध करना होता है। उदाहरणार्थ, किसी महान् व्यक्ति के देहावसान का समाचार प्रकाशित अथवा प्रसारित करना हो तो केवल मृत्यु का समाचार मात्र देने से खबर अधूरी और पंगु बनेगी। समाचार के साथ उस व्यक्ति का व्यक्तित्व एवं कृतित्व प्रस्तुत करना भी बहुत जरूरी है, जिसकी पूर्ति संदर्भ-सेवा करती है।

समाचार-पत्र प्रतिष्ठानों में सूचना-सामग्री के अतिरिक्त संबद्ध विषयों पर अधुनातन तथ्य प्रदान करने के कारण संदर्भ-सेवा और सूचना-प्रसारण-सेवा समानार्थक हो गयी हैं।

स्पष्ट है कि संदर्भ-पुस्तकालय अथवा संदर्भ-सेवा किसी भी समाचार-पत्र-प्रतिष्ठान के लिए अपरिहार्य है। इसी कारण द्वितीय श्रमजीवी पत्रकार वेतन बोर्ड ने समाचार-पत्र प्रतिष्ठानों के संदर्भ-पुस्तकालय के पदाधिकारियों को भी पत्रकारों के वर्ग में शामिल किया और उनका वेतनमान श्रमजीवी पत्रकारों के समतुल्य निर्धारित किया।

संदर्भ-विभाग के कार्य की मात्रा और योगदान को इस तथ्य से भी आंका जा सकता है कि बड़े-बड़े देशों के प्रसिद्ध समाचार-प्रतिष्ठानों के संदर्भ-विभागों में १५० तक सुशिक्षित और प्रशिक्षित कर्मचारी रहते हैं। अमेरिका के दैनिक 'न्यूयार्क टाइम्स' में एक सौ से भी अधिक प्रशिक्षित कर्मचारी सिर्फ संदर्भ-विभाग में हैं। भारत में भी अब इस दिशा में कुछ प्रगति हुई है। मसलन, टाइम्स आफ इंडिया एवं संबद्ध प्रकाशनों के बंबई, दिल्ली और अहमदाबाद में अच्छे संदर्भ-पुस्तकालय हैं।

मजाक में संदर्भ-विभागों को पत्र-पत्रिकाओं का मुर्दाघर भी कहा जाता है। दरअसल, जैसा पहले बताया गया कि संपादकीय विभाग समाचार-प्रतिष्ठान का 'मस्तिष्क' है, तो संदर्भ-विभाग इस मतिष्क का 'स्मृति-कोष' है। संदर्भ-विभाग का काम पत्र-पत्रिकाओं की पुरानी प्रतियां सुरक्षित रखना ही नहीं बल्कि और भी बहुत कुछ है, जिसके बिना कोई भी समाचार-प्रतिष्ठान सुगठित नहीं माना जाता।

सार्वजनिक या अन्य पुस्तकालयों में तो आम तौर पर पुस्तकें और कुछ पत्र-पत्रिकाएं ही रहती हैं, लेकिन समाचार-पत्र प्रतिष्ठानों के संदर्भ पुस्तकालयों में समाचार-पत्रों की कतरनों की फाइलों का स्थान अधिक महत्त्वपूर्ण है। इसलिए सार्वजनिक अथवा किसी भी अन्य पुस्तकालय से समाचार-पत्र प्रतिष्ठानों के संदर्भ-पुस्तकालय का स्वरूप भिन्न होता है। पत्र-पत्रिकाओ के संदर्भ विभाग में साहित्यिक, तकनीकी अथवा अन्य विशिष्ट क्षेत्रों की पुस्तको का खास महत्व नही। यहा तो ज्यादातर संदर्भ-ग्रन्थ ही रहते है, जैसे 'हू-इज-हू', डायरेक्टरी, रिकार्डर, महाकोश, इत्यादि।

समाचार-पत्र के संदर्भ-विभाग की यही एक विशेषता है कि वह पत्रकारों को किसी भी विषय पर तत्काल जानकारी उपलब्ध कराता है। समय के साथ पत्रकारों की जबरदस्त होड़ चलती रहती है। उनकी एक नजर घड़ी पर और एक नजर समाचार पर रहती है। इसके लिए संदर्भ-विभाग को उन्हें फौरन अपेक्षित जानकारी उपलब्ध करानी पड़ती है।

संदर्भ-विभाग के कामकाज को विस्तारपूर्वक समझने से पहले इसके गठन के बारे मे भी कुछ जानकारी देना अप्रासंगिक न होगा।

संदर्भ-विभाग कितना बड़ा होना चाहिए, यह तो समाचार-पत्र प्रतिष्ठान के साधनों पर निर्भर करता है। लेकिन आम तौर पर एक औसत संदर्भ पुस्तकालय में एक सुशिक्षित एवं प्रशिक्षित लाइब्रेरियन या मुख्य संदर्भ-अधिकारी (चीफ रेफ्रेंस अधिकारी), चार संदर्भ अधिकारी, दो दफ्तरी, कम से कम एक आशुलिपिक और एक क्लर्क होना चाहिए।

संदर्भ-विभाग का सारा कामकाज लाइब्रेरियन या मुख्य संदर्भ अधिकारी के मार्गदर्शन में होता है। संदर्भ अधिकारी जैसे वरिष्ठ कर्मचारियों के लिए कम से कम स्नातकोत्तर उपाधि और लाइब्रेरियनशिप डिप्लोमा के अलावा पत्रकारिता का भी कुछ अनुभव होना वांछनीय है।

संदर्भ अधिकारी तमाम दैनिक अखबारों और अन्य पत्र-पत्रिकाओं को पढ़कर महत्वपूर्ण समाचारों और लेखों पर विषयानुसार निशान लगा देता है। इन निशानों के आधार पर दफ्तरी सभी कतरनों को काटकर कागज पर चिपकाता है और संबंधित

फाइलों में लगा देता है।

संदर्भ-विभाग के कामकाज को निम्नलिखित आठ वर्गों में रखा जा सकता है—

(१) कतरन (क्लिपिंग) सेवा, (२) संदर्भ-ग्रंथ, (३) लेख-सूची, (४) फोटो विभाग, (५) पृष्ठभूमि विभाग, (६) रिपोर्ट विभाग, (७) सामान्य पुस्तकों का विभाग, और (८) भंडार विभाग।

कतरन-सेवा : कतरन-सेवा संदर्भ-विभाग की अत्यंत महत्वपूर्ण सेवा है। संपादकीय, लेख, टिप्पणियां और समाचार तैयार करने में अक्सर संदर्भित कतरनों की जरूरत होती है।

विविध विषयों की इन कतरनों को वर्ण-क्रमानुसार अलग-अलग रखा जाता है और इनकी संदर्भ सूचियां इस प्रकार बनायी जाती हैं कि आवश्यकता पड़ने पर यह तुरंत मालूम पड़ जाय कि विभिन्न विषयों की फाइलें सिलसिलेवार कहां रखी है। घटना घटित होने के कुछ ही क्षणों में उसकी खबर पत्रों के कार्यालयों में टेलीफोन, टेलीप्रिंटर या तार द्वारा पहुंच जाती है। उपसंपादक का सर्वप्रथम कार्य इस समाचार को प्राप्त करते ही यह जांच करना होता है कि वास्तव मे इस विषय पर कोई पूर्व प्रकाशित सामग्री उपलब्ध है या नहीं ? इस कार्य के लिए संबद्ध विषय पर समाचार-पत्रों की कतरन-फाइल ही उपयोगी सिद्ध होती है। संवाददाता जल्दी मे समाचार भेजते हुए उस विषय के बारे में अनेक ऐसी अनिवार्य बातें बताना भूल सकता है जो कि समाचार को समझने के लिए नये पाठकों के लिए आवश्यक होती है। उदाहरणार्थ गजेंद्र गडकर आयोग के प्रतिवेदन का संक्षिप्त समाचार देते हुए संवाददाता जल्दी मे यह बताना भूल गये कि यह आयोग जम्मू-कश्मीर की क्षेत्रीय असमानताओं एवं सांप्रदायिक कटुता को दूर करने के लिए स्थापित किया गया था। आयोग की नियुक्ति, तिथि और कार्य परिधि के विषय मे विस्तृत जानकारी संदर्भ-विभाग द्वारा रखी गयी कतरन-फाइलों से ही उपलब्ध हो सकती है।

सामान्य अनुभव के आधार पर यह कहा जा सकता है कि नवीनतम सूचना संबंधी ८० प्रतिशत प्रश्नों के उत्तर कतरन-फाइलों से ही प्राप्त हो जाते है। 'नवभारत टाइम्स' के संदर्भ-विभाग में लगभग तीन हजार विषयों की कतरन-फाइले है। लगभग हर देश पर फाइल है और उसके राजनीतिक, आर्थिक और वैदेशिक मामलों पर भी अलग-अलग फाइलें है। भारत के हर प्रांत पर और प्रांत के मंत्रालय से संबद्ध विषयों पर तथा उनके अलावा राजनीतिक दलों पर, सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक आदि सभी प्रमुख विषयों पर सैंकड़ों फाइलें हैं। हर अच्छे संदर्भ-विभाग का प्रयत्न यह होता है कि दुनिया का कोई भी विषय इन फाइलो की गिरफ्त के बाहर न हो। 'न्यूयार्क टाइम्स' और 'लंदन टाइम्स' के पास काफी पुरानी फाइलें हैं। फाइलें जितनी पुरानी होंगी, उनमें घटना-चक्र का उतना ही पुराना इतिहास मिल सकेगा, क्योंकि कतरने तिथिवार लगायी जाती है, हालाकि दैनिक पत्रों के लिए बहुत पुराना ब्योरा ज्यादा प्रासंगिक नही होता।

संदर्भ-ग्रंथ : प्राकृतिक दुर्घटना, पुरातत्व अनुसंधान, राजनीतिक और सैनिक संबंधो तथा कुछ स्थान एवं व्यक्तियों के विषय मे जानकारी के अभाव मे कई समाचारो

को समझना काफी कठिन होता है। चुंबी घाटी में किस प्रकार सिक्किम, भूटान और चीन की सीमाएं मिलती हैं यह जाने बिना भारत-चीन संबंधों में इस स्थान का महत्व जानना कठिन है। इसी प्रकार किसी व्यक्ति के सम्मानित या स्वर्गवासी होने पर उसके जीवन और कार्यों का मूल्यांकन करने के लिए उसकी जीवनी का ज्ञान होना आवश्यक है। इस तरह के कामों के लिए संदर्भ-सेवा विभाग कई प्रकार के मानचित्र, एटलस, जीवनियां, जीवनी-कोश अथवा 'हू-इज-हू' जैसे संदर्भ ग्रंथ इकट्ठे करता है। जांबिया की राजधानी की भौगोलिक स्थिति क्या है व जनसंख्या कितनी है? ईरान की मुद्रा क्या है? किसी देश की जनसंख्या, बजट एवं व्यापार संतुलन कैसा है? ऐसे प्रश्नों के उत्तर देने के लिए राष्ट्रीय वार्षिकियां जैसे—'भारत १९७५' 'टाइम्स आफ इंडिया वार्षिकी' के अतिरिक्त, अंतर्राष्ट्रीय वार्षिकियां जैसे—'स्टेट्समैन ईयर बुक', 'योरपा ईयर बुक' आदि का संग्रह भी आवश्यक है। इसी प्रकार संसदीय कार्य-प्रणाली अथवा अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों तथा कानून आदि के लिए 'यू० एन० ईयर बुक', 'मे की पार्लिमेंट्री प्रैक्टिस' और 'सातों की डिप्लोमैटिक प्रैक्टिस' और इसी प्रकार अन्य विषयों और देशों पर परिचय पुस्तिकाएं (हैंडबुक्स) भी बहुत उपयोगी सिद्ध होती हैं। सर्वप्रथम, तथ्य, व्यक्ति एवं तिथि आदि की जानकारी के लिए 'फेमस फर्स्ट फैक्ट' और 'डिक्शनरी आफ डेट्स' आदि भी उपयोगी है। इसके अलावा दैनिक पत्रों के लिए संदर्भ-विभाग में 'रिकार्डरों' का होना नितांत आवश्यक है।

'रिकार्डर' एक प्रकार के साप्ताहिक प्रकाशन हैं। जो देश-विदेश के प्रकाशित समाचारों को सारांश में छापते हैं। साल भर के या इससे अधिक समय के अंकों को सजिल्द रखा जाता है। हर जिल्द के अंत में प्रकाशक द्वारा भेजी गयी विषय-सूची (इंडैक्स) लगी रहती है जो वांछित सूचना प्राप्त करने मे सहायक होती है। देश-विदेश की पुरानी राजनीतिक घटनाओं के तुलनात्मक अध्ययन के लिए रिकार्ड्स का विशेष स्थान है। जून १९६९ में जब कांग्रेस-प्रधान निजलिंगप्पा और कांग्रेस संसदीय दल की नेता श्रीमती इंदिरा गांधी मे विवाद शुरू हुआ तो तुलनात्मक अध्ययन के लिए १९४५ में इंग्लैंड के लेबर पार्टी के संसदीय नेता श्री एटली ने किस प्रकार लेबर पार्टी के अध्यक्ष लास्की की इच्छा के विरुद्ध बर्लिन कांग्रेस मे भाग लिया —इस सब की जानकारी 'कांटेंपरेरी कीसिंग्ज आरकाइव्ज' से आसानी से प्राप्त की गयी थी। इसी प्रकार संयुक्त विज्ञप्तियों, अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों, जैसे बांडुग तथा गुटनिरपेक्ष देशों के सम्मेलनों के निर्णयों आदि के लिए 'एशियन रिकार्डर', 'फैक्ट्स आन फाइल', 'अफ्रीकन रिकार्डर' आदि बहुत उपयोगी प्रकाशन है।

इन सब के अतिरिक्त भाषा-कोश, शब्दों की व्युत्पत्ति एवं प्रयोग संबंधी पुस्तिकाएं, व्याकरण ग्रंथ, मुहावरा-कोश आदि का संदर्भ विभाग में होना अत्यंत आवश्यक है।

लेख-सूची : संदर्भ पुस्तकालय मे देश-विदेश की महत्वपूर्ण पत्र-पत्रिकाएं आती है। ये वे पत्र-पत्रिकाएं होती है, जिनमें विशिष्ट विषयों के अनुसंधानात्मक और विश्लेषणात्मक लेख रहते है। 'टाइम्स आफ इंडिया', 'नवभारत टाइम्स' तथा संबद्ध प्रकाशन संस्थान (दिल्ली) हर माह औसतन डेढ़ हजार रुपये मूल्य की ऐसी पत्र-

पत्रिकाएं खरीदते हैं ।

इन पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों की संदर्भ सूचिया कार्डो पर दर्ज कर ली जाती है कि अमुक विषय पर अमुक पत्रिका के किस संस्करण मे किसका लेख प्रकाशित हुआ था ।

फोटो विभाग : समाचार-पत्र प्रतिष्ठानों में व्यक्तियों, स्थानों अथवा घटनाओं के संबंध मे रोजमर्रा बीसियों फोटो प्राप्त होते हैं । इन फोटुओं को भी सिलसिलेवार सलीके से सुरक्षित रखा जाता है, ताकि जरूरत पड़ने पर संबंधित फोटो को तुरंत संपादकीय विभाग को उपलब्ध किया जा सके। इनमें वर्षो पुराने कुछ दुर्लभ फोटो भी होते हैं।

पृष्ठभूमि विभाग : इस खंड में राजनीतिक पार्टियों के चुनाव-घोषणा-पत्रों, किसी स्थान या प्रतिष्ठान की विवरण पुस्तिकाओं आदि सामग्री को सुव्यवस्थित ढंग मे सुरक्षित रखा जाता है ।

रिपोर्ट विभाग : समय-समय पर प्रकाशित सरकारी रिपोर्टे, जाच-आयोगो अथवा वेतन-मंडलो की रिपोर्टे भी सदर्भ-सामग्री मे महत्वपूर्ण स्थान रखती है । सही और विस्तृत जानकारी इन्ही रिपोर्टो के अध्ययन से मिल सकती है । सदर्भ पुस्तकालय में इस प्रकार की महत्वपूर्ण रिपोर्टो को भी सुरक्षित रखा जाता है ।

सामान्य पुस्तकें : समाचार-पत्र प्रतिष्ठानों के संदर्भ विभाग मे समाज, कला, संस्कृति, साहित्य, विज्ञान आदि विषयो की पुस्तकों का कोई खास इस्तेमाल नहीं होता तथापि सपादकीय विभाग मे समालोचना के लिए आयी ढेर सारी पुस्तकों मे से कुछ खास-खास पुस्तकें संदर्भ विभाग मे सगृहीत रहती है। इनके अलावा इतिहास, राजनीति, अर्थनीति, विदेशनीति आदि विषयों पर विशेष महत्व की पुस्तकों का सग्रह संदर्भ-सेवा की उपयोगिता मे वृद्धि करता है ।

भंडार विभाग : भंडार विभाग सपूर्ण संदर्भ विभाग का महत्वपूर्ण अंग है, जहां वर्षों पुरानी पत्र-पत्रिकाओं की फाइलें सुरक्षित रखी जाती है । समाचार-पत्र रोजमर्रा इतिहास दर्ज करते है । इतिहास की सही विस्तृत जानकारी के लिए पत्र-पत्रिकाओं को सुरक्षित रखना बहुत जरूरी है ।

लेकिन पत्र-पत्रिकाओं को सुरक्षित रखने में दो जटिल समस्याएं है । पहली समस्या तो स्थान की है । वर्ष-दर-वर्ष पत्र-पत्रिकाओं की फाइलें रखने के लिए लंबे-चौड़े स्थान की जरूरत पड़ती है । ये फाइलें बढ़ती जायं तो बहुमंजिली इमारतों में भी नहीं अट सकती ।

दूसरी समस्या पत्र-पत्रिकाओं को सुरक्षित रखने की है । कुछ वर्षों बाद कागज खराब होने लगता है और स्याही भी फीकी पड़ने लगती है।

इन दोनों समस्याओं का समाधान 'माइक्रोफिल्म प्रणाली से संभव है । आम तौर पर ३५ एम० एम० की फिल्म पर समाचार-पत्रों के पृष्ठों के फोटो उतार लिये जाते है और जरूरत पड़ने पर उन्हें माइक्रोफिल्म रीडर मशीन पर पढ़ा जा सकता है । मशीन पर फिल्म चलाने पर अखबार या अन्य पत्र-पत्रिकाओं के पृष्ठ स्क्रीन पर ज्यों-के-त्यों साफ-साफ नजर आते हैं ।

इस प्रकार करीब ९५ प्रतिशत जगह की बचत होती है, यानी ९९ वर्ष के अखबारों की फिल्में सिर्फ उतनी जगह में समा सकेंगी, जितनी जगह एक साल के अखबार घेरते हैं।

कागज के बजाय फिल्में ज्यादा टिकाऊ भी होती हैं और उन्हें सैकड़ों वर्ष तक सुरक्षित रखा जा सकता है, लेकिन माइक्रोफिल्म रीडर मशीन और कैमरे पर करीब ५ लाख रुपये का प्रारंभिक खर्च बैठ जाता है। इस कारण अधिकांश समाचार-पत्र प्रतिष्ठान इस प्रणाली को अपनाने में अभी असमर्थ हैं।

भंडारों में सुरक्षित पत्र-पत्रिकाओं का उपयोग सरलतापूर्वक तभी संभव हो सकता है जब इनकी विषय-सूची तैयार कर पाठकों को उपलब्ध की जाय। इस कार्य के लिए पृथक् रूप से सुप्रशिक्षित विषय-सूची विभाग का संगठन आवश्यक है। भारत में हिंदी पत्रकारिता को यह सेवा अभी प्राप्त नहीं। कुछ अंग्रेजी पत्रों ने यह कार्य अवश्य प्रारंभ कर दिया है।

इस प्रकार संदर्भ-विभाग समाचार-पत्र प्रतिष्ठानों का महत्वपूर्ण अंग है, इस-लिए जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है संपादकीय विभाग समाचार-पत्र प्रतिष्ठान का मस्तिष्क होता है तो संदर्भ-विभाग इस मस्तिष्क का स्मृतिकोष है।

समाचार-पत्र प्रतिष्ठानों का संदर्भ-विभाग केवल संपादकीय विभाग के लिए ही नहीं, बल्कि प्रसारण (सर्क्युलेशन) विभाग, विज्ञापन-विभाग और प्रशासनिक विभाग के लिए भी अत्यंत उपयोगी सिद्ध हुआ है।

संदर्भ-विभाग प्रसारण-विभाग को यह जानकारी दे सकता है कि किसी नगर की कितनी आबादी है, वहां कितनी पत्र-पत्रिकाएं चलती हैं और उनके कितने पाठक हैं। इस प्रकार विज्ञापन-विभाग को संदर्भ-विभाग यह जानकारी दे सकता है कि देश-विदेश में कौन-कौन-सी विज्ञापन एजेंसियां या विज्ञापनदाता अथवा संस्थान हैं और उनकी साधन-क्षमता क्या है।

संदर्भ-विभाग प्रशासनिक विभाग को भी न्यूजप्रिंट पालिसी, श्रमजीवी पत्रकार वेतन बोर्ड की सिफारिशों तथा समाचार-पत्र प्रतिष्ठानों से संबंधित सरकारी नीतियों और घोषणाओं से अवगत करवाता है।

यह संदर्भ-विभाग आम जनता को नयी-पुरानी जानकारी उपलब्ध कर महत्व-पूर्ण सार्वजनिक सेवा भी कर सकता है, लेकिन इस पहलू पर अभी तक ध्यान नहीं दिया गया है। इसके लिए ज्यादा साधनों और कर्मचारियों की जरूरत पड़ेगी, लेकिन प्रत्यक्ष रूप से आम जनता की सेवा करके इससे समाचार-पत्रों के सूचना-प्रसारण एवं जन-कल्याण के व्यापक उद्देश्यों की पूर्ति भी होगी।

हिंदी पत्रों में सामान्यतः संपादकीय लेखन के लिए व्यवस्थित संदर्भ-विभाग बहुत कम हैं। 'नवभारत टाइम्स' एक ऐसा प्रमुख पत्र है, जिसके पास बहुत ही सुग-ठित संदर्भ-विभाग है। फिर भी, 'नवभारत टाइम्स' का संचालन जितने बड़े साधन-संपन्न प्रतिष्ठान से हो रहा है, उसे देखते हुए इस पत्र का संदर्भ-विभाग भी उतना संपन्न और समृद्ध नहीं हो सका है, जितनी कि आशा की जानी चाहिए। हिंदी संदर्भ ग्रंथों का संग्रह उतना उत्तम नहीं है, फिर भी जितना कुछ है, वह अन्य पत्रों की तुलना

में सराहनीय ही माना जायगा।

कुछ अन्य पत्रों में भी संदर्भ-विभागों के गठन के लिए प्रयत्न चल रहा है। सीमित साधनों वाले पत्रों में 'अमर उजाला', 'दैनिक वीर अर्जुन', 'स्वतंत्र भारत' ने अपने यहां संदर्भ-विभाग विकसित किये हैं, परंतु उनके संगठन और संचालन को संतोषजनक नहीं माना जा सकता। देश के कुछ प्रमुख कहे जाने वाले अखबारों में संदर्भ-विभाग नाम की कोई चीज नहीं है। संदर्भ-सामग्री तो इस देश में बहुत है, पर कार्यकर्ता नहीं हैं। आम तौर से यह बात कही जाती है कि अल्प साधन वाले पत्रों के लिए अपना संदर्भ-विभाग विकसित करना प्रायः कठिन होता है।

लेकिन, इंदौर से प्रकाशित 'नई दुनिया' ने प्रमाणित कर दिया है कि यथासंभव उपलब्ध साधनों से भी सुसंगठित और सुसंचालित संदर्भ-विभाग विकसित किया जा सकता है। ध्यान रखने की बात यह है कि 'नई दुनिया' कोई बहुत समृद्ध पत्र नहीं है फिर भी 'नई दुनिया' के संचालक-संपादक मंडल ने पत्रकारिता में संदर्भ-सामग्री की अपरिहार्यता को समझा है। इसके संदर्भ-विभाग में बहुत सारे संदर्भ-ग्रंथ, ६५० विषयों की कतरन-फाइलें और पत्र-पत्रिकाएं उपलब्ध हैं और इनके संचयन और रख-रखाव के लिए अलग से कार्यकर्ता भी हैं।

यह हो सकता है कि अगले कुछ दशकों में हिंदी-पत्रों के पास ऊपर बतायी गयी पद्धति पर अच्छे संदर्भ-विभाग तैयार हो जायं, किंतु सब से बड़ा प्रश्न यह है कि पत्रकारगण संदर्भ-सामग्री का कितना लाभ उठाते हैं?

व्यवस्था

समाचार-पत्रों की अर्थव्यवस्था

प्रायः लोगों में यह धारणा है कि समाचार-पत्र उद्योग एक अत्यंत मुनाफा देने वाला उद्योग है। सत्य इससे ठीक विपरीत है। अभी हाल में मध्यप्रदेश से एक वकील साहब का पत्र हमें आया था, जिसमें उन्होंने लिखा था कि आप 'हिंदुस्तान टाइम्स' की पौने दो लाख प्रति रोज और प्रायः सवा दो लाख प्रति रविवार को बेचते हैं। फिर अखबार का दाम कम क्यों नहीं करते? उन्होंने यह भी लिखा था कि यह अर्थशास्त्र का साधारण-सा नियम है कि जब उत्पादन अधिक हो तो खर्च कम हो जाता है। अतः मूल्य भी कम होना चाहिए।

हमने जो उत्तर उन्हें भेजा वह शायद हमारे पाठकों के लिए रुचिकर हो। हमने उन्हें लिखा कि भाई साहब, दुर्भाग्यवश अर्थशास्त्र के जिस सिद्धांत की चर्चा आप कर रहे हैं, वह समाचार-पत्र पर लागू नहीं होता। यहां अखबार की प्रसार-संख्या अधिक होने से या दूसरे शब्दों में अधिक अखबार बिकने से लाभ के बदले घाटा बढ़ता जाता है। जो लोग समाचार-पत्र उद्योग में नहीं हैं उन्हें यह जानकर शायद आश्चर्य हो कि समाचार-पत्र की बिक्री से किसी समाचार-पत्र कंपनी का औसतन आधा खर्च भी नहीं निकल पाता है। कारण कि समाचार-पत्र उद्योग में जो प्रमुख कच्चा माल व्यवहार में आता है और जिसे बोलचाल की भाषा में अखबारी कागज कहते हैं, उसका दाम पिछले छह वर्षों में पांच गुना बढ़ गया है जबकि अखबारों का औसतन मूल्य दुगुना भी नहीं हुआ है।

समाचार-पत्रों के बारे में एक और दिलचस्प बात यह है कि दूर के स्थानों पर टैक्सी या हवाई जहाज से भेजने में अखबार की एक प्रति पर जितना खर्च आता है उसका आधा हिस्सा भी उसके मूल्य से नहीं मिलता। उदाहरण के लिए दिल्ली से कलकत्ता अंग्रेजी दैनिक समाचार-पत्र की एक प्रति भेजने पर कुल लागत ५५ पैसे आती है जबकि कमीशन काटकर मुश्किल से उसका मूल्य २५ पैसे प्रकाशक को मिलता है। उसी प्रकार दिल्ली से भोपाल एक प्रति हवाई जहाज से भेजने पर ४५ पैसे लागत आती है जबकि उसका मूल्य प्रकाशक को २५ पैसे मिल पाता है। अब यदि किसी

कारणवश उस समाचार-पत्र की बिक्री भोपाल में एक हजार कापी हो जाय तो उस अखबार कंपनी को छह हजार रुपया प्रति मास या ७२ हजार रुपया प्रति वर्ष का सीधा घाटा हो गया। एक बात जो अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए, वह यह कि बिक्री द्वारा इस घाटे की पूर्ति का कोई उपाय नही।

अखबारी कागज समाचार-पत्र उद्योग का प्रमुख कच्चा माल है और सारे खर्च का प्रायः साठ प्रतिशत इसी पर खर्च होता है। पिछले कुछ वर्षों में इसके मूल्य मे बेतहाशा वृद्धि हुई है।

अखबार के अर्थशास्त्र मे एक महत्वपूर्ण मोड़ १९७२ मे आया। उस समय दो प्रमुख घटनाए हुई जिनसे विश्व मे—प्रधानतः भारत मे, अखबारी कागज की सप्लाई और मूल्य दोनों पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। १९७१ के भारत-पाक युद्ध के बाद अमेरिका ने विदेशी सहायता देना बंद कर दिया, जिसके कारण सरकार ने अखबारी कागज के आयात मे भारी कटौती की। उसके अलावा इसी वर्ष विश्व की मंडियों मे भी अखबारी कागज की कमी हो गयी। इसके कई कारण है। एक तो यह कि अखबारी कागज का मुख्य सप्लायर कनाडा था वहा अखबारी कागज बनाने वालों ने उत्पादन में बहुत कमी कर दी, क्योंकि उनको इसमे नाममात्र का मुनाफा होता था। इस व्यवसाय में काम में आने वाली लुग्दी से उन्होंने कृत्रिम धागा बनाना शुरू कर दिया जिसमें अधिक लाभ था। 'वाटरगेट काड' के कारण अमेरिका में अखबारों की माग बहुत बढ़ गयी। इसलिए अमेरिका ने विश्व की मंडियों से भारी मात्रा मे कागज खरीद कर रख लिया। इसका असर भारत पर पड़ा, जहा पूर्ति मे ही कमी नहीं हुई बल्कि दाम भी बेतहाशा बढ़ गये।

१९७२ के बाद सारे विश्व में महंगाई का दौर आया। पश्चिम के देशों में तो उपभोक्ता वस्तुओ के दाम अनाप-शनाप बढ़ते गये। अखबारी कागज का दाम जो उस समय बढ़ना शुरू हुआ वह आज तक नही रुका है। १९७२ मे अखबारी कागज का दाम प्रायः १३०० रुपया प्रति टन था, आज उसका दाम ३८०० रुपया प्रति टन हैं। एक और आश्चर्य की बात यह हुई कि विदेशी अखबारी कागज के दाम बढ़ने के साथ-साथ भारत की नेपा मिल ने भी उसी अनुपात में दाम बढ़ा दिया। १९७२ में नेपा मिल के अखबारी कागज का दाम ११०० रुपया प्रति टन था। आज वह करीब ३६०० रुपया प्रति टन है।

प्रायः लोगों की धारणा है कि सरकार ने अखबारी कागज के कोटे में जो कमी की थी, नयी आयात नीति ने उसकी पूर्ति कर दी है। पर यह सत्य नहीं है। उस कटौती के एक छोटे से अंश की ही पूर्ति हुई है। यह एक बारीक बात है जिस पर ध्यान देना आवश्यक है। कहने का अर्थ यह है कि १९७३-७४ की तुलना में अखबारों की प्रसार-संख्या बहुत बढ़ी है जबकि उसके अनुरूप अखबारी कागज का कोटा अखबारों को नहीं मिला है। इस कमी को पूरा करने के लिए अखबार की कंपनियां सफेद कागज काम में लाती हैं, जिसका मूल्य छह हजार रुपया प्रति टन है। इसके अलावा अखबारी उद्योग में कई प्रकार से अखबारी कागज नष्ट होता है, जैसे पानी के जहाज पर लादने में, उसे बंदरगाह पर उतारने में। इसी प्रकार रेल पर चढ़ाने, ट्रक

पर लादने अथवा मशीन पर कागज चढ़ाने की प्रक्रिया में भी अखबारी कागज बड़ी मात्रा में नष्ट होता है। कभी-कभी इस तरह से कागज के नष्ट होने का प्रतिशत २० तक पहुंच जाता है जबकि सरकार इसके लिए सात प्रतिशत देती है। इस कमी को अखबार की कंपनी बाजार से सफेद कागज खरीद कर पूरा करती है। इससे अखबारों का खर्च अधिक बढ़ जाता है।

अखबारी कागज के अलावा एक बड़े अखबार की कंपनी में प्रति वर्ष लाखों रुपये की स्याही लगती है। पिछले वर्ष स्याही बनाने वाली कंपनियों ने स्याही का दाम एकाएक तीन गुना बढ़ा दिया। पहले यदि किसी कंपनी में एक लाख रुपया प्रतिमास स्याही पर खर्च होता था तो इस बढ़ोतरी के फलस्वरूप अब तीन लाख होता है।

अखबारों की मुख्य आमदनी विज्ञापन ९ होती है। अखबारी उद्योग में पहले एक बहुत बड़ा आकर्षण था कि यदि आप प्रसार-संख्या बढ़ा लें तो ढेर सारे विज्ञापन आपको मिल जायंगे तथा आप विज्ञापन की दर भी बढ़ा सकते हैं। विज्ञापनदाता को बढ़ी दर में विज्ञापन देने मे एतराज नहीं होगा। प्रायः एक वर्ष में इस स्थिति में भारी परिवर्तन हो गया है। प्रायः सभी बड़े अंग्रेजी के अखबारों में प्रथम पृष्ठ पर छपने वाले विज्ञापनों की दर साधारण दर से दुगुनी होती है। पिछले अनेक वर्षों मे अंग्रेजी का कोई भी समाचार-पत्र ऐसा नहीं था जिसे प्रथम पृष्ठ पर विज्ञापन मिलने मे कठिनाई होती हो। सत्य यह था कि लोग प्रथम पृष्ठ पर विज्ञापन देने के लिए लाइन लगाये रहते थे और इसके लिए दुगुनी से भी अधिक दर देने को तैयार रहते थे। समाचार-पत्रों मे अब महीने मे अनेक दिन ऐसे बीत जाते है जब प्रथम पृष्ठ के लिए विज्ञापन नहीं मिल पाते। पहले तो बड़े समाचार-पत्रों मे विज्ञापनों की एक-एक महीने की अग्रिम बुकिंग रहती थी, लेकिन अब तो करीब-करीब दो-तीन दिन की ही रहती है और हर विज्ञापन मैनेजर घोर चिंता में दिन बिताता है कि तीन दिन बाद क्या होगा ?

विज्ञापन की दुनिया मे एक और महत्वपूर्ण परिवर्तन आया हुआ है। अखबारों को विज्ञापन मुख्यतः विज्ञापन-एजेंसियों से मिला करते हैं। ये एजेंसियां विज्ञापनदाताओं से विज्ञापन बटोर कर समाचार-पत्रों को दिया करती हैं। समाचार-पत्र उनको इस पर औसतन १५ प्रतिशत कमीशन दिया करते है। अचानक इन एजेंसियों की हालत बहुत खराब हो गयी है। पिछले दिनों तीन बहुत बड़ी एजेंसियों का एकाएक दिवाला निकल गया है और देश के प्रमुख चार-पांच अखबारों का करीब एक करोड़ रुपया इनमे डूब गया है। हो सकता है कि कुछ और विज्ञापन एजेंसियां अगले कुछ महीनों मे बैठ जायं। इन विज्ञापन एजेंसियों के बैठने के कई कारण हैं। जाच करने पर पता चला है कि इन विज्ञापन एजेंसियों को पहले बड़े-बड़े उद्योगों से समय पर पैसे मिल जाते थे। अब ये उद्योग एक तो विज्ञापन को उतना महत्व नहीं देते, दूसरे ऋण-संकोच के कारण स्वयं उनको अब पैसे की तंगी रहती है। अतः वे महीनों तक और कभी-कभी सालों तक एजेंसियों का बकाया नहीं चुका पाते। उधर समाचार-पत्रों का, जिन्होंने उनको उधार पर विज्ञापन देने की छूट दी थी, बराबर तकाजा आता रहता है। नतीजा यह होता है कि ये एजेंसियां डूब जाती हैं।

यह भी पता चला कि पिछले कुछ वर्षों में इन कंपनियों ने अपने खर्च बहुत

बढ़ा लिये थे। इनका खर्च आमदनी से भी अधिक होने लगा था। मुख्यतः इनका खर्च स्टाफ पर बढ़ा तथा पार्टियों एवं जन-संपर्क पर भी बहुत खर्च हुआ। जब तक इनको बाजार से रुपया मिलता रहता था, कठिनाई नहीं होती थी। पर रुपया न आने और खर्च उसी तरह बना रहने पर विज्ञापन एजेंसियां डूबने लगीं। विज्ञापन एजेंसियों के मजबूत रहने से समाचार-पत्रों की आर्थिक स्थिति भी मजबूत थी क्योंकि उन्हें भरोसा था कि देर-सबेर रुपया मिल ही जायगा। पर एजेंसियों का भविष्य अंधकारमय होने से एक बड़ी ही अनहोनी समस्या उत्पन्न हो गयी है।

हमने शुरू में ही लिखा है कि अखबारों की बिक्री बढ़ने से वस्तुतः समाचार-पत्रों को घाटा ही होता है। पिछले दो वर्षों में यह घाटा और भी बढ़ा है। कारण कि पेट्रोल के दाम बढ़ने से जो अखबार टैक्सियों के द्वारा निकटवर्ती क्षेत्रों में भेजे जाते थे उन पर पहले की अपेक्षा लगभग दुगुना खर्च आ रहा है। इसी प्रकार हवाई जहाज का शुल्क बढ़ने से भी यह खर्च लगभग दुगुना हो गया है। अखबार तो बहुत जल्दी खराब होने वाली या 'अल्पजीवी' किस्म की जिंस है। अगर इसे उपभोक्ता यानी पाठक तक पहुंचने में देर हो तो इसका कोई मूल्य ही न रह जायगा। अतः अखबार वाले कोशिश करते हैं कि इसे जल्दी से जल्दी उपभोक्ता तक पहुंचा दें। इसीलिए उन्हें टैक्सी या विमान का सहारा लेना पड़ता है।

महंगाई ने अपना असर अखबार के प्रसार के खर्च पर बुरी तरह से दिखाया है। पहले साधारणतः अखबार के एजेंटों को २५ प्रतिशत कमीशन मिल जाता था तो उन्हें पूरी संतुष्टि हो जाती थी। पर अब वे अधिक कमीशन की मांग कर रहे हैं। उनका कहना है कि उनके यहां काम करने वाले कर्मचारी अधिक वेतन मांग रहे हैं और साइकिलों का दाम भी बढ़ गया है जिससे कि हाकर अखबार बांटते हैं। अखबार की कंपनियों को इन मांगों को धीरे-धीरे मानना पड़ रहा है और औसतन कमीशन अब ३० प्रतिशत से भी अधिक होता जा रहा है। इसके अलावा हर बड़े शहर में अखबार के एजेंटों और हाकरों की एसोसिएशन बन गयी है जिसके सामने अखबार के प्रबंधकों को झुकना पड़ रहा है। इनकी मांगें मानने का अर्थ है अखबार का खर्च और अधिक बढ़ाना।

अखबारों में अखबारी कागज के बाद सब से अधिक खर्च समाचार-संकलन पर आता है। यह सच है कि समाचार एजेंसियों पर बहुत अधिक खर्च नहीं आता पर समाचार में विविधता लाने के लिए हर बड़े अखबार को संसार के विभिन्न देशों की राजधानियों तथा अपने देश के हर बड़े शहर में संवाददाता रखने पड़ते हैं, जिन पर बहुत खर्च आता है। पिछले महीने से कुछ समाचार एजेंसियों ने भी अपने शुल्क में वृद्धि कर दी है। इन सब बातों का असर समाचार-पत्रों की अर्थ-व्यवस्था पर पड़ रहा है।

अभी हाल में सरकार ने पत्रकार तथा गैर-पत्रकार दोनों के लिए वेतन-मंडल के गठन की घोषणा कर दी है। प्रायः एक वर्ष के अंदर इसकी सिफारिशें आ जायंगी जो कानूनन माननी होंगी। इसका सीधा अर्थ होगा कि हर तबके के कर्मचारी के वेतन और भत्ते में वृद्धि की जाय।

अपने देश में प्रायः हर बड़े अंग्रेजी अखबार के साथ एक-दो हिंदी या क्षेत्रीय भाषा के अखबार भी प्रकाशित हो रहे हैं। कहीं-कहीं तो हिंदी के समाचार-पत्र स्वतंत्र रूप से भी प्रकाशित हो रहे हैं। यह एक दिलचस्प बात है कि हिंदी दैनिकों की संख्या इस देश में सब से अधिक है। १९७३ में २५५ हिंदी दैनिक प्रकाशित होते थे। १९७२ की तुलना में इनकी प्रसार-संख्या में ६५ प्रतिशत की वृद्धि हुई। मराठी के दैनिक पत्रों की प्रसार-संख्या में ५१ प्रतिशत वृद्धि हुई और मलयालम के दैनिक पत्रों में ४२ प्रतिशत वृद्धि हुई जबकि अंग्रेजी दैनिकों के प्रसार में, जो समाचार-पत्रो में अग्रगण्य हैं, केवल २५ प्रतिशत की वृद्धि हुई।

हिंदी के पत्रों में औसत वृद्धि तो अवश्य हुई, परंतु जनसंख्या के दृष्टिकोण से बहुत अधिक वृद्धि नहीं हो पायी है। १९७२ की तुलना में १९७३ में प्रति एक हजार की आबादी वाले क्षेत्र में केवल १० प्रति प्रसार-संख्या बढ़ी, जबकि उर्दू की २४ प्रति, मराठी की २२ प्रति, गुजराती की २९ प्रति, और सब से अधिक मलयालम की ५० प्रति बढ़ी। इसका एक प्रमुख कारण यह रहा है कि हिंदी के क्षेत्र में साक्षरता की अभी भी कमी है।

प्रसार-संख्या में जो भी वृद्धि हुई हो, परंतु अर्थव्यवस्था के दृष्टिकोण से हिंदी पत्रों की हालत अत्यंत ही दयनीय है। वैसे भी खबरों की विशेषता और खबरों के कवरेज के ख्याल से, संपादकीय लेखों के ख्याल से और विज्ञापन की कापी के ख्याल से हिंदी का पत्र अंग्रेजी के पत्रों से बहुत पीछे रहा है। हिंदी के पत्रों में एक बड़ी खामी यह रही है कि ये स्वतंत्र रूप से अपना अस्तित्व सिद्ध नहीं कर पाये हैं। खबरों के लिए ये देशी-विदेशी समाचार-एजेंसियों पर निर्भर रहते हैं। फिर उनके यहां उप-संपादकों का कार्य शुरू होता है जो अंग्रेजी से हिंदी में कम से कम समय में अच्छा अनुवाद कर सकें। इसके लिए जो व्यक्ति यह काम करता है उसे दोनों भाषाओं में निपुण होना चाहिए। प्रायः देखने में यह आया है कि जो लोग हिंदी में निपुण होते हैं वे अंग्रेजी में उतनी दक्षता नहीं रखते। इसका परिणाम यह होता है कि समाचारों या फीचरों का जो असली मतलब होना चाहिए वह पाठकों तक पहुंच नहीं पाता है। फिर इस दक्षता के अभाव में कभी-कभी बहुत आवश्यक समाचार भी अखबार में समय की कमी के कारण अनुवादित होने से और छपने से रह जाते हैं।

कुछ बड़े अखबारों को छोड़ कर शेष हिंदी दैनिकों की आर्थिक हालत ऐसी नहीं रहती है कि वे विदेशों में या अपने देश में ही अलग-अलग शहरों में अपने प्रतिनिधि रख सकें और उनकी खबरों को छाप सकें। अधिकतर लोग करते यह हैं कि इस काम के लिए वे पार्ट-टाइम प्रतिनिधि या रिपोर्टर रख लेते हैं या फिर अंग्रेजी में छपे हुए समाचारों को दूसरे दिन अनुवादित कर छाप देते हैं और अनुवाद भी अधिकतर बेसिर-पैर का होता है। इसका परिणाम यह होता है कि साधारण पाठक हिंदी के समाचार-पत्रों को हेय दृष्टि से देखता है।

स्थिति बड़ी अजीब सी है। चूंकि हिंदी के समाचार-पत्रों को घाटा होता है वे इस स्थिति में नहीं रहते हैं कि अधिक वेतन देकर योग्य व्यक्तियों को रख सकें। जब योग्य व्यक्ति नहीं रह पाते हैं तो स्वभावतः पत्र का स्तर गिरता चला जाता है।

घटिया-स्तर होने के कारण पाठकों को भी निराशा होती है और पाठक समझता है कि उसने जितना पैसा अखबार खरीदने में खर्च किया उसके बराबर उसे खबर नहीं मिल पायी है। अनुभव के आधार पर यह देखा गया है कि बड़े पत्र-समूहों में जब प्रसार विभाग के अधिकारियों से हिंदी के अखबारों की प्रसार-संख्या बढ़ाने को कहा जाता है तो वे कतराते हैं। इसी प्रकार जब विज्ञापन-विभाग के अधिकारियों से विज्ञापन लाने को कहा जाता है तो वे भी आंख चुराते हैं। ऐसा देखा जाता है कि हिंदी के पत्रों के लिए काम करना लोग हेय समझते हैं।

शायद दोष हमारी मनोवृत्ति में ही है। हम अभी भी इस मनोवैज्ञानिक स्थिति से ऊपर नहीं उठ पाये हैं कि लोग हमें तभी माडर्न समझेंगे जब हम कोई न कोई अंग्रेजी अखबार पढ़ें अथवा अपने ड्राइंग-रूम में रखें। हिंदी का अखबार अपने ड्राइंग-रूम में रखने में लोगों को बड़ी हिचक होती है। मैंने स्वयं भी कई बार अनुभव किया है कि अगर किसी ऊंचे तबके वाले के ड्राइंग-रूम में हिंदी का अखबार मिले तो वे हीन भावना से ग्रस्त होकर कहने लगते हैं कि यह अखबार तो गलती से उनका नौकर या ड्राइवर यहां छोड गया है, जो कि इसे पढता है। रूस या जापान जैसे देशों मे कोई कभी इस तरह की बात नहीं करेगा। अगर कोई करे तो लोग उसकी ओर घृणा की दृष्टि से देखेंगे। पता नहीं अपने देश में वह दिन कब आयेगा।

हिंदी पत्रों को तकनीकी कठिनाइयों का भी बहुत सामना करना पड़ता है। वहां कंपोजिंग प्रायः दो प्रकार से ही होती है—लाइनो या मोनो मशीनों द्वारा अथवा हाथ से कंपोजिंग।

मशीन द्वारा कंपोजिंग अर्थात् लाइनो या मोनो कंपोजिंग सब से अधिक अच्छी और समय बचाने वाली पद्धति है, परंतु इसमें बहुत अधिक धन लगाना पडता है। इन मशीनों पर बहुत आर्थिक खर्च होने के कारण छोटे शहरों में चलने वाले हिंदी दैनिक प्रायः ऐसी मशीनें नहीं लगा पाते है। एक और दिक्कत यह है कि देवनागरी के टाइप रोमन टाइपों की अपेक्षा बडे होते हैं और अधिक मात्रा होने के कारण इन्हें टाइप करने में बडी कठिनाई होती है। हिंदी के की-बोर्डों के बड़े होने के कारण भी मैटर को कंपोज करने में अधिक समय लगता है। हाथ द्वारा कंपोजिंग तो और भी अधिक कठिन, कष्टप्रद एवं समय लेने वाली है।

स्वतंत्रता के २८ वर्ष बाद भी हम देवनागरी लिपि में कुछ ऐसा महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं कर पाये हैं जिससे उसकी छपाई में सुविधा हो।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है प्रायः हिंदी दैनिक पत्र घाटे में चल रहे हैं। देश के जो दो प्रमुख हिंदी दैनिक हैं उन्हें यदि अपने दैनिक अंग्रेजी पत्रों से सहायता नहीं मिलती तो वे कब के बंद हो गये होते। कारण यह है कि प्रसारण अधिक होने से इनके खर्च बढ़ते जा रहे हैं, परंतु इन अखबारों को औसतन २५ प्रतिशत विज्ञापन भी नहीं मिल पाते हैं और जो विज्ञापन मिलते हैं, उनकी दर बहुत कम होती है। उदाहरण के लिए दिल्ली के जो दो प्रमुख अंग्रेजी दैनिक समाचार-पत्र हैं उनमें विज्ञापन की दर हिंदी के सहयोगी समाचार-पत्रों की अपेक्षा ५० प्रतिशत अधिक है। यही नहीं अंग्रेजी समाचार-पत्रों में हिंदी के सहयोगी समाचार-पत्रों की अपेक्षा विज्ञापन की

संख्या भी दूनी रहती है। प्रायः यह देखा गया है कि उपभोक्ता वस्तु या कृषि में काम आने वाले मशीनी औजार या मशीनों के विज्ञापन अंग्रेजी अखबारों में ज्यादा आते हैं बनिस्बत हिंदी के। इसका प्रमुख कारण यह है कि अपने देश में उद्योगपति एवं विज्ञापन-एजेंसियां यह मानकर चलती हैं कि हिंदी पत्र प्रायः वे लोग पढते हैं जिनके पास उपभोक्ता वस्तु खरीदने के लिए पैसा नहीं है। यह एक मनोवैज्ञानिक प्रश्न है जिस पर गंभीरता से विचार करने की आवश्यकता है। हमने एक प्रयोग किया जो इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है। दैनिक हिंदुस्तान की बिक्री गावों में बहुत होती है। हमने ट्रैक्टर तथा कृषि-यंत्र बनाने वाली दो कंपनियों को उत्साहित किया कि वे इस पत्र में विज्ञापन दें। उन्होंने राय मान ली और इससे कुछ ही दिनों मे उनकी बिक्री बढ़ गयी। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। हिंदी का पत्र वे लोग पढते हैं जिनके पास कृषि-आय है, जिस पर कि टैक्स नगण्य है। ये लोग कृषि-यंत्रों के अलावा रेडियो, टेलीविजन आदि उपभोक्ता वस्तुएं खरीदने की क्रय-शक्ति रखते है, इसमें संदेह नहीं।

छोटे-छोटे शहरो से निकलने वाले हिंदी पत्रों के साथ यह दुर्भाग्य भी है कि उन्हें विज्ञापनदाताओं एवं विज्ञापन एजेंसियों को साधारण कमीशन से कुछ ज्यादा कमीशन देना पड़ता है जिससे उन्हें विज्ञापन मिल सके।

दुर्भाग्य की बात यह है कि अपने देश में सरकार ने भी हिंदी पत्रों की तुलना में अंग्रेजी पत्रों के साथ बहुत ही पक्षपातपूर्ण रवैया अपनाया है। सरकार के एक सर्वेक्षण में कहा गया है कि १९७२-७३ में विज्ञापनों की ओर सरकार ने जो कुछ खर्च किया उसका प्रायः ४५ प्रतिशत अंग्रेजी के अखबारों को मिला। सन् १९७३-७४ में यह पढ़कर करीब ४८ प्रतिशत हो गया जबकि इधर १९७२-७३ मे हिंदी अखबारों को सरकारी विज्ञापनों के व्यय का कुल २१ प्रतिशत ही मिला जो १९७३-७४ में घटकर १८ प्रतिशत रह गया।

विदेशों मे होता यह है कि हर समाचार-पत्र अपना अलग अस्तित्व रखता है और उनमे आपस में होड़ होती है कि कौन समाचार-पत्र सब से आगे निकल पाता है। दुर्भाग्यवश अपने देश मे हिंदी समाचार-पत्रों के साथ ऐसी स्थिति नही रही। हिंदी के समाचार-पत्र शुरू से ही वित्तीय कठिनाइयो से जूझते रहे और आज यह स्थिति हो गयी है कि यदि कोई योग्य व्यक्ति हिंदी की पत्रकारिता मे आना चाहता है तो उसे न तो पूरा वेतन और न अन्य सुविधाएं मिल पाती हैं, जो अंग्रेजी के पत्रकारों को मिलती है। न ही उसे वह सम्मान एवं आदर प्राप्त होता है जो अंग्रेजी पत्रकारों को। परिणाम होता है निराशा। फलस्वरूप युवा प्रतिभाशाली लोग हिंदी की पत्रकारिता में यदि गलती से आ भी जायं तो वर्ष-दो वर्ष में छोड़ कर चले जाते है।

हिंदी समाचार-पत्रो में एक दोष यह भी है कि इन पत्रों ने अपने स्तर को ऊंचा उठाने का प्रयास नही किया है। ये पत्र बहुत आसानी से अनेक प्रकार के दबावों में आ जाते हैं जिससे इनका स्वतंत्र अस्तित्व समाप्त हो जाता है। आवश्यकता इस बात की है कि हिंदी समाचार-पत्रों में प्रतिभाशाली लोग आयें और उन्हें वे सभी सुविधाएं दी जायं जो अंग्रेजी पत्रकारों को दी जाती है और उन्हें इसके लिए उत्साहित किया जाय कि वे अंग्रेजी के अखबारों से हटकर स्वतंत्र रूप से लेखन एवं रिपोर्टिंग करें।

तीस लाख क्यों नहीं ?

मेरे एक मित्र हैं, शिक्षित, युवा एवं हिंदी के प्रकांड पंडित। एक-दो साल हुए उन्होंने हमारे ही कार्यालय में हिंदी सह-संपादक का पद ग्रहण किया है। मन में उत्साह है, जवानी का जोश तथा हिंदी की धीमी पत्रकारिता के प्रति पीड़ा। उन्होंने बड़ी उत्तेजना से प्रश्न किया कि हमारे हिंदी दैनिक 'नवभारत टाइम्स' का प्रसार केवल तीन लाख क्यों, ३० लाख क्यों नहीं? हिंदी-प्रधान देश की ६० करोड़ की आबादी में ३० प्रतिशत पढ़े-लिखे तथा उससे कहीं अधिक हिंदी जानने वाले हैं तो क्या कारण है कि हिंदी पत्र-पत्रिकाओं की बिक्री इतनी कम है? रोग कहां है और इसका उपाय क्या है? पचीस-तीस साल के प्रसार विभाग के कार्यकाल में पहली बार किसी ने मुझसे इस तरह का प्रश्न किया था। १९४७ में जन्मे दैनिक 'नवभारत टाइम्स' की ६ हजार से ३ लाख प्रतियां इस समय छपती हैं। भारत में प्रकाशित होने वाले सभी हिंदी पत्रों में यह अधिकतम बिकने वाला हिंदी दैनिक है, परंतु मेरे युवा मित्र का प्रश्न गलत नहीं था। रोग कहां है, उसे ही खोजने का प्रयत्न मैं यहां करूंगा।

हमारे देश में सब से दुर्भाग्यपूर्ण बात यह है कि यहां ऐसी कोई संस्था नहीं है जो उक्त बात की खोज करे तथा इस व्यवसाय का मार्गदर्शन करे। अन्य देशों में हर व्यवसाय के लिए, जिसमें पत्रकारिता भी सम्मिलित है, हर प्रकार के आंकड़ों की खोज के साधन मौजूद हैं। भारत में भिन्न-भिन्न संस्थाओं ने सीमित रूप से आंकड़े इकट्ठे कर रखे हैं, परंतु ऐसा कोई ग्रंथ नहीं है जो इतने बड़े व्यवसाय का मार्गदर्शन करे। सब से पहले यदि किसी योजना की आवश्यकता है तो एक शोध विभाग की, जो आबादी, शिक्षित वर्ग, आमदनी, व्यवसाय, आवागमन के साधन आदि के संबंध मे उचित रूप से आंकड़े एकत्र करे ताकि उनका उपयोग पत्रकारिता के विकास के लिए किया जा सके।

रजिस्ट्रार आफ न्यूजपेपर की १९७३ की रिपोर्ट के अनुसार भारत में कुल २२५ हिंदी दैनिक प्रकाशित होते थे जिनकी लगभग साढ़े पंद्रह लाख प्रतियां प्रतिदिन प्रकाशित होती थीं। परंतु प्रकाशकों तथा विज्ञापन संस्थाओं द्वारा स्थापित संस्था 'ए० बी० सी', जो समस्त पत्र-पत्रिकाओं के आंकड़े प्रकाशित करती है, की दिसंबर १९७४

की रिपोर्ट के अनुसार इसके केवल २४ सदस्य ही हैं, इनकी शुद्ध बिक्री १० लाख है इसमें से ६ लाख पाठक हिंदी भाषी आठ प्रांतों में तथा १ लाख पाठक अहिंदी भाषी प्रांतों में हैं। १६७१ की जनगणना के अनुसार हिंदी भाषी आठों प्रांतों—बिहार, हरियाणा, राजस्थान, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, पंजाब, चंडीगढ़, उत्तर प्रदेश तथा दिल्ली की कुल आबादी २४.३ करोड़ थी। उसमें से ५.५ करोड़ शिक्षित लोग थे। यदि एक परिवार के औसत सदस्य पांच मान लिये जायं तो हिंदी प्रदेशों में १.१ करोड़ शिक्षित परिवार हैं। चाहे परिवार किसी भी प्रांत में आकर बसा हो, उसका कोई न कोई सदस्य तो अवश्य ही हिंदी पढ़ा-लिखा होगा। परंतु इन सब प्रांतों में हिंदी पत्रों, दैनिक पत्रों की लगभग नौ लाख प्रतियां बिकती हैं; यानी प्रति हजार परिवारों में केवल ८१ प्रतियां। यों साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक इत्यादि पत्रिकाओं की तो केवल ७६ प्रतियां ही जाती हैं। बिक्री के ये आंकड़े केवल उन दैनिक पत्रों के ही हैं जो 'ए० बी० सी०' के सदस्य हैं या जिनको जुलाई-दिसंबर १६७४ में प्रमाण पत्र मिले हैं। आज के युग में जो 'ए० बी० सी०' के सदस्य नहीं हैं वे इतने छोटे-छोटे पत्र हैं कि उनका उल्लेख नही करना चाहते। यदि 'ए० बी० सी०' की तुलना प्रेस रजिस्ट्रार की रिपोर्ट से की जाय इस प्रकार होगी :

	'ए० बी० सी०' के सदस्य	प्रेस रजिस्ट्रार
कुल हिंदी दैनिक	२४	२२५
बिक्री	१०११ हजार	१५३६ हजार
कुल पत्रिकाएं	१७	२८५८
बिक्री	१०६६ हजार	५३२३ हजार

यदि प्रेस रजिस्ट्रार के आकडों को सत्य मान लिया जाय तो भी प्रति हजार परिवारों में केवल १२० दैनिक तथा ३६५ पत्रिकाएं बिकती हैं।

हिंदी प्रांतों की सूची इस प्रकार है :

प्रांत	कुल आबादी	शिक्षित आबादी	कुल परिवार	बिक्री प्रति अंक दैनिक	बिक्री प्रति अंक पत्रिकाएं	प्रति १००० परिवारों पर दैनिक	प्रति १००० परिवारों पर पत्रिकाएं
	हजारों में						
दिल्ली	४०६६	२२६१	४५८	१२१	११७	२६४	२५५
उत्तर प्रदेश	८८३४१	१६१२४	३८२५	२७६	२६५	७३	७७
राजस्थान	२५७२४	४८३४	६६७	६२	६०	६५	६३
बिहार	५६३५३	१११४६	२२३०	११४	१४८	५१	६७
हरियाणा	१००३७	२६६१	५३२	४२	२४	७६	४५
हिमाचल	३४६०	१०७३	२१५	१३	७	६०	३२
मध्य प्रदेश	४१६५४	६२१५	१८४३	१७२	१५६	६३	८६
पंजाब	१३८०८	४६५६	६३१	६०	३०	६४	३२
कुल	२४३४४३	५५००३	११००१	८६३	८७०	८१	७६

गए करोड़ परिवारों तक या तो पत्र-पत्रिकाएं नहीं पहुंच पाती हैं या उनको हम इस बात से प्रभावित नहीं कर पाते है कि वे हिंदी पत्र-पत्रिकाएं पढ़ें, हिंदी के पत्रकारों को ही नहीं, हिंदी प्रेमी संस्थाओं को भी इस दिशा में निरंतर प्रयास करना चाहिए। यदि इन आंकड़ों को हिंदी के पत्रों के पाठकों का सूचक मान लें तो परिणाम लज्जाजनक है। हो सकता है कि दूसरे प्रांतों में संचार साधनों की कमी के कारण या प्रसार विभाग की कमजोरी के कारण पत्र नहीं पहुंच पाते हों। परंतु दिल्ली के कोने-कोने में, गली-गली में पत्र उपलब्ध होने हुए भी केवल एक चौथाई लोग ही हिंदी दैनिक का प्रयोग करते हैं। इसमें भी बड़ी संख्या में दैनिक पत्र दुकानों, सरकारी दफ्तरों आदि जगहों पर पहुंचते है। परिवारों मे पहुंचने वाले पत्रों की संख्या शायद इनसे तो कहीं कम होगी।

इस संदर्भ में आइए, हम हिंदी पत्र-पत्रिकाओं के संपादन तथा प्रसार व्यवस्था की जाच करें कि ये दोनों परस्पर पाठकों की आशाओं तथा मानसिक आकांक्षाओं को कहां तक पूरा करने में समर्थ हैं।

संपादकीय विभाग का दायित्व

आज के इस विज्ञान के युग का पाठक हर प्रकार से सतर्क है। स्वतंत्रता से पूर्व पत्रकारिता का उद्देश्य, उसकी शैली, आज की शैली तथा पाठकों की अपेक्षाएं बहुत भिन्न है। स्वतंत्रता से पूर्व प्रत्येक देशवासी के मन मे आजादी की आग प्रज्वलित थी। उस समय संपादक के नाम पर पत्र-पत्रिकाएं बिकती थी। हमारा उद्देश्य, हमारा लक्ष्य निर्धारित था। यद्यपि उस समय पत्र-पत्रिकाओं का प्रसार कम था परंतु पाठकों के मन में संपादक के प्रति श्रद्धा होती थी, आस्था होती थी; आज संपादक नहीं, संपादक की सामग्री बिकती है। इसलिए सब से पूर्व संपादकीय विभाग को इस बात की जाच करनी होगी कि त्रुटि कहां है। जहां दैनिक पत्रों के पाठन का मन पर प्रभाव काफी देर तक रहता है वहा इसका अपना जीवन बहुत छोटा होता है। पत्रकारिता के व्यवसाय में संलग्न सभी कार्यकर्ताओं की योग्यता का रहस्य इसी में है कि समाचार को कितनी तेजी से अपने पाठक तक पहुचाया जा सकता है। आज जब रेडियो हर घंटे समाचार उगलता है तो दैनिक पत्र कोई क्यो पढ़े? परंतु यह भी सत्य है कि रेडियो तथा दूसरे माध्यमों से समाचार सुनने के पश्चात भी लिखित समाचार पढ़ने की उत्सुकता बनी रहती है। यहीं संपादकीय विभाग की योग्यता को चुनौती है।

मैं अपने देश के समाचार-पत्रों को दो भागों में बांटना चाहूंगा। एक तो वे जो अपने आपको राष्ट्रीय पत्र कहते हैं तथा दूसरे प्रादेशिक पत्र। दोनों अपनी-अपनी जगह पर रोग-ग्रस्त है। नेशनल पेपर की श्रेणी में हिंदी के केवल दो ही पत्र 'नवभारत टाइम्स' तथा 'हिंदुस्तान' है। परंतु दूसरी श्रेणी में शेष दैनिक पत्र हैं। पहले वर्ग के पास साधन है, परंतु वे उनका पूरा प्रयोग नहीं कर पाते। देश-विदेश के समाचारों को पृष्ठ सीमित होने के कारण स्थान नहीं दे पाते। जब पत्र पाठक के पास पहुंचता है तो उसकी संतुष्टि नहीं हो पाती। वह अपने प्रांत, अपने स्थान के समाचारों के अभाव से असंतुष्ट है। हर प्रांत, हर छोटे-बड़े गांव का निवासी इस बात की आशा करता है कि पत्र उसकी आशाओं-आकांक्षाओं को, उसकी पीड़ाओं को प्रकाशित करें। आखिर इसका उपाय

क्या है ? इसका एकमात्र हल यह है कि भिन्न-भिन्न प्रांतों के लिए भिन्न-भिन्न, संस्करण निकालें ताकि उनकी समस्याओं को पर्याप्त स्थान मिल सके। इस आशा की पूर्ति के लिए प्रसार विभाग के सहयोग से तथा आवागमन के साधनों के अनुसार प्रात: संस्करणों का पुनर्गठन किया जाय। 'नवभारत टाइम्स' की दैनिक प्रतियों का ८० प्रतिशत प्रात. वायुयान, टैक्सी, बसों तथा गाड़ियों द्वारा जाता है। इस प्रभात संस्करण की भिन्न-भिन्न प्रतियां एडीशनों में बांटना आवश्यक है। १९७३-७४ मे कागज की कमी के कारण जब यह पत्र केवल चार पृष्ठों में ही प्रकाशित होने लगा तो प्रभात संस्करण को चार भागों में बांटा गया : १. उत्तर प्रदेश, २. पंजाब, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, जम्मू-कश्मीर, ३. मध्य प्रदेश, बिहार तथा ४. दिल्ली।

यह व्यवस्था बहुत लाभदायक रही और इसी के कारण ही थोड़े पृष्ठों तथा मूल्य वृद्धि के उपरांत भी प्रसार में खास कमी नहीं हुई। अब जब पृष्ठ संख्या बढ़ गयी है तो संपादन में कुछ ढील आ गयी है। यदि प्रसार को बढ़ाना है तो इन संस्करणों को पूर्ण रूप से इन बातों की ओर ध्यान देना होगा। इसके लिए मेरे कुछ सुझाव इस प्रकार हैं :

१. हर जिले में एक योग्य संवाददाता की नियुक्ति।

संवाददाता का गांव-गांव घूम कर खबर भेजना तथा वहां की वास्तविक स्थिति से पाठक को परिचित कराना।

३. गांव के लघु उद्योग तथा खेती-बाड़ी पर उपयोगी सामग्री का प्रकाशन।

४. एक या दो पृष्ठ केवल उसी क्षेत्र को समर्पित करना जहां वह संस्करण बिकता हो।

५. नगर संस्करण में नगर के भिन्न-भिन्न वर्गों तथा व्यवसायों के आधार पर उचित लेखों का प्रकाशन।

इन सुझावों को कार्यान्वित करने से ये लाभ होने की संभावना है :

१. प्रादेशिक पृष्ठ दिन मे ही तैयार हो सकेंगे और रात में संपादकीय विभाग तथा प्रेस अंतर्राज्यीय तथा विदेशी समाचारों की ओर अधिक ध्यान दे सकेगा।

२. प्रसार में वृद्धि, तथा

३. विज्ञापन विभाग के लिए नयी दिशाएं खुलना संभव होगा।

प्रसार ही किसी पत्र-पत्रिका की सफलता की एकमात्र कुंजी है। परंतु दुर्भाग्यवश इस विभाग को महत्वपूर्ण नहीं समझा जाता। आज के वैज्ञानिक युग मे पत्र का प्रसार अपने आप मे एक बड़ा ही महत्वपूर्ण क्षेत्र है। परंतु अधिकतर प्रकाशक इसकी महत्ता को समझ ही नहीं पाये। कई एक प्रकाशकों की ऐसी धारणा है कि प्रसार तो अपने-आप ही होगा। चाहे किसी को उस कुर्सी पर बिठा दें, वह कार्य कर लेगा। जहां कार्य में सुधार की आवश्यकता है वहां यह भी आवश्यक है कि प्रसार विभाग भी दूरदर्शी, योग्य व्यक्ति के हाथ में हो तथा इस विभाग को भी उतना ही महत्व दिया जाय जितना संपादकीय विभाग को प्राप्त है।

प्रसार विभाग तथा संपादकीय विभाग का तालमेल

पत्र अपने-आप में तो केवल कुछ पृष्ठों का संग्रह है। परंतु उसमें पत्र से संबंधित प्रत्येक कार्यकर्ता के दायित्व में तालमेल की अत्यंत आवश्यकता होती है तथा यह जरूरी है कि प्रत्येक व्यक्ति इन बातों से भिज्ञ हो।

१. प्रसार विभाग द्वारा भिन्न-भिन्न संस्करणों की योजना का पूर्ण ज्ञान।

२. बिक्री का तथा भिन्न-भिन्न संस्करण जो वहां जाते हैं उनका पूर्ण ज्ञान।

३. घुमंतू संवाददाता को अपना कार्यक्रम पहले से ही निर्धारित करना चाहिए तथा उसके कार्यक्रम का ज्ञान प्रसार विभाग को होना चाहिए ताकि जहां वह जाय वहां पहले से ही प्रचार द्वारा पाठकों को अवगत कराया जा सके, और प्रसार की वृद्धि का लाभ वह भी उठा सके।

४. जिन-जिन लघु उद्योगों तथा खेती-बाड़ी पर लेख देने हों, विज्ञापन विभाग को पूर्व सूचना हो, ताकि वह भी उसके अनुसार योजना बनाये।

५. सब से महत्वपूर्ण बात यह है कि समय की पाबंदी का दृढ़ता से पालन किया जाय यानी प्रतियां समय पर भेजी जायं।

६. प्रसार विभाग की ओर से कम से कम छह महीनों में एक बार प्रादेशिक तथा नगर संस्करण की खपत की सूची भेजी जानी चाहिए, ताकि संपादकीय विभाग समाचारों के प्रकाशन में ठीक चुनाव कर सके।

प्रसार

एक सुखद मोड़ हिंदी पत्रों की बिक्री में, १९७१ की तुलना में, १९७४ में आया। जहां अंग्रेजी के पत्रों का प्रसार रुक गया है, हिंदी दैनिक पत्रों में १७ प्रतिशत की वृद्धि हुई है। अधुनातन आंकड़ो के अनुसार १९७४ की तुलना में १९७५ के छह महीनों मे जहा अंग्रेजी पत्रो की बिक्री में कुछ गिरावट आयी है, हिंदी पत्रों की बिक्री में ६.४ प्रतिशत की वृद्धि हो गयी है। कुल मिलाकर, १९७१ की तुलना में १९७५ में हिंदी पत्र सवाये हो गये हैं।

	१९७१	१९७४	प्रतिशत वृद्धि	जन०-जुलाई १९७५	प्र०वृ०
अंग्रेजी के पत्रों की बिक्री	२०·५ लाख	२०·५ लाख	—	२०·४ लाख	.०
हिंदी के पत्रों की बिक्री	९ लाख	१०·६० लाख	१७%	११·२८ लाख	६.४

किंतु हिंदी प्रधान देश में केवल दस-ग्यारह लाख प्रतियों की बिक्री कुछ मायने नहीं रखती। इससे ज्यादा लज्जा की बात यह है कि हिंदी पत्रों की बिक्री विदेशी भाषा के पत्रों से आधी है। जहां प्रसार की कला में आधुनिकता लाने की बहुत आवश्यकता है, वहा हिंदी पत्रकारिता मे जुटे संपादकों के लिए भी यह चुनौती है। आज का पाठक जैसा मैंने पहले लिखा, केवल वही अखबार पढ़ता है जिससे उसकी मानसिक संतुष्टि होती है। वह क्या पढ़े, इसमे वह स्वतंत्र है और भाषा का प्यार या इसके प्रति आस्था का महत्व बहुत कम है।

पाठक कहां हैं ?

इससे पहले कि प्रसार विभाग वृद्धि की योजना बनाये, उसे इस बात का ज्ञान होना चाहिए कि पाठक कहां हैं तथा उनकी क्या रुचि और क्या अपेक्षाएं हैं। १९७१ की जनगणना के अनुसार हमारे देश में आबादी के हिसाब से कुल २९२१ नगर हैं :

आबादी	नगर	कुल आबादी
१ लाख तथा उससे ऊपर	१४२	५७० लाख
५० हजार से ९९९९९	१९४	१३७ लाख
२० हजार से ४९९९९	६१७	१८९ लाख
१० हजार से १९९९९	९३१	१३१ लाख
५ हजार से ९९९९	७५६	५७ लाख
५ हजार से कम	७७	८ लाख
	२९२१	१०८७ लाख

इस समय प्रसार के सभी साधन कुछ नगरों को ही उपलब्ध हैं। यदि दो प्रमुख पत्र—'नवभारत टाइम्स' तथा 'हिंदुस्तान' दैनिक का विश्लेषण किया जाय तो केवल १७५ नगरों में ८०-८५ प्रतिशत प्रतियां तथा शेष नगरों में १५-२० प्रतिशत बिकती हैं। यों हमारा सारा ध्यान, सारी योजनाएं, संपादकीय तथा प्रसार का लक्ष्य बड़े शहरों तक ही सीमित रहा है। कारण स्वाभाविक है, थोड़े प्रयत्न से ज्यादा लाभ। फिर भी यदि प्रसार को अधिक बढाना है तो हमें : (१) अपने इस निश्चित सीमित क्षेत्र का और विस्तार करना होगा तथा (२) जिस क्षेत्र में अब प्रसार का प्रबंध नही है या जहां बिक्री कम है, वहां गाव-गांव पहुचने का प्रबंध करना होना। आर्थिक दृष्टि से चाहे यह लाभदायक न हो, पर जैसे-जैसे गांवों का विकास होगा वैसे-वैसे वे कल के लाभदायक केंद्र बन जायंगे।

यहा उपलब्ध साधनों के आधार पर प्रसार विभाग के प्रबंध को भी दो भागों में बांटना होगा : (१) अत्यंत महत्वपूर्ण केंद्रों में प्रसार की विधि की योजना बनाना तथा उसे भली भांति क्रियान्वित करना तथा (२) अन्य नगरों में प्रसार की विधि तथा उन तमाम छोटे-बड़े नगरों में प्रसार का प्रबंध करना जहां अखबार की प्रतियां नहीं पहुंचती।

महत्वपूर्ण नगरों में बिक्री : इस समय प्रसार विभाग की सब से जटिल समस्या है ऐसे व्यक्तियों की तलाश, जिनके पास पत्र-बिक्री की योग्यता हो तथा जिनके पास इतना धन हो कि उसे वे डिपाजिट के रूप में दे सकें। प्रकाशकों ने यह नियम बना रखा है कि वे तीन महीनों की कीमत के बराबर अग्रिम धन लेते हैं। दूसरे शब्दों में यदि किसी व्यक्ति को 'नवभारत टाइम्स' या 'हिंदुस्तान दैनिक' की एजेंसी लेनी हो तो २४ रुपये प्रति कापी जमा कराना होगा। बड़े-बड़े नगरों में किसी अच्छे पत्र की एजेंसी लेने के लिए लाख-डेढ़ लाख रुपये अग्रिम देने की आवश्यकता है। इतनी बड़ी

रकम लगाने के पश्चात भी आय पर्याप्त नहीं होती। वर्तमान आंकड़ों के अनुसार दैनिक पत्रों पर २५ से ३० प्रतिशत तक कमीशन मिलता है जो और किसी व्यवसाय में नहीं है। पत्र-वितरक अधिकतर २० से २५ प्रतिशत तक की दर पर काम करते हैं; उस पर भी माल उधारी पर। व्यवसाय के खर्चे काट कर उसकी आय इतनी सीमित हो जाती है कि वह संतुष्ट नहीं होता। बरेली जैसे एक मध्यवर्ग के नगर की एजेंसी के लिए एक एजेंट को जमा के तौर पर ६५ हजार रुपये देने पड़ते हैं जिस पर उसकी कुल आय दो हजार रुपये प्रति माह होगी। इसमें से दुकान तथा नौकरों के खर्चे काट कर शुद्ध आय केवल १५ सौ रुपये मासिक बचेगी। इस पर साल में ३६५ दिन की नौकरी। कोई छुट्टी नहीं। ऊपर से प्रकाशक यह भी आशा करता है कि हर रोज सबेरे तीन बजे गरमी-सरदी मे गाड़ी आने के समय स्टेशन पर एजेंट मौजूद हो। 'हिंदुस्तान टाइम्स' के समूह की एजेंसी पर ४५ हजार रुपये का धन तथा शुद्ध लाभ १२०० रुपये माह का है। यदि इस धन को किसी दूसरे व्यवसाय में लगाया जाय तो मेहनत कम, परंतु लाभ इससे ज्यादा होगा। अखबार के एजेंट की आय इतनी कम है कि एजेंट की थोड़ी-सी लापरवाही के कारण या किसी अन्य बीमारी आदि का शिकार हो जाने पर तो हानि ही हानि होगी।

आज का शिक्षित वर्ग, जो प्रति वर्ष कालेजो से लाखों की संख्या में बाहर आ रहा है, इस कार्य की ओर घृणा की दृष्टि से देखता है और इसे अपनाने का साहस ही नहीं करता। एक और दुर्भाग्यपूर्ण बात इस क्षेत्र में यह है कि इस व्यवसाय में कार्य करने वालों को समाज सम्मान की दृष्टि से नहीं देखता। यही कारण है कि यदि कोई इस क्षेत्र में कार्य आरंभ करता है तो थोड़े समय म वह किसी और लाभदायक कार्य को इसके साथ जोड लेता है। उसका ध्यान पत्र-बिक्री के कार्य की ओर पूरी तरह से केंद्रित नही रहता और वह पत्र के प्रसार के लिए कुछ समय भी नही देता। अभी कल ही मेरी एक मित्र से भेंट हुई। वह स्वयं हमारे बहुत पुराने एजेंट है, परंतु उनके ज्येष्ठ पुत्र ने एक छापाखाना लगाया है। उस युवा के कथनानुसार उसे यह कहते हुए लज्जा आती है कि उसका पिता अखबार का एजेंट है। इस शर्म को छुपाने के लिए वह साथ में इतना अवश्य जोड़ता है कि वह रक्षा-विभाग के सप्लायर है। स्वयं मेरे साथ भी एक घटना घटी। मेरा एक बेटा ब्याहने योग्य था, इसी सिलसिले मे भारत सरकार के एक सेक्रेटरी अपनी पत्नी सहित मेरे घर पर पधारे। चाय-नाश्ते के पश्चात जब उन्होंने पूछा कि आप क्या कार्य करते है तो मैंने हंसी-हंसी में कह दिया कि अखबार बेचता हूं। यह सत्य भी है। प्रसार विभाग के उच्च अधिकारी के नाते अखबार बेचना ही मेरा काम है। इसी बात पर बात टूट गयी तथा जिस मित्र ने उनको मेरे पास भेजा था उससे वे रुष्ट हुए कि उन्होंने उनके सामाजिक स्तर का भी ध्यान नही रखा और उन्हें एक अखबार बेचने वाले के घर भेज दिया। आप स्वयं ही सोचें कि जो ३६५ दिन आपके दरवाजे पर पहुंचकर आपकी मानसिक भूख मिटाता है उसे आप किस दृष्टि से देखते हैं। यही मुख्य कारण है कि कोई पढा-लिखा व्यक्ति इस धंधे में हाथ नही डालता।

यदि आप विदेशों की ओर दृष्टि डालें तो एक नहीं अनेकों नाम आपको मिलेंगे जिन्होंने जीवन के किसी काल मे अखबार बेचे हैं। वहां व्यक्ति का नहीं, कार्य का

महत्व है। वहां स्कूलों में जाने वाले लाखों बच्चे अपना खर्च अखबार बेचकर पूरा करते हैं। इससे वे बचपन में ही स्वावलंबी, साहसी तथा परिश्रमी बन जाते हैं तथा जवानी तक मां-बाप तथा देश पर बोझ बनकर नहीं रहते। अनुमान करें कि यदि समाज का एक बड़ा वर्ग दो या तीन घंटे इस कार्य को करे तो देश में कितनी बड़ी क्रांति आ जायगी। आज का पत्र-विक्रेता अनपढ़ है जो स्वयं नहीं जानता कि वह क्या बेच रहा है। यह कैसी विडंबना है कि पत्र का संपादन हुआ एक योग्य व्यक्ति के हाथों में तथा उसका अंत होता है एक मूर्ख अनपढ़ के हाथों।

यदि छात्र वर्ग को इस बात के लिए तैयार कर लिया जाय तो वर्तमान विक्रय प्रणाली में तनिक परिवर्तन करना होगा। हर नगर को छोटे-छोटे मोहल्ले तथा गलियों में आबादी के आधार पर बांट कर प्रकाशक को वहां पत्र-पत्रिकाएं पहुंचानी होंगी ताकि पत्र वितरित करने में छात्रों का बहुमूल्य समय नष्ट न हो। इससे पहले स्कूल-कालेजों में जाकर पत्र-विक्रय तथा इससे संबंधित सब गतिविधियों से छात्रों को अवगत कराना भी अनिवार्य होगा। दूसरी समस्या छात्रों को धन की हो सकती है, क्योंकि पाठक कम से कम एक मास पत्र उधार लेंगे। इस क्षेत्र में सरकार की ओर से बैंक द्वारा सहायता मिलनी चाहिए। बैंक जब शिक्षित वर्ग को दूसरे व्यवसाय के लिए ऋण दे सकता है तो इस कार्य के लिए क्यों नहीं? इसके लिए वह आवश्यक गारंटी ले सकता है।

एक और विक्रय-प्रणाली स्वीडन में कुशलतापूर्वक कार्य कर रही है। वहां अलग से प्रेस बाइरन के नाम से एक कंपनी स्थापित की गयी है जो नगर में हर प्रकार की पत्र-पत्रिकाओं में विक्रय का प्रबंध करती है। अभी वर्तमान प्रणाली में एजेंटों तथा हाकरों की कार्यकुशलता सीमित है। यदि इस कार्य का वर्तमान वैज्ञानिक साधनों से पुनर्गठन किया जाय तो यह अपने-आप में ही बहुत बड़ा कार्य होगा। यातायात तथा डाक खर्चों के अतिरिक्त पत्र-पत्रिकाओं का करोड़ों रुपया हर साल खर्च होता है जो एजेंटों को कमीशन के रूप में दिया जाता है। वर्तमान काल में योग्य एजेंटों के अभाव के कारण तथा अन्य आर्थिक उलझनों के कारण अब बड़े-बड़े प्रकाशकों के लिए केवल एक ही रास्ता रह गया है कि वह बड़े-बड़े शहरों में अपने सेल डिपो खोलें। यदि यही समस्या बनी रही और हरेक प्रकाशक को अपना अलग-अलग प्रबंध करना पड़ा तो व्यय बहुत बढ़ जायगा और छोटे-छोटे पत्रों के लिए बहुत कठिनाई होगी। यदि इस प्रकार किसी कंपनी की स्थापना की जाय तो उसके निम्नलिखित कार्य हो सकते हैं:

१. हर एक प्रांत की राजधानी में कार्यालय की स्थापना।
२. हर एक जिला स्तर के नगर में एक शाखा।
३. जगह-जगह बिक्री-घर बनाना जहां से पत्रों का विक्रय हो तथा पाठकगण चाहें तो वहां से स्वयं पत्र-पत्रिकाएं प्राप्त कर सकें।
४. बिक्री-धन को एकत्रित करना तथा प्रकाशकों तक पहुंचाना।
५. छोटे-छोटे नगरों में एजेंटों तथा छोटे व्यापारियों की नियुक्ति जो हर सप्ताह या पंद्रहवें दिन आकर रकम जमा करवा सकें ताकि एजेंटों को बहुत डिपाजिट धन नहीं देना पड़े तथा प्रकाशकों का धन भी सुरक्षित रहे।

६. जहां रेल-व्यवस्था नहीं है वहां बसों तथा दूसरे साधनों से पत्र-पत्रिकाएं भेजने का प्रबंध करना।

७. जिन स्थानों पर छात्र-वर्ग पत्र-विक्रय का कार्य संभाले वहां उचित प्रबंध करना।

यह कार्य इतना बड़ा है कि इसमें उच्च कोटि के योग्य व्यक्तियों को, जो प्रसार की समस्त समस्याओं से परिचित हों, नियुक्त करना होगा। इस बात के लिए काफी छान-बीन की आवश्यकता है। यदि यह संस्था स्थापित हो जाय तो प्रकाशक वर्ग का कार्य बड़ा सरल हो जायगा। आरंभ में इस विधि को सीमित रूप में अपनाया जा सकता है। शुरू-शुरू में केवल प्रांतीय राजधानियों मे ही कार्यालय स्थापित कर लिये जायं। वहां से समस्त पत्र-पत्रिकाएं जो इसकी सदस्य बनना चाहें, उनके प्रसार का कार्य-भार ये कार्यालय संभाल सकते हैं। वर्तमान प्रणाली बहुत ही महंगी तथा दोषपूर्ण है। प्रमाण के तौर पर यदि बंबई से प्रकाशक या प्रसार विभाग के अधिकारी को अमृत-सर जैसे शहर मे किसी समस्या के समाधान के लिए जाना पड़े तो कितना व्यय होगा तथा उसका कितना लाभ होगा। इसके बजाय यदि उनके हितों की रक्षा करने के लिए चंडीगढ़ से ही कोई व्यक्ति, जो उस नगर तथा वहां के लोगों से परिचित हो, कार्य करे तो वह कितना कम खर्च, सरल तथा संतोषजनक होगा। यदि बड़े-बड़े प्रका-शक इसमें भागीदार नहीं बनना चाहते तो कम से कम छोटे प्रकाशकों के लिए तो यह आवश्यक है कि वह इस ओर ध्यान दें।

बैंक कहां तक सहायक हो सकते हैं

वर्तमान प्रसार-कला में, जैसा मैंने ऊपर ही लिखा है, जमा धनराशि बहुत बड़ी बाधक है। अग्रिम जमा धन इतना मांगा जाता है कि एजेंट देने को तैयार नहीं होते। इसके उपरांत जैसे-जैसे प्रसार मे वृद्धि होती है, प्रकाशक जमा धनराशि को बढाने का आग्रह करता है। इससे प्रसार की खुली विधि में बाधा उपस्थित होती है। छोटे-छोटे गांव में जहां पत्र-बिक्री की सीमित संभावना है वहां धन के अभाव के कारण प्रसार नहीं हो पाता।

भारत सरकार ने हर व्यवसाय की वृद्धि के लिए बैंक द्वारा ऋण की सुविधाएं दी हैं परंतु इस व्यवसाय को अनुत्पादक समझ कर कोई प्रोत्साहन नहीं दिया। हालांकि हिंदी-प्रचार के लिए एक अलग विभाग है, जहां करोड़ों रुपया व्यय होता है। परंतु इस साधन की ओर, जो ज्ञान वृद्धि के अतिरिक्त जनसाधारण की आकांक्षाओं का सूचक है, कोई ध्यान नहीं दिया गया। यह सत्य है कि पत्र-पत्रिकाएं भिन्न-भिन्न राज-नीतिक विचारों को प्रकट करती हैं, जो सरकार की नीति से कभी-कभी टकरा जाती हैं। परंतु यह भी सत्य है कि यह व्यवसाय करोड़ों परिवारों की जीविका का साधन है। अब जब बैंकों का विस्तार हो रहा है और गांव-गांव में बैंक की सुविधा उपलब्ध है तो इस वर्ग को भी लाभ मिलना चाहिए।

हर प्रकाशक की यह जटिल समस्या है कि मासिक बिलों के धन की वसूली कैसे की जाय, तार चिट्ठियों तथा दूसरे साधनों द्वारा जब बार-बार मासिक बिल का भुगतान नहीं होता तो प्रकाशक को विवश होकर वितरण (सप्लाई) बंद करना पड़ता

है । बेचारा पाठक तो परेशान होता ही है, प्रसार में भी बाधा पड़ती है । जिस नगर में बैंक हो वहां यदि प्रकाशक को बैंक किसी निश्चित राशि की गारंटी कर दे तथा हर मास के पहले सप्ताह मे प्रकाशक को रकम भेज दे या बैंक अखबार के एजेंटों को ऋण दे जो इस व्यवसाय को अपना सकें, तो प्रसार मे बहुत वृद्धि हो सकती है ।

अंतर विभागीय कार्य की कुशलता भी प्रसार वृद्धि में बहुत सहायक होती है। एजेंट द्वारा सप्लाई परिवर्तन की फौरन पूर्ति, उसके पत्रों का शीघ्रता से जवाब देना, हिसाब-किताब मे सफाई, इस प्रकार की कई बातें है जो प्रसार विभाग के लिए अनिवार्य हैं । एक बात जो मैं जोर देकर लिखना चाहूंगा वह यह है कि प्रसार अधिकारी का एजेंट के प्रति व्यवहार सहानुभूतिपूर्ण हो । एजेंट जब दूर मे प्रकाशक के प्रबंधकों के पास जाता है तो इस बात की आशा करता है कि अधिकारी उसके दुख-सुख को सुनेगा, उसके कष्टों का निवारण करेगा। परंतु यदि उसकी आशाओं के विपरीत अधिकारी उसके नुक्स ही निकालता रहे तो उसके हृदय मे प्रकाशकों तथा उसके द्वारा प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं के प्रति वह स्नेह-श्रद्धा नहीं रहती । ये बातें उन अधिकारियों के लिए भी सत्य है जो नगर में प्रसार-कार्य की देखभाल के लिए जाते हैं । वे अपने व्यवहार से उनके मन को जीतें । सब से पहले उनकी सुख-सुविधा पूछने के पश्चात् उनकी तकलीफों को सुनें तथा यथासंभव उनकी कठिनाई का समाधान करें ताकि एजेंट इस बात की प्रतीक्षा मे रहे कि दुबारा वे कब आयंगे ।

पत्र-पत्रिकाएं भेजने की विधि

पत्र पत्रिकाएं अपने-आप मे चाहे कितनी भी संपन्न हों, यदि वे समय पर पाठकों के हाथों मे नहीं पहुंच पाती तो रद्दी के भाव जाती है । दैनिक पत्र के लिए तो यह एक कटु सत्य है ।

१९५५ से पूर्व केवल रेल, वायुयान, बस सेवा तथा डाक-तार विभाग की सेवाओं का ही प्रयोग किया जाता था । तत्पश्चात धीरे-धीरे कारें प्रयोग मे लायी गयी और इस समय दिल्ली से पंजाब, हरियाणा, हिमाचलप्रदेश, राजस्थान उत्तरप्रदेश के सभी मुख्य नगरों मे टैक्सी द्वारा ही पत्र भेजे जाते हैं । इसमें व्यय रेल से थोड़ा अधिक है परन्तु यह साधन बहुत ही लाभदायक सिद्ध हुआ है । इस समय सवेरे एक-दो बजे पत्र लाकर अमृतसर ११ बजे, जयपुर ७ बजे, चंडीगढ़ ६ बजे, देहरादून ७ बजे, आगरा ७ बजे मुरादाबाद ५ बजे, सहारनपुर तथा हिसार ६ बजे पहुंच जाता है । उन मार्गों के बीच जितने भी मुख्य स्थान है वहां सवेरे मुंह अंधेरे ही पत्र-वितरण हो जाता हैं । इस योजना में एक बात अवश्य सिद्ध हो कर आयी है कि जिस दैनिक पत्र का प्रसार कम हो उसके लिए आर्थिक दृष्टि से कार का प्रयोग करना संभव नहीं है । वहां या तो दूसरे प्रकाशकों की साझेदारी में कार का प्रयोग किया जाय या अन्य साधन अपनाये । रेल, बस इत्यादि के समय को ध्यान में रख कर इस प्रकार की योजना बनायें कि थोड़ा फासला टैक्सी से तय किया जाए तथा उसके आगे रेल या बस से । इस प्रकार खर्च की बचत हो सकता है परन्तु इस मूल सिद्धांत को कभी न भूलें कि पत्र प्रकाशन तथा वितरण में यथासंभव कम से कम समय नष्ट हो । जहां पत्रों की संख्या इतनी हो

कि पूरी कार का पर्याप्त माल हो तो वहां अलग से टैक्सी चलायें ताकि निश्चित स्थान पर पत्र और शीघ्रता से पहुंच सकें। पाठकों की जानकारी के लिए टैक्सी-व्यय के बटवारे की एक शैली दिल्ली में अपनायी गयी है कि कुल टैक्सी भाड़े का आधा भाग तो तमाम साझेदारों में प्रकाशकों की संख्या के आधार पर तथा शेष आधा वजन के आधार पर बांट लिया जाता है। स्पष्टीकरण के रूप में यदि किसी टैक्सी के में 'टाइम्स आफ इंडिया', 'नवभारत टाइम्स', 'इंडियन एक्सप्रेस', जाते हैं और मासिक व्यय २०००रुपये है तो एक हजार तो तीन भागों में बंट जायगा तथा शेष आधा उस कार में जाने वाले बोझ के आधार पर बंट जायगा। इस समय भिन्न-भिन्न यातायात के साधनों में 'टाइम्स आफ इंडिया' ग्रुप के दैनिक पत्रों पर निम्न प्रकार व्यय हो रहा है :

आठ पृष्ठ का पत्र

डाक द्वारा	२२ रु०	प्रति हजार कापी
बस द्वारा	२० रु०	प्रति हजार कापी
रेल द्वारा	१८ रु०	प्रति हजार कापी
वायुयान द्वारा	२०६ रु०	प्रति हजार कापी
टैक्सी द्वारा	२१ रु०	प्रति हजार कापी

डाक विभाग की सेवाओं का तो केवल तभी प्रयोग करना चाहिए जबकि कोई और साधन नहीं हो। परंतु शेष शैलियों में सब से अधिक खर्च वायुयान तथा सबसे कम रेल पर आता है। एक प्रश्न स्वाभाविक रूप से उठता है कि वायुयान सेवा का प्रयोग करना उचित है या नहीं ? और यदि उचित है तो कितनी दूरी तक ? जहां तक पहले प्रश्न का सवाल है मेरे विचार से यदि यह साधन उपलब्ध है तो उसका प्रयोग अवश्य ही होना चाहिए। पत्र-वितरण जहां एक व्यवसाय है वहां पाठक के प्रति सेवा भी है। परंतु आर्थिक व्यय को ध्यान में रखते हुए बहुत दूर के स्थानों पर जैसे दिल्ली से आसाम, नागालैंड, इत्यादि के नगरों में जहां प्रति कापी पर व्यय ८० पैसे से भी अधिक बैठता है वहां वर्तमान काल में पत्र वायुयान द्वारा भेजना उचित नहीं है। इतना व्यय करने पर भी पाठक को पत्र एक दिन देरी से ही प्राप्त होता है। यदि दूर बसे हुए नगरों का व्यय निकाल दें तो वायुयान द्वारा भेजी जाने वाली प्रतियों पर औसतन १८० रुपये प्रति हजार कापी खर्च होगा, जो अनुचित नहीं है। हर प्रकाशक को इस कला की योजना बनाने से पूर्व यह निश्चित करना होगा कि कौन-कौन से क्षेत्र प्रसार की दृष्टि से उसके लिए लाभदायक तथा आवश्यक है। जब यह निश्चित हो जाय तो इस क्षेत्र का बिना आर्थिक लाभ-हानि के उचित प्रबंध करना अनिवार्य है। परंतु उस क्षेत्र के भी बाहर वायुयान द्वारा पत्र भेजने का एक ही लक्ष्य हो सकता है। वह यह कि विज्ञापनदाता को संतोष हो कि उसका संदेश सुदूर के नये पाठक तक भी पहुच रहा है।

इस व्यय के अतिरिक्त प्रकाशक का प्रेस से रेलवे स्टेशन पर तथा बस अड्डे पर तथा दूसरे अन्य स्थानों पर अपने पैकेट पहुंचाने का व्यय भी होता है। इस कारण

अधिकारियों को काफी सावधानी रखने की आवश्यकता रहती है कि कम से कम व्यय में कार्य सफलतापूर्वक पूरा हो जाय। एक धारणा यह भी है कि पत्र का शुद्ध मूल्य हर हालत में कागज, स्याही, पैकिंग तथा यातायात के खर्चे की अवश्य ही पूर्ति करे। इस आधार को तथा पत्र-प्रसार की उन्नति को सम्मुख रखते हुए प्रसार अधिकारी को अपनी योजना बनानी चाहिए। हो सकता है आरंभ में आय से इन मदों पर व्यय अधिक हो जाय, पर यह जरूर है कि समयबद्ध योजना बना कर इस कमी को जितना जल्दी हो पूरा किया जाय।

पत्रों का मूल्य

पिछले पंद्रह सालों में दैनिक पत्रों के मूल्य में डेढ़ सौ प्रतिशत से अधिक की वृद्धि हुई है। क्या यह वृद्धि उचित है? इस विषय में मै कुछ नही लिखूंगा क्योंकि यह विषय न्याय विशेषज्ञों—एम० आर० टी० पी०—के सामने पेश है। परंतु १९७४ में देश में अखबारी कागज की असाधारण कमी हुई तथा विदेशों में सर्वप्रथम तो कागज उपलब्ध ही नहीं था। अमेरिका तथा कुछ अन्य देशों मे वाटरगेट इत्यादि कांडो के कारण की मांग बहुत बढ़ गयी और जिस भाव भी कागज उपलब्ध हुआ उठा लिया गया। कई प्रकाशकों को अपने प्रकाशन स्थगित करने पड़े तथा जो प्रकाशित हुए वह बहुत कम पृष्ठो के थे। विज्ञापनों मे भारी कटौती हुई तथा प्रकाशक आर्थिक दृष्टि से गंभीर कठिनाई मे फंस गये। इस सकट के निवारण के लिए केवल एक ही रास्ता रह गया कि पत्रो के मूल्य में असाधारण वृद्धि की जाय। १९७५ में कागज काफी मात्रा मे उपलब्ध हुआ परंतु बैंकों द्वारा ऋण मे कटौती के कारण धन का अभाव अभी भी बना हुआ है। इसके अतिरिक्त छपाई मे काम आने वाली अन्य सामग्री स्याही, सिक्का इत्यादि के मूल्यों मे भी भारी वृद्धि हुई जो आज भी बनी हुई है। बहुत सारे प्रकाशको ने आर्थिक कठिनाई की पूर्ति के लिए जनता से सूद पर ऋण ले लिये है। मुद्रा के फैलाव को रोकने के कारण सरकार द्वारा जो भिन्न-भिन्न कदम उठाये गये है उनके कारण सारे व्यवसायों की आर्थिक हालत पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा और इस कारण विज्ञापन से आय मे भी कमी हुई। जहां पहले प्रकाशनो की नीति थी कि पत्र द्वारा बिक्री की शुद्ध आय कागज, स्याही तथा भाड़े का व्यय पूरा हो, वहां अब वे आशा करते है कि इन खर्चों के अतिरिक्त प्रसार विभाग कुछ दूसरे खर्चो की भी पूर्ति करे।

प्रश्न उठता है कि आज का पाठक किस हद तक अपनी आत्मिक तृप्ति के लिए पत्र-पत्रिकाओं के बढे हुए मूल्य को स्वीकार करने को तैयार है? आज का उपभोक्ता मूल्य-वृद्धि से घबराता तो है परंतु फिर भी उसे बर्दाश्त किये जा रहा है। शायद यही कारण है कि मूल्य में असाधारण वृद्धि के बावजूद पत्रों की बिक्री पर दुष्प्रभाव होने के स्थान पर वृद्धि हुई है।

इस संबंध मे एक और घटना मुझे याद आती है। १९६१ मे अंग्रेजी पत्र 'टाइम्स आफ इंडिया' ने अपना मूल्य १६ पैसे से १३ पैसे कर दिया तो वितरकों ने इसका घोर विरोध किया क्योंकि उनकी आय कम हो गयी। हड़ताल हुई। विवश होकर मूल्य में फिर वृद्धि करनी पड़ी। जब तक वर्तमान वितरण चालू है, मूल्य की कमी के मामले

में वितरकों का सहयोग नहीं मिलेगा। क्योंकि इस असाधारण मूल्य वृद्धि से यदि किसी को लाभ हुआ है तो वह वितरक को ही हुआ है, जिसकी आय में बिना किसी अधिक परिश्रम के खासी वृद्धि हुई है।

इस लेख के अंत में पाठक की जानकारी के लिए इस बात का ब्योरा अंकित किया गया है कि पिछले पंद्रह वर्षों में दो मुख्य पत्रों 'नवभारत टाइम्स' तथा 'हिंदुस्तान' का मूल्य एवं प्रसार किस प्रकार रहा है। जो मुख्य-मुख्य घटनाएं इन वर्षों में घटीं, वे भी अंकित हैं। विश्लेषण करने पर यह सिद्ध होता है कि जहां दैनिक पत्र की मूल्य वृद्धि का बिक्री पर दुष्प्रभाव नहीं पड़ा वहां जब भी देश में कोई असाधारण स्थिति पैदा हुई प्रसार में वृद्धि ही नहीं हुई अपितु इसके बाद भी वह वृद्धि स्थिर ही रही। १९६२ में चीन के युद्ध के समय 'नवभारत टाइम्स' की २३ प्रतिशत वृद्धि हुई तथा 'हिंदुस्तान' की १७ प्रतिशत। १९६५ के पाकिस्तान युद्ध के समय 'नवभारत टाइम्स' १४ प्रतिशत तथा 'हिंदुस्तान' ११.२० प्रतिशत बढ़ा। १९६८ से १९७१ के वर्षों में क्रमशः कांग्रेस पार्टी का विभाजन, देश में नये राजनीतिक चुनाव, बंगला देश का युद्ध इत्यादि कई घटनाएं घटीं। इनके कारण प्रसार मे असाधारण वृद्धि हुई।

वर्तमान काल में जब कागज उपलब्ध है तथा उसके मूल्य में भी कुछ कमी आयी है तो पत्रों के मूल्य में कमी के बजाय पृष्ठ संख्या में वृद्धि करने की आवश्यकता है और इसके साथ संपादकों की भी अपनी लेखनी मे नयी चेतना भरनी होगी ताकि पाठक की भूख की पूर्ति हो सके और उसका व्यय सार्थक हो।

•

प्रचार

कोई विज्ञापन पाठक को कहां तक किसी वस्तु को खरीदने के लिए प्रेरित करता है यह अभी तक एक बहुत बड़ा प्रश्नचिह्न है। फिर भी हरेक व्यवसाय के विस्तार में इस पद्धति का भरपूर प्रयोग किया जाता है। विज्ञापनदाता की चतुराई इसमें है कि वह ठीक प्रकार के माध्यम का चुनाव करे। अखबार, रेडियो, सिनेमा स्लाइड, चौराहों पर लगे बोर्डस् (होर्डिंग्स), इश्तेहार आदि कई प्रकार के साधन आज उपलब्ध हैं। मगर जिस वस्तु को आप बेचना चाहते हैं उसका उपभोक्ता कहां है, उसकी शिक्षा, रहन-सहन के तौर-तरीके, आय आदि का पूर्ण ज्ञान हो तभी तो माध्यम का सही चुनाव किया जा सकता है। हिंदी की पत्र-पत्रिकाओं का पाठक शहरों तथा गांवों में बंटा हुआ है। जो माध्यम शहरों में काम मे आते हैं वे गांवों में लाभदायक नहीं हो सकते। यदि कोई पत्र नये सिरे से प्रकाशित हो रहा है तो उसकी लोगों को जानकारी कराने के लिए बड़े पैमाने पर विज्ञापन का सहारा लेना पड़ेगा। प्रकाशक को यह ध्यान रखना होगा कि जब वह किसी पत्र-पत्रिका के प्रकाशन की योजना बनाये तो इस व्यय को भी अपनी संपूर्ण लागत-पूंजी ही समझे। इसका तुरंत लाभ नहीं होगा, परंतु धीरे-धीरे इसके विस्तार में वृद्धि होगी तथा यह लाभदायक सिद्ध होगा। अतः यहां भिन्न-भिन्न प्रकार के विज्ञापन साधनों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार हो सकता है:

सिनेमा स्लाइड

इसका प्रयोग गांव में अधिक लाभदायक है। यदि शहरों में इसका प्रयोग करें

तो कम से कम तीन-चार स्लाइड इकट्ठी चलवायें जिनमें संदेश कलात्मक ढंग से सुसज्जित हो ताकि दर्शक को प्रभावित कर सके। स्लाइडें दिखाने के लिए उचित चित्रपट-गृह का चुनाव अनिवार्य है। भिन्न-भिन्न दर्शकों के लिए, जिन्हें आप संबोधित करना चाहते हैं, भिन्न-भिन्न स्लाइडें तैयार करवायी जायं जिन्हें प्रति माह एक चित्रपट-गृह से दूसरे में निरंतर बदलते रहना चाहिए। इसमें स्थानीय वितरक से परामर्श लेना उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

विज्ञापन पट्ट

उचित स्थान का चुनाव करके वहा विज्ञापन पट्ट लगाना सार्थक तथा प्रभावशाली होता है। एक ही संदेश बार-बार पढ़ने से पाठक ऊब जाता है। सड़क पर यातायात इतनी तेजी से चलता है कि क्षण भर के लिए ही उस पर नजर पड़ सकती है। इस कारण संदेश छोटा परंतु इतना आकर्षक हो कि पाठक के मन को प्रभावित कर सके। एक और शैली है जिसे अभी तक नहीं अपनाया गया। वह यह है कि अपने संदेश तथा कलाचित्र कैनवास पर अंकित करके बोर्डों पर लगाये जायं ताकि हर महीने उनको बदला जा सके तथा उन्हें अन्य अनेक स्थानों पर भी लगाया जा सके।

अखबारी प्रचार

यदि पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से आप पाठक तक पहुंचना चाहते हैं तो सब से पहले इस बात का विश्लेषण करें कि वह पत्र कितनी संख्या में प्रकाशित होता है? किन स्थानों पर तथा किस वर्ग के लोग उसे पढते है? क्या यह वही वर्ग है जिसकी रुचि आपके पत्र या पत्रिका में हो सकती है? इन सब बातों की पूर्व जांच अति आवश्यक है। जब आप इसका चुनाव कर लें तो अपने संदेश की पूर्णता की हर कला से जाच करे। शब्द कम हों और संदेश संपूर्ण एवं प्रभावशाली हो। यदि आप पत्र या पत्रिका मे विज्ञापन दे रहे हैं तो उन सब बातों का संक्षेप मे विवरण हो जो सामग्री आप अपने पत्र मे प्रकाशित करने जा रहे हैं। यदि हर आगामी अंक का विज्ञापन दे रहे हैं तो उन अंकों के विशेष लेखों का वर्णन करें। मगर प्रश्न वही है कि आप पाठक को विज्ञापन पढ़ने के लिए कहा तक प्रेरित कर सकते है?

पर्चे

यह माध्यम चाहे सब से पुराना है, परंतु प्रभावशाली है बशर्ते आप इस बात का पूर्ण प्रबंध कर लें कि आप का पर्चा उन तक पहुंच पाये जिन्हे आप संबोधित कर रहे हैं। अक्सर ऐसा अनुभव किया गया है कि ऐसे विज्ञापन साधन उन तक पहुंच ही नहीं पाते। अखबारों में, डाक द्वारा, चौराहे पर, सिनेमा घर के बाहर, मैच स्थान पर, जहा भी लोग इकट्ठे होते हों, इश्तहार बाटे जा सकते है। परंतु ध्यान रहे कि प्रकाशक की प्रतिष्ठा बनी रहे। इस कारण अखबारों तथा पत्रिकाओं के माध्यम से ही पर्चे बाटना अच्छा रहता है।

एक और शैली जो सीमित मात्रा मे अपनाई जा रही है वह यह कि अपने पाठक को ऐसी वस्तु देना जिससे उसे सीधा लाभ हो।' जैसे 'पराग' के प्रकाशकों ने बच्चों की कापियों के लिए कवर बांटे जिस पर एक तरफ 'पराग' का संदेश प्रकाशित था। इसी प्रकार कुछ एक स्त्रियों की पत्रिकाओं ने अपनी पत्रिका के साथ कुछ

लाभकारी डिजाइनों का वितरण किया और भी कई प्रकार के साधन अपनाये गये जैसे युवा वर्ग की पत्रिकाओं ने क्रिकेट के मैच में स्कोर बोर्ड बनाकर बांटे जिससे दर्शकों के ज्ञान में वृद्धि हुई तथा उनका अपना संदेश भी अंकित रहा ।

प्लेटफार्म, रेल तथा बस अड्डों पर विज्ञापन बोर्ड

यह साधन भी बहुत पुराना हो गया है तथा रेल अधिकारी इसकी सुरक्षा और सफाई का ठीक प्रबंध नहीं करते हालांकि हर रोज लाखों की संख्या में हर वर्ग के लोग यात्रा के दौरान इनको देखते हैं परंतु कोई लाभ नहीं रहता । मेरे विचार में बड़े बोर्डों के बजाय जैसा कि पहले बताया छोटे कैन्वास पर चित्रित किये हुए विज्ञापन खंबे के साथ ज्यादा प्रभावशाली रहेंगे, परंतु इन्हें हर तीसरे माह बदल देना होगा ।

अभी-अभी रेल अधिकारियों ने प्लेटफार्म पर बुक स्टालों के ऊपर विज्ञापन सामग्री प्रदर्शित करने की योजना बनायी है । अब 'ए० एच० व्हीलर' के स्टालों के ऊपर अपना बोर्ड लगा सकते हैं । ये स्थान पत्र प्रकाशकों के लिए उपयोगी सिद्ध होंगे ।

इसके अतिरिक्त वितरकों की दुकानों को सजाना, प्लास्टिक बोर्ड, साइकिल प्लेट, न्यूज स्टैंड इत्यादि कई ऐसे छोटे-बड़े माध्यम हैं जिन्हें अपनाया जा सकता है । इसके लाभ-हानि का कोई मापदंड नहीं है, इस कारण हमें अत्यंत सावधानी से यह आयोजित करना चाहिए ।

हिंदी तथा अंग्रेजी पत्रों का संबंध

क्या वर्तमान काल में हिंदी पत्र-पत्रिकाएं अंग्रेजी पत्रों से जुड़ कर ही चल सकती हैं ? क्या वह अकेले जीवित नहीं रह सकतीं ? मेरे कुछ एक सहयोगी जो केवल अंग्रेजी दैनिक ही प्रकाशित करते हैं, उनका कहना है कि यदि उनके पास एक हिंदी दैनिक भी होता तो उनके अंग्रेजी पत्र का प्रसार और बढ़ जाता । कई एक ऐसे छोटे-छोटे गांव हैं जहां पर चार पांच कापी लग सकती हैं । परंतु आर्थिक दृष्टि से पत्र बिक्री के लिए वितरक की नियुक्ति वहां संभव नहीं है । यदि हिंदी पत्र होता तो दोनों पत्र भेज सकते थे । जहां अंग्रेजी के प्रसार अधिकारी को हिंदी दैनिक का अभाव खलता है वहां मेरे संपादक मित्र को इस बात की शिकायत है कि हिंदी के पत्र अंग्रेजी से जुड़े हुए हैं । दोनों के पाठक भिन्न है परंतु वे यह नही जानना चाहते कि पत्रकारिता अपने-आप मे एक व्यवसाय है केवल सेवा ही इस का उद्देश्य नही है । वितरण का व्यय तथा पाठक की मांग यह दोनों एक दूसरे से जुड़े हुए हैं । इन्हें अलग करना संभव नहीं है । दोनों की शैली अलग, दोनों का आकार अलग परंतु प्रसार की विधि तथा प्रबंध मे दोनों एक दूसरे के मददगार हैं । यह दुमछल्ला सहारा तब तक बना रहेगा जब तक कि विदेशी भाषा के पत्र-पाठकों की रुचि उस तरफ बनी हुई है । अंग्रेजी पत्रों की बिक्री मे वृद्धि अब रुक गयी है, फिर भी वह हिंदी पत्रों से दुगुनी है ।

यदि संपादकीय विभाग में जागरूकता उत्पन्न हो तथा वातानुकूलित बंद कमरों से निकलकर वह बाहर गलियों में झांके, गांवों में देखे, उनमें बसे नागरिकों के दुख-सुख को समझे, उनका वर्णन करे तथा साथ ही प्रसार-विभाग भी उतनी ही तत्परता से कार्य करे तो सामने इतना लंबा-चौड़ा क्षेत्र मौजूद है जहां तीस लाख तो क्या उससे

भी कहीं अधिक प्रतियों की बिक्री आसानी से होने लगे। खेत है मगर वह हमारी असावधानी के कारण बंजर पड़ा है। यदि हम केवल हिंदी प्रदेशों के शिक्षित वर्ग के परिवारों को भी इस बात के लिए प्रेरित कर सकें कि हिंदी पत्र उनके जीवन की महत्वपूर्ण आवश्यकता है तो बहुत बड़ा काम हो सकता है। हिंदी के दैनिक अखबार कुल मिलाकर १० या १५ लाख नहीं, प्रतिदिन एक करोड़ बिक सकते हैं और कोई आश्चर्य नहीं कि कम से कम एक राष्ट्रीय हिंदी पत्र की ३० लाख प्रतियां रोज बिका करें।

भारत में प्रेस-विज्ञापन : कल और आज

"मैंने हमेशा ही (भारतीय) विज्ञापन उद्योग में आंकड़ों तथा सूचनाओं की कमी पर चिंता प्रकट की है। हमारे पास प्रेस में न तो प्रकाशनों, भाषाओं, क्षेत्रों आदि के अनुसार और न ही विज्ञापित सेवाओं या वस्तुओं के आधार पर विभिन्न वर्गीकरणों के विज्ञापनों के आकार व महत्व पर सांख्यकीय सूचनाएं उपलब्ध हैं।" ये विचार भारतीय विज्ञापन के अग्रदूत श्री रूडी वॉन लेडन ने जनवरी १९६८ में बंबई विज्ञापन क्लब में बोलते हुए व्यक्त किये। १९७५ में आ० आर० जी० (कार्य प्रचालन अनुसंधान समूह) बड़ौदा के निदेशक तथा जन-संचार विशेषज्ञों द्वारा तैयार किये गये एक प्रपत्र में भी इसी बात को मुख्य रूप से दर्शाया गया है तथा भारत मे विज्ञापन के विभिन्न पहलुओं पर अनुसंधान की आवश्यकता पर भी बल दिया गया है। भारत सरकार द्वारा प्रेस आयोग नियुक्त किये जाने के बाद भी जिसने १९५१-१९५२ में समाचार-पत्रों में विज्ञापन की स्थिति का सीमित अध्ययन किया था, इस देश मे विज्ञापन की स्थिति को समझने के लिए कोई अधिक प्रयास नहीं किया गया, हालांकि प्रेस आयोग के अध्ययन के बाद ही भारत में विज्ञापन में ८० प्रतिशत की वृद्धि हुई। विज्ञापनों ने १९५१-५२ से पहले किन-किन अवस्थाओं को पार किया, १९५१-५२ के पहले व बाद मे इसमें क्या-क्या गुणात्मक तथा संख्यात्मक परिवर्तन आये, और आज इसकी क्या स्थिति है--- इन सब प्रश्नों का अध्ययन वैज्ञानिक ढंग से व पिछले लगभग २०० वर्षों के विस्तृत अनुसंधान के माध्यम से किया जा सकता है।

भारत में विज्ञापन केवल आर्थिक विकास का एक तीव्र तथा प्रभावशाली माध्यम ही नही है बल्कि सामाजिक परिवर्तन का भी यह एक सशक्त उपकरण है। विज्ञापनों के द्वारा लाखों-करोड़ों लोगों में नये-नये विचारों तथा आदतों का प्रचार होता है। विज्ञापन ने, परिवार नियोजन कृषि तथा स्वास्थ्य संबंधी आंदोलनों के द्वारा लोगों की उन्नति तथा देश की प्रगति में नये विचार, आदतों तथा दृष्टिकोणों को अपनाने में विशेष योगदान दिया है। इसके साथ ही विज्ञापन समाचार-पत्रों के लिए

आय का भी एक बड़ा स्रोत है जिसके बिना समाचार-पत्रों का मूल्य बहुत अधिक बढ़ सकता है।

भारत में प्रेस-विज्ञापन की प्राचीनता हमारे देश मे प्रकाशित प्रथम समाचार-पत्र के साथ जुड़ी हुई है। पहले समाचार-पत्र 'बंगाल गजट' के पहले अंक में विज्ञापन छपे थे। यह बात १७८० की है अर्थात् उस समय के लगभग २५ वर्षों के बाद की है, जबकि ब्रिटेन मे प्रेस विज्ञापन की स्थिति पर टिप्पणी करते हुए 'आइड-लर' में डा० सैमूअल जानसन ने लिखा था कि "विज्ञापन का उद्योग अब पूर्णता के इतना निकट है कि इसमे किसी भी प्रकार के सुधार की गुंजाइश नही है।" जो उन पुराने ब्रिटिश विज्ञापनों को आज देखता है, उसे अचंभा होता है कि 'निकट पूर्णता' की कौन-सी चीज उस महान आलोचक ने उन विज्ञापनों में देखी! लेकिन यह न भूलिए कि आज हम दो सौ वर्ष पीछे की बात कर रहे हैं। विज्ञापन के संबंध में ऊपर की गयी टिप्पणी को समझने के लिए हमें उन दिनों की सामाजिक व्यवस्था तथा औद्योगिक व व्यावसायिक दशाओं को ध्यान में रखना होगा।

'बंगाल गजट' ने दो ही वर्षों के दौरान बहुत से प्रभावशाली लोगों की निंदा करने व उन्हें परेशान करने में सफलता प्राप्त कर ली। इसके प्रकाशक हिक्की ने बहुत बार मार भी खायी। अंत में उन्हें जेल मे बंद कर दिया गया। बहुत से अंग्रेजी पत्रों ने इस अग्रदूत का अनुसरण किया परंतु वे थोड़े समय तक ही चल पाये। १८३० की संसदीय सूचना के रिकार्डों से यह पता चलता है कि १८१४ में बंगाल में 'कलकत्ता गजट' केवल अकेला ही समाचार-पत्र था। लेकिन बाद में छः वर्षों के भीतर ही बहुत से अंग्रेजी पत्र निकलने लगे। बंबई में पहला पत्र 'गजट' था जो १७९० से १८४२ तक प्रकाशित हुआ।

इन समाचार-पत्रों को देखकर हमें यह विश्वास होता है कि भारतीय प्रेस विज्ञापन उस बिंदु से शुरू हुए जहां ब्रिटिश विज्ञापन अपनी 'लगभग पूर्णता के निकट' पहुंच चुके थे। यह ब्रिटिश पद्धति की हूबहू नकल थी।

हमारे प्रारंभिक विज्ञापन का तीन चौथाई भाग व्यापारिक घोषणाओं से युक्त था। 'कलकत्ता गजट' में बहुत अधिक स्थान यार्कशायर हैम, पनीर, परचून, कपड़ा, हैटों, जूतों, आयरलैंड के कपडों आदि से भरा होता था। विज्ञापन 'सार्व-जनिक नीलाम', 'किराये पर', 'बिकाऊ है', 'आवश्यकता है', 'निवेश', 'मिलीनरी', 'खोया पाया', 'लाटरी' आदि के अंतर्गत होते थे। 'शराब', 'क्लैरेट' और 'ब्रांडी' आदि के विज्ञापन भी अधिक होते थे। जहाज, घोड़े व गाड़ियों के लिए विज्ञापन भी अंग्रेजी पत्रों की ही तरह तराशे हुए काठ के डिजाइन प्रयुक्त करते थे। 'भाग गया' विज्ञापन पाठकों से उन गुलाम लड़कों को पकड़ने के लिए अनुरोध के तौर पर होते थे जो अपने ब्रिटिश मालिकों के यहां से भाग जाते थे। यह ब्रिटिश मालिकों का ब्रिटिश 'ब्लैक ब्वाय' विज्ञापन का अनुसरण था। भारतीय पत्रों में 'भाग गया' नामक दूसरे प्रकार का भी विज्ञापन होता था जो 'साथ भाग निकला' या 'सह-पलायन' शीर्षकों के अंतर्गत प्रकाशित होता था। ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ ब्रिटिश औरतों को, जो भारत आती थी, अपने पतियों को छोड़ कर भाग जाने की आदत

थी। इस प्रकार बिछुड़े पति इस विज्ञापन के साथ प्रेस में आते थे कि जनता उनकी भागी हुई पत्नियों को शरण न दे। कुछ समय पहले मैंने एक लेख में लिखा था कि सह-पलायन की यह विस्तृत घटना भारत में ब्रिटिश औरतों के उनके प्यार की इच्छा की अपेक्षा 'पूर्ति व मांग' के बीच अंतर का परिणाम हो सकती हैं। इस अनुमान का 'स्टेट्समैन' में प्रकाशित एक लेख से समर्थन होता है कि उस समय अंग्रेज पुरुषों की तुलना में अंग्रेज नारियां भारत में बहुत कम थीं। इस कारण बहुत-सी सामाजिक समस्याओं का जन्म हो गया था।

औषधियों व चमत्कारिक निदान के विज्ञापन, जो १८वीं शताब्दी के अंत में प्रारंभ हुए, १८८० तक प्रायः सभी समाचार-पत्रों में ५० प्रतिशत विज्ञापन-स्थानों को भर कर विज्ञापन की विशालतम श्रेणी के रूप में उभरे। विज्ञापित औषधियों की बहुत-सी बहुद्देशीय औषधियां भी थीं जो बवासीर से लेकर हैजे तक में लाभकारी सिद्ध होती थी।

यह पूर्ण स्वाभाविक था कि भारत में अंग्रेजी समाचार-पत्र, जो अंग्रेजों द्वारा चलाये जाते थे, समाचार व विज्ञापन दोनों में ही ब्रिटिश समाचार-पत्रों का ही अनुसरण करें। स्थानीय पत्र भी बहुधा उसी ढांचे पर चलते थे।

बंगाल में १८२१ में भारतीयों द्वारा संपादित व प्रकाशित पत्र 'संवाद कौमुदी' में अधिकांशतः पुस्तकों तथा दवाइयों के विज्ञापन होते थे। गुजराती समाचार-पत्र 'बंबई समाचार', जो १८२२ में शुरू हुआ था, आज भारत का सब से पुराना पत्र है। एक जुलाई १८२२ में प्रकाशित इसके पहले अंक में विज्ञापन प्रकाशित हुए जिनमें दो खोयी हुई वस्तुओं तथा एक संपत्ति के विक्रय से संबंधित था। शीघ्र ही इस पत्र में १५ से २० प्रतिशत स्थान विज्ञापनों के लिए होने लगे, जो प्रायः वर्गीकृत होते थे। दवाइयों के अलावा 'थियेटर' तथा पुस्तकों के अधिकांश विज्ञापन होते थे।

हिंदी का पहला साप्ताहिक 'उदंत मार्तंड' ३० मई १८२६ को प्रकाशित हुआ। अन्य पत्रों की भांति यह साप्ताहिक भी आर्थिक कठिनाइयों के कारण दो वर्ष के बाद बंद कर दिया गया। अंतिम संपादकीय में यह स्पष्ट कर दिया गया कि साप्ताहिक विज्ञापन की कमी और सरकारी सहयोग की कमी के कारण वह और आगे नहीं चलाया जा सकता। दूसरा हिंदी साप्ताहिक 'उचितवक्ता', जो कि १८८३ में आरंभ हुआ था, लगभग ११ वर्ष चला। १८८४ की एक प्रति में छपी उद्घोषणा के अनुसार इसको इतने अधिक विज्ञापन प्राप्त हुए कि इसने प्रति अंक मूल्य एक रुपये से घटा कर बारह आने कर दिया। बनारस से प्रकाशित होने वाले 'भारत जीवन' साप्ताहिक में २५ प्रतिशत तक विज्ञापन होते थे। इन विज्ञापनों में से अधिकतर पुस्तकों, रामबाण औषधियों, जादुई डिब्बों व घड़ियों से संबंधित होते थे। बनारस से ही प्रकाशित होने वाले एक अन्य साप्ताहिक 'अभ्युदय' में सामाजिक मूल्यों, तौर-तरीकों, वस्तुओं के मूल्यों इत्यादि पर सामग्री होती थी। 'भारत जीवन' में विज्ञापित 'स्त्री-शिक्षा' नामक एक पुस्तक में एक आदर्श नारी के गुणों का विवेचन किया गया था। १८८४-८६ के बीच विज्ञापित होने वाले 'क्लासिक' में 'शकुंतला', 'उत्तरकांड रामायण', फारसी पुस्तकों तथा शेक्सपियर की रचनाओं के हिंदी अनुवाद सम्मिलित थे। यह कहना आवश्यक है

कि इसी दौरान 'उत्तर रामचरित' भगवद्गीता आदि भारतीय क्लासिकी का सब से अधिक प्रमाणित अंग्रेजी अनुवाद भी सामने आया। सभी प्रमुख अंग्रेजी साप्ताहिकों और भारतीय भाषाओं की पत्रिकाओं में कई रामबाण व अचूक औषधियों के विज्ञापन छपते थे। इनमें 'हैलोवे' की गोलियां तथा मल्हम भी शामिल थे। इनके अजीबोगरीब दावों ने १८४३ में 'पंच' नामक पत्रिका को यह फब्ती कसने पर मजबूर कर दिया था कि "यह सार्वभौमिक मल्हम आदमी व मेज दोनों की ही टांगों को समान रूप से ठीक कर सकता है।" 'हैलोवे' की नकल एस० के० बर्मन आदि कुछ भारतीयों ने भी की, जिनकी एक ही दवाई में सर-दर्द से लेकर पागलपन आदि अनेक रोग दूर करने की क्षमता का दावा किया गया था।

बिजली से उपचार की विधि १८८० और १९०० के बीच काफी विज्ञापित होती थी। जब बिजली पहले-पहल आयी तो लोगों को बड़ा अचंभा हुआ था। इसको एक शक्ति और जादू माना जाता था। इसी को देखते हुए बिजली से उपचार करने वालों की बाढ आ गयी जो यह दावा करते थे कि "बिजली की धारा की शक्ति से मानव शरीर के समस्त रोग दूर हो सकते हैं।" ये लोग 'बिजली की शक्ति से संचारित' लाकेट, ब्रुश, कमर-पेटियां, जंजीर व तमगे आदि बांटा करते थे।

१९०२ के बाद प्रकाशित विज्ञापनों ने राष्ट्रीय जागरूकता तथा स्वदेशी आंदोलन की ध्वनि निकलती है। बंगाल केमिकल और फार्मेस्यूटिकल वर्क्स (१८९२ में स्थापित) ने अपने विज्ञापनों में 'भारतीय वस्तुओं की श्रेष्ठता' तथा 'भारतीय उत्पादन' पर बल देकर भारत में एक नये युग को जन्म दिया। (१९०२)

उसी साल हिंदू बिस्कुट कंपनी लि० दिल्ली ने दावा किया कि उनके बिस्कुट सब से उत्तम है क्योंकि "वे ताजे हैं, पूर्ण हैं और फिर भी विदेशी माल से बहुत सस्ते हैं।" 'भारत का उत्तर', 'स्वदेशी माल खरीदिए', आदि कई भावनात्मक अपीलों का प्रयोग विज्ञापनदाताओं द्वारा किया जाता था। यहां तक कि उन निर्माताओं द्वारा भी भारतीय और भारतीयता का विज्ञापन दिया जाता था, जो ब्रिटिश नागरिकों को अपने यहां विशेष नियुक्तियों में प्राथमिकता देते थे। १९०६ में धारीवाल ने अधिक टिकाऊ ऊन का विज्ञापन 'भारत के लिए, भारत में बने' इस रूप में दिया। आगरा में स्थापित स्टूवर्ट फैक्ट्री कंपनी ने, जो कुछ शिक्षित भारतीयों द्वारा गठित की गयी थी, अपने बूटों और जूतों को 'पूर्ण भारतीय परंतु आयातित बूटों तथा जूतों के समान' विज्ञापित किया था।

'स्वदेशी मिलों में पूजी लगाओ' से लेकर 'स्वदेशी निब तथा स्वदेशी पेन होल्डर' तक के कई शीर्षक पाठकों को अपने देश के प्रति उनके कर्त्तव्य की याद दिलाते रहे तथा उन्हें प्रेरित करते रहे। उन दिनों का 'ट्रिब्यून' विशेष रूप से देशभक्तिपूर्ण विज्ञापनों से युक्त होता था। यहां तक कि औषधियों में भी स्वदेशीपन का संदेश होता था। भक्तपुरा में एक औषधि निर्माता फैक्ट्री का विज्ञापन इस प्रकार होता था : "एसुआउंट आंख के रोगों के लिए सुप्रसिद्ध स्वदेशी दवा है।"

इनमें से कुछ विज्ञापनों पर लाला लाजपतराय, सी० आर० दास, सुभाषचंद्र बोस तथा टैगोर जैसे राष्ट्रीय नेताओं के प्रमाण-पत्र होते थे। कुंतलीन इत्र ने लाला

लाजपत राय के फोटो के साथ उनकी सिफारिश भी अपने विज्ञापन में प्रकाशित की। 'जैफोरेंज' ने १६३३ में एक विज्ञापन में सुरखी में छापा कि "महात्मा गांधी ने उपवास से पहले अपने अंतिम भोजन में जैफोरेंज को सम्मिलित किया था।" भारतीय ग्रामोफोन कं० ने कई देशभक्तिपूर्ण गीतों के रिकार्डों को विज्ञापित किया। बंकिम-चंद्र चटर्जी की तस्वीरें तथा 'वंदेमातरम्' कई विज्ञापनों में प्रकाशित हुए।

कठोर जाति प्रथा ने, जिसका देशभक्ति तथा राष्ट्रीयता के साथ कोई झगड़ा नही था तथा दोनों साथ-साथ विद्यमान थे, वस्तु-विज्ञापनों मे एक अच्छा स्थान बनाया। 'भारतेंदु' नामक एक हिंदी द्विमासिक ने जो विज्ञान, साहित्य, औषधि तथा कला से संबंधित था, १८८३ में यह विज्ञापन दिया कि "विद्यार्थी, ब्राह्मण तथा सार्व-जनिक पुस्तकालयों को वार्षिक चंदे के रूप में सामान्य दर ४ रु० के स्थान पर ३ रु० १० आना अदा करना है।" एक विज्ञापन मे १८६६ में एक अध्यापक के पद पर 'आर्य जाति से संबंधित प्रार्थियों' को वरीयता दी गयी थी। १६१६ में दिल्ली के एक जैन स्कूल ने जैनियों को वरीयता दी।

कुछ 'वैवाहिक सूचनाओं' में बाल विवाह एक प्रथा के रूप में प्रतिबिंबित हुआ। 'ट्रिब्यून' मे १८८१ में निम्नलिखित विज्ञापन प्रकाशित हुआ —

'वैवाहिक सूचना'

एक खत्री महानुभाव अपनी १२ वर्षीय पुत्री (जो कुछ समय से पहले विधवा हो गयी है) एक ढाई घर खत्री को विवाह में देना चाहते हैं। लड़की देवनागरी लिखना-पढ़ना जानती है। अन्य जानकारी केवल प्रमाणित प्रत्याशियों या उनके संरक्षकों को दी जा सकती है, जो अपने विवरण निम्नलिखित को भेजें :

नवीन चंद्र राय
अवैतनिक सचिव
विधवा विवाह सहायक समिति

लाहौर, १६ नवंबर १८८१

वही विज्ञापन फिर 'रिफार्मर' नामक एक उर्दू साप्ताहिक पत्रिका में आया। यह नैतिक और सामाजिक, राजनीतिक व साहित्यिक विषयों तथा विधवा पुनर्विवाह पर उच्चतर विचारों के एक सुधार आंदोलन का सूत्रपात था।

वर्तमान शताब्दी के प्रारंभ से ही जो विज्ञापन अंग्रेजी तथा भारतीय भाषाओं के समाचार-पत्रों में आये वे उन आर्थिक, वैज्ञानिक, तकनीकी, राजनीतिक तथा सामाजिक परिवर्तनों को प्रदर्शित करते हैं जिनका अनुभव देश अपने इतिहास के प्रमुख समय अर्थात् पिछले ७५ वर्षों से कर रहा है। समय में कितना परिवर्तन आया जब "पंखों को मिट्टी के तेल से चलाया गया"। स्टीम बोट, ट्रामें, फोटोग्राफी, मूक चल-चित्र, ग्रामोफोन आदि को बड़े-बड़े आविष्कारों के रूप में विज्ञापित किया गया। वे दिन कैसे बदल गये जब विज्ञापनों में आजादी की आकांक्षा को ध्वनित किया जाता था।

विज्ञापन की तकनीक १६२० के बाद आधुनिकता की ओर अग्रसर हुई जब 'जे० वाल्टर थांपसन' जैसी विदेशी विज्ञापन एजेंसियों ने भारत में अपने कार्यालय खोले।

सामाजिक मनोविज्ञान तथा बदलते हुए समय पर आधारित नयी चीजों एवं विक्रय चिह्नों के साथ नयी अपीलें प्रस्तुत हुईं। प्राथमिक आवश्यकताओं के स्थान पर गौण आवश्यकताएं अपीलों के रूप में उभरीं। विभिन्न वस्तुओं—साबुन व टूथपेस्ट से लेकर ट्रक तथा ट्रैक्टर तक के विज्ञापनों में नारी का आकर्षण सर्वोत्तम अपील के रूप में सामने आया। फोटोग्राफी तथा टाइपोग्राफी की ओर अधिक ध्यान दिया गया। वस्त्र विज्ञापन में, जो १९५४ के बाद बड़े पैमाने पर शुरू हुआ, बड़े उन्मादी दृश्यों व चित्रों का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। इस क्षेत्र में बहुत से प्रतियोगी मैदान में आ गये। आज अकेले 'वस्त्र' ही ऐसी सब से बड़ी विज्ञापित वस्तु हैं जिनके कारण विज्ञापनों की सच्चाई में लोगों का विश्वास घट गया है।

उपभोक्ता तथा गैर-उपभोक्ता दोनों ही प्रकार की वस्तुओं के विज्ञापन में चित्रों तथा दृश्यों से यह आशा की जाती है कि वह 'कापी' की अपील में वृद्धि करे। बहुत से वस्त्र-विज्ञापनों में प्रत्येक प्रतियोगी कंपनी ऐसे मजेदार व आधुनिकता लिये हुए अंशों को दुहराती है, जो दूसरे विज्ञापनों में पहले ही आ चुके होते हैं। अपनी वस्तुओं में बहुत थोड़ा अंतर होने के बावजूद एक ब्रांड दूसरे से दो प्रकार की अपीलों में होड़ लगाते हैं—गुण और फैशन। गुण की व्याख्या तो शब्दों में होती है परंतु फैशन शब्दों के साथ-साथ विभिन्न प्रकार के दृश्यों से दर्शाया जाता है।

१९४७ और ५१ के बीच कपड़े के विज्ञापनों में केवल चार प्रकार की अपीलें होती थीं—गुण (५०%), फैशन (१०%), किस्म (३०%) और बचत (१०%)। किंतु इसके बाद गुणों की संख्या और बढ़ गयी और फिर धीरे-धीरे कम होती गयी। यहां तक कि फैशन पर इतना अधिक जोर दिया जाने लगा कि वस्तु के गुणों को भी नजरअंदाज कर दिया गया। अब विज्ञापनों में केवल फैशन का ही वर्णन होता है या माडल्स के द्वारा फैशनों का दिखावा। इनमें से अधिकतर विज्ञापनों का उद्देश्य स्त्रियों और पुरुषों के मन में माडल्स की ही तरह 'स्मार्ट' दीखने की प्रवृत्ति को बढ़ावा देना है। क्योंकि विज्ञापन की 'कापी' अंग्रेजी में लिखी जाती है इसलिए अक्सर भारतीय भाषाओं में अनुवाद हो जाने के बाद इनका मतलब कुछ भी नहीं निकलता।

विज्ञापनों का अभिप्राय है—बहुत अधिक संख्या में चीजों को जनता तक पहुंचाना और इसके द्वारा बड़ी मात्रा में उत्पादन को बढ़ावा देना जिससे इस प्रक्रिया के द्वारा कीमतों में कमी लायी जा सके। यदि विज्ञापन का यह उद्देश्य पूरा नहीं होता तो विज्ञापन पर खर्च की हुई राशि व्यर्थ जाती है। १८ से २५ वर्ष तक ४० नवयुवकों पर आधुनिक कपड़ों के विज्ञापनों के प्रभाव संबंधी एक सर्वेक्षण से यह पता चलता है कि उनमें से सभी को विज्ञापन पढ़ने में मजा आता था। उन्होंने कहा कि वे इसे पसंद भी करते थे। किंतु केवल तीन युवकों को ही कपड़े बनाने वाले या उसको विज्ञापित करने वाली कंपनियों के नाम याद हैं। यदि इन नवयुवकों को उस कंपनी या कपड़े का 'ब्राड' याद नहीं जो वे पहनना चाहते हैं तो यह समझ में नहीं आता कि किस प्रकार विज्ञापन वस्तु विशेष की बिक्री में सहायक हो सकते हैं। इन विज्ञापनों से यदि कुछ लाभ हुआ तो इतना ही कि इन्होंने फैशन का प्रचार किया लेकिन यह समझ में नहीं आता कि फैशन के प्रचार का खर्चा एक औसत उपभोक्ता क्यों भुगते ? विज्ञापन

पर होनेवाला सारा खर्चा अंततः उपभोक्ता से ही वसूल किया जाता है।

जो कुछ भी फ्रैंक व्हाइटहैड ने ब्रिटेन के विज्ञापनों में प्रकाशित नाम और उनकी उद्देश्यहीनता के बारे में कहा है वह इस प्रकार के आधुनिक भारतीय विज्ञापनों पर भी लागू होता है। उनका कथन है कि इन विज्ञापनों में कम से कम सूचना होती है और इनका प्रारंभिक उद्देश्य होता है हमारी भावनाओं और हमारे अर्द्ध-सचेतन दृष्टिकोणों को तर्कविहीन सुझावों से प्रभावित करना। वे केवल एक वस्तु ही नहीं बेचते बल्कि एक दृष्टिकोण को भी गले मढ़ देते हैं। इस प्रकार के विज्ञापन आल्डस हक्सले द्वारा व्यंग्यात्मक ढंग से वर्णित विज्ञापन-कौशल से भी एक कदम आगे बढ़ गये हैं। हक्सले के अनुसार "कुछ सामूहिक इच्छाएं, कुछ अधिक प्रचलित अचेतन डर और स्वार्थ ढूंढ़ निकालिए। इन इच्छाओं और डरों को उस वस्तु से जिसे आप बेचना चाहते हैं, जोड़ने का कोई मार्ग ढूढ़िए। इसके बाद शब्दों या चित्रों का एक पुल बनाइए जिससे होकर आपके उपभोक्ता तथ्य से मीठे-मीठे स्वप्न की ओर बढ़ चलें और इस स्वप्न से इस माया की ओर कि आपकी वस्तु खरीद लेने पर उसका स्वप्न सत्य हो जायगा।" ये विज्ञापन अपने में कुछ आधारहीन इच्छाएं, डर और स्वप्न सन्निहित कर लेते हैं और इनको पाठकों के लिए शब्दों या चित्रों द्वारा तादात्म्य स्थापित करने के लिए प्रस्तुत किया जाता है। वे इस प्रकार जो पुल बनाते हैं वह बड़े निरर्थक होते हैं क्योंकि उसका केवल एक ही सिरा होता है। यह कोई कहने की बात ही नहीं कि उन पर से केवल कुछ ही लोग गुजर सकते हैं और इस सारे खेल में विज्ञापन देनेवालों की ही क्षति होती है। समय आ गया है कि इनमें से कुछ विज्ञापनों के प्रभाव का अध्ययन किया जाय जिससे पता चल सके कि क्या इन विज्ञापनों का उपभोक्ता की आदतों व उनके 'ब्रांड' की पसंद पर किसी भी प्रकार का कोई प्रभाव होता है।

विदित है कि बेतुके और उद्देश्यहीन विज्ञापनों ने ही भारी उद्योगों के मंत्री श्री टी० ए० पै को हाल ही में विज्ञापनों की आलोचना करने पर विवश कर दिया था। उन्होंने कहा था कि बहुत-सी वस्तुओं का मूल्य कम किया जा सकता है यदि उनका विवेकहीन विज्ञापन बंद कर दिया जाय। यदि विज्ञापनदाता पश्चिमी देशों का अंधानकरण करें और भारतीय संदर्भ में विज्ञापन की सार्थकता को भूल जायं तो कोई आश्चर्य नहीं कि विज्ञापनों पर कुछ प्रतिबंध लगाने की भी नौबत आ जाय।

अभी तक हम विज्ञापन को उसकी विषयवस्तु के आधार पर ही देखते रहे हैं। जरा प्रेस-विज्ञापन के आर्थिक पहलू पर भी एक नजर डाली जाय क्योंकि इसका अखबारी उद्योग में विशेषकर भारतीय भाषायी अखबार के संदर्भ में विशेष महत्व है।

भारतीय भाषायी समाचार-पत्र स्वदेशी आंदोलन और स्वतन्त्रता-संग्राम के साथ बहुत बड़ी संख्या में निकलने लगे। परन्तु अंग्रेजी अखबारों के मुकाबले उनका विज्ञापन-शुल्क बहुत ही कम था। अधिकतर वे चंदे में चलते थे या फिर प्रकाशक की अपनी हिम्मत के दम पर। अंग्रेज शासक भाषायी प्रेस के विरुद्ध थे। लार्ड हेस्टिंग्ज जैसे कुछ अपवाद थे जिन्होंने 'स्वतंत्र प्रेस' को प्रोत्साहित किया विशेषकर उन अखबारों को जो कि "स्थानीय लोगों की भाषाओं में थे, जिनका संचालन स्थानीय लोगों के हाथ में था और जो भारतीय लोगों के लिए छपते थे।" परंतु ऐसे अखबार बहुत कम थे।

बहुत से भारतीय समाचार-पत्र केवल आर्थिक संकट और सरकारी हस्तक्षेप के कारण समाप्त हो गये। 'ट्रिब्यून' जैसे अंग्रेजी अखबारों को भी धक्का पहुंचा परंतु आर्थिक दृष्टि से वे ठीक चल रहे थे क्योंकि उनमें काफी विज्ञापन होता था।

द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् विज्ञापन अधिक राष्ट्रीय होता गया। साबुन, बिजली का सामान, मशीनरी, चाय, काफी, सिगरेट और इसी प्रकार की बहुत-सी उपभोक्ता वस्तुए विज्ञापन कालम में प्रकाशित होती थीं। बीमा, राष्ट्रीय बचत, बैंक, आवागमन और इसी प्रकार की दूसरी सेवाओं ने भी बड़ी मात्रा में विज्ञापन आरंभ कर दिया। ये सभी विज्ञापन देश के प्रमुख अंग्रेजी व हिंदी समाचार-पत्रों में छपते थे। इसी बीच समाचार-पत्रों की वित्तीय स्थिति में बदलाव आ रहा था। समाचार-पत्र निकालने में बढ़ते व्यय के कारण, उन्हें विज्ञापनों पर और अधिक निर्भर होना पड़ रहा था।

समाचार-पत्रों की तथ्य-अन्वेषण समिति के अनुसार १९७३ में १० पृष्ठ के २५०० वर्ग सेंटीमीटर वाले सामान्य आकार के समाचार-पत्र की एक प्रति निकालने पर ३३ पैसे खर्च होते थे और उससे ३६.३ पैसे प्राप्त होते थे। प्राप्त राशि में १९.६ पैसे विज्ञापन से और १६.७ पैसे बिक्री से प्राप्त होते थे। तात्पर्य यह है कि ५५ प्रतिशत आय विज्ञापनों द्वारा प्राप्त होती थी।

विज्ञापन समाचार-पत्रों को प्रारंभ से ही आर्थिक सहायता देते रहे हैं किंतु स्वतंत्रता से पूर्व के पत्रों की आर्थिक स्थिति का कोई विश्वसनीय ब्योरा उपलब्ध नहीं है। कुछ प्रयत्नों से यह तैयार किया जा सकता है। प्रेस आयोग (१९५४) ने यह हिसाब लगाया कि कोई भी समाचार-पत्र सही ठोस वित्तीय आधार पर चलाया जा सकता है यदि इसमें ४० प्रतिशत स्थान विज्ञापन का हो। इसलिए कमीशन ने यह सुझाव दिया था कि दैनिक समाचार-पत्रों में विज्ञापनों का स्थान कुल छपे स्थान का ४० प्रतिशत से अधिक नहीं होना चाहिए। आयोग का कथन था कि "इससे यह सुनिश्चित हो जायगा कि पाठक को समुचित मात्रा मे समाचार व विचार प्राप्त हो रहे हैं और विज्ञापनों का प्रभाव बहुत अधिक विज्ञापन ठूसे जाने के कारण कम नहीं हो रहा है। आयोग ने आगे कहा, "विज्ञापनों की अधिकतम सीमा ४० प्रतिशत निर्धारित करने के लिए हमने केवल तात्कालिक प्रथा को ही दृष्टि में नहीं रखा है वरन् उस भावी मनोवृत्ति को भी ध्यान में रखा है जिसकी हमे प्रति पृष्ठ मूल्य निर्धारण होने पर उभरने की आशा है। हमें इस बात की आशा है कि जब समाचार-पत्रों की पृष्ठसंख्या कम करने या प्रति का मूल्य बढ़ाने पर बाध्य होना पड़ेगा तब समाचारों व संपादकीयों को संक्षेप में प्रस्तुत करने का आकर्षण गंभीर रूप से बढ़ जायगा ताकि सभी आरक्षित विज्ञापन समाचार-पत्र में समा सकें। इसके फलस्वरूप, विज्ञापन और पाठ्य सामग्री के स्थान का अनुपात बढ़ जायगा। इसीलिए हमारी राय है कि इसको हमारे द्वारा प्रतिपादित सीमा तक ही रखा जाय"।

समय साक्षी है कि आयोग की आशंका सही थी। विज्ञापन व पाठ्य-सामग्री के बीच आयोग द्वारा निश्चित ४० : ६० का अनुपात पिछले कई वर्षों में अनेक समाचार-पत्रों मे उल्टा हो गया है। इससे पूर्व कि हम उन पक्षों की गहराई में जायं,

स्वतंत्रता के फौरन बाद समाचार-पत्रों में विज्ञापन की स्थिति क्या थी यह समझ लेना भी आवश्यक है।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात प्रथम पांच वर्षों में राष्ट्रीय पत्रों ने विज्ञापन स्थान ३५-३७ प्रतिशत से बढ़ाकर लगभग ४० प्रतिशत तक कर दिया था। वृद्धि की यह दर १९६३ तक बनी रही जब यह ५२ प्रतिशत तक पहुंच गयी। यह बिना हस्तक्षेप के सुनियोजित विकास का वह समय था जिसमें देश उत्पादन-क्षमता, उत्पादन-गति व विक्रय के दौर से गुजर रहा था। बहुत अधिक उतार-चढ़ाव के बाद विज्ञापन का स्थान १९६३ के मुकाबले १९७२-७३ में ६० प्रतिशत हो गया। यह कथन केवल अंग्रजी समाचार-पत्रों के बारे में है। भारतीय भाषाओं के अधिकतर समाचार-पत्रों में ५० प्रतिशत से अधिक विज्ञापन नहीं होते थे। यद्यपि उनमें से कइयों की बिक्री अपने अंग्रेजी अखबारों से अधिक थी। १९५१ में 'नवभारत टाइम्स' में औसतन १३ प्रतिशत विज्ञापन होते थे। १९५७ में यह बढ़ कर ३५.२ प्रतिशत हो गये। यह प्रतिशत १९६७ में बढ़कर ३७.३ और १९७१ में ५४ तक पहुंच गया। भारतीय भाषाओं के कई समाचार-पत्रों की तुलना में 'नवभारत टाइम्स' की स्थिति काफी अच्छी थी। भारतीय भाषाओं के मध्यम व लघु समाचार-पत्र हमेशा विज्ञापनों के लिए तरसते रहते थे। इस तथ्य के विपरीत कि भाषायी पत्र आज सभी शिक्षित व संपन्न व्यक्तियों द्वारा पढ़े जाते हैं, विज्ञापनदाताओं का अंग्रेजी समाचार-पत्रों में विज्ञापन पर अधिक व्यय करने का विरोधाभास अभी भी जारी है। कुछ अंशों तक तो यह बात समझ में आती है कि औद्योगिक व व्यावसायिक विज्ञापन करने वाले अंग्रेजी अखबारों को प्राथमिकता दें क्योंकि इनके द्वारा वे विशेष संभावित खरीदारों तक पहुंच सकते हैं। किंतु सरकारी विज्ञापनों का उद्देश्य वस्तुओं की बिक्री करना नहीं है वरन् सेवाओं व विचारों को संपन्न वर्ग की अपेक्षा सामान्य पाठकों तक पहुंचाना है। परिवार-नियोजन, एकता, कृषि, स्वास्थ्य और इसी प्रकार के दूसरे अभियानों का सीधा लक्ष्य सामान्य पाठक होने चाहिए। दुर्भाग्यवश भाषायी समाचार-पत्रों को उनका पूरा हक नहीं मिल पा रहा है। १९६३-६४ में दृश्य व श्रव्य प्रचार निदेशालय ने प्रेस-विज्ञापन पर ५६.८ लाख रुपये की राशि खर्च की थी। इसमें से ३१.८ लाख रुपये अंग्रेजी प्रेस को दिये गये। लगभग २५ लाख भारतीय भाषाओं के पत्रों को मिले, जिसमें हिंदी पत्रों का हिस्सा मात्र ८.२ लाख रुपये था। सरकार को ३१.८ लाख रुपये के बदले अंग्रेजी अखबारों में ६ लाख कालम सेंटीमीटर स्थान मिला जबकि भाषायी पत्रों पर खर्च २५ लाख रुपयों में ११ लाख कालम सेंटीमीटर स्थान प्राप्त हुआ। यह स्थान ५.२० रुपये प्रति कालम सेंटीमीटर पड़ता है। सरकार की नीति अधिक से अधिक भारतीय भाषायी प्रेस को प्रोत्साहित करने की ओर उन्मुख है। अब अंग्रेजी व भाषायी दोनों समाचार-पत्रों को लगभग बराबर विज्ञापन मिलते हैं यद्यपि भाषायी पत्रों की प्रति कालम सेंटीमीटर दर अभी तक कम है।

अप्रैल १९७२ में सरकार ने देश में प्रकाशित होने वाले दैनिक समाचार-पत्रों की पृष्ठ संख्या सीमित कर दी थी। इस निर्धारण का मूल उद्देश्य समाचार-पत्रों, विशेषकर बड़े सामाचार-पत्रों में विज्ञापन पर दिये जा रहे जोर पर रोक लगाना था।

सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इस तरीके को अवैधानिक घोषित कर दिया गया।

किंतु इस (दस पृष्ठ) सीमा निर्धारण के समाप्त होने से पहले ही अखबारी कागज में ३० प्रतिशत कटौती ने पृष्ठ सीमा निर्धारण से भी बड़े विवाद को जन्म दिया। हाल ही में पहली बार समाचार-पत्रों ने अपनी संपूर्ण शक्ति से इस कटौती के विरोध में आवाज उठायी और समाचार-पत्रों के मूल्य और विज्ञापन-दरों में वृद्धि के लिए काफी जोर से दौड़-भाग की। काफी सीमा तक समाचार-पत्र अपनी दरें बढ़ाने में सफल हुए।

विज्ञापनों का स्थान व विज्ञापनों से होने वाली आय दोनों ही दस पृष्ठ सीमा निर्धारण के बाद कम हो गयी जबकि ३० प्रतिशत अखबारी कागज में कटौती के बाद इनमें कुछ वृद्धि हुई। कटौती के बाद आय में वृद्धि विज्ञापन दरों में हुई वृद्धि को दर्शाता है। ओ० आर० जी० (ओरिएंटल रिसर्च ग्रुप) के एक अध्ययन के अनुसार १९७३ में प्रेस विज्ञापनों पर ६० करोड़ रुपये व्यय हुए। इनमें से ५१ करोड़ रुपये दैनिक समाचार-पत्रों के माध्यम से खर्च किये गये। देश में प्रेस विज्ञापनों में किये जाने वाले व्यय का ९० प्रतिशत मे कुछ अधिक १२० प्रकाशनों के माध्यम से हो रहा है। तीस बड़े प्रकाशनों के पास ६० प्रतिशत विज्ञापन व्यय और लगभग ४० प्रतिशत विज्ञापन स्थान है। विज्ञापन पर व्यय होने वाली कुल राशि का लगभग आधा अंग्रेजी प्रकाशनों को जाता है जबकि वे केवल कुल विज्ञापन स्थान का $\frac{1}{3}$ भाग देते हैं। अंग्रेजी दैनिकों का हिस्सा धीरे-धीरे घट रहा है। १९७३-७४ के दौरान यह लगभग १५ प्रतिशत वित्त के रूप में और ६ प्रतिशत विज्ञापन स्थान के रूप में घट गया है।

यह प्रसन्नता की बात है कि भाषायी पत्रों को पहले की अपेक्षा अब अधिक विज्ञापन प्राप्त हो रहे हैं। यह किसी भाषायी पूर्वग्रह के कारण नहीं है वरन् यह इस बात का द्योतक है कि माध्यम-आयोजना के क्षेत्र मे कुछ अधिक समझदारी से काम लिया जा रहा है। भारतीय भाषायी समाचार-पत्र आज सभी वर्गों, विशेषकर मध्यम व निम्न मध्यम वर्गों के लोगों तक पहुंचते हैं। सरकारी सार्वजनिक सेवाओं की घोषणा तथा अनेक उपभोक्ता वस्तुओं की खपत के दृष्टिकोण मे पाठकों के ये वर्ग आज बहुत महत्वपूर्ण हैं।

पृष्ठ ६५० पर दी गई तालिकाओं में १९७१ में किये गये एक नमूना-सर्वेक्षण के अनुसार दिल्ली के कुछ समाचार-पत्रों के पाठकों का वर्गीकरण दिया गया है।

इन दोनों तालिकाओं से पता चलता है कि 'नवभारत टाइम्स' जनता के उस सबसे बड़े वर्ग में पहुंचता है जो सामाजिक-आर्थिक दृष्टि से किसी सार्वजनिक अभियान का सबसे अधिक महत्वपूर्ण लक्ष्य प्रतीत होता है। भाषायी पत्रों को उनको उचित स्थान न देने का अर्थ है विज्ञापनों से होने वाले सर्वोच्च लाभों से वंचित रहना और भाषायी पत्रों के विकास में अवरोध पैदा करना। तथ्य-अन्वेषण समिति ने विचार किया है कि संप्रति समाचार-पत्रों की वित्तीय स्थिति के संदर्भ में विज्ञापन-स्थान व पाठ्य सामग्री के बीच ५०:५० का अनुपात आवश्यक है। कुछ प्रमुख समाचार-पत्रों को छोड़कर भाषायी समाचार-पत्र इस समानुपात को प्राप्त करने में तब तक सफल न हो सकेंगे जब तक हमारे विज्ञापन करने वाले एक सही माध्यम-आयोजन

तालिका १

पारिवारिक आय के आधार पर दिल्ली से प्रकाशित कुछ समाचार-पत्रों के पाठकों का वितरण

आय	१००-३००	३०१-८००	८०१-१५००	१५०० से ऊपर	कुल
टाइम्स आफ इंडिया	१ (२.०)	७ (११.४)	२८ (४३.८)	२५ (४१.०)	६१ (१००.०)
नवभारत टाइम्स	९ (३४.६)	१३ (५०.०)	४ (१४.४)	—	२६ (१००.०)
स्टेट्समैन	—	६ (११.०)	२३ (४२.६)	२५ (४६.३)	५४ (१००.०)
इंडियन एक्सप्रेस	१ (१.३)	१६ (२१.६)	४२ (५५.१)	१५ (२०.१)	७६ (१००.०)
हिंदुस्तान टाइम्स	—	४६ (२९.४)	७५ (४८.०)	३७ (२३.६)	१५८ (१००.०)

तालिका २

शिक्षा के आधार पर दिल्ली से प्रकाशित कुछ समाचार-पत्रों के पाठकों का वितरण

समाचार-पत्र शिक्षा	प्राथमिक व माध्यमिक	उच्चतर माध्यमिक	कालेज	कुल
टाइम्स आफ इंडिया	—	११ (१८.०)	५० (८२.०)	६१ (१००.०)
नवभारत टाइम्स	३ (११.४)	१४ (५४.०)	९ (३४.६)	२६ (१००.०)
स्टेट्समैन	—	७ (१३.०)	४७ (८७.०)	५४ (१००.०)
इंडियन एक्सप्रेस	—	१५ (२०.३)	५९ (७९.७)	७४ (१००.०)
हिंदुस्तान टाइम्स	८ (५.१)	३८ (२४.३)	११२ (७१.६)	१५८ (१००.०)
कुल जोड़	११	८५	२७७	३७३

('कौन किस-किस प्रकार के विज्ञापन पढ़ता है'—लेखक प्रो० 'एन० एन० पिल्लई—१९७२)

नीति (media strategy) नहीं अपनाते। समय आ गया है कि माध्यम चुनने का पुराना तरीका तथा दर निर्धारण का ढंग बदला जाय। पाठकों का वर्ग बदल गया है। आवश्यकता केवल माध्यम-नीति में ही परिवर्तन की नहीं है वरन् रचनात्मक नीति में भी परिवर्तन आवश्यक है। विज्ञापन की 'कापी' अब अंग्रेजी के स्थान पर भारतीय भाषाओं में ही सोची जानी चाहिए। अधिकतर अंग्रेजी विज्ञापनों का बेतुका भाषायी अनुवाद न केवल व्यर्थ है वरन् एक प्रकार से पाठकों का निरंतर निरादर भी है। हमारे विज्ञापनों की रचनात्मक तथा माध्यम-आयोजन नीतियों को और अधिक वास्तविक एवं उद्देश्यपूर्ण होना पड़ेगा।

हिंदी के अखबार : लचर ढांचा और पचर प्रबंध

यह भी कितनी अजीब विडंबना है कि आजादी के अट्ठाईस वर्षों के गुजर जाने के बावजूद हिंदी अखबारों और पत्र-पत्रिकाओं ने गुलामी की भाषा अंग्रेजी के अखबारों और पत्र-पत्रिकाओं की दासता से छुटकारा नहीं पाया। प्रेस रजिस्ट्रार की रिपोर्ट मेरे सामने है, जो बार-बार यह बताती है कि संख्या की दृष्टि से भले ही हिंदी पत्र-पत्रिकाओं का पहला स्थान हो, किंतु प्रसार-संख्या की दृष्टि से वे अभी भी अंग्रेजी के पीछे-पीछे ही चले जा रहे हैं। १९७३ की इस रिपोर्ट में १९७२ के आंकड़े दिये हैं, जिनसे पता चलता है कि देश में १९७२ के अंत में अखबारों और अन्य पत्र-पत्रिकाओं की कुल संख्या ११,९२६ थी। सब से अधिक पत्र-पत्रिकाओं के रूप मे हिंदी ने अपना पहला स्थान बनाये रखा। उनकी संख्या ३,०८३ थी, जबकि अंग्रेजी के अखबार और पत्र-पत्रिकाओं की संख्या २,३६८ थी और उसका क्रम दूसरा था।

कुल पत्र-पत्रिकाओं में ७९३ दैनिक, ६४ सप्ताह मे दो या तीन बार निकलने वाले, ३,५८३ साप्ताहिक और ७,४८७ अन्य पत्रिकाएं थी। इनकी तुलना में, हिंदी के पत्र-पत्रिकाओं में २४८ दैनिक, १४५३ साप्ताहिक और १३८२ अन्य पत्रिकाएं थीं। उत्तर प्रदेश में हिंदी के सब से ज्यादा प्रकाशन हैं और वहां से कुल मिलाकर १,२२१ पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन १९७२ के अंत में हो रहा था। उसके बाद दूसरा क्रम राजस्थान (५२१) और तीसरा क्रम मध्य प्रदेश (४०४) का है।

संख्या की दृष्टि से भले ही हिंदी अखबार और पत्र-पत्रिकाएं देश में सब से आगे हों, पर प्रसार-संख्या की दृष्टि से अंग्रेजी के अखबार और पत्र-पत्रिकाएं आगे हैं। १९७२ के अंत में हिंदी पत्रों की प्रसार-संख्या कुल मिलाकर ६८.६ लाख प्रतियां थीं, जबकि अंग्रेजी पत्रों की प्रसार-संख्या ७७.७ लाख प्रतियां। यद्यपि १९७३ और १९७४ के लिए अखबारों और पत्र-पत्रिकाओं के बारे में प्रामाणिक आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं किंतु पिछले दो वर्षों में देश के अखबारों और पत्र-पत्रिकाओं को मुसीबतों के जिस दौर से गुजरना पड़ा है, उसे देखते हुए स्थिति में प्रतिकूल परिवर्तन हुए हैं और हो सकता है कि प्रसार-संख्या में भी कमी हुई हो।

१८२६ में उदंत मार्तंड से हिंदी पत्रों की जो परंपरा शुरू हुई थी, वह लगभग सौ वर्षों तक साहित्य, समाज-सुधार, राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलनों आदि से जुड़ी रही और इस दौरान हिंदी के जिन अखबारों और पत्र-पत्रिकाओं ने जन्म लिया, वे इन्हीं में से किसी एक या अनेक उद्देश्यों को लेकर शुरू किये गये। उस समय के प्रकाशकों और संपादकों—जो अक्सर एक ही होते थे—ने अखबारों के आर्थिक पहलू पर कोई ध्यान नहीं दिया। घर का सामान बेचकर भी अखबार चालू रखा, लेकिन उसके बाद उदंत मार्तंड भी आर्थिक कठिनाइयों के कारण बंद हुआ और उसके बाद के कई पत्रों की गति भी यही रही। यह बात जरूर है कि यह स्थिति केवल हिंदी पत्रों के साथ ही नहीं, बल्कि अन्य भारतीय भाषाओं के पत्रों के साथ भी थी। अंग्रेजी दासता की खिलाफत में कई अखबारों को सजा भुगतनी पड़ी और आजादी की लड़ाई के यज्ञ में उन्हें होम बनना पड़ा। १९४७ में देश की आजादी ने नक्शा बदल दिया। राष्ट्र-प्रेम और आजादी की लड़ाई के लक्ष्यों को राजनीतिक और आर्थिक पुनरुत्थान के लक्ष्यों के लिए अपना स्थान छोड़ना पड़ा और अखबारों की प्रकृति में लगातार परिवर्तन शुरू हो गया।

लेकिन दुर्भाग्य की बात यह है कि अंग्रेजी अखबारों का प्रभुत्व खत्म नहीं हुआ, बल्कि ऐसा प्रतीत होता है कि आजादी के बाद भारतीय भाषाओं के अखबारों को भारी नुकसान पहुंचाते हुए भी अंग्रेजी के अखबार साथ-साथ ज्यादा ताकतवर बन गये हैं। यद्यपि इस बीच हिंदी के साथ-साथ अन्य भारतीय भाषाओं के पत्रों का विकास हुआ है, किंतु वह संख्या और प्रसार-संख्या की दृष्टि से ही हुआ है, प्रभाव की दृष्टि से अभी भी देश की सरकार से लेकर अफसरशाही और नागरिक अंग्रेजी पत्रों को अपनी भाषाओं के पत्रों से कहीं ऊंचा ओहदा देते हुए नजर आते हैं। इसके मूल में जो कारण हो सकते हैं, उनका विश्लेषण हम आगे करेंगे, पर यह बात साफ है कि राष्ट्रीय भाषाओं के धीमे विकास में, उनकी अर्थव्यवस्था के ढुलमुलपन मे और अनाड़ी प्रबंध व्यवस्था में अंग्रेजी की दासता ने एक घातक भूमिका निभायी है। इस तथ्य को स्पष्ट करने के लिए हमें दैनिक अखबारों के आंकड़े लेते हुए आगे बढ़ना होगा, क्योंकि अन्य पत्र-पत्रिकाओं की तुलना में दैनिक अखबारों का प्रभाव निश्चित रूप मे अधिक पड़ता है।

देश की आजादी के कुछ वर्षों तक अगर अंग्रेजी अखबारों की प्रमुखता बनी भी रहती, तो उसे हम यह कहकर नकार सकते थे कि सैकड़ों वर्षों की गुलामी का असर इतनी जल्दी कैसे खत्म होगा। पर हम आजादी के बीस वर्षों बाद १९६७ और बाद में १९७३ के आंकड़ों की ओर देखने पर कैसे यह दलील दे सकते हैं। तालिकाओं के सहारे यह बात अधिक स्पष्ट की जा सकती है, आइए देखें :

तालिका १ : दैनिक अखबारों की संख्या और प्रसार-संख्या

वर्ष	कुल दैनिक	जितने दैनिकों की प्रसार-संख्या ज्ञात हुई	प्रसार-संख्या (लाख)	प्रतिशत वृद्धि
१९६७	५८८	४५०	७०.३०	—
१९७३	८३०	६१०	९४.३६	३४.२%

उपर्युक्त तालिका से यह बात ज्ञात हुई है कि १९६७ से १९७३ के बीच दैनिक अखबारों की संख्या ५८८ से बढ़कर ८३० हो गयी और जिन अखबारों की प्रसार-संख्या ज्ञात हुई है, उनकी प्रसार-संख्या ७०.३० लाख प्रतियों से बढ़कर ९४.३६ लाख हो गयी है। अच्छी बात है कि प्रसार-संख्या बढ़ी है, पर इसमें अंग्रेजी के थोड़े से अखबारों का हिस्सा कितना ज्यादा है, इसे देखने के लिए इस दूसरी तालिका पर नजर डालिए :

तालिका २ : अंग्रेजी, हिंदी और भारतीय भाषाओं के अखबार
(प्रसार-संख्या की दृष्टि से)

भाषा	पत्रों की संख्या		प्रसार-संख्या लाखो में	
	१९६७	१९७३	१९६७	१९७३
अंग्रेजी	६१	७५	१७.८२	२२.३०
हिंदी	१७४	२५५	१०.३२	१६.९९
अन्य भाषाएं	३५३	५००	४२.१६	५५.०७
कुल	५८८	८३०	७०.३०	९४.३६

भारतीय भाषाओं, खास तौर से हिंदी की तुलना में अंग्रेजी के अखबारों की एकाधिकारी प्रवृत्ति का आभास इसी तथ्य से हो जाता है कि जहां १९७३ में हिंदी के २५५ अखबारों की कुल मिलाकर १७ लाख प्रतियां भी रोज नहीं बिकती थीं, वहां अंग्रेजी के गिने-चुने ७५ अखबारों की रोज २२ लाख से ज्यादा प्रतियां बिकती थीं। अंग्रेजी की अगुवाई और हिंदी का दूसरे क्रम में बना रहना कब खत्म होगा, यह कहना मुश्किल है, क्योंकि वर्तमान स्थिति तो यही संकेत देती है, कि इसमें शायद कई दशक लग जायं, यद्यपि पिछले कुछ वर्षों में भारतीय भाषाओं के साथ-साथ हिंदी के अखबारों ने भी प्रगति की है, किंतु अंग्रेजी के अखबार भी प्रभावशाली दर से प्रगति करते आ रहे हैं, इसलिए उन्हें पीछे करना शायद हिंदी के लिए काफी मुश्किल काम होगा। पिछले आंकड़े—१९६७ और १९७३ के बीच के—यही बात साबित भी करते हैं, यह स्पष्ट है निम्नलिखित तालिका से :

तालिका ३ : अंग्रेजी और भारतीय भाषाओं के अखबार
(प्रसार-संख्या और प्रसार-वृद्धि लाखों में)

भाषा	प्रसार-संख्या		प्रसार-वृद्धि
	१९६७	१९७३	१९६७-७३
अंग्रेजी	१७.८२ (२५.३)	२२.३० (२३.६)	२५.१
भारतीय भाषाएं (एकभाषीय)	५२.०८ (७४.१)	७१.४६ (७५.७)	३७.२
बहुभाषीय	.४० (०.६)	.६० (०.७)	५०.०

टिप्पणी—कोष्ठकों में दी गयी संख्याएं कुल प्रसार-संख्या में प्रतिशत को प्रदर्शित करती हैं।

उपर्युक्त तालिका से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि कुल प्रसार-संख्या में अंग्रेजी के गिने-चुने अखबारों की संख्या का हिस्सा प्रतिशत की दृष्टि से नगण्य रूप से कम हुआ है और यह स्थिति हमारी भाषाओं के लिए कोई शुभ संकेत नही है।

प्रतियोगिता भारतीय भाषाओं के बीच नहीं है

अंग्रेजी और भारतीय भाषाओं के अखबारों के बीच गैर-बराबरी की लड़ाई जारी है, सरकार से लेकर अफसरशाही तक अंग्रेजी को बढ़ावा देने मे लगी हुई है, जबकि भारतीय भाषाओं के अखबार अपनी लड़ाई खुद लड़ रहे हैं, यही कारण है कि प्रतियोगिता अंग्रेजी और भारतीय भाषाओं के अखबारों के बीच है, भारतीय भाषाएं एक-दूसरी की पूरक बन कर अंग्रेजी के खिलाफ यह लडाई लड़ रही है। प्रतियोगिता में कुछ की प्रगति अंग्रेजी से भी कम गति से हुई, १६६७ से १६७३ के बीच अंग्रेजी अखबारों की प्रसार-संख्या में २५.१ प्रतिशत वृद्धि हुई है। वहां हिंदी सहित कुछ अन्य भारतीय भाषाओं की प्रगति यह बताती है कि जहां हिंदी ने, मलयालम और मराठी के साथ अंग्रेजी से ज्यादा दर से प्रगति की है, वहां दूसरी ओर जहां अंग्रेजी और भारतीय भाषाओं—तमिल और बंगला के बीच प्रतियोगिता ज्यादा तेज है, वहां प्रगति की दर कम रही।

तालिका ४ : कुछ भारतीय भाषाओं के अखबार
(प्रसार-संख्या में वृद्धि लाखों में)

भाषा	प्रसार-संख्या		प्रसार-वृद्धि
हिंदी	१०.३२	१६.६६	६४.६
मराठी	६.२६	६.४६	५०.६
मलयालम	७.८८	११.१२	४२.०
बंगला	४.७२	५.६६	२०.६
तमिल	७.८१	८.७४	११.६

भारतीय भाषाओं के अखबार हर क्षेत्र में अंग्रेजी अखबारों की कड़ी प्रतियोगिता का सामना करते हुए आगे बढ़ रहे हैं, इसलिए जिन भाषाओं में प्रतियोगिता कम है, उनमें अखबारों की प्रगति अधिक तेज गति से हुई है और भाषावार जनसंख्या का कुल जनसंख्या से जो प्रतिशत है, उसकी तुलना में कुल दैनिक अखबारों की प्रसार-संख्या में उन भाषाओं के अखबारों का प्रतिशत ज्यादा है। इस बात को स्पष्ट करने के लिए दो उदाहरण दिये जा सकते हैं. १६७१ की जनगणना के अनुसार हमारे देश में हिंदी भाषी जनता की कुल जनसंख्या २६.६७ प्रतिशत है, जबकि कुल दैनिक अखबारों की प्रसार-संख्या में उसके दैनिकों का प्रतिशत उससे कम यानी १८.१ प्रतिशत है, इसके विपरीत मलयालम भाषी जनता कुल जनसंख्या की केवल ४ प्रतिशत है, जबकि दैनिक अखबारों की कुल प्रसार-संख्या में उसके दैनिक का प्रतिशत उससे लगभग तिगुना

यानी ११.७८ प्रतिशत है। आइए, कुछ अन्य भाषाओं के साथ यह तुलना अगली तालिका में देखें :

तालिका ५ : भाषावार जनसंख्या और अखबारों का प्रसार

भाषा	भारत की जनसंख्या में उसका प्रतिशत (१९७१)	दैनिक अखबारों के कुल प्रसार में प्रतिशत (१९७३)
हिंदी	२९.६७	१८.१०
मलयालम	४.००	११.७८
मराठी	७.७०	१०.६
तमिल	६.८८	९.२६
गुजराती	४.७३	७.९३
बंगला	८.१७	६.०३

इतनी कड़ी प्रतियोगिता के बावजूद हिंदी सहित भारतीय भाषाओं के सभी अखबारों ने अपनी स्थिति सुधारने के लिए कठोर परिश्रम किया है और उसके परिणाम भी सामने आये हैं। प्रत्येक भाषा के अखबारों की प्रति हजार जनसंख्या के बीच वितरित होनेवाली संख्या में वृद्धि हुई है। पिछले एक दशक के दौरान यह प्रगति दिखायी देती है, किंतु इसे किसी भी रूप में पर्याप्त नहीं कहा जा सकता। उदाहरण के लिए १९६३ में हिंदी के अखबारों की प्रति हजार जनसंख्या में ६ से भी कम प्रतियां बिकती थीं, जो १९७३ में १० से ज्यादा हो गयी हैं, लेकिन यह प्रगति उल्लेखनीय नहीं है। निम्नलिखित तालिका इस तथ्य को अधिक स्पष्ट करती है :

तालिका ६ : प्रति हजार जनसंख्या पर दैनिकों की प्रसार-संख्या

भाषा	प्रति हजार जनसंख्या पर प्रतियों की संख्या १९६३	१९७३	इस बीच वृद्धि
हिंदी	५.७	१०.५	८४.२
मलयालम	३६.८	५०.७	३७.८
मराठी	१६.४	२२.५	३७.२
तमिल	२१.६	२८.२	७.४
गुजराती	१९.५	२८.९	४८.२
बंगला	८.५	१२.७	४९.४

उपर्युक्त पृष्ठभूमि में अगर हिंदी पत्रों की अर्थव्यवस्था का अध्ययन किया जाय तो यह बात बिल्कुल साफ हो जाती है कि अंग्रेजी पत्रों को मुनाफे का सब से बड़ा माध्यम मानने के कारण हिंदी पत्रों की अर्थव्यवस्था पर समुचित ध्यान नहीं दिया गया

है। हम उस बात से भले ही स्वयं को गौरवान्वित महसूस कर लें कि अन्य दूसरी भारतीय भाषाओं की तुलना में हिंदी के पत्रों की प्रगति अधिक तेज गति से हुई है और उनकी प्रसार-संख्या भी तेजी से बढ़ी है, किंतु अगर गहन विश्लेषण किया जाय, तो यह बात साबित होती है कि प्रगति आशानुकूल नहीं हुई है। इससे पहले कि हम गहन विश्लेषण की ओर बढ़ें, हमें देश के भीतर हिंदी के अखबारों और पत्र-पत्रिकाओं की कुछ प्रवृत्तियों की ओर नजर डाल लेनी चाहिए। यह बात हम सभी जानते हैं कि हिंदी के अखबार और पत्र-पत्रिकाएं पूरे देश में बिखरे हुए हैं, अन्य भाषाओं के अखबारों के समान उनका केंद्रीकरण किसी विशेष क्षेत्र में नहीं है। हिंदी के एक तिहाई पत्र एक लाख और उससे कम आबादी वाले स्थानों से प्रकाशित होते है, जबकि एक तिहाई से ज्यादा हिंदी पत्र महानगरों और राज्यों की राजधानियों को छोड़कर दूसरे एक लाख से ज्यादा आबादी वाले नगरों से निकलते हैं। संख्या की दृष्टि से महानगरों से निकलने वाले पत्र कोई बहुत ज्यादा नहीं हैं। शायद नागालेंड, मणिपुर, गोवा, त्रिपुरा, नेफा तथा अन्य द्वीप समूहों को छोडकर प्रायः सभी राज्यों और केंद्र शासित क्षेत्रों मे हिंदी के पत्र निकलते है, यानी देश के हर कोने में हिंदी के पत्र हमें देखने को मिलते हैं, किंतु यदि आप किसी भी हिंदी के जागरूक पाठक से उन हिंदी के पत्र-पत्रिकाओं का नाम गिनाने के लिए कहें, जिन्हें वह जानता है, तो वह मुश्किल से दर्जन भर नाम गिना पायगा। मसलन् नवभारत टाइम्स, हिंदुस्तान, आर्यावर्त, कल्याण, धर्मयुग, चंदामामा, साप्ताहिक हिंदुस्तान, ब्लिट्ज, नंदन, पराग, सरिता, आदि। स्पष्ट है कि संख्या की दृष्टि से भले ही हिंदी के पत्रों की संख्या हजारों में पहुंचती हो, किंतु अखिल भारतीय लोकप्रियता की दृष्टि से उनकी संख्या दर्जन-दो दर्जन से शायद ही ज्यादा होगी।

ये हिंदी अखबार, पत्र-पत्रिकाएं कौन निकालते हैं ?

अब आइए, हम हिंदी के पत्रों की अर्थव्यवस्था के गहन विश्लेषण की ओर बढ़ें। सब से पहले इनकी मालिकी किनके पास है, यह देखें। इनके मालिकों को हम इस अध्ययन के लिए दो वर्गों में बाट सकते है। एक वह वर्ग जो अंग्रेजी पत्रों के प्रकाशन के साथ-साथ उनके सहारे हिंदी के भी कुछ पत्र निकालता है, यानी हिंदी पत्र उसके प्रकाशन-गृह मे एक सहायक की भूमिका निभाते हैं और दूसरा वर्ग जो केवल हिंदी के अखबार ही निकालता है या जहां अंग्रेजी के पत्र हिंदी के सहायक हैं। देश के बड़े-बड़े हिंदी अखबार और पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन ऐसे मालिकों द्वारा किया जाता है, जो अंग्रेजी अखबारों और पत्र-पत्रिकाओं को प्रधानता देते है। हा, साथ-साथ हिंदी के लिए भी 'कुछ' करना चाहते हैं। इसलिए हिंदी के पत्र भी निकालते हैं। हिंदी के स्वतंत्र प्रकाशक बहुत कम हैं और उनकी आर्थिक हालत कोई खास अच्छी नहीं है। ऐसे मालिक कंपनियों के हकदार उद्योगपति भी हैं। साझेदारी फर्में भी हैं और अकेले व्यक्ति भी, लेकिन कुल बिक्री और पूजी की दृष्टि मे कंपनियों के हकदार उद्योगपतियों का स्थान ही सब से ऊंचा है। हिंदी के अखबार और पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन करने वाले कुछ मालिकों के नाम भी इस संबंध में गिनाये जा सकते हैं, जैसे—बैनेट कोलमेन कंपनी लिमिटेड, बंबई (नवभारत टाइम्स,

धर्मयुग, माधुरी, दिनमान, पराग, सारिका), हिंदुस्तान टाइम्स लिमिटेड, दिल्ली (हिंदुस्तान साप्ताहिक, हिंदुस्तान, नंदन, कादंबिनी), न्यूजपेपर्स एंड पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड, पटना (आर्यावर्त), नरकेशरी प्रकाशन लिमिटेड, नागपुर (युगधर्म), ज्ञान मंडल लिमिटेड, वाराणसी (आज), ऐसोसिएटेड जर्नल्स लिमिटेड, लखनऊ (नवजीवन) राष्ट्रधर्म प्रकाशन लिमिटेड, लखनऊ (पांचजन्य), पायनियर लिमिटेड, लखनऊ (स्वतंत्र भारत), हिंद समाचार लिमिटेड, जालंधर (पंजाब केशरी) डेली तेज प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली (हिंदी तेज), हिंदुस्तान जर्नल्स प्राइवेट लिमिटेड, इंदौर (नवप्रभात)।

कंपनियों के अलावा कुछ फर्मों के नाम भी ले लिये जायं, जैसे फर्म रामगोपाल महेश्वरी तथा अन्य (नवभारत), फर्म के० नरेंद्र और अनिल नरेंद्र (वीर अर्जुन), फर्म के० सी० अग्रवाल तथा अन्य (विश्वमित्र), फर्म लाभचंद छजलानी तथा अन्य (नई दुनिया), फर्म वीरेंद्र तथा अन्य (वीर प्रताप)।

अकेले व्यक्तियों द्वारा प्रकाशित पत्रों की सूची बहुत लंबी है। इसलिए उचित यह होगा कि उनके नाम न गिनाये जायं, क्योंकि उनके पत्रों की संख्या तो बहुत ज्यादा है, पर प्रसार-संख्या बहुत कम।

हिंदी पत्रों में धन कहां से आता है ?

अन्य भाषाओं के अखबारों के समान ही हिंदी के अखबारों के लिए भी धन का इंतजाम उतना ही महत्व रखता है। अखबार के व्यापार में जोखिम बहुत ज्यादा है, इसके साथ-साथ बिक्री और विज्ञापन के लिए प्रतियोगिता भी। इसीलिए आर्थिक रूप से सुदृढ़ हिंदी अखबार प्रायः उन्हीं प्रतिष्ठानों के अधिकार में हैं, जिनके पास अंग्रेजी के भी बड़े-बड़े अखबार हैं। प्रत्येक अखबार का वित्तीय रूप से सुदृढ़ होना जरूरी है। अमेरिकी विद्वान् फ्रैंक थायर ने अपनी पुस्तक 'न्यूजपेपर बिजिनेस मैनेजमेंट' में लिखा है, "स्वाभिमानी होने के लिए प्रत्येक समाचार-पत्र का चरित्रवान और निर्णय-स्वातंत्र्यपूर्ण होना जरूरी है। निर्णय की यह स्वतंत्रता वित्तीय सुदृढ़ता पर निर्भर है। जब तक कोई समाचार-पत्र पत्रकारिता की नीतियों का आदर नहीं करता, और सुदृढ़ आर्थिक सिद्धांतों के आधार पर अपनी सेवाओं का विज्ञापन नहीं करता, तब तक उसे निडर नही कहा जा सकता।" इस पैमाने पर अगर हम अपने देश के हिंदी अखबारों और पत्र-पत्रिकाओं का अध्ययन करें तो हमें भारी निराशा होती है।

वित्तीय दृष्टि से प्रत्येक हिंदी अखबार को न केवल जरूरी धन जुटाना चाहिए, बल्कि हर साल उसे पर्याप्त लाभ भी होना चाहिए, ताकि वह बराबर आगे बढता रहे। अंग्रेजी और हिंदी अखबारों की लाभ-क्षमता का अध्ययन करने से पता चलता है कि लाभ कमानेवाले अंग्रेजी अखबार जहा ३.५ प्रतिशत से ३६·०१ प्रतिशत सालाना लाभ कमाते हैं, वहा भाषायी अखबारों के लाभ का प्रतिशत ३ ५ से २७·१ तक ही है। नुकसान उठाने में भाषायी अखबार आगे है। जहा नुकसान उठानेवाले अंग्रेजी अखबारो में नुकसान १·८१ प्रतिशत से ३१·५६ प्रतिशत तक हुआ है, वहां भाषायी अखबारों ने १·९५ प्रतिशत से १९०·१ प्रतिशत तक नुकसान उठाया है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, अंग्रेजी अखबारों को प्रमुखता देनेवाले प्रतिष्ठानों और केवल हिंदी अखबारों के प्रकाशन प्रतिष्ठानों की वित्तीय स्थिति और लाभ-क्षमता में बहुत ज्यादा फर्क है। परिणाम यह हुआ है कि अंग्रेजी अखबारों के सहारे पहले वर्ग के प्रतिष्ठानों की वित्तीय स्थिति और लाभ-क्षमता में जहां काफी सुधार हुआ है, वहां दूसरे वर्ग के प्रतिष्ठान उतनी प्रगति नही कर पाये। यहां हम दो ऐसे ही प्रतिष्ठानों की तुलना कर रहे हैं। जिनके नाम हमने 'अ' और 'ब' कर दिये हैं, आंकड़े वास्तविक हैं, किंतु नामों को साकेतिक रूप दे दिया गया है। ताकि स्थिति को स्पष्ट रूप से समझा जा सके :

तालिका ७ : वित्तीय स्थिति का तुलनात्मक अध्ययन

	प्रतिष्ठान 'अ'		प्रतिष्ठान 'ब'	
	१९६७	१९७३	१९६७	१९७३
देयताएं	(लाख रुपये)		(लाख रुपये)	
शेयर पूंजी	१३	२१	२	२
आरक्षित निधियां व अधिशेष	७४	१९५	७	१५
उधार ली गयी राशियां				
वाणिज्य बैंकों से	२८	८४	३	३
अन्य वित्तीय संस्थाओं से	१	५६	१	—
चालू देयताएं व व्यवस्थाएं	५१	१७९	२	५
अन्य	—	४२	४	२
कुल	१६७	५७७	१९	२७
संपत्तियां				
शुद्ध स्थायी आस्तियां	४९	३२०	१४	१४
पूंजीगत चालू कार्य	४	९	—	—
चालू आस्तियां	११४	२४८	५	१३
कुल	१६७	५७७	१९	२७

उपर्युक्त तालिका के विश्लेषण से स्पष्ट हो जाता है कि प्रतिष्ठान 'अ' की वित्तीय स्थिति मे प्रतिष्ठान 'ब' की वित्तीय स्थिति की तुलना मे तेजी से सुधार हुआ है। इसके कई कारण हो सकते हैं, जिनकी चर्चा हम आगे करेंगे, किंतु तुलना यह बताती है कि १९६७ से १९७३ के बीच 'अ' की न केवल शेयर पूंजी और निधियां करीब ढाई गुनी हो गयी है, बल्कि 'ब' की दुगुने से भी कम। 'अ' को बैंकों, अन्य

वित्तीय संस्थाओं, अन्य साधनों से भारी रकम उधार मिल गयी है, पर यह बात 'ब' के साथ नहीं है। इसी तरह 'अ' की स्थायी संपत्तियां छह गुनी से भी ज्यादा हो गयी है, जबकि 'ब' की स्थिति ज्यों की त्यों बनी हुई है। यद्यपि यह तुलना दो बहुत असमान प्रतिष्ठानों के बीच की गयी है, फिर भी इससे हिंदी अखबारों की स्थिति का स्पष्ट संकेत मिलता है।

इस प्रकार के प्रतिष्ठानों में न केवल समग्र वित्तीय स्थिति में बहुत असमानता है, बल्कि हर साल के कारोबार में आय और व्यय तथा मुनाफे में भी बहुत फर्क नजर आता है। उपर्युक्त दोनों प्रतिष्ठानों की तुलना करने से यह बात बिल्कु न स्पष्ट हो जाती है।

तालिका ८ : कारोबार का तुलनात्मक अध्ययन

	प्रतिष्ठान 'अ'		प्रतिष्ठान 'ब'	
	१९६७	१९७३	१९६७	१९७३
आय	(लाख रुपये)		(लाख रुपये)	
विक्रय आय	१०१	१८४	१३	२४
विज्ञापन आय	१४८	२८७	१	२६
अन्य आय	२	६२	१	१
कुल आय	२५१	५३३	२४	५१
कुल व्यय	२१८	४२१	२१	४५
शेष मुनाफा	३३	११२	३	६

उपर्युक्त तालिका से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि जहां अंग्रेजी और हिंदी के अखबार और पत्रिकाओं का प्रकाशन करने वाले प्रतिष्ठान 'अ' में विक्रय और विज्ञापन आय दुगुने से ज्यादा हो गयी है, वहां हिंदी के प्रतिष्ठान 'ब' की स्थिति भी यही है, किंतु 'अ' में व्यय तुलनात्मक रूप से कम बढे हैं, इसलिए जहां प्रतिष्ठान 'ब' का कुल लाभ इस अवधि में केवल दुगुना हुआ है, वहां प्रतिष्ठान 'अ' का मुनाफा तिगुने से भी कहीं ज्यादा हो गया है। यह मुनाफा अंग्रेजी अखबारों के कारण बढ़ा होगा, न कि हिंदी अखबारों के, क्योंकि मुनाफे की दृष्टि से हिंदी के अखबार पिछड़े हुए ही समझे जाते हैं।

वित्तीय दृष्टि से अगर देखा जाय, तो बड़े प्रतिष्ठानों में जहां अंग्रेजी और हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के पत्र साथ-साथ निकलते हैं, बड़े-बड़े उद्योगपतियों का पैसा लगा हुआ है, जिनमें साहू जैन, बिड़ला, टाटा, गोयनका आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इन उद्योगपतियों के स्वामित्ववाली कई कंपनियां अंग्रेजी, हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के पत्रों का प्रकाशन करती हैं और अखबार उद्योग में

उनका महत्वपूर्ण स्थान है। मध्यम और छोटे हिंदी अखबारों का प्रकाशन और स्वामित्व अधिकतर साझेदारी फर्मों और उत्साही व्यक्तियों के पास है। कंपनियों में शेयरधारी अपना धन लगाते हैं। जबकि फर्मों में भागीदारों का रुपया लगा हुआ है।

हिंदी के अधिकांश अखबारों को अक्सर धन जुटाना मुश्किल होता है, बैंकों से उन्हें पर्याप्त ऋण नहीं मिलता। दूसरे, विक्रेता उन्हें उधार रकम नहीं देते और न हीं न्यूज ऐजेंट उनके पास जमानत की रकम जमा करते हैं, जबकि बड़े प्रतिष्ठानों को इन समस्याओं का सामना नहीं करना पडता। वे न केवल बैंकों तथा दूसरी वित्तीय संस्थाओं से ऋण प्राप्त कर लेते हैं, बल्कि न्यूज ऐजेंटों से काफी रकम जमानत के रूप में प्राप्त कर लेते हैं। कुछ मामलों में जनता से सीधे जमा राशि भी अखबार प्रतिष्ठानों ने प्राप्त की है।

कमजोर संगठन के शिकार : हिंदी अखबार

छोटे व मध्यम हिंदी अखबारों मे संगठन बहुत कमजोर होता है। प्रकाशक, मालिक, संपादक और मुद्रक का कार्य अक्सर मालिक को ही संभालना पड़ता है और दूसरे कर्मचारी केवल ऐसे कार्य करते हैं, जिनमे पहल के लिए कोई मौका नहीं रहता। अगर एक ही व्यक्ति या उसके रिश्तेदार सारे महत्वपूर्ण कार्यों को अपने पास रखकर भी उन्हें कुशलतापूर्वक निभा सकें, तब भी ऐसे संगठन से लाभ उठाया जा सकता है, लेकिन कई मामलों में केवल अखबार निकालने के उत्साह को छोडकर उसके आर्थिक पक्ष के बारे में अधिक जानकारी न होने से ऐसे हिंदी अखबार कमजोर संगठन के शिकार हो जाते हैं तथा ऐसे कई उदाहरण आज हमें देखने को मिलते है।

ऐसे बड़े प्रतिष्ठानो में भी, जहा से हिंदी के प्रसिद्ध और लोकप्रिय अखबारों तथा पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन किया जाता है, संगठन की दृष्टि से हिंदी प्रकाशनों को उपेक्षा का सामना करना पड़ता है। अक्सर संगठन का ढांचा अंग्रेजी प्रकाशनों को ध्यान में रखकर बनाया जाता है, और उस संगठन की जिम्मेदारी संभालने वाले लोग या तो हिंदी प्रकाशनों की विशेष प्रगति से परिचित नहीं होते या परिचित होना नहीं चाहते। हिंदी प्रकाशनों की विशेषताएं या खामियां क्या हैं? उनके स्तर में सुधार की गुंजाइश किस सीमा तक है? क्या सुधार के लिए संपादकों से विचार-विमर्श किया जाना चाहिए?—इन जैसे सवालो पर प्रबंधकों की कोई खास रुचि नहीं रहती। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि हिंदी प्रकाशनों के बारे में उनका ज्ञान परिपक्व नहीं होता है और संपादकों तथा संपादकीय विभाग के सदस्यों से विचार-विमर्श करके शायद वे अपनी अज्ञानता साबित नहीं करना चाहते। संपादक तथा अन्य सदस्य इसी कारण से प्रबन्धकों की राय या मशविरे को महज मखौल के रूप में लेना चाहते हैं और अक्सर वे इस गलतफहमी के शिकार भी हो जाते हैं, कि वे जिस तरह की सामग्री अपने प्रकाशनों मे देते हैं, उससे अच्छी सामग्री दे पाना किसी के बलबूते की बात हो ही नहीं सकती। कई बार मालिक भी अंग्रेजी पत्रों के प्रभाव में आकर ऐसी सलाह हिंदी संपादकों को देने लगते हैं, जो अंग्रेजी प्रकाशनों की अंधी नकल के बारे में होती है। इसका परिणाम यह होता है कि हिंदी पत्र-

पत्रिकाओं के मालिकों और संपादकों में पारस्परिक संपर्क का लगभग अभाव हो जाता है और संपादक किसी भी प्रकार की सलाह को अपने अधिकार-क्षेत्र में दखलंदाजी का स्वरूप मानने लगते हैं। हो सकता है, ऐसी बात सभी हिंदी प्रकाशनों के बारे में न हो, किंतु ऐसे कई उदाहरण दिये जा सकते है, जिनसे उक्त कथन की पुष्टि होती है। इस तरह के कमजोर और एकांगी संगठन मे हिंदी के अधिकांश प्रकाशन फंसे हुए हैं और उनकी प्रगति निराशाजनक है।

'प्रसार' की परिभाषा से अपरिचय

संपूर्ण देश में हिंदी बोलने वालों को संख्या को देखते हुए हिंदी अखबारों और पत्र-पत्रिकाओं की प्रसार-संख्या बहुत कम है। इसके कई कारण हो सकते हैं, जैसे शिक्षा की धीमी प्रगति, रहन-सहन का निम्न स्तर, अखबार पढ़ने के प्रति रुचि का अभाव आदि; किंतु सब मे बड़ा कारण, मेरी राय मे, हिंदी प्रकाशकों का प्रसार की आधुनिक तकनीकों के बारे में अत्यंत अल्पज्ञान है। इसकी पुष्टि छोटी पत्रिकाओं के प्रकाशकों से लेकर बड़े-बड़े प्रकाशकों का उदाहरण देकर की जा सकती है। छोटी पत्रिकाओं के कई प्रकाशक-संपादक अपनी पत्रिकाओं में अधकचरी सामग्री और कुछ पृष्ठों के विज्ञापन को ही पर्याप्त मानते हैं। प्रसार की परिभाषा से वे अपरिचित लगते हैं। अगर उनकी पत्रिकाओं का वितरण होता भी है, तो अक्सर मुफ्त में, या कुछ लोग केवल अपनी रचनाओं को छपवाने की दृष्टि से उनके ग्राहक बन जाते हैं। किंतु व्यापारिक दृष्टि से, आर्थिक दृष्टि से, प्रसार के महत्व को शायद ही वे महसूस करते है। परिणाम यह होता है कि ऐसी हिंदी पत्रिकाओं की प्रसार-संख्या कुछ सौ प्रतियों से ज्यादा नहीं बढ पायी। कुछ पृष्ठों के विज्ञापन पत्रिका की लागत को पूरा करने के बाद पर्याप्त लाभ नही दे सकते, इसलिए पत्रिका या तो घिसटते हुए आगे बढती है या कुछ ही अंको के बाद दम तोड देती है। ऐसी छोटी पत्रिकाओं को अक्सर ऐसी गलतफहमी भी हो जाती है कि बडे प्रतिष्ठानो द्वारा प्रकाशित हिंदी पत्रिकाएं उनसे प्रतियोगिता करती हैं। इसलिए उनकी बिक्री नही बढ पाती। जबकि कारण यह नही होता। इस गलतफहमी का परिणाम यह होता है कि छोटी पत्रिकाएं बडी पत्रिकाओं और उनके संपादकों पर कीचड़ उछालती हैं। कई बार वे उनका चरित्र हनन भी करने पर उतारू हो जाती हैं। उन्हें एक तरह का 'हिस्टीरिया' सा हो जाता है। जिसमे बडी पत्रिकाएं सिवाय बुराइयों के भंडार के उनके लिए कुछ और नहीं होतीं। इन कारणों से पत्रिका को सुधारने और उसका प्रसार बढाने की बात गौण हो जाती है। देश की हजारों पत्रिकाएं इसी गलतफहमी का शिकार होने से आगे नहीं बढ़ पा रही हैं।

अखबारों का आर्थिक रूप से सुदृढ़ होना इस प्रमुख बात पर निर्भर है कि उनके मालिक उचित मूल्य पर कितनी ज्यादा से ज्यादा प्रतियां बेचते हैं और उनमे कितने अधिक से अधिक विज्ञापन जुटा पाते हैं। प्रसार की विभिन्न तकनीकों का प्रयोग करके अखबारों की या पत्रिकाओं की बिक्री बढाई जा सकती है। किंतु इस दिशा में वस्तुस्थिति यह है कि कई प्रकाशनों में न तो अलग से कोई प्रसार विभाग ही होता

है और न ही कोई ऐसा व्यक्ति जो प्रसार के लिए पूर्णतः जिम्मेदार हो। इसलिए अधिकांश प्रकाशन-गृह उस व्यापारी का दुकान के समान बन जाते हैं जिसे इस बात की चिंता नहीं होती कि कोई ग्राहक उसकी दुकान पर आता है या नहीं, या उससे कैसा व्यवहार किया जाता है या किया जाना चाहिए। विपणन व वैज्ञानिक तकनीकों की जानकारी जब न हो, तब उनके प्रयोग की बात करना नासमझी की ही बात है।

ऐसे बड़े प्रकाशन-गृहों में भी, जहां हिंदी के जाने-माने अखबारों और पत्रिकाओं का प्रकाशन होता है, हिंदी प्रकाशनों के प्रसार में वृद्धि के लिए किसी प्रकार के अलग आयोजन का अभाव है। अक्सर प्रबंधकों को इस बात की पर्याप्त जानकारी नहीं होती कि हिंदी प्रकाशनों की अलग-अलग क्या विशिष्टताएं हैं ? उसके पाठकों की रुचि क्या है ? क्या उनकी रुचि की सामग्री हिंदी प्रकाशनों में दी जाती है ? इनका वितरण करनेवाले अभिकर्ताओं की क्या कठिनाइयां हैं ? उन्हें किस तरह का प्रोत्साहन देना जरूरी है ? उनसे पत्र-व्यवहार अंग्रेजी में क्यों किया जाता है ? हिंदी में पत्र-व्यवहार से क्या फायदा हो सकता है ? हिंदी प्रकाशनों का विज्ञापन और विक्रय प्रवर्तन किस प्रकार प्रभावशाली साबित हो सकता है ? इन सारे सवालों पर वे 'कन्फ्यूज्ड' नजर आते हैं। अंग्रेजी प्रकाशनों के साथ हिंदी प्रकाशनों को भी घिसटना पड़ता है और साथ हिंदी प्रकाशन प्रसार की संभावनाओं का पर्याप्त लाभ नहीं उठा पाते। छोटे कस्बों और गांवों मे हिंदी के प्रकाशनों का प्रसार बहुत सीमित होने से कुल मिलाकर उनकी बिक्री संतोषजनक रूप से नहीं बढ़ पाती।

प्रसार में वृद्धि के लिए हिंदी प्रकाशनों का मूल्य उसके ग्राहकों की क्रयशक्ति के अनुरूप होना जरूरी है, किंतु लागत में भारी वृद्धि होने तथा उस तुलना में विज्ञापन दरों मे वृद्धि न होने से प्रकाशनों की कीमतें पिछले कुछ वर्षो मे बहुत ज्यादा बढ़ गयी है। कुछ वर्षो पूर्व तक जो हिंदी अखबार ८-१० पैसे में बिकता था, आज उसी की कीमत २५-३० पैसे हो गयी है। इसी तरह पत्रिकाओं की कीमतें भी ५० पैसे से बढ़ कर दो-ढाई रुपये तक जा पहुंची हैं। इसके फलस्वरूप हिंदी प्रकाशन आम पाठक की क्रयशक्ति से परे होते जा रहे है। कीमतों के निर्धारण का कोई वैज्ञानिक आधार नही है। इसलिए मनचाही मूल्यवृद्धि हिंदी प्रकाशनों को नुकसान पहुंचा रही है। प्रकाशक कई बार यह मान लेते है कि प्रकाशन भी तेल-साबुन के समान ही ऐसी वस्तु है, जिसकी कीमत दुकानदार चाहे जब बिना किसी कारण के घटा-बढ़ा सकता है। विडंबना यह है कि तेल-साबुन की कीमतें तो बढने के बाद कभी घटती भी हैं, किंतु प्रकाशनों की कीमतें एक बार बढ़ने के बाद शायद ही घटती हैं।

प्रसार के संबंध में संपादकों और प्रबंधकों के बीच एक और अजीब तरह के 'शीतयुद्ध' के संकेत मिलते हैं। यद्यपि प्रसार बढ़ाने की जिम्मेदारी प्रसार प्रबंधक और अधिकारियों की होती है और वे अपना कार्य करते भी हैं। किंतु संपादकों की अक्सर यह राय बन जाती है कि जब भी प्रकाशनों की प्रसार-संख्या बढ़ती है, तब वह संपादकीय सामग्री में सुधार के कारण बढ़ती है, न कि प्रसार विभाग के प्रयासों से, किंतु जब दुर्भाग्य से प्रसार-संख्या घटने लगती है तब वे यह मानने को तैयार

नहीं होते कि यह बात संपादकीय सामग्री के स्तर में गिरावट के कारण है, बल्कि उनकी मान्यता यह होती है कि प्रसार विभाग की अकर्मण्यता के कारण ही प्रसार-संख्या गिर रही है। इस दुहरे मापदंड से सही स्थिति सामने नहीं आ पाती और प्रकाशन पर्याप्त प्रगति नहीं कर पाते। संपादक और प्रबंधक अगर उसे संयुक्त जिम्मेदारी के रूप में स्वीकार करें, तो समस्या काफी हद तक सुलझ सकती है।

विज्ञापनों का अधूरा अर्थशास्त्र

आर्थिक रूप मे अखबारों और पत्र-पत्रिकाओं को स्वावलंबी बनाने और समुचित मुनाफा कमाने के लिए जितना जोर उनकी प्रसार-संख्या को बढ़ाने पर दिया जाना चाहिए, उतना ही ध्यान इस बात का भी रखा जाना चाहिए कि समुचित दरों पर उचित मात्रा में विज्ञापन भी इकट्ठे किये जायं। उनकी लागत को पूरा करने के लिए पाठकों और विज्ञापनदाताओं दोनों को समाचारों और विज्ञापनों को विक्रय जरूरी है। जब तक इन दोनों पर संतुलित ढंग से ध्यान नहीं दिया जायगा, कोई भी प्रकाशन अधिक समय तक जीवित नहीं रह सकता। अंग्रेजी प्रकाशनों मे काफी हद तक विज्ञापनों की संख्या पर्याप्त होती है, किंतु हिंदी के गिने-चुने प्रकाशनों को यदि छोड़ दिया जाय तो भारी संख्या में हिंदी प्रकाशन विज्ञापनों के अभाव में मोहताज नजर आते हैं।

कम प्रसार वाले हिंदी प्रकाशनों की मान्यता न होने मे अक्सर विज्ञापनदाता उनमें विज्ञापन देने में हिचकिचाते है। यद्यपि उनमें विज्ञापन दरें काफी कम होती हैं, इसके बावजूद हिंदी प्रकाशक अपने प्रकाशनों में जरूरी विज्ञापन कुछ समय तक तो अपने परिचय और प्रभाव के कारण प्राप्त कर लेते हैं, किंतु बाद में उन्हें विज्ञापन प्राप्त करने में भारी कठिनाई होती है। इसका पहला कारण तो यह है कि ऐसे प्रकाशकों को विज्ञापन की जगह का विक्रय करने के लिए संभावित विज्ञापनदाताओं की पूरी जानकारी नही होती, दूसरी ओर विज्ञापनदाता अक्सर अपने विज्ञापन एजेंसियों के परामर्श से वितरित करते हैं, इसलिए एजेंसिया बड़े-बड़े और अक्सर अंग्रेजी प्रकाशनों में विज्ञापन का परामर्श ही देती हैं।

हिंदी प्रकाशनों में विज्ञापन इकट्ठे करने में लोकप्रिय हिंदी प्रकाशनों को भी कठिनाई होती है। अक्सर बड़े-बड़े प्रकाशनों के विज्ञापन प्रबंधक और उनके सहायक अधिकारी अपने हिंदी प्रकाशनो के लिए पर्याप्त विज्ञापन इकट्ठे नही कर पाते। उनकी शिकायत अक्सर इस किस्म की होती हे कि हिंदी प्रकाशनों में कोई विज्ञापन नही देना चाहता, कि उनकी विज्ञापन-दरें बहुत ज्यादा है, कि इन प्रकाशनों को कोई जानता नही, कि यह भी पता नहीं है कि उन्हें पढने वाले कौन हैं, आदि। किंतु इन प्रबंधकों को अक्सर स्वयं भी यह नहीं मालूम होना कि हिंदी प्रकाशनों की विशिष्टताएं क्या हैं। वे विज्ञापनदाताओं के सामने यह प्रमाणित करने में असफल रहते हैं कि हिंदी प्रकाशनों में विज्ञापन अंग्रेजी प्रकाशनों की तुलना में क्यों अधिक लाभदायक है, अन्यथा कोई कारण नजर नहीं आता कि किसी हिंदी प्रकाशन की प्रसार-संख्या अंग्रेजी से ज्यादा होने पर भी और विज्ञापन-दरें क्यों बहुत ही कम होती है।

पुरानी मशीनों से छपाई और भाषा की त्रुटियां

प्रसार और विज्ञापन के लिए अखबारों और पत्र-पत्रिकाओं की छपाई और आयोजन में सुंदरता होनी जरूरी है। लेकिन स्थिति काफी दयनीय है, क्योंकि अक्सर पुरानी मशीनों से अखबार छापे जाते हैं। हिंदी के दैनिक पत्रों को अंग्रेजी के पत्रों से पहले ही रात के समय अपनी छपाई शुरू करनी पड़ती है और कई बार अत्यंत महत्वपूर्ण समाचार भी छपने से छूट जाते हैं। पिछले कुछ वर्षों के दौरान ऐसे कई उदाहरण सामने आये हैं, जिनमें हिंदी के अखबारों ने प्रमुख समाचारों को अंग्रेजी अखबारों में छपने के बाद दूसरे दिन प्रकाशित किया है। हिंदी के कुछ अखबारों और पत्रिकाओं को छोड़कर अन्य में भाषा संबंधी ऐसी त्रुटियां अक्सर बहुतायत में नजर आती हैं, जिन्हें पढ़ने के बाद किसी भी शिक्षित हिंदीभाषी पाठक को शर्म से नजरें झुकानी पड़ जाती हैं।

आखिर इसका दोष किस पर है? संपादक पर, अन्य पत्रकारों पर या प्रूफ-रीडरों पर? अगर आपने किसी दैनिक के पत्रकारों द्वारा अंग्रेजी समाचार एजेंसियों से मिलने वाले अंग्रेजी समाचारों का हिंदी 'संस्करण' हाथ से लिखते हुए बारीकी से देखा है, तो आप स्वयं यह समझ सकते हैं कि उस लिखावट को समझ पाना शायद लेखक के वश की बात भी नहीं होती, मुद्रक, कंपोजीटर या प्रूफरीडर की बात तो जाने ही दीजिए। मैं स्वयं एक पत्रकार रह चुका हूं और काफी हद तक अभी भी पत्रकारों की श्रेणी में स्वयं को रख भी सकता हूं। अतः इसे आलोचना न समझकर 'आत्मालोचन' की संज्ञा देना उचित होगा, क्योंकि आज करीब-करीब हर पत्रकार स्वयं अपने 'इंटेलेक्चुअल' होने का दावा करता है, विचारों को बनानेवाले व्यक्ति के रूप में पत्रकार की बड़ी भारी भूमिका है, लेकिन हम पत्रकार आज क्या कर रहे हैं? सचाई का पता लगाने और उन्हें पाठकों तक पहुंचाने के लिए हम कितना कार्य करते हैं? हम जिस भूमिका को निभाने का दावा करते हैं, उसे किस हद तक निभा पाते हैं? अच्छे पत्रकार बनने के लिए हम स्वयं क्या करते हैं? हम स्वयं कितना साहस दिखा पाते हैं? हम व्यक्तियों का पक्ष लेते हैं या किसी कार्य का? क्या हम किसी भी विषय का गहन अध्ययन करते हैं, या करना चाहते हैं? रिपोर्टिंग इतनी उथली क्यों होती है? शिक्षा, कृषि, प्रतिरक्षा, विज्ञान, वैज्ञानिक अनुसंधान, श्रमसंघ, व्यवसाय या दूसरे महत्वपूर्ण विषयों के बारे में क्यों हम पिछड़े हुए हैं? हम दूसरों की गल्तियां दिखाना ही क्यों अपना अधिकार समझते हैं? ऐसा लगता है कि हिंदी के पत्रकार भी आज अपने कार्य को बहुत गंभीरता से नहीं ले रहे हैं? इसके प्रतिबिंब हैं आज के हिंदी प्रकाशन, जो हमें नयी दिशा देने में सफल नहीं हो पाये हैं।

यह बात स्पष्ट है कि वित्तीय सुदृढ़ता की दृष्टि से हिंदी प्रकाशनों की स्थिति संतोषजनक नहीं मानी जा सकती। समाचार-पत्र प्रकाशन उद्योग पिछले कुछ वर्षों से अस्थिरता के जिस दौर से गुजर रहा है, उसे देखते हुए स्थिति में सुधार की आशा करना भी फिजूल की बात होगी। उसका कारण यह है कि अखबार उद्योग में, खास तौर से हिंदी प्रकाशनों के मामले में कुछ प्रतिष्ठानों को छोड़कर शेष प्रकाशक इसे

'साइड बिजिनेस' मानते हैं और छोटे प्रतिष्ठानों का यह 'पार्ट टाइम बिजिनेस' होता है। बड़े हिंदी प्रकाशनों के प्रकाशक एक ओर जहां सीमेंट से लेकर इस्पात वाले उद्योगपति होते हैं, वहां 'लघु पत्रिका' के प्रकाशक कोई अध्यापक या दूसरी नौकरी न पा सकने वाले बेकार शिक्षित व्यक्ति। इस हालत को देखते हुए यह कह पाना बहुत मुश्किल है कि हिंदी के अखबारों और पत्र-पत्रिकाओं की भावी दिशा क्या होगी। लेकिन वर्तमान को देखते हुए फिलहाल उज्ज्वल भविष्य की किरण खास चमकदार नजर नहीं आती, हमारे दूसरे साथी अगर उज्ज्वल भविष्य देख रहे हों तो उनकी बात और है।

विविध

पत्रकारिता और कानून

पत्रकारिता और कानून का संबंध एक अत्यंत आधारभूत सामाजिक समीकरण का साक्ष्य देता है। यह समीकरण किसी भी देश की शासन-प्रणाली और उसके स्वरूप का ही परिचय नहीं देता बल्कि यह भी इंगित करता है कि इस देश में वाक्-स्वातंत्र्य कितना और कैसा है, वाक्-संयम की और सार्वजनिक वाद-विवाद की रीति-परंपरा क्या है, जीवन की शैली और लोक-रुचि किस-किस प्रकार की है।

हमारे देश में संविधान ही मूल विधि है। जो अधिनियम संविधान के अनुरूप नही होता वह अवैधानिक और परिणामहीन घोषित किया जा सकता है।

हमारा संविधान प्रेस और पत्रकार की स्वतंत्रता की बात अलग से नहीं कहता। नागरिक और पत्रकार को अभिव्यक्ति की समान स्वतंत्रता है, यद्यपि इस स्वतंत्रता के प्रयोग में पत्रकारों का दायित्व सामान्य नागरिकों से कही अधिक है क्योंकि उनकी अभिव्यक्ति की पहुंच बहुत विस्तृत होती है। वास्तव में पत्रकार की स्वतंत्रता भी मूलतः नागरिक के लिए ही नहीं बल्कि नागरिक की अपनी स्वतंत्रता भी है। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का सीधा संबंध नागरिक की 'जानकारी प्राप्त करने के नागरिक अधिकार' (The Citizen's Right to Know) से है।

भारतीय संविधान की प्रस्तावना में जो मूल्य मुखर हुए है उनमें भी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता मुख्य है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में हमें अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को उन मूल्यों के सहवास और संदर्भ में समझना चाहिए क्योंकि अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता दूसरे मूल्यों के साथ अंतरंग और अविभक्त रूप से जुड़ी हुई है।

हमारे संविधान की प्रस्तावना में हमारे लोकतंत्र के मूल्यों के सौष्ठवपूर्ण विन्यास का प्रेरक उद्घोष इस प्रकार है :

"हम भारत के लोग, भारत को एक संपूर्ण
प्रभुत्व-संपन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने
के लिए, तथा उसके समस्त नागरिकों को :
सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय,

विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म
और उपासना की स्वतंत्रता,
प्रतिष्ठा और अवसर की समता
प्राप्त कराने के लिए,
तथा उन सब में
व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की
एकता सुनिश्चित करने वाली बंधुता
बढ़ाने के लिए
दृढ़संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में
आज तारीख २६ नवंबर, १९४९ ई० (मिति मार्गशीर्ष
शुक्ला सप्तमी, संवत दो हजार छह विक्रमी) को
एतद् द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधि-
नियमित और आत्मार्पित करते हैं।"

भारतीय संविधान का अनुच्छेद १९ सात मूल स्वतंत्रताओं की मंजूषा है। अनुच्छेद १९ के प्रथम खंड के उपखंड (क) के अनुसार—

"सब नागरिकों को वाक्-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य
का अधिकार होगा।"

अनुच्छेद १९ का दूसरा खंड उन विवेकसंगत प्रतिबंधों को परिभाषित करता है जो वाक्-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य के अधिकार के परिसीमन के लिए लगाये जा सकते हैं। अनुच्छेद १९ के दूसरे खंड में व्यवस्था यह है कि वाक्-स्वातंत्र्य एवं अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य के अधिकार की कोई बात अपमान-लेख, अपमान-वचन, मान-हानि, न्यायालय-अवमान से अथवा शिष्टाचार या सदाचार पर आघात करने वाले, अथवा राज्य की सुरक्षा को दुर्बल करने अथवा राज्य को उलटने की प्रवृत्ति वाले किसी विषय से, जहां तक कोई वर्तमान विधि संबंध रखती हो वहां तक उसके प्रवर्तन पर प्रभाव, अथवा संबंध रखने वाली किसी विधि को बनाने में राज्य के लिए रुकावट नहीं डालेगी।

हमारा संविधान वाक्-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य को प्रजातंत्र का केंद्रबिंदु मान कर चलता है। सर्वोच्च न्यायालय ने बार-बार यह कहा है कि अभि-व्यक्ति-स्वातंत्र्य और वाक्-स्वातंत्र्य हमारी व्यवस्था में आधारभूत है। इस स्वातंत्र्य का प्रयोजन यह है कि सरकारी और सार्वजनिक अधिकारी जनता के दिमाग के अभि-भावक नहीं बन सकते (ए० आई० आर० १९५८ सुप्रीम कोर्ट ५७८, ६१६)। गुजरात उच्च न्यायालय ने यह कहा है कि वाक्-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य एक ही अधिकार के दो पहलू हैं और एक-दूसरे के पूरक हैं (ए० आई० आर० १९६३ गुजरात २५९)। सर्वोच्च न्यायालय ने यह व्याख्या दी है कि वाक्-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य एक आजादी-पसंद और संगठित समाज का स्वाभाविक अधिकार है और इस अधिकार का मूल अर्थ यह है कि समाज में प्रत्येक नागरिक को जान-कारी और दृष्टिकोण लेने और देने का अधिकार है एवं जानकारी और दृष्टि-

कोण को प्रसारित करने का अधिकार है (ए० आई० आर० १९६० सुप्रीम कोर्ट ५५४)। सर्वोच्च न्यायालय ने यह भी स्पष्ट कहा है कि वाक्-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य के अधिकार में अपने वादों और दृष्टिकोणों को प्रसारित और संचारित करने का अधिकार भी सन्निहित है, यद्यपि इस अधिकार पर विवेकपूर्ण प्रतिबंध लगाया जा सकता है (ए० आई० आर० १९५७ सुप्रीम कोर्ट ८९६)। उदाहरणतः हिंसक अपराधों को बढाने या उकसाने के लिए अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य का प्रयोग नहीं किया जा सकता। किंतु विवेकपूर्ण प्रतिबंध क्या है इस बात का अंतिम निर्णय न्यायालयों में ही हो सकता है। एक्सप्रेस न्यूज पेपर लिमिटेड बनाम यूनियन आफ इंडिया के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के संविधान पीठ ने यह कहा था (ए० आई० आर० १९५८ सुप्रीम कोर्ट ५७८) कि ऐसा कोई कदम जो अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य और वाक्-स्वातंत्र्य को कम करता है या क्षति पहुंचाता है या जो सूचना के संचार को सीमित और संकुचित करता है या जो संचार के साधनों पर रोक लगाता है या प्रेस पर आत्यंतिक और दुर्वह बोझा डालता है या जिसके कारण किसी भी प्रकार प्रेस की स्वतंत्रता को धक्का पहुंचता है उसकी इजाजत हमारा संविधान नही देता। इस दृष्टि से सर्वोच्च न्यायालय ने वेज बोर्ड को लेकर, प्राइस पेज शेड्यूल को लेकर, न्यूज प्रिंट के आवंटन इत्यादि मसलों को लेकर वाक्-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य की सुरक्षा के लिए कई बार हस्तक्षेप किया। सकल पेपर्स बनाम यूनियन आफ इंडिया के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि पत्रों के आकार को छोटा करने का निर्देश सांविधानिक गारंटी के प्रतिकूल है (ए० आई० आर० १९६२ सुप्रीम कोर्ट ३०५)। इसी मामले मे सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि किसी पत्र की थोड़ी-सी भी कीमत बढा देने से उसके संचार पर प्रतिकूल असर पड़ सकता है और प्राइस-पेज परिशिष्ट का निर्धारण वाक्-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य के साथ हस्तक्षेप का रूप ले लेता है। विज्ञापन के मामले मे भी सर्वोच्च न्यायालय के अनुसार सरकार को हस्तक्षेप करने का केवल सीमित अधिकार है। यही सिद्धात पत्रों को कागज के आवंटन में भी लागू होता है ताकि सरकार कागज के आवंटन के माध्यम से अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य को निरोधित या निर्देशित न कर सके। यदि कोई राज्य सरकार राज्य मे किसी पत्र या पत्रिका के प्रवेश पर निषेध लागू करती है तो उससे भी अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य के अधिकार का हनन के आधार पर चुनौती दी जा सकती है (ए० आई० आर० १९५० सुप्रीम कोर्ट १२४)। पूर्व-सेंसर व्यवस्था को भी सर्वोच्च न्यायालय ने वाक्-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य पर एक अवैध प्रतिबंध माना है (ए० आई० आर० १९५० सुप्रीम कोर्ट १२९ एवं १९५८ सुप्रीम कोर्ट ५७८), यद्यपि आपातकालीन स्थिति के अंतर्गत प्रतिबंध लगाने की अनुमति स्पष्टतः डिफेंस आफ इंडिया रूल्स में दी गयी है। सारांश यह है कि वाक्-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य एक मूलभूत अधिकार है जिसकी सुरक्षा के लिए हमारा संविधान गारंटी देता है और जिसके साथ हस्तक्षेप की इजाजत केवल इस आधार पर दी जा सकती है कि वह हस्तक्षेप या प्रतिबंध विवेकपूर्ण है। कोई प्रतिबंध विवेकपूर्ण है या नही, उसका निर्णय अंततोगत्वा हमारा उच्च न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय ही कर सकता है। साथ ही यह भी उल्लेखनीय है कि आपात्-

कालीन स्थिति में इस मूल अधिकार की सांविधानिक गारंटी की सुरक्षा के लिए व्यवस्था नहीं है और इसलिए आपात्कालीन स्थिति में विधिवत वाक्-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य पर कानूनी और सांविधानिक तौर से प्रतिबंध लगाया जा सकता है।

यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि संविधान में जिस वाक्-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की गारंटी है, प्रेस की स्वतंत्रता उसी तक सीमित नहीं है। यद्यपि अनुच्छेद १९(१) (क) में उल्लिखित वाक्-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य का अधिकार प्रेस की स्वतंत्रता का मूल सांविधानिक अधिकार है तथापि प्रेस की स्वतंत्रता के कई पहलू नागरिक अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य से अधिक व्यापक, विस्तृत और विशिष्ट हैं। प्रेस काउंसिल अधिनियम, १९६५ (अधिनियम ३४।१९६५) इस प्रस्थापना का सजीव परिचायक है।

प्रेस काउंसिल अधिनियम, १९६५ का मुख्य प्रयोजन यह है कि प्रेस काउंसिल के माध्यम से प्रेस-स्वातंत्र्य की सुरक्षा हो और समाचारवाहिनियों और पत्रों के स्तर बने रहें और उन्नत हों। इस अधिनियम की धारा १२ में इस द्विविध प्रयोजन और उसकी सिद्धि के लिए प्रेस काउंसिल द्वारा किये जाने वाले कार्यों का विशद और सुविस्तृत उल्लेख है। यह अधिनियम एक तरह से प्रेस के स्वातंत्र्य और प्रेस की स्वतंत्रता के कई मूलभूत आयाम प्रस्तुत करता है। प्रेस काउंसिल की व्यवस्था के माध्यम से प्रेस की स्वतंत्रता और पत्रों के स्तर के उन्नयन के लिए कई विभिन्न कदम उठाये जा सकते हैं जो प्रेस-स्वातंत्र्य के ठोस धरातल के लिए जनमत निर्माण करने की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण हैं। प्रेस की स्वतंत्रता को आघात पहुंचाने वाली कई ऐसी आंतरिक स्थितियां होती हैं जिनकी जांच और निराकरण अनिवार्य है। इस दृष्टि से श्री के० के० बिरला बनाम दी प्रेस काउंसिल आफ इंडिया (संशोधित सिविल रिट संख्या १२२।१९७५, निर्णय तिथि २२ सितंबर १९७५) के मामले में दिया गया दिल्ली उच्च न्यायालय के खंडपीठ का निर्णय अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस मामले में 'हिंदुस्तान टाइम्स' के निदेशक मंडल के अध्यक्ष श्री के० के० बिरला ने प्रेस काउंसिल के विरुद्ध एक रिट याचिका प्रस्तुत की थी। प्रेस काउंसिल ने श्री मनकेकर और श्री रामचंद्रन की शिकायत पर जो सुनवायी शुरू की थी उसका संबंध 'हिंदुस्तान टाइम्स' के निदेशक मंडल द्वारा श्री बी०जी० वर्गीज को 'हिंदुस्तान टाइम्स' के संपादक पद से हटाने के प्रयत्न से था। 'हिंदुस्तान टाइम्स' के निदेशक मंडल के खिलाफ आरोप यह था कि वह श्री वर्गीज को किसी बाहरी प्रभाव या किसी अन्य प्रयोजन से संपादक पद से हटा रहा था। श्री कृष्णकुमार बिरला ने प्रेस काउंसिल के क्षेत्राधिकार को उच्च न्यायालय में चुनौती दी। इस प्रसंग मे दिल्ली उच्च न्यायालय के खंडपीठ ने विस्तार से प्रेस की आजादी की पृष्ठभूमि पर और उसकी परिधियों पर विचार और विवेचन किया। श्री जस्टिस चड्ढा ने खंडपीठ की ओर से निर्णय देते हुए कहा कि प्रेस काउंसिल अधिनियम, १९६५ की धारा १२ में प्रेस की स्वतंत्रता का दृष्टिकोण व्यापक है। निर्णय में यह स्पष्ट कहा गया है कि प्रेस की स्वतंत्रता पर कोई दबाव, कोई प्रभाव, चाहे वह किसी भी रूप में हो, किसी भी दिशा से आये प्रेस काउंसिल के क्षेत्राधिकार के अंतर्गत है। यदि प्रबंध-व्यवस्था की तरफ से संपादक के

साथ कोई हस्तक्षेप होता है तो वह भी प्रेस की स्वतंत्रता पर आघात पहुंचाता है और इसलिए प्रेस काउंसिल का कर्त्तव्य हो जाता है कि वह ऐसे मामलों की जांच करे और प्रेस की स्वतंत्रता के लिए सचेत रहे। निर्णय में कहा गया है कि संपादक प्रेस की स्वतंत्रता का सजीव और सजग स्वर है और इसलिए उसकी स्वतंत्रता की सुरक्षा प्रेस की स्वतंत्रता की सुरक्षा है।

सार्वजनिक हित की दृष्टि से प्रेस की स्वतंत्रता पर कानूनी सीमाओं और प्रतिबंधों के लिए सांविधानिक स्वीकृति है। ये प्रतिबंध विवेकसंगत मर्यादाओं की श्रेणी में आते हैं।

उदाहरणत न्यायालयों तथा संसद एवं विधानमंडलों की कोई मानहानि न हो यह एक मुख्य प्रतिबंध है।

शिष्टाचार और सदाचार को आघात पहुंचाने वालों या धर्मों, जातियों एवं दलों या समूहों के बीच घृणा या शत्रुता उत्पन्न या प्रसारित करने वाली अभिव्यक्ति पर भी प्रतिबंध सम्मत है। आपत्तिजनक और अश्लील विज्ञापनों पर भी कानूनी तौर पर प्रतिबंध लगाया जा सकता है, यदि इस प्रकार का प्रतिबंध वाक्-स्वातंत्र्य या अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य पर कोई सीधा और अविवेकपूर्ण आघात न पहुंचाये। इस दृष्टि से सर्वोच्च न्यायालय ने 'दी ड्रग्स एंड मैजिक रेमिडीज (आबजेक्शनेबल एडवरटाइज-मेंट्स) एक्ट, १९५४' की वैधता और सांविधानिकता को स्वीकार किया है।

राज्य की सुरक्षा को क्षति पहुंचाने वाली या राज्य को उलटने की प्रवृत्ति वाली अभिव्यक्ति भी निषिद्ध है। 'भारतीय सरकारी रहस्य अधिनियम, १९२३' के निषेध इसी दृष्टि से निर्दिष्ट है।

इन निषेधों के अतिरिक्त कानूनी तौर पर पत्रों और पत्रकारों से कानून यह अपेक्षा करता है कि वे लोगों की व्यक्तिगत मानहानि न करें, मिथ्या आरोप न लगायें और उनके वैयक्तिक एकांत और निजी जीवन की गोपनीयता का अनुचित अतिक्रमण न करें एवं कृति-स्वाम्य के कानून का उल्लंघन न करें।

सतही तौर पर ये सामान्य सिद्धांत शायद सुबोध और सरल लगते हैं, किंतु पत्रकारिता का इतिहास इस तथ्य का साक्षी है कि इन सिद्धांतों की पृष्ठभूमि में और उनके क्रियान्वयन में बहुत उलझे हुए प्रश्न और समाधानरहित समस्याएं समाविष्ट हैं।

पत्रकारिता की एक मूलभूत कानूनी मर्यादा यह है कि किसी भी प्रकाशित समाचार, संवाद, संपादकीय, लेख या मंतव्य द्वारा न्यायालयों एव संसद् तथा विधान-मंडलों की अवज्ञा, अवमानना या तिरस्कार न हो।

न्यायालयों की मानहानि या तिरस्कार के विषय में कानून के मोटे तौर पर कुछ मुख्य सिद्धांत है। यदि किसी जज पर अनौचित्य और अयोग्यता का लाछन लगा कर उसके गौरव पर आघात किया जाय या किसी न्यायालय का परिवाद या अवधूरण (स्कैंडेलाइज) किया जाय तो ऐसा प्रकाशन न्यायालय की अवमानना माना जायगा। यदि कोई मामला न्यायालय में विचाराधीन हो तो जनता के मन में भ्रम या पूर्वग्रह उत्पन्न करने की दृष्टि से किया गया प्रकाशन भी न्यायालय की अवमानना माना जाता है। विचाराधीन मामले में जज, जूरी, पक्षकारों और साक्षियों पर आक्षेप किया जाय

या उन पर असर डालने का यत्न किया जाय तो वह भी अदालत की अवमानना माना जाता है। यदि किसी प्रकाशन द्वारा न्याय के प्रशासन मे हस्तक्षेप होता है या बाधा आती है तो वह भी न्यायालय का अवमान माना जाता है।

प्रेस द्वारा न्यायालयों की अवमानना के अगणित मामलों से कानूनी निर्णय पत्रिकाओं के पृष्ठ परिपूर्ण हैं, किंतु सामान्यतः यदि उपर्युक्त सिद्धातों को दृष्टि में रखा जाय तो पत्रकार कानून की मर्यादा का परिपालन कर सकता है। यह उल्लेखनीय है कि कोई भी व्यक्ति बिना इरादे के भी न्यायालय की अवमानना का दोषी हो सकता है। इस दृष्टि से पत्रकारों को न्यायालय में विचारार्थ मामलों के विषय में रिपोर्ट लिखते समय उनकी सत्यता को ध्यान में रखना चाहिए, साथ ही पूरे संयम से काम लेना चाहिए। विचाराधीन मामलों मे पत्रकारों को पक्षकारों या साक्षियों के विषय मे अपनी राय नही देनी चाहिए, न कोई ऐसी चेष्टा करनी चाहिए जिससे न्याय-प्रशासन पर कोई अनुचित दबाव पड़े या आच आये।

इस प्रकार का एक मामला लंदन के 'डेली मिरर' को लेकर हुआ। हे नाम के एक आदमी के खिलाफ यह आरोप था कि उसने एक धनवान और वृद्धा विधवा की हत्या की। आरोप पर विचार शुरू होने मे पहले 'दी डेली मिरर आफ लंदन' ने अभियुक्त हे के विषय में बहुत सी सामग्री छाप दी जिसमे यह भी कहा गया था कि उसने पहले ऐसे कई कत्ल किये थे, यद्यपि उसके खिलाफ अभियोग केवल एक कत्ल का था। मुख्य न्यायाधिपति लार्ड गाडर्ड ने अपने निर्णय में कहा कि डेली मिरर आफ लंदन' मे प्रकाशित रिपोर्ट एक अत्यंत दुष्ट परिवाद के रूप मे प्रस्तुत किया गया था और जो लेख और चित्र छपे उन्हे अंग्रेजी पत्रकारिता के लिए शर्मनाक मानना चाहिए क्योंकि उनके द्वारा न्याय और निष्पक्ष व्यवहार के सिद्धांतों का हनन हुआ था। इसी प्रकार मुख्य न्यायाधिपति लार्ड रीडिंग ने १९२० मे कहा था कि न्यायालय अपराध की जाच करेगे और उसका निर्णय अखबारों के हाथो से नही होने देंगे। लार्ड रीडिंग ने इस बात पर बल दिया कि यह अभियुक्त का अधिकार है कि उसके अपराध की जाच निष्पक्ष और न्यायसंगत तरीकों से हो, न कि पूर्वग्रह से ग्रस्त समाचार-पत्रो या अन्य प्रकाशको द्वारा।

भारतीय उपमहाद्वीप मे भी न्यायालयो ने यही दृष्टिकोण अपनाया है। फैज अहमद 'फैज' के मामले मे (पी० आई० आर० १९५० लाहौर ८४) पाकिस्तान के लाहौर हाई कोर्ट के विशिष्ट पीठ के तीन न्यायाधीशों ने इस प्रकार के मुद्दों का बहुत अच्छा विवेचन किया है। इस मामले के कुछ तथ्य उल्लेखनीय है। पश्चिमी पजाब के भूतपूर्व प्रधानमंत्री खान इफ्तिखार हुसैन खान (ममदौत) के खिलाफ एक जाच हो रही थी जिसमें आरोप यह था कि उन्होंने अपने राजकीय पद का दुरुपयोग किया। 'पाकिस्तान टाइम्स' ने इस विषय मे अपने विशेष संवाददाता की एक विस्तृत रपट छापी। इस रपट मे जिरह मे पूछे हुए कई महत्वपूर्ण सवालो का उल्लेख नही था और उसमे गलतफहमिया फैलाने की प्रवृत्ति थी। यद्यपि संपादक फैज अहमद 'फैज' उस समय लाहौर में नही थे फिर भी उन्होंने सपादक के नाते उस रपट के प्रकाशन की जिम्मेदारी स्वीकार की। लाहौर हाई कोर्ट के विशिष्ट पीठ ने इस मामले मे यह अभिमत व्यक्त किया कि कोई भी कार्य या प्रकाशन जो न्याय की राह मे बाधा पहुचाता है या बाधा पहुचाने

की प्रवृत्ति से प्रेरित है, वह कार्य या प्रकाशन न्यायालय की अवमानना की श्रेणी में आता है। उच्च न्यायालय ने यह कहा कि निर्णय से पहले ही विचारार्थ मामलों पर पूर्वग्रह उत्पन्न करने का प्रयत्न अदालत की अवमानना है। उच्च न्यायालय की राय में न्यायालयों का यह कर्त्तव्य है कि वे अपनी कार्यवाहियो को गलतबयानी से बचायें। यद्यपि छोटी-मोटी गलतियों को लेकर न्यायालय ऐसे मामलों पर कोई कार्यवाही नहीं करता, किंतु यदि पत्रकार तथ्यों को तोड़-मरोड़ कर रखने की कोशिश करे तो अदालत का यह कर्त्तव्य होता है कि वह उचित कार्यवाही करे। इस केस में संवाददाता मुहम्मद शफी का प्रकाशित रपट से सीधा संबंध था जब कि सपादक के रूप में फैज अहमद 'फैज' का संबंध परोक्ष ही था। फिर भी न्यायालय ने संपादक, प्रकाशक और संवाददाता तीनों पर जुर्माना किया और जुर्माना न देने की स्थिति मे एक सप्ताह जेल की सजा सुनायी।

सामान्यत: यदि कोई प्रकाशन न्याय के मार्ग मे बाधा पहुंचाता है तो उसे न्यायालय की अवमानना माना जाता है किंतु न्यायालय की अवमानना और किसी जज की मानहानि में अंतर है। अगर किसी जज पर कोई आरोप या लाछन लगाया जाय और उसका असर न्याय-प्रशासन पर पडता हो तो उसे न्यायालय की अवमानना माना जाता है।

पर्सपेक्टिव पब्लिकेशंस बनाम महाराष्ट्र राज्य के मामले में (ए० आई० आर० १९७१ सुप्रीम कोर्ट २२१) सर्वोच्च न्यायालय ने अदालत की अवमानना के कई पक्षों पर विचार किया। केस के मुख्य तथ्य इस प्रकार थे—१९६० में श्री थेकरसे ने 'ब्लिट्ज' और उसके संपादक के खिलाफ अपलेख (libel) का मुकदमा चलाया। मुकदमा बंबई उच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति श्री तारकुंडे ने सुना और मुकदमे मे 'ब्लिट्ज' और उसके संपादक के खिलाफ तीन लाख रुपये की डिक्री दी। श्री तारकुंडे के निर्णय के खिलाफ अपील हुई और उस अपील के दौरान 'मेनस्ट्रीम' मे २४ अप्रैल १९६५ के सस्करण मे एक लेख छपा। उस लेख मे यह कहा गया था कि बैंक आफ इंडिया ने खरे-तारकुंडे नाम की एक फर्म को दस लाख रुपये उधार दिये थे और उस बैंक के डायरेक्टरों मे श्री थेकरसे भी थे। लेख मे यह कहा गया था कि खरे-तारकुंडे फर्म में न्यायमूर्ति श्री तारकुंडे के पिता और दो भाई तथा कुछ अन्य संबंधी साझीदार थे और दस लाख रुपये का उधार खरे-तारकुंडे फर्म को निर्णय मे कुछ सप्ताह पहले ही दिया गया था। सर्वोच्च न्यायालय ने अपने निर्णय मे कहा कि 'मेनस्ट्रीम' में छपे हुए लेख ने मर्यादाओं का अतिक्रमण किया और इस प्रकार का आरोप असंदिग्ध रूप से न्यायालय की अवमानना की श्रेणी मे आता है। सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि यह प्रश्न केवल किसी जज की मानहानि का नही है बल्कि यह अपराध सार्वजनिक है और इससे न्याय के मार्ग में बाधा उपस्थित होती है। यद्यपि इस मामले मे बंबई उच्च न्यायालय मे तथ्यों की सत्यता के आधार पर बहस नही की गयी थी तथापि सर्वोच्च न्यायालय मे यह प्रश्न भी सामने रखा गया और यह कहा गया कि ऐसी कोई सामग्री उच्च न्यायालय के समक्ष नही थी जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि लेख में दिये गये आरोप असत्य और तथ्यहीन थे। सर्वोच्च न्यायालय ने इस बात पर संशय प्रकट किया कि आरोप की सत्यता को पर्याप्त सफाई के रूप मे स्वीकार किया जा सकता है, यद्यपि

इस पहलू की चर्चा करते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने इस मुद्दे पर कोई अंतिम निर्णय नही दिया कि आरोप की सत्यता न्यायालय की अवमानना के मामले में पर्याप्त सफाई है या नहीं।

श्री पी० सी० सेन का केस भी इस दृष्टि से रोचक है (ए० आई० आर० १९७० सुप्रीम कोर्ट १८२१)। इस मामले में यह जानते हुए कि हाई कोर्ट में 'मिल्क प्रोडक्ट कंट्रोल आर्डर १९६५' को लेकर एक रिट याचिका चल रही थी, मुख्यमंत्री श्री पी० सी० सेन ने आकाशवाणी पर एक भाषण दिया जिसमे यह कहा कि जो दूध की मिठाइयां बनाते हैं वे अपराधी हैं और सार्वजनिक हित की क्षति करते है। सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय दिया कि यह भाषण न्याय के मार्ग में बाधा पहुंचाने वाला था और इस आधार पर श्री पी० सी० सेन की अपील को खारिज कर दिया गया।

श्री नंबूदिरीपाद की अपील का निर्णय भी इन्ही मूल सिद्धातों को उजागर करता है। केरल के तत्कालीन मुख्यमंत्री ने अपनी एक प्रेस कांफ्रेंस के दौरान न्यायपालिका को अत्याचार का उपकरण बताया और कहा कि जज वर्ग-स्वार्थ, वर्ग-पूर्वग्रह एवं वर्ग-घृणा मे प्रेरित होते हैं। इस वक्तव्य की चर्चा करते हुए केरल उच्च न्यायालय ने श्री नंबूदिरीपाद पर एक हजार रुपये का जुर्माना किया और जुर्माना न देने की स्थिति में एक महीने की सजा की व्यवस्था की। सर्वोच्च न्यायालय ने उच्च न्यायालय के निष्कर्ष को स्वीकार करते हुए एक हजार रुपये के जुर्माने को घटा कर पचास रुपया कर दिया और जुर्माना न देने की स्थिति मे एक सप्ताह की सजा की व्यवस्था की। सर्वोच्च न्यायालय ने अपने निर्णय में कहा कि श्री नंबूदिरीपाद के वक्तव्य मे न्यायालयो की एक विकृत तस्वीर खींची गयी थी और उनके आक्षेप मे जनमानस मे न्यायालयो के सभी निर्णयों के प्रति अविश्वास और असंतोष पैदा करने की प्रवृत्ति सन्निहित थी। सर्वोच्च न्यायालय की राय में श्री नंबूदिरीपाद के वक्तव्य से न्यायालयों और न्यायमूर्तियों के गौरव को क्षति हुई। इस निर्णय में यह भी स्पष्ट कहा गया कि चाहे श्री नंबूदिरीपाद का इरादा न्यायालय की अवमानना करने का न रहा हो किंतु उनका वक्तव्य इस प्रवृत्ति का दोषी था।

श्री सी० के० दफ्तरी बनाम श्री ओ० पी० गुप्ता के मामले मे (ए० आई० आर० १९७१ सुप्रीम कोर्ट ११३२) श्री ओ० पी० गुप्ता के खिलाफ यह आरोप था कि उसने न्यायमूर्ति श्री जे० सी० शाह एवं न्यायमूर्ति श्री के० एस० हेगडे के अवमूरण का प्रयत्न किया और सर्वोच्च न्यायालय की प्रतिष्ठा पर आघात किया। एक अपील जिसमें गुप्ता प्रतिवादी था, सुप्रीम कोर्ट द्वारा सुनी गयी थी और उसमे न्यायमूर्ति श्री शाह एवं न्यायमूर्ति श्री हेगडे ने एक निर्णय २८ अक्तूबर १९६९ को दिया था। श्री गुप्ता ने उस अपील की सुनवाई और अपील को लेकर एक पुस्तिका प्रकाशित की और उसे बेचा और प्रसारित किया। इस पुस्तिका मे इस निर्णय के विषय में कई आरोप लगाये गये और न्यायमूर्ति श्री जे० सी० शाह पर कई लांछन भी। जब यह मामला सुप्रीम कोर्ट द्वारा सुना गया तब श्री जे० सी० शाह न्यायमूर्ति एवं भारत के मुख्य न्यायाधिपति के पद से अवकाश ग्रहण कर चुके थे। सर्वोच्च न्यायालय की सविधान पीठ इस निर्णय पर पहुंचा कि गुप्ता ने न्यायमूर्तियों की और न्यायालय की घोर

अवमानना की थी। यद्यपि श्री गुप्ता ने न्यायालय से क्षमा-याचना की थी किंतु उसने साथ-साथ एक शपथ-पत्र भी पेश किया था जिसमें न्यायमूर्तियों पर नये लांछन और परिवाद लगाये गये थे। यद्यपि संविधान पीठ की राय में गुप्ता का अपराध ऐसा था कि उसे कठिन दंड दिया जाना चाहिए था तथापि न्यायालय ने उसको केवल दो माह के साधारण सिविल कारावास की सजा दी।

पत्रकारिता की दृष्टि से न्यायालयों की अवमानना के प्रश्न पर ब्रिगेडियर ई० टी० सेन बनाम एडीटाता नारायणन एवं अन्य (ए० आई० आर० १९६६ दिल्ली २०१) का मामला भी उल्लेखनीय है। ब्रिगेडियर सेन ने 'न्यू एज' के मुद्रक और प्रकाशक के खिलाफ एक फौजदारी शिकायत दायर की। आरोप यह था कि 'न्यू एज' के मुद्रक और प्रकाशक ने एक पर्चा छापा था जो कि एक अमेरिकन जान डी० स्मिथ द्वारा लिखा गया बताया जाता था और जिसका शीर्षक था—'मैं भारत मे सी० आई० ए० का एजेंट था।' इस पर्चे में ब्रिगेडियर सेन के खिलाफ कई गंभीर आरोप थे, जो उनकी प्रतिष्ठा पर आघात करने वाले थे। जब कि ब्रिगेडियर सेन की फौजदारी शिकायत सब-डिवीजनल मजिस्ट्रेट दिल्ली की अदालत मे सुनी जा रही थी, एक अंग्रेजी दैनिक पत्र 'पैट्रियट' ने ब्रिगेडियर सेन के खिलाफ पक्षपातपूर्ण रपट छापी। ब्रिगेडियर सेन की शिकायत यह थी कि 'पैट्रियट' दैनिक में प्रकाशित सामग्री से जन-मानस और अदालत में पूर्वग्रह फैलाने का प्रयास जाहिर होता था। 'पैट्रियट' के खिलाफ यह भी शिकायत की गयी कि उन विवादग्रस्त तथ्यों को अखबार में प्रकाशित रपट में साबित तथ्य बता कर जन-मानस को गुमराह किया जा रहा था और गलत और सनसनीखेज शीर्षकों द्वारा एक ऐसा वातावरण पैदा किया जा रहा था जिससे मामले की सही और न्यायपूर्ण सुनवायी कठिन थी। यह भी कहा गया कि इस प्रकाशित सामग्री से ब्रिगेडियर सेन की तरफ से आने वाले साक्षियों के मन पर गलत असर डाला जा रहा था। 'पैट्रियट' के प्रधान संपादक श्री नारायणन ने अपने शपथ-पत्र मे पूरा खेद प्रकट किया और पत्र मे जो कुछ भी प्रकाशित हुआ उसके लिए स्वयं पूरी जिम्मेवारी स्वीकार की। श्री नारायणन ने कहा कि पत्रकारिता की परंपराओं के अनुसार संपादक कोई जिम्मेवारी संवाददाता पर नहीं डालना चाहता और यह भी सुझाया कि इस मामले को लेकर संवाददाता को पक्षकार बनाने की अपेक्षा नहीं थी। दिल्ली उच्च न्यायालय के संपूर्ण पीठ ने अपने निर्णय में (जो कि न्यायालय की ओर से मुख्य न्यायाधिपति श्री न्यायमूर्ति इंद्रदेव दुआ ने दिया था) कहा कि संपादक का यह प्रतिवेदन कानूनी तौर से गलत था और सिर्फ उनकी क्षमा-याचना से संवाददाता दोषमुक्त नही हो जाता। संवाददाता ने यद्यपि खेद प्रकट किया था किंतु साथ ही उसने अपनी सफाई भी पेश की थी। इस मामले में न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुचा कि संवाददाता की क्षमा-याचना कोई पश्चाताप या प्रायश्चित की अभिव्यक्ति नही थी किंतु सिर्फ सजा से बचने के लिए एक तरकीब मात्र थी। न्यायालय ने अभियुक्तों को दोषी पाया और संवाददाता को आगे से सावधान रहने की चेतावनी दी।

के० पी० नूरदीन अहमद बनाम ए० के० गोपालन (ए० आई० आर० १९६८ केरल ३०१) में भी केरल उच्च न्यायालय की संपूर्ण पीठ ने यह निर्णय दिया कि यदि

किसी समाचार-पत्र की रपट द्वारा किसी वाद या मामले की सुनवायी से पहले ही या उसके दौरान पूर्वग्रह उत्पन्न करने का प्रयत्न किया जाय जिससे कि न्यायालय द्वारा न्यायपूर्ण तरीके से और निष्पक्ष वातावरण में उस मामले की सुनवायी होने पर असर पड़ता हो, तो न्यायालय की अवमानना होती है। इस निर्णय में न्यायालय ने यह भी कहा कि वास्तव में न्याय के मार्ग में बाधा पड़ी या नहीं पड़ी यह प्रासंगिक नही है, बल्कि प्रश्न यह है कि प्रकाशित सामग्री में ऐसी कोई प्रवृत्ति है या नहीं जिसके कारण न्याय के मार्ग में बाधा पड़ सकती है।

हमारे संविधान मे सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों को उनकी अवमानना के लिए सजा देने का अधिकार है। अनुच्छेद १२९ में सर्वोच्च न्यायालय को 'कोर्ट आफ रिकार्ड' की संज्ञा दी गयी है और अवमान के लिए सजा देने का अधिकार भी। यही प्रावधान उच्च न्यायालयों के लिए अनुच्छेद २१५ में किया गया है। उच्च न्यायालय को अपने अधीनस्थ न्यायालयों की अवमानना के लिए सजा देने का भी अधिकार प्राप्त है।

हमारे देश के मुख्य उच्च न्यायालयों को न्यायालयों की अवमानना के लिए सजा देने का अधिकार उनकी स्थापना के समय मे ही था किंतु कानून के स्पष्टीकरण के लिए और इस प्रश्न को विवाद-मुक्त करने के लिए १९२६ में 'कंटेंप्ट आफ कोर्ट एक्ट' बनाया गया। जब हमारा संविधान बना तो उसमें सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालयों द्वारा उनकी अवमानना के लिए सजा देने के अधिकार को स्वीकार किया गया। तदनुसार १९५२ में 'कंटेंप्ट आफ कोर्ट' का नया अधिनियम बनाया गया। इस अधिनियम में भी अवमानना की कोई सुनिर्धारित परिभाषा नही दी गयी। १९६३ में सान्याल समिति ने अवमानना के कानून पर अपनी विद्वत्तापूर्ण रपट पेश की। इस रपट को ध्यान में रखते हुए और अवमानना के कानून पर नये दृष्टिकोण से विचार करते हुए १९७१ मे नये 'कंटेंप्ट आफ कोर्ट' अधिनियम को पारित किया गया। यह नया अधिनियम २४ दिसंबर १९७१ से लागू हुआ।

'कंटेंप्ट आफ कोर्ट' अधिनियम के अनुसार न्यायालय की अवमानना का अभिप्राय सिविल अवमानना या फौजदारी अवमानना मे है। सिविल अवमानना का संबंध न्यायालय के किसी निर्णय डिक्री या निर्देश की अवज्ञा से होता है। फौजदारी अवमानना का संबंध उस लिखे या बोले गये शब्द या संकेत या कार्य से है जो किसी भी न्यायालय के अधिकार और प्रतिष्ठा को आंच पहुचाता हो या जिसमें ऐसी आंच पहुचाने की प्रवृत्ति हो, जिसके द्वारा किसी अदालती कार्यवाही मे हस्तक्षेप होता हो या हस्तक्षेप करने की प्रवृत्ति हो या जिसके द्वारा न्यायालय के प्रश्न मे बाधा पहुचती हो या जिस के द्वारा इस प्रकार की बाधा पहुचाने की प्रवृत्ति हो। पत्रकारों को विशेषतया फौजदारी अवमानना के मामलो में सावधान रहने की आवश्यकता होती है।

१९७१ के नये अधिनियम के अनुसार यदि किसी व्यक्ति के पास यह जानने या मानने का आधार न हो कि कोई मामला विचाराधीन है तो उसे तद्विषयक प्रकाशन के लिए न्यायालय की अवमानना का दोषी नही ठहराया जायगा। १९७१ के अधिनियम ४ के अनुसार किसी अदालती कार्यवाही की सही और सतुलित रिपोर्ट के

लिए किसी व्यक्ति को न्यायालय की अवमानना का दोषी नहीं ठहराया जा सकता। इसी तरह यदि किसी मामले का निर्णय हो चुका तो उस पर संतुलित टिप्पणी (फेयर कमेंट) के लिए किसी व्यक्ति को न्यायालय की अवमानना के लिए दोषी नहीं ठहराया जा सकता। अदालत की अवमानना के लिए छह महीने का साधारण कारावास अथवा दो हजार रुपये का जुर्माना या दोनों दिये जा सकते हैं। किंतु यदि अदालत के समक्ष संतोषप्रद क्षमा-याचना की जाय तो अभियुक्त को डिस्चार्ज किया जा सकता है या सजा से मुक्त किया जा सकता है। उल्लेखनीय है कि धारा १२ के अनुसार यदि अभियुक्त सद्भावना के साथ क्षमा-याचना करे तो सिर्फ इस दृष्टि से क्षमा-याचना को अस्वीकार नही किया जा सकता कि वह क्षमा-याचना सीमित या सशर्त है। जहां अदालत की अवमानना सर्वोच्च न्यायालय या उच्च न्यायालय के सम्मुख होती है वहां अदालत स्वयं उस मामले को सुनने और उसमें सजा देने की व्यवस्था कर सकती है। किंतु जहां फौजदारी अवमानना होती है, वहा या तो सर्वोच्च न्यायालय अथवा उच्च न्यायालय को ही स्वतः कार्यवाही करने का अधिकार है या ऐसी कार्यवाही के लिए महाधिवक्ता या महाधिवक्ता द्वारा किसी अधिकृत व्यक्ति के आवेदन की अपेक्षा होती है। १९७१ की अधिनियम की धारा १६ के अनुसार कोई भी न्यायाधीश, मजिस्ट्रेट या अन्य व्यक्ति जो न्यायिक कर्त्तव्य मे संलग्न हो वह भी अपनी अदालत की अवमानना कर सकता है और उसके लिए उसे सजा दी जा सकती है। १९७१ के अधिनियम के अनुसार किसी आरोपित अवमानना की तिथि से एक वर्ष की अवधि के बाद उस विषय में कोई कार्यवाही शुरू नही की जा सकती। मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि १९७१ का अधिनियम उदार और व्यापक आशय का है।

न्यायालय की अवमानना के साथ-साथ एक और अत्यंत महत्वपूर्ण सार्वजनिक क्षेत्र है जिसके विषय मे पत्रकारों को सजग और सावधान रहने की अपेक्षा होती है। संसद् और विधानमंडलों मे प्रेस को कई सुविधाएं दी जाती है। किंतु साथ-साथ प्रेस को संसदीय विशेषाधिकारों के प्रति कठिन दायित्व का निर्वाह भी करना होता है।

मुख्यतया पत्रकारों को संसद् या विधानमंडलो की कार्यवाही के प्रकाशन के विषय मे और संसद् या विधानमंडल के किसी सदन, उसकी समितियों या सदस्यों पर प्रकाशित टिप्पणियो के विषय मे सचेत और सावधान रहना चाहिए।

संसद् एवं विधानमंडल की कार्यवाही का प्रकाशन किया जा सकता है, यदि ऐसी रिपोर्ट सार्वजनिक भलाई के लिए हो और दुर्भावना से प्रेरित न हो। यह प्रावधान संसद् की कार्यवाही (प्रकाशन का सरक्षण) अधिनियम, १९५६ मे किया गया। किंतु संसद् और विधानमंडलों को यह अधिकार है कि वे अपनी किसी कार्यवाही के प्रकाशन का नियमन या नियंत्रण करे और यदि आवश्यक समझें तो उनका प्रकाशन रोक दें। संसद् एवं विधानमंडल इस विषय में अपने आदेश की अवहेलना या अवज्ञा के लिए दंड दे सकता है। यदि संसद् या विधानमंडल की कार्यवाही का समाचार गलत ढंग से प्रकाशित किया जाय या दुर्भावना से प्रेरित होकर किया जाय या कुछ सदस्यों के वक्तव्यों को जान-बूझ कर समाचार-पत्रों में स्थान न दिया जाय, तो यह संसद् या विधानमंडल के विशेषाधिकार का हनन और अवमानना है और इस आधार पर किसी

भी पत्र या पत्रकार को दंडित किया जा सकता है। समाचार-पत्रों पर यह भी नियम लागू होता है कि संसद् या विधानमंडल की किसी गुप्त बैठक की कार्यवाही का प्रकाशन न करें यदि सभा की गोपनीयता का बंधन हो। सदन की कार्यवाही के उन अंशों का प्रकाशन, जिनको अध्यक्ष के आदेश से सभा की कार्यवाही से निकाल दिया गया हो, विशेषाधिकार का हनन और सदन की अवमानना माना जाता है और उसके लिए दंड दिया जा सकता है। किसी संसदीय समिति की कार्यवाही या उसके सामने दिये गये साक्ष्य या प्रस्तुत किये गये दस्तावेज को समाचार-पत्रों द्वारा तब तक प्रकाशित करने की मनाही है जब तक कि ऐसी कार्यवाही या साक्ष्य या दस्तावेज को सदन मे पेश न कर दिया गया हो। यदि समाचार-पत्र में प्रकाशित किसी लेख या सामग्री से सदन या उसकी समितियों के आचरण या कार्यवाही पर कोई आक्षेप किया गया हो या सदन के किसी सदस्य के आचरण अथवा व्यवहार पर कोई आक्षेप किया गया हो तो ऐसा प्रकाशन भी सदन के विशेषाधिकार के प्रतिकूल माना जाता है और सदन की अवमानना की श्रेणी में गिना जाता है। आचार्य कृपलानी के विषय में 'ब्लिट्ज' में कुछ ऐसी सामग्री प्रकाशित हुई थी जिस पर लोकसभा ने निर्णय दिया कि उससे माननीय सदस्य एवं सदन के विशेषाधिकार का हनन हुआ और लोकसभा की अवमानना हुई और इस आधार पर लोकसभा ने पत्र के संपादक को दोषी पाया। सामान्यः विधानमंडल अवमानना या विशेषाधिकार-हनन के प्रत्येक प्रश्न पर सजा नहीं देता। बहुधा पत्र या पत्रकार संसद् और विधानमंडलों से इस प्रकार का नोटिस आने पर सखेद क्षमा-याचना कर लेते हैं और बात वहीं समाप्त हो जाती है। किंतु कई बार पत्रों और पत्रकारों को ऐसे मामलों में अपना पक्ष विशेषाधिकार समितियों के समक्ष प्रस्तुत करना पड़ता है। कई बार पत्रों में प्रकाशित सामग्री के सही और तथ्ययुक्त होने पर भी विवाद उभर आते हैं और तब पत्रकार के लिए अपनी जानकारी के स्रोत के रहस्योद्घाटन करने या न करने का धर्म-संकट समुपस्थित हो जाता है। हमारे देश में समाचार-पत्रों और पत्रकारों को यह सांविधानिक या कानूनी उन्मुक्ति प्राप्त नहीं है कि वे अपना स्रोत बताने से इंकार कर दें।

'सर्चलाइट' के संपादक श्री एम० एस० एम० शर्मा द्वारा सर्वोच्च न्यायालय में प्रस्तुत रिट याचिका में संसदीय संस्थानों और प्रेस के संबंधों को लेकर कई महत्वपूर्ण प्रश्न सामने आये। इस मामले का मुख्य प्रासंगिक तथ्य यह था कि बिहार विधानसभा में श्री महेश्वरप्रसाद नारायण सिन्हा ने श्री महेशप्रसाद सिन्हा को लेकर मुख्य मंत्री श्री श्रीकृष्ण सिन्हा के विरुद्ध एक भाषण दिया। इस भाषण को कार्यवाही से निकालने का आदेश स्पीकर महोदय द्वारा दिया गया था। किंतु फिर भी उस भाषण पर दैनिक 'सर्चलाइट' में समाचार प्रकाशित हुआ। उस समाचार को लेकर 'सर्चलाइट' के संपादक को विधानसभा सदस्य द्वारा उठाये गये विशेषाधिकार के प्रश्न का नोटिस दिया गया और उनकी वजह जाहिर करने के लिए आदेश दिया गया कि उनके खिलाफ उचित कार्यवाही क्यों न की जाय। विधानसभा के इस नोटिस को चुनौती देने के लिए 'सर्चलाइट' के संपादक श्री एम० एस० एम० शर्मा ने सर्वोच्च न्यायालय में अपनी याचिका प्रस्तुत की। इस केस के निर्णय में सर्वोच्च न्यायालय के संविधान पीठ ने

(ए० आई० आर० १९५९ सुप्रीम कोर्ट ३९५) ने यह कहा कि हमारे देश में प्रेस की आजादी नागरिक के वाक्-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य से अधिक, ऊपर या अलग नहीं है। सर्वोच्च न्यायालय के अनुसार हमारे विधानमंडलों को और संसद् के सदनों को हाउस आफ कामंस के सभी विशेषाधिकार प्राप्त है और इसलिए वे सदन में होने वाले किसी कार्यवाही की रिपोर्ट के सही या गलत प्रकाशन को प्रतिबंधित कर सकते है। संसद् और विधानमंडलों को यह अधिकार है कि वे इस विषय में अपने नियम बनायें और अपने विशेषाधिकार के हनन के लिए किसी भी व्यक्ति को उन नियमों के अनुसार दंडित करें। सर्वोच्च न्यायालय ने यह भी कहा कि यदि स्पीकर ने भाषण के किसी अंश को कार्यवाही से निकाल दिया तो इसका अर्थ यह हुआ कि भाषण का वह अंश कभी बोला ही नही गया और यदि ऐसा कोई भाषण या उसका कोई अंश जो स्पीकर द्वारा निकाल दिया गया हो तथा किसी समाचार-पत्र द्वारा प्रकाशित किया जाता है तो उसे सदन के विशेषाधिकार का हनन मानना चाहिए। सर्वोच्च न्यायालय ने यह भी स्पष्ट कहा कि यह मामला पूरी तरह से बिहार विधानसभा के क्षेत्राधिकार में था और न्यायालय ऐसे मामलों में कोई हस्तक्षेप नहीं करेगा।

१९६४ मे उत्तर प्रदेश में केशवसिंह के मामले में संसदीय विशेषाधिकार का प्रश्न एक झंझावात की तरह उठ खड़ा हुआ। केशवसिंह ने एक पर्चा मुद्रित और प्रकाशित किया। उत्तर प्रदेश की विधानसभा के अध्यक्ष ने अवमानना के लिए केशवसिंह की भर्त्सना की। उसी दिन स्पीकर ने यह निर्देश दिया कि केशवसिंह द्वारा की गयी (एक दूसरी) अवमानना के लिए उसे कारावास दिया जाय। स्पीकर के हस्ताक्षर के अंतर्गत केशवसिंह को जेल मे रखा गया। तब केशवसिंह की ओर से उच्च न्यायालय मे एक एडवोकेट ने याचिका पेश की। यह याचिका खंडपीठ के सामने आयी और खंडपीठ ने यह आदेश दिया कि केशवसिंह को जमानत पर रिहा कर दिया जाय। जब विधानसभा के पास यह समाचार पहुंचा तो विधानसभा ने एक प्रस्ताव पारित किया। इस प्रस्ताव मे यह मत व्यक्त किया गया कि उच्च न्यायालय के दोनो न्यायमूर्तियों ने एवं केशवसिंह और उसके एडवोकेट ने विधानसभा की अवमानना की और उसी में यह आदेश दिया गया कि केशवसिंह को तत्काल वापिस गिरफ्तार कर लिया जाय और दोनों न्यायमूर्तियों को एवं केशवसिंह के अधिवक्ता को पकड़ कर विधानसभा के समक्ष प्रस्तुत किया जाय। यह समाचार मिलने पर दोनों न्यायमूर्तियों ने और अधिवक्ता ने अलग-अलग याचिकाएं न्यायालय मे प्रस्तुत की और उसमें यह कहा कि विधानसभा ने न्यायालय की अवमानना की है एवं विधानसभा का प्रस्ताव अवैध है। इन याचिकाओ पर उच्च न्यायालय के पूर्ण पीठ ने विधानसभा के स्पीकर को नोटिस दिया और उन्हें वारंट इत्यादि निकालने मे रोकने का आदेश दिया। इन घटनाओ से सांविधानिक संकट की एक ऐसी स्थिति उत्पन्न हुई कि उस समय मैंने और अन्य कई संसद् सदस्यों ने यह सुझाव दिया कि इस उलझी हुई गुत्थी को सुलझाने के लिए राष्ट्रपतिजी को चाहिए कि वे सर्वोच्च न्यायालय की सम्मति इस विषय में मांगें। इस मामले में अपनी राय देते हुए सर्वोच्च न्यायालय के सात जजों के पीठ ने यह कहा (ए० आई० आर० १९६५ सुप्रीम कोर्ट ७४५) कि उच्च न्यायालय को यह मामला सुनने का अधिकार

था और विधानसभा द्वारा पारित प्रस्ताव जिसमें उच्च न्यायालय के दो न्यायमूर्तियों एवं अधिवक्ता को पकड़ कर विधानसभा के सामने पेश करने का निर्देश था, वह न उचित था न वैध। साथ ही सर्वोच्च न्यायालय ने यह भी कहा कि संसदीय विशेषाधिकार और नागरिकों के मूल अधिकारों के बीच जब संघर्ष हो तो दोनों के सामंजस्य और समन्वय का प्रयत्न करना चाहिए ताकि संसदीय विशेषाधिकार की रक्षा हो और संसद् सदस्यों, सदनों अथवा विधानमंडलों की अवमानना न हो और साथ ही न्यायालयों, अधिवक्ताओं और नागरिकों के अधिकारों की सुरक्षा भी हो सके।

१९६८ में श्री सी० सुब्रह्मण्यम ने मद्रास उच्च न्यायालय में एक रिट याचिका पेश की जिसमें मद्रास विधानसभा के स्पीकर को प्रतिबंधित करने के लिए प्रार्थना थी कि वे प्रार्थी के विरुद्ध विधानसभा की अवमानना की कार्यवाही न करें। इस विवाद की पृष्ठभूमि यह थी कि श्री सी० सुब्रह्मण्यम ने मद्रास विधानसभा द्वारा पारित भाषा-विषयक संकल्प को सब से बड़ा राजनीतिक कपट या धोखा बताया। श्री सुब्रह्मण्यम के इस वक्तव्य को लेकर विधानसभा ने यह प्रस्ताव पारित किया कि यह विधानसभा के विशेषाधिकार का प्रश्न है। मद्रास उच्च न्यायालय के पांच जजों के पूर्ण पीठ ने इस मामले में (ए० आई० आर० १९६९ मद्रास १०) श्री सी० सुब्रह्मण्यम की याचिका को खारिज कर दिया और कहा कि विधानसभा को वजह जाहिर करने का नोटिस देने और इस मामले में जाच करने का अधिकार था और इसलिए न्यायालय के लिए यह उचित नही था कि इस सोपान पर कोई हस्तक्षेप किये जायं।

इस विषय मे यह उल्लेखनीय है कि मूलतः संसदीय विशेषाधिकार या अवमानना के मामलों मे पत्रों और पत्रकारों को संसद् या विधानमंडलों के समक्ष अपनी सफाई पेश करनी पड़ती है। इस दृष्टि से यह आवश्यक हो जाता है कि वे इन संसदीय संस्थानों की कार्यवाहियो को संतुलित रूप से प्रकाशित करें, यह ध्यान रखे कि कोई पक्षपात न हो, कोई गलतबयानी न हो एवं कार्यवाही से जो अंश निकाल दिये गये हैं उनका या अन्य किसी गोपनीय रहस्य का उद्घाटन न हो। साथ ही यह भी आवश्यक है कि किसी भी संसदीय कार्यवाही पर टिप्पणी करने में कोई पत्र या पत्रकार दुर्भावना से प्रेरित न हो बल्कि अपनी रपट या टिप्पणी मे तथा संवाद और संपादकीय में सदाशयता और सद्भावना का आधार बनाये रखें।

पत्रों और पत्रकारों को शिष्टाचार और सदाचार की मर्यादा के प्रति अवश्य सजग रहना चाहिए। वे अपने वाक्-स्वातंत्र्य या अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य का प्रयोग अश्लीलता के वाहन के रूप में नहीं कर सकते। बहुधा यह एक बहुत मुश्किल सवाल होता है कि अश्लीलता क्या है? अक्सर अश्लीलता के माप और मान बदलते रहते हैं। वर्षों तक कई देशों की अदालतों ने 'लेडी चैटर्लीज लवर' को अश्लील माना और उस पर लगाये प्रतिबंध की वैधता को स्वीकार किया। किंतु इसी उपन्यास को बाद में कई देशों के न्यायालयों ने एक सृजनात्मक साहित्यिक कृति के रूप में स्वीकार किया। भारतीय दंड संहिता की धारा २९२ और 'अश्लील प्रकाशन अधिनियम, १९२५' के अनुसार अश्लील प्रकाशनों पर प्रतिबंध लगाया जा सकता है और उनके लिए उत्तरदायी व्यक्ति को दंडित किया जा सकता है। जैसा कि हिकलिन (Hickiin) के केस

में मुख्य न्यायाधिपति श्री कौकबर्न ने कहा था [१८६८ (३) क्वींस बेंच ३६०] और जैसा कि हमारे सर्वोच्च न्यायालय ने माना है (ए० आई० आर० १९६५ सुप्रीम कोर्ट ८८१), यदि किसी प्रकाशित सामग्री की प्रवृत्ति पाठकों के मस्तिष्क को भ्रष्ट और विकृत करने की हो और यदि ऐसी सामग्री से उनके मन में अशुद्ध और उच्छृंखल प्रकार के विचार उत्पन्न होते हों तो वह सामग्री या साहित्य अश्लील कहा जा सकता है। इसी आधार पर सर्वोच्च न्यायालय ने रंजीत उदेशी (जिसे 'लेडी चैटर्लीज लवर' पुस्तक रखने और बेचने के लिए सजा दी गयी थी) की अपील को खारिज किया। सार्वजनिक शिष्टाचार और सदाचार के आधार पर ही सौराष्ट्र के उच्च न्यायालय ने (ए० आई० आर० १९५४ सौराष्ट्र २८) प्रेस (आब्जेक्शनेबल मैटर) के अधिनियम १९५१ की वैधता को स्वीकार किया। मद्रास उच्च न्यायालय ने १९५५ मद्रास ४९८ में इस अधिनियम को संविधान के अनुकूल माना।

शिष्टाचार और सदाचार का मानक युगबोध पर निर्भर करता है। पत्रकार और प्रकाशक को इस विषय में अपनी समझ और अपने विवेक से काम लेना पड़ता है। यदि वह केवल परंपरावादी धारणाओं के आधार पर अपना निर्णय करता है, साहित्य का शफाखाने की तरह विसंक्रमण और अनुर्वरीकरण (Sterilisation) करने का प्रयास करता है और अपने आत्यंतिक अनुशासन और कृत्रिम प्रतिबंधों द्वारा सृजनशील साहित्यकार या अपने पाठकों के प्रति अन्याय करता है, तो वस्तुतः ऐसी स्थिति में वह पत्रकारिता के आदर्शों के प्रति भी अपनी अज्ञता और निष्ठाहीनता का परिचय देता है। जहां तक सृजनात्मक साहित्य का प्रश्न है और उस साहित्य का सामाजिक मूल्य है, पत्रकार का कर्त्तव्य हो जाता है कि वह उसे स्वीकार करने मे और प्रकाशित एवं प्रसारित करने में भय और बनावटी नैतिकता से कुंठित न हो और साहस और आत्मविश्वास के साथ अपना निर्णय करे। किंतु यदि कोई पत्रकार केवल सस्ती व्यावसायिक दृष्टि से जनता के मन को पतनोन्मुख विकृतियों द्वारा भ्रष्ट करने का प्रयास करे और उन्हें अपने प्रकाशन के माध्यम से लिप्साओं का शिकार बनाये तो ऐसे अश्लील साहित्य को सामाजिक सदाचार की सुरक्षा के लिए प्रतिबंधित और दंडित किया जा सकता है। एक दृष्टि से यह प्रश्न सार्वजनिक आचार-विचार, देश और काल के अनुसार सदाचार और समकालीन नैतिकता के दृष्टिकोण पर निर्भर करता है; दूसरी ओर यह प्रश्न पत्रकार के अपने विवेक और साहित्यिक व लौकिक मर्मज्ञता का है। साथ ही साथ यह प्रश्न किसी पत्र और पत्रकार की प्रवृत्ति, दृष्टिकोण, रुझान और तात्कालिक प्रसंग का भी है।

हमारा संविधान और कानून धर्म, जातियों, दलों एवं समूहों के बीच घृणा या वैमनस्य उत्पन्न या प्रसारित करने वाली प्रवृत्ति पर प्रतिबंध लगाने की स्वीकृति देता है। इस विषय में फौजदारी प्रक्रिया संहिता में यह प्रावधान है कि यदि राज्य सरकार को ऐसा प्रतीत हो कि कोई पत्र, पुस्तक या दस्तावेज में राजद्रोह की या अश्लीलता की बात है या ऐसी कोई सामग्री है जिसका यह अभिप्रेत है कि विभिन्न वर्गों के बीच शत्रुता या घृणा की भावना प्रसारित हो या जो जानबूझ कर और दुर्भावना से किसी वर्ग की धार्मिक भावनाओं को आघात पहुंचाने के प्रयोजन से प्रेरित हो या किसी धर्म

या धार्मिक विश्वास को अपमानित करता हो तो राज्य सरकार अपनी राय का आधार बताते हुए ऐसे पत्र या पुस्तक या दस्तावेज को जब्त कर सकती है। इस प्रकार के प्रकाशन भारतीय दंड संहिता की धारा १२४ए, धारा १५३ए, धारा २९२, धारा २९३ एवं धारा २९५ए के अनुसार भी दंडनीय हैं। न्यायालयों ने इस प्रकार के आदेशों पर विचार करते हुए यह स्पष्ट रूप से कहा है कि संबंधित पत्र, पुस्तक या दस्तावेज को पूरी तरह से पढ़ना चाहिए और उसके असर को समझने की कोशिश करनी चाहिए। न्यायालयों ने यह भी कहा है कि लेखक की मंशा को उसकी भाषा के आधार पर समझना चाहिए। राज्य सरकार के लिए यह आवश्यक है कि किसी पत्र, पुस्तक या दस्तावेज को जब्त करते समय अपनी राय के आधारभूत कारण अपने आदेश में अवश्य रखें। यदि आदेश में आधारभूत कारणों का उल्लेख नहीं किया जाता, तो इस प्रकार के आदेश को न्यायालय निरस्त कर देता है। इस प्रकार के आदेश के विरुद्ध फौजदारी संहिता में उच्च न्यायालय के तीन जजों के सामने अपील पेश करने की व्यवस्था है और ऐसे मामलों में उच्च न्यायालय स्वयं पत्र, पुस्तक या दस्तावेज के विषय में अपनी राय स्थिर करता है और तब जब्ती के आदेश की वैधता का निर्णय किया जाता है।

'दी इलेस्ट्रेटेड वीकली आफ इंडिया' के १९७२ के वार्षिक विशेषांक को जम्मू और कश्मीर की राज्य सरकार ने अपने आदेश द्वारा जब्त कर लिया था। इस आदेश का आधार यह उल्लिखित किया गया था कि 'इलेस्ट्रेटेड वीकली' के इस विशेषांक में जम्मू और कश्मीर पर जो लेख प्रकाशित हुआ था उसमें कश्मीर के विभिन्न वर्गों और जातियों के विषय में ऐसी सामग्री थी जिससे अमन को खतरा था और जातियों और वर्गों के बीच घृणा और शत्रुता की संभावना थी। जम्मू एवं कश्मीर राज्य के उच्च न्यायालय ने इस आदेश को निरस्त कर दिया। इस मामले में संयोग से मैसर्स बैनेट कोलमैन एवं 'इलेस्ट्रेटेड वीकली' के संपादक की ओर से बहस की थी। उच्च न्यायालय ने प्रार्थियों की ओर से की गयी बहस को स्वीकार करते हुए कहा कि वह आदेश अवैध था क्योंकि उसमें आधारभूत कारणों का उल्लेख समुचित रूप से नहीं किया गया था एवं इसलिए भी वह आदेश अवैध था कि वास्तव में उस लेख में ऐसी सामग्री नहीं थी जिसका असर वर्गों, जातियों या धर्मों के बीच शत्रुता और घृणा फैलाना का हुआ हो। लेख की भाषा के विषय में उच्च न्यायालय के न्यायमूर्तियों ने यह अवश्य कहा कि यह ज्यादा अच्छा होता यदि लेख की भाषा अधिक संयत, मर्यादित और शालीन होती।

यहां यह उल्लेख करना भी उचित होगा कि राजद्रोह (सेडीशन) फैलाने या उकसाने वाले प्रकाशन पर भी प्रतिबंध लगाया जा सकता है और ऐसे प्रकाशन के लिए पत्र या पत्रकार दंडनीय हैं। केदारनाथ सिंह बनाम बिहार राज्य के मामले (ए० आई० आर० १९६२ सुप्रीम कोर्ट ९५५) में सर्वोच्च न्यायालय ने भारतीय दंड संहिता की धारा १२४ए को वैध माना। किंतु उस व्याख्या में सर्वोच्च न्यायालय ने यह शर्त लगायी कि धारा १२४ए केवल उन मामलों में लागू हो सकती है जहां हिंसा को उकसाने की बात हो या अराजकता फैलाने का इरादा हो। वाक्-स्वातंत्र्य और

अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य का आधार हिंसात्मक व्यवहार करने की या हिंसात्मक व्यवहार उकसाने की इजाजत नहीं देता।

आपात्कालीन स्थिति में प्रकाशन से पूर्व सेंसरशिप लागू की जा सकती है : किंतु ऐसा कानून आपात्कालीन स्थिति के अलावा वैध होगा या नहीं यह संदिग्ध है; विशेषतया इसलिए कि सर्वोच्च न्यायालय ने इस विषय में ए० आई० आर० १९५० सुप्रीम कोर्ट १२९ एवं ए० आई० आर० १९५८ सुप्रीम कोर्ट ५७८ में यह मत व्यक्त किया है कि 'प्रीसेंसरशिप' संविधान के प्रतिकूल प्रतीत होती है।

'भारतीय सरकारी रहस्य अधिनियम' के निषेध-पत्रों और पत्रकारों के लिए विशेष रूप से ध्यातव्य हैं। इस अधिनियम के अनुसार यदि कोई व्यक्ति राज्य के हितों और सुरक्षा के प्रतिकूल किसी भी प्रयोजन से किसी निषिद्ध स्थान या उसके समीप जाय या निरीक्षण करे या किसी रहस्य को प्राप्त करे या संगृहीत, लिपिबद्ध या या प्रकाशित या प्रसारित करे तो वह दंडित किया जा सकता है। मुख्यत. इस अधिनियम के अंतर्गत यह निर्देश है कि कोई व्यक्ति राज्य के हित व सुरक्षा के विरुद्ध किसी 'निषिद्ध' स्थान पर या उसके समीप न जाय एवं उनके बारे में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में किसी प्रकार की सूचना शत्रु को न दे और प्रकाशित न करे; सरकारी चित्रों, गोपनीय योजनाओं एवं संकेतों को किसी अधिकृत व्यक्ति को न पहुंचाये; कोई आपत्तिजनक एवं सरकारी रहस्य की सूचना प्राप्त और प्रसारित न करे। इस अधिनियम की विभिन्न धाराओं के अंतर्गत कारावास और जुर्माने की व्यवस्था की गयी है।

राज्य और समाज के प्रति पत्रों और पत्रकारों के जो दायित्व है वे निश्चय ही अत्यंत महत्वपूर्ण है, विशेषतया इसलिए कि तत्संबंधी निषेधों की अवज्ञा के लिए कारावास की सजा हो सकती है। किंतु पत्रों और पत्रकारों के लिए लोगों के निजी अधिकारों का प्रश्न भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। पश्चिमी देशों में निजी अधिकारों के हनन के लिए पत्रों को कई बार अत्यंत कठिनाईपूर्ण मुकदमों का सामना करना पड़ता है और भारी मुआवजा भी देना पड़ता है। हमारे देश में इस प्रकार के मामले कम होते है, फिर भी उससे पत्रों और पत्रकारों की जिम्मेदारी कम नहीं हो जाती। हमारे देश में मानहानि के लिए कारावास की सजा की व्यवस्था भी है।

विशेषतया इस विषय मे चार आधारभूत मर्यादाएं है : (१) पत्र एवं पत्रकार किसी की व्यक्तिगत मानहानि न करे, मिथ्या आरोप न लगाये; (२) किसी के वैयक्तिक एकांत और निजी वातावरण की गोपनीयता का अनुचित अतिक्रमण न करें; (३) कृति-स्वाम्य (कापी राइट) के कानून का उल्लंघन न करें, एवं (४) प्रेस संबंधी कानून के विषय में सजग और सचेत रहे; मुद्रण-रेखा स्पष्ट रूप से दें और कोई ऐसा विज्ञापन प्रकाशित न होने दें जो आपत्तिजनक हो और जिसके विषय में कानूनी निषेध हो।

व्यक्तिगत मानहानि का प्रश्न पत्र और पत्रकारिता के लिए एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। भारतीय दंड संहिता १८६० की धारा ४९९ में मानहानि की परिभाषा दी गयी है। यदि कोई व्यक्ति किसी के बारे में कोई आरोप या लांछन लगाये या प्रकाशित करे और यह जानता हो या जानने की स्थिति में हो कि यह आरोप या लांछन उसकी

प्रतिष्ठा को हानि पहुंचायगा तो वह उस व्यक्ति की मानहानि करता है। धारा ४९९ के चार स्पष्टीकरण हैं, तीन उदाहरण हैं और दस अपवाद हैं।

स्पष्टीकरण के तौर पर यह उल्लेखनीय है कि किसी मृत व्यक्ति पर आरोप या लांछन लगाना भी मानहानि की श्रेणी मे आ सकता है, विशेषतया यदि ऐसा आरोप उसके निकट परिवार और संबंधियों की भावना को आघात पहुंचाता हो। किसी कंपनी या व्यक्ति समूह पर आरोप लगाना भी मानहानि की श्रेणी में आता है। वैकल्पिक अथवा व्यंग्यात्मक शैली में आरोप लगाया जाय तो वह भी मानहानि की परिभाषा में आ सकता है। किन्तु कोई आरोप किसी व्यक्ति की मानहानि नहीं माना जा सकता जब तक कि वह आरोप प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से, उस व्यक्ति को, या उसके नैतिक या बौद्धिक चरित्र को या उसके चरित्र या जाति या व्यवसाय के विषय में या उसकी विश्वसनीयता को दूसरों की आंखों मे कम न करता हो। उदाहरणत: यदि 'क' कहे कि 'ख' ईमानदार आदमी है, उसने 'ग' की घड़ी कभी नही चुराई और यदि 'क' का अभिप्रेत यह हो कि लोग यह मान लें कि 'ख' ने 'ग' की घडी चुराई थी, तो इसे साधारणतया मानहानि समझा जायगा। यदि 'क' संकेत से या एक तस्वीर खीचकर यह इंगित करे कि 'ख' ने 'ग' की घड़ी चुराई या कि 'ख' 'ग' की घड़ी लेकर भाग रहा है, तो इसे भी 'ख' की मानहानि कहा जायगा। मानहानि के कानून में दस अपवाद है। उन सबका उल्लेख करना यहां संभव नहीं है किंतु मोटे तौर पर यह उल्लेखनीय है कि अगर सार्वजनिक हित की दृष्टि से किसी व्यक्ति के बारे में कोई आरोप लगाया जाय और वह आरोप सही हो तो ऐसे आरोप को मानहानि नहीं कहा जा सकता। यदि सदाशयता के साथ किसी सार्वजनिक अधिकारी के क्रियाकलाप पर सम्मति प्रकट की जाय तो उसे भी मानहानि नही कहा जाता। यदि सार्वजनिक प्रश्न को लेकर किसी व्यक्ति के चरित्र या व्यवहार पर सद्भावना के साथ टिप्पणी की जाय तो वह भी मानहानि नही कहा जाता। यदि किसी न्यायालय की कार्यवाही की सारांशत: सही रपट या ऐसी कार्यवाही का परिणाम या निर्णय प्रकाशित किया जाय तो वह मानहानि की गिनती मे नहीं आता। न्यायालयों द्वारा निर्णीत किसी मामले के विषय में अपनी राय जाहिर करने या ऐसे मामले में किसी पक्षकार साक्षी या एजेंट के व्यवहार के मामले के संदर्भ में टिप्पणी करना मानहानि नहीं है। यदि कोई व्यक्ति सार्वजनिक नाटक, भाषण अथवा किसी अन्य अभिव्यक्ति के विषय मे अपनी राय जाहिर करे तो वह भी मानहानि नही माना जाता। यदि कोई व्यक्ति अपने अधिकार के अंतर्गत किसी दूसरे व्यक्ति के कार्य या व्यवहार की तीक्ष्ण आलोचना करे तो वह मानहानि के दायरे में नहीं आता। अगर कोई सदाशयता के साथ, बिना किसी दुर्भावना के, किसी व्यक्ति के खिलाफ किसी अदालत मे अपने आरोप पेश करे तो वह भी मानहानि की परिभाषा से परे ही माना जाता है। कोई भी व्यक्ति अपने हितों की रक्षा के लिए किसी दूसरे व्यक्ति के विषय में आरोप लगा सकता है किंतु ऐसा आरोप किसी की बदनामी करने के लिए नहीं लगाया जा सकता। यदि किसी व्यक्ति को सावधान करने के लिए कोई चेतावनी दी जाय तो उसे भी मानहानि का अपवाद ही माना जाता है।

मानहानि की परिभाषा, उसके स्पष्टीकरण और उसके अपवाद वास्तव में

व्यावहारिक जीवन के सामान्य नियम हैं। इन नियमों के मूल में तीन मुख्य निर्देशक तत्व हैं : सत्य, सार्वजनिक हित और सदाशयता अथवा सद्भावना। पत्रों और पत्रकारों के हाथ में जन-मानस को प्रभावित करने की इतनी बड़ी शक्ति रहती है कि न केवल कानून की बल्कि पत्रकारिता के आचारशास्त्र की यह मूल अपेक्षा है कि वे किसी भी व्यक्ति, संस्था या समूह की प्रतिष्ठा को आघात न पहुंचायें, स्वार्थ या पक्षपात से प्रेरित होकर कोई गलतबयानी न करें और किसी के बारे में गलतफहमी न फैलायें। पत्रकारों के लिए किसी के विषय में व्यंग्यात्मक शब्दों में या टेढ़े-मेढ़े तरीके से लिख देना साधारण सी बात है। किंतु यदि कोई पत्रकार दुर्मति और दुर्भावना से प्रेरित होकर किसी की प्रतिष्ठा से खिलवाड़ करने लगे तो वह जनता का और सार्वजनिक हित का शत्रु हो जाता है। पत्रकार के लिए यह जरूरी है कि वह सत्य और सार्वजनिक हित की सुरक्षा के लिए साहस के साथ अपने कर्त्तव्य का निर्वाह करे, किंतु यदि पत्रकार अपने दंभ के लिए या किसी स्वार्थ के लिए असत्य या अर्धसत्य का सहारा ले और किसी व्यक्ति की प्रतिष्ठा पर आक्रमण करे तो वह न केवल कानून का दोषी होता है बल्कि पत्रकारिता की परंपरा का भी वह द्रोही होता है।

यद्यपि वैयक्तिक और सार्वजनिक जीवन के बीच स्पष्ट सीमारेखा खींचना लगभग असंभव है किन्तु फिर भी पत्रकार की पत्रकारिता में सुरुचि की दृष्टि से एवं सदाचार और शिष्टाचार की दृष्टि से यह उचित प्रतीत होता है कि पत्र और पत्रकार वैयक्तिक और निजी एकांत के प्रति समुचित आदर की भावना दिखायें। निजी एकांत के अधिकार को अभी तक सभी देशों में कानूनी मान्यता नहीं मिली है। किंतु अलग-अलग देशों और समाजों में यह रीति और परंपरा के रूप में स्वीकार किया जाता है कि निजी एकांत का अधिकार भी सभ्यता और संस्कृति का एक महत्वपूर्ण अंग है। फ्रैंक थेयर ने अपने सुविख्यात ग्रंथ 'लीगल कंट्रोल आफ दी प्रेस' (चतुर्थ संस्करण, १९६२) में इस बात का उल्लेख किया है कि भारतवर्ष में १८८८ में निर्णीत एक मामले में इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने तत्कालीन भारतीय सामाजिक संदर्भ में निजी एकांत के अधिकार की व्याख्या की जबकि उस समय इंगलैंड में निजी एकांत के अधिकार को स्पष्ट और पूरी मान्यता नहीं मिल पायी थी। निजी वैयक्तिक अधिकारों का यह क्षेत्र हमारे आज के आधुनिक जीवन में प्रचार और विज्ञापन की विधाओं के बीच एक मूलभूत प्रश्नचिह्न के रूप में उभर कर समाज के सामने आता है। यदि ऐसे वैयक्तिक एकांत को स्वीकार न किया जाय तो यह कहना असंभव होगा कि हर एक व्यक्ति का घर उसका एक किला है। एक तरह से निजी एकांत का अधिकार संपत्ति का अधिकार भी है; साथ ही उसका संबंध और साम्य कृति-स्वाम्य के अधिकार के साथ भी है। इस दृष्टि से यदि कोई व्यक्ति किसी व्यक्ति की स्वीकृति के बिना उसका चित्र ले ले और उसे प्रकाशित करे तो निजी एकांत के अतिक्रमण का प्रश्न उठाया जा सकता है। किसी दूसरे व्यक्ति के टेलीफोन को अनधिकार चेष्टा से सुनना भी उसके निजी एकांत का अतिक्रमण है। इन मामलों में कानून और न्यायालय अधिकाधिक जागरूक हो रहे हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि कई देशों में निजी एकांत की सुरक्षा के लिए सूक्ष्म किंतु सशक्त आंदोलन चल रहा है। खड़गसिंह बनाम उत्तरप्रदेश के मामले में

(ए० आई० आर० १९६३ सुप्रीम कोर्ट १२९५) हमारे सर्वोच्च न्यायालय ने यद्यपि यह नहीं माना कि निजी एकांत का अधिकार एक मूलभूत सांविधानिक अधिकार है तथापि उसने यह अवश्य माना कि निजी एकांत के प्रति समादर सर्वथा अनिवार्य है क्योंकि यह एक सनातन सामाजिक सिद्धांत पर आधारित है। पत्रों और पत्रकारों के सामने बहुधा निजी एकांत के अधिकार को भंग करने का प्रलोभन रहता है। किंतु निष्ठावान एवं सिद्धांतशील पत्र और पत्रकार का लक्षण यही है कि वह इस प्रलोभन के वशीभूत होकर अपनी शालीन मर्यादा का सौदा करने के लिए तैयार न हो और कुछ हानि उठा कर भी दूसरों के निजी एकांत में दखल न दे क्योंकि अंततोगत्वा पत्र और पत्रकार के वाक्-स्वातंत्र्य और अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य का अर्थ यह नहीं कि उनको दूसरों की स्वतंत्रता में हस्तक्षेप करने का अधिकार प्राप्त है।

कृति-स्वाम्य (कापी-राइट) के कानून के राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय पहलू हैं। हमारे देश में कृति-स्वाम्य अधिनियम १९५७ में कुछ प्रावधान हैं जिनके माध्यम से साहित्य, संगीत, नाट्य, चित्र, चलचित्र एवं ग्रामोफोन रेकार्ड आदि के विषय में कृतित्व के स्वामित्व की रक्षा का प्रयास रहता है। इस दृष्टि से पत्र और पत्रकारों को कृतिकारों के अधिकारों के प्रति पूरी सावधानी बरतनी चाहिए और कोई ऐसा प्रकाशन नहीं करना चाहिए जिसे कृति-स्वाम्य का अतिक्रमण कहा जा सके। कृति-स्वाम्य बौद्धिक संपत्ति (intellectual property) है और इसके विषय में पत्र और पत्रकारों के सचेत रहने की अपेक्षा है।

विज्ञापनों के लिए भी मुद्रक, प्रकाशक और संपादक की जिम्मेवारी रहती है और यदि विज्ञापन अवैध हों, आपत्तिजनक हों, अश्लील हों अथवा अन्यथा अप्रकाश्य हों तो उन्हें प्रकाशित करने के लिए पत्र और पत्रकार दंडनीय हो सकता है। पत्रकारिता के स्तर ऊंचा उठाने के पाठकों में सुरुचि और परिष्कार प्रसारित करने के लिए भी यह आवश्यक है कि अश्लील, अवैध, अनुचित और आपत्तिजनक विज्ञापनों को किसी भी पत्र में प्रश्रय न दिया जाय।

पत्रकार समाज का एक सजग सदस्य है। पत्रकारिता की व्यावसायिक विशेषताओं और व्यापक प्रभाव के कारण पत्रकारों का सामाजिक उत्तरदायित्व अत्यंत महत्वपूर्ण है। हमारे अधिकांश कानून सामाजिक उत्तरदायित्व के मूल सिद्धांतों के ही परिचायक है। किंतु व्यवहार में पत्रों और पत्रकारों के लिए अधिकांशत: प्रश्न केवल कानूनी आदेशों और प्रतिबंधों का ही नहीं है; अपेक्षा उन आदेशों और प्रतिबंधों की तह तक पहुंच कर गौरवपूर्ण आचरण की परंपरा में प्राण-प्रतिष्ठा करने की है। कानून तो केवल मानक और मर्यादाएं स्थिर करता है। निषेध और प्रतिबंध परिभाषित करता है, अपराध का बोध और सजा की व्यवस्था देता है। किंतु मानवीय सभ्यता और पत्रकारिता की परंपरा के उत्तुंग-उदात्त उन्नयन एवं उत्कर्ष के लिए ये मानक और मर्यादाएं केवल समारंभ का मंगलाचरण हैं, लक्ष्य की ओर उन्मुख दिशा का संकेत हैं, प्रबुद्ध और प्रशस्त अभिव्यक्ति की भूमिका हैं, सामाजिक दायित्व का स्मृतिपत्र हैं। अंततोगत्वा पत्रों और पत्रकारिता की सार्थकता और सिद्धि इन प्रतिबंधों में नहीं, बल्कि उनकी सत्यनिष्ठा में, निर्भीकता में, उत्तरदायी स्वातंत्र्य में और लोकसेवा में है।

समाचार समितियां

प्रारंभ में अपने सीमित साधनों के कारण समाचार-पत्रो को प्रकाशन के लिए समुचित रूप से विविध समाचार उपलब्ध नहीं होते थे। अतएव ऐसे संगठनों की आवश्यकता अनुभव की गयी जो प्रामाणिक समाचारों को उन पत्रों तक, जो उनकी ग्राहक सूची में हों, एकत्र करके यथासमय उपलब्ध करा सकें। इस प्रकार समाचार संकलन, प्रेषण एवं वितरण करने वाले संगठनों को समाचार समितियां अथवा प्रेस एजेंसियां कहा गया। ये समितियां कालांतर में पत्र-पत्रिकाओं के अतिरिक्त रेडियो, टेलीविजन तथा इतर उपभोक्ताओं को भी समाचार प्रेषित करने लगीं। समाचार-पत्रों की तरह ये समितियां स्वयं समाचार नहीं छापतीं, सिर्फ उन्हें एकत्र कर अपने ग्राहकों तक पहुंचाती है। समाचार एकत्र करने के लिए इन समितियों के पास बड़ी संख्या में अपने संवाददाता तथा अन्य कर्मचारी होते है। उनके पास संचार सुविधाएं भी विपुल होती है। इस कारण जिन समाचार-पत्रों के अपने निजी साधन है वे भी समाचार समितियों पर निर्भर रहते है।

विकास के नये आयामों के साथ समाचार समितियों ने अपना कार्यक्षेत्र व्यापक किया। पत्रकारिता ज्यों-ज्यों विकसित होती गयी, इन समितियों ने समाचारों के साथ-साथ फोटो, फीचर, सहायक सामग्री, संदर्भ लेख, कतरन सेवा आदि की दिशा में भी पहल की। कालांतर में समाचार समितियों की उपादेयता साबित हुई। उनके कार्य विस्तार के साथ उन्हें परिभाषित किया जाना भी आवश्यक हो गया। कई परिभाषाएं सामने आयीं। उनकी विविध सेवाओं की सार्थकता के बारे में भी विवाद चले। अतः यूनेस्को (संयुक्त राष्ट्र शिक्षा, सामाजिक एवं सांस्कृतिक संगठन) ने १९५२ में सर्वप्रथम समाचार समिति की एक अधिकृत परिभाषा इन शब्दों में प्रस्तुत की :

"समाचार समिति एक उद्यम है जिसका प्रमुख उद्देश्य—चाहे उसका कानूनी स्वरूप कैसा भी हो—समाचार एवं समाचार विषयक सामग्री एकत्र करना एवं तथ्यों का प्रकटीकरण या प्रस्तुतीकरण है तथा उन्हें समाचार संस्थाओं को, विशेष परिस्थितियों में निजी व्यक्तियों को भी, इस दृष्टि से वितरित करना है कि उन उपभोक्ताओं को

व्यावसायिक, विविध एवं नियमानुकूल स्थितियों में, मूल्य के एवज में, जहां तक संभव हो संपूर्ण एवं निष्पक्ष समाचार सेवा प्राप्त हो सके।"

उद्भव एवं विकास

समाचार समितियों को कुछ देशों में 'वायर' (तार) एजेंसी भी कहा जाता है किंतु वास्तव में तार संचार के विकास के बहुत पहले ही व्यावसायिक व राजनीतिक संस्थाओं के उदय के फलस्वरूप समाचारों के संकलन एवं वितरण के लिए विशेष संगठनों की आवश्यकता अनुभव की गयी।

प्रारंभ में पुलिस, कोर्ट आदि संस्थाओं से संबंधित समाचारों के लिए समाचार-पत्र आपस में सहयोग करते थे। १८२० में एसोसिएशन आफ मार्निंग न्यूजपेपर्स नामक संस्था न्यूयार्क में गठित की गयी। यह संस्था सहकारिता के आधार पर यूरोप से आने वाली रपटों का संकलन करती थी। इंगलैंड में भी एक संस्था कायम हुई। उसके माध्यम से समाचार-पत्रों को संसद् की कार्यवाही की रिपोर्ट सुलभ होने लगी। कहते हैं उन रपटों मे उबा देने वाली एकरूपता होती थी।

आधुनिक समाचार एजेंसी के जनक होने का श्रेय एक फ्रांसीसी युवक चार्ल्स आवास को प्राप्त है। आवास ने यूरोपीय देशों की अनेक राजधानियों का दौरा करके वहां के संवाददाताओं की सेवाएं प्राप्त की व फ्रांस मे १८२५ में एक न्यूज ब्यूरो कायम किया। समाचार-पत्रों ने उनकी सेवाएं लेने से इंकार किया किंतु वे व्यापारियों एवं कूटनीतिज्ञों को अपना ग्राहक बनाने मे सफल हुए। उन दिनों के समाचार-पत्र समाचारों के स्थान पर सिद्धांतों एवं शास्त्रीय विवादो के प्रसारक थे। साधारण जनता तक उनकी पहुंच नहीं थी।

१८३६ मे फ्रांस मे 'सस्ते प्रेस' के आगमन के साथ ही पत्रकारिता के क्षेत्र में क्रांति आ गयी। जो समाचार-पत्र आवास के न्यूज ब्यूरो की सेवा लेने से दस वर्ष पूर्व इंकार कर चुके थे वे ही जनता की समाचार जानने की इच्छा-पूर्ति के लिए आवास के पास दौड़े। १८५५ में ब्रिटेन मे स्टांप ड्यूटी समाप्त किये जाने के बाद पत्रों का प्रसार तेजी से बढ़ा और प्रतियोगिता मे डटे रहने के लिए उन्हे अधिकाधिक समाचारों की आवश्यकता पड़ने लगी।

आवास ने समाचारों के संग्रह एवं वितरण के लिए डाक के अतिरिक्त विशेष संवाददाताओं का भी प्रबंध किया। यूरोप के विभिन्न स्थानों से प्राप्त समाचारों को पेरिस ब्यूरो में अनूदित एवं संपादित किया जाता था। बाद में वे समाचार-पत्रों को पहुंचाये जाते थे। १८३७ में तार प्रणाली (सीमा फोर) सफलतापूर्वक प्रारंभ हुई। आवास ने उसका भी उपयोग किया।

समाचार प्रेषण के लिए आवास ने १८४० मे एक अभिनव प्रयोग किया। उसने सर्वप्रथम पेरिस, लंदन और ब्रूसेल्स के बीच कबूतरों द्वारा समाचारों का आदान-प्रदान प्रारंभ किया। बाद में यह व्यवस्था यूरोप के कुछ अन्य शहरों में भी स्थापित की गयी। कबूतरों के इस आश्चर्यजनक प्रयोग मे 'आवास एजेंसी' का नाम भी तेजी के साथ चारों ओर चमक उठा।

आवास की सफलता से प्रेरित होकर अन्य देश भी अपनी समाचार समिति की आवश्यकता महसूस करने लगे। आवास के ही एक कर्मचारी बर्नार्ड वोल्फ ने १८४९ में 'वोल्फ एजेंसी' के नाम से समाचार सेवा प्रारंभ की। १८४८ में वोल्फ ने बर्लिन से 'नेशनल जीतुंग' नामक पत्र प्रारंभ किया था। इस पर होने वाले व्यय को कम करने के लिए उसने अन्य प्रकाशकों एवं व्यावसायिक संस्थानों के साथ समझौता करके इस समाचार एजेंसी की स्थापना की थी। प्रारंभ में यह एजेंसी केवल स्टाक एक्सचेंज के भाव देती थी किंतु १८५५ से यह साधारण समाचार सेवा उपलब्ध कराने लगी।

आवास एजेंसी में ही प्रशिक्षित एक दूसरे जर्मन युवक जूलियस रायटर ने व्यापारिक समाचारों के लिए लंदन में एक आफिस खोला। रायटर ने समाचार एकत्र करने के लिए तार-व्यवस्था एवं रेल प्रणाली का पूरा उपयोग किया। प्रारंभ में लंदन के समाचार-पत्रों ने रायटर की उपेक्षा की किंतु १८५८ तक लंदन के बहुसंख्यक समाचार-पत्र इसके ग्राहक बन गये।

यूरोप में समाचार समितियों के जन्म एवं विकास से अमेरिका भी अछूता नहीं रहा। न्यूयार्क के कुछ समाचार-पत्रों ने १८४८ में 'हार्बर न्यूज एसोसिएशन' के नाम से एक संस्था कायम की। 'हार्बर न्यूज एसोसिएशन' ने अपनी नौकाएं रख रखी थीं जो विभिन्न देशों से आने वाले जहाजों तक पहुंचतीं और उन पर से यूरोप व अन्य देशों के समाचार लेकर तट पर आती थीं। सदस्य पत्रों को इन समाचारों का त्वरित वितरण किया जाता। न्यूयार्क में १८५० में 'जनरल न्यूज एसोसिएशन' के नाम से एक तार समाचार एजेंसी की भी स्थापना हुई। १८५६ में इन दोनों एजेंसियों को मिलाकर 'नेशनल न्यूयार्क एसोसिएटेड प्रेस' का जन्म हुआ।

यूरोप की तीन प्रमुख समितियों 'आवास', 'वोल्फ' व 'रायटर' ने अपने कार्य का विस्तार अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर करना प्रारंभ किया। ज्यों-ज्यों इन तीनों समाचार समितियों की सेवाएं उपयोगी होने लगीं त्यों-त्यों विभिन्न देशों में राष्ट्रीय समाचार समितियां गठित होती गयीं। प्रारंभिक राष्ट्रीय समाचार समितियों में 'टेलिग्राफिका स्टेफनी इटली' (१८५३ से १९४५) 'वेस्टर्न एसोसिएटेड प्रेस' अमेरिका (१८५६-१८९२) एवं 'प्रेस एसोसिएशन इंगलैंड' (१८६८ से अभी तक) प्रमुख समझी गयीं। राष्ट्रीय समितियों ने अंतर्राष्ट्रीय समाचार एजेंसियों से समाचारों का आदान-प्रदान प्रारंभ किया।

समाचारों के लिए प्रसार-माध्यमों की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने में अंतर्राष्ट्रीय एजेंसियों को कठिनाई होने लगी। न तो वे पूरे समाचार एकत्रित कर पाती थीं और न ही अपने बढ़ते हुए व्यय-भार को वहन करने में समर्थ हो पा रही थीं। उन्हें आपसी सहयोग के लिए बाध्य होना पड़ा। यूरोप की तीनों एजेंसियों 'आवास', 'रायटर' व 'वोल्फ' ने १८६५ में समाचारों के आपसी आदान-प्रदान के लिए समझौते किये। बाद में १८७२ में अमेरिका का 'नेशनल न्यूयार्क एसोसिएटेड प्रेस' भी इस समझौते में शामिल हो गया।

'एजेंसी सहयोग' की इस नव-स्थापित प्रणाली के अंतर्गत इन चारों समाचार

समितियों ने सारे विश्व को चार क्षेत्रों मे बाट लिया। प्रत्येक समाचार समिति को अपने-अपने क्षेत्र में समाचारों के संकलन एवं वितरण का एकाधिकार प्राप्त था। 'आवास' का क्षेत्र फ्रांस, इटली, स्पेन, पुर्तगाल, स्विट्जरलैंड तथा मध्य एवं दक्षिणी अमेरिका था। 'रायटर' का क्षेत्र ब्रिटिश साम्राज्य, टर्की व सुदूर पूर्व (जिसमें रायटर व आवास का सहयोग था) था। 'वोल्फ' का क्षेत्र जर्मनी, आस्ट्रिया, नीदरलैंड, स्कैंडिनेविया, रूस व बालकान था। 'न्यूयार्क एसोसिएटेड प्रेस' का क्षेत्र संयुक्त राज्य अमेरिका था। चारों समितियों का समझौता १९३४ तक ही चल पाया। उन दिनों अमेरिका में 'युनाइटेड प्रेस' (स्थापित १९०७) ने अपने ही साधनों से विश्व समाचारों का संकलन व वितरण प्रारंभ कर दिया था। 'एसोसिएटेड प्रेस' ने भी विश्व के विभिन्न स्थानों पर सीधे समाचार देना प्रारंभ करके समझौते को भंग कर दिया।

प्रथम विश्वयुद्ध में जर्मनी की पराजय के बाद 'वोल्फ' का अंतर्राष्ट्रीय स्वरूप विलुप्त हो गया। जर्मनी की नाजी पार्टी के समाचार संगठन डी० एन० बी० ने १९३३ में अवशिष्ट 'वोल्फ' को आत्मसात कर लिया। विविध विवादों और आपसी तनावों का अंत १९३४ के बिखराव में हुआ। समितियों के कार्य के लिए नये युग का प्रारंभ हुआ। प्रत्येक समाचार समिति ने स्वतन्त्र रूप से स्वयं को गठित किया।

सरकारी समाचार समितियां

सरकार के नियंत्रण में प्रथम समाचार समिति 'ट्रांस ओसियन' की स्थापना १९१५ में जर्मनी में हुई। इसका प्रमुख कार्य युद्ध का प्रचार करना था। सोवियत संघ ने १९१८ में एक समाचार समिति की स्थापना की, जो कि कम्युनिस्ट पार्टी व संघीय सरकार की प्रवक्ता थी। १९२५ में इसी समिति को ही 'तास' में परिवर्तित किया गया जो सोवियत गणतंत्रों के लिए अंतर्राष्ट्रीय समाचार समिति बन गयी।

पूर्वी यूरोप के देशों में साम्यवाद व सोवियत संघ के प्रभाव की वृद्धि के साथ-साथ वहां की सरकारों ने पश्चिमी समितियों के प्रभाव से मुक्त अपनी सरकारी राष्ट्रीय समाचार समितियां कायम कीं जो कि अंतर्राष्ट्रीय समाचारों के लिए 'तास' से संबद्ध थी।

पूर्वी यूरोप के देशों में पोलैंड की 'पी० ए० पी०', हंगरी की 'एम० टी० आय०' व रूमानिया की 'एगर प्रेस एजेंसी' अधिक विकसित हो सकी, किंतु वे 'तास' की छाया में ही रहीं। साम्यवादी देशों में चीनी गणतंत्र की 'नवचीन समाचार एजेंसी' विशेष स्थान बना सकी। 'तास' से संबंध रखते हुए भी 'नवचीन एजेंसी' अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अपना विशेष प्रभाव नहीं बना सकी।

साम्यवादी देशों की समाचार समितियां सीधे मंत्रिमंडल के प्रति उत्तरदायी होती हैं। इनकी नियुक्तियां एवं प्रबंध भी प्रायः सरकार के प्रतिनिधि सूचना मंत्री के हाथ में रहता है।

राष्ट्रीय समाचार समितियां : द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् से ही लगभग सभी देशों ने अपनी-अपनी राष्ट्रीय समाचार समितियों का गठन किया। उनकी संख्या

इस समय सौ से अधिक है।

राष्ट्रीय समाचार समितियां एक या एक से अधिक अंतर्राष्ट्रीय समितियों पर निर्भर करती हैं। वे इन समितियों से समाचार क्रय करती हैं। एवज में अंतर्राष्ट्रीय समाचार समितियां उनसे राष्ट्रीय समाचार लेती हैं।

दो राष्ट्रीय समाचार समितियों के बीच में भी समझौते के अनुसार समाचारों का आदान-प्रदान होता है। कुछ राष्ट्रीय समितियां आंशिक रूप से अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी कार्य करने लगी हैं। संयुक्त अरब गणराज्य के लिए एक अरब न्यूज एजेंसी कार्यरत है जो कि छह देशों में समाचारों का संकलन व वितरण करती हैं।

डेनमार्क का 'रिट्ज ब्यूरो' (राष्ट्रीय समाचार-पत्र सहकार) व इटली की 'अंसा' (एजेंसी नेशनल स्टांप एसोसिएशन) ने कुछ मात्रा में अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में कार्य बढ़ाया है पर अधिकतर ये 'रायटर' व 'एसोसिएटेड फ्रांस प्रेस' पर निर्भर करती हैं।

जर्मन संघीय गणतंत्र में १६४६ से 'डूटशे प्रेस एजेंटूर' (डी० पी० ए०) प्रारंभ हुई जो कि आज यूरोप की एक प्रमुख समाचार समिति बन चुकी है। इसी तरह कनाडा में 'कनाडियन प्रेस' नामक सहकारी समाचार समिति है।

विश्व समाचार समितियां : जैसा कि बताया गया है—कई समाचार समितियों ने अपना कार्यक्षेत्र एक से अधिक देशों में फैला लिया है, किंतु व्यावहारिक रूप से इन्हें अभी अंतर्राष्ट्रीय अथवा विश्व समाचार एजेंसी नहीं माना गया है।

बीसवीं शताब्दी में संचार सुविधाओं एवं समाचार प्रसार माध्यमों का बड़ी तेजी से विकास हुआ। बड़ी एजेंसियों के बीच विश्व के किसी भी भाग के समाचार संकलित कर अन्य भागों में तेजी से पहुंचाने की होड़ लग गयी। आज विश्व की कोई भी समाचार एजेंसी ऐसी नहीं है जिसके समाचार प्रत्येक देश में न पहुंचते हों।

इस तरह की समाचार समितियों के पास (१) वित्तीय साधन, (२) कुशल संवाददाता, एवं (३) सुसंगठित प्रेषण सुविधाएं होना आवश्यक है। जिस समाचार समिति के पास टेली-संचार सुविधाओं का विस्तृत जाल हो, वही इस भारी कार्य को सुचारु रूप से चला भी सकती है।

'एसोसिएटेड प्रेस' का दावा है कि वह एक मिनट से कम में ८० देशों को समाचार-बुलेटिन प्रेषित कर सकती हैं।

रायटर का कहना है कि वह विश्व के प्रत्येक देश की समाचार समितियों से संबद्ध है। अपने विस्तार के संबंध में इसी प्रकार के दावे 'तास', अमेरिका की 'युनाइटेड प्रेस' तथा अन्य एजेंसियों के भी रहे हैं।

यूनेस्को ने १६५२ में विश्व भर में समाचार समितियों के ढांचे व कार्य का सर्वेक्षण कराया था। सर्वेक्षण के अनुसार छह समितियों को अंतर्राष्ट्रीय समाचार समितियां होने का गौरव प्राप्त हुआ। इनके नाम हैं—ए० पी० आई० (अमेरिका), आई० एन० एस० (अमेरिका), यू० पी० (अमेरिका), रायटर (ब्रिटेन), ए० एफ० पी० (फ्रांस) तथा तास (रूस)।

इन समाचार समितियों के पास विश्व के नवीनतम संचार साधन हैं। रेडियो एवं टेलीप्रिंटर का सफलतम प्रयोग इन्होंने किया। रेडियो द्वारा समाचार फोटो के

प्रेषण की व्यवस्थाएं इनके पास है। अपने विकसित साधनों द्वारा किसी भी समाचार फोटो को आठ मिनट में विश्व के किसी भी भाग में इन समितियों द्वारा भेजा जा सकता है।

संचार साधनों के विकास की गति में नवीनतम उपलब्धि टेली-टाइप-सेटर सर्विस की है। 'ए० पी०' ने १९५१ में इसे प्रारंभ किया। इस प्रणाली में एजेंसी द्वारा प्रेषित समाचार-पत्र कार्यालय में टेलीप्रिंटर पर छिद्रित फीते के रूप में (पंचड् टेप) प्राप्त किये जाते हैं। यह फीता सीधा टेली-टाइप मशीनों पर पहुंचता है और स्वयमेव ही टाइप होता जाता है। इसी प्रकार की व्यवस्था 'यू० पी० आई०' की भी है।

समाचार-प्रेषण के कार्य में उपग्रह संचार व्यवस्था के उपयोग के प्रश्न पर भी विश्व की समाचार समितियां विचार कर रही हैं।

एजेंसी फ्रांस प्रेस (ए० एफ० पी०)—यह 'आवास एजेंसी' की उत्तराधिकारी है। १९४० में फ्रांस पर जर्मन अधिकार के समय इस एजेंसी को समाप्त कर दिया गया था व उसके मुख्यालय पर कब्जा कर लिया गया था।

'आवास' के कार्यकर्ताओं ने उस समय लंदन तथा अल्जीरिया में स्वतंत्र रूप से दो समाचार समितियों का गठन किया। १९४४ में पेरिस मुक्ति के बाद वहा के समाचार-पत्र समूह व दोनों फ्रांसीसी समितियां ने मिलकर 'एजेंसी फ्रांस प्रेस' का गठन किया। फ्रांस सरकार ने 'आवास' की संपत्ति नयी एजेंसी को सौंप दी।

'ए० एफ० पी०' अभी तक 'आवास' जैसा विस्तार प्राप्त नहीं कर सकी, फिर भी इसने आवास की विश्व व्यापी सेवाओं के उल्लेखनीय अंशों का पुनर्गठन कर लिया है। इस सदी के सातवें दशक में 'आवास' के ७५ समाचार ब्यूरो थे, जिनमें से १५ देश में तथा ६० विदेशों में थे। 'ए० एफ० पी०' के कर्मचारियों की संख्या दो हजार से अधिक है तथा यह ५० राष्ट्रों के २५०० ग्राहकों को अपनी सेवा प्रदान करती है। इसके अंतर्राष्ट्रीय संबंध 'ए० पी०' 'रायटर' व 'तास' के साथ हैं।

फ्रांस में यह लीज्ड वायर पर कार्य करती है तथा विदेशी ग्राहकों को रेडियो दूरमुद्रकों पर सेवा देती है। 'ए० एफ० पी०' की फोटो सर्विस भी है।

सर्वप्रथम 'आवास' ने ही व्यापारिक, वित्तीय तथा राजनीतिक समाचारों की रिपोर्ट देना प्रारंभ किया था। 'आवास' ने ही पहले सिंडिकेट लेख सेवा प्रारंभ की थी। 'ए० एफ० पी०' इन सेवाओं को यथावत रखे हुए है। 'एसोसिएटेड प्रेस' (ए०पी०) आज विश्व की सब से बड़ी सहकारी समाचार समिति है। १८४८ में न्यूयार्क के छह दैनिक समाचार-पत्रों ने इसका गठन किया था। १८५६ में इसका नाम 'न्यूयार्क एसोसिएटेड प्रेस' हो गया व इसने क्षेत्रीय समाचार-पत्रों को सेवा देना प्रारंभ किया। समाचार-प्रेषण के खर्चों को कम करने के लिए अमेरिका में 'वेस्टर्न ए० पी०', 'सदर्न ए० पी०' व 'न्यू इंगलैंड ए० पी०' की स्थापना हुई। १८९२ मे इन सब के विलय से नये 'एसोसिएटेड प्रेस' का गठन हुआ। इसने 'रायटर', 'आवास' व 'वोल्फ' के साथ अपने संबंध जोड़े। १८९० तक 'ए० पी०' ७०० समाचार-पत्रों को सेवा दे रहा था।

'एसोसिएटेड प्रेस' ने अपने ग्राहक समाचार-पत्रों पर अन्य एजेंसियों की सेवा न लेने का प्रतिबंध लगा रखा था। इसका मुख्यालय इलिनाय में था। वहा एकाधि-

कार के विरोध में इसके विरुद्ध मुकदमा चला तो इसे अपना मुख्यालय न्यूयार्क स्थानांतरित करना पड़ा जहां के कानून के अनुसार इसकी सदस्यता पर नियंत्रण संभव था। मगर यह नियंत्रण १९४५ में अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के बाद ही समाप्त हो सका।

ए० पी० सहकारी निगम है तथा समाचार-पत्रों व रेडियो केंद्रों की सदस्यता से नियंत्रित है। 'ए० पी०' सरकार से किसी भी प्रकार का अनुदान अथवा सहायता नहीं लेती। इसने 'वायस आफ अमेरिका' के लिए भी अपनी समाचार सेवाएं देने से मना कर दिया ताकि उसके समाचारों की मूलभूत प्रामाणिकता पर धब्बा न लगे।

'ए० पी०' का वार्षिक बजट तीन करोड़ पचास लाख डालर है जो विश्व में सर्वाधिक है। इसके स्टाफ के सदस्यों की संख्या २३०० है। इसके अतिरिक्त इसने एक लाख संवाददाताओं से स्थानीय व क्षेत्रीय समाचार प्राप्त करने की व्यवस्था कर रखी है। अमेरिका में इसके १०० कार्यालय हैं। ५० कार्यालय विदेशों में हैं। नौ देशों की समाचार एजेंसियों द्वारा इसके समाचारों का उपयोग ८० राष्ट्रों के ७२०० प्रसार माध्यमों द्वारा किया जाता है।

'ए० पी०' के पास ४ लाख मील तार लीज पर है जिसके द्वारा यह अमेरिका के १७६० समाचार-पत्रों व २००० रेडियो व टेलीविजन स्टेशनों को समाचार देती है। १९५२ में इसने रेडियो-टेलीप्रिंटर सेवा प्रारंभ की। इसके पास अमेरिका, एशिया अफ्रीका व यूरोप मे शक्तिशाली लघु तरंग (शार्ट वेव) रिसीवर हैं। इसके दूरमुद्रकों की संख्या पांच हजार से अधिक है।

'ए० पी०' ने १९१३ से प्रसंग-लेख सेवा भी उपलब्ध की है। १९३५ में इसने टेलीग्राफ तार पर विद्युत स्पंदनो के जरिये समाचार-चित्र भेजना प्रारंभ किया। आज ५०० समाचार-पत्र इसकी तार-चित्र सेवा ले रहे हैं।

युनाइटेड प्रेस इंटरनेशनल : यह विश्व की सब से बड़ी स्वतंत्र समाचार समिति है। अमेरिका में १९०७ में 'इंटरनेशनल न्यूज सर्विस' का गठन हुआ था। १९५८ को इन दोनों एजेंसियों का विलय होकर 'यू० पी० आई०' का गठन हुआ।

जिस समय 'रायटर', 'आवास' और 'वोलफ' ने 'ए० पी०' से मिलकर क्षेत्रीय सेवा के आधार पर विश्व समाचार जगत में एकाधिकार किया, उस समय 'युनाइटेड प्रेस' ने अपने कार्य द्वारा यह सिद्ध कर दिया कि कोई भी समाचार समिति स्वतंत्र रूप से विश्व समाचारों को संकलित कर सकती है और विश्व के समाचार-पत्रों को अपनी सेवा दे सकती है। इसके विकास की कल्पना इसी से की जा सकती है कि १९०७ में इसके ३६९ ग्राहक थे। १९२९ मे इसने ४५ देशों के १९७० समाचार-पत्रों को सीधी सेवा देने में सफलता प्राप्त की। यूरोपीय समाचार-पत्रों को १९२१ से ही 'यू० पी०' की सीधी सेवाएं प्राप्त हो चुकी थी।

'आई० एन० एस०' १९०९ मे न्यूयार्क में प्रारंभ हुई और १९४५ तक इसका भारी विस्तार हो गया। 'आई० एन० एस०' ने १९५१ मे ही 'टेली-टाइप-सेटर' न्यूज सर्किट्स का प्रारंभ किया।

नयी एजेंसी 'यू० पी० आई०' के ग्राहकों, समाचार-पत्रों व रेडियो-स्टेशनों की संख्या ७५०० हैं। इनमें से ५४०० ग्राहक ७१ देशों में हैं। इसके २११ समाचार व चित्र ब्यूरो में से, ६२ विदेशों में हैं। कर्मचारियों की संख्या ६० हजार है जिनमें से दो हजार अमेरिका से बाहर ८५ राष्ट्रों में कार्यरत हैं।

'यू० पी० आई०' की सहायक एजेंसियां—'युनाइटेड फीचर सिंडिकेट', 'ब्रिटिश युनाइटेड प्रेस' व 'ओशन प्रेस' हैं। 'यू० पी० आई०' एक चार्टर्ड प्रेस निगम है, वह अपने वित्तीय वक्तव्य प्रकाशित नहीं करती।

रायटर : 'आवास' में प्रशिक्षित जर्मन युवक जूलियस ने १८४९ में कबूतरों द्वारा ब्रुसेल्स से स्टाक एक्सचेंज के भाव भेजने प्रारंभ किये थे। १८५१ में लंदन-पेरिस के बीच 'केबल' सेवा प्रारंभ हो जाने पर उसने लंदन से व्यावसायिक समाचार सेवा प्रारंभ की।

'रायटर' समाचार संचार के लिए जहां भी कार मेवा हो तो उसका उपयोग करता, अन्यथा कबूतरों अथवा विशेष दूतों द्वारा समाचार-प्रेषण की व्यवस्था करता था। १८९९ में रायटर की मृत्यु हो गयी किंतु १९२५ तक 'रायटर' प्राइवेट कंपनी के रूप में चली। बाद में समाचार-पत्र इसके शेयर होल्डर बन गये। १९४१ में 'ब्रिटिश प्रेस एसोसिएशन' ने इसे अपने पूर्ण नियंत्रण में ले लिया। बाद में आधे शेयर 'न्यूजपेपर्स प्रोप्रायटर्स एसोसिएशन' को बेच दिये गये। इस प्रकार से यह ब्रिटिश प्रेस की सामूहिक संपत्ति के रूप में एक ट्रस्ट बन गया। १९४७ में आस्ट्रेलियन 'एसोसिएटेड प्रेस' व 'न्यूजीलेंड प्रेस एसोसिएशन' भी 'रायटर ट्रस्ट' के सदस्य बन गये। १९४९ में 'प्रेस ट्रस्ट आफ इंडिया' भी इस समूह में शामिल हो गया।

'रायटर ट्रस्ट' का उद्देश्य समाचार एजेंसी को सरकारी नियंत्रण से मुक्त रखने की गारंटी देना व सेवा की निष्पक्षता बनाये रखना है। 'रायटर' लाभ रहित संगठन है। इसकी आय समाचार-पत्रों, संवाद एजेंसियों, रेडियो तथा अन्य ग्राहकों से होती है। ब्रिटेन का एक समाचार-पत्र 'कम्युनिस्ट डेली वर्कर' ट्रस्ट का सदस्य नहीं है, किंतु समाचार सेवा क्रय करता है।

'रायटर' के स्टाफ में पूरे समय कार्य करने वाले ५०० संवाददाता हैं। इनके अतिरिक्त चार हजार विशेष संवाददाताओं से भी यह समाचार प्राप्त करता है। विदेशों में 'रायटर' के ५० ब्यूरो हैं, तथा ग्राहकों की संख्या तीन हजार है। इसकी सेवा ६५०० समाचार-पत्रों व सैकड़ों रेडियो एवं दूरदर्शन स्टेशनों को पहुंचती है। अमेरिका के ४५ समाचार-पत्र व अनेक रेडियो स्टेशन इसकी सीधी सेवा लेते हैं। इंगलैंड में यह अपनी प्रांतीय सेवा 'प्रेस एसोसिएशन' से प्राप्त करता है। 'प्रेस एसोसिएशन' की युनाइटेड किंग्डम रिपोर्ट को यह 'एसोसिएटेड प्रेस' के अमेरिकी समाचारों के बदले में आदान-प्रदान करता है। इसके साधन लंदन के सदस्य समाचार-पत्रों से व अपने आस्ट्रेलियाई हिस्सेदारों से प्राप्त होते हैं।

यूरोपीय देशों की राजधानियों को 'रायटर' की सेवा के लिए लीज पर प्राप्त टेलीप्रिंटर उपलब्ध हैं जबकि न्यूयार्क को यह सेवा रेडियो-दूरमुद्रक द्वारा पहुंचायी जाती है।

तास (तेलिग्राफोनी एजेन्त्वो सोवियतस्कवो सयूजा) : यह सोवियत संघ की केन्द्रीय सूचना सेवा है तथा 'मंत्रि-परिषद के प्रति उत्तरदायी है। इसकी स्थापना क्रांति के बाद १९१८ में 'रोस्ता' के नाम से हुई थी। क्रांति से पूर्व रूस में 'पीटर्सबर्ग टेलिग्राफन एजेंटूर' कार्य कर रही थी। 'रोस्ता' का उद्देश्य सरकारी घोषणाएं और संवाद भेजने के साथ-साथ बोलशेविक नियंत्रित देशों में प्रचार सामग्री भेजना था।

१० जुलाई १९२५ को 'रोस्ता' का स्थान 'तास' ने ले लिया। सोवियत संघ के प्रत्येक गणतंत्र में स्थानीय समाचार समितियां गठित की गयीं जो कि तास की सहायक समितियां हैं। इन एजेंसियों को देश के अन्य गणतंत्रों व विदेशो के समाचार तथा संघीय सरकार की सूचनाएं 'तास' के माध्यम से ही प्राप्त होती हैं। सभी साम्यवादी देशों की राष्ट्रीय समाचार समितियों के लिए भी 'तास' ही अंतर्राष्ट्रीय समाचारों का प्रमुख साधन है। सोवियत संघ के लिए तो 'तास' समाचार वितरण करने वाली एकाधिकारी संस्था है। 'प्रावदा' के संपादकीय व समाचार संक्षेपणों का प्रसारण भी इसी के द्वारा होता है।

'तास' एक बहुभाषीय समाचार संस्था है। विदेशी ग्राहकों को इसकी सेवाएं रूसी, अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन, स्पेनिश, अरेबिक आदि भाषाओं में पहुंचायी जाती हैं। इसके ग्राहकों की संख्या ५५०० है, जिसमें पूर्वी यूरोप के देशों, अफगानिस्तान, ईरान व जापान की समाचार एजेंसियां भी सम्मिलित हैं। यह अपनी सेवाएं तार, रेडियो, रेडियो-टेली-टाइप पर देती है। तास के समाचार विदेशों में सोवियत दूतावासों द्वारा भी वितरित होते हैं।

तास ने 'ए० पी०', 'यू० पी०' तथा अन्य कुछ एजेंसियों से समाचार आदान-प्रदान के समझौते किये हुए हैं। इसने गैर-साम्यवादी देशों में भी अपने संवाददाता रखे हैं। अमेरिका के न्यूयार्क में इसका एक ब्यूरो है। वाशिंगटन में एक सब-ब्यूरो भी है।

भारत में विश्व समाचार समितियों की सेवाएं—फ्रांसीसी एजेंसी (ए० एफ० पी०) व ब्रिटिश एजेंसी 'रायटर' के समाचार भारत को 'प्रेस ट्रस्ट आफ इंडिया' के माध्यम से प्राप्त होते हैं। समझौते के अनुसार ये दोनों एजेंसियां भारत की किसी अन्य एजेंसी से समझौता नहीं कर सकतीं।

'एसोसिएटेड प्रेस' के विश्व समाचार भारतीय समाचार-पत्रों में 'युनाइटेड न्यूज आफ इंडिया' के माध्यम से पहुंचते हैं। 'युनाइटेड न्यूज इंटरनेशनल' का भारत में किसी भी समाचार एजेंसी से समझौता नहीं है, किंतु 'यू० पी० आई०' की भारत में रेडियो फोटो सेवा उसके नयी दिल्ली स्थित ब्यूरो के माध्यम से समाचार-पत्र प्राप्त कर सकते है।

'तास' का किसी भी भारतीय एजेंसी से संबंध नहीं है। 'तास' के समाचार सोवियत दूतावास द्वारा समाचार समितियों तथा समाचार-पत्र कार्यालयों में पहुंचाये जाते हैं।

भारत में विदेशी संवाद-समितियां

पांचों विश्व समाचार एजेंसियों के न्यूज ब्यूरो भारत में नयी दिल्ली में स्थित हैं। इनके अतिरिक्त अन्य कुछ विदेशी न्यूज एजेंसियों के न्यूज ब्यूरो अथवा संवाददाता भी भारत में हैं। जिनका ब्योरा इस प्रकार है :

ए० डी० एन० : यह जर्मन डेमोक्रेटिक रिपब्लिक की राजकीय समाचार एजेंसी है जिसकी स्थापना बर्लिन में १९४६ में हुई। विदेशी समाचारों का इसका मुख्य स्रोत 'तास' है।

ए० एन० एस० ए० : १८५३ में इटली में स्थापित एजेंसी 'टेलिग्राफिका स्टेफनी' की समाप्ति के पश्चात १९४५ में रोम के समाचार-पत्रों ने इसकी स्थापना की। यह सरकारी संस्था है। 'अंसा' के विदेशी ब्यूरो धीरे-धीरे बढ़ते जा रहे हैं। विश्व के प्रमुख देशों की राजधानियों में इसने अपने संवाददाता नियुक्त किये हैं। साथ ही इसने अनेक देशों की राष्ट्रीय समितियों से समाचारों के आदान-प्रदान के समझौते किये हैं।

डी० पी० ए० (डूट्शे प्रेस एजेंटूर) : पश्चिमी जर्मनी में १९४९ में स्थापित यह एजेंसी विश्व की प्रमुख समाचार एजेंसियों में है। इसकी प्रसंग लेख-सेवा, शोध सेवा, सूचना सेवा, आदि विशेष महत्वपूर्ण समझी जाती हैं। यह फोटो सेवा भी देती है।

जी जी प्रेस (जापान) : लिमिटेड कंपनी के रूप में १९४५ में स्थापित इसमें सारे शेयर्स इसी के कर्मचारियों के है। यह सरकार से किसी भी प्रकार का अनुदान नहीं लेती। 'जी जी प्रेस' अमेरिका, यूरोप और एशिया के देशों को हवाई डाक से समाचार सेवा भी प्रदान करती है।

क्योदो न्यूज सर्विस (जापान) : यह भी 'जी जी प्रेस' की न्यूज एजेंसियों के पुनर्गठन के रूप में अस्तित्व में आयी। 'क्योदो' समाचार सेवा जापान के समाचार-पत्रों की सहकारी समाचार एजेंसी है। 'क्योदो' ने १९५१ में जापान 'न्यूज लेटर' नाम से जापानी समाचारों का साप्ताहिक डाइजेस्ट अंग्रेजी मे प्रारंभ किया, जो कि सूचना आदान-प्रदान के आधार पर समाचार-पत्रों एवं समाचार एजेंसियों को भेजा जाता है।

पी० ए० पी० (पोलिश एजेंसी प्रेस) : इसकी स्थापना १९४३ में द्वितीय विश्वयुद्ध के समय हुई। यह पोलैंड की सरकारी समाचार समिति है। विश्व की बड़ी राजधानियों में इसके स्थायी संवाददाता हैं। 'तास' के अतिरिक्त अन्य कई एजेंसियों में भी इसके समाचारों का आदान-प्रदान चलता है।

तांजुग (युगोस्लाविया) : इसकी स्थापना १९४३ में हुई। युगोस्लाविया के समाचार-पत्रों, रेडियो स्टेशनों तथा अन्य सार्वजनिक व निजी संस्थानों से प्राप्त आमदनियों द्वारा यह अपना वित्तीय प्रबंध करती है। इसे 'यू० पी०' व 'ए० एफ० पी०' से विदेशी सेवा भी प्राप्त है।

नोवोस्ती : यह सोवियत संघ की मुख्य भूमि की सरकारी समाचार समिति है एवं 'तास' की सहायक है।

हांगकांग की 'एकानामिक न्यूज सर्विस' व पश्चिमी जर्मनी की 'वी० डब्ल्यू० डी०' समाचार समितियां आर्थिक क्षेत्र के समाचारों के अतिरिक्त आर्थिक मामलों की समीक्षाएं भी देती हैं।

भारत में समाचार समितियों का विकास

भारत में प्रथम समाचार एजेंसी का जन्म बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में यहां के चार प्रमुख अंग्रेजी साम्राज्य समर्थक अंग्रेजी दैनिक पत्रों की आपसी स्पर्धा के फलस्वरूप ही हुआ। ये चार प्रमुख समाचार-पत्र थे—'पायनियर', 'स्टेट्समैन', 'इंगलिश मैन' तथा 'इंडियन डेली न्यूज'। 'पायनियर' के श्री 'हैस मैन' की पहुच अंग्रेज अधिकारियों के पास सर्वाधिक थी। समाचार प्राप्त करने की क्षमता भी उनकी ही प्रबल थी। समाचार स्पर्धा में वे अन्य समाचार-पत्रों की अपेक्षा कही अधिक आगे रहते थे। इसी से परेशान होकर 'स्टेट्समैन' के डलास ने आपसी सहयोग किया। इन लोगों को भारत में अनेक देशी-विदेशी पत्रों के प्रतिनिधि के० सी० राय जैसे प्रमुख भारतीय पत्रकार का सहयोग मिला। श्री राय को समाचार सूंघने, सर्वोच्च सूत्रों से उन्हें प्राप्त करने तथा उनके प्रेषण की विशेष दक्षताएं हासिल थीं। इनके बारे मे कहा जाता है कि जो सूचनाएं बड़े-बड़े अंग्रेज प्राप्त नहीं कर पाते थे उनको भी ये सहज ही उपलब्ध कर लेते थे। इस दृष्टि से भारत में समाचार समिति के जन्मदाता श्री के० सी० राय ही हैं।

एसोसिएटेड प्रेस आफ इंडिया

काट्स, बक व डलास ने के० सी० राय के बल पर १६०५ में 'एसोसिएटेड प्रेस आफ इंडिया' की स्थापना की। इस समाचार एजेंसी की स्थापना के साथ-साथ ही एक झगडा भी खड़ा हुआ। हालांकि इन तीनों अंग्रेज संपादकों ने श्री राय के बलबूते पर ही समाचार एजेंसी स्थापित की थी, फिर भी सत्ताधारियों की अपनी वरिष्ठता के मद में राय को एजेंसी के निदेशकों में सम्मिलित करने से इंकार कर दिया। श्री राय असंतुष्ट हो गये और उन्होने 'ए० पी० आई०' से अलग होकर अपना पृथक न्यूज ब्यूरो स्थापित किया। इस न्यूज ब्यूरो के गठन में उन्हें उषानाथ सेन का सहयोग प्राप्त हुआ। 'पायनियर' से प्रतियोगिता करने के लिए समाचार एजेंसी बनाने वाले तीनों अंग्रेज संपादकों के साथ बुरी बीती। 'पायनियर' ने राय के संवाद ब्यूरो से सहयोग करने की पहल की। कोट्स कंपनी ने इससे घबराकर राय के आगे समर्पण किया। उन्होंने राय को समाचार एजेंसी का निदेशक बनाया। राय भी 'ए० पी० आई०' को मजबूत व शक्तिशाली बनाने में जुट गये।

राय की पहल के परिणामस्वरूप भारत सरकार ने भारतीय तार कानून में सुधार किया और रजिस्टर्ड संवाद समितियों को सुविधाएं दीं।

'ए० पी० आई०' ने कलकत्ता, बंबई व मद्रास में अपनी शाखाएं खोलीं। उस समय ग्राहक पत्रों को समाचार उपलब्ध कराने का शुल्क ३५० रुपया प्रति माह रखा। फिर भी यह एजेंसी आर्थिक दृष्टि से सक्षम नहीं बन सकी। धनाभाव से इसे परे-

शानियां होने लगीं। 'रायटर' ने इसकी आर्थिक कठिनाइयों का लाभ उठाया तथा १६१५ में इसका अधिग्रहण कर लिया। 'ए० पी० आई०' 'रायटर' की आश्रिता मात्र बनकर रह गयी। 'रायटर' अंग्रेजी साम्राज्य की प्रमुख एजेंसी थी। चार प्रमुख विश्व एजेंसियों के बीच विश्व के बंटवारे में भारत स्वाभाविक रूप से 'रायटर' के क्षेत्र में ही था। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम प्रारंभ हो चुका था। 'रायटर' तथा 'ए० पी० आई०' ने इस संघर्ष के दौरान साम्राज्यवादियों के समर्थक के रूप में ही कार्य किया। भारत में समाचारों के प्रेषण व भारतीय समाचारों के विदेशों में वितरण दोनों के लिए 'रायटर' व 'ए० पी० आई०' ने एक प्रकार का सरकारी नियंत्रण स्वीकार कर लिया। स्वतंत्रता संग्राम के समाचारों को दबाया गया तथा उन्हें विकृत रूप में रखा गया।

यह नियंत्रण १६३४ तक कठोर रूप से चलता रहा। १६३४ में ही चार विश्व एजेंसियों का समझौता टूटा और 'रायटर' के अतिरिक्त अन्य तीनों विश्व एजेंसियों ने भारत की ओर ध्यान देना प्रारंभ किया।

१६४६ में 'ए० पी० आई०' को भारत में लिमिटेड कंपनी का स्वरूप दे दिया गया। इसके पास पूंजी की कमी थी। किंतु 'रायटर' के साधनों से इसका पृष्ठ-पोषण होता रहा।

इंडियन न्यूज एजेंसी

१६१५ में 'रायटर' द्वारा 'ए० पी० आई०' का अधिग्रहण किये जाने के बाद के० सी० राय की पुन. उपेक्षा कर दी गयी। राय ने इस समय 'इंडियन न्यूज एजेंसी' की स्थापना की। प्रारंभ में यह न्यूज एजेंसी सैनिक व असैनिक अधिकारियों को ६० रुपया प्रतिमाह पर अपना बुलेटिन देती थी। बुलेटिन में अंकित दो पूरे पृष्ठों के समाचार हुआ करते थे। छोटे समाचार-पत्रों को यह बुलेटिन काफी उपयोगी लगा तथा वे भी इसके ग्राहक बनते गये। छोटे समाचार-पत्रों को समाचारों का सार उपलब्ध कराने की राय की प्रणाली अत्यंत उपयोगी सिद्ध हुई। यह समाचार एजेंसी १६४७ तक जारी रही। इसके बंद होने पर छोटे समाचार-पत्रों को बहुत नुकसान हुआ।

फ्री प्रेस एजेंसीज

'ए० पी० आई०' व 'रायटर' के साम्राज्यवाद समर्थक समाचारों से भारतीय पत्रकारों एवं समाचार-पत्रों को काफी चिंता हुई। समाचार-पत्रों को प्रामाणिक भारतीय समाचार देने के उद्देश्य से प्रमुख पत्रकार श्री सदानंद ने तीसरे दशक के प्रारंभ में 'फ्री प्रेस एजेंसी' का गठन किया। इस एजेंसी की विश्वसनीयता से प्रभावित होकर अंग्रेजी तथा अन्य भाषा-भाषीय समाचार-पत्र इसके ग्राहक बनते चले गये। 'ए० पी० आई०' और 'रायटर' दोनों इसके विकास में बाधक हुए। इन्होंने अपने ग्राहक पत्रों पर प्रतिबंध लगा दिया कि वे 'फ्री प्रेस' की सर्विस न लें। विश्व समाचार व शासकीय समाचार लेने के इच्छुक समाचार-पत्रों ने 'फ्री प्रेस' की सेवाएं लेना बंद कर दिया।

सदानंद ने एक प्रयास और किया। उन्होंने 'फ्री प्रेस जर्नल' समाचार-पत्र का प्रकाशन आरंभ किया। इस समाचार-पत्र में 'फ्री प्रेस' एजेंसी के समाचारों के कारण

अन्य समाचार-पत्रों की प्रतियोगिता में कमी अवश्य महसूस हुई। सदानंद का छोटा किंतु महान प्रयास विशाल अंग्रेजी साम्राज्य एवं उसकी हथियार समाचार एजेंसियों के सामने अधिक नहीं टिक सका। 'फ्री प्रेस' की बार-बार सरकार द्वारा जमानतें ली गयीं तथा जब्त की गयीं। आर्थिक कठिनाइयों के कारण सदानंद को एजेंसी बंद करने के लिए विवश होना पड़ा।

यूनाइटेड प्रेस आफ इंडिया

'ए० पी० आई०', 'रायटर' गठबंधन की साम्राज्यवादिता के विरुद्ध दूसरा महान प्रयास कलकत्ता से श्री बी० सेनगुप्ता ने १९३३ में प्रारंभ किया। बी० सेन गुप्ता 'फ्री प्रेस न्यूज एजेंसी' के प्रमुख सूत्रधारों में रह चुके थे। 'फ्री प्रेस' के बंद होने पर उसके उत्तराधिकारी के रूप में ही 'युनाइटेड प्रेस आफ इंडिया' की स्थापना १ सितंबर १९३३ को की गयी। श्री सेनगुप्ता इसके प्रबंध निदेशक व प्रबंध संपादक बने।

भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम के सही समाचारों के प्रसारण में इस समाचार एजेंसी ने उल्लेखनीय भूमिका निभायी। प्रारंभ में इसके केवल दो कार्यालय—कलकत्ता तथा लाहौर में थे। स्वतंत्रता प्राप्ति तक इसके ग्राहक पत्रों की संख्या सौ से अधिक हो गयी थी तथा कार्यालयों की संख्या भी दो दर्जन तक पहुंच गयी थी।

आर्थिक कठिनाइयों के बावजूद भी 'यू० पी० आई०' का विकास होता गया। क्योंकि इसको कर्मठ भारतीय पत्रकार युवकों का निरंतर सहयोग प्राप्त होता रहा। स्वतंत्रता सेनानियों का आशीर्वाद भी इस एजेंसी को प्राप्त था। इसलिए स्वतंत्रता प्राप्ति के समय तक, टेलीप्रिंटर सर्विस के बिना भी, 'यू० पी० आई०' ब्रिटिश साम्राज्य-वादी एजेंसी 'ए० पी० आई०' की प्रमुख प्रतिद्वंद्वी बन चुकी थी।

स्वातंत्र्योत्तर समाचार समितियां

स्वतंत्रता प्राप्ति के समय 'रायटर' को भारत में विदेशी समाचार प्रेषण का एकाधिकार प्राप्त था। 'रायटर' आश्रित 'ए० पी० आई०' देश के अंदरूनी समाचारों के संकलन व वितरण में लगभग एकाधिकारी संस्था ही थी। दो अमेरिकी समाचार समितियों ने भी विदेशी समाचारों के प्रेषण हेतु इस देश में प्रवेश कर लिया था। ये समाचार एजेंसियां देश के भीतरी समाचारों को एकत्र कर प्रेषण की योजनाएं भी बनाने लगी थी।

यह एक खतरा था कि भारतीय समाचार जगत पूर्ण रूप से विदेशी प्रभाव में चला जायगा। इस खतरे को दूर करने के लिए तीन प्रमुख कदम उठाये गये। (१) 'ए० पी० आई०' को 'रायटर' के चंगुल से मुक्त करके 'पी० टी० आई०' के नाम से एक नयी समाचार सेवा चलायी गयी। (२) 'यू० पी० आई०' को प्रोत्साहन दिया गया तथा (३) विदेशी एजेंसियों द्वारा स्थानीय समाचार-पत्रों को सीधी सेवा देने पर कुछ प्रतिबंध लगाये गये।

'ए० पी० आई०' पर ब्रिटिश साम्राज्यवादी छाप थी। स्वतंत्र भारत में उसका कार्य करना असंभव था। 'ए० पी० आई०' के स्थान पर समाचार-पत्रों की सहकारिता

के आधार पर न्यूज ट्रस्ट के रूप में 'प्रेस ट्रस्ट आफ इंडिया' का गठन हुआ। 'पी० टी० आई०' ने 'रायटर' से ६० हजार पौंड की कीमत पर 'ए० पी० आई०' को खरीद लिया। 'पी० टी० आई०' 'रायटर' का एक हिस्सेदार तथा 'रायटर' ट्रस्ट का सदस्य बन गया।

'यू० पी० आई०' को भी प्रोत्साहन दिया गया। ५ मई १६४८ को इसकी टेलीप्रिंटर सेवा का उद्घाटन हुआ। देश के सभी प्रमुख केंद्रों में इसके कार्यालय खुले।

इन्हीं दिनों भारतीय भाषाओं की प्रथम समाचार समिति के रूप में 'हिंदुस्तान समाचार' का गठन हुआ।

स्वर्गीय श्री जवाहरलाल नेहरू और सरदार वल्लभभाई पटेल की पहल पर समाचार-पत्रों व समाचार समितियों को संचार सुविधाएं देने हेतु नयी नीति की घोषणा की गयी। इस नीति के अनुसार रियायती दरों पर संचार सुविधाएं केवल प्रामाणिक भारतीय प्रेस, जिसका स्वामित्व, नियंत्रण व संचालन केवल भारतीयों के हाथ में हो, को ही देना निश्चित किया गया।

भारत सरकार द्वारा समाचार समितियों को सुविधाएं देने के बारे में जो अन्य सिद्धांत तय किये गये वे इस प्रकार हैं: (१) इसके प्रमुख ध्येय तथा उद्देश्य प्रामाणिक एवं निष्पक्ष और, जहां तक संभव हो, सुगठित रूप में संवाद-प्रेषण करना हों तथा संवादो के संकलन व वितरण में पत्रकारिता के आदर्शों के स्वीकृत सिद्धांतों से वे मेल खाते हों। (२) पब्लिक ट्रस्ट या रजिस्टर्ड सोसायटी या पब्लिक लिमिटेड कं० द्वारा इसका प्रबंध हो। यह किसी भी व्यापारिक एवं उद्योग अथवा किसी समाचार-पत्र का दुमछल्ला न हो और न ही किसी राजनीतिक दल से संबद्ध हो। (३) उसकी समाचार सेवाएं समस्त समाचार-पत्रों, आकाशवाणी केंद्रों तथा सूचना सेवा को उपयुक्त भुगतान या भुगतान के समकक्ष आदान-प्रदान के आधार पर प्राप्त हो।

यू० पी० आई० का विघटन

प्रारंभ मे 'यू० पी० आई०' एक निजी स्वामित्व की संस्था थी। लिमिटेड कंपनी के रूप मे इसकी पूजी दस लाख रुपये थी। इसका नियंत्रण एक निदेशक मंडल द्वारा होता था जिसमें ११ सदस्य थे। 'यू० पी० आई०' की वार्षिक आमदनी आठ लाख रुपये से अधिक हो गयी थी। किंतु खर्चा पूरा नहीं पड़ता था। 'पी० टी० आई०' का बजट 'यू० पी० आई०' के पांच गुने से अधिक था। प्रतिस्पर्धा में 'यू० पी० आई०' टिक नहीं सकी। अर्थ के अभाव में यह संस्था १६५८ में समाप्त हो गयी। समाप्ति के समय इस एजेंसी के भारत में १३० ग्राहक थे तथा २५ कार्यालय थे।

'यू० पी० आई०' ने 'ए० एफ० पी०' के सहयोग से भारतीय समाचार-पत्रों को विश्व समाचारों की सेवा देना १६५१ से ही प्रारंभ कर दिया था। इसकी स्थानीय तथा विदेशी सेवाएं दस-दस हजार शब्दों की होती थीं। इसने अपनी सेवाओं को समाचार-पत्रों की आवश्यकता एवं श्रेणियों के अनुसार 'ए०', 'बी०' और 'सी' तीन श्रेणियों में विभाजित किया था।

'यू० पी० आई०' की समाप्ति से भारतीय समाचार समितियों के इतिहास का एक

महत्वपूर्ण अध्याय समाप्त हो गया। पराधीन भारत में देश के राष्ट्रीय समाचार-पत्रों की आवश्यकता पूरी करने वाली समाचार एजेंसी 'यू० पी० आई०' ने स्वतंत्र भारत में दस वर्ष तक संघर्ष करने के पश्चात दम तोड़ दिया।

दो समाचार समितियों की आवश्यकता

'यू० पी० आई०' की समाप्ति के पश्चात 'पी० टी० आई०' एकाधिकारी समाचार वितरक के रूप में रह गयी। समाचार-पत्रों ने अनुभव किया कि देश में समाचारों के संकलन व वितरण में स्पर्धा होने पर ही वे अधिक उपादेय सामग्री जनता तक पहुंचा सकते हैं। इसके लिए कम से कम दो राष्ट्रीय समाचार समितियों की आवश्यकता अनुभव की गयी। प्रेस कमीशन ने भी अपनी रिपोर्ट में जोर दिया कि कम से कम दो समाचार समितियां होनी चाहिए। इसके लिए दो प्रयास हुए।

प्रथम प्रयास देश के प्रमुख उद्योगपति तथा समाचार-पत्र शृंखला के मालिक श्री रामनाथ गोयनका ने किया। १९५९ में ही उन्होंने 'इंडियन न्यूज सर्विस' (आई० एन० एस०) नाम से एक कंपनी का रजिस्ट्रेशन कराया। ४० लाख रुपये की पूंजी से विशाल पैमाने पर देश भर में कार्यालयों का जाल बिछाने के पश्चात १९६१ के पूर्वार्द्ध में इस समाचार एजेंसी ने कार्य प्रारंभ किया। योग्य दिशा के अभाव एवं कुप्रबंध के परिणामस्वरूप यह समाचार समिति कुछ ही महीनों में बंद हो गयी।

दूसरा प्रयास 'युनाइटेड प्रेस आफ इंडिया' समाचार एजेंसी की स्थापना था। राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय समाचारों पर 'पी० टी० आई०' के एकाधिकार को तोड़ने की इच्छा से देश के प्रमुख समाचार-पत्र के प्रतिनिधियों तथा विशिष्ट पत्रकारों की बैठक २० जनवरी १९५९ को कलकत्ता मे हुई। बैठक की अध्यक्षता पश्चिमी बंगाल के तत्कालीन मुख्यमंत्री स्व० डाक्टर बी० सी० राय ने की। बैठक भी उन्हीं की प्रेरणा से आमंत्रित की गयी थी।

बैठक में एक नयी समाचार समिति प्रारंभ करने का निश्चय किया गया। 'पी० टी० आई०' के भूतपूर्व जनरल मैनेजर श्री डी० पी० बाघले को इस नयी समाचार एजेंसी के गठन एवं प्रारंभ करने का उत्तरदायित्व दिया गया। नयी एजेंसी 'युनाइटेड प्रेस आफ इंडिया' के नाम से १० नवंबर १९५९ को पंजीकृत हुई। 'यू० पी० आई०' की पुरानी साज सामग्री तथा कुछ पत्रकारों को साथ लेकर श्री बाघले ने २१ मार्च १९६१ को 'यू० एन० आई०' का कार्य प्रारंभ किया। 'यू० एन० आई०' की सेवा स्वीकार करने वाले प्रथम पत्रों में स्वर्गीय सदानंद का 'फ्री प्रेस' प्रमुख था। 'फ्री प्रेस जर्नल' काफी समय से दूसरी न्यूज एजेंसी की आवश्यकता के बारे में अपने संपादकीय लेखों द्वारा अभियान चलाये हुए था। 'यू० एन० आई०' लगातार आगे बढ़ती गयी तथा इसने दूसरी समाचार एजेंसी की अनिवार्यता को हर तरह से पूरा किया।

वर्तमान समाचार समितियां

इस समय देश में 'प्रेस ट्रस्ट आफ इंडिया', 'युनाइटेड न्यूज आफ इंडिया' तथा 'हिंदुस्तान समाचार' ही प्रमुख समितियां हैं, जिनकी ग्राहक संख्या, भारत के प्रेस

रजिस्ट्रार की रिपोर्ट के अनुसार सर्वाधिक है। १५ विदेशी समाचार समितियां, इन्हीं भारतीय समितियों के मार्फत समाचार देती हैं।

भारतीय प्रेस रजिस्ट्रार की रिपोर्ट के अनुसार अन्य भारतीय समाचार समितियां जो इस समय सक्रिय हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं :

(१) 'इंडियन न्यूज एंड फीचर एलायंस' नयी दिल्ली, (२) 'इंडियन प्रेस एजेंसी' नयी दिल्ली, (३) 'प्रेस एशिया इंटरनेशनल' नयी दिल्ली, (४) 'समाचार भारती' नयी दिल्ली, (५) 'ईस्टर्न इंडियन न्यूज एजेंसी', (६) 'केरल प्रेस सर्विस' किलोन, (७) 'एसोसिएटेड न्यूज सर्विस' हैदराबाद, (८) 'इंडिपेंडेंट न्यूज सर्विस', (९) 'भारतीय न्यूज सर्विस', (१०) 'भारतीय समाचार', (११) 'हिंदी न्यूज सर्विस', (१२) 'वतन नेशनल प्रेस आफ इंडिया' लखनऊ, (१३) 'फोटो ग्राफिक न्यूज सर्विस' नयी दिल्ली, (१४) 'ज्ञानांजन' लखनऊ, (१५) 'उत्थान' लखनऊ, (१६) 'युनाइटेड प्रेस आफ इंडिया', (१७) 'नेशनल न्यूज सर्विस' नयी दिल्ली, (१८) 'बुंदेलखंड न्यूज एजेंसी', (१९) 'भारत न्यूज एजेंसी' हैदराबाद, (२०) 'जे० के० न्यूज', (२१) 'ओरिएंट न्यूज एजेंसी', (२२) 'इंडिया न्यूज सर्विस', (२३) 'मद्रास कमर्शियल इंटेलीजेंस ब्यूरो', (२४) 'टी० पी० आई०', (२५) 'कश्मीर न्यूज सर्विस' श्रीनगर, (२६) 'जिज्ञासा' नयी दिल्ली, (२७) 'फॉरेन न्यूज एंड फीचर लि०' नयी दिल्ली।

ये समितियां सीमित दायरों में अथवा प्रादेशिक स्तर पर क्रियाशील हैं। इनमें से अधिकांश वास्तव में समाचार समितियां न होकर सही मायनों में फीचर समितियां हैं। 'समाचार भारती' भाषायी समाचार समिति है।

प्रेस ट्रस्ट आफ इंडिया

जन्म की कहानी : 'पी० टी० आई०' स्वतंत्र भारत की ही नहीं, अपितु एशिया की सब से बड़ी समाचार समिति है।

ब्रिटेन की श्रमदलीय सरकार ने भारत से जाते-जाते 'रायटर' को सलाह दी कि वह भारत में अपना कार्य किसी भारतीय समाचार समिति को हस्तांतरित करने हेतु भारतीय समाचार-पत्रों से जल्दी ही समझौता करे। अंग्रेज कूटनीति 'रायटर' द्वारा भारतीय समाचार-पत्रों से बातचीत में भी प्रकट हुई। 'इंडियन एंड ईस्टर्न न्यूज पेपर सोसायटी' से काफी लंबी बातचीत के बाद 'रायटर' का एक समझौता हुआ था। जिसके अनुसार 'रायटर' को भारत में विदेशी समाचार सेवा पर पूर्ण नियंत्रण प्राप्त था। केवल अंदरूनी समाचार सेवा 'ए० पी० आई०' भारतीय कंपनी को स्थानांतरित की जानी थी। इस समझौते के अनुसार भारत के हाथ में नियंत्रण तो कम आता किंतु व्यय अधिक उठाना पड़ता। स्वतंत्र भारतीय समिति स्थापित करने के लिए प्रामाणिक प्रयासकर्ताओं को इससे बड़ी निराशा हुई। इस कूटनीतिक समझौते तक पहुंचने के लिए 'रायटर' की एक चाल और थी—भारत सरकार के निर्णय के अनुसार टेलीप्रिंटर लायसेंस भारतीय समिति को ही दिये जा सकते थे। 'रायटर' के लायसेंस की मियाद जुलाई १९४७ में समाप्त हो रही थी। इसीलिए 'रायटर' ने दिखावे के लिए भारतीय न्यूज एजेंसी के साथ समझौते का नाटक रचा।

स्वर्गीय सरदार पटेल ने इस अवसर पर अपनी सुदृढ़ शक्ति का परिचय दिया। 'आई० ई० एन० एस०' के अध्यक्ष सरदार पटेल से नये समझौते के लिए जब आशीर्वाद लेने पहुंचे तब उन्होंने कहा कि "आशीर्वाद का सवाल ही नहीं उठता, वे देखेंगे कि यह समझौता रद्दी की टोकरी में फेंका जायगा और भारत में 'रायटर' का कार्य राष्ट्रीय समाचार समिति 'पी० टी० आई०' को हस्तांतरित किया जायगा।"

सरदार पटेल ने 'आई० ई० एन० एस०' के अध्यक्ष से कहा कि वे 'रायटर' को सूचित कर दें कि यदि वह नये निर्देश को पूरा नहीं करेगी तो उसके टेलीप्रिंटर के लायसेंस का नवीनीकरण नहीं होगा।

'आई० ई० एन० एस०' ने प्रस्ताव पारित करके 'रायटर' को भेजा कि वह भारत में अपना संपूर्ण कार्य भारतीय एजें ी 'पी० टी० आई०' को हस्तांतरित कर दे। 'रायटर' को मानना पड़ा।

सरदार पटेल की सहायता से भारतीय प्रतिनिधि व 'रायटर' प्रतिनिधियों के बीच लंबे वार्तालाप के बाद सितंबर १९४८ में समझौता हुआ। 'पी० टी० आई०' ने भागीदारी समझौते के अंतर्गत १ फरवरी १९४९ से कार्य प्रारंभ किया।

'पी० टी० आई०' व 'रायटर' में समझौता अवश्य हो गया था किंतु 'ए० पी० आई०' के सामान की एवज में भुगतान के लिए भी उसके पास पैसा नहीं था। सरदार पटेल ने यहां भी 'पी० टी० आई०' की सहायता की। उन्होंने 'पी० टी० आई०' के लिए धन एकत्रित कराया ताकि एक राष्ट्रीय समिति अंतर्देशीय तथा अंतर्राष्ट्रीय कार्य प्रारंभ कर सके।

१९४८ के इस समझौते के अनुसार 'पी० टी० आई०' 'रायटर' ट्रस्ट का एक सदस्य बन गया। 'पी० टी० आई०' ने 'रायटर' के ९० हजार साधारण हिस्सों में से १२ हजार ५०० हिस्से खरीद लिये। ६० हजार पौंड की कीमत पर 'पी० टी० आई०' द्वारा 'ए० पी० आई०' की खरीद का समझौता हुआ। तीन वर्षों तक भागीदारी का यह समझौता जारी रहा। 'पी० टी० आई०' ने इन तीन वर्षों में 'रायटर' को ३० हजार पौंड वार्षिक दिया। पी० टी० आई० को समाचार संकलन के लिए 'रायटर' ने काहिरा से सिंगापुर तक का क्षेत्र दिया। इस कार्य में भी प्रबंध का नियंत्रण 'रायटर' के ही हाथ में था।

तीन वर्ष बाद १९५१ में 'पी० टी० आई०' ने यह समझौता समाप्त कर दिया तथा 'रायटर' से विदेशी समाचारों की खरीद व अंतर्देशीय समाचारों की बिक्री के लिए एक सादा समझौता किया। इसी समय से इस भारतीय समिति को राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय समाचार क्षेत्र में कार्य करने का स्वतंत्र अवसर मिला।

'पी० टी० आई०' का स्वामित्व एवं क्षेत्र समाचार-पत्र तक सीमित है। इस पर स्वामित्व पत्र रखने वाले समाचार-पत्रों के लिए इसकी सेवाएं क्रय करना आवश्यक है। नियमों में विशेष प्रावधान किया गया है कि इसका स्वामित्व अथवा नियंत्रण कभी भी एक हित-समूह अथवा विभाग के हाथ में नहीं जा सकेगा।

देश की राष्ट्रीय समाचार एजेंसी में 'पी० टी० आई०' ही एकमात्र एजेंसी है जिसका अपना विशाल भवन है तथा उसी में कार्यालय है। यह भवन पार्लियामेंट

स्ट्रीट पर है। 'पी० टी० आई०' का मुख्य कार्यालय ३५७, दादाभाई नौरोजी रोड, बंबई में स्थित है।

देश की सभी प्रादेशिक राजधानियों तथा प्रमुख समाचार केंद्रों पर 'पी० टी० आई० के कार्यालय स्थापित हैं। इनकी संख्या ५५ है। इन कार्यालयों को टेलीप्रिंटरों द्वारा आपस में जोड़ा गया है। 'पी० टी० आई०' के टेलीप्रिंटरों की संख्या ५०० के लगभग है।

छोटे नगरों एवं कस्बों में 'पी० टी० आई०' के अंशकालीन संवाददाता नियुक्त हैं। भारतीय डाक-तार विभाग से 'पी० टी० आई०' ने ५० हजार किलोमीटर लाइन किराये पर ले रखी है।

'पी० टी० आई०' के कर्मचारियों की संख्या कुल १ हजार है। इसमें से २०० पूर्ण समय सेवा में रत पत्रकार हैं। 'पी० टी० आई०' ही एकमात्र भारतीय समिति है जिसने देश से बाहर भी अपने संवाददाता नियुक्त किये हैं। ये संवाददाता न्यूयार्क, पेरिस, मास्को, काहिरा, तोकियो, कुआलालम्पुर, लंदन, काठमांडो आदि स्थानों पर हैं। इनकी संख्या ११ है।

'रायटर' से हिस्सेदारी-समझौता समाप्त होने के बाद 'पी० टी० आई०' का 'ए० एफ० पी०' व 'यू० पी० आई०' (अमेरिका) से भी समाचारों के आदान-प्रदान का पुराना समझौता चालू है। अन्य कुछ विदेशी एजेंसियों से भी 'पी० टी० आई०' के समझौते हुए हैं।

विश्व एजेंसियों से 'पी० टी० आई०' रेडियो टेलीप्रिंटर पर समाचार प्राप्त करता है। काठमांडो, टोकियो, तथा कोलंबो के लिए 'पी० टी० आई०' की अपनी टेली-प्रिंटर सेवा है।

देश के १८५ समाचार-पत्र इस समय 'पी० टी० आई०' की सेवाएं प्राप्त कर रहे हैं। समाचार-पत्रों के अतिरिक्त रेडियो और टेलीविजन 'पी० टी० आई०' के सब से बड़े ग्राहक हैं। केंद्र तथा राज्य सरकारों के सूचना विभागों के अतिरिक्त केंद्रीय सरकार के अन्य कुछ विभाग भी 'पी० टी० आई०' की सेवाएं क्रय करते हैं। (हाल ही में शासन ने इन सेवाओं को नहीं लेने की अग्र-सूचना दी है।)

'पी० टी० आई०' के समाचार अंग्रेजी से अनूदित होकर देश की सभी भाषाओं के समाचार-पत्रों में प्रकाशित हो रहे हैं। अनुवाद की पूर्ण जिम्मेदारी समाचार-पत्र की अपनी होती है।

इसके अतिरिक्त इस एजेंसी द्वारा वाणिज्यिक एवं आर्थिक सेवाएं भी प्रारंभ की गयी हैं।

युनाइटेड न्यूज आफ इंडिया

'यू० एन० आई०' का पंजीकरण १० नवंबर १९५९ को हुआ। इसकी नियोजित पूंजी दस लाख रुपया है, जिसको सौ-सौ रुपये के दस हजार हिस्सों में विभाजित किया गया है। जारी पूंजी ३ लाख ५४ हजार ५ सौ रुपया है। कुछ भारतीय समाचार-पत्रों ने इसके हिस्से खरीदे है। नियमानुसार समाचार उद्योग में से ही इसके

हिस्सेदारों का चयन किया जा सकता है। कंपनी के नियमों में स्पष्ट है : 'कोई भी हिस्सा अथवा हिस्से भारतीय संघ में प्रकाशित समाचार-पत्र अथवा पत्रों के मालिक अथवा मालिकों को बेचे जा सकेंगे और हस्तांतरित किये जा सकेंगे।'

'यू० एन० आई०' ने समाचार सेवा कार्य २१ मार्च १९६१ से प्रारंभ किया। इसका मुख्य कार्यालय इस समय ७ रफी मार्ग, नयी दिल्ली में स्थित है। कार्य का संचालन संपादक व जनरल मैनेजर द्वारा किया जाता है जो कि मुख्य प्रशासक है। वह संपादकीय तथा प्रशासकीय दोनों विभागों को देखता है। समाचार सेवा से संबंधित राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय सभी कार्यों के लिए पहल, निदेशन व देखरेख उसी के हाथ में है।

'यू० एन० आई०' देश की दो प्रमुख राष्ट्रीय अंग्रेजी समाचार समितियों में से एक है। स्थानीय समाचारों के संकलन व वितरण में यह एशिया की तीसरी सब से बड़ी एजेंसी है।

विस्तार : नवीनतम जानकारी (३१. ३. १९७५) के अनुसार 'यू० एन० आई० के ५० कार्यालय हैं, जो कि देश की सभी प्रादेशिक राजधानियों तथा प्रमुख समाचार केंद्रों में फैले हुए हैं। इन कार्यालयों को टेलीप्रिंटरों द्वारा जोड़ा गया है। 'यू० एन० आई०' के टेलीप्रिंटरों की संख्या ४०० है। साथ में उच्च वेगशाली संयंत्र भी जुड़े हुए हैं।

५० कार्यालयों के अतिरिक्त १५० छोटे शहरों में 'यू० एन० आई०' के अंश-कालीन संवाददाता भी है। ये संवाददाता तार अथवा टेलीफोन से 'यू० एन० आई०' के निकटतम कार्यालयों को समाचार देते हैं जहां से उन समाचारों को टेलीप्रिंटरों द्वारा वितरित किया जाता है।

भारतीय डाक-तार विभाग से 'यू० एन० आई०' ने कुल ४० हजार किलो-मीटर टेलीप्रिंटर लाइन किराये पर ली है।

'यू० एन० आई०' के लिए लगभग २५० पत्रकार कार्य कर रहे हैं। इनमें से आधे स्टाफ के सदस्य हैं।

अंतर्राष्ट्रीय समाचारों के लिए 'यू० एन० आई०' का प्रमुख समझौता 'ए० पी०' से है। 'ए० पी०' के समाचार 'यू० एन० आई०' को रेडियो टेलीप्रिंटर पर प्राप्त होते है तथा तार टेलीप्रिंटर पर ग्राहक पत्रों को पहुंचाये जाते है। 'ए० पी०' के अलावा भी 'यू० एन० आई०', 'तास' (सोवियत संघ), 'ड्यूटशे प्रेस एजेंटूर' (प० जर्मनी), 'एजेंशिया नेशनल स्टांपा एसोसिएट' (इटली), 'एगर प्रेस' (रूमानिया), 'चेतका' (चेकोस्लोवाकिया), 'जी जी प्रेस' (जापान), 'राष्ट्रीय संवाद समिति' (नेपाल) और 'ईस्टर्न न्यूज एजेंसी' (बंगला देश) से समाचारों का आदान-प्रदान करता है।

'यू० एन० आई०' के ग्राहकों की संख्या २९० (३१.३.७५) है, जो कि देश में विभिन्न ७० नगरों मे फैले हुए हैं। ग्राहकों में समाचार-पत्र, केंद्रीय एवं राज्य सरकारों के विभाग, रेडियो, औद्योगिक संस्थान, दूतावास, होटल आदि शामिल है।

'यू० एन० आई०' की समाचार सेवा लेने वाले समाचार-पत्र १५ भाषाओं में प्रकाशित हो रहे हैं, जो कि 'यू० एन० आई०' से अंग्रेजी में प्राप्त समाचारों को अनू-दित कर उपयोग में लाते हैं।

'यू० एन० आई०' ने समाचारों के अतिरिक्त कुछ विशिष्ट सेवाएं प्रारंभ की

हैं जो कि अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो रही हैं। इनमें वाणिज्यिक सेवा, संदर्भ सेवा (बैकग्राउंडर सेवा), कृषि सेवा तथा फोकस सेवा प्रमुख हैं।

'यू० एन० आई०' की वाणिज्यिक सेवा व आर्थिक सेवा स्थानीय व विश्व बाजारों के भावों तथा रुख की रिपोर्ट त्वरित गति से देती है। इन रिपोर्टों में सरकारी सिक्यूरिटी, बैंक शेयर, बुलियन व धातु, अनाज व दालें, कृषि एवं बागान उत्पादन, चीनी व गुड़, जूट, चाय-काफी-मसाले आदि के भाव एवं उनका रुझान रहता है।

संदर्भ सेवा द्वारा 'यू० एन० आई०' का शोध ब्यूरो हर सप्ताह एक या अधिक संदर्भ लेख उपलब्ध करता है। ये लेख विशेषज्ञों द्वारा तैयार किये जाते हैं जो सामयिक विषयों पर तथ्य एवं महत्वपूर्ण जानकारी से युक्त होते हैं। 'यू० एन० आई०' के कृषि विषयक प्रसंग लेख भी साप्ताहिक सेवा में हैं। इसमें पांच से आठ हजार शब्दों में कृषि तथा संबद्ध विषयों पर देश-विदेश से उपलब्ध जानकारी दी जाती है। फोकस सेवा के अंतर्गत 'यू० एन० आई०' भारत एवं उसके पड़ोसी देशों के बारे में तात्कालिक महत्व के लेख वितरित करती है।

हिंदुस्थान समाचार

दिसंबर १९४८ में 'हिंदुस्थान समाचार' समिति की स्थापना एक प्राइवेट लिमिटेड कंपनी के रूप में की गयी। 'यू० एन० आई०' से संबद्ध पत्रकार श्री एस० एस० आपटे ने अपने कुछ मित्रों की प्रेरणा से एक ऐसी समाचार समिति के गठन का उत्तरदायित्व हाथ में लिया जो कि समाचार-पत्रों को उनकी अपनी भाषा में समाचार उपलब्ध करा सके तथा क्षेत्रीय एवं ग्रामीण समाचारों को भी प्रकाश मे ला सके।

प्रारंभ में केवल छह समाचार-पत्रों ने इस समाचार एजेंसी की सेवाएं स्वीकार की थीं तथा धीरे-धीरे इसका कार्य बढता गया और देश के अनेक राज्यों में इसने अपने कार्यालय स्थापित कर लिये। दूरमुद्रकों द्वारा कुछ कार्यालयों के बीच संबंध भी स्थापित हो गये। देश में देवनागरी दूरमुद्रक का प्रयोग करने वाली यह प्रथम संस्था है।

'हिंदुस्थान समाचार' के कर्मचारियों ने फरवरी १९५७ में एक सहकारी समिति का गठन करके उसी वर्ष जून मास में 'हिंदुस्थान समाचार' का प्रबंध प्रायवेट लि० कंपनी से सहकारी समिति के हाथ में ले लिया।

सहकारी समिति के नियमों के अनुसार 'हिंदुस्थान समाचार' के कर्मचारी ही इसके हिस्से खरीद कर समिति के सदस्य बन सकते हैं। विशेष प्रावधान के अनुसार बाहर के कुछ गण्यमान्य व्यक्ति भी इसके सदस्य बनाये जा सकते हैं, किंतु उनकी संख्या कुल सदस्य संख्या की ¼ व अधिकतम ५० से अधिक नहीं हो सकती। इस समय इसकी सदस्य संख्या ३१३ है। इनमें से २७० इसके कर्मचारी व संवाददाता हैं। सहकारी समिति प्रतिवर्ष अपनी प्रबंध समिति का निर्वाचन करती है। प्रबंध समिति सेक्रेटरी नियुक्त करती है जो कि दैनंदिन प्रबंध की देखरेख जनरल मैनेजर के नाम से करता है।

इसका मुख्य कार्यालय जीवन विहार, पार्लियामेंट स्ट्रीट नयी दिल्ली में स्थित है।

नवीनतम जानकारी के अनुसार 'हिंदुस्थान समाचार' के शाखा कार्यालयों की संख्या १७ है। कुछ स्थानों पर इसके उप-कार्यालय भी हैं। दूरमुद्रक केंद्र २५ हैं।

'हिंदुस्थान समाचार' समाचारों के संकलन एवं वितरण के लिए टेलीप्रिंटर, तार, टेलीफोन, साधारण डाक व संदेशवाहकों का उपयोग करता है। इस समय १२ अखबारों के कार्यालयों में इसकी सेवा दूरमुद्रक द्वारा पहुंचती है। इसकी दैनंदिन सेवाएं संसद सत्र के समय १३ हजार से १५ हजार शब्दों तक तथा अन्य समय ८ हजार शब्दों की होती है।

'हिंदुस्थान समाचार' के नियमित कर्मचारियों की संख्या २०० है। इसके अतिरिक्त ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में १३०० अवैतनिक संवाददाता हैं। यह समाचार समिति मुख्य रूप से स्वदेश के ही समाचार उपलब्ध कराती है। वैसे नेपाल की 'राष्ट्रीय संवाद समिति' से संवादों के आदान-प्रदान के लिए उसने समझौता किया है।

इस समय १३५ समाचार-पत्र 'हिंदुस्थान समाचार' की सेवाएं ले रहे हैं। इसके अतिरिक्त केंद्र व राज्य सरकारें, रेडियो, दूतावास आदि भी इसके समाचार क्रय करते हैं।

'हिंदुस्थान समाचार' हिंदी के अतिरिक्त ६ भारतीय भाषाओं---गुजराती, पंजाबी, बंगला, उर्दू, मराठी, तेलुगू, उड़िया, असमी व मलयालम में समाचार देती है। आकाशवाणी के केंद्रों से सात भाषाओं में इसके समाचार प्रसारित होते हैं।

इस समिति ने दो विशेष सेवाएं प्रारंभ कर रखी हैं। एक है—'हिंदुस्थान समाचार वार्षिकी' तथा दूसरी प्रसंग लेख सेवा।

'हिंदुस्थान समाचार' की वार्षिकी एक संदर्भ ग्रंथ है। इसमें ३१ अध्यायों के अंतर्गत देश की महत्वपूर्ण जानकारियां उपलब्ध हैं। प्रतिवर्ष इसमें नवीन जानकारियां जोड़ दी जाती हैं। भारतीय भाषाओं के पत्रों के उपयोग के लिए 'हिंदुस्थान समाचार' ने जनवरी १९६८ से 'युगवार्ता' प्रसंग लेख सेवा प्रारंभ की। इसके अंतर्गत समाचार-पत्रों को तात्कालिक एवं अन्य महत्व के लेख उपलब्ध कराये जाते हैं। 'युगवार्ता' की सामग्री ११२ समाचार-पत्रों में प्रकाशित होती है।

'हिंदुस्थान समाचार' का वार्षिक बजट ८ लाख रुपये का है। इसमें से १ लाख ८ हजार रुपया रेडियो से प्राप्त होता है। राज्य सरकारों से समाचार की आमदनी २ लाख १२ हजार रुपया है। अखबारों से प्राप्त समाचार शुल्क २ लाख ६० हजार रुपया है। अपने बजट की कमी को पूरा करने के लिए ही 'हिंदुस्थान समाचार' ने वार्षिकी का प्रकाशन प्रारंभ किया। फिर भी बजट घाटे में ही चल रहा है। घाटे की पूर्ति दान, चंदा, स्मारिका प्रकाशन तथा अन्य उपायों द्वारा की जाती है। 'हिंदुस्थान समाचार' के प्रकाशन विभाग की आमदनी लगभग दो लाख रुपया हो जाती है।

इस समय 'हिंदुस्थान समाचार' की अध्यक्ष केंद्रीय राज्यमंत्री डाक्टर सरोजिनी महिषी हैं। सहकारी समिति के सचिव तथा जनरल मैनेजर प्रारंभ से ही श्री बालेश्वर अग्रवाल रहे हैं।

समाचार भारती

अक्तूबर १९६६ में समाचार भारती का उद्‌घाटन एक पब्लिक लिमिटेड कंपनी के रूप में हुआ। पत्रकार श्री धर्मवीर गांधी ने लगातार दस वर्षों के प्रयास के पश्चात् लाला फिरोजचंद के सहयोग से इस समाचार समिति की स्थापना करने में सफलता प्राप्त की।

कंपनी ला की धारा ३५ के अंतर्गत इसका रजिस्ट्रेशन हुआ। इसके लगभग ९० प्रतिशत हिस्से महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, कर्नाटक, राजस्थान, बिहार, उत्तरप्रदेश, गुजरात आदि राज्य सरकारों ने खरीदे हैं। उनके प्रतिनिधि इस एजेंसी के निदेशक मंडल में शामिल हैं। इसीलिए इसको सरकारी कंपनी भी कहते हैं।

'समाचार भारती' लाभ रहित कंपनी के रूप में कार्य कर रही है। अर्थात् इसमें होने वाला मुनाफा हिस्सेदारों को बांटने के स्थान पर इसी के विस्तार में लगाने की व्यवस्था है। इसका मुख्य कार्यालय, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, राऊज एवेन्यू, नयी दिल्ली में स्थित है।

इसके कुल कार्यालयों की संख्या १४ है। दूरमुद्रक केंद्रों की संख्या १७ है।

'समाचार भारती' समाचारों के संकलन एवं वितरण के लिए टेलीप्रिंटर, तार, टेलीफोन व साधारण डाक का उपयोग करती है।

'भारती' की दैनंदिन समाचार सेवा ३० हजार शब्दों तक की बतायी जाती है।

'भारती' के नियमित कर्मचारियों की संख्या लगभग ९० है, जिसमें से आधे पत्रकार कर्मचारी हैं।

'समाचार भारती' प्राथमिक रूप से केवल स्वदेश के ही समाचार उपलब्ध कराती है। इसने विदेशी रेडियो प्रसारणों से भारत से संबंधित समाचारों का चयन करके उनके प्रसारण की विशेष व्यवस्था भी की है।

विभिन्न भाषाओं के ८० समाचार-पत्रों को इस समिति की सेवाएं दी जा रही हैं। संप्रेषण के लिए टेलीप्रिंटरों से हिंदी के अतिरिक्त मराठी सेवा भी दी जाती है। समाचार-पत्रों के अतिरिक्त राज्य सरकारें तथा आकाशवाणी भी इसके समाचार क्रय करती हैं।

'समाचार भारती' का कुल बजट लगभग सात लाख रुपये का है। इसमें से लगभग ४० प्रतिशत राज्य सरकारों व आकाशवाणी से प्राप्त होता है।

इन्फा

भारतीय समाचार-पत्रों को देश की प्रमुख गतिविधियों एवं राजनीति पर प्रसंग लेख सेवा उपलब्ध कराने के उद्देश्य से 'इंडिया न्यूज एंड फीचर एजेंसी' की स्थापना १९५९ में हुई। 'इन्फा' प्रसंग लेख सेवा सब से सशक्त है। यह पार्टी-फोरम, राजनीतिक डायरी, आर्थिक घटनाएं, राउंड दी स्टेट्स, संसद का सप्ताह आदि प्रमुख सेवाएं हिंदी तथा अंग्रेजी दोनों में देती है। इसके क्षेत्रीय कार्यालय ११ स्थानों पर हैं।

'न्यूज फीचर्स आफ इंडिया' तथा 'पब्लिकेशन सिंडिकेट' दो और एजेंसियां हैं जो कि प्रसंग लेख सेवाएं देती हैं।

अंग्रेजी का एकाधिकार

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान भारत के अंग्रेजी प्रेस ने अधिकांशतः अंग्रेज शासकों के दृष्टिकोण को ही व्यक्त किया था। स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान जन-भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए हिंदी एवं अन्य भारतीय भाषाओं के समाचार-पत्रों का प्रकाशन बढ़ने लगा था। स्वतंत्रता के बाद भारत में लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था लागू होने से भारतीय भाषाओं के समाचार-पत्रों के महत्व, संख्या एवं प्रसार में वृद्धि हुई। आजादी के पूर्व की 'एसोसिएटेड प्रेस' ने विदेशी बाना छोड़कर स्वदेशी आवरण ओढ़ लिया। स्वदेशी समाचार समिति 'पी० टी० आई०' का जन्म हुआ। समाचारों की भावनाएं व भाषा बदल गयीं। किंतु दायरा विदेशी समाचारों, सरकारी समाचारों तथा बड़े शहरों के बड़े समाचारों तक सीमित रहा।

भाषायी समाचार-पत्रों को अपने पाठकों की रुचि, ज्ञानवर्धन तथा शिक्षण के समाचार प्राप्त करना कठिन हो गया। अंग्रेजी समाचार समितियों की सेवा लेने वाले सक्षम भाषायी पत्रों पर भी दोहरा वित्त भार आया। ये पत्र यों ही आर्थिक दृष्टि से अंग्रेजी पत्रों की अपेक्षा कहीं अधिक पिछड़े हुए रहे हैं। अंग्रेजी समाचार समितियों के समाचार यदि इन्होंने ले भी लिये तो उनके अनुवाद के लिए अतिरिक्त आर्थिक भार इन्हें उठाना पड़ता रहा है।

अनुवाद की विडंबनाएं

अनुवाद की कुछ हास्यास्पद किंतु तथ्यपूर्ण बातें भी सामने आयीं। किसी वायसराय के शिकार के समाचार मे एक अंग्रेजी समाचार समिति ने लिखा 'वायसराय शाट'। इसका एक भाषायी पत्र में अनुवाद हुआ : 'वायसराय को गोली मार दी गयी'। पत्र ने वायसराय की मृत्यु पर शोकपूर्ण काली रेखा भी समाचार के साथ लगा दी। इसी तरह एक पत्र ने पांच सौ रेलवे स्लीपर बह जाने के समाचार का अनुवाद किया कि 'रेल के पांच सौ सोये हुए यात्री बह गये।' स्काउट की रैली में 'कब्ज' को भाषण देने का अनुवाद छापा गया कि 'शेर के बच्चों को संबोधित करते हुए कहा···।' आदि।

लोकतंत्र में चुनावों के कारण सार्वजनिक भाषण अधिकतर हिंदी अथवा भारतीय भाषाओं में ही होते हैं। समाचार वितरण पर अंग्रेजी समितियों का प्रभुत्व होने के कारण इन भाषाओं को दोहरे अनुवाद का सामना करना पड़ता है। भारतीय भाषा से अंग्रेजी में अनूदित होकर वे टेलीप्रिंटर पर जाते हैं तथा बाद में समाचार-पत्र उसे अपनी भाषा में अनूदित करता है। इससे समाचार में विलंब तो होता ही है, साथ में उनका स्वरूप भी बहुत कुछ बदल जाता है। राजनीतिक नेताओं को तो इसके कारण कई बार खंडन अथवा स्पष्टीकरण भी देने पड़ते हैं।

भाषायी समाचार वितरण के प्रारंभिक प्रयास

स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान कांग्रेस कार्यालयों के भाषायी समाचार-पत्रों को भारतीय भाषाओं में बुलेटिन भेजे जाते थे। इनमें पार्टी के प्रचार के स्थान पर वास्तव में जन-आंदोलनों के समाचार रहते थे। यह प्रयास भाषायी समाचार वितरण के

लिहाज से काफी प्रभावी एवं फलदायी रहा। विभिन्न स्थानों पर कुछ उत्साही पत्रकारों ने अपने क्षेत्र की भाषाओं में छोटी-छोटी समाचार समितियां प्रारंभ कीं जो कि हाथ से लिखे अथवा टंकित समाचार-बुलेटिन डाक से या वाहक द्वारा समाचार-पत्रों को पहुंचाने लगे।

इस दिशा में सब से महत्वपूर्ण प्रयास मुस्लिम लीग के कुछ प्रमुख सदस्यों ने हैदराबाद रियासत की सहायता से किया। उन्होंने 'ओरियेंट प्रेस आफ इंडिया' नामक समाचार समिति की स्थापना की। यह समाचार समिति उर्दू और यदि कहीं आवश्यक हुआ तो अंग्रेजी में उर्दू पत्रों को मुस्लिम रुचि के समाचार उपलब्ध कराने में सफल रहीं। देश के विभाजन के पश्चात यह समाचार समिति समाप्त हो गयी।

लखनऊ से हिंदी तथा उर्दू के समाचार-पत्रों को उनकी भाषा में समाचार देने के दो उल्लेखनीय प्रयास हुए। इस शताब्दी के चतुर्थ दशक में लखनऊ में 'इंडिपेंडेंट न्यूज सर्विस' प्रारंभ हुई। यह एजेंसी आज भी भाषायी पत्रों को समाचार उपलब्ध कराती है। श्री विजयकुमार मिश्र ने १९८२ में लखनऊ में ही 'नेशनल प्रेस एजेंसी' की स्थापना की। यह एजेंसी उत्तरप्रदेश के हिंदी पत्रों को राज्य के समाचार उपलब्ध कराती है। बंगाल के समाचार वितरण के लिए १९४८ में कलकत्ता में एक 'हिंद्र समाचार समिति' की स्थापना हुई जो कि बंगला में समाचार देती थी।

स्वतंत्रता के बाद दक्षिण के उर्दू समाचार-पत्रों को उर्दू में समाचार उपलब्ध कराने के लिए दो समाचार समितियां बनीं जिनमें कि काफी प्रतिस्पर्धा रही। इनमें एक थी 'डेकन न्यूज एजेंसी' हैदराबाद तथा दूसरी 'एसोसिएटेड प्रेस आफ हैदराबाद'। अब इन दोनों के स्थान पर 'एसोसिएटेड न्यूज सर्विस आफ हैदराबाद' कार्य कर रही है।

केरल में 'एसोसिएटेड प्रेस' के एक पुराने कर्मचारी श्री सी० जी० केशवन् ने राज्य के मलयाली समाचार-पत्रों को मलयालम में समाचार देने के लिए केरल प्रेस सर्विस प्रारंभ की।

इसी प्रकार के कई छोटे-छोटे प्रयास विभिन्न राज्य में लगातार होते रहे हैं। कुछ जारी हैं, कुछ बंद हो गये, कुछ नये प्रारंभ हो रहे हैं। किंतु यह सभी प्रयास व्यक्तिगत स्वामित्व के ही रहे हैं जो कि राज्य सरकारों से येन-केन-प्रकारेण आर्थिक सहायता प्राप्त करके राज्यों के समाचार भाषायी समाचार-पत्रों को उपलब्ध कराते है। इनके अस्तित्व का आधार बहुत बड़े पैमाने पर राजनीतिक अनुकंपा रही है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् श्री जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी द्वारा देशी राज्यो में किये गये प्रयास का उल्लेख भी आवश्यक है। उन्होंने देशी रियासतों के राजनीतिक समाचार के संकलन एवं वितरण के लिए व्यवस्था बनायी। देशी रियासतों के विलय के पश्चात यह व्यवस्था समाप्त हो गयी।

महत्वपूर्ण प्रयास

स्वर्गीय श्री रफी अहमद किदवई के प्रयत्न में हिंदी तथा हिंदी समाचार जगत को लाभान्वित करने के लिए हिंदी अथवा देवनागरी तार सेवा भी प्रारंभ हुई। भाषायी पत्रों, विशेषकर 'हिंदुस्थान समाचार' ने इसका उपयोग किया। राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन की प्रेरणा से, बताया जाता है, आकाशवाणी के

उप-महानिदेशक पं० श्रीनारायण चतुर्वेदी ने एक ऐसी समाचार समिति की योजना तैयार की थी जिसकी सेवा के रहते हिंदी समाचार-पत्रों को अंग्रेजी समाचार समिति की सेवा लेना अनिवार्य न होता। किंतु हिंदी समिति की यह विशाल योजना कागजों में ही रह गयी। समिति के लिए ट्रस्ट बनाने की योजना एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकी। श्री किदवई के द्वारा जबलपुर के डाक-तार विभाग के कारखाने में तैयार कराये गये छह टेलीप्रिंटर धूल खाते रहे। बाद में १९५४ में इनका उपयोग सरकार ने किया। कुछ हिंदी टेलीप्रिंटर 'हिंदुस्थान समाचार' ने प्राप्त कर लिये। 'हिंदुस्थान समाचार' को बाद में सहयोग मिलने में कठिनाई आयी। कुछ पत्रों ने उसकी सेवाएं बंद कर दीं। राज्य सरकारों ने भी हाथ खींच लिया।

इसी समय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा ने भी एक भाषायी समाचार समिति प्रारंभ करने का निष्फल-सा प्रयास किया। 'हिंदुस्तान समाचार' ने अपनी कठिनाइयों पर विचार करके पब्लिक लिमिटेड कंपनी के स्थान पर उसे कार्यकर्ताओं की सहकारी समिति में बदल दिया। इससे कई राजकीय नेता तथा गण्यमान्य पत्रकार इसकी कार्य समिति में आ गये। केंद्र सरकार, राज्य सरकारों तथा समाचार-पत्रों ने फिर सहयोग में वृद्धि की। फिर भी एक स्वतंत्र एवं सशक्त समाचार समिति की स्थापना की आवश्यकता बराबर महसूस होती रही। १९६६ में लाला फिरोजचंद, धर्मवीर गांधी तथा जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी के प्रयासों व तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री लालबहादुर शास्त्री के सहयोग से 'समाचार भारती' की स्थापना हुई। राज्य सरकारों ने भारी-भरकम आर्थिक सहायता दी।

भारत मे समाचार-पत्र जगत काफी विस्तृत हो गया है किंतु दुर्भाग्य है कि देश की अंग्रेजी अथवा हिंदी की एक भी समाचार समिति ऐसी नहीं है जो कि किसी समाचार-पत्र की संपूर्ण आवश्यकताएं पूरी कर पाये। अंग्रेजी समाचार समितियां अपने संपूर्ण साधनों के बावजूद ग्रामीण क्षेत्र में नहीं पहुंच सकीं तथा भाषायी समाचार समितियां साधनों के अभाव में विदेशी समाचारों को प्राप्त करने की बात सोच भी नहीं सकीं। अपने रूढ़िवादी तौर-तरीकों के कारण अंग्रेजी समाचार समितियां भारतीय जन-मानस को नहीं छू सकी तो दूसरी ओर भाषायी समाचार समितियां अपने अल्प प्रभाव के कारण नौकरशाही व राजनीतिक नेताओं मे उपयुक्त सम्मान प्राप्त नहीं कर सकीं।

भारतीय समाचार समितियों का भविष्य

भारत की अंग्रेजी समाचार समितियों के साधन विदेशी समाचार समितियों की तुलना में कुछ भी नहीं हैं। फिर, भारतीय समाचार समितियां आत्मनिर्भरता से कोसों दूर हैं। जाहिर है, अंग्रेजी समाचार समितियों की लगभग २५ प्रतिशत तथा भाषायी समाचार समितियों की ४० प्रतिशत आय सरकारी माध्यमों—केंद्र सरकार, आकाशवाणी व राज्य सरकारों—से होती है। समाचार समितियों की वर्तमान स्थिति में यह आय वास्तव में समाचार शुल्क न होकर सरकारी सहायता ही हैं।

'पी० टी० आई०' व 'यू० एन० आई०' का स्वामित्व देश के बड़े समाचार-पत्रों के हाथ में है। इन बड़े समाचार-पत्रों द्वारा अपने स्वामित्व का लाभ इन समाचार

एजेंसियों को पहुंचाना तो दूर रहा—ये उसका दुरुपयोग ही कर रहे हैं। इन संवाद समितियों को बड़े समाचार-पत्रों द्वारा दिया जाने वाला समाचार-शुल्क अत्यंत ही कम है। बड़े समाचार-पत्र अपनी आमदनी का दो प्रतिशत से भी कम समाचार एजेंसियों पर व्यय करते हैं जबकि समाचार एजेंसियों के समाचारों का उपयोग वे विपुल मात्रा में करते हैं।

समाचार जगत में आवश्यकता अनुभव की जा रही है कि बड़े समाचार-पत्रों से समाचार एजेंसियों का शुल्क दुगुना कर दिया जाना चाहिए ताकि समाचार एजेंसियों की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ हो, साथ ही छोटे समाचार-पत्रों को कम शुल्क पर एजेंसियों की सेवा उपलब्ध कराने का तरीका निकल सके।

इस सिलसिले में पिछले कई वर्षों से विचार किया जा रहा है कि समितियों के वर्तमान ढांचे को बदल कर उन्हें निगम के रूप में परिवर्तित कर दिया जाय। इससे समाचार एजेंसियां समृद्ध समाचार-पत्रों से उपयुक्त शुल्क प्राप्त करने में सफल होंगी। एजेंसी को अपने समाचारों की ऊंची दरें प्राप्त होने पर वे अपनी सेवा को अधिक सशक्त व विस्तृत कर सकेंगी तथा अंततोगत्वा उनका लाभ समाचार-पत्रों को ही होगा।

जहां तक भाषायी समाचार समितियों का प्रश्न है, बड़े भाषायी समाचार-पत्र यह मानते हैं कि वे सेवा लेकर इन समितियों पर अनुग्रह कर रहे हैं जबकि वास्तविकता यह है कि इन समाचार-पत्रों को जन-समाचार भाषायी समितियों से ही प्राप्त हो रहे हैं। छोटे भाषायी समाचार-पत्र अब अवश्य ही इन समाचार समितियों का महत्व अपने पाठकों की दृष्टि से न सही, आर्थिक दृष्टि से स्वीकार कर चुके हैं क्योंकि उन्हें अपनी भाषा में समाचार प्राप्त होने पर अपने स्टाफ के लिए व्यय में कमी करने का लाभ मिलता है। फिर भी भाषायी समाचार समितियां आज इस स्थिति में नहीं पहुंची हैं कि वे समाचार-पत्रों से शुल्क के लिए अपनी शर्तें स्वीकार करा सकें। भाषायी समाचार समितियां न केवल समाचार-पत्रों अपितु राज्य सरकारों के लिए अपनी सेवा बनाये रखने के लिए दबाव एवं परेशानी महसूस करती ही रहती हैं।

छोटे समाचार-पत्र आज इस स्थिति में भी नहीं हैं कि एक अंग्रेजी समाचार एजेंसी की सेवा लेने के पश्चात् भाषा की दोनों समाचार समितियों के समाचार ले सकें।

१९६६ में 'समाचार भारती' की स्थापना के समय से ही हिंदी जगत के विचारक पत्रकार महसूस करते रहे कि दो समाचार समितियों के स्थान पर एक ही भाषायी समिति अधिक साधनों के साथ राष्ट्रीय स्तर पर पत्रकारिता की सेवा करे तो अधिक प्रभावी होगी।

विगत कुछ वर्षों से भारत सरकार भी देश की समाचार एजेंसियों के गठन एवं स्वरूप के बारे में चिंतित दिखायी दी है। समाचार समितियों का निगम बनाना, कम से कम 'पी० टी० आई०' जो कि एशिया की सब से बड़ी न्यूज एजेंसी है, को अंतर्राष्ट्रीय न्यूज एजेंसी के रूप में विकसित करना, एजेंसियों के आपसी विलय द्वारा एक भाषायी एजेंसी का निर्माण, अंग्रेजी सहित सभी भारतीय भाषाओं में समाचार देने वाली दो एजेंसियां गठित करना आदि प्रमुख विचार इधर सामने आ रहे हैं।

अभी हाल ही में सूचना एवं प्रसारण मंत्री ने कहा भी है कि सरकार ने समा-

चार समितियों के पुनर्गठन के बारे में विचार किया है। इस संदर्भ में इन बातों पर ध्यान दिया जाना उपयुक्त होगा :

(१) भारतीय समाचार समितियां समाचार-पत्रों को उनकी भाषा में, चाहे वह अंग्रेजी हो अथवा अन्य भाषा, समाचार दे सकें।

(२) देश में कम से कम दो पूर्ण समाचार समितियां हों जो कि भारत के छोटे-बड़े सभी समाचार-पत्रों को अंतर्राष्ट्रीय, राष्ट्रीय तथा गांवों के समाचार उपयुक्त मात्रा में प्राप्त करा सकें।

(३) समाचार-पत्रों, आकाशवाणी व सरकार से समाचार समितियों को प्राप्त होने वाले शुल्क का आधार अधिक वाणिज्यिक हो, जिसमें यह ध्यान रखा जाय कि समाचार-पत्र अ" ी आर्थिक स्थिति की सीमा मे एजेंसी से समाचार प्राप्त कर सके।

(४) कम से कम एक समाचार समिति का गठन इतने विशाल पैमाने पर हो कि वह भारत व एशिया के विकासशील देशों के सही व प्रामाणिक समाचारों का संकलन तथा वितरण अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में प्रभावी ढंग से कर सके।

आज यह नहीं कहा जा सकता कि भारतीय समाचार समितियों का भावी रूप क्या होगा, किंतु यह निर्विवाद है कि इन समाचार समितियों तथा उनके पत्रकार कार्यकर्ताओं ने अपने सीमित साधनों के बावजूद पत्रकारिता के क्षेत्र में अपनी योग्यता एवं क्षमताओं का पूरा परिचय दिया है। हमारी समाचार समितियों ने पत्रकारिता के कुछ निर्भीक मानदंड कायम किये है। आशा की जानी चाहिए कि समितियों के नये ढांचे और स्वरूप में इन मानदंडों की न केवल रक्षा होगी अपितु ये और अधिक मुखर होकर सामने आ सकेंगे।

पत्रकार संगठन और आंदोलन

ब्रिटिश सरकार की भारतीय पत्रों के विरुद्ध कार्यवाही को रोकने और देशी पत्रों में सुधार के उद्देश्य से प्रथम देशी (नेटिव) प्रेस एसोसिएशन का निर्माण १८६१ में हुआ। उस समय 'बंगवासी' पत्र के विरुद्ध सरकार ने कार्यवाही शुरू कर दी थी। इस एसोसिएशन ने हस्तक्षेप किया और वह सरकारी कार्यवाही को रोकने में सफल रही। इसके बाद अनेक वर्षों तक पत्रकारों की किसी सामूहिक कार्यवाही का उल्लेख नहीं मिलता।

प्रेस एक्ट १६१० को बड़ी कठोरता से लागू किया गया। हालांकि अनेक राजनीतिक नेताओं और अखबारों के संपादकों ने उसके विरुद्ध आवाज उठायी। लेकिन उसका असर न होने से १६१५ में 'प्रेस एसोसिएशन आफ इंडिया' का निर्माण किया गया जिसका उद्देश्य प्रेस के हितों की रक्षा करना और सरकारी कार्यवाही से उसे बचाना था। बंग एसोसिएशन का एक प्रतिनिधि मंडल उस समय के वायसराय, लार्ड चेम्सफ़ोर्ड से मिला और उनके सम्मुख प्रेस एक्ट को कठोरता से लागू किये जाने से पैदा होने वाली कठिनाइयां रखीं। लार्ड चेम्सफोर्ड का उत्तर संतोषजनक नहीं था, अतः जब १६२१ में सप्रू कमेटी नियुक्त की गयी तो प्रेस एसोसिएशन ने भारत में शुरू से प्रेस संबंधी कानूनों के लागू किये जाने के संबंध में एक विस्तृत स्मरण-पत्र प्रस्तुत किया।

आई० ई० एन० एस०

समाचार-पत्रों के व्यापारिक हितों की सुरक्षा के लिए १६३६ में 'इंडियन एंड ईस्टर्न न्यूज पेपर सोसाइटी' का निर्माण किया गया। यह सोसाइटी १४ सदस्यों के साथ शुरू की गयी लेकिन अब इसमें सभी भारतीय भाषाओं और अंग्रेजी के समाचार-पत्रों और पत्रिकाओं के प्रतिनिधि बड़ी संख्या में सदस्य हैं। सोसाइटी ने अखबारी कागज की समस्या को अनेक बार सुलझाया है और विज्ञापन के स्तर को ऊंचा उठाने का प्रयत्न किया है। सोसाइटी के प्रयत्नों के फलस्वरूप 'प्रेस ट्रस्ट आफ

इंडिया' और 'आडिट ब्यूरो आफ सर्कुलेशन' का जन्म हुआ। हालांकि अब दोनों ही प्रतिष्ठान स्वतंत्र रूप से कार्य करते हैं और सोसाइटी का उन पर कोई नियंत्रण नहीं है।

संपादक सम्मेलन

१९४० में गांधीजी के सत्याग्रह की खबरों के प्रकाशन पर पूर्व सेंसर की समस्या को लेकर आई० ई० एन० एस० के कुछ सदस्यों ने अखिल भारतीय समाचार-पत्र संपादक सम्मेलन की स्थापना की। इसका पहला सम्मेलन 'हिंदू' के संपादक श्री कस्तूरी श्रीनिवासन की अध्यक्षता मे हुआ। यह सम्मेलन शुरू होने से पहले भारत सरकार तथा सम्मेलन के आयोजकों के बीच समझौते की बातचीत हुई जिसके फलस्वरूप यह निश्चय हुआ कि अखिल भारतीय समाचार-पत्र संपादक सम्मेलन ने यह आश्वासन दिया कि वह यह ध्यान रखेगा कि ऐसी कोई सामग्री प्रकाशित नही हो जिससे युद्ध के संचालन में बाधा पड़े और दूसरी ओर सरकार ने यह मंजूर किया कि वह युद्ध समाचारों के प्रकाशन में चिड़चिड़ाहट पैदा करने वाले प्रतिबंध नहीं लगायेगी। इस समझौते को ध्यान में रख कर संपादक सम्मेलन ने प्रेस सलाहकार समितियों की स्थापना की और इनकी सहायता से उसने युद्ध के कठिन दिनों मे पत्रों की रक्षा करने का कार्य किया। लेकिन सम्मेलन 'नेशनल हैरल्ड' और आगरे के 'सैनिक' के संबंध में सफल नहीं हो सका। वैसे सम्मेलन ने अनेक मामलों मे सरकारी कार्यवाही से पत्रों की रक्षा की।

भारतीय संपादक सम्मेलन ने १९५० में भारत-पाकिस्तान सम्मेलन आयोजित किया जिसमें पाकिस्तानी संपादकों को निमंत्रित किया गया। इसका उद्देश्य दोनों देशों में युद्ध को भड़काने वाली खबरों के प्रकाशन को रोकना था। इस सम्मेलन के फलस्वरूप भारत-पाकिस्तान संयुक्त प्रेस कमेटी की स्थापना की गयी जिसका उद्देश्य दोनों देशों के समाचार-पत्रों में सद्भावनापूर्ण संबंधों को बनाना था। इस समिति ने दो वर्षों तक काम किया। लेकिन बाद में दोनों देशों के संबंध अधिक बिगड़ जाने के कारण इसका काम स्थगित हो गया। संपादक सम्मेलन ने पत्रकारों के कार्य की स्थिति के संबंध में भी विचार किया और १९४४ में लाहौर में अपनी स्थायी समिति में एक प्रस्ताव स्वीकार किया जिसमें सिफारिश की कि अंग्रेजी पत्र के किसी भी पत्रकार का निम्नतम वेतन रु० १०० प्रतिमास और देशी भाषा के पत्रकार का निम्नतम वेतन रु० ७५ प्रतिमास से कम नहीं होना चाहिए। भाषा के आधार पर वेतन में अंतर की कड़ी आलोचना की गयी। इन आलोचनाओं के उत्तर में कहा गया कि देशी भाषाओं के पत्रकारों का वेतन भारतीय भाषाओ के पत्रों की प्रार्थना पर कम रखा गया है। बाद में यह सोचा गया कि पत्रकारों की कार्य-स्थिति पर विस्तार से विचार करना ट्रेड यूनियनों का काम है। विदेशों को जाने वाले पत्रकार शिष्ट-मंडलों में संपादक सम्मेलन ने अपने प्रतिनिधियों को नियुक्त किया है। भारत सरकार की विभिन्न समितियों में संपादक सम्मेलन के प्रतिनिधि नियुक्त किये जाते रहे हैं। विशेष संवाददाताओं को मान्यता देने के लिए जो समिति नियुक्त की जाती है उसमें सम्मे-

लन के चार प्रतिनिधि हैं। इसी प्रकार टेलीफोन सलाहकार समिति तथा अन्य सलाहकार समितियों में भी सम्मेलन के प्रतिनिधि नियुक्त किये जाते हैं। प्रेस परिषद में संपादकों के प्रतिनिधि भी सम्मेलन की सूची से ही लिये जाते रहे हैं।

भारतीय श्रमजीवी पत्रकार संघ

पत्रकारों के आंदोलन और संगठनों को दो हिस्सों में बांटा जा सकता है। आजादी से पहले और आजादी के बाद, वैसे तो अनेक प्रांतों में पत्रकार संगठन थे और पत्रकारों के हितों के लिए काम कर रहे थे लेकिन अखिल भारतीय रूप में उनको संगठित करने का प्रयास १९५० में किया गया। दिल्ली श्रमजीवी पत्रकार संघ द्वारा दिल्ली में आयोजित सम्मेलन में देश की २३ पत्रकार संस्थाओं के ८० प्रतिनिधियों ने भाग लिया और इसकी अध्यक्षता 'नेशनल हेरल्ड' के विख्यात संपादक श्री चलपति राव ने की। 'टाइम्स आफ इंडिया' के संपादक राणा जंगबहादुरसिंह स्वागताध्यक्ष थे। उद्घाटन के अवसर पर सर्वश्री मृणालकांति बोस, देवदास गांधी, के० रामाराव, एस० पी० थियागराजन, एम० वी० साने, शामलाल, बनारसीदास चतुर्वेदी, ज्वालासिंह और जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी उपस्थित थे। इस सम्मेलन में श्रमजीवी पत्रकारों के अखिल भारतीय संगठन के निर्माण का निश्चय किया गया और 'इंडियन जर्नलिस्ट एसोसिएशन', कलकत्ता, 'उत्तर प्रदेश श्रमजीवी पत्रकार संघ', 'दिल्ली श्रमजीवी पत्रकार संघ', 'बंबई श्रमजीवी पत्रकार संघ' और 'दक्षिण भारत पत्रकार संघ' के सात प्रतिनिधियों की एक समिति अखिल भारतीय संघ के संविधान का प्रारूप तैयार करने के लिए नियुक्त की गयी। संघ का संविधान १४ और १५ अप्रैल १९५१ को बंबई में एक विशेष अधिवेशन में स्वीकार किया गया। इस अवसर पर 'दक्षिण भारत पत्रकार संघ' ने हिस्सा नहीं लिया क्योंकि वह संघ के ट्रेड यूनियन आधार के विरुद्ध था। अखिल भारतीय संघ के निर्माण के बाद अन्य प्रांतों में भी श्रमजीवी पत्रकार संघों का संगठन किया गया और उनको अखिल भारतीय संस्था से संबंधित किया गया। संघ के पहले अध्यक्ष श्री चलपति राव निर्वाचित हुए और श्री जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी महामंत्री नियुक्त किये गये। अध्यक्ष और महामंत्री की यह जोड़ी १९५० से १९५५ तक चलती रही और इसने पत्रकारों के लाभ के लिए जो बुनियादी कार्य किया, उसे संतति याद रखेगी।

आजादी के बाद के युग में पत्रकारिता का रूप बदल रहा था। व्यावसायिकता उसका मुख्य आधार बन रही थी। इस समय काम के कोई नियम नहीं थे। वेतन कम, काम अधिक, सेवा की कोई सुरक्षा नहीं। किसी भी दिन नौकरी से जवाब मिल जाता था। देशी भाषाओं के पत्रकारों की स्थिति और भी खराब थी। आजादी प्राप्ति का उद्देश्य पूरा हो जाने के बाद संपादकों और पत्रकारों के सामने नया उद्देश्य निर्धारित नहीं हो सका था। आर्थिक क्षेत्र में पत्र मालिक के हितों की रक्षा ही पत्रों का उद्देश्य और नीति थी जो अभी तक चली आ रही है। ऐसी स्थिति में दिल्ली में श्रमजीवी पत्रकारों के पहले सम्मेलन में श्रमजीवी पत्रकारों की स्थिति की जांच की मांग की गयी। १९५२ में कलकत्ता अधिवेशन में इस मांग को दोहराया गया और

प्रेस के संपूर्ण कार्य की विस्तृत जांच के लिए एक प्रेस आयोग की नियुक्ति की मांग औपचारिक रूप से की गयी। सरकार ने इस मांग पर बड़ी सहानुभूति और तत्परता के साथ विचार किया और एक महीने के अंदर ही भारत के राष्ट्रपति ने घोषणा की कि प्रेस आयोग की नियुक्ति की जायगी। बाद में इस आयोग के लिए संघ ने श्री चलपति राव को अपना प्रतिनिधि नियुक्त किया। सरकार ने न्यायमूर्ति जी० एस० राजाध्यक्ष को प्रेस आयोग का अध्यक्ष बनाया। सर्वश्री डा० सी० पी० रामास्वामी अय्यर, आचार्य नरेंद्रदेव, डा० जाकिर हुसैन, डा० वी० के० आर० वी० राव, पी० एच० पटवर्धन, त्रिभुवन नारायणसिंह, जयपालसिंह, जे० नटराजन (एस० ए० मणि के स्थान पर), एस० आर० भट्ट और एम० चलपति राव आयोग के सदस्य थे। प्रेस आयोग का महत्व उसके महत्वपूर्ण सदस्यों से ही प्रकट हो जाता है। प्रेस आयोग की रिपोर्ट को पत्र एवं पत्रकारों का आदि ग्रंथ, प्रेस का दर्पण और उचित विकास का निदेशक बताया गया है।

प्रेस आयोग की प्रथम बैठक नयी दिल्ली में ११ अक्तूबर १९५२ को और अंतिम बैठक बंबई में १४ जुलाई १९५४ में हुई। प्रेस आयोग की ५८८ पृष्ठों की रिपोर्ट में १५५६ धाराएं और २१ अध्याय हैं। अंतिम अध्याय में प्रेस आयोग के निष्कर्ष और सुझाव हैं।

प्रेस आयोग ने अपनी रिपोर्ट में अखिल भारतीय श्रमजीवी पत्रकार संघ के इस मुद्दे को मान लिया था कि समाचार-पत्रों में एकाधिकार की प्रवृत्ति बढ़ने की संभावना है और यह सुझाव दिया था कि समाचार-पत्रों के स्वामित्व का विकिरण किया जाय जिससे पत्रकारों, कर्मचारियों तथा समाचार-पत्रों से संबंधित अन्य व्यक्तियों को उनके संचालन का अधिकार हो। इस संबंध में आयोग ने संसार के अन्य देशों में जो प्रणालियां प्रचलित थीं उनका अध्ययन किया और यह राय दी कि या तो समाचार-पत्र ट्रस्टों द्वारा निकाले जायं या नवगठित संचालन मंडलों द्वारा। उसने ये भी सिफारिशें कीं कि किस प्रकार पत्र-शृंखलाओं को विभाजित किया जा सकता है, 'प्रेस ट्रस्ट' का एक निगम बनाया जाय तथा 'यू० पी० आई०' को ट्रस्ट के रूप में परिवर्तित किया जाय और सरकारें इन संस्थाओं को तभी सहायता दें जब ये अपना पुनर्गठन करना स्वीकार कर लें। यह भी निर्णय किया गया कि संपादक की स्वाधीनता की रक्षा के लिए प्रयास किये जायं और संपादक को नियुक्ति के बाद कामकाज में हस्तक्षेप का सामना न करना पड़े। यदि उसे पृथक् किया जाय तो छह महीने का नोटिस दिया जाय। आयोग के सामने गवाहियां आयी थीं कि संपादकों को बिना किसी सूचना के एकाएक नौकरी से निकाल दिया जाता है, चाहे वे कितने वर्षों से भी सेवा कर रहे हों। आयोग ने यह सिफारिश भी की कि प्रेस कानूनों में ढील दी जाय, आपत्तिजनक सामग्री कानून को आगे न बढ़ाया जाय और प्रेस कौंसिल की स्थापना की जाय। श्रमजीवी पत्रकारों तथा अन्य कर्मचारियों की सुविधा के लिए न्यूनतम वेतन हो जो सारे देश के लिए निर्धारित हो, उनसे छह घंटे काम लिया जाय, सप्ताह में एक दिन की छुट्टी दी जाय और वर्ष में एक महीने की अर्जित और एक महीने स्वास्थ्य की व १५ दिन की आकस्मिक छुट्टियां दी जायं तथा राष्ट्रीय त्यौहारों की छुट्टियां दी जायं,

प्रोविडेंट फंड की व्यवस्था हो, छंटनी होने पर प्रतिवर्ष १५ दिन के हिसाब से वेतन दिया जाय और प्रतिवर्ष १५ दिन का वेतन अनुग्रह धन के रूप में दिया जाय। पत्रकारों की सुविधाओं के लिए और भी बहुत-सी सिफारिशें थीं। साथ ही यह सिफारिश भी थी कि पत्रों के आंकड़े ठीक रखने के लिए तथा यह देखने के लिए कि समाचार-पत्रों के स्वामित्व में एकाधिकार या सामूहीकरण तो नहीं आ रहा है, एक प्रेस रजिस्ट्रार की नियुक्ति की जाय, जिसकी रिपोर्ट पर प्रेस परिषद् विचार कर यह बतायगी कि उसको कम करने के लिए क्या उपाय किये जायं। प्रेस आयोग की सारी रिपोर्ट भारतीय श्रमजीवी पत्रकार संघ तथा उसकी विभिन्न शाखाओं द्वारा दी गयी लिखित व मौखिक गवाही पर आधारित थी। श्रमजीवी पत्रकार परिषद के जिन सदस्यों ने यह सारा कार्य संचालित किया वे थे : श्री के० रामाराव, श्री जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी, श्री एम० बी० साने, श्री विनयनाथ नारायण सिंह, श्री सी० राघवन, श्री के० एन० नायर और एस० ए० शास्त्री। इस आयोग के समक्ष भारतीय श्रमजीवी पत्रकार संघ की मुख्य समिति के अतिरिक्त सत्रह शाखाओं ने गवाहिया दी और पत्रकार जगत का कोई प्रश्न ऐसा नहीं आया जो इन गवाहियों में प्रकट न किया गया हो। इसके परिणामस्वरूप बिहार पत्रकार संघ के अध्यक्ष श्री विनयनाथ नारायण सिंह की नौकरी समाप्त कर दी गयी और पत्रकार संघ को सर्वोच्च न्यायालय तक यह मुकदमा लड़ना पड़ा, परंतु तब तक पत्रकारों को औद्योगिक विवाद अधिनियम के अंतर्गत कामगार नहीं माना जाता था, इसलिए श्री विनयनाथ नारायण सिंह को नौकरी वापिस न मिल सकी और बाद मे श्री विनयनाथ नारायण सिंह लापता हो गये और आज तक उनका पता नही है।

अ० भा० श्रमजीवी पत्रकार संघ ने प्रेस आयोग की रिपोर्ट को लागू कराना अपने आंदोलन का लक्ष्य बना लिया। उसने प्रस्ताव पास किये, सम्मेलन किये और ज्ञापन दिये। वस्तुतः सरकार ने १९५५ में श्रमजीवी पत्रकार कानून पास किया। इसके अंतर्गत पत्रकारों की सेवा के नियम आदि हैं। इसमें श्रमजीवी पत्रकार की परिभाषा की गयी है और प्रूफरीडरों को भी श्रमजीवी पत्रकारों में शामिल किया गया है। संघ को फिर भी प्रूफरीडरों को, पत्रकारों की सुविधाएं दिलाने के लिए सुप्रीम कोर्ट तक मुकदमेबाजी करनी पड़ी। पत्रकार कानून की तीसरी धारा के अंतर्गत औद्योगिक विवाद अधिनियम १९४७ श्रमजीवी पत्रकारों पर लागू किया गया। संघ की इकाइयां इस अधिनियम के अंतर्गत अपने सदस्यों के मामलों को न्यायाधिकरणों में ले जाती हैं और पत्रकारों को न्याय दिलाने का प्रयत्न करती हैं। देश भर में इस प्रकार के सैकड़ों मामलों में पत्रकारों को राहत दिलायी गयी है। हालांकि देश की अन्य अदालतों के समान न्यायाधिकरणों में भी न्याय मिलने में भारी विलंब होता है लेकिन पीड़ित पत्रकारों के लिए और कोई रास्ता भी नहीं। क्या ही अच्छा हो कि ऐसे मामलों के फैसले के लिए कानून द्वारा अवधि निर्धारित कर दी जाय।

पत्रकार कानून के अंतर्गत २३ मई १९५७ को सेवा के नियम प्रकाशित किये गये, जिनमें काम के घंटे, छुट्टी और ग्रेच्युटी आदि की व्यवस्था है। बाद में, ६ फरवरी १९६० में इन नियमों में कुछ संशोधन भी किये गये।

वेतन, तरक्की और महंगाई भत्ते आदि की व्यवस्था के लिए केंद्रीय सरकार ने मई १६५६ में प्रथम वेतन बोर्ड की स्थापना की जिसमें श्रमजीवी पत्रकार संघ के प्रतिनिधि श्री आर० व्यंकटरमण (संसद् सदस्य), श्री सी० राघवन (प्रेस ट्रस्ट के वर्तमान प्रधान संपादक) और श्री जी० एन० आचार्य थे। वेतन बोर्ड के निर्णय ११ मई १६५७ को प्रकाशित किये गये लेकिन पत्र मालिकों ने उन्हें अस्वीकार कर दिया और निर्णयों के विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय में अपील की। पत्रों के भुगतान की क्षमता के आधार पर न्यायालय ने वेतन बोर्ड के निर्णयों को रद्द कर दिया। पत्रकारों को अपने वेतनों के लिए पुनः आंदोलन करना पड़ा।

जिस समय सर्वोच्च न्यायालय ने श्रमजीवी पत्रकार कानून के संबंध में अपना निर्णय दिया, जयपुर में होने वाले पत्रकार संघ का छठा वार्षिक अधिवेशन समाप्त हो चुका था और प्रतिनिधिगण राजस्थान भ्रमण पर गये हुए थे। उनको वापिस बुलाया गया और सम्मेलन का एक दिन का अधिवेशन फिर हुआ जिसमें यह निर्णय किया गया कि सर्वोच्च न्यायालय ने श्रमजीवी पत्रकार अधिनियम की एक धारा को छोड़कर अन्य धाराओं को जो स्वीकार किया है उसका स्वागत किया जाता है तथा उस धारा में संशोधन कराने और वेतन मंडलों के निर्णयों को कार्यान्वित कराने के लिए संघर्ष किया जाय। सर्वोच्च न्यायालय ने तीन साल के बाद अनुग्रह-धन देने वाली धारा को अमान्य कर दिया था। इसके बाद दिल्ली में केंद्रीय मंत्रिमंडल ने श्री गोविंदवल्लभ पंत की अध्यक्षता में मंत्रिमंडल की एक समिति नियुक्त की। इस समिति ने पत्रकारों और पत्र-संचालकों के बीच समझौता कराने का प्रयास किया। भारतीय श्रमजीवी पत्रकार संघ ने श्री गोविंदवल्लभ पंत का पंच-निर्णय स्वीकार कर लिया, यद्यपि वह वेतन मंडल की सिफारिश से कम था। लेकिन संचालकों ने उसे स्वीकार नहीं किया। इसके बाद सरकार ने एक अध्यादेश द्वारा नयी वेतन श्रेणियां बनाने के उद्देश्य से पांच सदस्यों की एक समिति नियुक्त की। ये सदस्य थे : सर्वश्री के० वाई० भंडारकर, के० एन० सुब्रह्मण्यम, आर० सी० दत्त, टी० आर० वी० चारी और एस० वैद्यनाथ अय्यर। श्री भंडारकर समिति के अध्यक्ष थे। समिति ने २३ मई १६५६ को वेतन आदि के संबंध में अपने सुझाव सरकार को प्रस्तुत किये। पहले वेतन बोर्ड की तुलना में समिति की वेतन श्रेणियां कम थीं। उनको भी हील-हुज्जत के बाद पत्र-मालिकों ने लागू किया। लेकिन उसका एक लाभ सभी पक्षों को यह हुआ कि समाचार-पत्रों और पत्रकारों के वर्गीकरण का एक आधार तैयार हो गया जिसका विकास और संशोधन दूसरे वेतन बोर्ड में किया जा सका। इस समिति ने कुल आय के आधार पर दैनिक समाचार-पत्रों को छह वर्गों में विभाजित किया। प्रथम वर्ग में वे दैनिक रखे गये जिनकी कुल आय ५० लाख रुपये या अधिक थी और अंतिम वर्ग या निम्नतम वर्ग में वे दैनिक रखे गये जिनकी आय ढाई लाख रुपये से कम थी। साप्ताहिक पत्रों को चार वर्गों में बांटा गया। प्रथम और उच्चतम वर्ग में १२॥ लाख रुपये या उससे अधिक आय वाले साप्ताहिक और अंतिम वर्ग में एक लाख रुपये से कम आय वाले साप्ताहिक आदि रखे गये।

जहां एक ओर सरकार और संसद् द्वारा अथवा न्यायालयों में पत्रकारों की अपनी

गुहार करनी पड़ी, वहां उन्हें अपनी मांगों के लिए लंबा संघर्ष भी करना पड़ा। वेतन मंडल की सिफारिशों के अनुसार अधिक पैसा न देना पड़े, इसलिए इलाहाबाद में हिंदी 'अमृत पत्रिका' बंद कर दी गयी, जिसके विरोध में संघ के नेतृत्व में एक लंबी हड़ताल चली और फिर मामला एक राष्ट्रीय न्यायाधिकरण में भेजा गया। उसी तरह 'इंडियन एक्सप्रेस, मद्रास के संचालकों ने 'आंध्रप्रभा' को मद्रास से हटाकर एक पृथक् कंपनी बनाकर विजयवाड़ा भेज दिया। इस अवसर पर भी मद्रास के 'इंडियन एक्सप्रेस' में ७६ दिनों की हड़ताल हुई, जबकि गोयनका प्रतिष्ठान के मद्रास स्थित सारे समाचार-पत्र बंद रहे और बाद में इंडियन एक्सप्रेस को भी उन्हें कुर्नूल ले जाना पड़ा। इस आंदोलन के फलस्वरूप इलाहाबाद में पत्रकारों और कर्मचारियों ने 'प्रयागपत्रिका' और मद्रास में तमिल दैनिक 'नवमणि' और 'डेली डिस्पैच' की सहकारिता के आधार पर स्थापना की। परंतु राज्य सरकारों की अपेक्षा, सरकारी कानूनों की कड़ाई और उसके साथ त्याग न करने में एक-सी प्रतिबद्धता न होने के कारण 'प्रयागपत्रिका' और 'डेली डिस्पैच तो बंद हो गये, परंतु 'नवमणि' अभी तक प्रकाशित हो रहा है। लेकिन जब मद्रास में द्रमुक सरकार आ गयी तो सहकारी बैंक से ले लिये ऋण का लाभ उठाकर प्रबंध में हस्तक्षेप किया गया और पुराने कर्मचारियों को उससे अलग होना पड़ा, परंतु उन्होंने 'मक्कलकुरल' नाम का एक दूसरा तमिल दैनिक निकाला, जो पिछले दो वर्षों से अत्यंत सफलतापूर्वक चल रहा है।

जैसाकि पहले ही उल्लेख किया जा चुका है कि वेतन समिति की सिफारिशें पत्रकारों की आशा से कहीं कम थीं, संघ के नेतृत्व में नये वेतन बोर्ड के लिए आंदोलन किया गया। फलस्वरूप भारत सरकार के श्रम मंत्रालय ने १२ नवंबर १९६३ को द्वितीय वेतन बोर्ड की स्थापना की जिसके अध्यक्ष न्यायमूर्ति जे० के० शिंदे नियुक्त किये गये। श्री केदार घोष और श्री एल० मीनाक्षी सुंदरम श्रमजीवी पत्रकार संघ के प्रतिनिधि के रूप में उसके सदस्य बने। बोर्ड के अंतिम दिनों में श्री केदार घोष के स्थान पर एस० बी० कोल्पे संघ की ओर से बोर्ड के सदस्य रहे।

केंद्रीय श्रम मंत्रालय ने वेतन बोर्ड की सिफारिशें कुछ मामूली परिवर्तनों के साथ स्वीकार करके २७ अक्तूबर १९६७ को आर्डर के रूप में घोषित कर दीं। अनेक प्रबंधक वेतन बोर्ड की रिपोर्ट के विरुद्ध उच्च और उच्चतम न्यायालय में गये। अखिल भारतीय श्रमजीवी पत्रकार संघ की ओर से सर्वोच्च न्यायालय के एक और एडवोकेट श्री एम० के० राममूर्ति ने पत्रकारों की वकालत की। न्यायालयों ने वेतन बोर्ड की सिफारिशों को लागू करने और जब तक अंतिम फैसला न हो जाय तब तक बकाया रोके रखने का आदेश दिया।

द्वितीय वेतन बोर्ड ने दैनिक समाचार-पत्रों को सात वर्गों में बांटा और प्रथम और उच्चतम वर्ग में उन पत्रों को रखा गया जिनकी कुल आय २०० लाख रुपये या उससे अधिक थी और सातवें वर्ग में पांच लाख से कम आय वाले पत्र रखे गये। साप्ताहिक और मासिक आदि पत्रिकाओं को छह वर्गों में बांटा गया। ५० लाख रुपये या अधिक आय वाली पत्रिका को प्रथम श्रेणी में रखा गया और ढाई लाख से कम आय वाली पत्रिकाओं को श्रेणी छह में। पत्रिकाओं में काम करने वाले पत्रकारों की वेतन श्रेणियां

दैनिक की तुलना में कहीं कम हैं। अतः उनमें काम करने वाले पत्रकारों में पर्याप्त असंतोष है। आशा है आगामी वेतन बोर्ड इस असंतोष को दूर करने का प्रयत्न करेगा।

प्रेस परिषद

समाचार-पत्रों के स्तर को ऊंचा रखने और प्रेस की स्वतंत्रता की सुरक्षा के लिए श्रमजीवी पत्रकार संघ प्रेस परिषद की मांग करता रहा है। प्रेस आयोग ने ऐसी परिषद की स्थापना की जोरदार सिफारिश की थी। ब्रिटेन में रायल कमीशन ने सुझाव दिया था कि कि प्रेस परिषद की स्थापना की जाय। उस सुझाव के फलस्वरूप ब्रिटेन में पहली प्रेस परिषद का निर्माण १९५३ में किया गया। भारत में प्रेस परिषद विधेयक १९६५ में स्वीकार किया गया और १६ नवंबर १९६६ को पहली प्रेस परिषद की घोषणा की गयी। विभिन्न पत्रकार संस्थाओं द्वारा दी गयी सूचियों के आधार पर २५ सदस्यों की घोषणा की गयी। अ० भा० श्रमजीवी पत्रकार संघ ने प्रेस परिषद का बहिष्कार किया और उसके प्रतिनिधियों ने परिषद से त्यागपत्र दे दिया। बाद में कुछ और सदस्यों ने इस्तीफा दे दिया। लेकिन परिषद किसी न किसी प्रकार चलती रही। १९७० में प्रेस परिषद का पुनर्निर्माण किया गया। इस बार अ० भा० श्रमजीवी पत्रकार संघ के प्रतिनिधियों की सूची परिषद का चुनाव समिति के पास कुछ विलंब से पहुंचने के कारण उसके प्रतिनिधियों को परिषद में स्थान नहीं मिला। प्रेस परिषद श्रमजीवी पत्रकार संघ के प्रतिनिधियों के बिना ही चल रही थी। 'हिंदुस्तान टाइम्स' के संपादक श्री वर्गीज का मामला प्रेस परिषद में उठाया गया था। इस मामले में सारे देश ने दिलचस्पी दिखायी। प्रेस परिषद में यह अभी तक विचाराधीन ही था कि उच्च न्यायालय से निर्णय रोक दिया गया तथा बाद में अध्यादेश द्वारा प्रेस परिषद ही समाप्त हो गयी।

श्रमजीवी पत्रकार संघ के आंदोलनों के फलस्वरूप प्रेस कानून में परिवर्तन हुआ, संसदीय कार्यवाहियों को छापने की स्वाधीनता देने के लिए १९५६ में श्री फ़ीरोज गांधी द्वारा प्रस्तावित अधिनियम पारित हुआ, जिसे अब एक अध्यादेश द्वारा समाप्त कर दिया गया है। इस स्वाधीनता का पत्रकारों ने कसकर उपयोग किया। प्रेस आयोग ने पत्रकारों के प्रशिक्षण के लिए जो सुझाव दिया था वह इसीलिए कार्यान्वित न हो सका कि परिषद का गठन ही रिपोर्ट आने के बारह साल बाद हुआ और इस ढंग से हुआ कि उसमें श्रमजीवी पत्रकारों के संगठन का, जो देश के ९० प्रतिशत पत्रकारों का प्रतिनिधित्व करता है, कोई स्थान ही नहीं था। परिणामस्वरूप प्रेस की दुर्दशा होनी स्वाभाविक थी और वह न तो आचार-संहिता का निर्माण कर सकी, न पत्रकारिता के मानदंड को स्थापित कर सकी और न पत्र-उद्योग में बढ़ती हुई एकाधिकार की प्रवृत्ति को रोक सकी। प्रेस परिषद से निराश होकर भारतीय श्रमजीवी पत्रकार संघ ने १९७१ के अपने अधिवेशन में अहमदाबाद-घोषणापत्र प्रकाशित किया और यह मांग की कि तुरंत ही पत्रों के स्वामित्व का विकिरण हो। भारत सरकार की ओर से इस नीति की स्वीकृति की घोषणाएं की गयीं और एक विधेयक का मसौदा भी प्रसारित किया गया, परंतु पत्र-स्वामियों और उनके पिछलग्गुओं के प्रचार से दबकर इन घोष-

णाओं पर अमल रुक गया। आज भी सरकार यह कहती है कि वह समाचार समितियों को एकत्र कर उनका एक निगम बनाना चाहती है और पत्रों के संपादन का स्वामित्व से विकिरण कर पत्रों की आजादी को बढ़ाना चाहती है, परंतु अभी तक जो प्रस्ताव आये हैं वे कितने सफल होंगे, यह कहा नहीं जा सकता। भारतीय श्रमजीवी पत्रकार संघ अभी भी इन मांगों पर दृढ़ है कि पत्रों के स्वामित्व का विकिरण किया जाय और पत्र-व्यवसाय का इस तरह पुनर्गठन किया जाय कि प्रतिबंधक कानूनों को लाने की कोई जरूरत ही न हो और पत्रकार स्वयं ही राष्ट्र के प्रति निष्ठा से प्रतिबद्ध हों तथा व्यापारिक अथवा सरकारी नियंत्रण से मुक्त होकर स्वस्थ पत्रकारिता का विकास कर सके।

भारतीय श्रमजीवी पत्रकार संघ अपने जीवन के २५ वर्ष पूरे कर चुका है तथा सारे देश में उसके ५००० सदस्य हैं।

अ० भा० हिंदी पत्रकार संघ

अ० भा० हिंदी पत्रकार संघ भी अ० भा० संपादक सम्मेलन की तरह युद्ध-काल की समस्याओं के कारण पैदा हुआ था। इसका पहला अधिवेशन जनवरी १९४१ में 'विश्वमित्र' के संचालक एवं संपादक ला० मूलचंद अग्रवाल की अध्यक्षता मे दिल्ली में हुआ। अधिवेशन में पत्रों पर सरकारी प्रतिबंध, अखबारी कागज, समाचार-पत्र सलाहकार समिति आदि पर प्रस्ताव स्वीकार किये गये लेकिन श्रमजीवी पत्रकारों की स्थिति का जिक्र नहीं किया गया। दूसरा अधिवेशन 'सैनिक' आगरा के संपादक श्री कृष्णदत्त पालीवाल की अध्यक्षता में दिल्ली में ही हुआ और उसमें श्रमजीवी पत्रकारों के लिए ४० रु० प्रतिमास के न्यूनतम वेतन की मांग की गयी। यह १९४२ की बात है। इसके साथ उत्तर प्रदेश हिंदी पत्रकार संघ ने उत्तर प्रदेश हिंदी पत्रकार सम्मेलन बुलाया। इसके अध्यक्ष थे श्री बनारसीदास चतुर्वेदी। सम्मेलन ने श्रमजीवी पत्रकारों की स्थिति की जांच करने के लिए एक समिति का निर्माण किया जिसके एक सदस्य श्री जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी थे जिन्होंने आगे चलकर पत्रकारों की स्थिति सुधारने में सक्रिय भाग लिया और सारे देश में दौरा कर पत्रकारों की स्थिति का पता लगाया।

अ० भा० हिंदी पत्रकार संघ का तीसरा अधिवेशन कलकत्ता में १९४३ में हुआ। इस अधिवेशन में न्यूनतम वेतन आदि प्रश्नों पर संचालकों और श्रमजीवी पत्रकारों में तनाव पैदा हो गया। इस अधिवेशन में पत्रकारों का न्यूनतम वेतन ४० रु० से बढ़ा कर ५० रु० प्रतिमास स्वीकार किया गया। प्रोवीडेंट फंड और महंगाई भत्ते आदि के संबंध में भी प्रस्ताव स्वीकार किये गये। पत्रकारों की आर्थिक स्थिति की जांच के लिए एक समिति भी नियुक्त की गयी जिसमें पत्र-संचालक और श्रमजीवी पत्रकारों, दोनों के प्रतिनिधि शामिल थे। इस समिति ने अपनी रिपोर्ट संघ के चौथे अधिवेशन (१९४४, कानपुर) में प्रस्तुत की। श्रमजीवी पत्रकारों की आर्थिक स्थिति के संबंध में इसे पहली रिपोर्ट कहा जा सकता है। इस रिपोर्ट के प्रति संचालक उदासीन थे, अतः इस रिपोर्ट पर अधिवेशन में कोई निर्णय नहीं हो सका।

श्री बनारसीदास चतुर्वेदी की अध्यक्षता में संघ का पांचवां अधिवेशन १९४५ में मथुरा में हुआ। संघ के संविधान में भारी परिवर्तन किये गये और उसे प्रजातंत्री

रूप दिया गया। फलतः यह संघ श्रमजीवी पत्रकारों का संगठन बन गया। बाद में अखिल भारतीय श्रमजीवी पत्रकार संघ के निर्माण और इसके सक्रिय नेताओं के उस में संलग्न हो जाने के कारण हिंदी पत्रकार संघ का काम ठप्प हो गया।

राष्ट्रीय पत्रकार यूनियन

'राष्ट्रीय पत्रकार यूनियन' (भारत) एन० यू० जे० (आई०) की स्थापना जनवरी १६६६ में नयी दिल्ली में की गयी। इसके पहले अध्यक्ष श्री एल० मीनाक्षीसुंदरम् बनाये गये जो पहले अ० भा० श्रमजीवी पत्रकार सघ के महामंत्री रह चुके थे। इसका निर्माण भी ट्रेड यूनियन के आधार पर किया गया। इसके संगठन कर्ताओं का दावा है कि इसकी सदस्य संख्या १५०० से अधिक है और इसे वेतन बोर्ड तथा अन्य सरकारी समितियों में हिस्सा मिलना चाहिए। वेतन बोर्ड में प्रतिनिधित्व के प्रश्न पर राष्ट्रीय पत्रकार यूनियन ने दिल्ली हाई कोर्ट में अपील की। सरकार ने हाई कोर्ट में कहा कि वह दोनों पत्रकार संघों के सदस्यों की संख्या की पुनः जाच करेगी, और उसके बाद में ही वेतन बोर्ड की स्थापना की जायगी। पत्रकारों के वेतन बोर्ड की स्थापना का प्रश्न अभी तक अधर में लटका हुआ है।

राष्ट्रीय पत्रकार यूनियन का पहला राष्ट्रीय सम्मेलन १४ और १५ दिसंबर १९७४ को नयी दिल्ली में हुआ जिसकी अध्यक्षता श्री एच० के० गौड ने की। 'इंक वर्ल्ड' इसका मुखपत्र है जिसका प्रकाशन दिल्ली से होता है।

भारत में पत्रकारिता प्रशिक्षण

समाचार-पत्र के विभिन्न विभागों और पदों पर अनेक व्यक्ति काम करते हैं। सब के सम्मिलित प्रयास का फल ही समाचार-पत्र का एक अंक होता है। सभी पदों और कामों की कार्य-पद्धतियां और तकनीक अलग-अलग हैं। इन सभी कार्य-पद्धतियों से क्रियात्मक और सैद्धांतिक रूप से परिचित करा देने के लिए ही पत्रकारिता प्रशिक्षण की आवश्यकता महसूस की जाने लगी।

पिछले दो-तीन दशकों में पत्रकारिता-क्षेत्र का विस्तार हुआ। वैज्ञानिक उपलब्धियों ने पत्रकारिता की विषय-वस्तु की कायापलट कर दी। जन-संचार के सभी अंग इसमें सिमट कर आ गये। रेडियो, दूरदर्शन, फिल्म आदि नये माध्यम पत्रकारिता से जुड़ गये। अनेक नये विषय, जन-संपर्क तथा विज्ञापन भी इसमें मिला दिये गये। कुल मिलाकर पत्रकारिता आज जन-संप्रेषण का सामाजिक विज्ञान बन गयी है। आधुनिक भारत में इन सभी माध्यमों में प्रशिक्षित व्यक्तियों की अत्यंत आवश्यकता है। जनता की भाषा में जनता तक इन माध्यमों द्वारा पहुंचना, उन्हें शिक्षित करना, सूचित करना, इनका मनोरंजन करना, जिज्ञासा उत्पन्न करना, सही निदेशन देना आदि आज की पत्रकारिता का लक्ष्य है। इन लक्ष्यों की प्राप्ति में प्रशिक्षित पत्रकार अधिक सहायक हो सकते है। उन्हें, नौसिखिये लोगों की बजाय पत्रकारिता के विभिन्न माध्यमों—समाचार-पत्र, रेडियो, दूरदर्शन एवं फिल्म के कार्य संचालन में पूर्व ज्ञान के आधार पर अधिक सरलता एवं सुविधा होगी। उन्हें पद्धतियों और तकनीकों को समझने में नये लोगों की अपेक्षा कम समय लगेगा। प्रशिक्षित पत्रकार समाचार-पत्र तथा अन्य माध्यमों के विभिन्न पदों पर बखूबी तालमेल रखकर शीघ्रता से काम निपटा सकते हैं। युग-निर्माता पत्रकार जोसेफ पुलिट्जर ने ठीक ही कहा है, "जो पैदायशी संपादक होने का दावा करता है, जिसने बिना किसी विशेष अध्ययन या तैयारी के कुछ सफलता प्राप्त कर ली है वह केवल इस बात का प्रमाण है कि उसमे विशेष योग्यता है, रुचि है, परिश्रम करने की क्षमता है...यदि ऐसे व्यक्ति को पत्रकारिता का समुचित प्रशिक्षण मिल जाय तो वह उतनी ही सफलता बहुत थोड़े समय और

श्रम से अर्जित कर सकता है।"

हमारे देश में पत्रकारिता का प्रारंभ हुए लगभग २०० वर्ष हो गये किंतु पत्रकारिता प्रशिक्षण केवल ३८ वर्ष पहले शुरू हुआ—१९३८ में अलीगढ़ विश्वविद्यालय में। इस पाठ्यक्रम के प्रारंभकर्ता न्यायमूर्ति श्री शाह मोहम्मद सुलेमान का १९४० में निधन होते ही प्रशिक्षण कार्यक्रम की भी इतिश्री हो गयी। पत्रकारिता का सुव्यवस्थित प्रशिक्षण आरंभ करने का श्रेय लाहौर के पंजाब विश्वविद्यालय को है, जहां १९४१ मे संपादकाचार्य श्री पृथ्वीपालसिंह ने स्नातकोत्तर विद्यार्थियों के लिए एकवर्षीय डिप्लोमा प्रारंभ किया। इस कार्यक्रम के अंतर्गत १९४७ तक अनेक विद्यार्थी प्रशिक्षित हुए। भारत-विभाजन के पश्चात प्रो० सिंह ने यह प्रशिक्षण-कार्यक्रम दिल्ली में प्रारंभ कर दिया था। अब यह चंडीगढ़ स्थित पंजाब विश्वविद्यालय के अंतर्गत चल चल रहा है। लाहौर तथा दिल्ली में चले सफल प्रशिक्षण कार्यक्रम के परिणामस्वरूप जहां पत्रकारिता जगत को अनेक श्रेष्ठ संपादक मिले, वहां पत्रकारिता प्रशिक्षण की उपयोगिता को भी भली भाति समझा गया। स्वतंत्रता के तुरंत बाद तथा पांचवें दशक में कलकत्ता, मद्रास, मैसूर, नागपुर तथा उस्मानिया आदि विश्वविद्यालयों ने पत्रकारिता प्रशिक्षण के कार्यक्रम विधिवत प्रारंभ कर दिये। १९५४ में प्रेस आयोग ने भी प्रशिक्षण की आवश्यकता को रेखांकित किया तथा १९६२ में चीनी आक्रमण के समय हमारे प्रचार-अभियान की कमजोरी ने प्रशिक्षण की महत्ता से सभी को अवगत करा दिया। भारत सरकार ने 'इंस्टीट्यूट आफ मास कम्युनिकेशन' की स्थापना की तथा विभिन्न भारतीय विश्वविद्यालयों में पत्रकारिता प्रशिक्षण के कार्यक्रम चलने लगे। विभिन्न प्रदेशों में चल रहे प्रशिक्षण कार्यक्रमों में से कुछ इस प्रकार हैं—

पजाब

पंजाब विश्वविद्यालय के अतिरिक्त पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला, में तथा पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, लुधियाना, में एम० एस-सी० कृषि (पत्रकारिता) में दी जाती थी। अनेक कठिनाइयों के कारण कृषि विश्वविद्यालय में यह कार्यक्रम स्थगित कर दिया गया है।

दिल्ली

दिल्ली में विश्वविद्यालय स्तर पर अलग से पत्रकारिता का प्रशिक्षण नहीं दिया जाता। दिल्ली में एम० ए० हिंदी में पत्रकारिता ऐच्छिक विषय के रूप में पढ़ाया जाता है।

निजी तौर पर भारतीय विद्याभवन का राजेंद्र प्रसाद कालेज आफ मास कम्यूनिकेशन, तथा भारतीय पत्रकारिता विद्यापीठ, हिंदी भवन, कनाट प्लेस, नयी दिल्ली मे पत्रकारिता का सायंकालीन (अंशकालिक) पाठ्यक्रम वर्षों से चलाया जा रहा है। दिल्ली मे श्री गणेश शंकर विद्यार्थी के नाम से भी पत्रकारिता प्रशिक्षण संस्थान चला, पर शीघ्र ही बंद कर दिया गया। नयी दिल्ली में भारत सरकार का इंडियन इंस्टीट्यूट आफ मास कम्यूनिकेशन पत्रकारिता प्रशिक्षण का उच्च पाठ्यक्रम चला रहा है।

भारतीय विद्या भवन ने दिल्ली में भी पत्रकारिता प्रशिक्षण की एक शाखा खोली है। प्रेस इंस्टीट्यूट आफ इंडिया की ओर से पत्रकारों के प्रशिक्षण के लिए लघु प्रशिक्षण पाठ्यक्रम, परिसंवाद, गोष्ठी आदि का आयोजन किया जाता है।

उत्तर प्रदेश

बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में पत्रकारिता तथा जन-संपर्क संस्थान द्वारा पत्रकारिता प्रशिक्षण की आधुनिक व्यवस्था की गयी है।

बिहार

पटना विश्वविद्यालय में बी० ए० में पत्रकारिता ऐच्छिक विषय के रूप में पढ़ाया जाता है।

प० बंगाल

कलकत्ता विश्वविद्यालय में पत्रकारिता प्रशिक्षण कई वर्षों से चल रहा है। पत्रकारिता पाठ्यक्रम में कई संबंधित विषय भी है। यहां पत्रकारिता मे एम० ए० की डिग्री दी जाती है। हर वर्ष पचास से सौ तक पत्रकार यह डिग्री लेकर निकल रहे हैं। पहले यहा अंशकालिक डिप्लोमा कोर्स था परंतु बंगला पत्रकारिता को इस कोर्स से कोई लाभ नहीं हो रहा है। केवल लेक्चरों के जरिये सिद्धात रूप में अंग्रेजी पत्रकारिता की ही पढ़ाई होती है। साधनों के अभाव में छात्र पत्रकारों के लिए प्रायोगिक प्रशिक्षण का कोई भी प्रबंध नहीं है।

असम

गोहाटी विश्वविद्यालय में पत्रकारिता के लिए अंशकालिक डिप्लोमा दिया जाता है। इस एक वर्षीय कोर्स में कोई भी स्नातक प्रवेश ले सकता है। असमी भाषा के लिए यहां कोई प्रावधान नहीं है। माध्यम अंग्रेजी ही है।

उड़ीसा

बहरामपुर विश्वविद्यालय में १९७४ से पत्रकारिता विभाग खुला है। जिसमें अंग्रेजी माध्यम से पत्रकारिता का एक वर्षीय स्नातक स्तर का प्रशिक्षण दिया जाता है। यह पाठ्यक्रम भी समाचार-पत्रकारिता के सिद्धांत तक सीमित है।

मध्य प्रदेश

जबलपुर विश्वविद्यालय में कई वर्षों से सायंकालीन अंशकालिक एक वर्षीय डिप्लोमा कोर्स की व्यवस्था है। बताया जाता है कि धनाभाव तथा अन्य सुविधाओं के अभाव में यह पाठ्यक्रम भी अधिक फलित नहीं हुआ है। जबलपुर के ही राजकीय शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय में 'मास्टर आफ एजुकेशन' पाठ्यक्रम में शैक्षिक पत्रकारिता एक विषय के रूप में पढ़ाया जाने लगा है। पत्रकारिता प्रशिक्षण का एक अन्य

पाठ्यक्रम रविशंकर विश्वविद्यालय, रायपुर में चलाया गया है। यह पाठ्यक्रम भी अंशकालिक ही है। सिद्धांत पक्ष और पुस्तकीय ज्ञान पर आधारित अन्य सुविधाओं के अभाव में यह विभाग भी उल्लेखनीय प्रगति नहीं कर रहा है। इंदौर से प्रकाशित दैनिक पत्र 'नई दुनिया' अपने संवाददाताओं के लिए विशेष प्रशिक्षण शिविरों का आयोजन करता है।

महाराष्ट्र

पत्रकारिता प्रशिक्षण के क्षेत्र में महाराष्ट्र का स्थान प्रथम श्रेणी में आता है। बंबई नगर में के० सी० कालेज तथा भारतीय विद्या भवन में पत्रकारिता का अंशकालिक डिप्लोमा दिया जाता है। यह एकसाला कोर्स उन लोगों के लिए है जो कहीं अन्यत्र सेवारत हैं और पत्रकारिता में शौक के लिए आते हैं। विद्याभवन की मद्रास, हैदराबाद, गुंटूर, बैंगलोर, त्रिवेंद्रम, कोचीन तथा अहमदाबाद शाखाओं में भी पत्रकारिता प्रशिक्षण कार्यक्रम चल रहे हैं। बंबई में 'टाइम्स आफ इंडिया ग्रुप' अपने यहां पत्रकारिता प्रवेश-परीक्षा में चुने गये प्रत्याशियों को प्रशिक्षण और नौकरी एक साथ देता है। यह पूर्ण व्यावसायिक प्रशिक्षण है। यह हिंदी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में होता है। प्रशिक्षार्थी के चुनाव के बाद ही प्रशिक्षण और वेतन सहित नौकरी वहां के नियमानुसार आरंभ हो जाती है। यहां के प्रशिक्षणार्थियों के द्वारा एक अनियतकालिक पत्र—'प्रशिक्षण'—भी चलाया जाता है।

महाराष्ट्र के पूना विश्वविद्यालय में भी पत्रकारिता का एकवर्षीय प्रशिक्षण पाठ्यक्रम चल रहा है। शिक्षण अंग्रेजी में होता है परंतु छात्र उत्तर अंग्रेजी या मराठी में लिख सकते हैं। 'वृत्त विद्या' द्विभाषी प्रायोगिक पत्र विभाग द्वारा प्रकाशित किया जाता है।

मराठवाड़ा विश्वविद्यालय, औरंगाबाद तथा शिवाजी विश्वविद्यालय कोल्हापुर में भी पत्रकारिता का प्रशिक्षण चल रहा है परंतु इन विभागों का विस्तार किया जाना अभी शेष है।

नागपुर का हिस्लाप कालेज पत्रकारिता प्रशिक्षण का प्रसिद्ध संस्थान रहा है। अब नागपुर विश्वविद्यालय का पत्रकारिता विभाग, स्नातक स्तर पर अंग्रेजी माध्यम से प्रशिक्षण दे रहा है। छात्रों को मराठी में उत्तर देने की छूट है। परंतु प्रायोगिक प्रशिक्षण और पुस्तकों के अभाव में प्रशिक्षार्थी स्वयं को अंग्रेजी के चंगुल से छुड़ा पाने में असमर्थ पाता है।

कर्नाटक

पत्रकारिता विभाग, मैसूर विश्वविद्यालय में एक अच्छे स्तर का एकवर्षीय कोर्स (बी० जे०) तथा एक वर्षीय पत्रकारिता प्रशिक्षण पाठ्यक्रम स्नातकोत्तर (एम० जे०) चल रहा है। इस विभाग में कुछ सुविधाएं भी हैं। विभाग को अधिक उपयोगी तथा साधन-संपन्न बनाकर कन्नड़ भाषा का विशेष प्रशिक्षण कार्यक्रम यहां चलाया जा सकता है।

बंगलौर विश्वविद्यालय मे भी मास कम्यूनिकेशन विभाग अंग्रेजी के माध्यम से एम० ए० की डिग्री देता है। पाठ्यक्रम का मौखिक संप्रेषण, रेडियो, फिल्म आदि की ओर अधिक झुकाव है।

गुजरात

गुजरात के कालिदास आर्ट्स कालेज, अहमदाबाद में पत्रकारिता का अंशकालिक डिप्लोमा प्रशिक्षण चल रहा है।

आंध्रप्रदेश

उस्मानिया विश्वविद्यालय में पत्रकारिता विभाग द्वारा स्नातक डिग्री का एक वर्षीय प्रशिक्षण दिया जा रहा है। स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम को धनाभाव तथा अन्य कई कारणों से स्थगित कर दिया गया है। यहा के पाठ्यक्रम का अधिक झुकाव अंग्रेजी पत्रकारिता के विभिन्न अंगों संपादन, लेखन, सबिंग, विज्ञापन, जनसंपर्क तथा उत्पादन की ओर है। अंग्रेजी में 'उस्मानिया कूरियर' पत्र प्रकाशित किया जाता है।

तमिलनाडु

मद्रास विश्वविद्यालय मे स्वतंत्र रूप से पुनः स्थापित पत्रकारिता विभाग मे स्नातक स्तर का एकवर्षीय पाठ्यक्रम चलाया जाता है। मुख्य झुकाव यहां का भी अंग्रेजी पत्रकारिता की ओर है। यह विभाग तमिल को माध्यम बना ले तो अधिक उपयोगी होगा।

भारतीय जनसंचार संस्थान (इंडियन इंस्टीट्यूट आफ मास कम्यूनिकेशन) नयी दिल्ली : यह भारत सरकार का एक राष्ट्रीय संस्थान है। इसमें सूचना और प्रसारण मंत्रालय के विभिन्न विभागों मे सेवारत कर्मचारियों और अधिकारियों को प्रशिक्षण दिया जाता है। जनसंपर्क अधिकारी तथा केंद्रीय सूचना सेवा के लोगों को विशेष प्रशिक्षण दिया जाता है। फिल्म, दूरदर्शन, रेडियो-पत्रकारिता का प्रशिक्षण भी यहां उपलब्ध है। १९७० से अफ्रीका और एशिया के विकासशील देशों के पत्रकारों को यहां पर स्नातकोत्तर स्तर का प्रशिक्षण दिया जाता है। यह एकवर्षीय पूर्णकालिक पाठ्यक्रम है, जिसमें संपादन रिपोर्टिंग, छपाई, लेखन, संपादन, विज्ञापन, जनसंपर्क, रेडियो, दूरदर्शन, फिल्म तथा शोध संप्रेषण आदि का आधुनिक विधि से प्रशिक्षण दिया जाता है। यहां सिद्धांत और प्रायोगिक दोनों पक्षों का प्रशिक्षण सुलभ है। यहां हिंदी-पत्रकारिता की दिशा में भी कदम उठाया गया है। एक अल्पावधि कार्यक्रम हिंदी संवाददाताओं के लिए १९७५ के प्रारंभ में बनारस में आयोजित किया गया था। यदि हिंदी पत्रकारिता के प्रशिक्षण की व्यवस्था यहा नियमित रूप से होने लगे तो संस्थान और भी अधिक उपयोगी सिद्ध होगा। संस्थान का अपना प्रेस है जहां 'कम्यूनिकेटर' (अंग्रेजी) नामक पत्र हर दो महीने बाद छपता है। संस्थान की ओर से भारतीय भाषाओं के पत्रों के संबंध मे कुछ सर्वेक्षण किये गये हैं, वे प्रकाशित हो पायं तो पत्रकारिता में संलग्न व्यक्तियों के दिशा-दर्शन में वे काम आ सकते हैं। सूचना और प्रसारण

मंत्रालय को गंभीरता से इस विषय पर सोचना चाहिए। यह आश्चर्य की बात है कि 'मास कम्यूनिकेशन' के लिए बने संस्थान में 'मासेस' की भाषा का कोई स्थान नहीं है।

बनारस हिंदू विश्वविद्यालय पत्रकारिता विभाग

प्रथम बार उत्तरप्रदेश में केंद्रीय हिंदू विश्वविद्यालय, बनारस में यह पाठ्यक्रम १९७३ में आरंभ किया गया है। एक स्वतंत्र विभाग में एकवर्षीय पूर्णकालिक हिंदी और अंग्रेजी दोनों माध्यमों से प्रशिक्षण की सुविधा यहां उपलब्ध करायी गयी है। स्नातकोत्तर डिप्लोमा पाठ्यक्रम में संपादन, रिपोर्टिंग, सबिंग, अनुवाद लेखन, प्रूफ, छपाई, विज्ञापन, जनसंपर्क, प्रेस कानून, हिंदी पत्रकारिता का इतिहास आदि विषय सिद्धांत के पाठ्यक्रम में सम्मिलित हैं। पांच सप्ताह की प्रायोगिक ट्रेनिंग विभिन्न समाचार-पत्रों, समितियों, रेडियो तथा फिल्म आदि में दी जाती है। दो प्रायोगिक पत्र 'परिसर' (हिंदी) तथा 'कैंपस' (अंग्रेजी) में छात्र प्रकाशित करते हैं। प्रतिवर्ष केवल १५ प्रशिक्षार्थी प्रविष्ट किये जाते हैं।

प्रशिक्षण की समस्याएं

पत्रकारिता प्रशिक्षण की अनेक समस्याएं इसके आरंभ के साथ ही शुरू हो गयीं। प्रथम आवश्यकता यह है कि नीति में परिवर्तन हो और सूचना सेवाओं और जनसंपर्क विभागों में प्रशिक्षित पत्रकारों को वरीयता दी जाय। सेवारत पत्रकारों के लिए प्रशिक्षण अनियार्य किया जाय। अधिकारियों को आधुनिक जनसंप्रेषण की तकनीक से परिचित कराने के लिए यह आवश्यक है। देश के कुल चालीस से अधिक स्थानों में यह प्रशिक्षण चल रहा है, परंतु बनारस विश्वविद्यालय को छोड़कर कहीं पर भी यह पाठ्यक्रम पूर्णकालिक नहीं है। दो-तीन घंटे सायं-कक्षा में जाने पर छह-आठ महीनों बाद किसी व्यक्ति को प्रशिक्षित पत्रकार घोषित कर देना इस व्यवसाय की खिल्ली उड़ाना मात्र है। यही कारण है कि समाचार-पत्र के लोग प्रशिक्षित पत्रकारों की उपयोगिता को महत्व नहीं देते है। अतः जहां पर भी यह कोर्स हो या चलाया जाय, कक्षा के नाम पर भीड़ न जुटायी जाय। प्रशिक्षण की आवश्यक सुविधा सुलभ कराकर यह ही पाठ्यक्रम चले। विश्वविद्यालय के कला संकायों से इन्हें निकालकर विज्ञान और शिल्प की तरह इसके साथ व्यवहार किया जाय। पत्रकारिता के इस युग में भी चालीस में से केवल चार विश्वविद्यालय बनारस, उस्मानिया, पंजाब और मैसूर के पास ही टेलीप्रिंटर्स (दूरमुद्रक) सेवा है। हिंदी भाषा में पाठ्यक्रम की पुस्तकों का अत्यंत अभाव है। पत्रकारों, अध्यापकों का अभाव भी एक समस्या है। कुछ अंशकालिक रूप से सेवारत पत्रकार ही प्रशिक्षण कार्य में लगे हुए हैं। आवश्यकता इस बात की है कि समाचार-पत्र, रेडियो, दूरदर्शन तथा फिल्म एवं राज्यों के सूचना विभाग, वहां के पत्रकार विभागों से मिलकर अपनी-अपनी आवश्यकता के अनुसार लोगों को प्रशिक्षित करायें जिससे कि प्रशिक्षित पत्रकारों की रोजगार समस्या का भी हल हो जायगा।

भावी दिशा

उत्तर प्रदेश में प्रायः सभी विश्वविद्यालयों में पत्रकारिता विभाग खुलने की संभावना है परंतु यह कदम अधिक उपयोगी साबित नहीं होगा। पत्रकारिता विभाग उस विश्वविद्यालय में खोले जायं जहां से समाचार-पत्र प्रकाशित होते हों या रेडियो स्टेशन आदि से जहां पर छात्रों को व्यावहारिक प्रशिक्षण मिल सके। केवल भाषणों द्वारा पाठ्यक्रम पूरा कराना व्यवसाय के प्रति अन्याय है।

अब शीघ्र ही गढ़वाल, अवध (फैजाबाद), कानपुर, आगरा (उ० प्र०), ग्वालियर (म० प्र०), पटना (बिहार) में यह पाठ्यक्रम आरंभ होने जा रहा है। वस्तुतः होना यह चाहिए कि प्रत्येक राज्य में वहां की भाषा को आधार बनाकर विश्व-विद्यालयों में प्रशिक्षण पाठ्यक्रम चलाया जाय। अभी तक हिमाचल, हरियाणा, जम्मू-कश्मीर, राजस्थान, केरल, गोवा, मिजोरम, नागालैंड, अरुणाचल, सिक्किम, पांडिचेरी और त्रिपुरा में प्रशिक्षण सुविधा नहीं है। हिमाचल और हरियाणा अपने यहां शिमला और अंबाला या रोहतक में यह कार्यक्रम चला सकते हैं। राजस्थान में जयपुर और अजमेर में पत्रकारिता प्रशिक्षण की अत्यंत आवश्यकता है। यह भी आवश्यक है कि हिंदी भाषी राज्य मिलकर दिल्ली विश्वविद्यालय के सहयोग से एक राष्ट्रीय स्तर का पत्रकारिता प्रशिक्षण संस्थान चलायं जिसमें हिंदी पत्रकारिता की पाठ्य पुस्तकें भी तैयार करायी जायं तथा समाचार-पत्रों और सूचना विभागों के लिए भी प्रशिक्षित लोग तैयार किये जा सकें।

हिंदी का अखबार : पाठक की दृष्टि में

इस देश में समाचारों को पढ़ने की भूख अभी फैली नहीं है। समाचार सुने अधिक जाते हैं, पढे कम। और समाचारों को सुनने का माध्यम सदैव ही जन-संचार नहीं होता। उसने उससे कहा, और उसने उससे कहा, की एक लंबी आडी-टेढ़ी संप्रेषण रेखा ही अधिकाश समाचारो की यात्रा का साधन बनती है। और इस मार्ग में समाचार खंडित और विकृत होते हैं, इनका संदर्भ टूट जाता है। वे अफवाहों का वेश धारण कर लेते हैं।

जिस देश के अधिकांश लोग अशिक्षित हों, और जो शहर से दूर गांवों का जीवन जीते हो, वहा मुख-से-मुख वाली अंतःक्रिया ही संचार-संप्रेषण की आवश्यकता को पूरा कर पाती है।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात निश्चित ही गांवों का एकाकीपन कई दृष्टियों से टूटा है। यातायात की सुविधाएं बढ़ी हैं, डाकघर अब एक लाख से भी अधिक हो गये हैं, ट्रांजिस्टर की आश्चर्यजनक क्रांति ने 'विविध भारती' को ग्रामीण और आदिवासी अंचल में भी लोकप्रिय बनाने का महत्वपूर्ण कार्य संपन्न किया है; पाठशालाओं के खुलने से युवा वर्ग मे शिक्षण का विस्तार हुआ है; और राजनीतिक व्यवस्था ने—शासन प्रणाली एवं राजनीतिक दलों ने लोगों में जागृति फैलायी है, उनका राजनीतिक समाजीकरण किया हे। निश्चित ही स्वतंत्रता के पश्चात जन-संचार के क्षेत्र का विस्तार हुआ है। सभी भाषाओं में कुल मिला कर दैनिक अखबार ७५० से ऊपर छपते हैं, पर पाठकों की संख्या प्रति एक हजार पर १३ या १४ के लगभग ही है। स्पष्ट है कि ये पाठक शहरी और शिक्षित हैं।

१९६७ में मैंने उत्तर प्रदेश के तीन समुदायों का अध्ययन किया था—चुनाव-प्रक्रिया को समझने के लिए। इनमें से एक गांव था और एक नगला; तीसरा समुदाय २५ हजार की आबादी वाला एक कस्बा था—जिले की राजधानी। इस कस्बे से छह सांप्ताहिक पत्र प्रकाशित होते थे, और बाहर से नौ अंग्रेजी के, ११ हिंदी के, तथा एक उर्दू का दैनिक समाचार-पत्र आता था। इसके अतिरिक्त ३० पत्र-पत्रिकाएं भी यहां की न्यूज एजेंसियां मंगाती थीं। जिले के इस प्रमुख कस्बे में हिंदी पाठकों की

संख्या अंग्रेजी पाठकों से तो निस्संदेह ही अधिक थी, पर थी बहुत ही कम। कुछ महत्वपूर्ण पत्र-पत्रिकाओं की पाठक संख्या इस प्रकार थी :

हिंदी पत्र-पत्रिकाएं	पाठक संख्या
हिंदुस्तान दैनिक	३००
नवभारत टाइम्स	१३०
सैनिक	१३०
अमर उजाला	१२६
वीर अर्जुन	१०७
साप्ताहिक हिंदुस्तान	१५०
धर्मयुग	१००
दिनमान	७
माधुरी	३०
हिंदी ब्लिट्ज	४०
अंग्रेजी पत्र-पत्रिकाएं	**पाठक संख्या**
द हिंदुस्तान टाइम्म	१२५
द स्टेट्समेन	७२
इंडियन एक्सप्रेस	४५
नेशनल हेरल्ड	४०
टाइम्स आफ इंडिया	३०
फिल्म फेयर	२०

इनके अतिरिक्त जो अन्य हिंदी की पत्र-पत्रिकाएं यहां आती थीं, उनके नाम इस प्रकार हैं : 'नवजीवन', 'प्रताप', 'बेकार सखा', 'उजाला', 'स्वतंत्र भारत', 'मरिता', 'कादंबिनी', 'नवनीत', 'मनोहर कहानियां', 'माया', 'नीहारिका', 'अरुण', 'प्रिया', 'मुक्ता', 'युवक', 'रानी', 'शक्तिपुत्र', 'जाह्नवी', 'साथी', 'उर्दू साहित्य', 'ज्ञानोदय', 'पराग', 'सारिका', 'इंद्रजाल'।

इस कस्बे के पड़ोस के गांव मे, जिसकी जनसंख्या चार हज़ार से ऊपर थी, केवल स्कूल के वाचनालय में ही दो दैनिक, एक साप्ताहिक, एक मासिक पत्र-पत्रिकाएं आतीं थी।

छोटे नगले में किसी समाचार-पत्र के आने की सूचना हमें नहीं मिली।

उत्तर प्रदेश के एक जिले के इन तीन समुदायों का संचार मानचित्र एक प्रकार से देश की संचार स्थिति का परिचायक माना जा सकता है।

इतनी कम संख्या में समाचार-पत्रों के वितरण से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि अधिकांश लोग समाचार-पत्र नहीं खरीदते, और इस कारण उन्हें नहीं पढ़ते। जो पढ़ते भी हैं, उनमें यदाकदा पढ़ने वालों की संख्या अधिक है। स्पष्ट है कि ऐसे लोग वाचनालयों, पान की दुकानों, या फिर रेस्तराओं में बैठ कर हो इन्हें पढ़ते हैं।

इस देश की जनसंख्या की तुलना में समाचार-पत्रों के पाठकों की संख्या सचमुच ही कम है। और कुछ हो, यह देखा गया है कि नगर का अभिजात-श्रेष्ठि वर्ग समाचार-पत्रों का प्रमुख उपभोक्ता है। इस वर्ग में अंग्रेजी का पत्र पढ़ना प्रतिष्ठा का सूचक है। हिंदी का दैनिक या तो घर के बड़े-बूढ़ों, या औरतों या फिर नौकर-चाकरों के लिए ही खरीदा जाता है। उत्तर प्रदेश के कई बड़े शहरों में लोग हिंदी का प्रादेशिक या स्थानीय समाचार इसलिए खरीदते हैं कि उसके माध्यम से उन्हें स्थानीय समाचार ज्ञात हो जायं और महिलाओं और बच्चों को यह पता चल जाय कि स्थानीय सिनेमाघरों में 'पिक्चरें' कौन-सी चल रही हैं।

कहने का अर्थ यह कि समाचार-पत्र स्वयं सामाजिक स्तृतीकरण का एक सूचक बन गया है। यह संभव है कि ग्राहकों की रुचि के अनुरूप समाचार-पत्र अपनी संपादकीय नीतियां निर्धारित करते हों, या फिर सपादकीय नीति के आधार पर ही ग्राहकों का वर्ग निर्धारित हुआ हो। समाचार-पत्र की लोकप्रियता कई बातों पर निर्भर करती है— उसकी विषय-वस्तु, उसकी भाषा, उसका मूल्य, उसकी पहुंच।

हिंदी के समाचार-पत्रों की लोकप्रियता एक प्रकार से मध्यम-वर्ग तक ही सीमित रही है। राष्ट्रीय स्तर के कहे जाने वाले समाचार-पत्र भी देश के सभी प्रांतों में वितरित नहीं होते। जिन प्रांतों में वे जाते है वहा भी उनका वितरण नागरी क्षेत्रों तक ही हो पाता है। प्रादेशिक स्तर पर राष्ट्रीय समाचार-पत्र कुछ इसलिए भी कम लोकप्रिय हो पाते हैं कि उनमें प्रादेशिक और स्थानीय समाचारों का अभाव रहता है। परानुभूति की क्षमता की कमी के कारण इन स्थानों में रहने वाला पाठक अंतर्राष्ट्रीय मामलों में न तो रुचि ही लेता है और न वह उन्हें समझ ही पाता है। सीमित पृष्ठों में छपने वाले इन पत्रों में समाचार तो जैसे तार की भाषा में दिये जाते हैं। पूरा एक पृष्ठ सोने-चांदी और दाल-अनाज के भावों से भरा होता है, तो दूसरा खेल-कूद के किस्सों से। मै यह अनुमान लगा सकता हूं कि यह पाठक वर्ग लंबे लेखों और मेहनत से तैयार किये संपादकीयों में भी रुचि नहीं रखता। निरंतर बढते जाने वाले समाचार-पत्र के मूल्य ने भी नये भावी ग्राहकों को निरुत्साहित ही किया है। २५-३० पैसे में समाचार-पत्र को खरीदें या एक प्याला गरम चाय का पियें—इस द्वंद्व का समाधान संभवतः चाय के पक्ष में ही होता है। सामान्य नागरिक जहा रेस्तरां मे चाय पीता है, वहां फटे, कुचले हुए, जर्जर समाचार-पत्र की बडी-बड़ी खबरों पर वह नजर भी डाल लेता है।

अंग्रेजी समाचार-पत्रो का पाठक हिंदी का समाचार-पत्र एक पूरक के रूप में ही खरीदता है, अंग्रेजी पत्र के प्रतिस्थापन के रूप मे नहीं। हिंदी में खबरें अधिकांश में छोटी हो जाती हैं, अंग्रेजी समाचार एजेंसियों द्वारा भेजे गये समाचारों का गलत-सलत उल्था भी कभी-कभी हिंदी के अखबारों में छाप दिया जाता है। हिंदी के संवाददाता अभी 'समाचार की खोज' के लिए पिल पड़ने, 'एडवेंचर' करने की तरफ कोई खास कदम नहीं उठाते हैं। स्वयं दिल्ली में कई महत्वपूर्ण घटनाएं घट जाती हैं पर उनको हिंदी के समाचार-पत्र रिपोर्ट नही करते। दिल्ली की महानगरी मे यदि अधिकांश बौद्धिक गतिविधियां अंग्रेजी के माध्यम से होती हों तो फिर हिंदी के संवाददाता

का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वह उनका प्रबन्ध करे और उन पर लिखे ताकि हिंदी का पाठक उनसे अवगत हो सके। निश्चित ही संवाददाता का दायित्व इस दृष्टि से बहुत बड़ा है। व्यक्तिगत अनुभव से मैं यह कह सकता हूं कि हमारे संवाददाता खबर की खोज में विश्वास नहीं रखते। यदि खबर उन्हें खोजती हुई पहुंच जाय तो वे उसे यथास्थान देने का कर्म करके खबर लाने वाले पर मेहरबानी दर्शाते हैं। स्वयं खबर के लेखन में जो कलात्मकता की गुंजाइश है उसका भी पूरा-पूरा लाभ नहीं उठाया जाता। यदि संवाददाता भेंटवार्ता में भेंट किये जाने वाले व्यक्ति से ही 'डिक्टेशन' देने के लिए कहे तो फिर उस लेखन में संवाददाता की कलम तो बोल ही नहीं सकती।

एक उदाहरण स्मरण आता है। लाल किले पर होने वाले किसी कवि-सम्मेलन के विषय में एक बार समाचार छपा। समाचार में कुछेक कवियों की कविताओं के अंश भी छपे थे। पढ़ कर बड़ा सुखकर लगा। पर बाद में ज्ञात हुआ कि जिन कवियों की कविताओं के उदाहरण दिये गये थे वे उस कवि-सम्मेलन में आये ही नहीं थे। हुआ यह कि संवाददाता ने कवि-सम्मेलन को स्वयं सुनने के स्थान पर उसके संबंध में प्रकाशित स्मारिका को ही अपने समाचार का आधार बना लिया था।

मैं यह नहीं कहता कि ऐसा हिंदी में ही होता है। होता अंग्रेजी में भी है, पर साथ ही अंग्रेजी पत्रकारिता के क्षेत्र में जितने नाम उभर कर आये हैं उतने दुर्भाग्य से हिंदी में नहीं। हमें इस चुनौती का सामना करना पड़ेगा। अंग्रेजी के अखबार कई प्रकार की खबरों की भूख की तुष्टि करते हैं। पढ़े-लिखे बेकारों के लिए नौकरियों के विज्ञापन, अविवाहितों के लिए विवाह-विज्ञापन, वाणिज्य-व्यवसाय संबंधी सूचनाएं, बौद्धिक चिंतन की सामग्री, खेल-कूद की खबरें आदि पर पर्याप्त और सुव्यवस्थित सामग्री इन पत्रों में प्रतिदिन प्राप्त होती है। हिंदी के पत्र भी इन सब पर कुछ न कुछ सामग्री देते अवश्य हैं, पर किसी भी क्षेत्र में वह पर्याप्त नहीं होती। नौकरी की तलाश करने वाले, या विवाह-साथी की खोज में रत व्यक्ति को जबरन अंग्रेजी के पत्र का आधार ही लेना होता है।

यह अचरज और चिंता की ही बात है कि इस देश में सर्वाधिक बोली जाने वाली और राष्ट्रीय भाषा में प्रकाशित दैनिक समाचार-पत्र वितरण (सर्क्युलेशन) की दृष्टि से चौथे और पांचवें स्थान पर आते हैं। १९७२ के आंकड़ों के आधार पर बंगला में प्रकाशित 'अमृत बाजार पत्रिका' का देश में सर्वाधिक वितरण है (३,१०,२४०), उसके बाद केरल की मलयालम 'मनोरमा' (२,०४,०७८) का नबर आता है। तीसरे स्थान पर पुनः बंगला का 'जुगांतर' है। (१,९३,६४६)। 'नवभारत टाइम्स' (१,८०,२८७) और 'हिंदुस्तान दैनिक' (१,६१,०८८) क्रमशः चौथे और पांचवें स्थान पर हैं। दैनिक पत्रों और अन्य पत्र-पत्रिकाओं की कुल वितरण-संख्या को मिला लेने पर भी हिंदी का स्थान द्वितीय ही आता है। अंग्रेजी प्रकाशनों का कुल वितरण ७,७७२ हजार है और हिंदी का ६,८५९। हजार जनसंख्या की विशालता के संदर्भ में यह संख्या नगण्य सी दीख पड़ती है।

हिंदी-भाषी क्षेत्रों में हिंदी पत्र-पत्रिकाओं का अभाव उतना नहीं है। हर क्षेत्र

में कई छोटी-छोटी पत्रिकाएं और साप्ताहिक छपते रहते हैं। न केवल उनकी जन्म-दर चौंका देने वाली है, उनकी मृत्युदर भी पर्याप्त चिंता का कारण है। स्थानीय आवश्यकताओं और मांग को ये पत्र-पत्रिकाएं किसी सीमा तक पूरा करती है। पर इनकी भी अपनी समस्याएं हैं।

इन समस्याओं का विधिवत सर्वेक्षण और विश्लेषण तो नहीं किया गया है। फिर भी कुछ बातें कही जा सकती हैं।

इन क्षेत्रों से प्रकाशित दैनिक पत्रों की स्थिति अन्य पत्र-पत्रिकाओं की तुलना में अधिक अच्छी है। वे नियमित रूप से प्रकाशित और वितरित होते है, उनमें विज्ञापन भी छपते हैं, संपादकीय भी ठीक से लिखे जाने का प्रयास किया जाता है, और कलेवर की सज्जा में उनका संदर्भ सदैव राष्ट्रीय स्तर के पत्र रहते है। इतना होने पर भी तुलनात्मक दृष्टि से वे बंगला, तमिल या मलयालम भाषा में प्रकाशित पत्रों से उच्च कोटि के नही है। पत्रकारिता के मानदंड के हिसाब से इनमें कई कमियां दृष्टि-गोचर होती है। स्थानीयता और प्रादेशिकता पर बल दिये जाने के कारण इन क्षेत्रों का प्रबुद्ध पाठक केवल इन्हीं समाचार-पत्रों को पढ़ कर संतोष नहीं कर पाता। उसे बरबस महानगरों से प्रकाशित पत्रों पर अवलंबित होना पड़ता है। वाक्य-विन्यास और प्रकाशन का अभाव ही पाया जाता है।

कुछेक साप्ताहिक पत्र क्षेत्रीय होते हुए भी वर्षों से छपते चले आ रहे है। उनका वितरण भी पर्याप्त है। पर उनका अस्तित्व पाठकों से अधिक विज्ञापनों पर निर्भर करता है। अपनी स्कैंडल उछालने की क्षमता के कारण राजकीय कार्यालयों से उन्हें विज्ञापन मिलते रहते हैं और प्रांत के सार्वजनिक वाचनालयों एवं स्कूल तथा कालेज की लाइब्रेरियों से उन्हें ग्राहकी चंदा मिलता रहता है। इनमें से कुछ तो ऐसे भी हैं जो एक ही अंक में अलग-अलग क्षेत्रों के लिए अलग-अलग विज्ञापन छापकर प्रति पृष्ठ दो या तीन विज्ञापनों के लिए पैसा बना लेते हैं। विभिन्न राजनीतिक दल भी साप्ताहिक चलाते हैं। कई बार राजनीतिक नेता अपनी आजीविका के लिए पत्र को माध्यम बनाते हैं और इस कारण स्वयं-नियुक्त की हैसियत से शेष समय राजनीति में लगाने के लिए उन्हें पर्याप्त अवकाश मिल जाता है और आर्थिक कष्ट भी कुछ सीमा तक टल जाता है।

हिंदी पत्रकारिता और हिंदी के प्रकाशनों के पास अवसर भी है और चुनौती भी। इनका भविष्य इस पर निर्भर करता है कि वे चुनौती को किस प्रकार झेलते हैं और अवसर का किस प्रकार लाभ उठाते हैं।

सब से प्रमुख आवश्यकता तो इस बात की है कि वे अपनी 'पूरक' की भूमिका को तजकर स्वयं में पूर्ण बनें। हिंदी में समाचार-पत्र पढ़ने वाले पाठक को इस बात की आवश्यकता अनुभव न हो कि अंग्रेजी का समाचार-पत्र पढ़ा जाय। अपने कलेवर का विस्तार करने, अपने समाचारों को सर्वांग-व्यापी बनाने, चुटकुलों सी गुदगुदी करने वाले समाचारों के स्थान पर गुरु-गंभीर प्रश्नों पर यथोचित सामग्री देने, और इस प्रक्रिया में स्वयं पाठक का स्तर और उसकी अपेक्षाओं को ऊंचा उठाने की तीव्र आवश्यकता का अनुमान उन्हें लगाना होगा। और इस दिशा में भरसक यत्न करना होगा। हिंदी को राष्ट्रीय भाषा

के स्थान पर बैठाने में जो विलंब हो रहा है उसका थोड़ा-बहुत दायित्व तो हिंदी पत्रकारिता पर है ही। हमें यह प्रश्न पूछना पड़ेगा कि अहिंदी-भाषी क्षेत्रों में हिंदी के समाचार-पत्रों के वितरण को बढ़ाने की दिशा में हमने क्या प्रयास किया है। यह स्पष्ट है कि इस विशाल देश में घटनाओं का केंद्र, केवल राजधानी ही नहीं है। किंतु अन्य क्षेत्रों में होने वाली घटनाओं और गतिविधियों का कितना प्रतिशत और किस अनुपात में हिंदी के समाचार-पत्रों मे प्रकाशित हो पाता है? सुदूर नागालैंड या मिजोरम के बारे में हमारे समाचार-पत्र तब ही कोई समाचार छापते हैं जबकि वहां कोई चिंताजनक स्थिति खड़ी हो जाय या फिर देश का कोई बड़ा नेता वहां का दौरा करे। इन क्षेत्रों का नागरिक अपनी उपस्थिति का आभास कराने के लिए संभवत: हिंसा की संचार-भाषा को ही कारगर समझने लगा है। समाचार-पत्रों की जो परिवेश के सर्वेक्षण और पाठक-वर्ग के शिक्षण की भूमिका है वह ठीक से संपादित नहीं की जा रही है। इस कारण न तो दूर के क्षेत्र ही संचार की परिधि में आ पाते हैं और न ही संचार की परिधि में स्थित पाठकों का संज्ञानात्मक मानचित्र ही विकसित हो पाता है।

भाषा का प्रसार और उसका स्वीकरण-अंगीकरण केवल सत्ता की मंशा और विधेयक पारित करने से ही नही हो पाता। उसके लिए संचार-सूत्रों की आवश्यकता होती है। इन सूत्रों के कर्णधार यदि इस आवश्यकता की पूर्ति ठीक से नहीं कर पाते तो फिर पारित किये गये पवित्र प्रस्ताव फाइलों की शोभा ही बढ़ा सकते हैं; वे प्रसार का पर्याय नहीं हो सकते।

हिंदी पत्रकारिता को इस चुनौती का सामना करने के लिए दृढ़ संकल्प करना होगा।

पुराने पत्रकारों की गद्य शैली

भारतेंदु हरिश्चंद्र

यों तो १८२६[1] से १८७३[2] तक बहुत से साहसी व्यक्ति अखाड़े में उतरे थे किंतु उन सब में अधिक प्रतिभाशाली व्यक्तित्व भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र (१८५० से १८८५) का था। उन्होंने 'हरिश्चंद्र मैगजीन' नामक पत्रिका का प्रकाशन करके, भारतीय पत्र-कारिता को ही नहीं, अपितु हिंदी भाषा एवं शैली को भी नयी दिशा की ओर मोड दिया। "हिंदी गद्य का परिष्कृत रूप प्रारंभ में इसी पत्रिका में प्रकट हुआ।"[3] भारतेंदु ने अपनी 'कालचक्र' नामक पुस्तक में लिखा है—"हिंदी नयी चाल में ढली १८७३ से।" नयी चाल में ढलने का तात्पर्य है हिंदी गद्य को परंपरागत ब्रजभाषा, संस्कृत तथा उर्दू-फारसी के शब्द बाहुल्य से मुक्ति दिलाकर ऐसे व्यवस्थित एवं परिनिष्ठित रूप में प्रस्तुत करना जो जन-सामान्य से लेकर विद्वानों तथा कलकत्ते से लेकर काश्मीर तक, सभी को मान्य हो। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार—"जिस प्यारी हिंदी को देश ने अपनी विभूति समझा, जिसको जनता ने उत्कंठापूर्वक दौडकर अपनाया, उसका दर्शन इसी पत्रिका (हरिश्चंद्रचंद्रिका) में हुआ।"[4]

पत्रकारिता, निबंध विधा और गद्यशैली

वैसे तो हरिश्चंद्र जी हिंदी नाटकों के आदि व्यवस्थापक माने जाते हैं, किंतु अन्यान्य गद्य-रूपों और विशेषत: निबंध की विधा के प्रचलन मे उनका योगदान अविस्मरणीय है। हिंदी निबंध को व्यवस्थित रूप देने का प्रथम श्रेय भारतेंदु की पत्र-कारिता को जाता है। भारतेंदु-युग में इस विधा का इतना त्वरित विकास हुआ कि

१. ३० मई १८२६ को हिंदी का प्रथम पत्र 'उदंत मार्तंड' प्रकाशित हुआ था।
२. १५ अक्टूबर १८७३ से भारतेदु ने 'हरिश्चद्र मैगजीन' नामक मासिक पत्रिका आरंभ की थी। आठ अंकों के पश्चात् इसका नाम बदलकर 'हरिश्चद्रचद्रिका' रख दिया गया था।
३. 'हिंदी साहित्य कोश' (वाराणसी, प्र० स), भाग २, पृ० ६४१।
४. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, 'हिंदी साहित्य का इतिहास' (२०२५ वि०), पृ० ४३५।

'कविता और नाटक जैसे प्राचीनतम रूप भी पीछे छूट गये।"[1] यों तो निबंध पहले से लिखे जा रहे थे किंतु भारतेंदु ने उसे ऐसा मानक रूप दिया कि वह एक सर्वस्वीकृत विधा के रूप में प्रतिष्ठित हो गया। उन्होंने स्वयं स्तरीय निबंध लिखे तथा दूसरों को लिखने की प्रेरणा दी। भारतेंदु जी सामाजिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक, धार्मिक, पौराणिक, भौगोलिक तथा साहित्यिक अनेक प्रकार के निबंध लिखते थे। निश्चित ही इतने विविधतापूर्ण निबंध किसी एक शैली मे सफलता एवं सरलतापूर्वक नहीं लिखे जा सकते इसीलिए भारतेंदु को अनेकानेक शैलियो में रचना करने के लिए मजबूर होना पड़ा था। इन निबंधों में सर्वाधिक मात्रा सामाजिक तथा राष्ट्रीय निबंधों की है। इन विषयों को वे चुटकी लेते हुए, व्यंग्य में लिखा करते थे।

व्यंग्यात्मक शैली के लिए भारतेंदु जी ने विषय को ध्यान में रखते हुए पांच प्रकार के भाषा-रूप अपनाये है। इनमें से पहला रूप संस्कृत की प्रधानता का है। इस भाषा मे जब वे बोलते है तो पडे-पुजारियों, धर्माधिकारियों तथा विलासी मठाधीशों पर व्यंग्य करते हैं। उस काल में इस वर्ग के लोग देश-जाति की चिंताओं से बेखबर होकर अपने स्वार्थ के लिए भोली-भाली जनता को मूर्ख बनाने में निरत थे। यद्यपि आर्यसमाज और महर्षि दयानंद ने इस वर्ग पर करारी चोट की थी किंतु उनका गढ़ अभी तक टूटा नही था। ऐसे ही वर्ग पर व्यंग्य-वर्षा करते हुए भारतेंदु ने 'संडमंडयोः संवाद' शीर्षक रचना प्रस्तुत की थी, जो संस्कृत प्रधान नहीं, कोरी संस्कृत ही है। उदाहरण द्रष्टव्य है -

संड — क्रीड निश्चिलो भवान्, कुत्रास्माकं देशचिंतातुरणा क्रीडाभिरुचि: ?

भंड —भवतस्तु व्यर्थं देशचिंतातुराः भवच्चिंतया किं भविष्यति ? सुखं क्रीड, रमस्व, खेल, कूदखेलम् याति, पुनः क्व युवतयः।

इस वर्ग मे भिन्न दूसरा वर्ग उन संस्कृत पंडितों का था जो पौरोहित्य इत्यादि मे तो निरत नही थे किंतु अपने स्वार्थ के लिए अंग्रेजों के तलवे चाटने और जी-हुजूरी करने मे रात-दिन एक कर रहे थे। ऐसे लोग कोरे पोंगा-पंडित न होकर, अंग्रेजी-फारसी इत्यादि भाषाओं का भी पूरा ज्ञान रखते थे और जी-हुजूरी में उसका उपयोग करके बड़े-बड़े सरकारी पद, आदर तथा पुरस्कार प्राप्त करते थे। सरकार चाहे चुंगी-टैक्स की ज्यादतियां करे, चाहे उद्योग-धंधों को चौपट कर डाले, उन्हें अपनी गोटी बिठाने से काम था। अपनी मेंबरी, कुर्सी, मुलाकात तथा प्रतिष्ठा के सामने उन्हें देश-भक्ति या राष्ट्रोत्थान की कोई चिंता न थी। वे रात-दिन अपने गौरांग प्रभुओं की टैक्स, रिसेप्शन, दावत आदि से अर्चना करते थे और पुरस्कार प्राप्त करते थे। अंग्रेजों को भी ऐसे ही आंख के अंधों की आवश्यकता थी। ऐसे अंग्रेजों तथा अंग्रेज-भक्तों पर व्यंग्य करते हुए उन्होंने 'वसंत पूजा' शीर्षक संवाद 'हरिश्चंद्र मैगजीन' में लिखा था।[2]

मुद्र भट्ट —रेलतार का किराया च ते, अंग्रेजी सौदे का दामश्चते रुईचते अन्नंचते। × ×

१ 'विद्यार्थी', खंड १, संख्या ८, फाल्गुन सं० १९३५

२. 'हरिश्चंद्र मैगजीन', जि० १, सं० ७-८, अप्रैल-मई १८७४

सर्व भट्ट—खानाचमे टिकट्चमे मद्यंचमे होटलंचमे लैक्चरंचमे ।

मुंद्र भट्ट—स्टारअवइंडियाचमे कौंसिलमैम्बरत्वंचमे उपाधिचमे ।

सर्व भट्ट—दर्बारमे कुरसीचमे मुलाकातमे आनरचमे प्रतिष्ठाचमे ।

मुद्र भट्ट—फूल्सकैपचमे हाफसिविलाइडत्वंचमे जितत्त्वमन्धत्वंचमे बूटंचमे शिफारिशेन कल्पताम ।[1]

इस प्रकार की भाषा के विपरीत दूसरी ओर उर्दू-फारसी थी। उसे प्रधानता देते हुए भी कुछ लेख लिखे गये थे। 'खुशी' और 'कानून ताजीराते शौहर' ऐसे ही लेख हैं। दूसरे का उदाहरण लीजिए—"चूंकि मुनासिब मालूम हुआ कि एक कानून ऐसा इजरा किया जावै जिससे बाद शादी के जोजः अपने शौहरों पर बखूबी हुकूमत कर सकें और इस सबब से उन दोनों मैं निफाक न पैदा हो लिहाजा कानून हस्ब जैल मुरौविज किया गया। दफ. (१) ···दफ (२२) लड़के को मां के बरखिलाफ बोलने या बग़ैर हुक्म बीवी के काम करने को कहैगा वह फौज के बराखिलाफ वलवः करने का मुर्जरिम करार दिया जायगा।···दफा (३१) जोरू की किसी बात का जवाब देना जुर्म हंगामः है। दफः (३२) हंगामा करने वाले मुजरिम को रोने या बकने की सजा दी जायगी। कितः···"

भारतेंदुजी के साहित्य में संस्कृत, फारसी, उर्दू के अतिरिक्त ब्रज, बंगला तथा भोजपुरी शब्दबहुला भाषा के लेख भी सरलतापूर्वक खोजे जा सकते है। एक प्रहसन में तो उन्होंने, बनारस के पंडों से लेकर गुंडों तक की आधा दर्जन भाषाओं से अधिक के कथोपकथन कराये है। इतना ही नहीं, उन्होंने स्वर्ग एवं ईश्वर को आधार बनाकर शासन पर व्यंग्य-वर्षा भी की है। और चूंकि शासकों की भाषा अंग्रेजी थी। अतः इस प्रसंग मे ढेर सारे अंग्रेजी शब्दों का निःसंकोच प्रयोग किया है। 'स्वर्ग में विचार-सभा' शीर्षक लेख से एक नमूना लीजिए :

"ईश्वर ने दोनों दलों के डेप्यूटेशन को बुलाकर कहा···डेप्यूटेशन वाले परमेश्वर की ऐसी कुछ खिजलाई हुई बात सुनकर डर गये। बडा निवेदन-सिवेदन किया··· अतः परमेश्वर ने विचार हेतु एक सिलैक्ट कमेटी स्थापन की।···सिटोवाय के बाप को कमेटी का एक्सआफ़िसियो मैंबर बनाया।···ज़रदुश्त जी को कारस्पौंडिंग आनरेरी मैम्बर नियुक्त किया···।"

बात को टालने के अंग्रेजी तरीकों पर बड़ा करारा व्यंग्य है। जिस किसी वर्ग या पात्र विशेष पर व्यंग्य किया जाता, भारतेंदु प्रायः उसी की शब्दावली प्रयुक्त करते थे। इस काम मे वे किसी को नही बख्शते थे। शासकों तथा उनके पिछलग्गुओं पर बहुत ही करारी चोटें करते थे। इस चोट से मुल्ले-मौलवी तथा पादरी भी नहीं बच पाये थे। 'लेवी-प्राणलेवी' तथा पांचवें (चूसा) पैगंबर' शीर्षक लेख उनकी व्यंग्यात्मक शैली तथा तत्संबंधित भाषा के बहुत अच्छे उदाहरण हैं। 'पांचवें (चूसा) पैगंबर' की कुछ पंक्तियां इस प्रकार हैं : "···(खुदा चूसा से कहता है) देख मूर्तिपूजन

१. तुलनीय—वाजश्चमे, प्रसवश्चमे, प्रयतिश्चमे, प्रीतिश्चमे, क्रतुश्चमे स्वरश्चमे, लोकश्चमे, श्रवश्चमे, श्रुतिश्चमे, ज्योतिश्चमे, स्वश्चमे, यज्ञेन कल्पताम ॥ यजुर्वेद १८।१॥

अर्थात् बुतपरस्ती को जमाने मे उठा देना क्योंकि मैंने हाफमिविलाइज्ड किया दुनिया को पूरा किया तुझ को; जो शराब सब पैगंबरों पर हराम थी मैंने हलाल कि तेरे पर···मैंने हलाल किया तुझ पर गऊ, सूअर, मेंढक, कुत्ता वगैरह सब जानवर जो कि हराम है, मैंने हलाल किया तुझ पर अपने मजहब के वास्ते झूठ बोलना···। देखो, मेरा नाम चूसा है क्योंकि मैं सब का पाप रूपी पैमा चूस लेता हूं।"[1]

यद्यपि यह भाषा भारतेंदु की प्रतिनिधि भाषा नहीं है। व्यंग्यात्मक निबंधों में यदि वे इसी भाषा का प्रयोग सर्वत्र करते तो वह भाषा कोरा प्रयोग बनकर रह जाती और वे भी लक्ष्मणसिंह तथा सितारे-हिंद के समान मात्र अतिवादी दृष्टिकोण के शिकार होकर रह जाते। उनके व्यंग्यात्मक लेखों की भूरि-भूरि प्रशंसा हुई और भविष्य के लेखकों के लिए उन्होंने मार्गदर्शन किया। आवश्यकतानुसार शब्द कई भाषाओं से लिये किंतु उन्होंने कहीं भी —"क्लिष्ट हिंदी, निर्जीव हिंदी और भाराक्रांत हिंदी का समर्थन नहीं किया।"[2]

भाषा की सजीवता के लिए इस शैली के गद्य में लोकोक्तियों तथा मुहावरों का पर्याप्त प्रयोग हुआ है। नक्कारखाने में तूती की आवाज, हाथ मलना, कूए के मेंढक, काठ के उल्लू, नैन नचाना, कान पकड़ना, चार दिना की चांदनी, राजा करे सो न्याव, जिमि दसनन संह जीभ बिचारी, कर्तुमकर्तुमन्यथा कर्तुं समर्थः इत्यादि के प्रयोग उनकी व्यंग्यात्मक शैली मे सर्व सुलभ है। इससे व्यंग्य में तीव्रता आ गयी है। यह कार्य उनकी सहज स्वाभाविक, किंतु चटकीली और प्रवाहपूर्ण भाषा के कारण और भी सरल हो सका है। इस दृष्टि से ग्रीष्म पर लिखी उनकी निम्नलिखित पंक्तियां पठनीय है :

"चुंगी और टैक्स की निष्ठुरता को भी आपकी क्रूरता मात करती है। हम ऐसे कंगालों पर तो तुम इतना जोर जुल्म प्रकट करती हो पर अमीरों और साहेब लोगों के थरम्यन्टीडोट और खस की टट्टियों मे तुम्हारा वश नहीं चलता।"[3] इन पंक्तियों में गर्मी की भयंकरता को लेकर सरकार की क्रूरता पर व्यंग्य किया गया है। यहां टैक्स और थरम्यन्टीडोट जैसे अंग्रेजी शब्द भी प्रयुक्त हैं तथा जोर-जुल्म जैसे उर्दू-फारसी शब्द भी। क्रूरता, निष्ठुरता तथा वश जैसे संस्कृत तत्सम शब्द भी हैं और मात करना तथा वश चलना जैसे लोक-प्रचलित मुहावरे भी। वाक्य भी छोटे और साफ-सुथरे हैं। इसमें कुल मिलाकर व्यंग्य की चोट गहरी है। हां, व्यंग्य के साथ हास्य नहीं है। "वैसे तो भारतेंदुजी ने कोरे हास्य का एक भी निबंध नहीं लिखा" किंतु फिर भी व्यंग्य-मिश्रित ईषत् हास्य उनमें पर्याप्त मात्रा में निखर कर आया : "रिपोर्ट परमेश्वर के पास भेजी गयी। इसको देखकर इस पर क्या आज्ञा हुई और वे लोग (स्वामी दयानंद और केशवचंद्र सेन) कहां भेजे गए ये जब हम भी वहां जायंगे

१. 'हरिश्चंद्र ग्रंथावली', भाग ३, पृ० ८६६।
२. केसरी नारायण शुक्ल, 'भारतेंदु के निबंध', पृष्ठ २७।
३. 'कविवचनसुधा', ८ जून १९७४ —'ग्रीष्म वर्णन' शीर्षक लेख।
३. रामगोपाल सिंह चौहान, 'भारतेंदु साहित्य' (आगरा, १९५७), पृ० १६३।

और फिर लौटकर आ सकेंगे तो पाठक लोगों को बतलावेंगे। या आप लोग कुछ दिन पीछे आप ही जानोगे।"[1] अंतिम वाक्य का हास्य कितना शिष्ट और शाश्वत है। इसी प्रकार के हास्य-व्यंग्य उनके सामाजिक निबंधों, 'जाति विवेकिनी सभा' तथा 'सबै जाति गोपाल की' शीर्षक प्रहसनों में सरलतापूर्वक प्राप्त हैं।

भारतेंदु के निबंधों की दूसरी प्रमुख शैली गवेषणात्मक है। इस शैली में उनके गंभीर निबंध लिखे गये हैं। 'ईशुखृष्ट और ईशकृष्ण', 'वैष्णवता और भारतवर्ष', 'संगीत सार' तथा 'जातीय संगीत' इत्यादि उनके लेख इसी शैली के वाहक हैं। पत्र-पत्रिकाओं में छपते ही इन लेखों ने तहलका मचा दिया था। ये लेख उन दिनों जितने उपयोगी थे उतने ही आज भी हैं। इन लेखों में भारतेंदु का प्राचीन के प्रति निर्व्याज मोह और नवीन की अच्छाइयों को ग्रहण करने की तीव्र लालसा के एक साथ दर्शन होते हैं। "भारतेंदु शायद पहले लेखक हैं जिन्होंने जाति शब्द का 'नैशनेलिटी' के अर्थ में प्रयोग किया है।"[2] उन पर आर्य समाज तथा ब्रह्म समाज के सुधारवादी आंदोलनों का प्रभाव भी पड़ा था। राजा राममोहन राय तथा स्वामी दयानंद ने जो कार्य आदोलन के माध्यम से किया "वही अनुष्ठान भारतेंदुजी ने भाषा और साहित्य के माध्यम से किया था।"[3] एक उदाहरण से बात स्पष्ट हो जायगी :

"हे देशवासियो ! इस निद्रा से चौंको। इनके (अंग्रेजों के) न्याय के भरोसे मत फूले रहो ये विद्या (अंग्रेजी शिक्षा) कुछ काम न आवेगी। यदि तुम हाथ के व्यापार सीखोगे तो तुम्हें कभी दैन्य न होगा नहीं तो अंत में यहां का सब धन विलायत चला जायगा और तुम मुंह बाये रह जाओगे।"[4] भारतीय धन के विदेश निष्कासन के प्रति वे अनेक बार अनेक प्रकार से चिंता व्यक्त कर चुके थे। उन्होंने स्वा० दयानंद की स्वराज्य कल्पना को और आगे बढ़ाते हुए औपनिवेशिक स्वतंत्रता की ज़ोरदार वकालत की थी—"जिस प्रकार अमरीका उपनिवेषित होकर स्वतंत्र हुई, वैसे ही भारतवर्ष भी स्वतंत्रता लाभ कर सकता है। परन्तु भारतवर्ष में इसके विपरीत बहुत आपत्ति है।"

"बीस करोड़ भारतवर्षी को पचास हजार अंग्रेज शासन करते हैं। वे प्रायः शिक्षित और सभ्य हैं परंतु इन्ही लोगों के अत्याचार से सब भारतवर्षीगण दुखी रहते हैं।"[5] कितना निर्भीक विश्लेषण है, कितना साहसिक कथन है ? उनकी गंभीर लेखनी ने इस प्रकार की न जाने कितनी सिंह गर्जनाएं की हैं। इसीलिए उनकी पत्रिकाओं की सरकारी सहायता भी जब्त हो गयी थी। उनमे जवाबतलबी हुई थी। भारत की धार्मिक महत्ता का आख्यान करते हुए उन्होंने अपने सुप्रसिद्ध किंतु अधूरे लेख—'ईशुखृष्ट और ईशकृष्ण' में लिखा था—"समाज की उन्नति का मूल धर्म है।

१. 'मित्रविलास', खं० ४ सं० ४०, १९ जून १८८५।
२. रामविलास शर्मा, 'भारतेंदु हरिश्चंद्र', पृ० ५५।
३. 'हिंदी साहित्य का बृहत इतिहास—अष्टम् भाग' (प्र० सं०), पृ० २६४।
४. 'कविवचनसुधा'—१६ फ़रवरी १८७४।
५. 'कविवचनसुधा', ६ जुलाई १९७४।

जहां का धर्म परिष्कृत नहीं वहां कभी समाज उन्नत नहीं। धर्म पर सब लोगों का ऐसा आग्रह रहता है कि उसको साक्षात परमेश्वर से उत्पन्न मानते हैं।···और (हम) मुक्त कंठ होकर कहते हैं कि संसार के धर्माचार्य मात्र ने भारतवर्ष की छाया से अपने-अपने ईश्वर देवता धर्म पुस्तक धर्म नीति और चरित्र का निर्माण किया।"[1] इस उद्धरण से ज्ञात होता है कि कोई मनु नये सिरे से गद्य शैली में एतद्देश प्रसूतस्य··· इत्यादि की पुनर्स्थापना कर रहा है।

इन सभी उद्धरणों को भाषा की दृष्टि से देखने पर एक बात बड़ी स्पष्ट है कि यहां व्यंग्य लेखों वाली अंग्रेजी शब्दावली का प्रयोग नहीं है। यद्यपि विलायत तथा लोग इत्यादि एक-दो शब्दों को छोड़कर भाषा अधिकांशत. संस्कृत तत्सम शब्द बहुला है। ये संस्कृत शब्द कठिन एवं अव्यावहारिक न होकर सरल, व्यावहारिक तथा सक्षम हैं। इस शैली में मुहावरो का प्रयोग भी नगण्य-सा ही है। यही वह शैलो थी जिसे आगे के गंभीर लेखकों न प्रसन्नतापूर्वक अपनाया। आज जिस भाषा को हम परिनिष्ठित हिंदी कह कर पुकारते हैं, उसकी सुदृढ़ नींव भारतेंदु अपने गंभीर लेखों में आज से १०० वर्ष पूर्व रख चुके थे।

भारतेंदु की तीसरी प्रमुख शैली को भावात्मक शैली की संज्ञा दी जा सकती है। इस शैली में उनके यात्रा-विवरण, ऋतु संबंधी लेख तथा पत्र आदि लिखे गये हैं। इन रचनाओं में भारतेदु के तार्किक तथा सुधारक के ऊपर उनका कवि प्रतिष्ठित हो गया है। अतः कविजनोचित कल्पना, भावनात्मकता, रसिकता, तन्मयता, चित्रात्मकता तथा शब्द-वैभव की छटा देखने को मिलती है। इनमें ध्वनि-संयोजन तथा अलंकार-विधान एक दूसरे मे अहम अहमिका लगाते प्रतीत होते है। इसीलिए पढ़ने में काव्य जैसा आनंद आता है। 'हरिद्वार' शीर्षक पत्र से एक उदाहरण लीजिए- -"यह भूमि तीन ओर सुन्दर हरे-हरे पर्वतों से घिरी है जिन पर्वतों पर अनेक प्रकार की बल्ली हरी-भरी सज्जनों के शुभ मनोरथों सी फैल कर लहलहा रही है और बड़े-बड़े वृक्ष भी ऐसे खड़े है मानो एक पैर से खड़े तपस्या करते और साधुओं की भाति घाम, ओस और वर्षा अपने ऊपर सहते है।"[2] इस उद्धरण मे उपमा और उत्प्रेक्षा की संयोजना के साथ ही भाषा का प्रवाह तथा दृश्य की चित्रात्मकता विशेष रूप से द्रष्टव्य है। भारतेंदु का अलंकरण विधान परंपरागत तथा नवीन दोनों प्रकार का है। 'वैद्यनाथ' शीर्षक से नवीन उपमा लीजिए :

"बादल छोटे छोटे लाल पीले बड़े सुहावने मालूम पड़ते थे।···बनारस कालिज की खिड़कियों का सा आसमान था।—गाड़ी भी ऐसी टूटी फूटी जैसी हिंदुओं की किस्मत और हिम्मत।" इससे भी अधिक काव्यमय चित्र वैद्यनाथ की यात्रा प्रसंग में प्राप्त होते हैं। सरयूपार की यात्रा, जनकपुर की यात्रा, सूर्योदय समर्पण, कंटक स्तोत्र आदि भी इसी शैली के है। वैद्यनाथ की यात्रा से एक उदाहरण लीजिए :

"झपकी का आना था कि बौछारों ने छेड़-छाड़ करनी शुरू की, पटना पहुंचते

१. 'हरिश्चंद्र चंद्रिका', खं० ६ सं० ७ (जनवरी १८७९ वि० सं०)
२. 'कवि वचन सुधा', २० जुलाई, १८७२

पहुंचते तो घेर घारकर चारों ओर से पानी बरसने ही लगा। बस पृथ्वी, आकाश सब नीर ब्रह्ममय हो गया। इस धूम धाम में भी रेल कृष्णाभिसारिका सी अपनी धुन में चली जाती थी। सच है सावन की नदी, दृढ़ प्रतिज्ञ उद्योगी और जिनके मन प्रीतम के पास हैं वे कहीं रुकते हैं।"[1]

इन उद्धरणों की भाषा में निश्चित ही मार्दव, गति एवं कवित्व सन्निहित है। इस शैली की सभी रचनाएं संस्कृत तत्सम शब्द बहुला ऐसी भाषा में लिखी गयी हैं जिसके गठन में शास्त्रीयता तथा सांस्कृतिक अभिरुचि दिखाई देती है। इतना होते हुए भी कुछ कमियां खटकती हैं। सब से अधिक खटकने वाली बात विराम चिह्नों की अस्त-व्यवस्तता है। भारतेंदु की सभी गद्य-रचनाओं में यह कमी पाई जाती है। अल्प-विराम, अर्ध-विरामादि में तो भूल हुई ही है, पूर्ण विराम भी पूर्णरूपेण शुद्ध एवं समीचीन नहीं हैं। कहीं-कहीं पर पूर्ण विराम के स्थान पर शून्याकार बिंदू का भी प्रयोग देखने को मिला है। द्वन्द्व समासीय शब्दों के बीच की पाई, डैश तथा उद्धरण चिह्न तो शायद ही कहीं देखने को मिलें। सच बात तो यह है कि यह कमी केवल भारतेंदु के ही गद्य में नहीं अपितु उस युग के सभी पूर्वापर लेखकों में है। आगे चलकर इस दोष का परिष्कार तथा इस परिष्करण के लिए योजनाबद्ध प्रचार आचार्य महावीर-प्रसाद द्विवेदी ने किया था।

विराम चिह्नों के ही समान लिंग-वचन इत्यादि की अशुद्धियां भी उस युग की एक सीमा थी। फिर भी भाषा दोष का अपवाद नहीं है। अन्यान्य प्रकार की अशुद्धियां भी उनकी भाषा में विद्यमान है। बरसैगा, सुनैं, उस्से, उन्हैं, श्यामताई, विद्यानुरागिता, प्रतिज्ञा किया, परीक्षा किया, यह लोग गये, कमेटी का कई अधिवेशन हुआ, अपने किसी लडकी, तीन रुपया दिया, यहां मक्खी बहुत है, हम कहे, पक्षी लोग, लड़की लोग, गांव गंदा बडा है, इत्यादि अनेक प्रयोग ध्यान देने योग्य है। यह तथ्य उल्लेखनीय है कि उन दिनों ऐसे अनेक प्रयोग साधु माने जाते थे। साधु-असाधुता का विवाद तथा शुद्धता-अशुद्धता की सावधानी भी द्विवेदी-युग की देन है। भारतेंदु-युग में तो खड़ी बोली-गद्य लड़खड़ाते हुए पुष्टता की ओर कदम बढ़ा रहा था। पत्रकारिता ने उसके लिए आगन का कार्य किया था।

निष्कर्ष यह है, भारतीय पत्रकारिता के क्षेत्र में भारतेंदु का प्रवेश एक क्रांतिकारी घटना है। उनकी पत्रिकाओं ने जनता का दिल जीत लिया था। जबकि अन्य पत्रिकाएं घर जाकर सुना आने पर भी नहीं बिकती थी, भारतेंदु की पत्रिकाओं के अंक हाथों-हाथ बिक जाते थे। इसका रहस्य भारतेंदु की श्रम-साधना, उनके व्यक्तित्व तथा गद्य-शैली के अनोखेपन में सन्निहित है। उन्होंने स्वयं भी लिखा और दूसरों को भी भारी मात्रा में प्रेरित किया। साहित्य निर्माण ही नहीं, राष्ट्रीय भावनाओं के प्रचार एवं प्रसार में भी उनका योगदान अविस्मरणीय है। वे निश्चित ही युगचेता थे।

१. 'हरिश्चंद्र चन्द्रिका' ख० ७, स० ४, आषाढ शुक्ल १ (सं० १९३७ वि०)

महावीरप्रसाद द्विवेदी

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने हिंदी संपादन इतिहास में रचना-शुद्धि का एक कीर्तिमान स्थापित किया। इसी के फलस्वरूप साहित्य-सृजन की उच्छृंखलताओं का नियमन हुआ। आचार्य रामचंद्र शुक्ल का कथन है, "यदि द्विवेदीजी न उठ खड़े होते तो जैसी अव्यवस्थित, व्याकरण विरुद्ध और ऊटपटांग भाषा चारों ओर दिखायी पड़ती थी, उसकी परंपरा जल्दी न रुकती।"[१] उन्होंने केवल आलोचना ही नहीं की अपितु लेखकों को बढ़ावा भी दिया। इन दोनों कार्यों की दृष्टि से उन दिनों हिंदी साहित्य ही नहीं अपितु समस्त भारतीय भाषाओं में ऐसा कोई दूसरा संपादक विद्यमान नहीं था। "जिस लेखक की पुश्त पर द्विवेदीजी का वरद-हस्त रहा, वह उन्नति के पथ पर आगे बढ़ता गया। द्विवेदीजी उसकी रचना को इतना संवार देते थे कि उसे देखकर लेखक सोचता रह जाता था कि मैंने इसको इतना दिव्य रूप दिया ही न था।"[२] स्वर्गीय मैथिलीशरण गुप्त ने लिखा है कि "मेरी उल्टी-सीधी प्रारंभिक रचनाओं का पूर्ण शोधन करके प्रकाशित करना और पत्र द्वारा मेरे उत्साह को बढाना द्विवेदीजी का ही काम था।"[३]

ऐसे कितने ही उद्‌गार तत्कालीन लेखकों ने स्थान-स्थान पर प्रकट किये हैं। डा० उदयभानु सिंह ने संस्कार-परिष्कार के अनेक उदाहरण (संशोधन एवं लेखक भूल के साथ) अपने शोध ग्रंथ में संकलित किये है।"[४] वेंकटनारायण तिवारी के 'एक अशरफी की कहानी', पूर्णसिंह के 'आचरण की सभ्यता', 'मजदूरी और प्रेम' तथा आ० रामचंद्र शुक्ल के 'कविता क्या है', 'साहित्य' इत्यादि लेखों की महती प्रसिद्धि का रहस्य द्विवेदीजी का सुधार ही था। यह कथन सर्वथा सत्य है कि "भाषा सुधारक द्विवेदी का संपूर्ण गौरव संपादक द्विवेदी पर ही आश्रित है।"[५]

द्विवेदीजी प्राप्त रचनाओं में लिंग-वचन-कारकों एवं विराम-चिह्नों से लेकर शीर्षक तथा अनुच्छेद तक बदल दिया करते थे। दूसरों की रचनाओं में इतना संशोधन करने वाला यह परिश्रमी संपादक अपनी कृतियों के प्रति और भी अधिक सजग रहता था। उन दिनों विराम-चिह्नों एवं शब्द-रूपों के प्रयोग आज की भांति सुनिश्चित नहीं हुए थे और कुछ तो आज भी सुनिश्चित नही हैं। ऐसी स्थिति मे कठोर नियंत्रण, संयमन, विरोध-सहन तथा श्रम-साधना से काम लेना पड़ा था। इसलिए द्विवेदीजी ने पहले तो अपनी भाषा का परिष्कार किया। उनकी प्रारंभिक कृतियों में अन्यान्य लेखकों की भांति बहुत-सी व्याकरणिक तथा वर्तनी संबंधी त्रुटियां विद्यमान हैं। विकालत, समुझा, हरिणीयों, प्राणीयों, दृष्टी, इष्टसिद्धी, पूछि गई, तूझे, करै, यम० ए० लावो, जावो, करनेंवाला, उसें, पहंचान, विडंबना, बढता, गंड़स्थल, निरदई, मनोर्थ, चातुर्यता, तारुण्यता, अरोग इत्यादि शब्द निश्चित ही अशुद्ध हैं। 'नेत्रों की शोभा

१. 'रामचंद्र शुक्ल, विचार कोश' (दिल्ली, १९७४), पृ० १३७।
२. भारत सरकार प्रकाशन विभाग, 'महावीरप्रसाद द्विवेदी' (दिल्ली, १९६९), पृ० ९।
३. 'हिंदी साहित्य कोश' (वाराणसी), भाग २, पृ० ४१२ से उद्धृत।
४. उदयभानु सिंह, 'महावीरप्रसाद द्विवेदी और उनका युग' (लखनऊ, २००८ वि०)।
५. शंभूनाथ पांडेय, 'गद्य साहित्य का उद्‌भव और विकास' (आगरा, १९५८), पृ० ८३।

कटाक्षों ने बनी रखी', 'आघात सहन करना पड़ते हैं', 'बाण छूटने ही को चाहता है', 'हाय यह क्या ही कष्ट है' इत्यादि प्रयोग भी चिंत्य हैं। द्विवेदीजी ने शीघ्र ही इस प्रकार की त्रुटियों पर व्याकरण-नियमों का अनुपालन करके विजय प्राप्त कर ली थी। उन्होंने एतद्विषयक लेख भी लिखे थे। उनके 'भाषा और व्याकरण' शीर्षक लेख ने अच्छे-अच्छे दिग्गजों को भाषा-परिष्कार के लिए विवश किया था। इससे केवल भाषा-परिष्कार ही नहीं हुआ, अराजकता और अनैतिकता भी मिटी थी। "सरस्वती ने साहित्य को नैतिक बल दिया था"।[1]

व्याकरणिक अनियमितताओं के समान ही भाषा के कलेवर का भी प्रश्न उपस्थित था। यद्यपि भारतेंदु जी ने सितारे हिंद की उर्दूबहुला तथा लक्ष्मणसिंह की संस्कृतबहुला भाषाओं के बीच का मार्ग अपनाकर लेखकों का पथ-प्रदर्शन कर दिया था, फिर भी लेखक दोनों प्रकार की भाषा लिखते ही थे। स्वयं द्विवेदीजी भी इसके अपवाद नहीं हैं। एक उदाहरण लीजिए—"अगर ऐसा न हो तो बेरहम और जबरदस्त जुबादा लोग अपनी जुबादानी की तेज तलवार से भाषा को अल्प काल ही में बेमौत मार डालें, क्योंकि वाजिदअली शाह के मकतब के मुरीद प्रांतीय बोलियों और देहाती मुहावरों से अजहद नफरत करते हैं।"[2] इन पंक्तियों में उर्दू-फारसी के शब्दों का इतना अधिक प्रयोग है कि इसे हिंदी नहीं कहा जा सकता। इसके विपरीत दूसरी ओर संस्कृतबहुला भाषा का एक नमूना लीजिए—"इसी से आपके गुणों की खबर सुनकर हमें परमानंद हुआ। मातृभाषे! धन्यसि। ईदृशं विद्वद्रत्नं...।"[3] सामान्यतः ये दोनों ही उदाहरण द्विवेदीजी के-से नहीं लगते क्योंकि वे अतिवादी नहीं थे।

उन्होंने इन दोनों के बीच का मार्ग अपनाया था। उसी मध्यवर्ती भाषा का एक उदाहरण लीजिए—"इसी से किसी का ख्याल था कि यह भाषा (उर्दू) पहले ही विद्यमान थी। उसका शुद्ध रूप अब भी मेरठ प्रांत में बोला जाता है। बात सिर्फ यह हुई कि मुसलमान जब यह भाषा बोलने लगे तब उन्होंने उसमें अरबी-फारसी के शब्द मिलाने शुरू कर दिये।" यहां उर्दू के शब्द बहुत कम हैं, जो हैं भी वे अत्यंत सामान्य हैं। इन सामान्य शब्दों को वे उर्दू का न कहकर हिंदी का ही मानते थे। उनका विचार है—"अपढ़ देहातियों की बोली में नहीं, किंतु हिंदी के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध लेखकों की परिमार्जित भाषा में अरबी-फारसी के शब्द आते हैं। ऐसे शब्दों को अब विदेशी भाषा के शब्द न समझने चाहिए। वे अब हिंदुस्तानी हो गये हैं और उन्हें छोटे बच्चे तथा स्त्रियां तक बोलती हैं।"[4] इसीलिए वे आवश्यकतानुसार ऐसे शब्दों का प्रयोग बड़े धड़ल्ले के साथ करते थे। उनकी प्रतिनिधि भाषा का एक उदाहरण है—"कोटि योनि में उत्पन्न पतंगों के लिए दीप-शिखा की ज्वाला अपने प्राकृतिक दाहक गुण से रहित मालूम होती है। महाप्रेमी यक्ष को यदि मेघ की अचेतना का ख्याल न रहे तो इसमें

१. [illegible] दुबे, 'हिंदी गद्य का वैभव काल' (दिल्ली, १९६६), पृ० ६१।
२. 'सरस्वती', भा० ७, सं० २ पृ०, ६६।
३. 'सरस्वती', भा० ५ सं० २, पृ० ८१।
४. जगन्नाथ प्रसाद शर्मा, 'हिंदी गद्य के युग निर्माता', पृ० ६० पर उद्धृत।

कुछ भी अस्वाभाविकता नहीं। फिर क्या यक्ष यह न जानता था कि मेघ क्या चीज है।"—कालिदास के मेघ का रहस्य। यहां कोटि, योनि, उत्पन्न, दीप-शिखा, ज्वाला इत्यादि सरल संस्कृत तत्सम शब्द हैं तो मालूम, ख्याल तथा चीज इत्यादि सरल फारसी शब्द भी अपनी पूरी छटा के साथ विद्यमान हैं। कुल मिलाकर भाषा की सक्षमता तथा व्यावहारिकता अपनी चरम सीमा पर पहुंची हुई है।

संपादन-कार्य से पूर्व द्विवेदी जी के कुछ निबंध प्रकाशित हो चुके थे। अपनी बात को पाठकों के मन में भली भांति उतार सकें इसलिए द्विवेदी जी ने परिश्रम से लिखने का पथ अपनाया था। इसे ही व्याख्येय शब्दावली में व्यास शैली की संज्ञा दी जाती है। इसमें कोतह कलमी या शाब्दिक कंजूसी को स्थान नहीं रहता। इसीलिए वे बात को भिन्न-भिन्न प्रकार से तब तक दोहराते रहते थे जब तक वह भाव एकदम स्पष्ट न हो जाय। एक उदाहरण लीजिए—"वह कौन सी वस्तु है, जो एक होकर भी अनेक है, कुछ न होकर भी सब कुछ है, निराकार होकर भी साकार है, सूक्ष्म होकर भी महान है...। इस वस्तु का नाम है ब्रह्म, परब्रह्म, ईश्वर, परमेश्वर अथवा परमात्मा।"[1] इसी प्रकार साहित्य की महत्ता का प्रतिपादन उन्होंने बहुत विस्तृत फलक पर किया है। कानपुर अधिवेशन का समस्त भाषण व्यास शैली का नमूना है। शिक्षा संबंधी विचारों का प्रतिपादन देखिए—"जो मनुष्य अपनी संतति के जीवन को यथाशक्ति सार्थक करने की योग्यता नही रखते, अथवा जानबूझ कर उस तरफ ध्यान नहीं देते, उनको पिता बनने का अधिकार नहीं, उनको पुत्रोत्पादन का अधिकार नही, उनको विवाह करने का अधिकार नहीं।"[2] कही-कहीं तो बात के अधिक फैलाव के कारण नीरसता कथावाचकता तथा पंडिताऊपन भी आ गया है परंतु ये सब 'भामिनी विलास' तथा 'बेकन विचार रत्नावली' इत्यादि प्रारंभिक कृतियों में ही हैं, प्रौढ़ कृतियों में नहीं।

किसी वस्तु, स्थान, व्यक्ति या विषय का सामान्य परिचय देने के लिए उसका सरल वर्णन बड़ा उपयोगी रहता है। द्विवेदी जी ने नेपाल, मलाबार, साची के स्तूप तथा बनारस इत्यादि निबंध वर्णनात्मक शैली में दिये हैं। वे कठिन मे कठिन विषयों को वर्णनात्मकता की छलनी से छान कर इस प्रकार प्रस्तुत करते है कि पाठकों को उसके आस्वाद में कोई कठिनाई नहीं होती। न उनमें विद्वत्ता का प्रदर्शन होता है और न गंभीरता का। होती है केवल जनमानस में पैठ की क्षमता। कदाचित् इसीलिए कुछ विद्वानों द्वारा उनके निबंधों को कम महत्व देकर उड़ाने का प्रयत्न किया गया है।[3] जबकि चिंतामणि जैसे संग्रहों के गंभीर लेखकों ने भी उन्ही से प्रेरणा प्राप्त की है। उदाहरणस्वरूप 'प्रतिभा' शीर्षक लेख की निम्नलिखित पंक्तियां द्रष्टव्य हैं—"अपस्मार और विक्षिप्तता मानसिक विकारों के रोग

१. 'सरस्वती', भा० ७ सं० ८, पृ० ३२
२. 'शिक्षा', भूमिका, पृ० ३
३. रामचंद्र शुक्ल, 'हिंदी साहित्य का इतिहास', पृ० ४८५; मोहन अवस्थी, 'हिंदी निबंध की विभिन्न शैलियां', पृ० १३; कमलेश्वर प्रसाद भट्ट, 'हिंदी के प्रतिनिधि आलोचकों की गद्य शैलियां', पृ० ३३

हैं। उनका संबंध केवल मन और मस्तिष्क से है। प्रतिभा भी एक प्रकार का मनोविकार ही है। प्रतिभा में मनोविकार बहुत प्रबल हो उठते हैं। विक्षिप्तता में भी यही दशा होती है। जैसे विक्षिप्तता में समझ एक विलक्षण प्रकार की होती है वैसे ही प्रतिभा वालों की समझ भी असाधारण होती है।"[1] कितने कठिन तथा सूक्ष्म विषय का वर्णन कितनी सरलतापूर्वक किया गया है। कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता साहित्य की महत्ता, कालिदास के मेघदूत का रहस्य इसी शैली में लिखे गये है। वे लेखों ही में नही व्यक्तिगत पत्रों तक में इसी सरलता की प्रेरणा किया करते थे। अंबिका दत्त कौशिक को लिखे व्याकरण नियम विषयक पत्र की कुछ पंक्तियां लीजिए—"देखिए लेने के अर्थ में जब लिये शब्द लिखा जाता है और विभक्ति के रूप में आता है, तब यकार से लिखा जाता है। जो शब्द एकवचन में यकारांत में रहते हैं वे बहुवचन मे भी यकारांत ही रहते हैं। जैसे किया, किये; गया, गये; परंतु स्त्रीलिंग में गयी न लिखकर गई लिखा जाता है; कहिए, चाहिए, देखिए इत्यादि में एकार लिखा जाता है। आकारांत शब्दों का बहुवचन एकारांत होता है; जैसे हुआ का बहुवचन हुए।" यहां व्याकरण नियमों का सरल निदर्शन देखते ही बनता है।

आचार्य द्विवेदी की दूसरी प्रमुख गद्य शैली व्यंग्यात्मक है। भ्रष्ट अनुवादो, अश्लील अथवा स्तरहीन पुस्तकों, समाज की कुरीतियों तथा थोथे मठाधीशों पर वे ऐसा तीव्र व्यंग्य करते है कि तबीयत साफ हो जाती है। उस समय उनकी भाषा में बड़ी जान आ जाती है। "भाषा चिकोटी काटती चलती है।"[2] 'हिंदी कालिदास की समालोचना' शीर्षक लेख मे एक उदाहरण लीजिए—"कुमार संभव भाषा में अनुवादक जी ने 'वजे जु टुटत सप्त ऋषि हाथा', 'टूटे तार की बीन समाना' लिखा था, इसमे 'टुटी माल बिखरी लटें बसे अगर मनकेस' लिख दिया। 'टूटना' क्रिया से अधिक स्नेह जान पड़ता है। 'अस्त होना' स्थान कटु था जिससे डूबना लिखा गया। अनुवादक जी अभी तक 'ठट' के पीछे पड़े थे। छोड़ते-छोडते उसे छोडा तो उसके स्थान पर 'जाडा' लिख दिया। ईट न सही पत्थर ही सही।" इस प्रकार की तीखी आलोचना तथा व्यंग्य वर्षा वे बड़े-बड़ों पर कर जाते थे। एक बार बालमुकुंद गुप्त तक की भाषा पर तीव्र व्यग्य किया था। दंभी पंडितों को तो वे कभी नही बख्शते थे। रामदत्त के व्याकरण की आलोचना देखिए—"इधर पुस्तकारंभ मे अपनी तारीफ के जटल काफिये, उधर पुस्तकात मे थी। सिर के सर, सनक गवार होती है वही ऐसी बातें लिख सकता है।"[3] पुस्तक की बात छोड़िए, ज्योतिष और जन्मकुंडली पर कसे व्यग्य की तथ्यपरकता देखिए—"(बच्चा) आषाढ के उजेले पक्ष मे हुआ था। उस दिन प्रदोष का व्रत था। शाम का वक्त था। गायें चर कर आ गई थी। अथवा दोपहर को छुटने के बाद मजदूर फिर आ गये थे समय के इसी निर्भ्रांत और अचूक ज्ञान के आधार पर ज्योतिषी महाराज जन्मपत्र की ऊंची इमारत उठाते है। और इसी ज्ञान लोभ के द्वारा देखी गयी

1. 'सरस्वती', भा० ३, स० १, पृ० २६३।
2. जगन्नाथ प्रसाद शर्मा, 'हिंदी गद्य शैली का विकास', पृ० १००।
3. 'सरस्वती', अगस्त १९१३।

लग्न और गुहा से (विवाह के) दिन निश्चय करते हैं।"[1] ज्योतिष कुंडली जिस जन्म समय पर आधारित रहती है उसी की अनिश्चितता को लक्ष्य करके लिखा गया विवाह विषयक व्यभिचार लेख जन्मकुंडली के अंधविश्वासियों की आंखें खोल देता है। कभी-कभी द्विवेदी जी व्यंग्य की बौछार प्रश्नों के माध्यम से करते हैं। हिंदी में पुस्तकों का अभाव बताने वाले पर कसा व्यंग्य देखिए—"पढ़ें क्या हिंदी मे पढ़ने लायक पुस्तकें भी हों। और कालेजों में भी उन्नत विषयों की शिक्षा हिंदी द्वारा कैसे दी जा सकती है? दर्शन शास्त्र, सम्पत्ति शास्त्र और विज्ञान पर हैं भी कोई अच्छी पुस्तकें? नही साहब, एक भी नही। और यदि आपकी ऐसी ही कृपा बनी रही तो बहुत समय तक होने की संभावना भी नहीं।"

आचार्य द्विवेदी का व्यक्तित्व बुद्धिप्रधान रहा है भाव प्रधान नहीं। किंतु फिर भी उनकी कलम से कुछ ऐसे निबंध अवश्य निकले जिनका संपूर्ण अथवा अल्पांश भावात्मक है। अनुमोदन का अंत, संपादक की बिदाई, माघ का प्रभात वर्णन, दमयंती का चंद्रोपालंभ आदि में भावात्मक शैली के दर्शन होते हैं। अन्यान्य बिदाई अवसरों, आत्मीय जनों की मृत्यु इत्यादि के अवसरों पर भी उनकी लेखनी भावात्मक हो उठी है। वैसे उनके साहित्य मे विचारात्मकता की प्रधानता है भावात्मकता की नही। वे ज्ञानराशि के संचित कोश को ही साहित्य मानते थे जबकि दूसरे लोग इस संदर्भ में भावराशि को महत्व देते हैं। इसीलिए "उत्तम भावनात्मक शैली से युक्त द्विवेदी का कोई निबंध नहीं है।"[2] लेकिन खोजने पर भावनात्मक स्थलों की प्राप्ति हो ही जाती है और ये स्थल शुद्ध भावनात्मक महत्व के लेखों में ही नही अपितु अन्य वर्गों के लेखों में भी प्राप्त हैं। 'कवियो की उर्मिला विषयक उदासीनता' शीर्षक सुप्रसिद्ध लेख की कुछ पंक्तियां लीजिए—"हाय बालमीकि! जनकपुर में तुम उर्मिला को सिर्फ एक बार वैवाहिक वेश में दिखाकर चुप हो बैठे। अयोध्या आने पर ससुराल में उसकी सुधि यदि आपको न आई थी, तो न सही, पर क्या लक्ष्मण के वन-प्रयाण के समय मे भी उसका दुःखाश्रुविमोचन करना आप को उचित न जंचा? रामचंद्र के राज्याभिषेक की तैयारियां हो रही थीं, तब राजान्तःपुर ही क्यों सारा नगर नन्दनवन बन रहा था, उस समय नवला उर्मिला कितनी खुशी मना रही थी, तो क्या आपने नहीं देखा।"[3] उर्मिला विषयक यह निबंध तो साहित्यिक है किन्तु साहित्येतर विषयो पर लिखते हुए भी उनकी लेखनी कभी-कभी भावुक हो उठती थी। 'भारत मे हीरों की खानें' शीर्षक लेख की पंक्तियां लीजिए—"भारतवर्ष, क्या तुम्हें कभी पुराने दिनो की याद आती है। क्या तुम्हें इस बात का स्मरण स्वप्न मे भी होता है कि किसी भी समय तुम ज्ञान-विज्ञान, सम्मान आदि सभी विषयों में रत्नोपमान थे? धन-जन-प्रभुता में तुम अपना सानी न रखते थे। स्वर्ण और रजत की ही नही हीरो तक की एक नही अनेक खानें तुम्हारी ही रत्नगर्भा भूमि के भीतर भरी पड़ी थी। चेतो, जागो, कर्म और चेष्टा करनी सीखो।"[4]

१. 'साहित्य सदर्भ : विवाह विषयक व्यभिचार', पृ० ७८-७९।
२. डा० मु० ब० शहा, 'हिंदी निबधो का शैलीगत अध्ययन' (कानपुर, १९७३), पृ० २२७।
३. रसज्ञ रंजन, 'कवियों की उर्मिला बिषयक उदासीनता', पृ० ८२।
४. 'सरस्वती', खं० २६, सं० ६, पृ० ६४२।

इस अध्ययन के उपरांत निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि वस्तुतः आचार्य द्विवेदी एक यशस्वी संपादक, न्यायप्रिय समालोचक, कर्त्तव्यपरायण सुधारक तथा परिश्रमी निबंध लेखक थे। उनका विचारवान संपादक उनके भावुक साहित्यकार पर हावी रहा। यद्यपि उनके अधिकांश निबंध संपादकीय आवश्यकताओं, तत्कालीन समस्याओं, सामान्य पाठकों के ज्ञान-वर्धन, मनोरंजन तथा हिंदी की रिक्तिपूर्ति के लिए लिखे गये किंतु फिर भी ऐसे निबंधों की भी कमी नहीं जो शाश्वत महत्व रखते हैं। उन्हीं से प्रेरणा पाकर तत्कालीन विद्वानों ने अपनी लेखन-कला तथा शैली-निर्माण में वैशिष्ट्य प्राप्त किया है। वे शैलीकार ही नही, शैलीकारों के प्रेरणा-स्रोत तथा निर्माता भी थे। उन्हीं के प्रयत्नों के फलस्वरूप आज की हिंदी का स्वरूप स्थित एवं समर्थ हो पाया है। जिस भाषा को एक राष्ट्रभाषा एवं राजभाषा का गौरव प्राप्त है उसके परिनिष्ठित तथा स्तरीय रूप के निर्धारण में आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी का योगदान अविस्मरणीय है।

बालमुकुंद गुप्त

बाबू बालमुकुद गुप्त (१८६५-१९०७) हिंदी पत्रकारिता एवं निबंध-लेखन के क्षेत्र में निर्भीकता के मूर्तिमान आदर्श है। उनमें भारतेंदु जैसी प्रबंध पटुता तथा आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी जैसी भाषा-शुद्धता के दर्शन होते है। वस्तुत. वे भारतेंदु-युग एवं द्विवेदी-युग की संधिवेला के गद्यकार हैं। उन्हें भारतेंदु के अस्त तथा द्विवेदी-मार्तंड के उदय काल का मध्यवर्ती शुक्र नक्षत्र माना जाता है।[1] वे ऐसे गद्यकार है जिन्होंने पत्रकारिता से ही साहित्यिक जीवन का समारंभ किया और पत्रकारिता से ही अंत हो वे उस श्रेणी के गद्यकारों में है जो उर्दू के क्षेत्र से आकर हिंदी की अग्रिम पंक्ति में आ खड़े हुए हैं। उर्दू के 'अखबारे चुनार' (१८८६-१८८८) के संपादक रूप में काम करने के पश्चात वे उर्दू 'कोहनूर' (१८८८-१८८९) में चले आये थे। पुनः 'हिंदोस्थान' (१८८९-९१), 'हिंदी बंगवासी' (१८९२-९८) से होते हुए 'भारतमित्र' (१८९९-१९०७) के संपादक हो गये थे और अंत तक इसी पत्रिका मे रहे। उन दिनों सरकार उर्दू को बहुत प्रेरणा देती थी। उर्दू के पत्र और पाठक भी हिदी की अपेक्षा कहीं अधिक थे। १८८०-८१ में उत्तर प्रदेश और पंजाब से प्रकाशित होने वाले उर्दू-पत्र संख्या में ८६ थे जबकि हिंदी में केवल आठ पत्र निकलते थे।[2] यद्यपि यह संख्या बढ़ रही थी। किंतु फिर भी १८९० में भारत में उर्दू पत्र हिंदी पत्रों की अपेक्षा तिगुने थे।[3] १८९१ मे उर्दू-हिंदी पाठकों का अनुपात क्रमशः में ६७.१ व ३२.९ प्रतिशत था।[4] उन दिनों भारत में साक्षरता ही केवल छह प्रतिशत थी, इसमें हिंदी जानने वाले तो और भी कम थे। अतः पत्रों के ग्राहक खोजने से ही मिल पाते

१. शंकरदयाल चौऋषि, 'द्विवेदी युग की हिंदी शैलियों का अध्ययन', पृ० १८७।
२. गोपालराय, 'हिंदी कथा साहित्य और उसके विकास पर पाठकों की रुचि का प्रभाव', पृ० १६४।
३. वही, पृ० १६४।
४. वही, पृ० २६३।

थे। 'कवि वचन सुधा' जैसे सुप्रसिद्ध पत्र की ग्राहक संख्या १८७६ में २७५ थी।[1] लाख प्रयत्न करने पर भी 'ब्राह्मण' पत्र की ग्राहक संख्या १०० से ऊपर न बढ़ी थी और वे भी नियमित रूप से चंदा न भेजते थे। आठ-आठ महीने तक उनके कान पर जूं नहीं रेंगती थी। ऐसे में पत्रकारिता निश्चय ही घाटे का सौदा थी और विशेषतः हिंदी पत्रकारिता। जो भी मनीषी इस क्षेत्र में पदार्पण करते थे उनमें कर्त्तव्यपरायणता का दृष्टिकोण ही प्रधान होता था। ईसाइयत की बाढ़ को रोकने के लिए स्वामी दयानंद तथा उनका आर्यसमाज अनेक पत्र निकाल रहा था। इधर उर्दू के दल को थामने के लिए कुछ निष्ठावान हिंदी-प्रेमी अग्रसर थे। प्रतिष्ठिन उर्दू-पत्रों के संपादन-कार्य को छोड़कर हिंदी पत्रकारिता में आना बड़े त्याग तथा कर्त्तव्य पालन का काम था। बाबूबाल मुकुंद ऐसे ही नागरी के दीवानों में से थे। एक बात और उन दिनों हिंदी पत्रकारिता की दृष्टि से पंजाब की स्थिति बहुत निराशजनक थी। श्री अंबिका प्रसाद वाजपेयी ने समाचार-पत्रों का इतिहास लिखते हुए कहा है कि "हिंदी रूपी बीज के लिए पंजाब की भूमि ऊसर ही नहीं एकदम पत्थर थी।"[2] वहां उर्दू समाचार-पत्रों का बोलबाला था किंतु आर्य समाज के जबर्दस्त प्रभाव के कारण ये पत्र अन्य प्रांतीय उर्दू पत्रों की भांति हिंदी का विरोध नहीं करते थे। इसी विचित्र स्थिति में इस धरती के गुडियाना, जिला रोहतक में हिंदी पत्रकारिता के धनी बालमुकुद गुप्त उत्पन्न हुए थे।

उर्दू के विद्वान होते हुए भी हिंदी के ऊपर उर्दू के वर्चस्व को सहन करना उनकी प्रकृति के विरुद्ध था। वे हिंदी के चित्र को वृहद फलक पर देखना चाहते थे अथवा उसकी अंतर्प्रांतीयता के स्वप्न-दर्शक थे। इसीलिए वे सरल संस्कृत तत्सम शब्दों का आधार तैयार करना चाहते थे। उन्ही के शब्दो मे :

"हमारे लिए इस समय वही हिंदी उपकारी है, जिसे हिंदी बोलने वाले तो समझें ही, उनके सिवा उन प्रांतों के लोग भी कुछ न कुछ समझ सके, जिनमे वह नही बोली जाती। हिंदी में संस्कृत के सरल तत्सम शब्द अवश्य होने चाहिए। इससे हमारी मूल भाषा संस्कृत का उपकार होगा और गुजराती, बंगाली, मराठे आदि भी हमारी भाषा को समझने मे योग्य होंगे।"[3] साथ ही वे उर्दू-फारसी के सरल शब्दों की उपयोगिता भी स्वीकार करते थे। इसके लिए उन्होंने संस्कृत समर्थको को सरल फारसी शब्दों की ओर और उर्दू के समर्थको को सरल तत्समता की ओर झुकने की नेक सलाह दी थी।[4] वे पत्रकारिता की दृष्टि से जनसामान्य मे प्रचलित देशी शब्दो के ग्रहण को भी उपयोगी मानते थे और इस ओर पत्रो को उन्मुख होने की प्रेरणा देते थे क्योंकि उनके मत में पत्र ही भाषा का सुंदर और व्यावहारिक रूप जन-समुदाय के सम्मुख उपस्थिति कर सकते हैं।"[5] इन्ही सब तत्वो को मिला

१. गोपाल राय, 'हिंदी कथा साहित्य और उसके विकास पर पाठको की रुचि का प्रभाव', पृ० १८१।
२. अंबिका प्रसाद वाजपेयी, 'समाचार-पत्रों का इतिहास', : पृ० १४८।
३. 'बालमुकुद गुप्त निबधावली', प्रथम भाग, पृ० ५७०।
४. वही, पृ० २३३।
५. जेकब पी० जार्ज, 'आधुनिक हिंदी गद्य और गद्यकार', पृ० १५७।

कर उन्होंने एक ऐसी शैली का विकास किया था जिसे सार्वजनिक शैली का नाम दिया जा सकता है। उन्हें पहला सफल सार्वजनिक शैलीकार समझा जाता है।[1] पत्रकारिता की दृष्टि से नहीं अपितु साहित्य-सृजन की दृष्टि से भी यह शैली परम उपयोगी है। वे भारतेंदु को आदर्श तथा प्रताप नारायण मिश्र को अपना गुरु मानते थे। स्मरण रहे कि मिश्रजी के आदर्श भी भारतेंदु ही थे।

मिश्रजी की भांति गुप्तजी भी निष्ठावान पत्रकार थे। और उनके मत में पत्रकार के प्रमुखतः दो कार्य है—पाठकों का ज्ञान-वर्धन तथा मनोरंजन। प्रथम के लिए परिचयात्मक ढंग उपयोगी होता है तथा दूसरे के लिए व्यंग्यात्मक। इसीलिए उस समय के पत्रकार प्रायः दो ही शैली अपनाते थे---सरल और व्यंग्यात्मक। किंतु गुप्तजी की एक और भी शैली थी, जिसे विनोदात्मक शैली कहा जा सकता है, उसमें उन्होंने शब्द रूपों एवं व्याकरणिक प्रयोगों को लेकर मूर्धन्य साहित्यकारों एवं संपादकों से लिखित शास्त्रार्थ-सा किया था तथा 'अश्रुमती' नाटक, 'तारा' उपन्यास और 'तुलसी सुधाकर' आदि की आलोचनाएं लिखी थी।[2] इनमें भी 'अनस्थिरता' तथा 'शेष' शब्दों को लेकर लिखी गयी वाद-विवाद लेखमाला अपना ऐतिहासिक एवं शैलीगत महत्व रखती है। इन्ही के कारण रामविलास शर्मा ने उन्हें हिंदी का सर्वश्रेष्ठ विवाद-लेखक घोषित किया है और कहा है कि विवाद के क्षेत्र में ऐसी क्षमता से भाषा-निर्वाह किसी दूसरे ने नही किया।

इन विवादों में वे सुधारकों के भी सुधारक तथा शब्द प्रयोग पारंगत बनकर सामने आये हैं। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी की व्याकरण तथा शब्द-प्रयोग विषयक अशुद्धियों को पकड़ने मे उन्होंने बडी विलक्षणता का परिचय दिया है। द्विवेदी जी का वाक्य था, "लिखित भाषा ही में ग्रंथकार अपने कीर्तिकलाप को देखकर अपना नश्वर शरीर छोड जाते हैं।"[3] गुप्तजी ने शरीर के स्थान पर शरीरों का सुझाव दिया था। उनका तर्क था कि ग्रंथकार एक नहीं अनेक हैं। अतः शरीर का बहुवचन प्रयुक्त होना चाहिए। वे 'कलाप' शब्द को भी व्यर्थ समझते थे। ऐसे अनेक दोषोद्भावन तथा त्रुटि सुधारों को देखकर यह मानना पड़ता है कि धार्मिक तर्कों में जो स्थान स्वामी दयानंद का है, व्याकरणिक तर्कों मे वही स्थान बालमुकुंद गुप्तजी का होना चाहिए। स्वतंत्र चेतास्वामी दयानंद जैसी ही भाषा बोलते हुए उन्होंने एक स्थान पर लिखा है, "कोई पराधीन जाति अपनी चेष्टा के बिना खाली दूसरे की मदद से कभी स्वाधीन नहीं हो सकती।"[4]

गुप्तजी छोटे और चुभते हुए वाक्य लिखने में अद्वितीय थे। उन्होंने पत्रकारिता से सीख लिया था कि लघु वाक्यावली और मुहावरेदार सरल भाषा, प्रभाव की दृष्टि से बहुत ही उपयोगी होती है।[5] उनके सुप्रसिद्ध चिट्ठों की भाषा ऐसी ही है। शिव

१. जेकब पी० जार्ज, 'आधुनिक हिंदी गद्य और गद्यकार', पृ० १६८।
२. नत्थनसिंह, 'गद्यकार बालमुकुंद गुप्त' (आगरा, १९५९), पृ० २३९-२५६।
३. 'सरस्वती' भा० ६, सं० ११, पृ० ४२६।
४. 'बालमुकुंद गुप्त स्मारक ग्रंथ', पृ० १३९।
५. जगन्नाथप्रसाद शर्मा, 'हिंदी गद्य शैली का विकास', पृ० १०।

शंभू शर्मा के चिट्ठे से एक उदाहरण लीजिए—"इतने में देखा कि बादल उमड़ रहे हैं। चीलें नीचे उतर रही हैं। तबियत भुरभुरा उठी। इधर घटा, बहार में बहार। इतने में वायुवेग बढ़ा। चीलें अदृश्य हुईं, अंधेरा छाया, बूंदें गिरने लगीं।···बूटी तैयार हुई। बमभोला कह शर्माजी ने एक लोटा-भर चढ़ाई।" शैली की दृष्टि से इस प्रसंग को वर्णनात्मक कहा जायगा। इस शैली में इतने छोटे-छोटे वाक्य उस काल के अन्य लेखकों की लेखनी से नहीं निकले। भावावेग के समय भी उनके वाक्य इतने ही छोटे रहते थे। अंबिकादत्त व्यास की मृत्यु पर 'भारत मित्र' में प्रकाशित उनके लेख की पंक्तियां इस प्रकार हैं—"काशी में उदासी छाई हुई है। बिहार शोक से विह्वल है। भारतवर्ष के शिक्षित मंडलों के मुखों की कांति मलीन हो रही है। हिंदी साहित्य की फूली फुलवाड़ी पर पाला पड़ गया है। भाषा कविता की खिली वाटिका में ओले गिर गये हैं। जिनकी यह दिव्य मूर्ति देखते थे, आज वह भारत रत्न साहित्याचार्य अंबिकादत्त व्यास इस संसार में नही हैं।"

शैली की एक दूसरी बानगी लीजिए—"तीसरे पहर का समय था। दिन जल्दी-जल्दी ढल रहा था। सामने संध्या फुर्ती के साथ पांव बढ़ाती चली आती थी। शर्मा महाराज बूटी की धुन में लगे हुए थे। सिल-बट्टे से भंग रगड़ी जा रही थी। मिर्च-मसाला साफ हो रहा था। बादाम इलायची के छिलके उतारे जाते थे।" इस शैली में अनेक स्थलों पर दृष्टांत गर्भत्व भी दिखायी पड़ता है। अपने विरोधी की बात को काटते समय वे अक्सर दृष्टांत देते चलते थे। भाषा में व्याकरणादि अनुशासन को वे उतना महत्व नहीं देते थे जितना आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी। अतः दोनों में लंबा विवाद चला था।[1] द्विवेदीजी ने भाषा की अराजकता का भय दिखाते हुए एक स्थान पर लिख दिया था कि यदि यही स्थिति रही तो जिस प्रकार पचास वर्ष पूर्व की भाषा को समझना आज कठिन हो रहा है, उसी प्रकार सौ वर्ष पश्चात आज की भाषा को समझना और भी कठिन हो जायगा। इसी पर व्यंग्य करते हुए गुप्तजी ने लिखा—"श्रीमान की यह घबराहट उस देहातन की घबराहट से कम नहीं है, जो एक दिन शहर में सूत बदलने चली गयी थी। वहां जाकर उसने देखा कि पचासों गाड़ियां रूई से भरी सामने आ रही हैं। देखकर बेचारी को ज्वर आ गया। कांप कर गिर गयी और कहने लगी—'हाय-हाय इतनी रूई को कौन कातेगा···' इसी तरह हमारे द्विवेदी जी महाराज को भय हुआ है।"[2] उन्होंने लार्ड कर्जन पर व्यंग्य करते हुए भी इस प्रकार के कई दृष्टांत दिये हैं। उनकी सौतेली मां का दृष्टांत तो बहुत ही प्रसिद्ध हुआ था।

लार्ड कर्जन के ही सामान वे अंग्रेजी शोषण नीति, नवाबों के दुर्महिलाऊ‌पन, कर्मचारियों की खुशामदाना आदतों तथा हिंदुस्तानियों पर व्यंग्य करते हुए उनकी लेखनी में बड़ी जान आ जाती थी। इन्हें वे एक से एक नये अंदाज में प्रस्तुत करते थे। बड़े लाट पर व्यंग्य करते हुए उन्होंने लिखा था—"आपके हुक्म की तेजी तिब्बती पहाड़ों के बर्फ को पिघला देती है, फारिस की खाड़ी का जल सुखाती है,

१. 'हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास', अष्टम भाग, पृ० २६२

२. 'बालमुकुंद गुप्त निबंधावली', प्रथम भाग, पृ० ४३१

काबुल के पहाड़ों को नर्म कर देती है. जल-स्थल-वायु और आकाश मंडल में सर्वत्र आपकी विजय है।···समुद्र अंग्रेजी राज्य के मल्लाह हैं, पहाड़ों की उपत्यका बैठने के कुरसी मूढ़े। बिजली कल चलाने वाली दासी और हजारों मील खबर लेकर उड़ने वाली परी।"[1] इसी प्रकार उनके संपूर्ण चिट्ठे सरकार पर भारी व्यंग्य हैं। उन दिनों सरकार का विरोध करना बहुत बड़े साहस का काम था। इसीलिए कुछ विद्वान उन्हें हास्य-व्यंग्य का अवतार मानते हैं[2] और कुछ निर्भीकता को उनके व्यक्तित्व की सब से बड़ी शैली समझते हैं।[3] निश्चित ही उनके चिट्ठे और विशेषतः छठा एवं सातवा चिट्ठा निर्भीकता, व्यंग्य, राष्ट्रीय चेतना तथा जात्यभिमान का मूर्तिमान आदर्श प्रस्तुत करता है। बड़े लाट की नाक के नीचे कलकत्ता की दुर्दशा का एक व्यंग्य-चित्र उदाहरणार्थ प्रस्तुत है :

"····संभव है कि उसमे श्रीमान के दिलपसंद अंग्रेजी मुहल्लों में कुछ और भी बड़ी-बडी सड़कें निकल जायें और गवर्नमेंट हाउस की तरफ से स्वर्ग सीमा और बढ़ जावे। पर नगर जैसा अंधेरे मे था, वैसा ही रहा क्योंकि उसकी असली दशा देखने के लिए और ही प्रकार की आखों की जरूरत है। जब तक वह आंखें न होंगी. यह अंधेर यों ही चलता जावेगा। यदि किसी दिन शिव शंभू शर्मा के साथ माई लार्ड नगर की दशा देखने चलते, तो वह देखते कि इस महानगर की लाखों प्रजा, भेड़ो और सूअरों की भांति सड़े-गंदे झोपड़ों में पड़ी फिरती है।···हरेक ऋतु की तीव्रता में सब से आगे मृत्यु के पथ का वही अनुगमन करते है। मौत ही एक है जो उनकी दशा पर दया करके जल्द-जल्द उन्हें जीवन रूपी रोग के कष्ट से छुड़ाती है।"[4]

कहने की आवश्यकता नही कि ऐसी सहज सरल भाषा ही जन साधारण को साहित्य की ओर आकर्षित करती है। उन्होंने उर्दू वालों के लिए संस्कृत तत्समता की ओर तथा संस्कृत शब्द-प्रेमियों के लिए सरल उर्दू शब्दों की ओर झुकने की सलाह को क्रियात्मक रूप दिया। उनकी शैली पं० प्रतापनारायण मिश्र की भाषा की याद दिला देती है। विशेष अंतर यह है कि वे अपने गुरु के ग्राम्य दोष से दूर है। उनके जैसी मुहावरेदानी तो गुप्तजी में नही है, परंतु मुहावरों के उपयुक्त प्रयोग से वे वंचित नही है। कभी-कभी तो उन्ही के समान अपने लेखों तथा समाचारों का शीर्षक भी मुहावरों अथवा लोकोक्तियों में ही रखते हैं। 'बासी कढ़ी का उबाल'[5], 'कुल्हिया का गुड़'[6] ऐसे ही शीर्षक हैं। उनकी भाषा सरल, सुंदर, प्रवाहपूर्ण, स्वाभाविक तथा सुस्पष्ट तो है, परंतु व्याकरण के नियमों विशेषतः लिंग-वचन-कारकों तथा विराम चिह्नों की दृष्टि से कुछ प्रयोग चिंत्य भी अवश्य हैं। उपर्युक्त उद्धरण में ही 'लाखों प्रजा' तथा उनके लिए 'वही' (एक वचन), वह आंखें, वह देखते, वही (वे ही के

१. 'बालमुकुंद गुप्त निबंधावली', प्रथम भाग, पृ० १६४।
२. मु० ब० शहा, 'हिंदी निबंधों का शैलीगत अध्ययन', पृ० १६१।
३. 'हिंदी साहित्य कोश', भाग २, पृ० ३५८।
४. बालमुकुंद गुप्त, 'शिव शंभू के चिट्ठे', छठा चिट्ठा, पृ० ४१-४२।
५. हिंदी बंगवासी—१७ अप्रैल १८६६।
६. भारत मित्र—१० दिसंबर १६००।

स्थान पर), आदि प्रयोग अशुद्ध हैं। 'जावे' तथा 'जावेगा' आदि भी आज की दृष्टि से साधु नहीं हैं। परंतु उस काल में कुछ प्रयोग तो साधु समझे जाते थे और कुछ का स्वरूप स्थिर नहीं था। अतः इस प्रकार की भूलें अस्वाभाविक नहीं हैं। इनके अतिरिक्त उनकी भाषा सरल, अकृत्रिम, तथा शैली विषयानुकूल एवं प्रवाहपूर्ण है। यह स्पष्ट है कि बाद में पद्मसिंह शर्मा तथा मुंशी प्रेमचंद ने उन्हीं के आदर्श का अनुसरण किया।

प्रतापनारायण मिश्र

१९३० वि० का होलिकोत्सव हिंदी पत्रकारिता एवं गद्य-लेखन के इतिहास में एक महत्वपूर्ण पर्व कहा जाना चाहिए। उस दिन १५ मार्च १८७३ को कानपुर से 'ब्राह्मण' पत्र का समारंभ हुआ था। यह शुभ कार्य पं० प्रतापनारायण मिश्र का श्रम-फल था। वे फाके मस्त, हंसोड़, निर्भय तथा अनेक भाषाओं के पंडित थे। हिंदुत्व के इस निष्ठावान प्रहरी तथा हिंदी के अनन्य हिमायती ने ही हिंदी-हिंदू-हिंदुस्तान का नारा दिया था। इन्हीं तीनों की आराधना करने का उद्देश्य लेकर उन्होंने पत्रकारिता के क्षेत्र में पदार्पण किया था। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के अनुसार—"प्रतापनारायण मिश्र अपने युग के सर्वश्रेष्ठ लेखकों में रहे हैं।"[1] उन्होंने ५० के लगभग पुस्तकें लिखीं। किंतु उनकी कीर्ति-पताका आज निबंधों के कारण ही है। 'ब्राह्मण' ने इस पताका के ध्वज दंड का कार्य किया है।

'ब्राह्मण' का संपादन भी उस समय की अन्यान्य पत्र-पत्रिकाओं की भांति घाटे का सौदा था। इसीलिए वे एक बार जुलाई १८८९ मे महाराज रामपाल सिंह के सुप्रसिद्ध पत्र 'हिंदोस्थान' में सह-संपादक होकर कालाकांकर चले गये थे। वहां वेतन वातावरण तथा काम, सभी कुछ सुविधाजनक था। साथ ही संपादक मंडल में पं० मदनमोहन मालवीय, पं० बालमुकुंद गुप्त, पं० राधाचरण चौबे तथा रामलाल मिश्र आदि का साथ भी बहुत सुखद था किंतु स्वाभिमानी ब्राह्मण किसी महाराजा की नौकरी में बंधकर नहीं रह सका और एक वर्ष पश्चात जुलाई १८९० में पुनः कानपुर लौट आया। इस संबंध मे गोपालराम गहमरी का संस्मरण पढ़ने योग्य है।[2] वे कालाकांकर से भी 'ब्राह्मण' का संपादन करते रहे थे। यह पत्र उन्हें प्राणों से भी अधिक प्यारा था। कानपुर आकर तो उन्होंने अपने समग्र जीवन को संपादन कार्य में झोंक दिया और बावजूद तमाम परेशानियों के १८९४ तक यह पत्र प्रकाशित होता रहा। १८९५ में वे स्वर्ग सिधार गये थे। उनके जीवन के होमस्वरूप कुंदनरूपी जिस "ब्राह्मण" की उपलब्धि हुई वह हिंदी पत्रकारिता इतिहास की एक अमूल्य निधि है। पाठकों ने भी निधि की भांति ही इसका स्वागत किया था। इस स्वागत का श्रेय उनकी शैली और भाषा को जाता है। जिसकी सब से बड़ी विशेषता सरलता और आत्मीयता है।

"अब तो आप समझ गये न कि आप क्या हैं।···आप कौन हैं? कहां के हैं? कौन के हैं? यदि यह भी न हो सके तो लेख पढ़ के आपे से बाहर जाइए तो हमारा

१. डा० सुरेशचंद्र शुक्ल, 'प० प्रतापनारायण मिश्र : जीवन और साहित्य' (कानपुर, १९६४), भूमिका।
२. 'सरस्वती', जून १९३८ में 'स्व० प्रतापनारायण मिश्र' शीर्षक लेख।

क्या अपराध है ? हम केवल जी में कह लेंगे —'शाब। आप न समझो तो अर्मा को के पड़ी छै।' ऐं। अब भी नहीं समझे ? वाह रे आप।"[1] मुहावरेदार चलती हुई भाषा संबोधन तथा लघु वाक्य सब मिलाकर एक घरेलू वातावरण का निर्माण कर रहे हैं। यही वह चीज थी जिससे वे सामान्य पाठक को आकर्षित करते थे। इसकी शक्ति इतनी बड़ी थी कि वे बड़े-बड़ों के झगड़े तय करा देते थे। एक बार 'हरिश्चंद्र सर्वस्व' के प्रकाशन को लेकर 'भारत-जीवन' एवं 'उचितवक्ता' के समझदार संपादकों में झगड़ा हो गया। बात आगे बढ़ती देख मिश्रजी ने दोनों को समझाते हुए लिखा—" 'उचितवक्ता' भाई ! वाह ! 'भारतजीवन' साहब ! धन्य ! 'सब को ज्ञान दें आप कुत्तों से चिथवावें'—तुम्हें क्या हुआ है। जो बातें आपुस में निबट लेने की हैं उनको गोहरोत फिरना। छि: ! छि: ! बच्चे हो ?—सोचो तो ! खैर बहुत हो चुका, कब तक कर्कसा सराफ रहेगी ? इसी से कहते हैं होश में आओ।" लगता है चौपाल पर बैठा कोई बुजुर्ग समझा रहा है। बुजुर्ग तो बेचारे थे नहीं। ३८ वर्ष की अवस्था में ही स्वर्ग सिधार गये थे; परंतु मान्य बड़े-बड़ों के थे। महामना मदन मोहन मालवीय 'हिंदोस्थान' के प्रधान संपादक तथा बालमुकुंद गुप्त प्रवर संपादक होते हुए भी मिश्रजी को अपना गुरु मानते थे। स्वयं बालकृष्ण भट्ट इनसे प्रभावित थे। उन्होंने अपना सुप्रसिद्ध निबंध 'लिलार' मिश्रजी के 'भौं' से प्रेरणा प्राप्त करके लिखा था।[2] स्वयं भारतेंदु भी इनको मान देते थे और कभी-कभी 'ब्राह्मण' के लिए लिखते भी थे। इस सारी प्रतिष्ठा का कारण उनका चुटीला हास्य, सत्यकथन, साहस तथा देश-प्रेम था। उनका 'ब्राह्मण' इन्हीं गुणों का मूर्तिमान आदर्श था। "उनका साहित्य हिंदी का अक्षय कोश है।"[3]

उनके साहित्य का अधिकांश भाग 'ब्राह्मण' में प्रकाशित है। और 'ब्राह्मण' में प्रकाशित उनकी रचनाओं मे उनकी सशक्त शैली का ज्ञान होता है।

मिश्रजी ने राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक, भाषा विषयक तथा अन्यान्य निबंध लिखे। उनके निबंधों का वर्गीकरण आसान कार्य नहीं है क्योंकि एक निबंध कहीं तो राजनीतिक हो जाता है, कहीं सामाजिक और कहीं उसी में हास्य-व्यंग्य का समाहार कर दिया जाता है। इसी कारण उनके एक ही निबंध में विभिन्न प्रकार की शैलियां विद्यमान रहती हैं। ऐसे कुछ ही निबंध मिलेंगे जिनमें आद्योपांत एक शैली का निर्वाह हुआ हो। परंतु यह वैविध्य दूषण नहीं भूषण माना जाता है। इस से पाठक की रुचि बराबर बनी रहती है। वैसे पाठकों की आवश्यकता और अपने स्वभाव को ध्यान में रखकर इन्होंने बहुत सी शैलियों का प्रयोग किया है। भौं, द, ट, गंगाजी, बेगार, रिश्वत, उन्नति की धूम इत्यादि निबंध वर्णनात्मक शैली में लिखे गये हैं। ये निबंध समाज में खूब प्रशंसित हुए थे। ऐसे निबंध प्रायः अंत में उपदेशात्मक शैली में परिवर्तित हो जाते हैं। ब्राह्मण का यह कार्य स्वाभाविक था। उनकी अधिकांश रचनाएं कोई न कोई उपदेश समाहित रखती थीं। 'पतिव्रता' निबंध का अंतिम अंश लीजिए—"कन्नौजियों की तरह डंडेबाजी

१. 'ब्राह्मण', खं० ६, सं० ८, में 'आप' शीर्षक लेख।
२. 'हिंदी प्रदीप', अक्तूबर-दिसंबर १८८७, पृ० १५।
३. डा० सुरेशचंद्र शुक्ल, 'पं० प्रतापनारायण मिश्र : जीवन और साहित्य', पृ० ५७।

से नारियां केवल डर सकती हैं, प्रीति न करेंगी । अग्रवालों, खत्रियों की भांति निरी स्वतंत्रता सौंप देने से भी वे सिर चढ़ेंगी । अतः भय और प्रीत दोनों दिखाना, स्वतंत्र परतंत्र दोनों बनाये रखना । मौके-मौके से उन्हें अनुमति और शिक्षा भी देते रहना, और कभी-कभी उनकी सलाह भी लेते रहना । बस इन उपायों से संभव है कि भारत कन्याएं पुनः पतिव्रत की ओर झुकने लगेंगी ।[1]

यहां एक बात देखने की है कि उपदेश का हर वाक्य नया है और हर नये वाक्य में नया विचार है । कहीं-कहीं एक वाक्य में कई उपवाक्य हैं किंतु उन सभी में भिन्न सलाह है । इस प्रकार विचारों को ठांस और दाब कर भरने की चेष्टा की गई है । इसी शैली को शास्त्रीय परिभाषा में समास शैली कहते हैं । लेकिन यह शैली मिश्रजी के कम ही लेखों में प्राप्त होती है । अधिकांश लेख इसके विपरीत व्यास शैली में लिखे गये हैं । उसमें एक ही बात कई-कई वाक्यों में दोहरायी जाती है । यही मिश्रजी की प्रिय शैली है । अपनी बात को विस्तार देने के साथ-ही-साथ उसमें प्रामाणिकता तथा स्पष्टता लाने के लिए वे दूसरों की तत्संबंधी उक्तियां, उदाहरण, अंतर्कथाएं तथा दृष्टांत भी देते चलते हैं । इसे दृष्टांत शैली कहते हैं । यह शैली मिश्रजी की बहुत बड़ी विशेषता है । भारतेंदु जी में यह बात नहीं थी । मिश्रजी को उद्धरण भी बड़ी आसानी से प्राप्त हो जाते हैं । उनकी स्मरणशक्ति बहुत अच्छी थी । पढ़ने का कम समय मिलने पर भी उन्हें याद बहुत था । मिश्रजी को सारा समय हिंदी-हिंदू तथा हिंदुस्तान की उन्नति के लिए रोते हुए बीता । इसी बीच कभी-कभी श्रद्धेय एवं सुहृद व्यक्तियों के परलोकवास के दुखद समाचार भी मिले । ऐसे अवसरों पर मिश्रजी की गलदश्रु भावुकता ने जिस शैली के लेखों को जन्म दिया है उसे चाहें तो प्रलापात्मक शैली भी कह सकते हैं । भारतेंदु हरिश्चंद्र की मृत्यु पर उनकी भाषा में शोक की अभिव्यक्ति यों हुई—"हाय हृदय विदीर्ण हुआ जाता है । आंसू रुकते ही नहीं हैं । हाय-हाय सुनने से पहिले ही हमारा निर्लज्ज शरीर क्यों न छूट गया । हाय पापी प्राण तुम क्यों न निकल गये ।··· अरे अब तेरा कौन है । स्वामी दयानंद चल बसे । छाती पर पत्थर धर लिया । केशव बाबू सिधार गये रो-धोकर कलेजा थाम लिया ।···हाय देश हितैषिता अब विधवा हो गई । हाय हम क्या करेंगे ।"[2]

नवाब वाजिदअली शाह की मृत्यु पर भी ऐसा ही लेख लिखा गया था ।[3] परंतु भारतेंदु तो उनके बहुत ही श्रद्धेय थे । वे श्रीगणेशाय नमः के स्थान पर श्री हरिश्चंद्राय नमः लिखा करते थे । उन्होंने भारतेंदु मृत्यु संवत् भी चलाया था और उसे 'ब्राह्मण' के मुखपृष्ठ पर लिखा करते थे । ब्राह्मण पत्र के ऊपर अर्धचंद्र और एक के चिह्न अंकित रहते थे । इनमें अर्धचंद्र भारतेंदु का तथा एक भारतीय एकता का प्रतीक था । एकता पर उन्होंने पृथक लेख भी लिखा था जो भावनात्मक होते हुए भी विचारात्मक है । मनोविज्ञान विषयक लेखों में यही शैली अपनायी गयी है । जिन लेखों

१. 'ब्राह्मण', खंड ४, संख्या १२ ।
२. वही, खंड २, संख्या ११, 'रक्ताश्रु' शीर्षक लेख ।
३. वही, : खंड ४, संख्या ३, 'वाजिदअली शाह' शीर्षक लेख ।

में भावना और तर्क का सुष्ठु समन्वय बन पड़ा है वे काव्यात्मक हो गये हैं। काव्यात्मक लेखों में उनकी कलम ने अलंकृत शैली को जन्म दिया है। अलंकरण विधान में उन्होंने वक्रोक्ति, उपमा, रूपक, उदाहरण उत्प्रेक्षा और सब से अधिक श्लेष अलंकार का प्रयोग किया है। नारी (नाली, नाड़ी) विषयक श्लेषगर्भित कुछ पंक्तियां द्रष्टव्य हैं— "अच्छे वैद्यों के द्वारा, पथ्यापथ्य विचार द्वारा, म्यूनिसिप्यलिटी द्वारा, सदुपदेश द्वारा, नारी पात्र को अनुकूल रखना ही श्रेयस्कर हैं। तनिक भी व्यतिक्रम पाओ तो वैद्यराज से कहो—महाराज नारी देखिए, मोहल्ले के मेहतर से कहो कि चिलम पीने को यह पैसा लो और नारी अभी साफ करो, घर की लक्ष्मी से कहो नारी! ऐसा उचित नहीं। कोई अफीम खा गया तो उसके संबंधी से कहना चाहिए कि नारी का साग पिलाना चाहिए। इसी प्रकार सदैव नारी का विचार और भगवान मदनारी (कामदेव के नाशक शिव) का ध्यान रखा करो नहीं तो महा अनारी हो जाओगे।"[1] साहित्यिक निबंधों में इस प्रकार के बहुत से उद्धरण सुलभ हैं। कहीं ऐसे उद्धरण बहुत सुंदर व्यंग्यों की सृष्टि करते हैं। उन्होंने अंग्रेजों के शोषण, अफसरों की खुशामद, जनता की स्वार्थपरता तथा ब्राह्मणों की निरक्षरता पर सारगर्भित व्यंग्य किये हैं। एक उदाहरण देखिए :

"···सरस्वती तो हमारे पेट में बसती है। लाख कहो एक न मानेंगे। अपना सर्वस्व हमारे घाऊघप्प पेट में ठांस-ठांस न भरे वही नास्तिक, जो हमारी बेसुरी तान पर वाह-वाह न किये जाय वही क्रुष्टान, हम से चूं भी करे सो दयानंदी। जो हम कहें वही सत्य है। ले भला हम तो हम, दूसरा कौन।" मूढ़ों पर एक व्यंग्य लीजिए— "सच है—'सब से भले हैं मूढ, जिन्हें न व्यापै गति' मजे से पराई जया गयक बैठना। रंडिका देवीकी चरण सेवा में तन मन धन से लिप्त रहना, खुशामदियों से गप्प मारना, जो कोई तिथ तौहार आ पड़ा तो गंगा में चूतड़ धो आना, वहां भी राह पर पराई बहू बेटियां ताकना···संसार परमार्थ दोनों तो बन गये अब काहे की है, है काहे की खैं खे।"[2]

प्रतापनारायण मिश्र मुहावरेदानी के शौकीन थे। बात-बात में उनकी लेखनी से मुहावरे हरश्रृंगार के फूल की भांति झड़ते थे। लोकोक्तियां को लेकर उन्होंने पूरी काव्य पुस्तक 'लोकोक्ति शतक' की रचना कर डाली थी।[3] काव्य ही नही नाटकों का भी यही हाल है। नाटकों में व्यवहृत काव्योद्धरणों में मुहावरे बड़ी आसानी से खोजे जा सकते हैं। पात्रों के कथोपकथन तथा गीत मुहावरों से भरे रहते हैं। और तो क्या शीर्षक तक लोकोक्तियों तथा मुहावरों में रख देते हैं। 'ब्राह्मण' की प्रतियां ऐसे शीर्षकों से भरी पड़ी हैं। 'घूरे के लत्ता बीनैं, कनातन के डौल बांधें', 'मुनिनां च मति भ्रमः', 'मरे को मारैं साह मदार', 'इस सादगी पै कौन न मर जाय ए खुदा' आदि शीर्षक तो

१. 'ब्राह्मण', खंड ४, संख्या ४—'हो ओ ओ ली हैं' शीर्षक लेख।

२. वही, खड ५, संख्या २ 'समझदार की मौत है' शीर्षक लेख।

३. द्रष्टव्य : छोड़ नागरी सगुन आगरी, उर्दू के रंग राते।
देशी वस्तु, विहाय, विदेशिन सौं सर्वस्व ठगाते।
मूरख हिंदू कस न लहैं दुख. जिकर यह ढंग दीठा।
घर की खांड खुरखुरी लागै, चोरी का गुड़ मीठा।—'लोकोक्ति शतक', पृ० ५।

बहुत बड़ी चर्चा का विषय रहे थे। शीर्षकों की विशिष्टता उनकी उपयुक्तता में सन्निहित रहती थी। उदाहरण के लिए—'सबै सहायक सबल को कोउ न निबल सहाय' को लिया जा सकता है।[1] यह शीर्षक उन्होंने एक कुली की युवती पत्नी का एक विजातीय सरकारी अफसर द्वारा शीलभंग करने की खबर छापते हुए दिया था।

मुहावरों का मुक्त प्रयोग उनकी शैली की बहुत बड़ी विशेषता है। "भारतेंदु-युग में ही नहीं, आगे द्विवेदीयुगीन भाषा के वैभवशाली दिनों में भी मिश्रजी की भाषा जैसी जिंदादिली तथा मुहावरेबाजी अन्य किसी शैलीकार में नहीं आ सकी।"[2] आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कहा है कि ये पूरबी की परवाह न करके लेखों में अपने बैसवारे की ग्राम्य कहावतें बेधड़क रख दिया करते थे।[3] यह ग्रामीणता ही उनके मुहावरों की सब से बड़ी सीमा है। अन्यथा मुहावरे और लोकोक्तियों का इतना अधिक प्रयोक्ता हिंदी गद्य लेखकों में कोई दूसरा नहीं दिखायी देता। मुहावरों की झड़ी के लिए उनका 'बात' शीर्षक लेख बहुत प्रसिद्ध है। उसी लेख से कुछ पंक्तियां यहां प्रस्तुत हैं :

"बड़ी बात, छोटी बात, सीधी बात, टेढ़ी बात, खरी बात, खोटी बात, मीठी बात, कड़वी बात, भली बात, बुरी बात, सुहानी बात, लगती बात इत्यादि सब बात ही तो हैं। इसके अतिरिक्त बात बनती है, बात बिगड़ती है, बात आ पड़ती है, बात जाती है, बात खुलती है, बात छिपती है, बात चलती है, बात अड़ती है, बात जमती है, बात उखड़ती है···।"

मिश्रजी की प्रतिनिधि भाषा के लिए 'घूरे के लत्ता बिनैं कनातन का डौल बांधै' शीर्षक लेख से दो गद्यांश उद्धृत करना यहां उचित होगा : "यदि सचमुच हिंदी का प्रचार चाहते हो तो आपस के जितने कागज पत्तर लेखाजोखा टीप तमस्सुक हों सब में नागरी लिखी जाने का उद्योग करो। जिन हिंदुओं के यहां मौलवी साहब बिसमिल्लाह करते हैं उनके पंडितों से अक्षरारंभ कराने का उपकार करो चाहे कोई हँसै चाहे धमकावै जो हो सो हो तुम मनसा वाचा कर्मणा उर्दू को लुलू देने में सन्नद्ध हो इधर सरकार से भी झगड़े खुशामद करो दांत निकालो पेट दिखाओ मेमोरियल भेजो एक बेर दुतकारे जाओ फिर धन्ने धरो किसी भांति हतोत्साह न हो हिम्मत न हारो जो मनसा राम कचियाने लगैं तो यह मंत्र सुना दो—प्रारंभते न खलु बिघ्नभयेन नीचै ···इत्यादि।"

उन दिनों झूठी उपदेशात्मकता बरसाने वाले, कोरी बातें बनाने वाले तथा धुआंधार के भाषण बघारने, झाड़ने वाले भी बहुत थे। ऐसे लोगों को फटकारते समय मिश्रजी की भाषा में बड़ा ओज आ जाता था। "घर की मेहरिया कहा नहीं मानती, चले हैं दुनिया भर को उपदेश देने, घर में एक गाय नहीं बांधी जाती गोरक्षणी सभा स्थापित करेंगे, तन पर एक सूत देशी कपड़े का नहीं है बने हैं देश हितैषी, साढ़े तीन हाथ का अपना शरीर है उसकी उन्नति नहीं कर सकते देशोन्नति पर मरे जाते हैं कहां

१. 'ब्राह्मण', खंड २, संख्या ४।
२. डा० शंकरदयाल चौऋषि, 'द्विवेदी-युग की हिंदी गद्य शैलियों का अध्ययन', पृ० १२२।
३. आ० रामचंद्र शुक्ल, 'हिंदी साहित्य का इतिहास' (२०२५ वि० सं०), पृ० ४२६।

तक कहिये हमारे नौसिखिया भाइयों को 'माली खुलिया' का अजार हो गया। करते-धरते कुछ नहीं बक-बक बांधे हैं। जब से शिक्षा कमीशन ने हिंदी को हंट (शिकार) किया तब से एडीटर महात्मा और सभाओं के मेंबर के दिमाग में फितूर पड़ गया है··· घूरे के लत्ता बिनें कनातन का डौल बांधें।'

मिश्रजी अपने युग की कमियों से दूर नहीं थे। उस युग में विराम चिह्नों का ठीक प्रचलन न होने के कारण, मिश्रजी की भाषा में भी विराम चिह्नों की भयंकर अशुद्धियां तथा कमियां हैं। यही तथ्य व्याकरण-दोषों पर भी निर्भर है। उन दिनों क्रिया, कारक, लिंग-वचन इत्यादि का मानक स्तर निर्धारित नहीं था। यही कारण है कि मिश्रजी की भाषा में काफी त्रुटियां हैं। रिष्टपुष्ट, रिषि, रितु, म्लेक्ष, प्रान, लेखणी, शान्तता, लावण्यता, ऐक्यता, प्रावल्यता न्याय्यभिमान, देह त्याग की थी, अपने भूमि में, कौन के हैं, परीक्षा किया, अनेक्य इस जाति में ऐसी हो गई, कपड़ा पहनो ही गे, इसके हुई हैं, यह बातें, सम्प्रदाय नियत हो गई, तिस्पर, परकार, तौ, आव इत्यादि अनेकानेक चित्य प्रयोग सहज ही दिखायी पड़ जाते हैं। इतना होते हुए भी यह तथ्य एकदम निभ्रांत है कि उनकी भाषा अपने युग के अन्य अनेक पत्रकारों, पंडितों, लेखों, कवियों तथा विद्वानों की अपेक्षा कहीं अधिक शुद्ध कहीं अधिक सात्विक तथा कहीं अधिक व्यावहारिक थी।

मिश्रजी ने ग्रामीण शब्दों, मुहावरों तथा कहावतों का खुली कलम से उपयोग किया है और इसके कारण उनकी आलोचना भी कम नहीं हुई है, परंतु उनकी इसी भाषा ने सर्व साधारण का ध्यान उर्दू-फारसी मे हटाकर हिंदी की ओर आकर्षित किया था। विद्वान होते हुए भी वे सामान्य जनता की भाषा में, सामान्य जनता के लिए, सामान्य जन-कल्याण की भावना से लिखते थे। इसीलिए उनका 'ब्राह्मण' विद्वत्परिषदों से लेकर चौपालों तक संमान रूप मे समादृत था। उसने न जाने कितनों को हिंदी, हिंदू और हिंदुस्तान का सच्चा सेवक बनाया था। यही उनके जीवन और लेखन का उद्देश्य था।

रीझै अथवा खिझै जहान। मान होय चाहे अपमान।
पै न तजो रटिबे की बान। हिंदी, हिंदू, हिंदुस्तान।
धन है वह धन धनि वे प्रान। जे इन हेत होहि कुरबान
यही तीन सुख सुगति निधान। हिंदी, हिंदू, हिंदुस्तान।

हिंदी पत्रकारिता : अनुभव के दर्पण में

स्वतंत्रता आंदोलन के प्रारंभिक दिनों में पत्रकारिता एक बड़ा दायित्व का काम था। उन दिनों के जो पत्रकार आज जीवित हैं, उनके अनुभव बहुत ही रोचक और प्रेरणाप्रद है। वे पत्रकारिता में किसी व्यावसायिक दृष्टि से नहीं, अपितु विशुद्ध सेवा भावना तथा समर्पण वृत्ति से प्रविष्ट हुए थे।

श्रीयुत बनारसीदास चतुर्वेदी ने कालेज की प्रोफेसरी छोड़कर, पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रवेश किया था। उनके पिताजी केवल दस-पंद्रह रुपये मासिक पर अध्यापक थे। पारिवारिक दृष्टि से कालेज की नौकरी उनके लिए आवश्यक थी। परंतु दीनबंधु एंड्रूज की प्रेरणा से उन्होंने पत्रकारिता का दायित्व संभाला था। कालेज से त्याग-पत्र देते हुए उन्होंने केवल इतना लिखा था—"चूंकि मैं पत्रकारिता का काम अख्तियार करना चाहता हूं, इसलिए अपनी नौकरी से त्यागपत्र दे रहा हूं।" निश्चित ही इस त्यागपत्र के पीछे मिशनरी स्प्रिट काम कर रही थी। सौभाग्य से चतुर्वेदीजी ने इस वृत्ति का जीवन भर निर्वाह किया। प्रवासी भारतीयों की समस्याओं को उन्होंने यथाशक्ति उजागर किया। मार्च १९१२ के काशी से प्रकाशित 'नवजीवन' में छपा उनका लेख—'फिजी द्वीप में २१ वर्ष' इसका प्रमाण है। १९२८ से १९३७ तक के 'विशाल भारत' में भी उनके द्वारा इस दिशा में अविस्मरणीय प्रयत्न किये गये थे।

इसी प्रकार समर्पण भावना के धनी पं० सुंदरलाल आज भी जीवित हैं। पं० सुंदरलाल पुरानी पीढ़ी के उन पत्रकारों में मे हैं जिन्होंने स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान पत्रकारिता को जन-जागृति का माध्यम मान कर पूरी लगन से पत्रकारिता क्षेत्र में पदार्पण किया था। संपादन से लेकर पत्र बेचने तक का काम उन्होंने किया। पत्र जब्त होने पर जेल की यातनाएं सहन की। कभी माफी मांगने का प्रसंग आया तो जेल की यातनाएं अंगीकार कीं, माफी मांगकर पत्रकारिता के पेशे को कलंकित नही होने दिया।

'महारथी' मासिक के वयोवृद्ध संपादक श्री रामचंद्र महारथी के शब्दों में—"उन दिनों पत्रकारिता एक व्रत होता था, वृत्ति नहीं। पराधीन भारत की आत्मा मे चेतना जगाने के उद्देश्य से एक वीर रस-प्रधान पत्र की अनिवार्यता अनुभव होने पर

अपनी सामर्थ्य को देखते हुए एक हिंदी मासिक प्रकाशित करने का संकल्प किया और 'महारथी' मासिक आरंभ कर दिया। घटनाचक्र के कारण उसका रूप दैनिक हो गया और अन्ततः वह साप्ताहिक बन गया। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में पत्रकारिता का वह अध्याय देश-सेवा का साक्षी है। वह युग था जब पत्र और पत्रकारिता के साथ संबंध करना ऐसा था जैसा कि संत कबीर के शब्दों में—

"हम घर जारा आपना लिया मुराड़ा हाथ
अब घर जारु तासुंका, जो चले हमारे साथ।"

पं० सुंदरलाल जी, जिनका ऊपर उल्लेख किया गया है, आज जीवित पत्रकारों में संभवतः सब से अधिक बयोवृद्ध हैं। ये वही यशोधनी पत्रकार हैं जिनकी पुस्तक 'भारत में अंग्रेजी राज्य' पर प्रतिबंध लगाने के खिलाफ महात्मा गांधी ने डटकर लिखा था और सत्याग्रह तक किया था।

अतीत में खोते हुए सुंदरलाल जी ने बताया, "१९०५ में बंगाल का विभाजन कर दिया गया था। देश भर में हिंदू-मुसलमानों को लड़ाकर आजादी की भावनाओं को ठेस पहुंचाने का सुनियोजित षड्यंत्र रचा गया था। लोकमान्य तिलक, लाला लाजपतराय, योगिराज अरविंद और विपिनचंद्र पाल इन चार नेताओं की उन दिनों तूती बोलती थी। बंग-विभाजन का देश भर में उग्र विरोध हुआ था। मैं १९०५ में लाहौर के डी० ए० वी० कालेज से बी० ए० पास करके, ला में एडमिशन लेने के लिए इलाहाबाद गया था। तभी आजादी की भावना ने हृदय को झकझोर दिया। पढ़ाई सेक्रिफाइस करके आंदोलन में कूद पड़ा। नाम काली सूची में आ गया था इसलिए परीक्षा में नहीं बैठने दिया गया।

उन्होंने बताया, "लोकमान्य तिलक के उग्र विचारों ने मुझे सब से अधिक प्रभावित किया था। उन्हें पत्र लिखकर मैंने अपना पूरा जीवन आजादी के लिए समर्पित करने की इच्छा व्यक्त कर दी। मैंने १९०७ में श्री तिलक को इलाहाबाद बुलाया और भाषण कराया। उन्होंने मुझे पूना बुलवा लिया और कलकत्ते जाकर श्री अरविंद से मिलने की प्रेरणा दी। अरविंद आतंकवादियों के सर्वाधिक प्रिय नेता थे। उन्होंने मुझे अपने मूवमेंट में शामिल कर लिया। श्री अरविंद उन दिनों बंगला और अंग्रेजी में 'कर्मयोगिन' निकालते थे। हिंदी भाषी क्षेत्र में उनके उग्र विचारों का प्रचार हो, इसलिए मेरे जिम्मे हिंदी पत्र का काम सौंपा गया। लाला लाजपतराय ने इस कार्य में दिलचस्पी ली। पत्र का नाम 'कर्मयोगिन' ही निश्चित हुआ। अब प्रश्न धन का था। कृष्णा मिल ब्यावर के मालिक श्री दामोदर राठी लालाजी के परममित्र और घोर राष्ट्रवादी व्यक्ति थे। उन्होंने मुझे राठीजी के पास भेजा और आश्वासन दिया कि पेपर निकालो, पैसा चाहे जितना लो, दस-बीस हजार या इससे भी अधिक। अतः १९०८ में प्रेस लगा लिया गया। प्रयाग पब्लिशिंग कंपनी के नाम से कंपनी की रजिस्ट्री हो गयी। बस फिर क्या था, 'कर्मयोगी' चालू हो गया। पहला अंक मासिक था, फिर साप्ताहिक हो गया। उग्र राष्ट्रीय विचारधारा के कारण जनता में पत्र शीघ्र ही लोकप्रिय बन गया।"

उन दिनों गोरी सरकार पत्र और पत्रकारों को अपना सब से बड़ा दुश्मन

सूझती थी। शक्ति की बारूद और प्रेस एक्ट की तोप से चाहे जिस पत्र की हत्या कर देती थी। इधर पत्रकार स्वतंत्रता-संग्राम को अपना प्राण समझते थे। जो पत्र जितनी बार जब्त होता, वह उतना ही सौभाग्यशाली समझा जाता था। जो संपादक जितनी बार जेल काटता, उतना ही सफल माना जाता था। जिस प्रकाशक के जितने अंक जब्त होते, वह जनता की नजरों में उतना ही चढ़ जाता था। बारूदी लेख लिखने, तूफानी कविता छापने और तहलका मचा देने वाली खबरों को प्रकाशित करने की होड़ लगी रहती थी। 'होमरूल' हो या सत्याग्रह, भारत छोड़ो आदोलन हो या कमीशनों का बायकाट—अखबार विवरण छापने में पीछे न रहते थे। यह सरकारी आंखों में कांटे की तरह खटकता था। वह छोटे-छोटे लेखों पर जमानत जब्त करने को तुली रहती थी, इंक्वायरी बैठाती थी और तलाशियां लिया करती थी। इस संबंध में पं० बनारसीदास चतुर्वेदी का बताया हुआ एक अनुभव बड़ा मजेदार है :

"एक बार बंधुवर अख्तर हुसैन रायपुरी द्वारा लिखित 'जोश मलीहाबादी—उर्दू के क्रांतिकारी कवि, नामक लेख को सरकार ने आपत्तिजनक समझा और हमें 'वार्निंग' भेज दी। दूसरी बार बृजमोहन वर्मा के किसी लेख को, जो शायद कार्ल मार्क्स पर था, पढ़ कर एक सरकारी अफसर 'विशाल भारत' के कार्यालय में आया। उसने रामानंद बाबू के सुपुत्र श्री अशोक चटर्जी से कहा कि आपके यहां एक 'रेव्यूल्यूशनरी राइटर' काम करता है। उसका नाम बृजमोहन वर्मा है। हम उससे मिलना चाहते हैं। अशोक बाबू उस महानुभाव को लेकर मेरे कार्यालय में पधारे और वर्माजी की ओर इशारा कर दिया। वर्माजी लुंजपुंज आदमी थे। बैसाखी के बल पर चलते थे। वे शरीर से अत्यंत दुर्बल थे। उनके खड़े होने पर सरकारी अफसर के चेहरे पर आश्चर्य की मुद्रा झलक आयी और उसने पूछा कि क्या वर्माजी का विवाह हो गया है? मैंने मौका पाकर तुरंत चुटकी ली—'अजी साहब यही तो सारी आफत की जड़ है। इनकी शादी अगर हो जाय तो हम सब को राहत मिल सकती है। अभी तो ये रात-रात भर जाग कर क्रांतिकारी लेख लिखा करते हैं जिससे सरकार भी तंग है और हम भी।' इस मजाक से सब हंसने लगे और मामला वहीं शांत हो गया।"

सरकार वस्तुतः छोटे-मोटे लेखों की आड़ लेकर पत्रकारों को तंग करने का बहाना ढूंढ़ती रहती थी। वह प्रेस एक्ट की धारा १२५ ए को लागू करके संपादकों को जेल भेजने, प्रबंधकों पर जुर्माना करने तथा प्रकाशकों की जमानत जब्त करने पर उतारू रहती थी। लेकिन पत्रकारों में बड़ा मेल था। एक पत्र पर जुर्माना होता, तो दूसरा उसकी भर्त्सना करता। दूसरे पर होता तो तीसरा सरकार की बखिया उधेड़ देता था। नेताओं के पकड़े जाने या शहीद हो जाने पर अखबार आग उगलने लगते थे। पंजाब केसरी लाला लाजपत राय के शहीद होने पर 'महारथी' मासिक का दिसंबर १९२८ का अंक केसरिया कागज पर निकाला गया था। रक्ताक्षरों में लिखित इसके १०० पृष्ठ कलकत्ता कांग्रेस में वितरित किये गये थे। इस अंक में छपी अंतिम पंक्तियां इस प्रकार हैं—"हम यह बात बलपूर्वक कह सकते हैं कि यदि कभी देश में फ्रांस जैसी क्रांति का उदय हुआ तो देश के आरामतलब शासक सर्वप्रथम प्राणदंड के अधिकारी होंगे। अतः आओ एक बार अपना ध्येय प्राप्त कर लें या सदा के लिए माता की गोद सूनी

बना दें। अनेक गौयें मिलकर एक शेर को मार डालती हैं। भारत के नवयुवकों, क्या माता का दूध सार्थक न करोगे ?"

इस अंक की शहीद लाजपतराय संबंधी कविता और भी जोरदार है—

चढ रहा है हर जुबां पर अब जुनूने लाजपत।
कोई क्या तूफान लायेगा ये खूने लाजपत।
हो रहे हैं जर्द चेहरे आज क्यों हुक्काम के।
सुर्ख होने चाहिए थे पीके खूने लाजपत।

'महारथी' के संपादक को लाला लाजपतराय की बरसी पर बीस नवंबर १९३० को लिखे एक लेख के कारण कारावास का दंड भुगतना पड़ा था।

जोशीले विचारों को पाठकों के प्राणो मे फूक देने वाली तत्कालीन पत्रों की फाइलें बहुत महत्वपूर्ण निधि हैं। इन पत्रो में अंग्रेजों की ही नहीं अंग्रेज समर्थक राजा-नवाबो की भी आलोचनाएं हुआ करती थीं। 'नवभारत' (जबलपुर) के वर्तमान वयोवृद्ध संपादक पं० कालिकाप्रसाद दीक्षित 'कुसुमाकर' के अनुसार इंदौर से प्रकाशित होने वाला दैनिक पत्र 'क्रांति' इस कार्य में अग्रगण्य था। उसमें एक बार होल्कर सरकार के खिलाफ संपादकीय लेख लिखा गया जिसका शीर्षक था 'आस्तीन के सांप'। इस पर होल्कर सरकार ने इतना बड़ा कदम उठाया कि पत्र को तब तक के लिए बंद कर दिया जब तक कि संपादक माफी न माग ले। और चूंकि उसने ऐसा नही किया अत. पत्र को हमेशा-हमेशा के लिए बंद कर दिया गया। ये राजे-महाराजे जन-जागृति और पत्र-पत्रिकाओं के नाम से भी चिढते थे। वे पहले तो पत्र निकालने की आज्ञा ही नही देते थे और यदि जनता की माग पर उन्हे आज्ञा देनी भी पड़ती थी तो किसी न किसी बहाने पत्र को बंद कराने का बहाना ढूंढ लेते थे। गणेशदत्त शर्मा 'इंद्र' ने बड़ी कठिनाई से ग्वालियर रियासत मे मासिक पत्रिका 'मनोरंजन' निकालने की आज्ञा प्राप्त की। वे उसे बड़े मनोयोग से निकालते थे। "संपादन से लेकर डाकखाने में डालने तक का काम मैं ही करता था। चार महीने पूरे हुए थे कि ग्वालियर शासन ने उसका गला घोंट कर शिशु-हत्या कर डाली।—हम लेखकों को उनकी कृतियों पर पारिश्रमिक बिल्कुल नही दे पाते थे, फिर भी ममत्व से प्रेरित होकर वे अपनी रचनाएं भेजते ही थे।"

इससे पहले उन्होंने गुना नामक स्थान से एक हस्तलिखित पत्रिका निकालनी चाही, लेकिन वहां के मिलिट्री कमांडर ने उसकी भी आज्ञा नही दी परंतु इनके मन में लिखने की तड़प थी। उन्होंने स्वामी श्रद्धानंद की मृत्यु पर कलकत्ते के 'हिंदू पंच' साप्ताहिक में एक एकांकी लेख भेजा था। गोरी सरकार ने उस पर छह महीने तक मुकदमा चलाया और संपादक तथा प्रकाशक दोनों को छह महीने के लिए जेल भेज दिया। इतने अत्याचारों के बाद भी कर्तव्यनिष्ठ मनीषी अखबार निकालते ही थे। १९२५ से तो पत्रकारिता आंदोलन में एक नया मोड़ आ गया। सत्याग्रह आंदोलन के कारण जनता में पत्र-पत्रिकाओं के लिए एक भूख उमड़ पड़ी थी।

राजनीति की वह हवा एक आंधी बन गयी थी। यह आग दावानल की भांति आसेतु-हिमालय उग्र रूप धारण कर रही थी। इस अग्नि को धधकाने और प्रज्वलित

करने में पत्र-पत्रिकाओं का हाथ और साथ पूर्ण रूप से मिल पड़ा था। ५ सितंबर १६३० के 'महारथी' दैनिक की एक कविता से तत्कालीन भावना स्पष्ट हो जायगी :

जैसी ये लराई, आज छाई भूमि भारत में,
आपनी ही सानी की निसानी रहि जाएगी।
एक ओर शक्तिशाली ब्रिटिश गुमान धारी,
भारत के अगारी क्या गुमानी रहि जाएगी।
केते भये राजा और होयंगे कितेक यहां,
कौन की कहो तो राजधानी रहि जाएगी।
थूकेंगो जहान, सरकार के किये पै 'प्रिय',
गांधी की अहिंसा की कहानी रहि जाएगी।

विजय प्राप्ति के लिए पत्र अपने देशकाल के लेख और कविताएं छापने का काम ही नहीं करते थे अपितु विदेशों में हो रहे स्वतंत्रता-संग्रामों के समाचार भी बड़े मनोयोग से प्रकाशित करते थे। 'कर्मयोगी' ने उन दिनों 'रूसी वीर वीरांगनाएं' शीर्षक से एक लेखमाला प्रकाशित की। इसमें जार के विरुद्ध रूस के स्वतंत्रता सेनानियों की यशोगाथाओं का वर्णन था। लेकिन सरकार ने इस पर क्रूर दृष्टि डाली। परिस्थिति को भांपकर यूरोप से लाला लाजपतराय ने इस लेखमाला को बंद करने की सलाह दी। किंतु निर्भीक 'कर्मयोगी' डरने वाला पत्र नहीं था। लेखमाला छपती रही। परिणामस्वरूप शीघ्र ही सरकार ने उससे जमानत तलब कर ली। इंकार करने पर १६१० में 'कर्मयोगी' बंद हो गया। शीघ्र ही इलाहाबाद से 'भविष्य' नामक साप्ताहिक आरंभ कर दिया गया। जनता की मांग पर उसे कुछ काल बाद दैनिक बना दिया। इस के कुछ अंकों को तो रात-रात भर जाग कर 'रिप्रिंट' करना पड़ता था। यह सायंकालीन पत्र था। निकलने का समय होने से पहले जनता की भीड़ कार्यालय पर जमा हो जाया करती थी और पत्र हाथों-हाथ बिक जाता था। "उन दिनों अजीब जोश था, अजीब हालत थी, खासकर युवा शिक्षित वर्ग की। आज की तरह स्वार्थ-लोलुप, आराम-तलब तथा आलसी नहीं थे उस समय के युवती-युवक।"

युवकों में कुछ कर दिखाने की भावना साकार रूप लिये हुए थी। युवक संपादक भी नाना प्रकार से देश-सेवा के कार्यों में जुटे रहते थे। उन दिनों उग्रवादियों के कारनामों के प्रति जनता में बड़ी ललक थी। लेकिन उनके समाचारों को जानना या छापना खतरनाक था। फिर भी निडर पत्रकार इस काम को बखूबी अंजाम देते थे। भय और चिंता जैसे शब्द उन दिनों संपादकों की डिक्शनरी में होते ही नहीं थे।

पं० सुंदरलाल के शब्दों में : "हम अखबार ही क्या अंग्रेजों के विरुद्ध हर तरह की मोर्चाबंदी करते थे। उसी कार्यालय में अखबार निकल रहा है तो उसी मकान के तिमंजिले में बम बनाये जा रहे हैं। पं० परमानंद (झांसी वाले) तथा सतीशचंद्र विश्वास बम बनाते थे। बम बनाते समय एक बार परमानंद के हाथ जल गये, जब तक हाथ ठीक नहीं हुए उन्हें ऊपर के कमरे में ही रखा गया। वह जमाना ही दूसरा था। जीवन को देश के लिए समर्पित करने की कसम खाई जाती थी।"

समर्पित जीवन के धनी ये पत्रकार विस्फोटक लेख और कविताएं ही नहीं छापते थे, विस्फोटक बमों का भी निर्माण और वितरण किया करते थे। इन लोगों ने अपनी एक संकेत भाषा गढ़ रखी थी। उसी के माध्यम से पत्रव्यवहार होता था। बमों के लिए रसगुल्ले शब्द का प्रयोग किया जाता था। बनारसीदास चतुर्वेदी की जबानी रसगुल्ले की कहानी इस प्रकार है :

"एक बार मेरी तलाश हुई। श्री बृजशंकर वर्मा ने उस दिन गार्डन में मेरी मुलाकात क्रांतिकारी चंद्रमा सिंह ने करायी थी। वे पकड़े गये और बृजशंकर वर्मा की तलाश में पुलिस मेरे मकान पर आयी क्योंकि वे मेरे पास रहते थे। वहां १०-१५ संदूक भरी लेख-सामग्री रखी थीं। उसमें कांग्रेस के वैदेशिक विभाग की फाइलें भी थीं। पं० सुंदरलाल द्वारा अनूदित पुस्तक पुलिस के हाथ पड़ गयी, जिसे वह ले गयी। मेरी मेज के खाने में एक पर्चा बृजशंकर वर्मा के नाम पड़ा था जिसमें लिखा था कि वर्मा, चार रसगुल्ले लेते आना। रसगुल्ला उन दिनों बम को कहते थे। सो उस पर्चे को पुलिस ले गयी। मुझसे इस संबंध में बहुत से सवाल किये गये पर झूठ बोल कर किसी तरह मैंने मुक्ति पायी।"

स्पष्ट है कि तत्कालीन पत्रकार तथा पत्र-कार्यालय कोरे समाचार संस्थान ही नहीं थे। उनके व्यक्तित्व में बहुत बड़ी जान थी। यही कारण है कि उन पत्रकारों ने देशभक्ति और साहित्य सेवा के क्षेत्र में बहुत सी विभूतियां उत्पन्न की थी। 'महारथी' ने न जाने कितने साहित्य महारथी तैयार किए थे। यह पत्र पं० मदनमोहन मालवीय और पंजाब केसरी लाजपतराय का आशीर्वाद लेकर प्रारंभ हुआ था। गदर पार्टी के पूर्व तक लाला हरदयाल एम० ए०, सरदार भगतसिंह, तथा प्रेम, खन्ना इत्यादि अनेक क्रांतिकारियों का सक्रिय सहयोग इसे प्राप्त था। इसीलिए यह देश की झंकारती तरुणाई का उद्घोष बन गया था। जयशंकर प्रसाद 'हरिऔध', मैथिलीशरण गुप्त, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' नारायणप्रसाद 'बेताब' तथा रामवृक्ष बेनीपुरी इत्यादि इसमें खूब लिखते थे। गद्य की दृष्टि से नंददुलारे वाजपेयी, गिरिजादत्त शुक्ल, गौरीशंकर हीराचंद ओझा, इंद्र विद्यालंकार, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, कामताप्रसाद गुरु, जहूरबक्श, किशोरीदास वाजपेयी तथा शांतिप्रिय द्विवेदी इत्यादि की प्रतिभा-विकास में इस पत्र ने प्रेरणा प्रदान की थी। कुछ पत्रकारों ने भी 'महारथी' प्रेरणा का उल्लेख किया है। पं० कालिकाप्रसाद दीक्षित 'कुसुमाकर' उन्हीं में से एक हैं। 'कर्मयोगी' ने भी बहुत से लेखक, साहित्यकार तथा संपादक तैयार किये थे। पं० सुंदरलाल जी की राय में स्वर्गीय गणेशशंकर विद्यार्थी ने लिखना 'कर्मयोगी' से ही सीखा था।

सच बात यह है कि ये पत्र और उनके संपादक बड़ी कठोर धातु के बने थे सुंदरलाल जी ने स्वीकार किया है कि उनके "सहयोगी डा० ताराचंद, पं० महादेव भट्ट (पं० बालकृष्ण भट्ट के बड़े सुपुत्र) तथा श्रीकृष्ण जोशी इत्यादि ने शादी करने तथा आजादी के लिए जूझ मरने का व्रत लिया था। वे लोग अंततः इस व्रत को निभाते रहे। दूसरों के को इस प्रकार के महान संकल्पों के लिए प्रेरित करते रहे और जान पर खेलकर अखबार निकालते रहे। उनके साथ-साथ काम करने वाले सभी छोटे-बड़े व्यक्ति उनसे प्रेरणा पाकर आगे बढ़ने में सफल हुए। राजनीतिज्ञ पं० द्वारिकाप्रसाद

मिश्र उस जमाने में 'भविष्य' पत्र के सहायक संपादक थे। देश ही नहीं विदेशों तक में इस प्रकार की प्रेरणाएं काम करती रही हैं। मुझे ७६ वर्षीय वयोवृद्ध संसद सदस्य (राज्य सभा) डा० वी० एन० अंतागि (कच्छ), जो अब स्वर्गवासी हो चुके हैं, ने बताया था कि तिलक और गांधी की प्रेरणा लेकर जब वे अफ्रीका में कार्य करने चले गये तो वहां जाकर उन्होंने एक प्रेस खोला। उन दिनों उस प्रेस में काम करने वाला कंपोजिटर इधर आकर जंजीबार का राष्ट्रपति बना। वस्तुतः पत्रकारिता के व्यवसाय में बड़ी शक्ति है, बड़ा प्रभाव है।"

इसी शक्ति से प्रभावित होकर तत्कालीन जनमानस स्वतंत्रता-संग्राम, पारस्परिक एकता तथा सांस्कृतिक दायित्वों के प्रति अत्यंत सजग हो गया था। आर्यसमाज के समाचार-पत्रों ने सर्वतोन्मुखी सामाजिक चेतना मे जितना क्रांतिकारी मंत्र फूंका था वह भारतीय समाज-सुधार के इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में अंकित है। लेकिन उन पत्रों में एकनिष्ठता और सिद्धांत-दृढ़ता जरूरत से ज्यादा रहती थी। ऐसे पत्रों का भी अभाव नहीं था जो पारस्परिक समन्वय और आपसी ले-दे की सांस्कृतिक भावनाओं को बढ़ावा देते थे। इस संबंध में उन दिनों 'महारथी' की बड़ी धूम थी। उसने जहां 'राजपूत', 'मराठा' तथा 'प्रताप' विशेषांक निकाले वहीं 'ईद अंक' 'नानक अंक' और 'ईसा अंक' का भी सम्यक संपादन किया था। १६-१२-१९३६ के साप्ताहिक 'महारथी' के 'ईद विशेषांक' की निम्नलिखित पंक्तियां द्रष्टव्य है :

"इसमें कोई संदेह नही कि समझदार हिंदू और मुसलमान इस बात को समझ गये हैं कि अपनी जाति और देश को स्वतंत्र करने के लिए एक दूसरे को समझना अत्यंत आवश्यक है। दीवाली को हिंदू तो जानता ही है उसके समझने की आवश्यकता तो मुसलमान को है। अतः मुसलमान पत्रकारों को दीवाली अंक प्रकाशित करने चाहिए। इसी प्रकार ईद को मुसलमान तो समझते ही हैं, इसका महत्व तो हिंदुओं को पहचानना है। अतः हिंदी भाषा भाषियों को ईद अंक निकालने चाहिए। इसी प्रकार भारतवासी विभिन्न धर्मानुयायियों एवं मतावलंबियों के विषय में एक दूसरे के विचारों का ज्ञान हो जानें और भ्रम मिट जाने से मन शुद्ध तथा हृदय कोमल हो जायंगे।" रामचंद्र महारथी इस प्रकार की विचारधारा न केवल 'महारथी' के माध्यम से अपितु 'मां' मासिक (१९४०) तथा दिल्ली समाचार (पाक्षिक) इत्यादि के माध्यम से भी प्रकाशित करते रहे हैं। महारथी जी का 'दिल्ली समाचार' तो इस विषय में और भी सजग रहा। वयोवृद्ध महारथी जी ने बताया है कि उन्होंने विभिन्न विषयों के प्रायः एक सौ से अधिक विशेषांक विगत २१ वर्षों में प्रकाशित किये हैं। और वे सभ्य एवं स्वस्थ लोकतांत्रिक जीवन के संदर्भ सिद्ध हो सकते हैं।

अपने जमाने में 'कर्मयोगी' के विशेषांकों की और भी बड़ी धूम थी बनारसीदास चतुर्वेदी ने कर्मवीर के 'एंड्रूज अंक', 'तिलक अंक', 'अरविंद अंक' तथा 'गांधी अंक' निकाल कर जन-मानस को प्रेरक दिशा दी थी। 'कर्मयोगी' ने बड़े साहसपूर्वक क्रांतिकारियों के विशेषांक भी निकाले थे। सुंदरलाल जी स्वतः भी एक क्रांतिकारी साहित्यकार थे और उन पर क्रांतिकारियों का गहरा प्रभाव भी था। खुदीराम बोस की गाथा सुनाते हुए यह तपोधनी पत्रकार अपनी गड्ढे में धुसी आंखों जार-जार रो पड़ा था।

"खुदीराम बोस को बम फेंकने के आरोप में फांसी हो चुकी थी और महात्मा तिलक को जेल के सींखचों में बंद किया जा चुका था। हम लोगों ने इलाहाबाद में जमुना किनारे 'बलुआ घाट' पर तिलक को दंडित किये जाने के विरोध में एक सभा का समायोजन किया। श्री बालकृष्ण भट्ट उन दिनों 'हिंदी प्रदीप' के संपादन के साथ-साथ जीवन-निर्वाह हेतु कायस्थ पाठशाला में अध्यापन भी करते थे। वे सभा के अध्यक्ष थे और मैं प्रमुख वक्ता। सभा के आस-पास सी० आई० डी० तथा पुलिस के लोग छाये हुए थे। तभी भट्ट जी खुदीराम की याद में रो पड़े। और उन्होंने यहां तक कह दिया कि हमें तिलक से भी अधिक चिंता खुदीराम की है, जो अब कभी लौट कर नहीं आयेगा। सी० आई० डी० वालों की उपस्थिति में यह कहना खतरे से खाली नहीं था। मैंने भट्ट जी का कुर्ता खींचा तो वे गुस्से में बोले—'हमार पल्ला काहे खींचत अहो। हम खुदीराम को नाम क्यों न लेई? हमार हिये मां तो आग लागी है। कहैं भी न?'" खूंखार पुलिस के सामने इतनी मुखर आत्माभिव्यंजना निश्चय ही पत्रकार के असीम साहस की द्योतक है।

एक संस्मरण श्री बनारसीदास चतुर्वेदी की जबानी भी सुन लीजिए—"सुप्रसिद्ध क्रांतिकारी एम० एन० राय के मुख्य सहायक तैयब शेख को गिरफ्तार करके लाया जा रहा था। 'लाल बाजार' के पास वे पुलिस को चकमा देकर भागने में सफल हो गये और हथकड़ी पहने-पहने मेरे निवासस्थान पर पहुंच गये। मैंने उन्हें हथकड़ी कटवा कर 'माडर्न रिव्यू' कार्यालय की छत पर छिपा दिया। कलकत्ते में पुलिस का भारी पहरा लगा दिया गया। पर खैरियत यह थी कि पुलिस के पास तैयब शेख का कोई चित्र न था। मैंने प्रातःकाल प्रेस जाकर उन्हें सुरक्षित स्थान पर पहुंचा दिया। और बाद में एक मारवाड़ी सेठ के वेश में एक कार में बैठाकर कलकत्ते से बाहर रवाना कर दिया। वे फैजाबाद पहुंच कर आचार्य नरेंद्रदेव से मिले उन्होंने तैयब शेख को रेल द्वारा गुजरात पहुंचा दिया, जहां वे पकड़ लिये गये। बहुत दिनों बाद इस बात का शक हुआ और खुफिया पुलिस के अफसरों ने मेरे मकान पर आक्रमण किया। असत्य का सहारा लेकर तथा टालमटोल जवाब देकर मैंने अपना पिंड छुड़ाया। यह बात ध्यान देने योग्य है कि तैयब शेख और नरेंद्रदेव की मुलाकात मेरे ही मकान पर हुई थी।"

पत्र मालिक उन दिनों समर्पित भावना से ही पत्र चलाते थे। वे लाखों का घाटा सहकर भी पत्र निकालने में पीछे न रहते थे। पं० बनारसीदास चतुर्वेदी ने बताया है कि उनके कार्यकाल में 'विशाल भारत' से उसके मालिक को १० वर्षों में ७५ हजार रुपये का घाटा हुआ था। और उसके बाद ५० हजार रुपये का घाटा और पड़ा। इसी प्रकार अन्यान्य पत्रों के स्वामी भी घाटा उठाकर इस क्षेत्र में बने रहना तथा राष्ट्रीय जागृति में योग देना अपना पुनीत कर्तव्य समझते थे।

इस प्रकार के त्यागी पत्र-स्वामियों तथा निष्ठावान पत्र-संपादकों के संबंध बड़े मधुर होते थे। हड़ताल, तालाबंदी और हाय-हाय का उन दिनों स्वप्न में भी नाम नहीं था। स्वामी और संपादक कर्मचारी और लेखक सभी अपने दायित्वों के प्रति सजग थे। पुराने संपादकों की जबानी उनके मालिकों की उदारता के बारे में बहुत सी कहानी सुनने को मिली हैं। अनुभवी पत्रकार श्री जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी ने अपना अनुभव बताया

है कि "उस समय संपादकों से कसकर काम लिया जाता था और वेतन बहुत कम होता था। परंतु जहां तक व्यक्तिगत सम्मान का प्रश्न था वहां न केवल संपादकों का बल्कि संपादन विभाग में काम करने वाले सभी लोगों का मालिकों की ओर से बहुत आदर किया जाता था। मुझे स्मरण है कि जिस समय 'माया' के मालिक श्री क्षितींद्रमोहन मित्र 'मुस्तफी' यह चाहते थे कि मैं कार्यालय के समय के बाद बैठकर उनकी किसी पुस्तक या 'माया' अथवा 'मनोहर कहानियों' के फर्मों का प्रूफ पढ़ूं तो वे पांच बजे से पहले मुझे अपने पास बुलाते, नौकर से रसगुल्ला और चाय मंगवाते थे। जब रसगुल्ला मेरे मुंह में होता तब कहते कि चतुर्वेदीजी, जब तक प्रेस में मशीन चलती रहती है, तभी तक मेरा दिल भी धड़कता है। जब मशीन बंद हो जाती है तो मुझे लगता है कि मेरे दिल की धड़कन रुक जायगी। लेकिन आज अभी तक पेज ही तैयार नहीं हुए हैं। रात को मशीन कैसे चलेगी? आप मुझ पर कृपा करके थोड़ी देर बैठकर दो फार्म पास करके जाने का कष्ट करें। रसगुल्ला मुंह में हो तो कुछ कहा भी नहीं जा सकता।"

ऐसे भी वृत्तांत सुनने को मिले हैं जिनमें संपादकों ने अपने मालिकों का विरोध तक किया और मालिकों ने उदारतापूर्वक उन्हें क्षमा कर दिया। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी और 'सरस्वती' के मालिकों के मधुर संबंधों के बारे में साहित्य जगत में कई चर्चाएं प्रसिद्ध हैं। उनके विरोध करने पर एक पुस्तक की हजारों प्रतियां कटिंग मशीन के हवाले कर दी गयी थीं। पं० बनारसीदास चतुर्वेदी ने तो अपने मालिक का भाषण तक नहीं छापा था। उन दिनों रामानंद चट्टोपाध्याय ने हिंदू महासभा के गोवा अधिवेशन में महासभा की अध्यक्षता की थी। किंतु चतुर्वेदीजी ने उन्हीं के 'विशाल भारत' में भाषण और कुछ भी न छापते हुए एक विपरीत संपादकीय टिप्पणी लिख दी थी। उसमें कहा गया था कि किसी भी राष्ट्रीय कार्यकर्त्ता को हिंदू महासभा जैसी सांप्रदायिक संस्थाओं का प्रधान नहीं बनना चाहिए। जब बड़े बाबू (श्री चट्टोपाध्याय) से इस संबंध में लोगों ने शिकायतें कीं तो उन्होंने स्पष्ट कहा—"संपादक की हैसियत से पंडित जी अपने पत्र के लिए पूर्ण स्वतंत्र हैं।" हां इतना अवश्य है कि उन्होंने इस टिप्पणी का करारा उत्तर लिखा था। वह उत्तर भी 'विशाल भारत' में छाप दिया गया था। इस घटना ने संपादकीय स्वतंत्रता तथा प्रकाशक-संपादक संबंधों में एक नया कीर्तिमान स्थापित किया था। उन दिनों भी पूज्य पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी तथा पंडित पद्मसिंह शर्मा ने उसे अच्छा नहीं समझा था। आज चतुर्वेदीजी इस घटना पर मन ही मन पछताते हैं और वे अपने मालिकों के मधुर संबंधों तथा उदारताओं का ऋण स्वीकार करते हैं। उनका कहना है कि "यदि मेरे द्वारा कोई उल्लेख योग्य सेवा पत्रकारिता के क्षेत्र में बन पड़ी तो इसका मुख्य कारण यही है कि मुझे दीनबंधु एंड्रूज, महात्मा गांधी, रामानंद चटर्जी, महाराज वीरसिंह जू देव जैसे मालिक मिले थे, जिन्होंने मुझे पूर्ण स्वाधीनता प्रदान की थी।"

संपादक की स्वतंत्रता, अच्छी पत्रकारिता की पहली शर्त है। संपादक की स्वतंत्रता से ही वैचारिक स्वतंत्रता को बढ़ावा मिलता है और वैचारिक स्वतंत्रता स्वस्थ प्रजातंत्र के लिए अनिवार्य है। प्रश्न यह उठता है कि समाचार-पत्रों की स्वतंत्रता से तात्पर्य क्या है? इस संबंध में वयोवृद्ध पत्रकारों के अनुभव तथा विचार भिन्न-भिन्न

हैं ? महारथीजी के शब्दों में—"जो कुछ भी देश और समाज के हित में हो उसे निस्संकोच कह देने की छूट ही पत्रों की स्वतंत्रता कही जा सकती है। पत्र की रीति-नीति के अनुरूप रचनात्मक दृष्टि से संपादक, सहयोगी लेखक और संवाददाता का समन्वित प्रयास ही समाचार-पत्रों की स्वतंत्रता का निर्वाह करने में समर्थ सिद्ध हो सकता है।" पत्रों की स्वतंत्रता के लिए यह भी आवश्यक है कि व्यवस्थापक स्वतंत्रचेता हों। लोभ-लालच तथा दबाव-धमकाव से प्रभावित अथवा किसी विचारधारा विशेष से बंधे मालिकों के पत्र स्वतंत्र नीति का अनुसरण नहीं कर सकते। इस संबंध में कर्म-योगी पंडित सुंदरलाल ने बताया है कि "मेरे पत्रकार जीवन के एकमात्र अनुभवों का निष्कर्ष यही है कि सच्चा पत्रकार वही हो सकता है जो समाज सेवा के लिए पूरी तरह समर्पित होकर निर्भीकता, निष्पक्षता, निःस्वार्थ भावना तथा स्वतंत्रता से लेखनी चलाये और किसी के 'अनुचित' दबाव के आगे न झुके। जीवन में त्याग तथा अभाव को सहन करने की क्षमता रखने वाला व्यक्ति सच्चा पत्रकार हो सकता है। हमारी पीढ़ी के पत्रकार फाकामस्ती से लेकर फांसी पर चढ़ने तक के लिए तत्पर रहते थे। इसीलिए अंग्रेजों की जेलें व फांसी की रस्सिया उन्हें कर्त्तव्य-पथ से विचलित न कर सकीं और वे स्वतंत्रतापूर्वक लिख पाये।"

आज की पत्रकारिता बाबू बालमुकुंद गुप्त, बाबू बालकृष्ण भट्ट या बाबू प्रताप-नारायण मिश्र के जमाने की 'सिंगलहैंडेड' पत्रकारिता नहीं है। इसलिए केवल संपादक की स्वतंत्रता को स्वतंत्र पत्रकारिता की संज्ञा नहीं दी जा सकती। लेखक, चित्रकार, कार्टूनकार तथा शीर्षकदाता आदि सभी की स्वतंत्रता से, सभी के सम्मिलित प्रयास से आज का पत्र ऊंचा उठकर समाज को आकर्षित तथा ज्ञानवर्धित कर पाता है। समाचार-पत्रों के लिए जानकारी या ज्ञान का प्रसार अथवा मनोरंजन ही एकमात्र कसौटी नहीं है। इन वयोवृद्ध पत्रकारों की राय है कि अच्छे समाचार-पत्र के लिए यह भी आवश्यक है कि वह पाठकों को समुचित दिशा-बोध प्रदान करे। जो पत्र यह नहीं कर सकता वह सब होते हुए भी कुछ नहीं है। परंतु पूंजीपतियों के तलवे चाटने या सरकार की खुशामद करने वाले अखबार यह कार्य स्वतंत्रतापूर्वक नहीं कर सकते। क्योंकि उनकी स्वतंत्रता पूर्वग्रहों तथा प्रतिबद्धताओं के कीचड़ से सनी रहती है। पं० बनारसी-दास चतुर्वेदी ने अखबार की स्वतंत्रता को नारी के सतीत्व से उपमित किया है। "स्वतंत्रता के बिना पत्रकारिता वैसी ही है जैसे पातिव्रत्य के बिना कोई स्त्री। पर हमें स्वाधीनता तथा स्वच्छंदता में भेद करना होगा। अनियंत्रित स्वाधीनता स्वच्छंदता का रूप धारण कर लेती है। भावी समाज व्यवस्था में जिन भाइयों को दृढ़ विश्वास नहीं है, वे चूं-चूं का मुरब्बा भले ही तैयार कर लें, सजीव पत्र नहीं निकाल सकते। किसी न किसी प्रकार का समाजवाद या साम्यवाद इस देश में आकर रहेगा। अतः उसी के अनुसार हमें अपनी कार्यपद्धति तथा दिशा को मोड़ देना चाहिए। नान्यथा मार्गं विद्यते।"

समाचार-पत्रों की स्वतंत्रता में पत्र के लेखकों की विचारधारा बहुत बड़ी भूमिका अदा करती है। पहले के लेखक निस्पृह तथा समर्पित भावना से लिखते थे। उन दिनों लेखकों को कोई पारिश्रमिक या पुरस्कार प्राप्त नहीं होता था। छोटे-मोटे

ही नहीं पांच-पांच और सात-सात हजार ग्राहकों की संख्या वाले पत्र भी अपने लेखकों को पारिश्रमिक नहीं दे पाते थे। विद्यावाचस्पति गणेशदत्त शर्मा 'इंद्र' ने बताया है कि १९१० के आसपास पारिश्रमिक की कोई व्यवस्था नहीं थी। पं० बनारसीदास चतुर्वेदी ने 'विशाल भारत' के कुछ लेखकों को पारिश्रमिक देने का उल्लेख अवश्य किया है लेकिन वह दो-चार रुपये तक ही सीमित था। चार रुपये तो उन दिनों मुंशी प्रेमचंद को दिये जाते थे। बाद में इस स्थिति में सुधार आता गया। जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी का कहना है—"स्वाधीनता से पहले लेखकों के पारिश्रमिक की रकमें बहुत कम थीं। पांच और दस रुपये बहुत माना जाता था। अच्छे-अच्छे लेखकों को भी पांच-दस-पंद्रह रुपये ही मिलते थे। 'आज' में बहुत दिनों दस-पंद्रह का ही रेट रहा, बड़ी मुश्किल से राजधानी के कुछ लेखकों के लिए मैंने २५ और ५० रुपये करवाये।" उन दिनों लेखक पैसों के लिए नहीं निष्ठा और प्रतिष्ठा के लिए लिखा करते थे। ऐसे बहुत से प्रसिद्ध लेखक थे जो पत्र-कार्यालय में आकर स्वयंसेवक की भांति कार्य किया करते थे। गणेशशंकर विद्यार्थी ने बहुत दिनों तक 'कर्मयोगी' को इस प्रकार की सेवाएं समर्पित की थीं। आज तक भी संपादक लोग ऐसे लेखकों का ऋण स्वीकार करते हैं। वैसे भी पुराने संपादक अपने लेखकों को जिस मान-सम्मान से याद करते हैं वह किसी भी पारिश्रमिक से अधिक है। बनारसीदास चतुर्वेदी ने अपने लेखकों पर भूरि-भूरि गर्व व्यक्त किया है। उन्होंने विशाल भारत के लेखकों में सर्वश्री मैथिलीशरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त, प्रेमचंद, सुदर्शन, राहुल सांकृत्यायन, हरिवंशराय बच्चन, सोहनलाल द्विवेदी, हजारीप्रसाद द्विवेदी, दिनकर, अज्ञेय, कमला चौधरी, श्री राम शर्मा, बालकृष्ण राय, अजीमबेग चुगताई, अनवर हुसैन रायपुरी, चंद्रगुप्त विद्यालंकार, बृजमोहन शर्मा, श्याम-सुंदर खत्री, मोहनसिंह सेंगर तथा जैनेंद्र प्रभृति साहित्य मनीषियों की रचनाएं देने के लिए मुक्त कंठ से प्रशंसा की और कहा—"इन लोगों ने अपनी सर्वोत्तम रचनाएं 'विशाल भारत' को दी थी। मैं उनके ऋण से जन्म-जन्मांतर में भी उऋण नहीं हो सकता।"

सच बात तो यह है कि इन्हीं महान लेखकों के सहयोग से 'विशाल भारत' इतना चमक सका था। इस पत्र ने 'रवींद्र अंक' निकालकर, ब्रज-साहित्य मंडल स्थापित करके और शांतिनिकेतन के हिंदी भवन तथा सम्मेलन में सत्यनारायण कुटीर की स्थापना करके जो यश अर्जित किया था उसका मूल श्रेय इन्हीं साहित्य महारथियों के सहयोग को है। चतुर्वेदीजी ने नये, छोटे और आंचलिक लेखकों को भी प्रोत्साहित करने का सराहनीय कार्य किया था। उनका 'मधुकर' आंचलिक लेखकों को बढ़ावा देने की दृष्टि से एक उत्तम प्रयास था।

लेखकों की भांति संपादक भी अधिक कुछ प्राप्त नहीं कर पाते थे। आरंभ में तो संपादक ही पीर-बवर्ची-भिश्ती-खर सभी कुछ होते थे। बाद में जब कुछ धनी-मानी उदारचेता स्वामी पत्रों की ओर आकर्षित हुए तब भी वे अपने संपादकों को अधिक कुछ न दे पाते थे। उन दिनों संपादक का वेतन ५० या ६० रुपये प्रति माह नहीं होता था। विद्यावाचस्पति गणेशदत्त शर्मा इंद्र ने बहुत दिनों तक नाममात्र के वेतन पर गणेशशंकर विद्यार्थी, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला तथा पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी इत्यादि के साथ काम किया था। आगे चलकर जब उन्होंने 'वीणा' (इंदौर),

'जीवन' (मथुरा) इत्यादि पत्रों का पूरा कार्य संभाला तब कहीं १५० रुपये मासिक प्राप्त हुआ था। इंद्रजी जैसे निष्ठावान संपादकों ने उन दिनों जितने अल्प वेतन में पत्र-पत्रिकाओ का संपादन किया वह हिंदी पत्रकारों के प्रति सेवा और त्याग का ज्वलंत उदाहरण है। उस समय का संपादक इतने पैसे को भी तभी स्वीकार करता था जब यह समझ लेता कि यह पैसा शुद्ध है। अन्यथा सिद्ध होने पर, वृत्ति को लात मार देना सहज बात थी। गणेशदत्त शर्मा 'इंद्र' ने लिखा है—"मैं स्वतंत्र रूप से एक अच्छा साप्ताहिक अपनाना चाहता था। मथुरा के पंडित प्यारेलाल गौड इसके लिए तैयार हो गये। १५० रुपये मासिक पर 'जीवन' नामक साप्ताहिक पत्र का संपादन कार्य १९२० में आरंभ किया। प्रेस घनी था इसलिए प्रकाशन में कोई बाधा नहीं थी। छह महीने पत्र प्रकाशित करने पर मुझे ज्ञात हुआ कि स्वामी अंग्रेज सरकार का अत्यंत चापलूस व्यक्ति है।"

१००-१५० रुपये मासिक के पश्चात संपादकों को १७५-२०० मिलने लगे थे। पं० बनारसीदास चतुर्वेदी का कथन है—"विशाल भारत के आय-व्यय का हिसाब 'माडर्न रिव्यू' तथा 'प्रवासी' के साथ रहता था। विज्ञापन हमें कम ही मिल पाते थे और ग्राहक संख्या भी दो हजार से अधिक नही पहुंचती थी। मुझे १७५ रुपये तथा वर्माजी व धन्यकुमारजी को ५० से ७० रुपये तक वेतन मिलता था। धन्यकुमार तो आरंभ मे ३० रुपये पर ही नौकर हुए थे। पं० कालिकाप्रसाद दीक्षित 'कुसुमाकर' ने इससे अच्छी स्थिति का संकेत किया है। उन्होंने अपने अनुभव बताते हुए सूचित किया है कि :

"बंबई के दैनिक 'हिंदुस्तान' मे उस समय मुझे २५० रुपये मासिक मिलता था, जो मैंने अपनी इच्छा से लिया था। श्री त्रिपाठीजी का कहना था कि आप जो वेतन चाहे लिख लें। इससे मुझे असमजस मे पड जाना पडा। मैंने २५० रुपये से अधिक नही लिये। मुझे वाहन आदि की पूरी सुविधा थी। रात्रि को १२ बजे तक 'लंदन केबल्स' अर्थात् लंदन के तार आते थे। जब तक 'लंदन केबल्स' नही आते थे मैं प्रेस में ही रहता था। बाद में टैक्सी या विक्टोरिया से किसी भी वाहन पर घर लौट सकता था।" इसी संदर्भ मे उन्होंने लिखा है—"मैंने कई रातें प्रेस में बिताईं। वहां समाचार-पत्र बिछाकर सोता था। यहीं मेरी मुलाकात स्वर्गीय कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी से हुई। जिनकी इच्छानुसार मुझे बंबई हिंदी साहित्य सम्मेलन का मंत्री बनाया गया। मुंशीजी अध्यक्ष हुए। मेरा ख्याल है कि इस बैठक में भगवतीचरण वर्मा, सुदर्शन और उग्रजी भी उपस्थित थे। बीच मे मैं यह और लिख देना चाहता हूं कि मेरी पत्रकारिता का आरंभ दिल्ली के मासिक पत्र 'महारथी' से हुआ।"

इस प्रकार स्पष्ट है कि कम वेतन और गुरुजनों और लेखकों की निश्छल ऋण-स्वीकृति पुराने पत्रकारों की उल्लेखनीय विशेषता रही है। मैं एक ऐसे पत्रकार बंधु को जानता हूं जिन्होंने गांधीजी के आंदोलन से प्रभावित होकर लखनऊ कालेज से अपना नाम कटा लिया था और वे आजीवन कांग्रेस तथा आर्यसमाज के हिंदी, उर्दू, अंग्रेजी पत्रों में लिख-लिख कर जीवन यापन करते रहे। आरंभ में वे मात्र निर्वाह के लिए ३० रुपये लेते थे। बाद मे ४० रुपये लेते थे और जब महंगाई के कारण इतने रुपये

में इस अविवाहित और एकाकी व्यक्ति का निर्वाह भी असंभव हो गया तो उन्होंने बहुत कहने पर १९६० के आस-पास राजा महेंद्र प्रताप के अखबार से ससंकोच १०० रुपये मासिक स्वीकार किया। इनका नाम है श्री कुंवरबहादुर माथुर शेरकोटी। उनमें आत्मसम्मान के साथ दूसरों का आभार स्वीकार करने और नयी-नयी बातों को सीखने की ललक आज तक बनी हुई है। यह गुण हमने अनेक प्रमुख पत्रकारों में विद्यमान पाया है। कालिकाप्रसाद दीक्षित के ये शब्द साक्षी रूप में प्रस्तुत किये जा सकते हैं—"हमारे पत्रों में मुख्य रूप से सभी विषय रहते थे। दैनिक में समाचार, साप्ताहिक में समाचार और टिप्पणियां, मासिक में रोचक लेख होते थे। उनके लिखने में मुंशी प्रेमचंद, विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक, गुलाबराय, कन्हैयालाल पोद्दार, हजारीप्रसाद द्विवेदी, डा० रामकुमार वर्मा तथा रघुवीरसिंह इत्यादि प्रमुख थे। मासिक पत्रिका 'वीणा' का मैंने १५ वर्ष तक संपादन किया है। वीणा में रहने के कारण मेरा भाषा और साहित्य से जो संबंध जुड़ा वह आज भी कायम है। इसमें मैंने पद्मसिंह शर्मा, कृष्णबिहारी मिश्र, अंबिकाप्रसाद वाजपेयी, कामताप्रसाद गुरु और किशोरीलाल से बहुत कुछ सीखा। व्यंग्य-विनोद लिखना तो विशेषत: अंग्रेजी से सीखा है।"

जो संपादक पाठकों से संबद्ध रहता है उसके पत्र को लोकप्रियता शीघ्र प्राप्त होती है। अच्छे संपादक इस बात का आज भी ध्यान रखते हैं और पहले भी रखते थे। कुसुमाकरजी ने स्वीकार किया है कि "मेरा पाठकों से घनिष्ठ संबंध था। जब मैं 'क्रांति' का संपादक था तब मैंने पुराने मध्यभारत का दौरा किया था और बंबई में रहते हुए महाराष्ट्र में भी घूमा था। जिसमें पूना, अमरावती और नागपुर मुख्य थे। इससे हमें पाठकों की रुचि का पता लगता था और ज्ञात होता था कि उन्हें क्या चीज पसंद आयी और क्या नहीं और वे क्या चाहते हैं। समय पर पत्र मिलता है या नहीं।"

इन कथनों के विपरीत कुछ पत्रकारों ने पाठको के अनुकूल चलने की प्रवृत्ति को स्वस्थ नहीं माना। उनके अनुसार जागृत पत्र सदैव पाठकों के पीछे ही नहीं चलते, वे रुचियों का निर्माण भी करते हैं। पं० बनारसीदास चतुर्वेदी के शब्दों में—"पाठकों की रुचि को प्रधानता मैंने कभी नहीं दी। सात्विक, मानसिक भोजन तैयार करना ही हम लोगों ने अपना मुख्य कर्त्तव्य समझा। पाठकों को वह रुचता है या नहीं इसे हमने कभी सामने नहीं रखा और इसीलिए 'विशाल भारत' को सस्ती लोकप्रियता कभी प्राप्त नहीं हुई। 'विशाल भारत' ने गंभीर पाठकों व गंभीर लेखकों को सदैव आकर्षित किया। देशी-विदेशी अंग्रेजी लेखक भी 'विशाल भारत' में लिखते थे। सर जगन्नाथ सरकार तथा ब्रिटिश पार्लियामेंट के मेंबर बिलफ्रेड बैलाक तक ने उसमें लेख लिखे थे। स्वयं नेहरूजी तक ने भी जेल से चार महत्वपूर्ण निबंध 'विशाल भारत' को भेजे थे जो हिंदी में थे।"

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात राजनीति के हाथ बहुत लंबे हो गये हैं। आज के पत्र राजनीतिक सत्ता तथा उसकी अनुकूलता-प्रतिकूलता का ध्यान अधिक रखते हैं। पहले के पत्र दुर्धर्ष विदेशी सत्ता तक की परवाह नहीं करते थे, जबकि आज स्थानीय सरकारों का भी ध्यान रखा जाता है। इसके प्रमाणस्वरूप श्री जगदीश प्रसाद

चतुर्वेदी का अनुभव इस दृष्टि से उद्धृत है—"जब मैं दोबारा १९६९ की अगस्त में मेरे समाचार-पत्र के कार्यालय में (बनारस) गया तो इस बात की खोज-खबर रहने लगी थी कि किसका समर्थन किया जाय और किसका विरोध। जो भी व्यक्ति यहां सत्ताधारी है उसका सहयोग लेने के लिए किसका समर्थन किया जाय। एक वक्त ऐसा आया कि वाराणसी में एक दल की सत्ता थी, लखनऊ की राज्य सरकार मे दूसरे दल की और दिल्ली की केंद्रीय सरकार मे तीसरे दल की। पत्र की नीति यही थी कि तीनों से बना कर रखी जाय। पत्रकारों को इसके कारण बहुत कठिनाई झेलनी पड़ी। जब पत्र-संचालन की यह धारणा बन जाती है तब कोई पत्रकार वहा के शासक से यदि मेल नहीं खाता, तो उसका या तो तबादला कर दिया जाता है या छुट्टी। प्रायः सभी समाचार-पत्रों में इसी प्रकार की नीतियां हो गयी हैं। यद्यपि कुछ समाचार-पत्र एक विशिष्ट आर्थिक या राजनीतिक विचारधारा पर चलते हैं।"

यह नीति पत्र-पत्रिकाओं को बदलती हुई परिस्थितियों के कारण अपनानी पड़ी है। पत्र चलाने के लिए आज भारी पूंजी की आवश्यकता होती है। सरकार के विज्ञापन बहुत बड़ा आकर्षण हैं। वैसे तो विज्ञापन प्राचीन पत्रकारों के लिए भी एक विशिष्ट ललक की वस्तु थे। कारण यह था कि ग्राहक संख्या बहुत ही मामूली होती थी। कुसुमाकरजी का कथन है—"कोई भी पत्र उस समय ग्राहक संख्या पर निर्भर नहीं करता था और आज भी नहीं करता। उस समय भी विज्ञापनों पर निर्भर रहना पड़ता था और आज भी रहना पडता है। बंबई में तो हमें छह हजार रुपये महीना के सिनेमा के विज्ञापन मिलते थे। उस जमाने में और बड़ा स्रोत थीं बड़ी कंपनियों की सूचनाएं। कुछ लोग अपने भाषण रुपये देकर भी छपवाते थे। हमें स्मरण है कि एक समय एक भाषण के छापने पर दैनिक हिंदुस्तान को तीन हजार रुपये मिले थे। उस समय हमने 'कांग्रेस अंक' निकाला था जो हाथ के बने कागज पर छपा था। 'सत्यार्थप्रकाश अंक' भी निकाला गया था। इस पर तत्कालीन सरकार ने आपत्ति की थी। परंतु जब हमने होम सेक्रेटरी को उत्तर दिया कि 'सत्यार्थप्रकाश' पर प्रतिबंध बंबई में नही, पंजाब में है तो हमारी बात मान ली गयी।" कारण यह था कि उन दिनों पत्रकारिता-कानून आज से बहुत भिन्न था।

आज के पत्रकारिता कानून ने बहुत सी व्यवस्थाएं प्रारंभ कर दी है। इनमें से एक प्रमुख व्यवस्था 'सोपान पद्धति' है। यह पद्धति वेतन मंडल के निर्णय के बाद आयी है। पहले वेतन किसी पद्धति के आधार पर नही अपितु पत्रकारों की वरिष्ठता एवं अनुभव के आधार पर निर्धारित होते थे। पद-नामों की भी यही दशा थी। 'आज' में तो कल तक सभी पत्रकार संपादक कहलाते थे। उसकी नियमावली में भी उनके लिए संपादक पद ही लिखा हुआ था। आज के भूतपूर्व संवाददाता श्री जगदीश चतुर्वेदी ने इस विषय में बताया है—"बहुत दिनों तक मेरा वेतन संपादक के वेतन से अधिक रहा था। इससे पहले तो ऐसी कोई भावना ही विद्यमान नहीं थी। पत्रों में बहुत थोड़े से कर्मचारी होते थे जो एक साथ बड़े प्रेम से खाते-पीते और रहते थे। कर्मवीर पंडित सुन्दरलालजी ने कहा है—"हम सभी, जीवनदानी टाइप के लोग थे। गुजारे लायक तनख्वाह लेते थे। साथ-साथ खाते-पीते थे। पैसे की कमी नहीं रहती

थी। राष्ट्रीय विचारों से ओतप्रोत पैसे वाले रुपये लिये फिरते थे कि इसे आजादी के पुण्य कार्य में लगा दो। सौ रुपये की जरूरत होती थी तो पांच सौ मिल जाते थे। परंतु एक पैसे का भी दुरुपयोग नहीं होता था। क्योंकि आज की तरह हम लोगों की आवश्यकताएं असीमित नही थी। जीवन, रहन-सहन व खानपान बहुत सादा था। केवल आजादी की धुन में लगे रहते थे अतः जीने के लिए खाते थे। खाने के लिए जीवन की कल्पना तक नहीं थी।" पं० बनारसीदास चतुर्वेदी ने लिखा है—"उन दिनों कोई सोपान पद्धति नही थी। हम कुल मिलाकर चार आदमी थे——मैं, धन्यकुमार जैन, व्रजमोहन वर्मा और श्रीपति पांडेय। भाई धन्यकुमार बंगला से अनुवाद करते थे और वर्माजी अंग्रेजी से। पांडेयजी प्रूफ देखते थे। हम लोगों मे भाईचारा था। तीन-चौथाई से अधिक कार्य इस प्रकार हो जाता था। मेरा प्रमुख कार्य तो हंसना-हंसाना रह जाता था। वर्माजी कभी-कभी तो हंसते-हंसते तंग आ जाते तो कहते—चौबेजी, कुछ काम भी करने दीजिए। आगे चलकर यही व्यवहार 'मधुकर' के संपादन में भी छह वर्ष तक रहा। वहां मेरे सहायक संपादक थे श्री यशपाल जैन तथा श्री जगदीश चतुर्वेदी। सहायकों के बारे मे दरअसल मैं अत्यंत सौभाग्यशाली रहा हूं।" पंडितजी इन लोगों के साथ डटकर काम करते थे और खूब सैर-सपाटा करते थे। उन्होंने बताया है—"न जाने कितने घंटे उन लोगों ने साथ-साथ ढाक-पलाश के बनों मे भ्रमण करते. झाड़-झंखाड़ों में घूमते तथा नदियों मे स्नान करते हुए बिताये हैं।" निश्चय ही इन मधुर संबंधों के कारण स्पर्धा उत्पन्न नहीं हो पाती थी। वे पारस्परिक सहयोग पर अधिक निर्भर थे, मशीन पर कम।

मशीन के प्रभाव के कारण आजकल अखबारों की साज-सज्जा और समाचार-बहुलता बहुत बढ़ गयी है। टेलीप्रिंटर ने समाचार-पत्रों के जीवन मे क्रांति उत्पन्न कर दी है। उस समय केवल तार और रेडियो ही प्रमुख स्रोत होते थे। कुछ समाचार-पत्र निजी संवाददाता भी रखते थे। कुसुमाकरजी का अनुभव उल्लेखनीय है—"मेरा आज भी संवाददाताओं के संबंध मे अच्छा अनुभव नही है। अधिकांश संवाददाता पत्रकारिता करते हैं किन्तु उन्हें ठीक तरह से भाषा लिखना भी नहीं आता। परंतु संचालकों की कृपा से सब कुछ चलता है। कुछ संवाददाता एजेंट भी होते हैं। जब उनका समाचार नही छपता तब कापियां कम करने का आदेश दे देते हैं। इससे संचालक लोग भी डरते हैं। मैं जानता हूं कि एक संवाददाता सर्राफे की दुकान भी करते हैं और छोटे-मोटे व्यवसाय तथा पत्र द्वारा अधिकारियों पर आतंक भी रखते हैं।"

जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी ने संवाददाताओं के संबंध मे अपना अनुभव इन शब्दों में बताया, "उन दिनों एक पत्र के दो से अधिक संवाददाता नही होते थे। बहुत दिनो तक तो 'हिंदुस्तान' और 'नवभारत' का भी कोई विशेष संवाददाता नही था, यद्यपि 'नवभारत' ने संविधान सभा की पूरी रिपोर्टिंग की थी। मैं और हमारे संपादक श्री सत्यदेव विद्यालंकार दोनों ही बैठते थे। वे झलकियां लिखते थे। मैंने 'नवभारत' के लिए सर्वप्रथम एशियाई सम्मेलन की रिपोर्ट की थी जो अप्रैल १९४७ मे हुआ था जबकि 'नवभारत' का जन्म हुआ ही था।"

१९४७ के बाद तो हिंदी पत्रकारिता नित नये उन्नति-पथ पर अग्रसर होती

चली जा रही है। उसका भविष्य बहुत उज्ज्वल है। ज्यों-ज्यों शिक्षा बढ़ेगी, आधुनिक सभ्यता ग्रामों तक पहुंचेगी—सामान्य ज्ञान का विकास होगा और प्रजातंत्र सुदृढ़ बनेगा, त्यों-त्यों हिंदी समाचार-पत्रों की आवश्यकता बढ़ती ही जायगी। अब तक हिंदी पत्रकारिता अपेक्षाकृत कई गुना बढ़ गयी होती, यदि हिंदी भाषी क्षेत्रों में राष्ट्रभाषा के प्रति स्वाभिमान और अंग्रेजी की दिमाग़ी गुलामी न होती। अंग्रेजी का वर्चस्व हिंदी पत्रकारिता के क्षेत्र में आज भी एक समस्या बनी हुई है। अधिकांश हिंदी पत्र अंग्रेजी पत्रों से संबद्ध हैं, उनके पिछलगू हैं। सरकार और जनता अपने अधिक विज्ञापन या तो अंग्रेजी पत्रों को देती है या अंग्रेजी से संबद्ध हिंदी पत्रों को। जनता का बहुत बड़ा भाग अब भी अंग्रेजी पत्र ही खरीदता है। सरकार पत्रकारों को विदेश भेजते समय अंग्रेजी पत्रकारों को वरिष्ठता देती है। इससे अंग्रेजी पत्रकारिता अधिक लाभ ले रही है और हिंदी पत्रकारिता के विकास की गति मंद है। श्री जगदीश चतुर्वेदी इसका एक कारण हिंदी मे सक्षम समाचार समितियों का अभाव मानते हैं। उन्होंने बताया है—"सारी समाचार सामग्री अंग्रेजी में आती है जिसका अनुवाद करना होता है। 'समाचार भारती' और 'हिंदुस्तान' जैसी दो समितियां हिंदी में समाचार देने के लिए बनी हैं परंतु इनमें इतनी सामर्थ्य नहीं आ पायी है कि कोई हिंदी पत्र उनके ऊपर आश्रित रह सके। इसलिए हिंदी पत्रकारिता की प्रगति के लिए यह आवश्यक है कि हिंदी समाचार समितियों का विकास किया जाय।"

वस्तुतः समस्या केवल मशीनी ही नहीं, भावनात्मक भी है। आज का पत्रकार पहले की अपेक्षा साधनसंपन्न होते हुए भी साधनाविहीन होता जा रहा है। उसका आचरण केवल जनसपर्क अधिकारी जैसा बन गया है। पहले ऐसी बात नहीं थी। निष्ठावान पत्रकार तकनीकी विशेषज्ञ न होकर मानव जीवन का एक सहृदय एवं सूझबूझपूर्ण कलाकार होता है। उसका पत्र उतना ही अधिक रंग ला सकता है जितना वह उसमें श्रम करे। लेकिन आज छोटे-छोटे कामों से लेकर संपादकीय लिखने तक के अनेकायामी व्यवसाय में देश-हित साधनों की नहीं वैज्ञानिक साधनों की तूती बोलती है। आज की पत्रकारिता का प्रधान स्वर सेवा नहीं स्वार्थ है, परमार्थ नहीं केवल अर्थ है।

पंडित गणेशदत्त शर्मा 'इंद्र' ने इसे 'हिंदी पत्रकारिता के पतन' तथा 'देश-भक्ति के जनाजे' की संज्ञा दी है क्योंकि आज का संपादक अपनी रोजी-रोटी के लिए पूजीपतियों का 'हिज मास्टर्स वाइस' बनकर काम करने लगा है। उन्होने बताया है कि "भारत की आजादी के बाद हिंदी पत्रकारिता में वह प्रतिभा नहीं मिलती जो आजादी के पूर्व के समाचार-पत्रों में थी। न वो ठोस सामग्री है न वह प्रतिभावान रूप। आज की पत्रकारिता तो धन कमाने का साधन मात्र रह गयी है। उसने ब्लैकमेल का धंधा अपना लिया है। पूजीपति पत्र केवल पैसा बटोरना चाहते हैं। संपादकों, लेखकों तथा संवाददाताओं का खून चूसकर वर्तमान पत्रों के व्यवस्थापक अपनी तिजोरियां भरने की उधेड़बुन में रहते हैं। जो भ्रष्टाचार राजनीति में प्रवेश करके उसे बदनाम करने में संलग्न है, वही हिंदी पत्रकारिता में भी आ घुसा है। जनसेवा और परोपकार का सुंदर वेश बनाये आज का हिंदी पत्र-जगत निडर होकर अपना स्वार्थ सिद्ध कर

रहा है।"

इंद्रजी ने आगे सलाह दी कि "मैं अपने अनुभव और व्यवहार के आधार पर यही कहना चाहता हूं कि कोई भी ईमानदार सेवक और सच्चा देशभक्त इस दिशा में कभी कदम न बढ़ाये अन्यथा वर्तमान स्थिति और समय मे उसे कष्टों के नीचे दबे रहकर भूखों मरना होगा। हां जो भ्रष्टाचार की कला में निपुण है अथवा येन केन प्रकारेण पैसा कमाने की कला में प्रवीण हैं वे ही इसमें प्रवेश करें।" निश्चय ही इंद्रजी के इन शब्दों में जो खीझ व्यक्त हुई है वह सर्वथा निराधार नहीं।

अब प्रश्न उपस्थित होता है कि किया क्या जाय ? इस बारे में अनेक सुझाव हैं। हम समझते हैं कि बोहरे को कोसने से उसकी तिजोरी नही टूटती। दूसरे, उसकी तिजोरी से बड़े-बड़ों के काम भी निकलते हैं। इसलिए आवश्यक है कि तिजोरी तो रहे परंतु वह किसी एक के अधिकार में न हो। अतः बड़े-बड़े अखबारों के समांतर सहकारी प्रेस स्थापित किये जायं जिनमें पैसा पूंजीपतियों का न होकर सर्वसाधारण का हो। और सरकार इस काम में लालफीताशाही से ऊपर उठकर उदारतापूर्वक सहयोग करे। परंतु धन ही तो सब कुछ नहीं है। प्रबंध, संसाधन तथा बौद्धिक क्षमता का भी पूरा-पूरा विकास आवश्यक है। इसके लिए अनुभवी पत्रकारों ने अनेक सुझाव दिये हैं।

कुसुमाकरजी का कथन है कि "पत्रकारों के प्रशिक्षण के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को चाहिए कि दिल्ली में 'पत्रकार विश्वविद्यालय' की स्थापना करे। जहां पत्रिकारिता का प्रशिक्षण हो, उन विश्वविद्यालयों को पर्याप्त धन दिया जाय। जिस से वे टेलीप्रिंटर तथा मुद्रणालय रख सकें। संवाद संग्रह सिखाने के लिए, इस विभाग में कम से कम एक मिनी बस होनी चाहिए। इस विभाग में उन्हीं लोगों का प्रवेश हो जो किसी दैनिक में कार्य करने का अनुभव रखते हों। हिंदी पत्रकारिता विकासोन्मुख है, उसका पूर्ण विकास तब होगा जब सरकार अंग्रेजी पत्रों को विज्ञापन देना कम करेगी।"

पं० गणेशदत्त शर्मा ने सुझाव दिया है कि "पत्रकारिता के क्षेत्र में कार्य करने वालों के लिए एक आचार संहिता का बनाया जाना जरूरी है। इसका पालन कठोरता से अपेक्षित है। देशकाल और पात्रानुसार इस क्षेत्र का शुद्धीकरण वांछनीय है। दूषित, कलुषित तथा भ्रष्ट पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशकों पर प्रतिबंध लगाये बिना, यह क्षेत्र जन-हितकारी नही बन सकेगा।"

वस्तुतः हिंदी पत्रकारिता का इतिहास संपादकों तथा पत्रकारों के त्याग एवं कर्त्तव्यनिष्ठा का इतिहास रहा है। स्वतंत्रता आंदोलन हो या समाज-सुधार, राष्ट्र-नीति के निर्माण का प्रश्न हो या राष्ट्रभाषा के विकास का आंदोलन, हिंदी पत्रकारिता का सभी में योग रहा है। उसके विकास की गति अत्यंत तीव्र न होते हुए भी निराशाजनक नही रही। हिंदी पत्रकारिता का भविष्य अत्यंत उज्ज्वल है। आवश्यकता इस बात की है कि इस बिरवे को प्रारंभिक पत्रकारों ने जिस तप, त्याग और निष्ठा से सींचा है, उसे उसी यथोचित वातावरण में पनपने का अवसर प्राप्त हो।

हिंदी का पहला पत्र कौन-सा था?

दिग्दर्शन

अप्रैल १८१८ में श्रीरामपुर (जिला हुगली, बंगाल) के बैपटिस्ट मिशनरियों ने 'दिग्दर्शन' नामक एक मासिक पत्र निकाला। जोशुआ मार्शमैन (१७६८-१८३७) के पुत्र जान क्लार्क मार्शमैन (१७९४-१८७७) इसके संपादक थे। इसका व्याख्या-पत्र (Title page) इस प्रकार का था :

दिग्दर्शन। अर्थात्। युवलोकेर कारण संगृहीत नाना उपदेश। 'दिग्दर्शन' के पहले अंक में ये लेख छपे थे—अमेरिका के आविष्कार के विषय में; हिंदुस्तानी सीमा का विवरण, हिंदुस्तान का वाणिज्य, बेलून (गुब्बारा) द्वारा सादल साहब का आकाश-गमन, दूसरे अंक में उत्तमाशा अंतरीप घूमकर यूरोप से हिंदुस्तान आने की बात; हिंदुस्तान में जन्मते हैं लेकिन इंगलैंड में नहीं जन्मते हैं ऐसे वृक्षों का विवरण; इंगलैंड के बादशाह की पौत्री की मृत्यु का विवरण, भाप द्वारा नाव चलाने के विषय में; कुमिल्ला की पाठशाला के विषय में; महाराज कृष्णचंद्र रायबहादुर की कथा।

अप्रैल १८१८ से मार्च १८१९ और जनवरी से अप्रैल १८२० तक इस मासिक पत्र के कुल सोलह अंक अंगरेजी और बंगला में प्रकाशित हुए थे। प्रकाशकों ने हिंदी में भी इस पत्रिका को निकालने की बात सोची। दिल्ली से आदमी लाकर इसके तीन अंक निकाले गये। इस तरह 'दिग्दर्शन' बंगला का पहला पत्र होने के साथ ही हिंदी का भी पहला पत्र है।

उन दिनों स्कूलों में पढ़ायी जानेवाली पाठ्य-पुस्तकों की बड़ी कमी थी। कलकत्ता स्कूल बुक-सोसाइटी ने 'दिग्दर्शन' के बहुत से अंक खरीद कर विद्यार्थियों के लिए स्कूलों को बांट दिया था। यही नहीं, इस सोसाइटी के अनुरोध और फर्माइश पर 'दिग्दर्शन' का अंग्रेजी, अंग्रेजी-बंगला संस्करण भी पुस्तकाकार में प्रकाशित किया गया।

इस मासिक पत्र के अंग्रेजी तर्जुमे की जरूरत के बारे में दिसंबर १८१८ के 'Friend of India' में लिखा था।

The Dig-durshuna. **It has been suggested that certain articles in the Monthly Dig-durshuna, might not be wholly uninteresting to our youth in general.** As it appears reasonable, therefore, that nothing should be withheld from our Indian youth from which they can derive the slightest information, it is proposed in future to publish separately an English translation of each Number; and for the use of such youth as may wish to read it in both languages, a few copies in both, so as to make the English agree page for page with the Bengalee. An English translation of the Numbers already published having been requested, the publishing of the original work will in consequence be suspended for a short season till this can be completed.

हिंदी के पहले पत्र 'दिग्दर्शन' का पता मुझे करीब बीस साल पहले चला था। अगस्त १९५९ की 'राष्ट्र भारती' (वर्धा) और जनवरी १९६० की 'सरस्वती' में लिखा भी था।

धर्म का प्रचार करते हुए ईसाई मिशनरियों ने बंगला भाषा की जो सेवा की है, उसे बंगाली विद्वानों ने बार-बार सराहा है, १९वी सदी से मराठी के लिए ईसाइयों ने जो कुछ किया है, उसे मराठी के लेखकों ने सराहा है। हिंदी के कितने ही कूप-मंडूक समझते हैं कि वे तो ईसाई धर्म का प्रचार करते थे, उन्हें हिंदी का सेवक कैसे माना जाय ? इसे दिवालियापन के सिवा और क्या कहा जाय ?

'दरबार रोजनामचा'

क्या भारत में हिंदी का पहला समाचार-पत्र बूंदी से आरंभ हुआ था ? इसका प्रमाण कर्नल, जेम्स टाड के 'एनल्स एंड एंटीक्वीटीज आफ राजस्थान', भाग २ से मिलता है। उनके अनुसार बूंदी से ईस्वी १८१८-१८२० के बीच एक 'दरबार रोज-नामचा' (कोर्ट जर्नल) निकला करता था। कर्नल टाड ने उस पत्र की भाषा और प्रकाशन काल की कोई चर्चा नहीं की है। किंतु चूंकि बूंदी हिंदी भाषी प्रदेश है इसलिए यह मान लेना गलत न होगा कि यह पत्र हिंदी में ही निकलता था। इसके बाद 'सर्वहित' पाक्षिक की भाषा भी तो हिंदी ही थी। यह काल महाराव राजा रामसिंह जिनके शासक काल में 'सर्वहित' प्रकाशित हुआ था, के पिता बिशनसिंह का था। कर्नल टाड पृष्ठ ४०७ पर लिखते हैं :

"बिशनसिंह अपने छोटे से राज्य के निरंकुश राजा हैं। वे इस बात को भली प्रकार जानते हैं कि अपनी प्रजा और विशेषकर सरकारी कर्मचारियों से सम्मान प्राप्त करने के लिए भय का राज्य आवश्यक है और यदि बूंदी का दरबार रोजनामचा (कोर्ट जर्नल) सही है तो राजा अपने कोषाध्यक्ष, जो राज्य के दीवान भी थे, के साथ जैसा बर्ताव करते थे वह दिलचस्प था।"

पृष्ठ ६०१ पर कर्नल टाड ने आगे लिखा है :

'अखबार'—बूंदी, दिनांक १८ अक्तूबर १८२० का सारांश

"दशहरा का उत्सव मनाने के संबंध में राजधानी में उपस्थित होने के लिए सभी

सामंतों को आदेश भेजा गया। बरड़ के ठाकुर के अतिरिक्त सभी सामंत राजधानी में उपस्थित हुए। बरड़ के ठाकुर ने आदेश के उत्तर में लिखा 'बंबाओदा' की श्रीभवानी का हमें पैगाम प्राप्त हुआ है। इसमें उन्होंने हमें आदेश दिया है कि 'हम अपनी जमीन को न जोतें, बल्कि अपने घोड़ों और गाय-बैलों को बेचकर उस रकम से माताजी को किये जाने वाले आम बलिदान के लिए ६४ भैंसे और ३२ बकरे खरीद लें। ऐसा करने से हमें 'बंबाओदा' पर पुनः अधिकार प्राप्त हो जायगा।' इस समाचार के मिलते ही बूंदी और कोटा के अनेकों सामंत वहां जा पहुंचे। बरड़ के ठाकुर ने माताजी के स्थान के निकट २०० व्यक्तियों के लिए भोजन का प्रबंध किया। वहां पर ५०० व्यक्ति एकत्रित हुए। न केवल सब ने छककर भोजन किया अपितु कुछ बच भी रहा। इससे सब को विश्वास हो गया कि पैगाम सही था।"

यदि कर्नल टाड के इस प्रमाण को सही माना जाय तो फिर हिंदी पत्रकारिता के इतिहास में आवश्यक परिवर्तन करना जरूरी हो जायगा।

(उक्त दोनों लेखों दिग्दर्शन और 'दरबार रोजनामचा' में से पहला हमें पं० बनारसीदास चतुर्वेदी के अथक प्रयत्नों से प्राप्त हुआ है। इसके लेखक लगभग ६० वर्षीय डा० महादेव साहा को मैंने कई पत्र और तार भेजे, फिर भी 'दिग्दर्शन' के हिंदी खंड का सचित्र प्रमाण हमें प्राप्त नहीं हो सका। इसी प्रकार 'दरबार रोजनामचा' की प्रति हमने राष्ट्रीय अभिलेखागार में ढुंढ़वायी तथा बूंदी में कई लोगों को लिखा लेकिन वांछित प्रमाण नहीं मिल सके।—संपादक)

पत्रकार-परिचय

अखौरी, यशोदानंदन



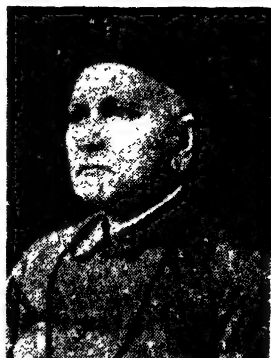
ज० : कार्तिक शुक्ला द्वितीया संवत १६२६; ग्रा० : हरपुर रामनाथ, **था०** : 'सहार', **जि०** : **शाहाबाद,** (बिहार); **शि०** : स्वाध्याय; **प०** : संपादक **'देव-**नागर' (कलकत्ता, १६०७), 'प्रभाकर' (कलकत्ता, १६०८), 'बालमुकुंद', 'भारतमित्र' के प्रबंधक, अंतिम दिनों में 'देशसेवक' (आरा) का संपादन तथा 'पाटलिपुत्र' के संपादन में सहयोग; **र०** : अनेक रच-नाओं के प्रणेता 'इत्यादि की आत्म कहानी' निबंध बहुचर्चित; **भा०** : हिंदी, संस्कृत, बंगला, फारसी, अंग्रेजी, प्राकृत, पाली, मराठी, गुजराती, उड़िया, नेपाली, तमिल और तेलगु आदि; **वि०** : भारतेंदु-युगीन बिहारी लेखकों में अग्रणी; हिंदी साहित्य सम्मेलन बिहार के सभापति (१६३६); **नि०** : १६३७।

अग्निहोत्री, रामशंकर



ज० : १४ अप्रैल १६२६; **ग्रा०** : सिवनी मालवा, होशंगाबाद (म०प्र०); **पि०** : कुंजीलाल अग्निहोत्री; **शि०** स्नातक (सागर वि० वि०), पत्रकारिता डिप्लोमा (नागपुर वि० वि०); **प०** : प्रारंभ में 'हिंदुस्थान समाचार' के जबलपुर स्थित संवाददाता। नागपुर के 'युगधर्म' दैनिक में कार्य; संपादन, 'आकाशवाणी' (सान्ध्य दैनिक, दिल्ली, १६५३-५८); 'राष्ट्रधर्म' (मासिक, लखनऊ, १६६४); 'तरुण भारत' (दैनिक, लखनऊ); 'युगवार्ता' (नेत्र सेवा); ब्यूरो प्रमुख, 'हिंदुस्थान समाचार' (नयी दिल्ली, १६६८ से अब तक); **र०** : 'बाजी प्रभु देशपांडे', 'कश्मीर के मोर्चे पर', 'राष्ट्रजीवन की दिशा' स्वामी विवेकानंद की कविताओं का अनुवाद। **भा०** : हिंदी, अंग्रजी, संस्कृत, मराठी; **या०** : **जांबिया,** तंजानिया, ईथोपिया व बंगलादेश।

अग्निहोत्री, पं० शिवनारायण



ज० : २० दिसंबर १८५०; अकबरपुर (उ० प्र०); **पि०** : पं० रामेश्वर अग्निहोत्री; **शि०** : रुड़की इंजीनियरिंग कालेज से प्रथम श्रेणी में ओवरसियर परीक्षा उत्तीर्ण की; **प०** : संपादक, 'हिंदु बांधव' (लाहौर, मासिक, १ जून १८७५)। बाबू नवीनचंद्र राय की प्रेरणा और सहयोग से यह पत्र हिंदी-उर्दू में एक साथ प्रकाशित हुआ। हिंदी-संस्करण दिसंबर १८७६ तक चलकर बंद हो गया; 'बिरादरे हिंद' (उर्दू मासिक) जून १८८२ तक चला; 'जीवन पथ' (हिंदी मासिक); 'धर्म जीवन' (उर्दू मासिक), 'रिफार्मर' (उर्दू, मालिक नवीनचंद्र राय), 'कौमी अखबार' (उर्दू), 'कांकरर' (देव समाज का अंग्रेजी पत्र) आदि पत्रों का भी संपादन किया; **र०** : हिंदी, उर्दू एवं अंग्रेजी में दो सौ से अधिक पुस्तकें, प्रमुख हिंदी रचनाएं—'मुझमें देवजीवन का विकास' (आत्मकथात्मक, दो भाग), 'देवशास्त्र' (चार भाग), 'आत्म परिचय', 'मेरा वंश और मेरे वंशीय पूर्वज', 'विज्ञानमूलक तत्व शिक्षा', 'आत्मकथा', 'लीलावती चरित', 'शांति चरित', 'सावित्री चरित', 'नीतिसार', 'ऋषि वाक्य-संग्रह', 'सावित्री अग्निहोत्री चरित' आदि उल्लेखनीय हैं। बालकों की प्रारंभिक शिक्षा हेतु चार हिंदी पाठ्यपुस्तकों की भी रचना; **भा०** : संस्कृत, हिंदी, उर्दू, फ़ारसी, बंगला, अंग्रेजी; **वि०** : 'देव समाज', 'हिंदी प्रचार समिति' तथा 'भारतीय संघ' के संस्थापक; अनेक शैक्षणिक तथा समाज-सुधारक संस्थाओं की स्थापना, श्रेष्ठ गद्यकार तथा खड़ी बोली के कवि, 'भारत हमारा देश है' शीर्षक राष्ट्रगीत के प्रणेता; १८८२ में सपरिवार संन्यास लेने के बाद 'सत्यानंद अग्निहोत्री' के नाम से विख्यात; **नि०** : ३ अप्रैल १९२९।

अग्रवाल, कृष्णचंद्र



ज० : २१ जुलाई १९२२, कलकत्ता; **पि० :** मूलचंद्र अग्रवाल; **मा० :** स्वदेश्वरी देवी; **शि० :** स्नातक बी० ए० (हिंदी में सर्वोच्च अंक, कलकत्ता वि० वि०); **प० :** संपादक, 'विश्वमित्र' (बंबई, १९४१), (दिल्ली, १९४१), (कानपुर, १९५१), पटना संस्करण, 'एडवांस' (अंग्रेजी दैनिक, १९४५), तथा 'सिने एडवास' (अंग्रेजी साप्ताहिक, १९५१), 'विश्वमित्र' (कलकत्ता, १९५४ से अब तक); **भा० :** हिंदी, अंग्रेजी ।

अग्रवाल, डोरीलाल

ज० : १५ मार्च १९२७ : बलदेव, जि० मथुरा; **पि० :** देवकीनंदन गोयल; **प० :** 'उजाला' (आगरा, १९४५) में काम; 'अमर उजाला' (आगरा, १९४८) का आरंभ एवं संपादन; संपादक एवं प्रकाशक 'दिशा भारती' (दिल्ली, १९७२); **भा० :** हिंदी, अंग्रेजी; **या० :** इटली, इंग्लैंड, फ्रांस, पश्चिम एवं पूर्व जर्मनी, नेपाल; **वि० :** अध्यक्ष, उत्तर प्रदेश हिंदी समाचार सम्मेलन, सदस्य रेल मंत्रालय हिंदी परामर्शदात्री समिति ।



अग्रवाल, बालेश्वरप्रसाद



ज० : १७ जुलाई १६२१ : बालेश्वर (उत्कल); **पि०** : नारायणप्रसाद अग्रवाल; **शि०** : मैट्रीकुलेशन (१६३६); इंटरमीडिएट संत कोलवा कालेज से स्वर्ण-पदक से साथ; हिंदू विश्वविद्यालय काशी से अभियंत्रण में उपाधि (१६४५); **प०** : प्रकाशन एवं संपादन, साप्ताहिक प्रवर्तक' (पटना, १६४६) तथा चंद्रगुप्त प्रकाशन लि०, पटना की स्थापना; संपर्क 'हिंदुस्थान समाचार' (जून १६५१); प्रबंध संपादक, 'हिंदुस्थान समाचार' (१६६४ से अब तक); **भा०** : हिंदी, अंग्रेजी, नेपाली; **या०** : अफगानिस्तान, ब्रिटेन, जर्मनी, जापान, थाईदेश, फिलिपाइंस, हांगकांग, बर्मा, फारमोसा, मारीशस, नेपाल; **वि०** : हिंदी की समाचार-सेवा को देश के कोने-कोने मे फैलाने तथा विदेशों में भी स्थापित करने के लिए अथक पयत्न किया।

अग्रवाल, मूलचंद्र



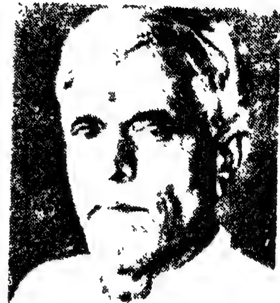
ज० : १८६३, कोटरा, जि० जालौन; **पि०** : गोपालदास अग्रवाल; **शि०** . प्रारंभिक (उरई), उच्च (मेरठ), अध्यापन; **प०** प्रारंभ में 'बंगवासी' और 'कलकत्ता-समाचार' से संपर्क; हिंदी 'विश्वमित्र' (कलकत्ता, जनवरी १६१५) का संस्थापन व संपादन; कलकत्ता से ही 'साम्यवादी' (सांध्य दैनिक); 'लिबर्टी' और 'एडवांस' (अंग्रेजी दैनिक); 'मातृभूमि' (बंगला दैनिक), 'इलस्ट्रेटेड इंडिया' (अंग्रेजी साप्ताहिक) प्रकाशित एवं संपादित; **भा०** : हिंदी, अंग्रेजी, संस्कृत; **वि०** अध्यक्ष, अखिल भारतीय हिंदी समाचार-पत्र संपादक सम्मेलन, सभापति अखिल भारतीय अग्रवाल महासभा; स्वाधीनता संग्राम में कारागार की यात्रा की; समाज सुधार में अग्रणी भूमिका निभायी और अपने अध्यवसाय, पांडित्य तथा वक्तृत्व-कला के कारण हिंदी जगत में 'विद्वान पत्रकार' के रूप में विख्यात हुए।

अग्रवाल, हरकिसन



ज० : २० सितंबर १९२० : दरसुसराय, जि० महेंद्रगढ़ (हरि०) ; शि० : सातवीं कक्षा के बाद व्यतिक्रम; प० : साप्ताहिक 'अग्रवाल समाज' (१९५२); दैनिक 'राष्ट्रदूत' (१५ अगस्त १९५६ से अब तक) नागपुर से प्रकाशित एवं संपादित; वि० 'राष्ट्रदूत' द्वारा हिंदी के प्रचार तथा प्रसार में विशेष योगदान ।

'अजित', निरंजन शर्मा



ज० २५ मई १८९३, भरतपुर (राज०); पि० मोहनलाल शर्मा, शि० : हाईस्कूल; प० : संपादक दैनिक 'वैभव' (दिल्ली, १९२१); 'हिंदू संसार' (दिल्ली) में दो वर्ष; संपादक, 'वेंकटेश्वर समाचार' (बंबई, १९२६). दैनिक 'स्वतंत्र भारत' (बंबई, २ दिसंबर १९३०); दै० 'स्वाधीन भारत' (बंबई, १९३०); दैनिक 'नवराष्ट्र' (बंबई, १९३९); 'सुदर्शनचक्र' (बंबई, सा०, सितंबर १९३७); 'प्रताप' (उदयपुर, सा०, १९६१), 'अशोक' (इंदौर, सा०, १९५६),'वीरभूमि' (दिल्ली, सा० १९२४); इनके अतिरिक्त कई पत्रों का संस्थापन और संपादन; वि० : मिशनरी उत्साह से आजीवन पत्रकारिता करते रहे; नि० २१ अगस्त १९७० ।

अधिकारी, महावीर



ज०: १ जनवरी १९१८; पैगंबरपुर, जि०बिजनौर; शि० : बी० ए०; प० : संपर्क साप्ताहिक 'विचार' (१९४१), संपादक 'नवयुग' (१९४३), 'ज्ञानोदय' (१९५३), 'समाज' (१९५४), 'समाज कल्याण' (नयी दिल्ली, १९५५); सह-संपादक 'दैनिक हिंदुस्तान' (नयी दिल्ली, १९६०); १९६१ से आवासी संपादक 'नवभारत टाइम्स' (बंबई); र० : १२ मौलिक पुस्तकें, 'मंजिल से आगे', 'तलाश', 'दस्तूर', 'मानस मोती', 'जीवन के मोड़', 'कोशी', 'आदमी का गणित', 'प्राचीन भारत का इतिहास', 'लाल बहादुर शास्त्री', 'नरम-गरम', 'राग-दुर्गा', 'बिन बादल बरसात', 'मिट्टी लड़े कुम्हार से'; या० : पूर्वी एवं पश्चिमी गोलार्द्धों में व्यक्तिगत संपर्क, नेता अफ्रीका-भारतीय सम्मेलन (मारीशस); वि० : पत्र निर्माण, स्थापना और विकास के लिए सतत प्रयत्नशील।

अभिन्नहरि



ज० : २७ सितंबर १९०५; मांगरोल, सिंघानिया (राज०); शि० : मैट्रिक, नार्मल ट्रेनिंग, साहित्यरत्न, संपादन कला-रत्न; प० : 'कर्मवीर' (खंडवा) तथा 'राजस्थान संदेश' से आरंभ; सहकारी संपादक, दैनिक 'हिंदुस्तान' (दिल्ली, १९३६-३८), संपादक 'अग्रसर' (दिल्ली, साप्ता०, १९३८); 'लोकसेवक' (कोटा, १९४२-५१), 'फ्री वर्ड' (अंग्रेजी); वि० : स्वाधीनता सेनानी, जेलयात्राएं, भूमिगत पत्रों का प्रकाशन।

अरविंदकुमार



ज० : १७ जनवरी १९३०, मेरठ शहर; **पि० :** लक्ष्मणस्वरूप; **शि० :** एम० ए० (अंग्रेजी); **प० :** दिल्ली प्रेस (१९४५) में कंपोजिंग और प्रूफ रीडिंग, उप-संपादक, 'सरिता' (१९४९), उप-संपादक अंग्रेजी पत्रिका 'कैरावान', संपर्क टाइम्स आफ इंडिया प्रकाशन समूह (१९६३), १९६४ से संपादक, 'माधुरी' (बंबई) पहले 'सुचित्रा'; **र० :** पहला लेख दैनिक 'हिंदुस्तान' के रविवारीय संस्करण में छपा (१९४७), कविता 'राम का अंतर्द्वंद्व' के लिए हवालात की सैर, 'ए स्टडी इन दि एथिक्स आफ दि बेनिशमेंट आफ सीता', तीन-चार कहानिया, कविताएं और फिल्म-सिद्धांत संबंधी लेख; **भा० :** हिंदी, अंग्रेजी; **या० :** इटली; **वि० :** फिल्म जर्नलिस्ट्स सोसायटी, बंबई के अध्यक्ष, समानांतर सिनेमा आंदोलन के स्थापकों में से एक।

अरोड़ा, भगवानदास



ज० : १५ अगस्त १९१३; पिंडी भट्टियां (गुजरांवाला); **पि० :** बरकतराम इच्छपुनानी; **शि० :** मैट्रिक (पंजाब वि० वि०); **प० :** संपादन एवं प्रकाशन, दैनिक 'गांडीव' (वाराणसी, १९५० से अब तक); **र० :** 'आत्मदर्शन' पुस्तक के अलावा धार्मिक-आध्यात्मिक लेख, कहानिया व संपादकीय टिप्पणियां; **भा० :** हिंदी, अंग्रेजी, पंजाबी, उर्दू।

अवस्थी, राजेंद्र



ज० : २५ जनवरी १६३१; जबलपुर; **पि०** : घनेश्वरप्रसाद अवस्थी; **शि०** : एम०ए० (हिंदी); **प०** : संपादक, 'सारिका' (बंबई, १६६०), 'नंदन' (दिल्ली, १६६४), 'कादंबिनी' (दिल्ली, १६७२ से अब तक); **र०** : सात उपन्यास, पांच लघु कहानी-संग्रह, सात बाल-पुस्तकें तथा पांच पुस्तकें विविध विषयों पर, कई पुस्तकें पुरस्कृत; **भा०** : हिंदी, अंग्रेजी; **या०** : अफ्रीका और यूरोप के कुछ देश; **वि०**: दिल्ली विश्वविद्यालय की स्नातकोत्तर कक्षाओं में पत्रकारिता-अध्यापन।

अशोकजी



ज० : १२ जुलाई १६१६; वाराणसी; **पि०** : नरसिंहदास; **शि०** : १६३१ के आंदोलन में स्कूल से निष्कासित; काशी हिंदू वि० वि० में प्रथम श्रेणी में बी० ए०, इलाहाबाद वि० वि० से एम० ए० (१६३८), '३८ से '४२ तक इतिहास में शोधकर्ता; **प०** : हास्य पाक्षिक 'तरंग' का सह-संपादन (१६४१-४२); साप्ताहिक 'संसार' से संबद्ध (१६४२); अर्द्धसाप्ताहिक 'ग्राम संसार' तथा मासिक 'युगधारा' का प्रकाशन, संपादक, स्वतंत्र भारत' (लखनऊ, १६४७-५३), १६५३-७२ तक सूचना मंत्रालय के विभिन्न पदों पर, १६७२ से पुन: 'स्वतंत्र भारत' के संपादक; **र०** : हास्य-व्यंग संग्रह 'हजामत का मैच', 'कथा-कुंज' (कथा सरित्सागर का संक्षेप) तथा 'कादंबरी'; 'कच्छ'; 'जनसत्ता' के लिए विनोदात्मक लेख; **वि०** : हिंदी में 'स्पोर्ट्स रिपोर्टिंग' तथा कमेंटरी का प्रवर्त्तन, प्रथम हिंदी दूर-मुद्रक के निर्माण में सहयोग (१६५०), काशी नागरी प्रचारिणी सभा के पुनरुज्जीवन में योगदान; काशी पत्रकार संघ और उत्तर प्रदेश श्रमजीवी पत्रकार संघ के संगठन में सहायता।

'अज्ञेय', सच्चिदानंद वात्स्यायन



जo : ७ मार्च १९११; कसिया, देवरिया (उ०प्र०); पि० : डा० हीरानंद शास्त्री; शि० : प्रारंभिक शिक्षा संस्कृत मौखिक परंपरा से, मैट्रिक (प्राइवेट, पंजाब, १९२५), बी० एस सी०, अंग्रेजी में एम० ए० का आरंभ; प० : १९३६ से अनेक पत्रों में संपादन 'सैनिक' (आगरा), 'विशाल भारत' (कलकत्ता), 'बिजली' (पटना), 'प्रतीक' (इलाहाबाद), 'थॉट' (अंग्रेजी-दिल्ली), 'वाक' (अंग्रेजी-दिल्ली); १९४०-४२ और पुन. ५०-५५ में आल इंडिया रेडियो के समाचार विभाग में; १९६४ में 'दिनमान' का संगठन और १९७० तक संपादन, १९७२-७३ में 'एवरीमैंस' (अंग्रेजी) का संगठन और संपादन। संप्रति, संपादक 'नया प्रतीक' (१९७३ से अब तक); र० : १२ कविता संग्रह, चार कहानी संग्रह, तीन उपन्यास, एक नाटक, १२ निबंध संग्रह। हिंदी और अंग्रेजी में अनेक ग्रंथों का संपादन एवं अनुवाद; या० : अनेक विदेश यात्राएं; वि० : यूरोप, अमेरिका, पूर्वी एशिया आदि में अनेक व्याख्यान और अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में भारत का प्रतिनिधित्व, पांचवें अ० भा० लेखक सम्मेलन की अध्यक्षता, मानद डी० लिट्० (उज्जैन वि० वि०), 'साहित्यवाचस्पति', ना० प्र० सभा का पुरस्कार एवं पदक, साहित्य अकादमी पुरस्कार।

आराधक, फतहचंद शर्मा



ज० : २ फरवरी १९२३; रतनगढ़ (बिजनौर); पि० : रामस्वरूप शर्मा; शि० साहित्यरत्न, साहित्यालंकार, साहित्यशास्त्री (संस्कृत); प० : 'हिंदुस्तान', 'नवयुग' और 'अर्जुन' को समाचार भेजने से प्रारंभ; 'शिक्षा', 'शिक्षा सुधा', 'हिंदू', 'हिंदू आउटलुक', 'जय भारत', 'कण्व भूमि' आदि पत्रों से संबद्ध; १९४३ में 'नवयुग' (दिल्ली) में, संपादक 'गोपाल' (दिल्ली); १९४७ में 'नवभारत टाइम्स' के साथ (अब मुख्य संवाददाता); र० : 'उत्तराखंड के प्रमुख तीर्थ', 'कर्मयोगी मालवीयजी', 'मारीशस' आदि; भा० : हिंदी, अंग्रेजी, संस्कृत; या० : मारीशस।

आरिगपुड़ि, रमेश चौधरी



ज० : २४ नवंबर १९२२; **शि०** : स्नातक, गुरुकुल कांगड़ी; **प०** : संपादक 'दक्षिण भारत', 'चंदा-मामा' तथा 'इंडियन रिपब्लिक'; **र०** : एक दर्जन से अधिक मौलिक उपन्यास, जिनमें से कई के लिए विशिष्टता पुरस्कार; **भा०** : तमिल, हिंदी, अंग्रेजी; **वि०** : तमिलनाडु में हिंदी पत्रकारिता को परिष्कृत करने में सन्नद्ध; मद्रास आकाशवाणी के हिंदी कार्य-क्रम को लोकप्रिय बनाने में सहयोग।

'इंद्र', पं० गणेशदत्त शर्मा



ज० : १८९४ दीपावली : गुना; **प०** : संपादक, 'बाल मनोरंजन', 'चंद्रप्रभा', 'हिंदी सर्वस्व', 'ब्राह्मण समाचार', 'गौड़ हितकारी', 'जीवन' (साप्ताहिक), 'समता सौरभ' (त्रैमासिक), 'मयूर' (हस्तलिखित) **र०** : १११ ग्रंथों का सृजन; **भा०** : संस्कृत, गुजराती, मराठी, बंगला, हिंदी, अंग्रेजी; **वि०** : निखिल भारत साहित्य संघ द्वारा 'विद्यावाचस्पति' की उपाधि; अखिल भारतीय हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग द्वारा रजत-पदक, हिंदी साहित्य परिषद् का संचालन एवं नियोजन; समाचार-पत्र एवं पत्रि-काओं के विशिष्ट संग्राहक, स्वाधीनता संग्राम में जेल-यात्रा; हरिजनोद्धार और समाज-सुधार के क्षेत्र में विशेष कार्य।

'उग्र', पांडेय बेचन शर्मा



ज० : पौष शुक्ल अष्टमी, संवत १९५७, ग्रा० चुनार, जि० मिर्जापुर (उ० प्र०); **पि०** : बैजनाथ पांडेय; **शि०** : छठी कक्षा, स्वाध्याय; **प०** : संपादक 'उग्र' (काशी, हस्तलिखित, १९२१), 'भूत' (१९२४), 'स्वदेश' (गोरखपुर, दशहरा अंक, १९२४), 'मतवाला' (कलकत्ता, १९२४), 'उग्र' (काशी, १९३८), 'विक्रम' (उज्जैन, मासिक, १९४२), 'संग्राम' (बंबई, साप्ता०, १९४५), 'विक्रम' (बंबई, मासिक, १९४७), 'मतवाला' (मिर्जापुर, १९४८), 'उग्र' (दिल्ली, साप्ता०, १९५४), 'हिंदी पंच' (दिल्ली, १९५६), इंदौर के 'स्वराज्य' और 'वीणा' तथा 'खुदा की राह' (होलिकांक, १९३२) के संपादन में भी सहयोग; **र०** : लगभग ४५ रचनाएं—'चिंगारियां', 'चाकलेट', 'दोजख की आग', 'सनकी अमीर', 'जब सारा आलम सोता है', 'चंद हसीनों के खतूत', 'बुधवा की बेटी', 'महात्मा ईसा', 'चुंबन', 'अपनी खबर', 'ध्रुव चरित्र', 'गालिबउग्र' आदि; **भा०** : हिंदी, संस्कृत, उर्दू, फारसी, अंग्रेजी, बंगला; **नि०** : २३ मार्च १९६७; दिल्ली।

उपाध्याय, हरिभाऊ



ज० : ९ मार्च १८९३ ; ग्वालियर; **प०** : 'केसरी' 'कर्मवीर', 'भारत', 'हिंदुमित्र' आदि ने पत्रकारिता में रुचि पैदा की; संपादक-प्रकाशक 'औदुंबर' (वाराणसी, १९११); संपर्क 'सरस्वती'; 'मालव मयूर' के प्रकाशन पर रोक (१९२९); 'यंग इंडिया' तथा 'नवजीवन' के हिंदी प्रकाशन में योगदान; हिंदी में राष्ट्रीयता-परक साहित्य के प्रकाशन के लिए 'सस्ता साहित्य मंडल' की स्थापना; संपादक 'त्याग-भूमि', 'जीवन साहित्य' तथा 'प्रताप'; **र०** : जेल-जीवन में लेखन कार्य—'हिंदी गीता' आदि; **वि०** : गांधीवादी पत्रकार; स्वाधीनता संग्राम में कई बार जेल गये; अनेक हिंदी पत्रकारों के प्रेरणा-स्रोत; **नि०** : २५ अगस्त १९७२; अजमेर।

ओझा, गौरीशंकर हीराचंद



ज० : १५ सितंबर १८६३; रोहिड़ा (राजस्थान); पि० : पं० हीराचंद; शि० : प्रारंभिक शिक्षा हिंदी में, मैट्रिक (बंबई, १८८४), संस्कृत साहित्य, वेद, गणित, इतिहास, पुरातत्व एवं प्राचीन लिपियों के मर्मज्ञ,; प० : संपादन, 'नागरी प्रचारिणी-पत्रिका' (त्रैमासिक, १९२०); र० : 'प्राचीन लिपिमाला', 'सोलंकियों का इतिहास', 'सिरोही राज्य का इतिहास', 'राजपूताने का इतिहास', 'उदयपुर राज्य का इतिहास' (दो भाग), 'डूंगरपूर राज्य का इतिहास', 'बासवाड़ा राज्य का इतिहास', 'जोधपुर राज्य का इतिहास' (दो भाग), 'बीकानेर राज्य का इतिहास', 'मध्यकालीन भारतीय संस्कृति', 'पृथ्वीराज विजय काव्य' (संपादन), 'अशोक की धर्मलिपिया' (प्रथम भाग) आदि, कर्नल टाड का जीवन चरित्र एवं टाड-कृत टाड-राजस्थान के अनुवाद पर टिप्पणी तथा अनेक सामयिक पत्रों में खोजपूर्ण इतिहास विषयक अगणित लेख भी प्रकाशित; भा० : संस्कृत, हिंदी, प्राकृत, गुजराती, अंग्रेजी आदि; वि० : हिंदी में इतिहास, पुरातत्व, प्राचीन लिपियों आदि पर मौलिक एवं गवेषणात्मक कृतियां प्रस्तुत की।

ओझा, भालचंद्र



ज० : २३ जून, १९२७; पि० : चंद्रशेखर शास्त्री; प० : सहायक संपादक, बिजली (पटना); साहित्य संपादक, दैनिक 'जनता'; 'प्रकाश' में भी; स्तंभ लेखक 'द रिपब्लिक' (अंग्रेजी); सहायक संपादक 'साप्ताहिक कहानियां'; साप्ताहिक 'मजदूर संसार' से संबद्ध; दैनिक 'नवराष्ट्र' के रविवारीय अंकों और विशेषांकों का संपादन; सहायक संपादक 'बिहार' और 'बिहार सरकार'; प्रधान संपादक दैनिक 'आवाज'; प्रोड्यूसर समाचार-दर्शन आकाशवाणी; र० : लगभग तीस पुस्तकें; कहानियां, उपन्यास और बाल-साहित्य; भा० हिंदी, संस्कृत, अंग्रेजी।

ओझा, राजवल्लभ



ज० : होली, १९१६; **ग्रा०** हुलाम-छपरा (जि० बलिया); **शि०** : बी० ए० (इलाहाबाद वि०वि०); **प०** : उप-संपादक, 'भारत' (इलाहाबाद, १९४७); मुख्य-उप-संपादक, समाचार-संपादक तथा अग्रलेख लेखक—दैनिक 'नवजीवन' (लखनऊ, १९४७-६६); संपादन, 'दीपक' (इलाहाबाद); वर्तमान में सोवियत सूचना विभाग (दिल्ली) में हिंदी विभाग के प्रधान और टीकाकार; **र०** : 'बदलते दृश्य', 'गेटे के देश में' 'फौजी संधियां', 'महाबली हनुमान' आदि। लगभग दो दर्जन पुस्तकों के हिंदी अनुवाद। राजनीति संबंधी सैकड़ो लेख; **भा०** : हिंदी, अंग्रेजी; **या०** : ब्रिटेन, फ्रांस, स्विट्जरलैंड, सोवियत संघ, पूर्वी जर्मनी, पश्चिमी बर्लिन आदि; **वि०** : श्रमजीवी पत्रकारों को संगठित करने तथा उनके अधिकारों के लिए संघर्ष।

कदम, डालचंद कन्हैयालाल



ज० : १५ दिसंबर १९२२; कोटा; **पि०** : कन्हैयालाल; **शि०** : बी० काम० (लखनऊ वि० वि०); डिप्लोमा, एप्लाइड आर्ट्स (जे० जे० इंस्टीट्यूट तथा महाराष्ट्र सरकार); **प०** : 'ब्लिट्ज', दैनिक 'विश्वमित्र' (बंबई), लोकमान्य; 'बांबे वर्तमान', 'जामे जमशेद', 'जन्मभूमि' आदि अनेक पत्रों में मुक्त कार्टूनकारिता करने के बाद 'नवभारत टाइम्स' में नियमित कार्टूनकार (१९५१ मे); **भा०** : हिंदी, अंग्रेजी; **या०** : पश्चिमी यूरोप के प्रमुख देश तथा एथेंस काहिरा आदि; **वि०** : कई कार्टून-प्रदर्शनियां आयोजित।

कमलेश्वर



ज० : ६ जनवरी १९३२; मैनपुरी (उ० प्र०); शि० : एम० ए० (हिंदी) इलाहाबाद वि० वि०; प० : संयुक्त-संपादक 'कहानी', संपादक 'नई कहानियां' (१९६२-६४), साप्ताहिक 'इंगित'; हिंदी लघु-कथा अंक 'नई धारा'; संपादक 'सारिका' (१९६७ से); र० : छह लघु-कथा संकलन, सात उपन्यास, 'नई कहानी की भूमिका' तथा कई पुस्तकों का संपादन; या० : यूरोप के कई देश; वि० : क्रांतिकारी आंदोलन में सहयोग।

कालिकाप्रसाद

ज० : जि० मिर्जापुर; शि० : प्रारंभिक स्कूल में; प० : 'हिंदी केसरी' के संयुक्त संपादन से प्रारंभ; १९२० से ही 'आज' (वाराणसी) के सहायक संपादक; 'आज' के साहित्य-संपादक, प्रबंध संपादक तथा संपादकीय लेखक; र० : ज्ञानमंडल के 'वृहत् हिंदी कोश' का संपादन; भा० : हिंदी, अंग्रेजी; नि० : काशी में।

कालेलकर, काका साहेब



ज० : १ दिसंबर १८८५; सतारा (महाराष्ट्र); **शि०** : मैट्रिक, स्नातक (बंबई वि० वि०); कानून की प्रथम परीक्षा; **प०** : मराठी पत्रिका 'चिकित्सक' (आलोचना) मे लेखन एवं पत्रकारिता की ओर रुझान; संपर्क 'राष्ट्रमत', गांधीजी के कारावास-काल में 'यंग इंडिया' तथा 'नवजीवन' का संचालन एवं संपादन; संपादक 'मंगल प्रभात'; **र०** : ११० पुस्तकें गुजराती, मराठी तथा अंग्रेजी में; 'ओताराती दिवालो' सब से प्रसिद्ध पुस्तक। 'चंदन के नाम पत्र' पुरस्कृत; **भा०** : हिंदी, गुजराती, मराठी अंग्रेजी, बंगाली, कन्नड़, कोंकणी; **या०** : व्यापक विश्व-भ्रमण, जापान तथा पूर्वी अफ्रीका पर यात्रा-वृत्तांत; **वि०** : हिंदी-सेवी; हिंदी प्रचार, प्रसार तथा परिष्करण में योगदान; राष्ट्रभाषा प्रचार समिति द्वारा सम्मानित।

केजरीवाल, गोविंदप्रसाद



ज० : १४ जुलाई १९२५ : जसीडीह (बिहार); **पि०** : मोतीलाल केजरीवाल; **शि०** : एम० ए०; साहित्यरत्न; कबीर पर शोध कार्य; **प०** : 'आज' में प्रारंभिक प्रशिक्षण; संपादक पाक्षिक 'करेला' (काशी) तथा संयुक्त संपादक 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' (दिल्ली); **वि०** : सदस्य, हिंदी साहित्य सम्मेलन तथा नागरी प्रचारिणी सभा; हिंदी के प्रचार-प्रसार में सन्नद्ध।

कुलिश, कर्पूरचंद



ज० : २० मार्च १९२६; ग्रा० सोडा, जि० ओंक (राज०); **शि०** : हाईस्कूल; **प्र०** : दैनिक 'राष्ट्रदूत' में संवाददाता; संपादक-प्रकाशक दैनिक 'राजस्थान पत्रिका' (जयपुर, १९५६ से अब तक); **भा०** : हिंदी, अंग्रेजी।

कुशवाहा, आदित्य



ज० : १५ सितंबर १९४८; पानपोस (उड़ीसा); **शि०** : बी० ए०; **प०** : 'देशबंधु' (म० प्र०) से आरंभ; १९७२ मे उड़ीसा के एकमात्र नियमित साप्ताहिक 'बढ़ते चलो' (पानपोस) का संपादन-प्रकाशन; **वि०** : पत्रकारिता, लेखन और हिंदी-प्रचार की लगन।

'कुसुमाकर', कालिकाप्रसाद दीक्षित



ज० : १९०८ : कानपुर; **प०** : 'प्रताप' में कार्य संपादक 'महारथी' (दिल्ली), 'वीणा' (इंदौर), 'जयहिंद' (जबलपुर), 'हिंदुस्तान' (बंबई), 'लोकमत' (नागपुर), 'नवभारत' (जबलपुर) ; **वि०** : हिंदी साहित्य के अध्येता तथा जबलपुर विश्वविद्यालय के पत्रकारिता विभाग के अध्यक्ष ।

कृष्ण, महाशय



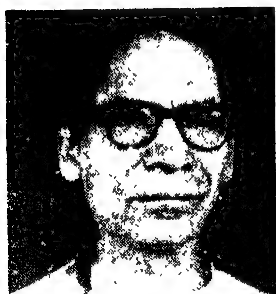
ज० : १८८० ई०; वजीराबाद (पाकिस्तान) ; **पि०** : लाला ताराचंद्र; **शि०** : बी० ए० (लाहौर), लॉ (परीक्षा नहीं दे सके) ; **प०** : १९०३ में साप्ताहिक 'आर्य-पत्रिका' (अंग्रेजी) के संपादन से आरंभ, १९०६ मे साप्ताहिक 'प्रकाश' (उर्दू), १९२९ में दैनिक 'प्रताप' (उर्दू) तथा १९३६ में दैनिक 'प्रभात' (लाहौर) का प्रारंभ; अक्तूबर १९४७ मे दिल्ली से दैनिक 'प्रताप' और अप्रैल १९५४ से दैनिक 'वीर अर्जुन' (हिंदी) का संपादन व प्रकाशन; **भा०** : हिंदी उर्दू, अंग्रेजी, **वि०** : आर्य नेता; स्वाधीनता सेनानी तथा तीव्र अग्रलेख-लेखक; **नि०** : २५ फरवरी १९६३; दिल्ली ।

केडिया, विश्वनाथ



ज० : वैशाख, कृष्ण पक्ष तेरस संवत १९८९ (१९३२ ई०); शि० : मैट्रिक; प० : संपादक 'निर्मला' (मद्रास); वि० : हिंदी प्रचार-प्रसार में संलग्न।

केला, गणपतिचंद्र



ज० : १९ सितंबर १९०७; विजयगढ़ (जि० अलीगढ़); शि० : साहित्यरत्नाकर; प० : संस्थापक 'उजाला' (आगरा, १९४०); संपादक 'धन्वंतरी' (विजयगढ़), 'अर्जुन' (दिल्ली), 'सैनिक' (आगरा); प्रकाशक, 'अंग्रेजी शिक्षक'; वि० : क्रांतिकारियों से संपर्क, अंग्रेजी शासन में कई बार जेल यात्रा; नि० : ३० अगस्त १९७४; कलकत्ता।

कौल, गोपालकृष्ण



ज० : १५ अक्तूबर १९२३; शि० : शास्त्री, साहित्य-रत्न; प० : संयुक्त संपादन, साप्ताहिक 'नवयुग' (दिल्ली); सहायक संपादक 'दैनिक हिंदुस्तान'; त्रैमासिक 'आलोचना'; र० : 'दिनकर : सृष्टि और दृष्टि', 'राजधानी के कवि', 'काव्यधारा', 'शांति-लोक', 'साहित्यकार का दायित्व', 'गांधीजी का राम-राज्य', 'आदमी के विकास की कहानी', 'शबरी', 'मिर्जा गालिब' आदि (संपा०); 'मौत से पहले' (काव्य), 'प्रगति और प्रयोग' (आलोचना)।

खरे, नर्मदाप्रसाद

ज० : ६ अक्तूबर १९१३; जबलपुर; पि० : मथुरा-प्रसाद खरे; प० : प्रारंभ 'प्रेमा' से तदुपरांत उसी में सहकारी संपादक; संपादक 'शुभचिंतक'; मासिक 'युगारंभ' एवं प्रहरी; र० : 'स्वर पाथेय', 'ज्योति-गंगा' 'महक उठे शूल', 'गांधी को रोते देखा', 'मरण-त्यौहार का गायक', 'चार चिनार दो गुलाब', 'बर्फ में दबी आग'; 'साहित्य जगत के विनोबा बख्शी जी', 'कुछ कांटे कुछ फूल' अनेक पुस्तकें पुरस्कृत; वि० : म० प्र० के मान्य लेखक, पत्रकार और प्रकाशक; प्रादेशिक हिंदी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष; नि० : १२ दिसंबर १९७५; जबलपुर।



खाडिलकर. रामकृष्ण रघुनाथ



ज० : १९१४; **शि०** : बी० एस-सी०; **प०** : पत्रकारिता की दीक्षा पराड़करजी से (१९३६), 'केसरी' तथा 'आज' में कार्य; संपादक 'खबर' (१९४२), 'संसार' (बंबई, १९४३), 'अधिकार' (लखनऊ, १९४४), गर्देजी की छत्रछाया में उप-संपादक 'नवजीवन' (१९४७); प्रधान संपादक 'आज' (१९५६—जून ५९); **र०** : राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत कविताएं 'अंतरिचे बोल', 'गणरासाय-प्रार्थना', 'मानवाम उपदेश', 'क्रांतिकारकाचे पुगण', 'दिवाली', 'जुनें वर्ष', 'आधुनिक पत्रकार कला', 'गंगा की आधुनिक कहानी', 'यूरोप के दो सिपाही', 'गांधी हत्याकांड' तथा कई यात्रा-वृत्तांत; **भा०** : हिंदी, मराठी, अंग्रेजी; **या०** : अठारह समाचार-यात्राएं; दो बार विदेश भ्रमण । **वि०** : अहिंदी भाषी होते हुए भी हिंदी के मूर्धन्य पक्षधर, **नि०** : २८ फरवरी १९६०; लखनऊ ।

खत्री, बाबू कार्तिक प्रसाद



ज० : मिति अगहन बदी ७, संवत् १९०८ (रविवार, ३० नवंबर १८५१ ई०); कलकत्ता; **पि०** : श्री बलदेवप्रसाद; **शि०** : एंट्रेंस, वैद्यक-विद्या का ज्ञान भी अर्जित किया ; **प०** : संपादक हिंदी-दीप्ति-प्रकाश' (साप्ताहिक, कलकत्ता, सन् १८७२ ई०); 'प्रेम-विलासिनी' (मासिक, कलकत्ता, सन् १८७१ ई०); सहयोगी संपादक 'भारत जीवन' (बाबू रामकृष्ण वर्मा का पत्र); 'सरस्वती' पत्रिका के प्रथम वर्ष के पांच संपादकों में से एक; **र०** : 'नंदकोष'; 'सारस्वत दीपिका', 'रेल का विकट खेल' (नाटक); 'इला', 'प्रमीला', 'जया', 'मधु-मालती' आदि (बंगला से अनूदित उपन्यास); लगभग २० पुस्तकें, **भा०** : हिंदी, संस्कृत, बंगला, अंग्रेजी; **वि०** : कलकत्ता में हिंदी पत्रकारिता की आधारशिला रखने वाली विभूतियों में से एक; कलकत्ता में लोगों के घरों में जा-जाकर अपने पत्रों के समाचार पढ़-पढ़कर सुनाकर हिंदी पत्रों के पाठक तैयार करने का स्तुत्य प्रयास, नागरी प्रचारिणी सभा की उन्नति में भारी योगदान । **नि०** : ९ जुलाई १९०४; काशी ।

खत्री, बाबू ठाकुरप्रसाद



ज० : १८६५, काशी; पि० : बाबू विश्वेश्वरप्रसाद, शि० : एंट्रेंस; **प०** : पुलिस अधिकारी का पद त्याग कर साहित्यिक रुचि होने के कारण हिंदी-सेवा की ओर उन्मुख हुए; संपादन 'विनोद वाटिका' (काशी मासिक), 'व्यापारी और कारीगरी' (मासिक, फिर द्विमासिक, १९०८), सरकारी सहयोग मिलने पर इस पत्र का 'सनअत व हिरफत सुमानिक मुतहद.' नाम से उर्दू संस्करण भी निकाला। 'जमींदार' (मासिक, १९११); **र०** : व्यापारिक उपयोग में आने वाली कई पुस्तकों की रचना की। प्रमुख हैं— 'लखनऊ की नवाबी', 'सुनारी', 'देशी करघा', 'सुघर दर्जिन', 'जगत व्यापारिक पदार्थ कोष', 'हिंदुस्तान के ढोर डागर, उनकी जातियां और गुण' आदि; **भा०** : हिंदी, उर्दू, फारसी, अंग्रेजी, बंगला, गुजराती आदि, **वि०** : हिंदी की वाणिज्य-व्यवसाय पत्रकारिता के अग्रदूत; **नि०** : श्रावण शुक्ला १३, संवत १९७४ (१९१७ ई०)

खत्री, दुर्गाप्रसाद



ज० : ३१ अक्तूबर १८९०; लाहौरी टोला, काशी; **पि०**: बाबू देवकीनंदन खत्री; **शि०**: १९१२ में स्कूल लीविंग सर्टिफिकेट परीक्षा विज्ञान एवं गणित लेकर विशेष योग्यता के साथ; **प०** सहकारी संपादक, 'भारत जीवन' (काशी, साप्ताहिक, १९१३-१४), संपादक 'लहरी' (काशी, मासिक, १९०९-७३); संचालन एवं संपादन 'रणभेरी' काशी १९२९; यह साइक्लोस्टाइल्ड भूमिगत पत्र था; **र०** : तीन दर्जन से अधिक; प्रमुख हैं—'भूतनाथ', 'रक्त मंडल', 'सुफेद शैतान', 'प्रतिशोध', 'माया', 'कलंक कालिमा', 'लाला पंजा' आदि; **भा०** : हिंदी, उर्दू, फारसी, संस्कृत, अंग्रेजी; **वि०** : स्वतंत्रता-संग्राम के सक्रिय सेनानी; कई बार जेल-यात्राएं; हिंदी में वैज्ञानिक उपन्यासों के प्रवर्तक; **नि०** : ५ अक्तूबर १९७३; काशी।

खत्री, बाबू देवकीनंदन



ज० : आषाढ़ कृष्ण सप्तमी, संवत् १६१८ (१२ जून १८६१ ई०); मुजफ्फरपुर; पि० : लाला ईश्वरदास, शि० : घर में ही; स्वाध्याय; प० : संपादक और व्यवस्थापक 'साहित्य सुधा निधि' (मासिक; मुजफ्फरपुर (बिहार); १ जनवरी १८६३); संपादन-सहयोग, 'सुदर्शन' (मासिक, काशी, १६००) इसके संपादक पं० माधवप्रसाद मिश्र थे; र० : आपने लगभग १३ उपन्यासों की रचना की, जिनमें से सुप्रसिद्ध हैं—'चंद्रकांता' (चार भाग), 'चंद्रकांता संतति' (२४ भाग), 'नौलखा हार', 'नरेंद्र मोहनी', 'कुसुम कुमारी', 'वीरेंद्र वीर', 'काजर की कोठरी', 'लैला मजनू', 'अनूठी बेगम', 'भूतनाथ (सात भाग), 'गुप्त गोदना' (अपूर्ण) आदि; भा० : संस्कृत, हिंदी, उर्दू, फारसी; वि० : अपने रोचक उपन्यासों द्वारा हिंदी के लाखों पाठक तैयार किये; नि० : १ अगस्त १६१३।

गर्दे, लक्ष्मण नारायण



ज० : संवत १६४६, काशी; पि० नारायणराव गर्दे; शि० : १०वीं कक्षा, काशी और झांसी में। स्वाधीनता संग्राम में भाग लेने के कारण पढ़ाई छूट गयी। प० : मराठा; 'केसरी' एवं 'वेंकटेश्वर समाचार' से पत्रकारिता की ओर अभिरुचि और 'हिंदी बंगवासी' में काम। उसके बाद 'भारतमित्र' (कलकत्ता), 'श्रीकृष्ण संदेश' (कलकत्ता), 'नवनीत' (काशी), 'नवजीवन' (लखनऊ) आदि का संपादन। दैनिक 'सन्मार्ग' (काशी) तथा साप्ताहिक 'संसार' (काशी) में नियमित लेखन; र० : 'नकली प्रोफेसर', 'मियां की करतूत'; 'महाराष्ट्र रहस्य', 'सरल गीता', 'जापान की राजनीतिक प्रगति', 'एशिया का जागरण', 'गांधी सिद्धांत', 'जेल में चार मास', 'सरल गीता' आदि। अनेक अनुवादित तथा संपादित पुस्तकें भी; भा० : हिंदी, मराठी, बंगला, अंग्रेजी; वि० : 'भारत मित्र' के विख्यात संपादकों में से एक; अध्यक्ष 'बिहार पत्रकार सम्मेलन', 'काशी पत्रकार संघ', 'राष्ट्र-कवि परिषद' (काशी); कलकत्ता जिला कांग्रेस के अध्यक्ष तथा जेल-यात्रा भी की; नि० : २३ जनवरी १६६०।

गहमरी, गोपालराम



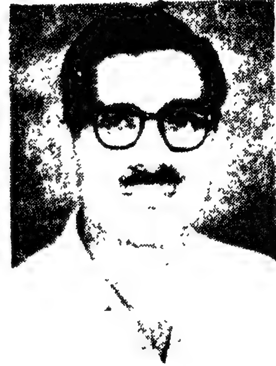
ज० : पौष कृष्ण ८, गुरुवार, संवत् १९२३ (सन् १८६६); बारा (जिला गाजीपुर); **पि०** : रामनारायण; **शि०** : नार्मल परीक्षा, प्रथम श्रेणी; **प०** : संपादक, 'भारत भूषण' (बंबई, साप्ताहिक, १८९३) केवल छह मास; सहकारी संपादक 'साहित्य सरोज' (मेरठ, पाक्षिक; १ दिसंबर १८९५); 'गुप्त कथा' (प्रथम हिंदी जासूसी मासिक पत्र, मेरठ); 'बिहार बंधु' (पटना, १९०७ से १९०९ तक); स्थानापन्न संपादक, 'भारत मित्र' (कलकत्ता, साप्ताहिक) में १८९९ में कुछ माह तक; सहकारी संपादक, 'वेंकटेश्वर समाचार' (बंबई १८९७ से १८९९), 'दैनिक हिंदोस्थान' (कालाकांकर, १८८९ से १८९०); 'व्यापार-सिंधु' (मासिक बंबई), १८९१ में पुनः बंबई गये और इस पत्र का केवल एक मास तक संपादन किया। 'जासूस' (मासिक पत्र, गहमर से स्वयं प्रकाशित किया जो १९०० से १९३९ तक चला); **र०** : जासूसी और सामाजिक गद्य-पद्यमयी लगभग पौने चार सौ पुस्तकें। कुछ प्रमुख ये है : 'अजीब लाश', 'डबल जासूस', 'संन्यासी', 'केतकी की शादी'; 'हीरे का मोल', 'मायावी', 'काम-रूप का जादू' (बंगला से अनूदित जासूसी उपन्यास), 'चतुर चंचला', 'आशा', 'नये बाबू' आदि (सामाजिक मौलिक उपन्यास); 'अमरसिंह', 'खून', 'संदेह-भंजन' आदि (ऐतिहासिक मौलिक उपन्यास); 'जन्मभूमि', 'बभ्रुवाहन' (ऐतिहासिक मौलिक नाटक); 'इच्छा शक्ति', 'मोहिनी विद्या' (मौलिक, मेस्मेरिजम संबंधी); 'सोना शतक', 'वसंत विकास', 'चित्रांगदा' (मौलिक काव्य); 'प्लेग का वक्तव्य', 'रंग की बातें' आदि (व्यंग्य-विनोद); **भा०** : हिंदी, बंगला, संस्कृत, उर्दू, अंग्रेजी; **वि०** : गहमरी जी के जासूसी कथा-साहित्य ने अपने लोमहर्षक जासूसों के अद्भुत कारनामों से लाखों पाठकों को रिझाया; **नि०** : १९४६ ई०।

गंगाशरणसिंह



ज० : १९०५ ई०; ग्रा० : खड़गपुर, जिला पटना; पि० : रामप्रसादसिंह; शि० : साहित्यरत्न; प० : संपादक, मासिक 'युवक' (पटना, १९२८), साप्ताहिक 'जनता' (पटना, १९३६), 'जनवाणी' (काशी, १९४६-४७), अंग्रेजी साप्ताहिक 'एवरीमैन' (दिल्ली, १९७४); र० : अनेक विधाओं की स्फुट रचनाएं सभी स्तरीय पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित; भा० : हिंदी, संस्कृत, बंगला, उर्दू, गुजराती, अंग्रेजी; वि० : स्वाधीनता सेनानी; कई बार जेल-यात्राएं; लोकनेता; अनेक हिंदी संस्थाओं के माध्यम से अहिंदी-भाषी प्रांतों तथा केंद्रीय सरकार के कार्यालयों में हिंदी का उत्तरोतर अधिक व्यवहार कराने में तत्पर।

गांधी, धर्मवीर



ज० : १ अक्तूबर १९२५; जौरा करनाना (पाकिस्तान); पि० : सी० एल० गांधी; शि० : बी०ए०; प० : संपादक, 'हिंदुस्तान समाचार' संवाद समिति (१९४९-५४), साप्ताहिक 'साक्षी', 'समाचार भारती' (१९६९ से अब तक); र० : 'समाचार भारती' के संदर्भ-ग्रंथ 'देश और दुनिया' का संपादन; भा० : हिंदी, अंग्रेजी, उर्दू, पंजाबी; या० : जापान, सोवियत संघ, हंगरी, पोलैंड तथा यूरोप के कई देश।

'गिरीश', गिरिजादत्त शुक्ल



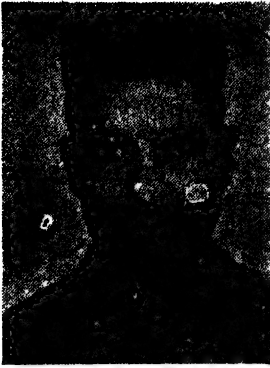
ज० : १८६६ जौनपुर (उत्तर प्रदेश); पि० : महेश-दत्त शुक्ल; शि० : स्नातक, इलाहाबाद वि० वि०; प० : सहायक संपादक 'श्री शारदा' (जबलपुर, १६२३), संपादक 'मनोरमा' (इलाहाबाद, १६२५), 'बाल-सखा' (१६२६), संपादक एवं प्रकाशक 'प्रेम-पत्र' (१६३३), 'वनलता' 'अरुणोदय', 'ग्रहवाणी' (१६५०); संपादक 'विद्यार्थी (१६५२); र० : 'महाकवि हरिऔध', 'गुप्तजी की काव्यधारा', 'आचार्य रामचंद्र शुक्ल', 'तारक-वध', 'बाबू साहब', 'जगद्गुरु', 'प्रोफेसर', 'विद्रोह', 'पंडाजी', 'लंबोदर त्रिपाठी' एवं 'बहता पानी' उल्लेखनीय; भा० : हिंदी, बंगला, अंग्रेजी; वि० हिंदी साहित्य सम्मेलन के माध्यम से आजीवन निस्पृह सेवा; नि० : १६५६ ।

गुप्त, जितेंद्र



ज० : १२ मई १६३२; मुसाफिरखाना, जि० सुलतानपुर (उत्तर प्रदेश); शि० : एम० ए० (अर्थशास्त्र, इलाहाबाद वि० वि०), साहित्यरत्न; प० : सितंबर १६५५ से आरंभ, अनुवादक, हिंदी एकक, समाचार सेवा विभाग, (नयी दिल्ली, १६५७-६५); उप-संपादक, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, दिल्ली; 'इस दौरान 'योजना', 'भारतीय समाचार', 'आकाशवाणी' और 'इंडियन ऐंड फारेन रिव्यू' (अंग्रेजी पाक्षिक) से संबद्ध; फरवरी १६६५ से 'दिनमान' में मुख्य उप-संपादक और जनवरी १६६६ से सह-संपादक; भा० : हिंदी, अंग्रेजी; वि० : 'दिल्ली जर्नलिस्ट एसोसिएशन' (एन० यू० जे० से संबद्ध) के सचिव (१६७४-७५) और महासचिव (१६७५-७६) ।

गुप्त, गंगाप्रसाद



ज० : पौष शुक्ला अष्टमी, संवत् १९४२ (जनवरी १८८६ ई०); काशी; **पि०** : बाबू माताप्रसाद; **शि०** : प्रारंभ में घर पर ही स्वाध्याय; **प०** : संपादक 'मित्र' (काशी मासिक, १९०३), 'भारत जीवन' (साप्ताहिक, काशी, १९०४), 'इतिहास माला' (काशी, मासिक, १९०५), प्रधान संपादक 'हिंदी केसरी' (नागपुर, साप्ताहिक १९०७), १९१४ में काशी से स्वयं ही 'हिंदी केसरी' का संपादन-संचालन; 'श्री वेंकटेश्वर समाचार' (बंबई) के १९०७ के अंत में सहकारी संपादक बने; संपादक, 'मारवाड़ी पत्र' (नागपुर, १९०९) 'हिंदी साहित्य' (काशी, मासिक), 'नवयुग' (कानपुर, अर्द्ध-साप्ताहिक); **र०** : इतिहास, यात्रा, जीवनियां, नाटक, उपन्यास आदि अनेक विधाओं में मौलिक एवं अनूदित पुस्तकें लिखीं; 'नूरजहां' (प्रथम पुस्तक), 'लंका टापू की सैर', 'तिब्बत वृत्तांत', 'भारत का इतिहास', 'सिखों का साहस', 'डाक्टर बर्नियर की भारत-यात्रा', 'रामाभिषेक नाटक', 'लक्ष्मी देवी', 'पूना में हलचल', कर्नल टाड-कृत 'टाड-राजस्थान' (पूर्वार्ध का अनुवाद, जो पांच खंडों में छपा) विशेष उल्लेखनीय; **भा०** : हिंदी, उर्दू, संस्कृत, बंगला, मराठी, गुजराती, अंग्रेजी आदि; **वि०** : उच्च कोटि के पत्रकार, इतिहासवेत्ता, साहित्यकार। संपन्न व्यवसायी परिवार से संबद्ध होने पर भी मृत्युपर्यंत साहित्य-सेवा ही जीवन का प्रथम ध्येय रखा।

गुप्त, टेकचंद



ज० : १० दिसंबर १९२७; ग्राम कौल, जि० कुरुक्षेत्र (हरियाणा); **पि०** : मीरीमल गुप्त; **शि०** : मैट्रिक, साहित्यरत्न, साहित्यालंकार; **प०** : सह-संपादक, 'अखंड भारत' (देहरादून, १९५०); १९५६ में इसी के संपादक; संपादन 'साधना' (देहरा०, मासिक, १९५७), 'देहरा समाचार' (देहरा० १९५८), 'दैनिक शिवालिक टाइम्स', 'देहरा० पत्रिका' (१९६४ से अब तक); **र०** : लगभग एक दर्जन पुस्तकें; **भा०** : हिंदी, अंग्रेजी, बंगला, उर्दू, पंजाबी।

गुप्त, डा० परमानंद

ज० : १९३६ : दादूपुर नीला, जिला बुलंदशहर (उ० प्र०); शि० : एम० ए० (हिंदी), पी-एच० डी०; प० : संपादक, 'राजीव', 'ज्योत्स्ना', 'सप्तांशु' (बेंगलौर), र० : 'साहित्य समीक्षा के आधार', 'आधुनिकता और हिंदी कहानी', 'परिवेश', 'समवेत', 'परंपरा', 'सांप्रतिक हिंदी कहानी', 'आधुनिक हिंदी उपन्यास के स्वर'; भा० : हिंदी, गुजराती, अंग्रेजी; वि० : अहिंदी भाषी क्षेत्र में हिंदी के प्रचार-प्रसार में निरत।

गुप्त, पूणचद्र



ज० : २ जनवरी १९१२, कालपी, शि० : मैट्रिक (कानपुर), राष्ट्रीय आंदोलन मे भाग लेने के कारण शिक्षा में व्यवधान, प० : साप्ताहिक 'स्वतंत्र' का प्रकाशन (१९४०), प्रकाशक दैनिक 'जागरण' (झांसी, १९४२; कानपुर, १९४७; गोरखपुर, १९७५), अंग्रेजी दैनिक, 'एक्शन', 'कंचनप्रभा' हिंदी मासिक (१९७४); र० : 'जागरण' प्रतिष्ठान से प्रकाशित होने वाले पत्रों, पत्रिकाओं मे हजारों लेख, या० : कई बार विश्व-भ्रमण; वि० : सदस्य इंडियन एंड ईस्टर्न न्यूज पेपर्स सोसाइटी, निदेशक एवं अध्यक्ष 'प्रेस ट्रस्ट आफ इंडिया'।

गुप्त, बालमुकुंद



ज० : कार्तिक शुक्ल ४, वि० सं० १६२२ (१८६५ ई०), गुड़ियानी, हरियाणा; पि० : लाला पूरनमल; शि० : मिडिल (१८८६), उच्च शिक्षा में व्यवधान; प० : पं० दीनदयालु शर्मा के पत्र 'मथुरा अखबार' (वृंदावनधाम) में लेख से आरंभ; दीनदयालुजी की सलाह पर 'अखबारे चुनार' (१८८६, चुनार) का संपादन; संपादक 'कोहेनूर' (लाहौर, १८८८); संपर्क 'हिंदोस्थान' (१८८६), सहकारी संपादक 'हिंदी बंगवासी' (१८६२-६); प्रधान संपादक 'भारतमित्र' (१८६६-१६०७); र० : 'रत्नावली नाटिका', 'हरिदास', 'हिंदी भाषा', 'स्फुट कविता'; 'बालमुकुंद गुप्त निबंधावली' (संपादित); भा० : हिंदी, उर्दू, फारसी, बंगला, अंग्रेजी; वि० : निर्भीक और तेजस्वी पत्रकारिता के अग्रदूत; 'भारतमित्र' को 'अपने समय का सर्वप्रधान हिंदी समाचार-पत्र' बनाया; हिंदी गद्य और व्यंग्य-साहित्य के आलोक स्तंभ; अनेकों राष्ट्रव्यापी साहित्यिक विवादों के जनक; नि० : १८ सितंबर १६०७; दिल्ली ।

गुप्त, मन्मथनाथ



ज० : ८ नवंबर १६०८; वाराणसी; पि० : वीरेश्वर गुप्त; शि० : मैट्रिक, स्वाधीनता संग्राम में पढ़ाई छूटी; प० : १६३८ में अखबारों में लिखना आरंभ; १६४८ में 'बालभारती' (दिल्ली, मासिक) के संपादक; 'योजना' (दिल्ली) के आदि संपादक; संपादक 'आजकल' (दिल्ली, मासिक) कई वर्ष; र० : लगभग १०० पुस्तकें। प्रमुख हैं—'भारत में सशस्त्र क्रांति चेष्टा का इतिहास', 'क्रांतिकारी के संस्मरण', 'प्रगतिवाद की रूपरेखा', 'साहित्य, कला और समीक्षा', कथाकार 'प्रेमचंद'; भा० : हिंदी, बंगला, उर्दू, संस्कृत, अंग्रेजी, रूसी, फ्रांसीसी, गुजराती, मराठी, उड़िया, असमिया; वि० : स्वाधीनता-सेनानी; लगभग २० वर्ष जेल में बिताये; काकोरी षड्यन्त्र केस के प्रमुख अभियुक्त ।

गुप्त, मोहनलाल



ज० : ज्येष्ठ कृष्ण द्वितीया, संवत १९७१, काशी; **शि०** : एम० ए० (हिंदी) प्रयाग वि० वि०; **प०** : १९४३ में 'आज' से प्रारंभ; साप्ताहिक संपादक, 'संसार'; १९४७ से पुन: दैनिक 'आज' में; १९५० से अब तक 'आज' के साहित्य-संपादक; **र०** : 'दो काली-काली आंखें', 'अनदेखे चित्र अनबोले चेहरे', 'मखमली जूती', 'चिरकुमारी सभा' आदि। 'राम भरोखा', 'अरबी न फारसी', 'बनारसी रईस' आदि व्यंग्य रचनाएं, **भा०** : हिंदी, अंग्रेजी।

गुप्त, शिवप्रसाद



ज० : १८८३ ई०, काशी; **शि०** : बी० ए० **प०** : हिंदी में श्रेष्ठ साहित्य की रचना के लिए ज्ञानमंडल की स्थापना, राष्ट्रीय दैनिक 'आज' का प्रकाशन; (१९२०) गुप्तजी के प्रभाव से श्री श्रीप्रकाश तथा पराड़करजी 'आज' में आये, संपूर्णानंदजी के संपादकत्व में अंग्रेजी दैनिक 'टुडे' शुरू करवाया, ज्ञानमंडल से 'मर्यादा' तथा स्वार्थ' जैसी उत्कृष्ट पत्रिकाओं का प्रकाशन, काशी विद्यापीठ की स्थापना तथा काशी हिंदू वि० वि० के श्रीगणेश में योगदान; **या०** : १९१४ में प्रथम विदेश-यात्रा, छह महीने में पृथ्वी-प्रदक्षिणा करने की लालसा, जो २१ महीने में पूरी हुई, मिस्र, इंग्लैंड, आयरलैंड, अमेरिका, जापान, कोरिया, चीन, सिंगापुर आदि देशों का भ्रमण; **वि०** : हिंदी पत्रकारिता को आधुनिक स्वरूप देने और उसे अंग्रेजी के समकक्ष लाने में आपने कठोर श्रम-साधना की।

गुप्त, शोभालाल



ज० : ८ सितंबर १९०४, बिजौलिया (मेवाड़), उदयपुर; शि० : केवल सातवीं कक्षा तक पढ़ पाये; प० : संपादक, 'तरुण राजस्थान'; सह-संपादक, दैनिक 'हिंदुस्तान' (दिल्ली, १९४०-७०); वि० : 'तरुण राजस्थान' के संपादक के नाते २० वर्ष की आयु में (१९२४) एक वर्ष की जेल; बिजौलिया आंदोलन में सक्रिय।

गुप्त, सत्येंद्रकुमार



ज० : ३ अप्रैल १९१८, वाराणसी; शि० : काशी हिंदू वि० वि० तथा इंग्लैंड मे; प० : व्यवस्थापक ज्ञानमंडल तथा 'आज' (१९४२); संपादक 'आज' (१९५९ से अब तक); र० : ज्ञानमंडल प्रकाशन से हिंदी के अनेक गौरव-ग्रंथों का प्रणयन-प्रकाशन. 'बृहत् हिंदी कोश', 'बृहत हिंदी-अंग्रेजी कोश', 'साहित्य कोश', 'स्वतंत्रता संग्राम' आदि; या० : इंगलैंड, अमेरिका, स्विट्जरलैंड, जापान. मलाया, फिनलैंड आदि; वि० : वर्णमाला एवं देवनागरी लिपि के उत्थान के लिए अनेक महत्वपूर्ण सुझाव; भारतीय ज्योतिष एवं पंचांग तथा भारतीय सौर तिथियों के प्रचार-प्रसार पर बल; पिछले तीन दशकों से 'आज' के माध्यम से हिंदी-सेवा।

गुरु, पं० कामताप्रसाद



ज० : पौष बदी २, संवत् १६३२, परकोटा (म० प्र०); पि० : पं० गंगाराम गुरु; शि० : एंट्रेंस; प० : संपादक 'बालसखा' (इंडियन प्रेस, प्रयाग, १६१८) तथा 'सरस्वती' (इंडियन प्रेस, प्रयाग १६१८); 'शुभचिंतक' (जबलपुर), 'छत्तीसगढ़ मित्र', 'हितकारिणी पत्रिका', 'हिंदी ग्रंथमाला', 'सरस्वती', 'माधुरी', सुधा', 'जबलपुर टाइम्स', 'इंडियन एजूकेशन' आदि पत्रों में अध्ययनपूर्ण एवं गंभीर लेख तथा पद्य रचनाएं प्रकाशित; र० : एक दर्जन से अधिक मौलिक और अनूदित ग्रंथ; विशेष उल्लेखनीय हैं—'सत्यप्रेम', 'भौमासुर-वध', 'पद्य-पुष्पावली', 'सुदर्शन', 'देशोद्धार', 'भाषा-वाक्य पृथक्करण', 'सहज हिंदी रचना', 'हिंदी व्याकरण' इत्यादि; 'हिंदी व्याकरण' विशेष प्रतिष्ठित; भा० : हिंदी, संस्कृत, बंगला, उर्दू, मराठी, फारसी, गुजराती आदि; वि० : श्रेष्ठ वैयाकरण तथा साहित्यिक; मृत्युपर्यंत अनेक हिंदी संस्थाओं से संबद्ध ।

गुरु, रामेश्वरप्रसाद



ज० : १ अप्रैल, रामनवमी, १६१३, जबलपुर; पि० : पं० कामताप्रसाद गुरु; शि० : एम० एस-सी० (गणित); प० : राजनीतिक साप्ताहिक 'प्रहरी' के प्रणेता (जबलपुर १६४८); संपादक 'वसुधा'; संवाददाता 'अमृत बाजार पत्रिका' एवं 'नार्दर्न इंडिया पत्रिका'; र० 'कुमार हृदय' नाम से सैकड़ों कविताएं; या० : सोवियत संघ ।

गुलाबराय, बाबू



ज० : माघ शुक्ल चतुर्थी, सं० १९४४ : छिपैटी, इटावा; पि० : भवानीप्रसाद; शि० : बी० ए० (आगरा कालेज), एम० ए० दर्शनशास्त्र, सेंट जोन्स कालेज, आगरा में अवैतनिक प्राध्यापक, डी० लिट्० (१९५०); प० : संपादक, 'साहित्य संदेश' (१९३३-५८); र० : 'नवरस', 'सिद्धांत और अध्ययन', 'काव्य के रूप', हिंदी 'नाट्य विमर्श', 'साहित्य और समीक्षा', 'हिंदी साहित्य का सुबोध इतिहास', 'अध्ययन और आस्वाद', 'हिंदी काव्य विमर्श', 'ठलुवा क्लब', 'फिर निराश क्यों', 'प्रबंध-प्रभाकर', 'मेरे निबंध', 'कुछ उथले कुछ गहरे', 'राष्ट्रीयता', 'जीवन-पथ', 'आत्म-निर्माण', 'जीवन रश्मियां', 'मन की बातें', 'विद्यार्थी-जीवन', 'तर्कशास्त्र' (३ भागों में), 'कर्तव्यशास्त्र', 'पाश्चात्य दर्शनों का इतिहास', 'बौद्ध धर्म' 'आत्म-कथा—मेरी असफलताएं'; भा० : हिंदी, संस्कृत, उर्दू, अंग्रेजी; वि० : 'साहित्य संदेश' ने हिंदी आलोचना को प्रशस्त एवं परिमार्जित किया; नि० : १३ अप्रैल १९६३।

गुलेरी, चंद्रधर शर्मा



ज० : २५ आषाढ़, संवत् १९४० (जून १८८४ ई०); जयपुर; पि० : पं० शिवराम; शि० : बी० ए० (प्रथम श्रेणी); प्रारंभ में संस्कृत की शिक्षा; प० : जैनवैद्य द्वारा प्रकाशित 'समालोचक' जयपुर, (मासिक १९०२) का संपादन; सहयोगी संपादक 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' (१९२०); र० : 'सम्राट् सिद्धांत', 'लेख माला', 'दी जयपुर आब्जरवेटरी एंड इट्स बिल्डर' (१९०२); भा० : हिंदी, संस्कृत, पाली, प्राकृत, मराठी, उर्दू, अंग्रेजी; वि० : उच्च कोटि के निबंधकार; शिष्य राजकुमारों में हिंदी के प्रति प्रेम उत्पन्न किया; 'उसने कहा था' कहानी के रचयिता; नि० : ११ सितम्बर १९०२।

गोकुलजी, राधामोहन



ज० : १५ दिसंबर १८६५; लाल गोपालगंज, इलाहाबाद; प० : १८९० में प्रतापनारायण मिश्र के 'ब्राह्मण' (कानपुर) से आरंभ, संपादक, 'सत्य सनातन धर्म' (कलकत्ता, १९०८-९), 'प्रणवीर' (नागपुर, १९२१), दैनिक 'नवयुग' (आगरा, १९२३); र० : 'नेपोलियन बोनापार्ट', 'मेजिनी', 'गेरीबाल्डी', 'गुरु गोविंदसिंह', 'देश का धन', 'नीति दर्शन', 'क्रांति का आगमन', 'कम्युनिज्म क्या है ?' वि० : क्रांतिकारी; समाज सुधारक; कई बार जेल-यात्राएं; इनकी स्मृति में अ० भा० हिंदी साहित्य सम्मेलन ने समाज सुधार संबंधी उत्कृष्ट पुस्तक पर 'राधामोहन गोकुलजी पुरस्कार' स्थापित किया।

गोयल, शिवकुमार



ज० : ३१ अक्तूबर १९३८; पिलखुवा (मेरठ); पि० : भक्त रामशरणदास; शि० : इंटर; प० : संपादन, 'युगवार्ता' (फीचर सर्विस), 'हिंदुस्थान समाचार वार्षिकी' (नयी दिल्ली, १९७१ से); प्रारंभ में 'वीर अर्जुन' और 'प्रभात' के संवाददाता; १९६२-६७ तक 'नवभारत टाइम्स' के संवाददाता (पिलखुवा); संसदीय संवाददाता 'हिंदुस्तान समाचार' (नयी दिल्ली), देश के प्रतिष्ठित हिंदी पत्रों में सैकड़ों लेख, फीचर, टिप्पणियां; र० : 'हिमालय के प्रहरी' (पुरस्कृत); 'हमारे वीर जवान', 'माटी है बलिदान की' 'वीर सावरकर', 'विवेकानंद' आदि; भा० : हिंदी, अंग्रेजी; वि० : धार्मिक-आध्यात्मिक विषयों तथा क्रांतिकारियों पर विशेष लेखन।

गोस्वामी, किशोरीलाल



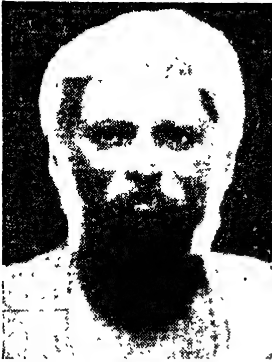
ज० : माघ कृष्ण अमावस्या, संवत् १९२२ (जनवरी १८६६); वृंदावन; **पि० :** वासदेवलाल गोस्वामी; **शि० :** घर पर ही संस्कृत, व्याकरण, वेदांत, न्याय सांख्य, योग, ज्योतिष एवं आचार्य तक के साहित्यिक ग्रंथों का गहन परायण किया; **प० :** संपादक, 'वैष्णव सर्वस्व' (वृंदावन, मासिक, १९११), 'बाल प्रभाकर' (बनारस, १९०६), 'सरस्वती' (१९००) के पांच आदि संपादकों में से एक; हिंदी के अन्य सभी सम-सामयिक पत्रों में लगभग ६०० निबंध-लेख; **र० :** लगभग दो सौ पुस्तकें; २७ कविता ग्रंथ, ११ गाने की पुस्तकें, ११ विविध विषय, १५ धार्मिक, २५ जीवन-चरित, २५ नाटक-रूपक, ६५ उपन्यास, ७ संस्कृत में; कुछ कृतियां ऐसी भी हैं जिनका प्रकाशन ही नहीं हो पाया; जैसे—'किशोरी सतसई' आदि; **भा० :** हिंदी, संस्कृत, बंगला, उर्दू, फारसी आदि; **वि० :** भारतेंदु-युग एवं द्विवेदी-युग के मध्य की विलक्षण कड़ी के रूप में प्रतिष्ठित; 'आर्य पुस्तकालय' (आरा, १८८१), 'सुदर्शन प्रेस' (मथुरा, १९१३) तथा 'काशी नागरी प्रचारिणी' के आदि संस्थापकों में से एक; 'अखिल भारतीय हिंदी साहित्य सम्मेलन' सभापति; **नि० :** १९३२ ई०; काशी।

गोस्वामी, चिम्मनलाल



ज० : आषाढ़ कृष्ण नवमी, सं० १९५७ : बीकानेर; **शि० :** एम० ए० (संस्कृत, दर्शन) काशी हिंदू वि० वि०, अनेक विद्यालयों के प्रधानाचार्य; **प० :** संपर्क गीता प्रेस गोरखपुर (१९२८); संपादक अंग्रेजी 'कल्याण कल्पतरु', 'कल्याण' (१९७२); आपके ही संपादन में कल्याण के रामांक, विष्णु अंक और गणेश अंक प्रकाशित हुए; **र० :** 'रामचरित मानस', 'श्रीमद-भागवत महापुराण', 'बालमीकि रामायण' आदि ग्रंथों का अंग्रेजी में अनुवाद; **भा० :** हिंदी, संस्कृत, अंग्रेजी; **वि० :** 'कल्याण' के माध्यम से हिंदी तथा हिंदू धर्म की सेवा; **नि० :** ५ मई १९७४।

गोस्वामी, राधाचरण



ज० : फाल्गुन कृष्ण ५, संवत् १९१६ (२५ फरवरी १८५९); वृंदावन; पि० : कवि श्री गल्लूजी महाराज; शि० : वृंदावन एवं फर्रुखाबाद में विभिन्न आचार्यों द्वारा स्वतंत्र रूप से संस्कृत, व्याकरण, छंद एवं धर्म-ग्रंथों का पारायण; माता-पिता से भी शिक्षा प्राप्त की; प० : 'हिंदू बाधव' (लाहौर) में आरंभ; संपादन 'भारतेंदु' (मासिक, २२ अप्रैल १८८३-८६); र० : सभी विधाओं में तीस से अधिक मौलिक और अनूदित पुस्तकें, प्रमुख कृतियों में—'दामिनी दूतिका', 'शिशिर सुषमा', 'राधारमण पद-मंजरी', 'शृंगार तिलक' 'विधवा विपत्ति', 'सौदामिनी', 'रेलवे स्तोत्र', 'मूषक स्तोत्र', 'विदेश यात्रा विचार', 'विधवा विवाह विवरण' आदि; भा० : हिंदी, संस्कृत, अंग्रेजी, बंगला, मराठी, गुजराती, उर्दू; वि० : 'भारतेंदु मंडली' के मूर्द्धन्य साहित्यकार; लार्ड रिपन द्वारा सन् १८८३ में बिठाये गये 'शिक्षा कमीशन' में उर्दूवालों के बाहुल्य पर जब हिंदी की रक्षा हेतु राष्ट्रव्यापी आंदोलन उठा तो आपने हिंदी के समर्थन मे २१ हजार व्यक्तियों के हस्ताक्षर भिजवा कर इस आंदोलन में अविस्मरणीय भूमिका निभायी; 'विद्यावागीश' एवं 'हिंदी के बाणभट्ट' की उपाधियों से अलंकृत; १९२४ में देहरादून मे आयोजित पंद्रहवें 'अखिल भारतीय हिंदी साहित्य सम्मेलन' के सभापति; नि० : २० दिसंबर १९२५ ।

गौड़, रामदास

ज० : १८८१; जौनपुर (उ० प्र०): शि० : बी० ए०; प० : अनेक वर्ष 'विज्ञान परिषद्' (प्रयाग, मासिक) तथा 'विज्ञान' का संपादन किया; र० : 'हिंदुत्व', 'विज्ञान हस्तामलक', 'वैज्ञानिक अद्वैतवाद', 'रामचरितमानस' का पाठ-शोधन तथा अन्य कई पुस्तकें: नि० १९३७ ।



गौरीदत्त, पंडित



ज० : पौष सुदी २, संवत् १८६३ (रविवार, ८ जनवरी १८३७); लुधियाना (पंजाब); पि० नाथू मिश्र (प्रसिद्ध तांत्रिक) ; शि० : प्रारंभ में साधारण पंडिताई की शिक्षा, बड़े होने पर फारसी एवं अंग्रेजी का अच्छा ज्ञान। रुड़की कालेज से बीज-गणित, रेखागणित, सर्वेइंग, ड्राइंग एवं शिल्प आदि की शिक्षा; वैद्यक और हकीमी का भी कुछ अभ्यास। पं० : संपादक, 'देवनागरी गजेट, (मेरठ, मासिक, १८८८); 'देवनागरी प्रचारक' (मेरठ, मासिक, १८८२ ई०); र० : 'गौरी नागरी कोष' तीन पुस्तकें स्त्री-शिक्षा से संबंधित (पुरस्कृत); 'तीन देवों की कहानी' (अंग्रेजी से अनुवाद); वि० : संपूर्ण धन-धान्य नागरी की सेवा में अर्पित कर दिया। नगर-नगर, ग्राम-ग्राम घूमकर आपने देवनागरी के प्रचार और प्रसार के लिए जोरदार व्याख्यान दिये, जिनके फलस्वरूप अनेक नागरी स्कूल खुल गये; मेरठ के सूर्यकुंड पर इस नागरी के मतवाले की समाधि बनी हुई है जिस पर मोटे अक्षरों में अंकित है, 'गुप्त संन्यासी नागरी प्रचारानंद'; नि० : ८ फरवरी १९०६।

'चक्र', सुदर्शनसिंह

ज० : १४ नवंबर १९११; प० : 'संकीर्तन' (मेरठ), 'मानस मणि' (सतना), 'कल्याण', 'ओम' तथा 'परमार्थ', 'विवेकरश्मि' (हरिद्वार); आदि अनेक धार्मिक-आध्यात्मिक पत्रों का संपादन; र० : 'आंजनेय', 'संकीर्तन मीमांसा', 'नव निर्झरणी', 'वीणा के तारों में' आदि।

चक्रवर्ती, पं० अमृतलाल



ज० : १८६३ ई० (आश्विन मास); इलाची ग्राम; (कलकत्ता से ६ कोस दूर); पि० : पं० आनंदचंद्र चक्रवर्ती; शि० : एंट्रेंस; प० : आदि-संपादक 'हिंदी बंगवासी'; संपादक, 'हिंदोस्थान' (कालाकांकर, दैनिक १ नवंबर १८८५ से १८८६ के अंत तक); 'भारत-मित्र' (कलकत्ता, साप्ताहिक, १८७९) के प्रारंभ तक; 'वेंकटेश्वर समाचार' (साप्ताहिक, बंबई) के तृतीय संपादक; संपादक, 'निगमागम चंद्रिका' (हिंदी एवं अंग्रेजी, काशी, मासिक, १९०४); र० : 'सती सुखदेई' 'उपन्यास कुसुम, 'विलायत की चिट्ठी, 'कविता पाठ', 'चंदा' आदि। भा० : बंगला, हिंदी, संस्कृत, अंग्रेजी आदि, वि० : अहिंदी-भाषी होने पर भी हिंदी को राष्ट्रीय एकात्म स्थापित करने का मुख्य आधार मान कर इसकी सेवा में जीवन अर्पित किया। हिंदी समाचार पत्र का महत्व स्थिर करने के लिए अपनी गहरी सूझ-बूझ का प्रयोग किया; समाचारों को तरतीब देकर पत्र को नयी सज्जा दी, साथ ही भाषा का स्तर ऊंचा रखा। हिंदी पत्रकारिता में संपादकीय टिप्पणियों (संपादकीय अग्रलेख) का सर्वप्रथम प्रणयन करने का श्रेय आपको ही है।

चतुर्वेदी, काशीनाथ



ज० : १४ मई १९२४; ग्रा० तरसोखर, जि० भिंड (म० प्र०), शि० : इंटर (वाणिज्य); शास्त्री (काशी, विद्यापीठ); प० : १९४७ में 'स्वतंत्र भारत' लखनऊ से आरंभ; उप-संपादक, 'संघर्ष' (लखनऊ, १९४८); सहायक संपादक, 'जीवन' (ग्वालियर, १९४९), दैनिक 'नवप्रभात' (१९५०), दैनिक 'हमारी आवाज' (१९५६), दैनिक 'निरंजन' (१९६४), प्रधान संपादक, दैनिक 'भास्कर' (ग्वालियर, १९६६); आकाशवाणी संवाददाता, १९६९-७३; सहायक संपादक 'आचरण ग्वालियर' (१९७५); वि० : श्रमजीवी पत्रकार संघ, ग्वालियर के कई बार अध्यक्ष, १९४७ से ६१ तक समाजवादी दल में सक्रिय।

चतुर्वेदी, जगदीशप्रसाद



ज० : २ नवंबर, १९२० ; जगम्मनपुर, जि० जालौन; पि० : कन्हैयालाल चतुर्वेदी; शि० : बी० ए०, एल-एल० बी०; प० : 'एडवांस' (संवाददाता, १९३७) ; संपादक, 'जागृति' और 'ब्रज भारती' (मथुरा, १९३९-४१); सहसंपादक, 'माया' (इलाहाबाद, १९४१-४२), 'मधुकर' (टीकमगढ़, १९४३-४६); 'नवभारत टाइम्स' (१९४७); 'लोक समाचार समिति' (दिल्ली, १९४७-५२); दैनिक 'हिंदुस्तान', आज', 'आर्यावर्त्त' (वि० सं० १९५२-५५); 'आज' के ब्यूरो प्रमुख (दिल्ली, १९५५-६६), 'समाचार भारती' (दिल्ली, ब्यूरो प्रमुख, १९६६-६९); फिर 'आज' के ब्यूरो प्रमुख, १९६९-७३; आजकल 'केसरी' (पूना), 'स्वतंत्र भारत', 'देशबंधु' (भोपाल) के दिल्ली स्थित विशेष संवाददाता; संपादक, 'लोकराज' (दिल्ली, १९७४ से); र० : 'विस्तारवादी चीन के दो हजार वर्ष', हिंद महासागर', आदि; भा० : हिंदी, उर्दू, अंग्रेजी; या० : यूरोप के लगभग सभी देश, सोवियत संघ तथा दक्षिण-पूर्व एशिया के कुछ देश; वि० : पत्रकार आंदोलन में सक्रिय।

•

चतुर्वेदी, जगन्नाथप्रसाद



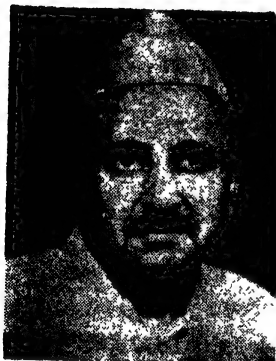
ज० : १४ अक्तूबर, १८७५, ग्रा० छिटका, जि०, कुष्टिया (बंगलादेश); शि० : प्रारंभिक एवं माध्यमिक शिक्षा मलयपुर जमुई तथा मुंगेर में, एफ० ए० के बाद पूर्णरूपेण साहित्य-सेवा में; हिंदी-अध्यापन; प० : बालमुकुंद गुप्त द्वारा 'भारतमित्र' से संपर्क; बंगला मासिक 'भारती' के हिंदी-परामर्शदाता, संपादक 'हितवार्ता'; १४ अप्रैल १८८७ को 'भारतमित्र' के संपादक और प्रबंधक हुए; र० : बंगला से अनूदित उपन्यास 'संसार चक्र', 'वसंत मालती', नाटक 'मधुर मिलन', 'मधुर मुरली', 'तुलसीदास', 'सिंहावलोकन', 'हिंदी लिंग विचार' 'अनुप्रास का अन्वेषण', 'स्वदेशी आंदोलन,' आदि; भा० : हिंदी, उर्दू, फारसी, अंग्रेजी; वि० : भाषा संस्कार की दृष्टि से विशिष्ट सेवाएं; शब्द-चयन, विभक्तियों के प्रयोग में उनकी सूझ-बूझ प्रशंसनीय है; हिंदी साहित्य सम्मेलन (लाहौर) के सभापति; नि० : २ सितंबर १९३९।

चतुर्वेदी, द्वारकाप्रसाद शर्मा



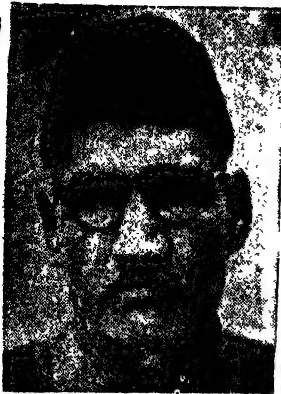
ज० : १८७७ ई०; मुरादाबाद (उ० प्र०); **शि०** : मिडिल, स्वाध्याय; **प०** : संपादक, 'श्री राघवेंद्र', 'श्री यादवेंद्र', 'वैदिक सर्वस्व'; **र०** : सौ से अधिक; उल्लेख्य—'हिंदी शब्दार्थ पारिजात', 'चरितांबुद्धि कोश', 'सुलभ संस्कृत हिंदी कोश', 'राबर्ट क्लाइव', 'वारेन हेस्टिंग्स', 'स्वामी रामानुजाचार्य'; संस्कृत से हिंदी में—'वाल्मीकि रामायण' (दस खंड), 'महाभारत' (दस खंड), 'भर्तृहरिशतक' आदि; **भा०** : हिंदी, संस्कृत, बंगला, अंग्रेजी आदि; **वि०** : 'वारेन हेस्टिंग्स' (१९१०) के प्रकाशन पर अंग्रेज सरकार की नौकरी से निष्कासित; हिंदी साहित्य सम्मेलन के आदि कार्यकताओं में से; 'कलकत्ता समाचार', मैनेजिंग एडीटर; साहित्यवाचस्पति।

चतुर्वेदी, प्रेमनाथ



ज० : ३ चैत्र बदी संवत १९६८ (१९१२ ई०); **शि**: बी० ए० (जयपुर); **प०** : संपादक 'लोकराज' (साप्ताहिक), मुख्य उप-संपादक 'नवभारत टाइम्स, (नयी दिल्ली, १९४७-७३), उसके पूर्व दैनिक 'विश्वमित्र' (कलकत्ता और दिल्ली); **र०** : 'डाक-टिकट संग्रह कला' (पुरस्कृत) और 'समाचार संपादन'; हिंदी साहित्य सभा (महाराजा कालेज, जयपुर) की हस्तलिखित पत्रिका का संपादन (१९३३), हिंदी साहित्य समिति (भरतपुर) के स्वर्ण जयंती ग्रंथ (१९६१) के संपादन में सहयोग, **भा०** : हिंदी, अंग्रेजी; **वि०** : सचिव दिल्ली हिंदी पत्रकार संघ' (१९४९), 'अ० भा० श्रमजीवी पत्रकार संघ' (अनेक बार); अध्यक्ष, 'दिल्ली पत्रकार यूनियन' (१९६५-६७); सदस्य, केंद्रीय प्रेस एक्रेडिटेशन कमेटी।

चतुर्वेदी, बनारसीदास



ज० : २४ दिसंबर १८९२ : फिरोजाबाद (आगरा); पि० : गणेशलाल चौबे; शि० : इंटर (१९१३); हिंदी-अध्यापन; प० : गुजरात विद्यापीठ से त्याग-पत्र (१९२५) के बाद ढाई वर्ष तक स्वतंत्र पत्र-कारिता; संपादक 'विशाल भारत' (१९२८-३७) 'मधुकर' (टीकमगढ़); र० : 'फिजी द्वीप में मेरे २१ वर्ष', 'प्रवासी भारतवासी', 'भारत-भक्त एंड्रूज', 'केशवचंद्र सेन', 'सत्यनारायण कविरत्न', 'गोविंद रानाडे'; 'हमारे आराध्य', 'सेतुबंध', 'क्रोपाटकिन का आत्मचरित',थोरो का 'वाल्डेन' अनुवाद; संयुक्त लेखक अंग्रेजी जीवनी 'दीनबंधु एंड्रूज; या० : सोवियत संघ; वि० : ओरछा नरेश के यहां हिंदी संबंधी कार्य, शांतिनिकेतन तथा दिल्ली में 'हिंदी-भवन' की स्थापना; अखिल भारतीय हिंदी पत्रकार सम्मेलन (मथुरा) तथा श्रमजीवी पत्रकार संघ (मद्रास) के अध्यक्ष, १९१४ से १९३६ तक प्रवासी भारतीयों पर काम, साहित्यसेवियों की कीर्तिरक्षा तथा तरुण साहित्यिकों एवं पत्रकारों के उद्‌बोधन में दिलचस्पी; अपना बहुमूल्य पत्र-संग्रहालय राष्ट्रीय अभिलेखागार को समर्पित; 'बालमुकुंद गुप्त-स्मारक ग्रंथ' के प्रणेता। पद्म-भूषण, साहित्यवाचस्पति, डी० लिट्०, आदि उपाधियां; १९५२ से ६४ तक राज्य-सभा की सदस्यता।

चतुर्वेदी, मदनलाल



ज० : वैशाख शुक्ल दशमी, बुधवार, संवत १९६० वि०: चंद्रपुर, जि० आगरा; पि० : नेकराम चतुर्वेदी शि० : प्रारंभिक शिक्षा (कानपुर); विशारद (काशी विद्यापीठ); 'शास्त्री' करते समय स्वाधीनता संग्राम में कूद पड़े; प० : प्रारंभ 'साप्ताहिक प्रताप' (कानपुर) से; सह-संपादक, दैनिक 'स्वतंत्र' (कलकत्ता, १९२४-२८), दैनिक 'भारतमित्र' (कलकत्ता, १९२९); संवाददाता एवं संपादन भी, 'लोकमान्य' (कलकत्ता, १९३०-७४); दैनिक 'लोकमत' तथा 'दैनिक जीवन' का संपादन भी; र० : 'गीत मंजरी', 'अंजलि'—अप्रकाशित ब्रजभाषा काव्य-संग्रह; सैकड़ों कविताएं और लेख—संस्कृत, हिंदी, अंग्रेजी, बंगला, गुजराती, उर्दू, ब्रजभाषा आदि; वि० : 'लोकमान्य' के माध्यम से अनेक पत्रकार, राजनीतिज्ञ एवं शिक्षाशास्त्री तैयार किये।

चतुर्वेदी, माखनलाल



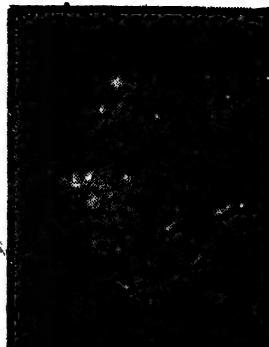
ज० : ४ अप्रैल १८८९; बाबई, जि० होशंगाबाद (म० प्र०); पि० : नंदलाल चतुर्वेदी; प० : संपादक, मासिक 'प्रभा' (खंडवा, १९१३); संपर्क 'प्रताप' (१९१७); संपादक 'कर्मवीर' (जबलपुर, १९१९ से); विद्यार्थीजी के कारावास-काल में एक वर्ष तक 'प्रताप' का संपादन; र० : 'कृष्णार्जुन युद्ध', 'युगचरण', 'समर्पण', 'वेणु लो गूंजे धरा', 'अमीर इरादे गरीब इरादे', 'समय के पांव', 'मरण ज्वार', 'हिम तरंगिनी', 'हिम किरीटिनी', 'चिंतक की लाचारी' आदि ग्रंथों का प्रणयन एवं प्रकाशन (१९१८-६३); वि० : 'कर्मवीर' ने इतिहास लिखा ही नही, इतिहास बनाया भी; अध्यक्ष, मध्यप्रदेश हिंदी साहित्य सम्मेलन (रायपुर, १९३०), साहित्य सम्मेलन की हिंदी परिषद के अध्यक्ष (दिल्ली, १९३४); अध्यक्ष, मध्यप्रदेश हिंदी साहित्य सम्मेलन (कटनी, १९३५); सहयोग एवं नेतृत्व, अखिल भारतीय हिंदी साहित्य सम्मेलन (इंदौर, १९३५); अध्यक्ष, भारतीय हिंदी पत्रकार परिषद (१९३८); 'हिम किरीटिनी' पर 'देव-पुरस्कार' (१९४३); 'हिमतरंगिनी' पर साहित्य अकादमी पुरस्कार (१९५४); सागर वि० वि० मे डी० लिट्० की मानद उपाधि (१९५९); राष्ट्रभाषा संशोधन विधेयक के विरोध में 'पद्मभूषण' की उपाधि का परित्याग (१९६७); अंग्रेजी-शासन में कई बार जेल-यात्रा; नि० : ३० जनवरी १९६८।

चतुर्वेदी, युगलकिशोर



ज० : ७ नवंबर १९०४, सौख (जि० मथुरा); शि० : प्रारंभिक शिक्षा भरतपुर में, पंजाब वि० वि० से बी० ए० तथा हिंदी में 'प्रभाकर'; प० : संपादक 'जागृति' (मासिक, मथुरा, १९४५-४७); 'नवयुग संदेश' (भरतपुर, साप्ताहिक, १९५३-५७), दैनिक 'राष्ट्रदूत' (१९५३-५७), 'लोक-शिक्षक'; वि०: राष्ट्रभाषा हिंदी के प्रचार-प्रसार में विशेष रुचि; स्वाधीनता संग्राम में कई बार जेल-यात्राएं।

चतुर्वेदी, श्रीनारायण



ज० : १८६३ ई० ; इटावा; **पि०** : पं० द्वारकाप्रसाद शर्मा चतुर्वेदी; **शि०** : एम० ए० (इतिहास, इलाहाबाद वि० वि०); टी० डी० (लंदन ट्रेनिंग कालेज); एम० ए० (शिक्षाशास्त्र, लंदन वि० वि०, किंग्स कालेज); **प०** : संपादक, 'सचित्र संवाद' (मासिक), 'सरस्वती' (१९५४-७५), 'सरस्वती' का 'हीरक जयंती अंक', हिंदी 'विश्वभारती'; **र०** : लगभग २० पुस्तकें, प्रमुख—'रत्नदीप', 'मंगलगान', 'जीवनकण'; 'श्री विनोद शर्मा अभिनंदन ग्रंथ', 'आधुनिक हिंदी का आदिकाल', 'छेड़छाड़', 'मनोरंजक संस्मरण', 'उत्तर प्रदेश की ग्राम्य शिक्षा का इतिहास' आदि; अंग्रेजी में दो पुस्तकें; 'दि प्रिंस' और 'क्रीटो' व 'फीडो' का अनुवाद; **भा०** : हिंदी, संस्कृत, अंग्रेजी; **या०** : लगभग संपूर्ण यूरोप; **वि०** : शिक्षा विभाग और आकाशवाणी में अनेक उच्च पद; रायबहादुर और साहित्यवाचस्पति की उपाधियां; 'सरस्वती' के अंतिम संपादक।

चतुर्वेदी, हीरादेवी



ज० : २ मई १९१५; खंडवा (म० प्र०); **पि०** : दुर्गाप्रसाद पाठक; **शि०** : नार्मल स्कूल परीक्षा के बाद शिक्षा में व्यवधान; **प०** : संपादिका, 'मनोरमा' (इलाहाबाद); आपके संपादन काल में मनोरमा के स्तर में आशातीत वृद्धि हुई (१९४८-५०); स्वास्थ्य क्षीण हो जाने के कारण संपादकीय दायित्व से मुक्ति ले ली; **र०** : नौ ग्रंथ प्रकाशित 'नीलम', 'मंजरी', 'मधुमास', 'मधुवन' 'धरती के गीत', 'उलझी लड़ियां', 'रंगीन पर्दा', 'बुंदेली लोकगीत', 'घर की देवी' (अप्रकाशित), संपादित कहानी संग्रह 'गल्प गवाक्ष' आदि; **वि०** : 'मधुमास' और 'उलझी लड़ियां' (पुरस्कृत); आपको पत्रकारिता की प्रेरणा अपने पति देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त' से मिली।

चंद्रकुमार



ज० : २१ जून १६२१; कानपुर; **शि०** : एम० ए० (इतिहास); **प०** : १६४३ से 'देशदूत', 'प्रताप' और 'विश्वमित्र' में स्वतंत्र लेखन से आरंभ; दैनिक 'जयहिंद' में पहले सह-संपादक, फिर संपादक (१६४६); १६४७ से 'आज' में; संप्रति आवासी संपादक 'आज' (कानपुर); **या०** : अमेरिका, इंग्लैंड आदि पत्रकारिता-अध्ययन हेतु; **वि०** : मार्क्सवादी और समाजवादी व्यवस्था, अंतर्राष्ट्रीय राजनीति, विकासमान अर्थव्यवस्था आदि विषयों पर विशेष अध्ययन-लेखन।

चंद्राकर, चंदूलाल



ज० : १ जनवरी १६२०; ग्रा० निपानी, जि० दुर्ग; **पि०** : रामसहाय; **शि०** : बी० ए० (जबलपुर); **प०** : प्रारंभ वाराणसी के दैनिक 'आज' से; उप-संपादक, वित्तीय संपादक, रिपोर्टर—'आर्यावर्त्त' (८ महीने तक); उप-संपादक, विशेष संवाददाता, विशेष प्रतिनिधि 'हिंदुस्तान' (१६४५-७०) संयुक्त संपादक 'हिंदुस्तान' (१६७०-७५), संपादक, 'हिंदुस्तान' (१६७६ से); **भा०** : हिंदी, अंग्रेजी; **या०** : डेढ़ वर्ष तक अफ्रीका के २६ देशों की रोमांचकारी यात्रा; कई महीनों तक लाओस, कंबोडिया, वियतनाम, सिंगापुर, मलेशिया, इंडोनेशिया, जापान, फिलीपाइन, कोरिया आदि देशों का भ्रमण तथा लेख लिखे; कुल मिलाकर १२० देशों का भ्रमण; **वि०** : गांधी-हत्याकांड, संविधान निर्मात्री सभा, ताशकंद भारत-पाक शिखर वार्ता, कांग्रेस के खुले अधिवेशनों तथा सभी महासमिति के अधिवेशनों की रिपोर्टिंग; विश्व ओलंपिकों तथा एशियाई खेलों की रिपोर्टिंग; तीन बार प्रेस एसोसिएशन आफ इंडिया के अध्यक्ष; संसत्सदस्य चौथी और पांचवीं लोकसभा में।

चंदोला, विश्वंभरदत्त



ज० : कार्तिक १७, शनिवार, १९३६ वि० (२ नवंबर १८७९); ग्रा० : थापली, गढ़वाल; पि० : पं० दौलतराम चंदोला; शि० : प्रारंभिक, घर पर ही; प० : संपादक-प्रकाशक, 'गढ़वाली' (देहरादून, साप्ता०, १९०५); वि० : 'गढ़वाली' के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना का उद्बोधन; संपादकीय निर्भीकता के कारण दो बार जेल-यात्राएं; ७० वर्ष तक निरंतर पत्रकारिता से संबद्ध; नि० : १४ अगस्त १९७०; देहरादून।

चौधरी, दुर्गाप्रसाद



ज० : सं० १९६३ में : नीम का थाना (राज०); पि० : मुरलीधर चौधरी; शि० : जयपुर व कानपुर में; प० : संपादक, दैनिक 'नवज्योति' (जयपुर व अजमेर, १९३६ से अब तक); वि० : स्वाधीनता सेनानी, राजाओं के विरुद्ध जनजागृति अभियान में सक्रिय योगदान; कई बार जेल।

चौधरी, हेमंतकुमारी



ज० : द्वितीया आश्विन, संवत् १९२५ (सितंबर १८६८ ई०) लाहौर; **पि० :** बाबू नवीनचंद्र राय। **शि० :** शिक्षा प्रायः कान्वेंट स्कूलों में; घर में पिताश्री द्वारा उत्तम धार्मिक शिक्षा भी; **प० :** संपादिका, 'सुगृहिणी' (रतलाम, मासिक, फरवरी १८८८ ई०); 'अंतःपुर' (सिलहट, बंगला मासिक); **र० :** स्त्री-शिक्षा संबंधी कई महत्वपूर्ण पुस्तकें; प्रमुख हैं—'आदर्श माता', 'माता और कन्या', 'नारी पुष्पावली', 'हिंदी-बंगला प्रथम शिक्षा' आदि; 'आदर्श माता' पर पंजाब सरकार का २०० रु० का पुरस्कार भी; **भा० :** हिंदी, अंग्रेजी, बंगला; **वि० :** हिंदी की सर्वप्रथम महिला पत्रिका की संपादिका; उनके पति राजचंद्र चौधुरी जहां-जहां गये—रतलाम, शिलांग, सिलहट, पटियाला—वहां-वहां स्त्री-शिक्षा और सुधार के लिए संस्थाओं का निर्माण; **नि० :** १९५३ ई०।

छजलानी, अभय



ज० : ४ अगस्त १९३४, इंदौर; **पि० :** लाभचंद छजलानी; **शि० :** इंटर, साइंस (इंदौर); थामसन ग्रेजुएट (कार्डिफ); **प० :** आरंभ 'नई दुनिया' (इंदौर १९५५ से); संप्रति 'नई दुनिया' के वरिष्ठ संपादकों में से एक; **भा० :** हिंदी, अंग्रेजी; **या० :** ब्रिटेन तथा यूरोप के अन्य देश; **वि० :** 'नई दुनिया' को हिंदी का उच्च-स्तरीय समाचार-पत्र बनाने में अथक परिश्रम; साज-सज्जा और मुद्रण-सौंदर्य में निष्णात।

जगतनारायण, लाला



ज० : **३१ मई १८९९** : वजीराबाद, जि० गुजरांवाला (पाकि०); **पि०** : लक्ष्मीदास चोपड़ा; **शि०** : मैट्रिक (१९१५), बी० ए० (१९१९), गांधीजी के आह्वान पर कानून की पढ़ाई छोड़ दी (१९२०); **प०** : संपादक, हिंदी 'आकाशवाणी' (१९२४); संपादक, हिंदी साप्ताहिक 'पंजाब केसरी' (१९३२), दैनिक 'हिंद समाचार' तथा दैनिक 'पंजाब केसरी' के नियमित अग्रलेख लेखक; **वि०** : स्वाधीनता-संग्राम में कई बार जेल-यात्रा; १९५२ में पंजाब के शिक्षा-मंत्री रहे; आर्य समाज के हिंदी आंदोलन का नेतृत्व तथा 'पंजाब केसरी' और 'हिंद समाचार' के संस्थापक।

जंगबहादुरसिंह, राणा



ज० : २ दिसंबर १९०१; **पि०** : श्यामसिंह; **शि०** : बी० ए० (अलीगढ़ वि० वि०), **प०** : उप-संपादक, 'द कामरेड' (दिल्ली, १९२४-२५); संपादक 'द नेशन' (लाहौर, १९२५-२७), सह-संपादक 'द ट्रिब्यून' (लाहौर, १९२७-४५); इसी के संपादक (१९४६-४८); संपादक, 'द नेशनल काल', दैनिक 'नवभारत' (दिल्ली, १९४८-४९), 'द पीपल' (दिल्ली, १९४९-५०); संपादक, 'द टाइम्स आफ इंडिया' (दिल्ली, १९५०-५१); **र०** : 'पतितोद्धार : बारदोली विजय'; 'हिंदुस्तानी संस्कृति' आदि; **या०** : सोवियत संघ, चीन तथा यूरोप के लगभग सभी देश; **वि०** : अनेक पत्रकार संगठनों के पदाधिकारी; सदस्य, दिल्ली राज्य विधानसभा (१९५२-५६)।

जायसवाल, काशीप्रसाद



ज० : अगहन सुदी ६, संवत् १९३८ (बुधवार, १८ अक्तूबर १८८२ ई०), मिर्जापुर; पि० : बाबू महादेव प्रसाद; शि० : एम० ए०, बैरिस्टर; प० : संपादक, 'कलवार गजट' (मिर्जापुर, जातीय मासिक पत्र, १९०६), प्रथम संपादक, 'पाटलिपुत्र' (पटना, मासिक, १९१४); भा० : हिंदी, अंग्रेजी, जर्मन, फ्रांसीसी, चीनी आदि; वि० : कानून, इतिहास, पुरातत्व, अर्थशास्त्र, भाषाशास्त्र आदि विभिन्न विषयों के धुरंधर विद्वान; पत्र-पत्रिकाओं में इतिहास, पुरातत्व, विदेश-यात्रा अनुभव, व्याकरण संबंधी अनेक गवेषणात्मक लेख लिखकर हिंदी का क्षेत्र विस्तृत करने का स्तुत्य प्रयास; नि० : १९३७ ई०।

जायसवाल, जगदीशचंद्र



ज० : १९ अक्तूबर १९१९, आगरा; शि० : मैट्रिक साहित्यरत्न; प०: प्रारंभ दैनिक 'लोकवाणी' (जयपुर १९४६-५१); 'युगांतर' और 'राष्ट्रभाषा' में क्रमशः सह-संपादक तथा संपादक; संबद्ध 'नवप्रभात' (ग्वालियर, १९५२-७०); संप्रति, सपादक, दैनिक 'भास्कर' (ग्वालियर); र० : दो कविता-संग्रह (अप्रकाशित); भा० : हिंदी, अंग्रेजी।

जैन, अक्षयकुमार



ज० : ३० दिसंबर १९१५; विजयगढ़ (अलीगढ़); पि० : दीवान रूपकिशोर; शि० : बी० ए०, इंदौर: एल-एल० बी०, अलीगढ़ वि० वि०; प० : १९३४ में 'अर्जुन' (दिल्ली) तथा 'वीणा' में लेखन और १९३९ में श्री कृष्णदत्त पालीवाल के सान्निध्य में 'सैनिक' (आगरा) से आरंभ; संपादक, 'सुदर्शन' (१९४०), 'वीर' (१९४०-४६), दिसंबर १९४६ से 'नवभारत टाइम्स' (दिल्ली, स्थापना ४ अप्रैल १९४७) में उप-संपादक, संवाददाता, मुख्य उप-संपादक, समाचार-संपादक, विशेष प्रतिनिधि आदि रहते हुए प्रधान संपादक फरवरी १९५५ से अब तक; र० : लगभग २० पुस्तकें; 'परित्यक्ता' (कहानी संग्रह), 'युग पुरुष राम', 'साहसी संसार', 'ईरान की लोक-कथाएं', 'दूसरी दुनिया', 'विश्व के महापुरुष', 'अमिट रेखाएं', 'देश प्रेम की कहानियां' (पुरस्कृत), 'भारत-पाक युद्ध डायरी', 'याद रहीं मुलाकातें', 'याद रहे चेहरे', 'हमारे परम वीर सेनानी' आदि; भा० : हिंदी, उर्दू, फारसी, अंग्रेजी; या० : अमेरिका, सोवियत संघ, ब्रिटेन तथा यूरोप के लगभग सभी देश; पश्चिम एशिया और दक्षिण-पूर्व एशिया के अधिकांश देश; वि० : स्वाधीनता संग्राम में सक्रिय; अखिल भारतीय समाचार-पत्र संपादक सम्मेलन के अध्यक्ष; प्रेस कमीशन के सदस्य; अनेक शासकीय समितियों की सदस्यता; पद्मभूषण, जिसका भाषा-विधेयक के विरोध में परित्याग।

जैन, आनंद

ज० : १६ अक्तूबर १९२७; बाह, जि० आगरा; शि० : बी० ए० (आगरा वि० वि०); प० : उप-संपादक 'विश्वमित्र' (दिल्ली, १९४७), मुख्य उप-संपादक 'नवभारत टाइम्स' (१९४७), समाचार संपादक (१९५५-६०), प्रमुख, समाचार ब्यूरो (१९६० से अब तक); र० : 'चीन की खोज' (१९६०), 'पाकिस्तान की पराजय' आदि; भा० : हिंदी, अंग्रेजी; या० : विश्व के अधिकांश देशों का भ्रमण; वि० : संयुक्त राष्ट्रसंघ की २५वीं वर्षगांठ के विशेष अधिवेशन में एकमात्र संवाददाता; १९६५ और १९७१ में 'नवभारत टाइम्स' के युद्ध संवाददाता।

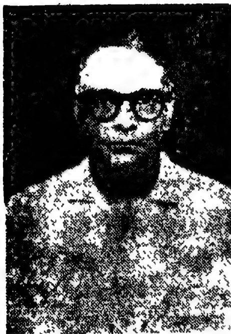


जैन, ईश्वरचंद्र



ज० : ४ सितंबर १९१८; **शि०** : एम० ए०, एल-एल० बी० (इंदौर); **प०** : १९४९ से पत्रकारिता; संपादक, साप्ताहिक 'मजदूर संदेश', आरंभ एवं संपादन दैनिक 'जागरण' (१९५० से अब तक); **या०** : कई बार विदेश-यात्रा; **वि०** : 'जागरण' के माध्यम से मजदूर वर्ग की विशेष सेवा तथा मध्यभारत-क्षेत्र में अनेक श्रेष्ठ पत्रकारों का निर्माण; सदस्य म० प्र० प्रेस सलाहाकार समिति, (१९७५); सचिव, इंदौर दैनिक समाचार-पत्र संघ (१९६९)।

जैन, छगनलाल



ज० : १९२४ : पलासबाड़ी (असम); **पि०** : प्रेमसुख जैन; **शि०** : बी० ए० आनर्स, (गौहाटी) एम० ए० (कलकत्ता वि० वि०, अंग्रेजी, १९४७), बी० एल० (१९४८); **प०** : बीस वर्षों से 'पूर्व ज्योति' (गौहाटी), हिंदी साप्ताहिक का प्रकाशन एवं संपादन; **र०** : 'हंसते-हंसते जीना', 'संघर्ष', 'इंसान की खोज', 'राह और रोड़े', 'ललित बरफुकन' (अनूदित नाटक) आदि, असमिया में : 'एटि प्रश्न' (कहानी-संग्रह), 'संन्यास ने संसार' (नाटक), 'गल्प-संग्रह' (अनुवाद), 'राष्ट्रभाषा अभिधान' (हिंदी-असमिया शब्दकोश) इत्यादि; **भा०** : हिंदी, असमिया, बंगला एवं अंग्रेजी; **वि०** : समाज-सुधार, हिंदी प्रचार व राष्ट्रीयता का प्रसार 'पूर्व ज्योति' का प्रमुख उद्देश्य, असमिया व हिंदी के बीच सेतु-स्थापन का प्रयत्न।

जैन, पारसदास



ज० : १ सितंबर १९२७, वेरनी, जि० एटा, (उ०प्र०); **पि०** : द्वारिकादास जैन; **शि०** : एम० ए० (हिंदी) पंजाब वि० वि०, बी० ए० आनर्स (संस्कृत) पंजाब वि० वि०; **प०** : नवंबर १९४९ से आरंभ, 'नवभारत टाइम्स' में उप-संपादक, मुख्य उप-संपादक और संयुक्त अब समाचार संपादक के रूप में कार्यरत; **भा०** : हिंदी, अंग्रेजी।

जैन, यशपाल



ज० : १ सितंबर, १९१२; विजयगढ़ (अलीगढ़); **शि०** : बी० ए०; एल-एल० बी० (इलाहाबाद वि० वि०); **प०** : संपादक, 'मिलन' (इलाहाबाद, १९३६-३७), मासिक 'जीवन-सुधा' (१९३७-३९) 'मधुकर' (कुंडेश्वर-टीकमगढ़, १९४०-४६), 'जीवन साहित्य' (दिल्ली, १९४६ से अब तक); **र०** : आठ कहानी-संग्रह, दो जीवनियां, एक रूपक-संग्रह, एक संस्मरण-संग्रह, दस यात्रा पुस्तकें, तीन अनूदित उपन्यास और लगभग २५० संकलित तथा संपादित ग्रंथ; 'रूस में छियालीस दिन' पर 'सोवियत लैंड नेहरू पुरस्कार'; 'पड़ौसी देशों में' तथा 'हारिए न हिम्मत' भी पुरस्कृत हुई; **भा०** : हिंदी, गुजराती, मराठी, संस्कृत, अंग्रेजी; **या०** : लगभग ४० देशों का भ्रमण; **वि०** : गांधीवादी लेखक, 'साहित्य वारिधि' और 'विद्या वारिधि' की उपाधियों से अलंकृत।

जैन, लक्ष्मीचंद्र



ज० : २८ सितंबर १९०९; **नयागांव, म० प्र०; शि०: बी० ए० (आनर्स)**; एम० ए० (**संस्कृत एवं अंग्रेजी**), दिल्ली वि० वि०; **प०** : १९४४ से भारतीय ज्ञानपीठ से संबद्ध; १९६२ से इसके मंत्री तथा प्रकाशन-विभाग के संपादक, नियामक; संपादक 'लोकोदय ग्रंथमाला' (४०० ग्रंथ); संपादक' ज्ञानोदय,' (१९४८-७०) 'ज्ञानपीठ पत्रिका' (१९६२-७०); **र०** : 'कागज की किश्तियां', 'नये रंग नये ढंग', सहयोग उपन्यास 'ग्यारह सपनों का देश'; **भा०** : हिंदी, उर्दू, बंगला, गुजराती, अंग्रेजी; **वि०** : 'ज्ञानोदय' के माध्यम से नयी प्रतिभाओं को आगे लाकर हिंदी साहित्य की सेवा; सदस्य, भारतीय ज्ञानपीठ संचालक समिति; भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार प्रवर परिषद के सदस्य; विशिष्ट शैली के निबंधकार।

जैन, ऋषभचरण



ज० : १ जनवरी १९११; ग्रा० सराय सदर, **जि०** बुलंदशहर, **पि०** : लाला हीरामल; **शि०** : मैट्रिक; असहयोग आंदोलन में पढ़ाई छूट गयी; **प०** : १९३२ में सिने साप्ताहिक 'चित्रपट' (दिल्ली) का प्रकाशन एवं संपादन, १९३७ में देशी राज्यों से संबंधित साप्ताहिक 'सचित्र-दरबार' (दिल्ली) का प्रकाशन एवं संपादन, सचित्र दरबार का 'ग्वालियर अंक' उल्लेखनीय, अंग्रेजी सिने साप्ताहिक 'रूपवानी' का प्रकाशन (१९३७), दरबार-गृह प्रकाशन का आरंभ (१९३९); **र०** : ४० पुस्तकों के रचयिता, जिनमें से अधिकांश उपन्यास और कहानी-संग्रह में; ३३ पुस्तकें मौलिक, शेष अनूदित; **वि०** : हिंदी की फिल्म पत्रकारिता के प्रारंभकर्ताओं में से एक; 'साहित्य मंडल' के माध्यम से अनेक लेखकों को प्रकाश में लाये, स्वाधीनता संग्राम में जेल-यात्राएं कीं।

जोशी, इलाचंद्र



ज० : १३ दिसंबर, १९०२; अल्मोड़ा; शि० : मैट्रिक; प० : दैनिक 'कलकत्ता समाचार' से प्रारंभ; सहयोगी संपादक, 'चांद' (इलाहाबाद, १९३६); संबद्धता, 'सुधा', 'सम्मेलन पत्रिका', 'विश्ववाणी', 'भारत' आदि; 'विश्वमित्र' (साप्ता०) का संपादन १९३१ में; संपादक 'संगम' (इलाहाबाद, साप्ता०, १९५०-५१); 'धर्मयुग', 'साहित्यकार' आदि; र० : 'जिप्सी', 'घृणामयी', 'निर्वासित', 'पर्दे की रानी', 'जहाज का पंछी' आदि।

जोशी, प्रेमवल्लभ

ज० : रानीधारा, अल्मोड़ा; शि० : साहित्यभूषण; प० : संपादक, 'कुमाऊं कुमुद' (अल्मोड़ा, १९२२-४८); वि० : सुदीर्घ संपादन-काल में देश-सेवा, स्वतंत्रता आंदोलन, शिक्षा, समाज सुधार का प्रचार तथा आंचलिक समस्याओं के समाधान का प्रयत्न। नि० : ५ नवंबर १९५५।

जोशी, मनोहरश्याम



ज० : ९ अगस्त १९३३, अजमेर; पि० प्रेमवल्लभ जोशी; शि० : बी० एस-सी० (लखनऊ वि० वि०); प० : रेडियो की न्यूज सर्विस में सहायक प्रोड्यूसर; सहायक संपादक, 'दिनमान' (दिल्ली, १९६५-६७); संपादक, 'साप्ताहिक 'हिंदुस्तान' (दिल्ली, १९६७ से अब तक); र० : एक कहानी-संग्रह, एक भेंटवार्ता संग्रह; 'कल के वैज्ञानिक' एक उपन्यास प्रकाश्य, सैकडों लेख, भेंटवार्ताएं, कहानियां, कविताएं; भा० : हिंदी, अंग्रेजी या : सोवियत संघ; वि० : खेल एवं विज्ञान पत्रकारिता के क्षेत्र में विशेष लेखन; उत्कृष्ट भेंटवार्ताकार

जोशी, मोहन

ज० : १८६६ ई०; पूरा नाम—विक्टर जोजफ जोशी; पि० : जयदत्त जोशी; शि० : एम० ए० (इलाहाबाद वि० वि०); प० : 'स्वाधीन प्रजा' तथा 'शक्ति (कुमाऊं) का संपादन ; वि० : राष्ट्रवादी ईसाई, हिंदी सेवक, समाज-सुधारक, कई बार जेल-यात्राएं; नि० : ४ अक्तूबर १६४० ।

जोशी, रतनलाल



ज० : १६ जून १६१७; दंड (म० प्र०); पि०: दुर्गा-प्रसाद जोशी; शि० : एम० ए० (प्री०): इलाहाबाद वि० वि० से। देशी राज्य में शिक्षा संचालन; प० : १६३६ में 'भारतदूत' में, फिर 'देशदूत' में लेखन-अनुवाद कार्य, संपादक 'आवाज' बंबई (बंबई, १६४५); स्वतंत्र पत्रकारिता (१६४८); 'नवनीत' का प्रकाशन एवं संपादन (जनवरी १६५२ से), 'टाइम्स आफ इंडिया' में भाषा प्रकाशनों के परामर्शदाता (१६५४); 'सारिका' का श्रीगणेश, संपादन, प्रधान संपादक दैनिक 'हिंदुस्तान' (१६६३ से १६७६); र० : 'प्रेरणा की गंगोत्री'; प्रमुख हिंदी एवं अंग्रेजी पत्रों में विभिन्न विषयों पर लेख; 'नवनीत' में कर्नल जोरावरसिंह के नाम से रोचक शिकार-कथाएं, १६६५ में युद्ध के मोर्चे पर जाकर आंखों देखी शौर्य-गाथाएं लिखीं ; या० : अमेरिका, कनाडा, दक्षिण अमेरिका, यूरोप, दक्षिण-पूर्वी एशिया चीन, इस्राइल, अरब देश एवं कई द्वीप-द्वीपांतरों का व्यापक भ्रमण; वि० : अनेक हिंदी एवं साहित्यिक संस्थाओं में सक्रिय योगदान।

जोशी, सुमनेश



ज० : ३ सितंबर १६१६; जोधपुर; प० : १६३२-३३ में आरंभ; 'कर्मवीर' और 'सैनिक' के जोधपुर संवाददाता; संपादक, 'राजबंदी' (१६४२), 'रियासती' (जोधपुर, दैनिक व साप्ता०, १६४६-५१), दैनिक 'राष्ट्रदूत' (१६५१-५७), 'आयोजन' (१६५७-६२) आदि; वि० : स्वाधीनता संग्राम में कई बार जेलयात्रा; पत्रकार के नाते अनेक राष्ट्रद्रोही षड्यंत्रों को बेनकाब किया।

जोशी, डा० हेमचंद्र

ज० : १८६४ ई०; नैनीताल; शि० : एम० ए०; डी० लिट्; प० : 'विश्ववाणी' (कलकत्ता), 'विश्वमित्र' (कलकत्ता) का संपादन; आदि संपादक, 'धर्मयुग' (बंबई, ७ अक्टूबर १६५०); र० : 'व्युत्पत्ति कोश' तथा ना० प्र० के 'विश्वकोश' के संपादक तथा अन्य कई रचनाएं; नि० : १६ अक्तूबर १६६७।



जौहर, हरिकृष्ण



ज० : भाद्रपद ५, गुरुवार, संवत् १९३७ (सितंबर १८८० ई०) काशी; पि० : मुंशी रामकृष्ण; शि० : उर्दू से शिक्षा आरंभ हुई; प० : 'हिंदी बंगवासी' (कलकत्ता) का १९०२-१९ तक संपादन, इससे पूर्व 'भारत जीवन', 'द्विजराज' (साप्ताहिक), 'राजस्थान' (अजमेर), 'मित्र' (काशी, १९०१ ई०), 'उपन्यास दर्पण', 'वेंकटेश्वर समाचार' (बंबई), 'आधार' (काशी) आदि पत्रों का भी संपादन किया; र० : लगभग ५० रचनाएं प्रमुख हैं—'कानिस्टेबुल-वृत्तांतमाला', 'भूतों का मकान', 'नर-पिशाच', 'मयंक मोहिनी', 'शीरीं-फरहाद', 'जादूगर' (उपन्यास), 'भार्या-पतन' (नाटक), 'श्रीमद्भागवत', 'महाभारत' (संपादित अनुवाद), 'अफगानिस्तान का इतिहास', 'जापान वृत्तांत', 'देशी राज्यों का इतिहास', 'रूस-जापान युद्ध', 'सिख इतिहास', 'नेपोलियन बोनापार्ट' आदि (ऐतिहासिक), 'हाजी बाबा', 'भूगर्भ की सैर', 'विज्ञान और बाजीगर', 'कबीर', 'मंसूर' आदि (फुटकर); भा० : हिंदी, उर्दू, संस्कृत, बंगला, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी आदि; वि० : १३ वर्ष की अल्पायु से ही उर्दू में लेखन प्रारंभ; हिंदी की ओर मुड़े तो फिल्मों में भी हिंदी के प्रयोग पर बल दिया; नि० : १९४५ ई०; काशी।

झुनझुनवाला, शीला

ज० : ६ जनवरी १९३२; कानपुर; पि० : देवप्रसाद खन्ना; शि० : एम० ए० (अर्थशास्त्र); एल० टी०; प० : 'धर्मयुग' में 'महिला जगत' के संपादन से आरंभ (१९६४-६८); संपादिका, 'अंगजा' (दिल्ली मासिक, १९६९-७२); सह-संपादिका, 'कादंबिनी' (१९७२-७५); संप्रति, इसी में संयुक्त संपादिका; भा० : हिंदी, अंग्रेजी।



टम्टा, हरिप्रसाद

ज० : २६ अगस्त, १८८६, अल्मोड़ा; **पि०** : गोविंदप्रसाद टम्टा; **शि०** : उर्दू की 'मुंशी' परीक्षा पास; **प०** : दलित वर्ग के कल्याण एवं अधिकारों की रक्षा हेतु 'समता' का प्रकाशन एवं संपादन, संपर्क 'लीडर' (इलाहाबाद), 'भारती', 'कमल' (लाहौर); **र०** : तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में दलित वर्ग के अधिकारों के पोषण के लिए प्रबुद्ध लेख एवं टिप्पणियां; **भा०** : हिंदी, उर्दू, फारसी, अंग्रेजी; **या०** : भारत-भ्रमण तथा उत्तराखंड के विकट आंचलिक क्षेत्रों में पैदल-यात्रा; **वि०** : पिछड़े वर्ग की जागृति के लिए कई ऐतिहासिक आंदोलन एवं सुधार-कार्य आरंभ किये; सुदूर बर्मा, लंका, नीदरलैंड, लंदन, कनाडा आदि देशों तक इस वर्ग की आशाओं-आकांक्षाओं का प्रचार-प्रसार किया; **नि०** : २३ फरवरी १९६० ।

तिवारी, भवानीप्रसाद



ज० : १२ फरवरी १९१२, सागर; **शि०** : एम० ए० (नागपुर वि० वि०); **प०** : संपादक, 'हितकारिणी' (जबलपुर, १९३५-४१); 'प्रजा पुकार' (१९४५-४८), 'प्रहरी' (१९४८-६६); **र०** : 'प्राण पूजा', 'प्राण-धारा', 'कथावार्ता', 'जब यादें उभर आती हैं', 'गाधीजी की कहानी', 'गीतांजलि' आदि; **भा०** : हिंदी, संस्कृत, अंग्रेजी, मराठी, बंगला; **या०** : सोवियत संघ, पोलेंड आदि; **वि०** : स्वाधीनता-संग्राम में चार बार जेल-यात्रा; सात बार जबलपुर के महापौर बने; राज्यसभा सदस्य; पद्मश्री और डी० लिट्० की उपाधियों से विभूषित ।

तिवारी, डा० रामचंद्र



ज० : ८ सितंबर १९२७; ग्रा० अशोकपुर, जि० मैनपुरी; पि० : शालिग्राम तिवारी; शि० : एम० ए० (हिंदी, अर्थशास्त्र); एल-एल० बी०, पी-एच० डी०, 'साहित्यरत्न', प्रभाकर; प० : दैनिक 'विश्वमित्र', दिल्ली, १९४४; कलकत्ता, १९४६; उप-संपादक 'नवभारत टाइम्स' (१९४७-४८); 'ग्लोब न्यूज एजेंसी; दिल्ली (१९४८-५१) में संपादक, मुख्य उप-संपादक, दैनिक 'जनसत्ता' (१९५२-५४) संपादक, 'उद्योग व्यापार पत्रिका' (१९५५-६०), संपादक 'भारतीय रेल' (१९६० से अब तक); र० : शोध प्रबंध—'स्वाधीनता के बाद हिंदी पत्रिकाओं का विकास' (अप्रकाशित); 'ग्राम सेवक और सहकारिता' (पुरस्कृत); अनेक लेख-कहानियां एवं कविताएं।

तिवारी, हंसकुमार



ज० : १५ अगस्त १९१८, पंचकोटराज, पुरुलिया, बंगाल; पि० ज्योतींद्रनाथ तिवारी; शि० भागलपुर के टी० एन० जे० कालेज में; प० : दैनिक 'भारत' एवं 'विश्वमित्र' से प्रेरणा; संपादक 'बिजली' (पटना), मासिक 'किशोर' (पटना), मासिक 'छाया' (भागलपुर), साप्ताहिक 'उषा'; संपादक बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद की शोध त्रैमासिक 'परिषद पत्रिका'; र० : 'कला', 'बंगला भाषा और उसका साहित्य', 'हिंदी निबंध-साहित्य का इतिहास', 'साहित्यिका', साहित्यायन', 'सचयन', 'भारतीय सौंदर्य-बोध' (आलोचना), 'रिमझिम', 'अनागत' तथा 'नवीना' (कविता), 'समानातर' (कहानी-संग्रह), 'बदला' (उपन्यास); 'पुनरावृत्ति', 'आधी रात का सवेरा', 'आकाश-पाताल' (नाटक), 'भूस्वर्ग कश्मीर', 'बंगाल', 'बंगाल की लोक कथाएं', 'महावीर', 'विद्यापति' (विविध); 'बंगला' के मूर्धन्य कथाकारों की लगभग १०० कृतियों के सफल एवं लोकप्रिय अनुवाद; भा० : हिंदी, बंगला, अंग्रेजी; वि० : अखिल भारतीय तथा बिहार प्रांतीय हिंदी साहित्य सम्मेलन, हिंदी प्रगति समिति, अखिल भारतीय हिंदी संस्था से संबद्ध।

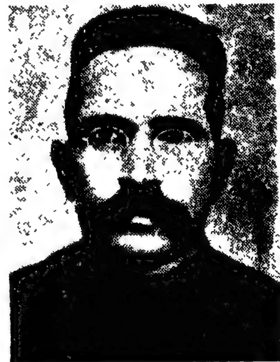
दास, विमलचंद्र



ज० : १० जनवरी, १९२५; ग्राम माधोपुर, जि० मधुबनी (बिहार); शि० : बी० ए० (पंजाब वि० वि०); प० : १९४६ में 'नेशनल प्रेस सिंडिकेट' (बंबई) में हिंदी उप-संपादक; 'दैनिक हिंदुस्तान' (बंबई) में कुछ मास तक उप-संपादक, १९४७ के अंत तक दैनिक 'विश्वमित्र' (बंबई) में उप-संपादक; व्यवस्थापकों से संघर्ष के कारण संपादकों का सामूहिक त्याग-पत्र, नयी दिल्ली से प्रकाशित 'नेताजी' दैनिक से संबद्ध और फिर दैनिक 'विश्वमित्र' (दिल्ली) में उप-संपादक, १९४८ में बंबई दैनिक 'विश्वमित्र' के प्रमुख उप-संपादक, नवभारत टाइम्स बंबई में प्रारंभ से प्रमुख उप-संपादक; भा० : हिंदी अंग्रेजी, मैथिली।

द्विवेदी, आचार्य महावीरप्रसाद

ज० : १८६४ ई०, दौलतपुर, रायबरेली (उ० प्र०); शि० : माध्यमिक, स्वाध्याय; प० : संपादक, 'सरस्वती' (१९०३-२०); र० : लगभग ८० कृतिया प्रमुख हैं—'साहित्य सीकर', 'विचार-विमर्श', 'संकलन', 'कालिदास और उनकी कविता', 'कालिदास की निरंकुशता' और 'सुकवि 'संकीर्तन ; भा० : हिंदी, संस्कृत, मराठी, गुजराती, अंग्रेजी; वि० : १९३३ में 'द्विवेदी मेला', प्रयाग में अभिनंदन ग्रंथ भेंट; नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा अभिनंदन, हिंदी का मानक रूप बनाने में विशेष योगदान।



द्विवेदी, पं० रघुवरप्रसाद



ज० : माघ बदी ६, संवत् १६२१ (१८६४); गढ़ा (जबलपुर के निकट) म० प्र०; पि० : पं० रामसहाय द्विवेदी; शि० : बी० ए०, घरेलू व्याधियों के कारण एम० ए० की परीक्षा नहीं दे पाये; प० : संपादक, 'शुभचिंतक' (जबलपुर, १८८७-६४), 'शिक्षा प्रकाश', जबलपुर, (साप्ताहिक १६०६); 'कान्य कुब्ज' (जबलपुर, मासिक १६१६); यही बाद में 'हितकारिणी' हो गयी; र० : 'समाचार दर्पण', 'भारत का इतिहास', 'शाहजादा और फकीर', 'उमरा की बेटी', 'स्वदेश की बलिवेदी पर' आदि; भा० हिंदी, संस्कृत, अंग्रेजी; वि० : शिक्षाशास्त्री, समाजसेवी, मध्य प्रदेश के प्रमुख हिंदी-सेवियों एवं पत्रकारों में से एक; नि० : २४ अप्रैल १६३८।

द्विवेदी, राधेश्याम



ज० : ३ कार्तिक कृष्णा १६५७ वि०, मथुरा; शि० : बी० ए०, संस्कृत का विशेष अध्ययन; प० : संपादक, 'औदीच्य बंधु' (मासिक, १६२६-१६४८), 'राष्ट्र लक्ष्मी' (साप्ता०, १६३६-१६४२), 'जनार्दन' (साप्ता०, १६४२-१६५८), 'ब्रज भारती' (त्रैमासिक, १६४५) संप्रति, 'ज्ञानदा' (त्रैमासिक शोध-पत्रिका, मथुरा, १६६७ से); र० : 'औदीच्य ब्राह्मणों का इतिहास', 'समाजवादी शासन की रूप-रेखा', 'समाजवाद की विचारधारा', 'मथुरा जिले के किसानों की समस्याएं' आदि।

द्विवेदी, शिवनारायण

ज० : २० जुलाई १९२२, ग्रा० सिजनी, जि० उन्नाव; **पि० :** जगन्नाथप्रसाद द्विवेदी; **शि० :** रायपुर, कानपुर व काशी हिंदू वि० वि० में अध्यापन; **प० :** 'कांग्रेस पत्रिका' के संपादन के साथ पत्रकारिता में प्रवेश (रायपुर, १९३८), संपर्क दैनिक 'नवभारत', संपादक एवं प्रकाशक अर्द्धसाप्ताहिक 'सावधान', पुनः 'नवभारत' में (१९४६), अनेक वर्षों तक मुख्य संवाददाता, 'नवभारत' के रायपुर संस्करण के प्रथम संपादक (१९५९), बाद में साहित्य संपादक 'नवभारत पत्र-समूह'; **र० :** 'स्वाधीनता संग्राम का इतिहास', 'स्वातंत्र्य सेनानियों का परिचय'; **या० :** अमेरिका तथा सुदूर-पूर्व के देशों का भ्रमण; **वि० :** मंत्री, विदर्भ हिंदी साहित्य सम्मेलन, संयोजक नागपुर मध्यप्रांत बरार श्रमजीवी पत्रकार परिषद ।

द्विवेदी, पं० सुधाकर



ज० : चैत्र शुक्ल चतुर्थी, सोमवार, संवत् १९१७, मिर्जापुर; **पि० :** पं० कृपालुदत्त; **शि० :** हिंदी, संस्कृत के अतिरिक्त गणित एवं ज्योतिषशास्त्र में विशेष पांडित्य प्राप्त किया, सरकार द्वारा 'महामहोपाध्याय' की उपाधि, बनारस संस्कृत कालेज में गणित और ज्योतिष के अध्यापक, कुछ समय क्वींस कालेज में गणित के प्रोफेसर भी; **प० :** संपादक, 'मानस पत्रिका' (काशी, मासिक, १९१०), 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका'; **र० :** मौलिक एवं संपादित १७ पुस्तकें प्रमुख हैं—'चलनकलन', 'चलराशिकलन', 'तुलसी सुधाकर', 'पद्मावत', 'समीकरण मीमांसा', 'राम-कहानी', 'हिंदी का व्याकरण' (पूर्वार्द्ध) आदि; **भा० :** हिंदी, संस्कृत, अंग्रेजी, उर्दू, फारसी आदि; **वि० :** 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' की गतिविधियों में विशेष योगदान, अनेक वर्षों तक सभा के सभापति, भारतेंदु-युग के साहित्य-सेवियों और हिंदी के निर्माताओं में महत्वपूर्ण; **नि० :** २० नवंबर १९१०; काशी ।

द्विवेदी, पं० सोहनलाल



ज० : ४ मार्च १९०६; बिंदकी जि०; फतेहपुर (उ० प्र०); **पि०** : पं० बिंदाप्रसाद दुबे; **शि** : एम० ए०; एल-एल० बी० बनारस वि० वि०; **प०** : संपादक, दैनिक 'अधिकार' (लखनऊ, १९३८-४५), 'बालसखा' (प्रयाग, १९५७-६०); **र०** : 'भैरवी', 'चित्रा', 'चेतना', 'प्रभाती' 'जय भारत जय', 'वासवदत्ता', 'पूजागीत', 'कुणाल', 'सुजाता', 'मुक्ति गंगा', 'शिशु भारती', 'गांध्यायन', 'बासंती', झरना; **प०** : स्वाधीनता सेनानी; अध्यक्ष, नगरपालिका बिंदकी; पद्मश्री, साहित्य वारिधि, डी० लिट् आदि उपाधियां; १९६२ में भारत सरकार द्वारा नेपाल भेजे गये प्रतिनिधि मंडल के सदस्य।

दीक्षित, सीताचरण



ज० : भाद्र कृष्ण ४, सं० १९६३ (२३ अगस्त, १९०६), हरदा, जि० होशंगाबाद (म० प्र०); **शि०** : डी० ए० वी० कालेज, कानपुर आदि; **प०** : गणेशशंकर विद्यार्थी से प्रेरणा (१९२४-२५), संयुक्त संपादक, 'प्रताप' (कानपुर १९३१-३४), प्रकाशन, अर्द्धसाप्ताहिक 'महाकोशल' (नागपुर, १९३४-३५), 'अमृत बाजार पत्रिका' और 'फ्री प्रेस आफ इंडिया' समाचार एजेंसी के कानपुर प्रतिनिधि (१९३१-३४), सह-संपादक 'एडवांस' (कलकत्ता, १९३५-३६), राजनीतिक संवाददाता, 'नागपुर टाइम्स' (नागपुर, १९४६-४७), 'हरिजन सेवक' के सह-संपादक (अहमदाबाद, १९४७-४८), संपादन-सहायक दैनिक 'हिंदुस्तान' (नयी दिल्ली, १९४८-५४), 'कलेक्टेड वर्क्स आफ महात्मा गांधी' (हिंदी) के प्रथम संपादक, 'राष्ट्रमत' (मराठी) के दिल्ली-प्रतिनिधि (१९६४ से); **र०** : लगभग ४० पुस्तकें, 'आनंद का राजपथ' पुरस्कृत, समस्त लेखन गांधीवादी, बृहत् उपन्यास 'क्रांति की राह' (अप्रकाशित); **भा०** : हिंदी, मराठी, अंग्रजी, बंगला, गुजराती, संस्कृत, उर्दू; **या०** : अमेरिका तथा वेस्टइंडीज; **नि०** : १ जनवरी १९७६।

दुगवेकर, गोविंद शास्त्री



ज० : १७ सितंबर १८८३, सागर (म० प्र०); **पि०** : विट्ठल शास्त्री; **शि०** : महामहोपाध्याय पं० गंगाधर शास्त्री से काशी में अध्ययन; **प०** : पत्रकारिता के संस्कार लोकमान्य तिलक से मिले, १९०५-७ तक बंबई-पूना में रहते हुए 'हिंदू पंच' तथा 'अरुणोदय' साप्ताहिकों का संपादन, संपादक 'भारतेंदु' (काशी, १९०८), 'आर्य महिला' साप्ताहिक, 'भारत धर्म' (काशी, संवत १९८०), 'निगमागम चंद्रिका', मासिक 'बालबोध' (१९१५), 'गृहस्थ' (१९३९); **र०** : 'धर्मकल्पद्रुम', 'कालधर्म', नाटक 'सुभद्रा-हरण' तथा 'हर हर महादेव', अनुवाद 'गोविंद गीता' (श्रीमद्भगवद्गीता) तथा 'मालविकाग्निमित्र'; **भा०** : हिंदी, संस्कृत, मराठी आदि; **वि०** : 'भारतेंदु नाटक मंडली' नामक सर्वप्रथम हिंदी रंगमंच की स्थापना, 'भारतेंदु' ने पराधीनता काल में जन-जागरण का बीड़ा उठाया, अहिंदी-भाषी होते हुए भी हिंदी भाषा की सेवा; **नि०** : २६ जून १९६१; जबलपुर।

दोषी, रामानंद



ज० : २१ फरवरी १९२१, ग्रा० डुहरी, मेरठ; **शि०** : हाईस्कूल; **प०** : दैनिक 'विश्वमित्र' (बंबई) से आरंभ, १९४९ मे 'दैनिक हिंदुस्तान' में, कुछ समय 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' में, संपादक, 'कादबिनी' (दिल्ली, १९६२-७२); **र०** : 'गीले पंख' (कविता संग्रह), 'तूलिका' (संपा०); **भा०** : हिंदी, अंग्रेजी।

धूलिया, मरवदत्त



ज० : ज्येष्ठ ५, संवत १९५८ (१९०१ ई०), मदन-पुर, लैंसडाउन, गढ़वाल; शि० : संस्कृत (मध्यमा), बी० एस-सी०; प० : संपादक, 'कर्मवीर' (गढ़वाल, १९३९ से अब तक); वि० : स्वाधीनता संग्राम सेनानी, कुली बेगार-प्रथा के विरुद्ध आंदोलन किया तथा गढ़वाल में सामाजिक जागृति फैलायी।

'नरन', पी० नारायण

ज० : १९२१, पालक्काट (मलाबार, केरल); शि० : काशी विद्यापीठ में, अध्यापन भी वहीं; प० : संपादक, 'ललकार' (केरल, १९५०) 'हिंदी प्रचार समाचार', तथा 'केरल भारती'; भा० : मलयालम, हिंदी, संस्कृत, अंग्रेजी; वि० : स्वाधीनता संग्राम में दो बार जेल-यात्रा, 'राष्ट्रवाणी' (हिंदी) की सही प्रतिष्ठा के लिए स्वराज्य में विप्लव का आकांक्षी।

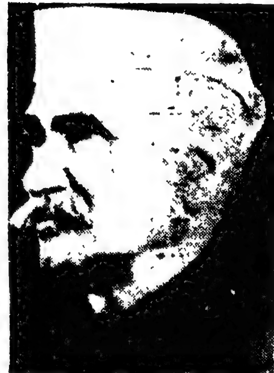


नरेंद्र, के०



ज० : २४ अप्रैल १६१४, लाहौर; **पि०** : **महाशय** कृष्ण; **शि०** : एम० ए० (राजनीति विज्ञान), ला; **प०** : संपादक, दैनिक 'प्रताप' (उर्दू) और 'वीर अर्जुन' (अप्रैल १६५४ से); **भा०** : संस्कृत, हिंदी, उर्दू, अंग्रेजी; **या०** : अमेरिका, जापान, ब्रिटेन, फ्रांस, प० जर्मनी, मलेशिया, इस्राइल, वियतनाम, ताइवान, फिलिपाइंस, रूस, बंगलादेश, कनाडा, कीनिया, सीरिया, मिस्र, लेबनान; **वि०** : महाशय कृष्ण की तीक्ष्ण संपादकीय परंपरा के अनुवर्ती, सदस्य समाचार-पत्र एवं प्रशासन कमेटी (१६७०), अध्यक्ष आई० ई० एन० एस० (१६७२-७३)।

नरेंद्रदेव, आचार्य



ज० : ३१ अक्तूबर १८८६, सीतापुर (उ० प्र०); **शि०** : एम० ए०, एल-एल० बी०, घर पर अमर-कोश, लघुकौमुदी, रामायण, महाभारत, गीता आदि ग्रंथों का अध्ययन; **प०** : संपादक, 'रणभेरी' (काशी, १६२६), 'संघर्ष' (लखनऊ, १६३७), 'जनवाणी' (काशी, १६४७); **र०** : 'राष्ट्रीयता और समाजवाद', 'बौद्ध धर्म दर्शन', 'समाजवाद-लक्ष्य तथा साधन' आदि; **भा०** : हिंदी, अंग्रेजी, संस्कृत, उर्दू, फारसी,; **वि०** : समाजवादी आंदोलन के नेता, कई जेल-यात्राएं, हिंदी के पक्षधर; **नि०** : १६ फरवरी १६५६।

नरेंद्रमोहन



ज० : १० अक्तूबर १९३४, कानपुर; पि० : पूर्णचंद्र गुप्त; शि० : एम० काम०; प० : संपादक, 'जागरण' (कानपुर); या० : अमेरिका, यूरोप के लगभग सभी देश; वि० : अनेक पत्रकार संगठनों के पदाधिकारी।

'नवीन', बालकृष्ण शर्मा



ज० : ८ दिसंबर १८९७; शि० : बी० ए० (फाइनल) पढाई छूट गयी; प० : १९३१ में गणेशशंकर विद्यार्थी के बलिदान के बाद कई वर्षों तक 'प्रताप' का संपादन; संपादन 'प्रभा' (१९२१-२३); र० : 'रश्मि रेखा', 'कुकुम', 'अपलक', 'उर्मिला' आदि; वि० : निर्भीक एवं तेजस्वी संपादकीयों के लिए विख्यात, हिंदी के विख्यात कवि; अनेक बार जेल-यात्राएं; राज्यसभा सदस्य।

'नंदन', कन्हैयालाल



ज० : १ जुलाई १९३३; शि० : एम० ए० (हिंदी), बंबई वि० वि० से संबद्ध कालेजों में चार वर्ष तक हिंदी अध्यापन; प० : सहायक संपादक, धर्मयुग (१९६२-७३), 'पराग' के संपादक (१९७३ से) कला-त्रैमासिक आधार का कई वर्षों तक संपादन; र० : अनेक कविताएं, लेख और फीचर; दो-तीन पुस्तकें प्रकाश्य; भा० : हिंदी, अंग्रेजी; या० : पश्चिमी यूरोप के कुछ देश।

नारद, हुकमचंद



ज० : १९०३, सतना (म० प्र०); पि० : मूलचंद नारद; प० : 'लोकमत' और साथी' से पदार्पण, संपादक एवं संस्थापक, हिंदी-व्यंग्य मासिक 'हिंदी-पंच'; वि० : मध्यप्रदेश श्रमजीवी पत्रकारिता के आधार-स्तंभ, निर्भीक पत्रकारिता के लिए जबलपुर एवं बंबई में काल-कोठरी की यातनाएं, रीवा, सतना और मैहर में सामंती शासन से लोहा लिया और निर्वासन का दंड भुगता, बड़ा गांव की कुछ महिलाओं के साथ व्यभिचार में डूबे अंग्रेज सैनिकों की निर्भीक भर्त्सना की तथा अपराधियों को दंड दिलवाया; नि० : १९५३।

नारायणदत्त



ज० : १७ फरवरी १९२७; मैसूर; पि० : एन० योगनरसिंहम्; शि० : कुरुक्षेत्र (हरियाणा) तथा गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार के विद्यालंकार (१९५२), प० : 'हिंदी स्क्रीन' से पत्रकारिता में प्रवेश (बंबई, १९५२); खादी ग्रामोद्योग कमीशन (बंबई) के प्रकाशन विभाग में संपादक, भारतीय विद्याभवन बंबई की पत्रिका 'भारती' का संपादन (१९५८-५९), सहायक संपादक 'नवनीत' हिंदी डाइजेस्ट (१९५९ बंबई) तथा संपादक (१९६८ से अब तक); र० ज्ञान-विज्ञान पर लेख, निबंध आदि; संकलन 'नवनीत सौरभ', अनुवाद, 'प्रोफाइल्स इन करेज'; भा० : हिंदी, संस्कृत, कन्नड़, अंग्रेजी; वि० : अहिंदीभाषी होते हुए भी राष्ट्रभाषा की सेवा के लिए कृतसंकल्प।

निगम, कैलाशचंद्र



ज० : २७ जुलाई १८३१; लखनऊ; शि० : बी० ए० (दिल्ली वि० वि०); प० : संपादन, हिंदू कालेज पत्रिका (दिल्ली), सिने मासिक 'कल्पना' और दर्शन', उप-संपादक, दैनिक 'विश्वमित्र' (दिल्ली, १९५३-५५), विशेष प्रतिनिधि, दैनिक 'प्रताप' (कानपुर १९५३-५७), संसदीय संवाद-दाता, 'हिंदुस्थान समाचार' (दिल्ली, १९५४-५९); 'जागरण', 'गांडीव', 'नवप्रभात', दैनिक 'भास्कर', लोकवाणी आदि के दिल्ली मे विशेष प्रतिनिधि; संपादन, 'साक्षी' (दिल्ली), 'दिशा भारती' (दिल्ली); संप्रति 'अमर उजाला' (आगरा), 'नवीन दुनिया' (जबलपुर) के प्रतिनिधि; भा० : हिंदी, अंग्रेजी।

निजामुद्दीन, डाक्टर

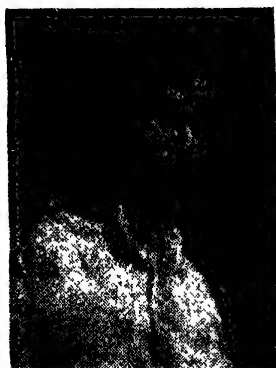


ज० : १६३३, मेरठ; शि० : एम० ए०पी-एच०डी०; प० : संपादक 'नीलजा', 'कहकशा', 'बादामवारी' आदि; र० : 'जैनेन्द्र महावीर', 'हिंदी अदब मे मुसलमानों का हिस्सा', अनेक शोध निबंध, सांस्कृतिक, आलोचनात्मक लेख आदि; वि० : कश्मीर मे हिंदी प्रसार-प्रचार में संलग्न है।

'निर्मल', ज्योतिप्रसाद मिश्र

ज० : १६०३; सिहगढ़, इलाहाबाद; प० संपादक, 'भारतेंदु', 'हिंदुस्थान' (साप्ता०), 'मनोरमा', 'भारत', 'देशदूत' आदि। अंतिम दिनों में 'सम्मेलन पत्रिका' (प्रयाग, त्रैमासिक) के संपादक रहे; र० : 'स्त्री-कवि कौमुदी', 'नवयुग काव्य विमर्श', 'संक्षिप्त हिंदी साहित्य' आदि विशेष उल्लेखनीय; वि० : मृत्युपर्यंत हिंदी की साहित्यिक पत्रकारिता की श्रीवद्धि करते रहे।

'निराला', सूर्यकांतत्रिपाठी



ज० : वसंत पंचमी १८६६, महिषादल स्टेट मेदिनीपुर (बंगाल); शि० : मैट्रिक; प० : संपादक. 'समन्वय' (कलकत्ता १६२२), 'मतवाला' (कलकत्ता, १६२३-२४) के संपादकों में से एक, 'सुधा' (लखनऊ) के संपादन में सहयोग; र० : 'अनामिका', 'प्रभावती', 'शुकुल की बीवी', 'नये पत्ते', 'अर्चना', 'चयन' आदि विशेष। यों लगभग ६० पुस्तकें, भा० : हिंदी, संस्कृत, बंगला, अंग्रेजी आदि; वि० : हिंदी के शीर्षस्थ कवि; नि०: १५ अक्तूबर १६६१।

नीमा, ।मचद्र



ज० : ८ फरवरी १९२३ : नलखेड़ा; **शि०** : मैट्रिक; **प०** : संपर्क 'नवज्योति' (अजमेर); संवाददाता विशेष प्रतिनिधि; 'नई दुनिया' (इंदौर, १९५२-७४), प्रबंध व्यवस्थापक 'नई दुनिया' (रायपुर संस्करण), **वि०** : प्रादेशिक राजनीति के विशेषज्ञ; 'नई दुनिया' के संवर्द्धन एवं संचालन में विशेष योगदान; अध्यक्ष मध्यप्रदेश श्रमजीवी पत्रकार संघ (१९५३); 'नई दुनिया' द्वारा आपकी स्मृति में श्रेष्ठ रिपोर्टिंग पर 'नीमा पुरस्कार' की स्थापना; **नि०** : १५ सितंबर १९७४।

नेहरू, रामेश्वरी देवी



ज० : नवंबर १८८६ ई०, पंजाब; **पि०** : दीवान नरेंद्रनाथ, पति : पं० ब्रजलाल नेहरू, **शि०** : घर पर ही प्रारंभिक शिक्षा; जीवनभर स्वाध्याय; **प०** : मुहम्मदी बेगम द्वारा संपादित उर्दू साप्ताहिक 'तहजीब-निस्वा' में लेख लिखने से आरंभ; संपादिका 'स्त्री दर्पण' (प्रयाग, मासिक, जून १९०९), १९२४ में यह पत्र कानपुर चला गया और इसका संपादन श्रीमती राधिका-किशोरीदेवी करने लगीं, **भा०** : हिंदी, उर्दू, अंग्रेजी; **वि०** : स्त्री जाति मे सुधार एवं शिक्षा प्रचार के मृत्युपर्यंत अथक प्रयत्न; कश्मीरी महिलाओं में अपने पत्र द्वारा हिंदी के प्रति अनुराग उत्पन्न किया।

नैथानी, ललिताप्रसाद



ज० : १९१३, ग्रा० नैथाना (गढ़वाल); पि० : पं० शंभूप्रसाद नैथानी; शि० : बी० एस-सी०, एल-एल० बी० (बनारस वि० वि०); प० : 'कर्मभूमि' से आरंभ; संपादक 'सत्यपथ' (कोटद्वार, साप्ता०, १९५६ से अब तक); वि० : स्वाधीनता संग्राम में सक्रिय, १९४२ में जेल-यात्रा।

पटाइत, सतपाल



शि० : स्नातक (नागपुर वि० वि०); प० : प्रशिक्षणार्थी पत्रकार 'युगधर्म' (१९५१, नागपुर), संपादक, 'युगधर्म' (नागपुर संस्करण १९५७), संपादक 'युगधर्म' (रायपुर संस्करण), पुनः १९७१ में एक वर्ष तक। आजकल नागपुर में तीनों संस्करणों का संपादन; वि० : सदस्य 'हिंदुस्तान समाचार' सलाहकार समिति (नागपुर शाखा), सदस्य, नागपुर साहित्य संस्था तथा 'विचार वीथि' तथा 'साहित्यकार संगम'।

'पथिक', विजयसिंह



ज० : ग्रा० गुठावली, जि० बुलंदशहर (उ०प्र०); प० : गणेशशंकर विद्यार्थी के पत्र 'प्रताप' के माध्यम से देशी रियासतों के खिलाफ आवाज उठायी; वर्धा में जमनालाल बजाज की सहायता से 'राजस्थान केसरी' का शुभारंभ; अजमेर से 'नवीन राजस्थान' का संपादन-प्रकाशन, आगरा से (१९३८-३९) 'नव संदेश' का प्रकाशन, जो १९४२ के 'भारत छोड़ो' आंदोलन में जब्त कर लिया गया; वि० : प्रसिद्ध क्रांतिकारियों—रासबिहारी बोस, शचींद्रनाथ सान्याल, भाई बालमुकुद, केसरीसिंह बारहठ आदि के साथ मिलकर अंग्रेजों के खिलाफ सशस्त्र क्रांति की योजना बनायी, बिजौलिया आंदोलन के प्रवर्त्तक, मेवाड़ में किसान आंदोलन तथा पाठशालाओं का संचालन, पांच वर्ष का कारावास, नि० : २८ मई १९५४।

पराड़कर, बाबूराव विष्णु



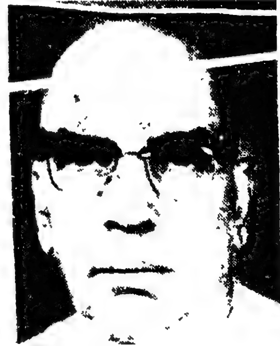
ज० : कार्तिक शु० ६ संवत् १९४० (६ नवंबर १८८३); काशी; पि० : पं० विष्णु शास्त्री; शि० : वेदाध्ययन से प्रारंभ, इंट्रेंस (भागलपुर); प० : १९०५ में 'हिंदी बंगवासी' (कलकत्ता) से आरंभ; 'बंगवासी' की अंग्रेजपरस्त नीति से असहमत होकर त्यागपत्र दिया और 'हितवार्ता' (कलकत्ता, १९०७) का संपादन, संयुक्त संपादक 'भारतमित्र' (कलकत्ता), संपादक, दैनिक 'आज' (काशी, १९२०), दैनिक 'संसार', मासिक 'कमला' तथा 'रणभेरी' आदि अनेक भूमिगत क्रांतिकारी पत्र, र० : 'देशेर कथा' का हिंदी अनुवाद 'देश की बात', 'श्रीमद्भगवतगीता' का अनुवाद; भा० : हिंदी, मराठी, बंगला, संस्कृत, अंग्रेजी; वि० : हिंदी के शीर्षस्थ संपादकाचार्य; अग्रलेखों की भव्य परंपरा तथा मानक वर्तनी के प्रति आग्रहशील; स्वाधीनता सेनानी; हिंदी साहित्य सम्मेलन का सभापतित्व (१९३७); 'साहित्य-वाचस्पति'; नि० : १२ जनवरी १९५५।

प्रतापसिंह, ठाकुर



ज० : २ सितंबर, १६१५, गहरेंदा, जि० उन्नाव, उ० प्र०; **शि०** प्रारंभिक उन्नाव में, मैट्रिक कलकत्ता वि० वि०; बी० ए० प्रभाकर पंजाब वि० वि०; **प०** : 'लोकमान्य' हिंदी दैनिक के उप-संपादक के रूप में प्रारंभ (१६३८-१६४०); सहायक संपादक 'विश्वमित्र' (कलकत्ता, १६४१), सहायक संपादक 'विश्वमित्र' (दिल्ली, १६४२); समाचार संपादक एवं सहकारी संपादक 'अधिकार' (लखनऊ); पुन: विश्वमित्र की दिल्ली शाखा में कार्यरत; सहकारी संपादक 'नवभारत' (१६४७); जो बाद में नवभारत टाइम्स कहलाया; मुख्य उपसंपादक 'नवभारत टाइम्स' (१६५६-७४); **भा०** : हिंदी, अंग्रेजी।

'प्रभाकर', कन्हैयालाल मिश्र



ज० : २६ मई, १६०६ : कस्बा देवबंद, जि० सहारनपुर; **पि०** : पं० रमादत्त मिश्र ; **शि०** : १६२० मे असहयोग आंदोलन में परीक्षा त्याग; **प०** : पत्रकारिता के संस्कार गणेशशंकर विद्यार्थी से, संस्कृत विद्यालय के हस्तलिखित पत्र 'राजहंस' के संपादक (१६२६-२७); संपादक, 'ब्राह्मण सर्वस्व' (मासिक, रजत जयंती अंक, १६२६), साप्ताहिक 'गढ़देश' (१६३०), १६३३-३४ में साप्ताहिक 'विकास' मे कार्य, संपादक 'विकास' (१६३५ से अब तक); क्वेटा भूकंप पर संपादकीय टिप्पणी से सरकार क्रुद्ध और 'विकास' बंद करना पड़ा, कुछ समय तक 'विश्वास' का प्रकाशन, 'विकास' फिर प्रारंभ, संपादन 'ज्ञानोदय', 'नया जीवन', दैनिक 'नया विकास' (सहारनपुर) आदि; **र०** : 'जिंदगी मुस्कराई', 'बाजे पायलिया के घुंघरू', 'महके आंगन चहके द्वार', 'दीप जले शंख बजे', 'माटी हो गई सोना' आदि; **वि०** : हिंदी के विशिष्ट शैलीकार; स्वाधीनता संग्राम में जेल यात्राएं।

'प्रशांत', देवेंद्रनाथ



ज० : ५ जून १९२४, रायपुर (म० प्र०); **प० :** छात्र जीवन में 'बालप्रभात', 'सूर्योदय', 'किरण' आदि हस्तलिखित पत्रों का संपादन, फासिस्ट-विरोधी गुप्त बुलेटिनों का संपादन (जबलपुर, १९४२), सेठ गोविंददास के हिंदी दैनिक 'जयहिंद' के संपादक मंडल में (१९४६-४७), अर्द्धसाप्ताहिक 'शुभचिंतक' में लेखन (१९४४-४५), संपादक, मासिक 'राष्ट्रभाषा' (वर्धा, १९४८-५०) अर्द्धसाप्ताहिक 'चेतना' (१९५३-५४) 'युगारंभ' मासिक (जबलपुर, १९५४-५५), 'एटम' एवं 'प्रकाश' साप्ताहिक में भी कार्य, संपादक, 'पूर्व-ज्योति' (१९६०-६९, गौहाटी), **वि० :** दर्जनों महत्वपूर्ण लेख एवं अंतर्राष्ट्रीय टिप्पणियां विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित, 'पूर्वज्योति' के द्वारा असम तथा अन्य पूर्वी इलाकों में हिंदी भाषा की सेवा।

पंड्या, पं० मोहनलाल



ज० : अगहन बदी ३, मंगलवार, संवत् १९०७, आगरा; **पि० :** पं० विष्णुलाल पंड्या; **शि० :** प्रारंभिक शिक्षा घर में, सेंट जान्स कालेज, आगरा तथा क्वींस कालेज, बनारस में पढ़े किंतु औपचारिक अध्ययन बीच में ही छूटा; **प० :** 'दिनचर्या' (नाथद्वारा, मासिक, १८९४), कुछ समय तक इस पत्र का संपादन किया, यह पत्र नाथद्वारा की लेखक-मंडली द्वारा प्रकाशित होता था; 'मोहन चंद्रिका' (नाथद्वारा, मासिक, १८८०-८४); **र० :** लगभग एक दर्जन पुस्तकें; उल्लेखनीय—'अंग्रेज स्तोत्र', 'प्रेम प्रमोदिनी', 'वसंत प्रमोदिनी', 'प्रह्लाद', 'रासो-संरक्षा' आदि; **भा० :** हिंदी, संस्कृत, उर्दू, फारसी, बंगला, गुजराती, अंग्रेजी; **वि० :** इतिहास एवं पुरातत्व के उत्कृष्ट विद्वान, कवि राजा श्यामलदान द्वारा 'पृथवीराज रासो' को जाली ग्रंथ ठहरा दिया जाने पर आपने गहन अन्वेषण एवं कठिन अध्यवसाय द्वारा इस महत्वपूर्ण महाकाव्य को प्रामाणिक सिद्ध करते हुए 'रासो संरक्षा' नामक प्रसिद्ध ग्रंथ का निर्माण एवं रासो का संपादन किया, महर्षि दयानंद द्वारा स्थापित परोपकारिणी सभा (१८८२) के मान्य सदस्यों में से एक; **नि० : ४ दिसंबर १९१२**; मथुरा।

पंत, पं० बुद्धिवल्लभ

१८७१ में प्रेस खोला तथा 'अल्मोड़ा अखबार' नामक प्रसिद्ध पत्र की स्थापना की, स्वाधीनता संग्राम में सक्रिय भाग लिया, सरकारी सेवा में होने पर भी १८८३ में इलबर्ट बिल का विरोध किया, पर्वतीय समाज में शिक्षा, सुधार तथा परिवर्तन के लिए विशेष प्रयत्न किया।

पंत, मनोहर

ज० : १८९८; ग्रा० तिलाड़ी (अल्मोड़ा); पि० : कृष्णानंद पंत; शि० : वर्नाक्यूलर परीक्षा (१९१५), प्राइमरी टीचर्स परीक्षा (१९१६); प० : संपादक, 'शक्ति' (अल्मोड़ा, साप्ताहिक, १९२३-४२ तथा १९५२-५८); वि० : नौकरी छोड़कर स्वाधीनता संग्राम में कूदे, कई बार गिरफ्तार, शिक्षा तथा समाज-सुधार के क्षेत्र में विशेष कार्य।

पाठक, पं० प्रमोदशरण



ज० पौष सुदी ११, सवत् १९५७ (१९०१); पटना, पि० प० हरिनारायण पाठक, शि० बनारस हिंदू वि० वि० मे आदोलन के कारण पढाई छूटी, प० सहकारी सपादक 'प्रजाबधु' (पटना) से आरभ, बाद मे 'हिंदू पच' (कलकत्ता) तथा 'तरुण भारत' (पटना) मे भी रहे, सपादक, 'बिहार बधु' (पटना, १९२२), बाद मे 'भूदेव' और बिहार प्रातीय वैद्य सम्मेलन की पत्रिका का भी सपादन किया, नि० २५ फरवरी १९६०।

पाठक, श्रीधर



ज० : १० दिसबर १९२३, इदौर, पि० : बालकृष्ण पाठक, शि० · स्वाधीनता-सग्राम मे शिक्षा बीच मे ही छूट गयी, प० १९४३ मे प्रूफ रीडरी (बबई) से प्रारभ, कुछ दिनो दैनिक 'संसार' (वाराणसी) के बबई मस्करण के प्रकाशक-मुद्रक, मुख्य सवाददाता, 'नवभारत टाइम्स' (बबई, १९५० से अब तक), भा० हिदी, गुजराती, मराठी, अग्रेजी।

पालीवाल, पं० कृष्णदत्त



ज० : संवत् १९५१ की श्रावणी : ग्रा० तनौरा, जि० आगरा; पि० : ब्रजलाल पालीवाल; शि० : साहित्यरत्न (१९१७), एम० ए० (१९२१), असहयोग आंदोलन में एल-एल० बी० (फाइनल) छूटा (१९२१); प० : दैनिक तथा साप्ताहिक पत्र 'प्रताप' एवं मासिक 'प्रभा' का संपादन (१९२१-२३), हिंदी साप्ताहिक 'सैनिक' (आगरा) का संपादन एवं स्थापना (१९२५), दैनिक 'सैनिक' का प्रारंभ (१९३५); र० : 'साम्यवाद' (१९२०) 'गीतामृत', 'हमारा स्वाधीता संग्राम', 'किसान राज्य', 'गांधीवाद और मार्क्सवाद' (१९४६) आदि; वि० : भारत भर में सब से पहले साहित्यरत्न (हिंदी) की उपाधि प्राप्त की; सदस्य, अखिल भारतीय हिंदी साहित्य सम्मेलन स्थायी समिति, उ० प्र० में हिंदी को राज्यभाषा एवं केंद्र में उसे राष्ट्रभाषा बनाने के प्रबल समर्थक, अनेक हिंदी पत्रकारों के प्रेरणा-स्त्रोत; नि० : ६ जून १९६८।

पांडेय, छविनाथ



ज० : चैत्र शुक्ल पूर्णिमा, संवत् १९५७, ग्रा० जलालपुर-माफी, जि० मिर्जापुर; पि० : शिवदहल पांडेय; शि० : (बी० ए० एल-एल० बी०, इलाहाबाद वि० वि०), प० आरंभ में ज्ञानमंडल, काशी के मासिक 'स्वार्थ' में सहकारी संपादक, मासिक 'साहित्य' (कलकत्ता) का संपादन, व्यवस्थापक दैनिक 'सर्चलाइट' (१९३१-४०), संपादक, बिहार हिंदी साहित्य सम्मेलन शोध-त्रैमासिक 'साहित्य', कई पत्र-पत्रिकाओं के संपादक मंडल के सदस्य; र० : 'सुशीला', 'प्रोत्साहन', 'अंधकार', 'मां की ममता', 'मां का हृदय', 'वे तीनों', 'अन्ना', 'तेल', 'अंचल', 'मैजिनी के लेख', 'स्त्री कर्त्तव्य शिक्षा' 'पुस्तकालय और उसका संचालन', 'अपनी बात', 'आपका बच्चा', 'मुद्रण-कला' आदि; वि० : सभापति झरिया एवं दुमका-प्रांतीय हिंदी साहित्य सम्मेलन।

पांडेय, बद्रीदत्त



ज० : १५ फरवरी १८८२; कनखल (हरिद्वार); शि० : मैट्रिक; प० : संपादक 'अल्मोड़ा अखबार' (१९१३), बाद में दैनिक 'शक्ति' के संपादक; वि० : स्वाधीनता-संग्राम में अग्रगण्य, कई बार जेल गये; कुली-बेगार प्रथा के विरुद्ध आंदोलन चलाया, 'कूर्माचल केसरी' कहलाये; संसदसदस्य रहे; नि० : १३ जनवरी १९६५ ।

पांडेय, पं० रूपनारायण



ज० : आश्विन शुक्ल १२, संवत् १९४१; लखनऊ (रानीकटरे में); पि० : पं० शिवराम पांडेय; शि० : प्रारंभिक शिक्षा संस्कृत में घर पर, फिर प्रथमा परीक्षा उत्तीर्ण की । मध्यमा की तैयारी के दौरान व्यवधान; प० : संपादक, 'नागरी प्रचारक' (मासिक, सात वर्ष), 'निगमागम चंद्रिका' (मासिक, तीन वर्ष), 'इंदु', (मासिक, तीन वर्ष)' 'कान्यकुब्ज' (मासिक, दो वर्ष), 'माधुरी' (लखनऊ, पांच वर्ष); र० : लगभग १०० रचनाएं; उल्लेखनीय हैं—'शुकोक्ति सुधा सागर' (समग्र श्रीमद् भागवत का अनुवाद), 'आंख की किरकिरी', 'शाहजहां', 'नूरजहां', 'चौबे का चिट्ठा', रतरमणी', 'पाषाणी', 'बंकिम निबंधावली', 'सीता', 'गल्पगुच्छ', 'रमा', 'पतित पति', 'बाल कालिदास', 'महाभारत' (संपूर्ण का अनुवाद), 'घरजमाई', 'शूर शिरोमणि', 'हरीसिंह नलवह', 'गुप्त रहस्य' 'गृह-लक्ष्मी', 'विजया', 'गोरा', 'दुरंगी दुनिया', 'शिव-शतक', 'स्वतंत्रता-देवी', 'वीर-पूजा', 'अज्ञातवास', 'पराग' (कविता संग्रह) आदि; भा० : हिंदी, संस्कृत, मराठी, बंगला, गुजराती, उर्दू, अंग्रेजी; वि० : मृत्युपर्यंत साहित्य सेवा तथा साहित्यिक पत्रकारिता ।

पांडेय, लल्लीप्रसाद



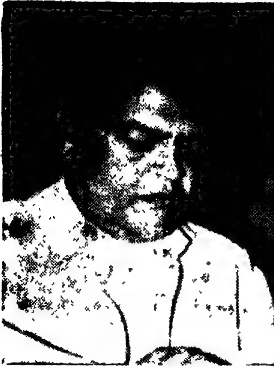
ज० : ज्येष्ठ कृष्ण १३, सं० १९४३ (१८८६ ई०) सानौदा, जि० सागर; वि० : रामप्रसाद शुक्ल; शि० : प्रारंभिक शिक्षा सागर में; प० : पत्रकारिता का प्रथम पाठ सप्रेजी (१९०७) से, दैनिक एवं साप्ताहिक 'हिंदी केसरी' के संपादन-विभाग से संबद्ध, 'हिंदी केसरी' के बंद हो जाने के बाद दैनिक (हिंदी) 'कलकत्ता समाचार' में, इंडियन प्रेस प्रयाग में नियुक्ति (१९१७) और 'सरस्वती' एवं 'बालसखा' के संपादकीय विभाग में कार्यरत; संपादक 'बालसखा' (१९४३); १९७० तक 'बालसखा' का संपादन तथा इंडियन प्रेस से कार्यमुक्ति; र० : महाभारत एवं श्रीमद्भागवत का संस्कृत से हिंदी अनुवाद, बंगला के विख्यात उपन्यासकार प्रभातकुमार मुखोपाध्याय के प्रायः सभी ग्रंथों का अनुवाद; मराठी की अनेकों पुस्तकों का अनुवाद, रचयिता बाल-रामायण एवं बाल-महाभारत; भा० : हिंदी, संस्कृत, बंगला, मराठी; वि० : हिंदी बाल-साहित्य को एक पत्रकार के रूप में समृद्ध एवं समुन्नत करने में विशिष्ट योगदान।

पांडेय, पं० सकलनारायण



ज० : पौष कृष्णाष्टमी गुरुवार, संवत् १९२८, आरा (बिहार); पि० : पं० सिद्धिनाथ पांडेय (पं० गोकुलदत्त के नाम से प्रसिद्ध), शि० : काव्यतीर्थ, व्याकरणतीर्थ; प० : संपादक, शिक्षा आरा साप्ताहिक, १८९७, बांकीपुर); र० : हिंदी एवं संस्कृत में लगभग १७ पुस्तकें; उल्लेखनीय—'सिद्धिनाथ', 'कुसुमांजलि', 'तारकेश्वर यशोगानम्', 'यशःप्रकाश' (तीनों संस्कृत), 'हिंदी सिद्धांत प्रकाश', 'सृष्टितत्व', 'प्रेमतत्व', 'आरा-पुरातत्व', 'निबंध-माला', 'व्याकरण-तत्व', 'राजरानी' (उप०) 'अपराजिता' (उप०) आदि; वि० : सनातन धर्मानुयायी होते हुए भी समाज-सुधार, स्त्री शिक्षा, अछूतोद्धार, विधवा-विवाह आदि के प्रबल समर्थक थे। आप संस्कृत होते हुए भी मृत्युपर्यंत हिंदी का प्रचार-प्रसार करते रहे।

पित्ती, बदरीविशाल



ज० : २८ मार्च १९२८; कलकत्ता; **शि०** : 'विशारद'; **प०** : द्वैमासिक 'कल्पना' (हैदराबाद, अगस्त १९४९) तथा मासिक 'कल्पना' का प्रकाशन एवं संपादन (जनवरी १९५२ से अब तक) लोहिया जी द्वारा स्थापित एवं संपादित अंग्रेजी 'मैनकाइंड' के संपादक मंडल में; **र०** : कुछ कहानियां और लेख; **भा०** हिंदी, उर्दू, अंग्रेजी; **या०** : अमेरिका, यूरोप एवं देश में विस्तृत भ्रमण; **वि०** : लोहिया-साहित्य का अंग्रेजी से हिंदी में अनुवाद और संपादन; समाजवादी आंदोलन में सक्रिय, सत्याग्रह के कारण जेल। आंध्रप्रदेश में हिंदी के प्रचार-प्रसार में योगदान।

पिले, के० जी० बालकृष्ण

ज० : १९३३, केरल; **शि०** : हिंदी शिक्षण में निष्णात; **प०** : संपादक 'केरल ज्योति'; **वि०** : हिंदी शिक्षण को जीविकोपार्जन से अधिक, एक मिशन माना।



'प्रेमघन', बदरीनारायण चौधरी



ज० : संवत १९१७, भाद्रपद कृष्ण ६ (१२ सितंबर १८५५ ई०) मिर्जापुर; पि० : पं० गुरुचरण लाल उपाध्याय; शि० : घर पर ही प्रारंभिक शिक्षा, स्वाध्याय; प० : संपादक, 'आनंद कादंबिनी' (मासिक, १८८१ ई०), 'नागरी नीरद' (साप्ताहिक, १८९२ ई०); र० : 'भारत सौभाग्य नाटक', 'हार्दिक हर्षादर्श काव्य', 'भारत बधाई', 'आर्याभिनंदन', 'वर्षा विदु', 'मंगलाशा', 'कजली कादंबिनी', 'आनंद अरुणोदय', 'भारत भाग्योदय', 'पीयूष वर्षा', 'वारांगना रहस्य नाटक' (अपूर्ण), 'संगीत सुधा सरोवर', 'कांताकामिनी' आदि; भा० : हिंदी, संस्कृत, उर्दू, फारसी, मराठी, बंगला, अंग्रेजी; वि० : विदेशी प्रशासकों एवं सामाजिक बुराइयों पर चुभता व्यंग्य करने वाले भारतेंदु-लेखक-मंडली के मूर्धन्य साहित्यकार, हिंदी पत्रकारिता को विविध रंग-आकार से सुशोभित करना एवं हिंदी में पुस्तक की समालोचना का श्रीगणेश करना इनकी सब से बड़ी देन है, १९१२ के कलकत्ता के 'अखिल भारतीय हिंदी साहित्य सम्मेलन' के तृतीय अधिवेशन में सभापति पद; नि० : १४ फरवरी १९२३ मिर्जापुर।

प्रेमचंद, मुंशी



ज० : ३१ जुलाई, १८८० ई०; लमही ग्राम (काशी के निकट); पि० : अजायबलाल; शि० : बी० ए०; प० : मुख्य संपादक 'माधुरी' (लखनऊ, मासिक, १९२५-१९२९), 'हंस' (काशी, मासिक, १९३०-३६), 'जागरण' (पाक्षिक, १९३२), कुछ समय तक 'मर्यादा' में भी; र० : ३०० के लगभग कहानियां, लगभग एक दर्जन उपन्यास, दो एकांकी तथा कई अनुवाद। 'सेवा सदन', 'निर्मला', 'प्रेमाश्रम' 'रंगभूमि', 'कर्मभूमि', 'कायाकल्प', 'गबन', 'वरदान', 'गोदान', 'सप्तसरोज', 'नवनिधि', 'प्रेमपचीसी', 'प्रेमपूर्णिमा', 'मानसरोवर' आदि कहानी संग्रह; भा० : हिंदी, उर्दू, अंग्रेजी; वि० : हिंदी-पत्रकारिता को नये-नये प्रयोगों द्वारा अभिनव कलेवर से सज्जित किया, उपन्यास सम्राट एवं युग-प्रतिनिधि कहानीकार; नि० : ८ अक्तूबर, १९३६।

'प्रेम', रमेशचद्र



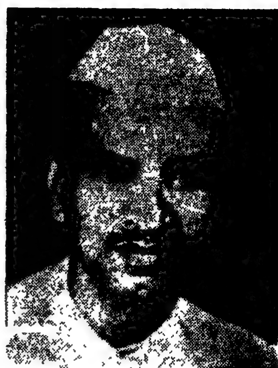
ज० : २५ नवंबर १९२६, मेरठ; **पि० :** कैलाशचंद्र; **शि० :** बी० एस-सी० (मेरठ); **प० :** 'नवभारत टाइम्स' में उप-संपादक (१९४७), साहित्य संपादक 'नवभारत टाइम्स' (नयी दिल्ली, १९५४ से अब तक); **र० :** 'अगला स्टेशन', 'आशा', 'चौराहा' आदि विशेष; विज्ञान, खेल, यात्रा, संस्मरण कहानियां, उपन्यास एवं लोककथाओं पर लगभग १०० पुस्तकें; 'बाल ज्ञानकोश', 'ज्ञानसागर' (पुरस्कृत); **या० :** अफगानिस्तान, इंग्लैंड, बेल्जियम, हालैंड, जर्मनी, आस्ट्रिया, इटली, फ्रांस, स्विट्जरलैंड आदि ।

'प्रेमी', नाथूराम



ज० : १८८१, सागर (म० प्र०), ग्रा० देवरी; **पि० :** टूंडे मोदी; **प०** संपादक 'जैनमित्र' तथा 'जैनहितैषी', **र० :** प्रकाशक 'माणिकचंद्र ग्रंथमाला', प्राचीन आचार्यों का शोधपूर्ण परिचय, प्राचीन ग्रंथों की खोज तथा प्राचीन साहित्य संबंधी पुस्तकें लिखी; **भा० :** हिंदी, संस्कृत, प्राकृत अपभ्रंश, पाली, बंगला मराठी; **वि० :** हिंदी में बंगला साहित्य के पाठक तैयार कराने का श्रेय प्रेमीजी को जाता है, उन्होंने रवींद्र एवं शरत् का परिचय हिंदी पाठकों से कराया हिंदी के अनेकों मूर्धन्य लेखकों एवं पत्रकारों को प्रोत्साहन दिया ।

'प्रेमी', विश्वंभरसहाय



ज० : १६ जुलाई १८६६, फरीदनगर (उ० प्र०); शि० : हाईस्कूल (पंजाब वि० वि०, १६२५); प० : संपादक, 'मातृभूमि' (मेरठ, १६२३) तथा 'तपोभूमि' (१६३३), प्रकाशक साप्ताहिक 'पंचायती राज्य' (१६४७-७४), 'नवभारत टाइम्स' दैनिक 'हिंदुस्तान', 'तेज' आदि पत्रों के मेरठ स्थित संवाददाता; र० : 'हिमालय में भारतीय संस्कृति', 'महर्षि दयानंद और मेरठ', 'भारत के सप्तदुर्ग', 'तुलसी राम कथामाला', 'भारत की स्वर्णिम विजय', 'भारत गीतांजली' आदि; वि० : १६६५ में मेरठ में 'राजर्षि टंडन हिंदी भवन' का निर्माण, साहित्य सम्मेलन के माध्यम से हिंदी के प्रचार-प्रसार में प्रगाढ़ अभिरुचि; नि० : २२ जनवरी १६७४।

पोद्दार, हनुमानप्रसाद



ज० : आश्विन कृष्ण १२, सं० १९४९ (२७ सितंबर १८९२), शिलाग; प० : 'नवनीत', 'मर्यादा' तथा 'कलकत्ता समाचार' आदि से साहित्यिक जीवन में पदार्पण। अप्रैल १६२६ में सेठ जयदयाल गोयंदका के साथ मासिक 'कल्याण' निकालने का निर्णय; वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई से मुद्रित 'कल्याण' का प्रथम अंक प्रकाशित (अगस्त, १६२६); 'कल्याण' के प्रथम विशेषांक 'भगवन्नाथ अंक' का संपादन (१६२७)। 'कल्याण' का गीता प्रेस, गोरखपुर से प्रकाशन (अगस्त १६२७); वि० : गीता प्रेस के द्वारा गीता, महाभारत, रामायण तथा अन्य धार्मिक ग्रंथों को लागत मात्र मूल्य पर अधिक से अधिक लोगों को उपलब्ध कराया; धर्म और नैतिकता संबंधी दर्जनों पुस्तकों का प्रणयन एवं प्रकाशन; १६१० में अरविंद घोष एवं सी० आर० दास के घनिष्ठ संपर्क में आये और कलकत्ता में क्रांतिकारियों के सहयोगी रहे। १६१६ में डेढ़ वर्ष तक अलीपुर सेंट्रल जेल में; नि० २२ मार्च १६७१।

बख्शी, पदुमलाल पुन्नालाल



ज० : १८९४; खैरागढ़ (म० प्र०); **पि०** : पुन्नालाल बख्शी; **शि०** : बी० ए० (बनारस वि०वि०); **प०** संपादक, 'सरस्वती' (प्रयाग, १९२०-२८; फिर १९५२-५८); 'महाकोशल' (रायपुर, साप्ता०); **र०** : 'अंतिम अध्याय', 'मेरे प्रिय निबंध', 'यात्री', 'हिंदी साहित्य विमर्श', 'हिंदी कथा साहित्य : एक ऐतिहासिक समीक्षा', 'कनक-रेखा', 'शत-दल', 'अश्रु-दल', 'मेरी अपनी कथा' आदि; **भा०** : हिंदी, अंग्रेजी; **वि०** : 'साहित्य वाचस्पति' डी० लिट् की उपाधियां, म० प्र० हिंदी साहित्य सम्मेलन के सभापति (१९५०)।

'बटुक', विश्वप्रकाश दीक्षित



ज० : २० जनवरी १९१८; मेरठ; **पि०** : सोहनलाल शास्त्री; **शि०** : एम० ए० (हिंदी); साहित्य-रत्न; **प०** : सह-संपादक, 'अनुराग' (१९३६), 'किसान सेवक' (१९३६), 'बालवीर' (१९४८) सभी मेरठ मे; सह-संपादक, दैनिक 'विश्वबंधु' (लाहौर); प्रधान संपादक, दैनिक 'रामराज्य' (मेरठ, १९४७-४८); सह-संपादक दैनिक 'अमर भारत' (दिल्ली, १९४८-४९); **र०** : 'प्रतिच्छाया', 'गुरु गोविंदसिंह के काव्य में हिंदू संस्कृति के तत्व' (पुरस्कृत), 'कुटिया का राजपुरुष' आदि; **भा०** : हिंदी, संस्कृत, पंजाबी, उर्दू, अंग्रेजी; **वि०** : मेरठ से संभवतः प्रथम दैनिक का प्रारंभ व संपादन।

'ब्रजवल्लभ', ब्रजनंदन सहाय



ज० : भाद्रपद शुक्ल ८, संवत् १९३१; ग्रा० अखतियारपुर (आगरा के निकट); पि० : शिवनंदन सहाय; शि० : बी० ए०, वकालत; प० : संपादक 'समस्यापूर्ति' (पटना), 'नागरी हितैषिणी' (आरा, मासिक, प्रकाशन काल १९०६)। 'आरा नागरी प्रचारिणी सभा' की ओर से प्रकाशित इस प्रसिद्ध पत्रिका का कई वर्ष तक संपादन; इसका नाम 'साहित्य पत्रिका' होने पर भी आप ही संपादन करते रहे; 'शिक्षा' तथा 'प्रेमाभक्ति प्रचारक' पत्रों का भी कुछ दिन तक संपादन किया; र० : लगभग २५ कृतियां उल्लेखनीय हैं—'राजेंद्र मालती', 'अद्भूत प्रायश्चित्त', 'लाल चीन', 'विस्मृत सम्राट्', 'सौंदर्योपासक', 'अरण्यबाला', 'उषांगिनी', 'राधाकांत', 'विश्वदर्शन', 'सत्यभामा मंगल', 'अर्थशास्त्र', 'बल्देव प्रसाद मिश्र'; (जीवनी) 'राधाकृष्णदास', बंकिमचंद्र', 'विद्यापति ठाकुर' आदि; भा० : हिंदी, उर्दू, बंगला, फारसी; वि० : 'आरा नागरी प्रचारिणी सभा', 'आरा साहित्य परिषद' एवं 'अखिल भारतवर्षीय हरिनाम यश-संकीर्तन' आदि संस्थाओं के सम्मानित अधिकारी, सदस्य एवं उन्नायक; उच्च कोटि के भाव-प्रधान उपन्यासों के यशस्वी रचयिता; बेगूसराय में हुए चतुर्दश 'बिहार प्रादेशिक साहित्य सम्मेलन' के सभापति; मृत्युपर्यंत हिंदी सेवा में सक्रिय।

बल, अयोध्यानाथ



ज० : अक्तूबर १९२५; मीरपुर (कश्मीर); शि० : प्रिंस आफ वेल्स कालेज के स्नातक; प० : उर्दू 'प्रताप' से आरंभ; 'नया जमाना' (जालंधर) के संपादकीय विभाग में, १९५५ से दैनिक 'वीर अर्जुन' के संपादकीय विभाग में, संप्रति समाचार-संपादक; र० : कहानियां, निबंध, राजनीतिक विषयों पर टिप्पणियां; भा० : हिंदी, अंग्रेजी, उर्दू, संस्कृत, डोगरी।

बारपुते, राहुल



ज० : १३ जून १९२२; शि० : कृषि स्नातक; प० : पत्रकारिता के क्षेत्र में एकाएक पदार्पण; आरंभ में 'मजदूर संदेश' (इंदौर) में कार्य; बाद में 'जयभारत' में; 'प्रजामंडल पत्रिका' (इंदौर) से भी संबद्ध रहे; १९४७ के अंत में 'नई दुनिया' (इंदौर) में; संप्रति प्रधान सपादक, 'नई दुनिया'; भा० : मराठी, हिंदी, अंग्रेजी; या० : अमेरिका भ्रमण (१९६३); यात्रा-वृत्तात की लंबी श्रृंखला 'नई दुनिया' मे प्रकाशित; वि० . हिंदी पत्रकारिता को आधुनिक, बुद्धिवादी तथा उच्चस्तरीय बनाने में विशिष्ट योगदान; पत्रकारिता के उच्चतम मान-दंडों की स्थापना तथा अनुवर्तन।

बालूपुरी, सुरेंद्र



ज० : ३१ जुलाई १९१३; ग्रा० बालूपुर, जि० बलिया (उ० प्र०); पि० : राय वासुदेव नारायण; शि० : इंटरमीजिएट, स्नातक, विश्व-भारती, शातिनिकेतन; प० : 'विद्या' मासिक, 'टार्च (अंग्रेजी साप्ता०) तथा 'आलोक' (साप्ता०) का, संपादन-प्रकाशन; दैनिक 'एडवास' (कलकत्ता) और 'पटना टाइम्स' का संपादन, 'न्यूज क्रानिकल' में काम करते समय 'नवभारत टाइम्स' के भी संपादक रहे; 'डान (अब पाकिस्तान में), 'जागृति' (हावड़ा, दैनिक), 'हिंदुस्तान स्टैंडर्ड' (कलकत्ता) आदि के संपादन में सहयोग; समाजवादी देशों के पत्रों का भी प्रतिनिधित्व किया। र० : 'नई धारा', 'तूणीर; 'पृथ्वी का इतिहास' जापान का इतिहास 'मुस्तकिल रोजगार', 'साहित्य का प्रयोजन' आदि; या० : दुनिया के सभी महत्वपूर्ण देश; वि : लेनिन की कृतियों के हिंदी संस्करण का संपादन; विदेशी विश्वविद्यालयों में 'विजिटिंग प्रोफेसर'; संस्थापक, अ० भा० लेखक संघ; स्वा-धीनता सेनानी; जेल यात्राएं।

बियाणी, ब्रजलाल



ज० : ६ दिसंबर १८६५; हायसूं, जि० अकोला; शि० : बी० ए०; प० : अकोला से 'राजस्थान', 'नवराजस्थान', 'मातृभूमि' तथा 'प्रवाह' मासिक का संपादन; अंतिम दिनों में इंदौर से 'विश्व विलोक' का संपादन-प्रकाशन; र० : 'जेल में', 'कल्पना कानन', 'विनोबा भावे', 'विविधा' आदि; वि० : विदर्भ केसरी; स्वाधीनता सेनानी; जेल-यात्राएं; नि० : १६६७।

(बेढब बनारसी), गौड़ बाबू कृष्णदेवप्रसाद



ज० : प्रबोधिनी एकादशी, संवत् १९५२, काशी; पि० : बाबू जगदेवप्रसाद गौड़; शि० : एम० ए० (अंग्रेजी व राजनीतिशास्त्र), बी० टी०; हिंदी साहित्य सम्मेलन की भी कई परीक्षाएं; प० : संपादक-संस्थापक, 'भूत' (काशी, साप्ताहिक, प्र० का० संवत् १९८७, सन् १९३०), 'खुदा की राह पर' (पाक्षिक, प्र० का० संवत् १९९१), 'तरंग' (पाक्षिक, प्र० का० संवत् १९९५), 'भारत जीवन' (काशी, साप्ताहिक), दैनिक 'आज' में भी कई वर्ष तक हास्य-व्यंग्यपूर्ण टिप्पणियां, र० : सवा सौ से ऊपर हास्य-व्यंग्य-प्रधान कहानियां और इतनी ही कविताएं, 'बनारसी एक्का' (कहानी-संग्रह), 'बेढब की बहक' (कविता संग्रह) तथा अन्य प्रमुख रचनाएं हैं—'खड़ी बोली कविता की प्रगति', 'शिवाजी की जीवनी' एवं 'साहित्य-संचय' (तीन भाग); भा० : हिंदी, अंग्रेजी, संस्कृत; वि० : हिंदी की हास्य-व्यंग्य पत्रकारिता में अग्रगण्य; नि० : १९६८।

बेनीपुरी, रामवृक्ष



ज० : पौष कृष्ण पंचमी, शनिवार, वि० सं० १९५८; ग्रा० बेनीपुर, जि० मुजफ्फरपुर (बिहार); पि० : फूलवंतसिंह; प० संपादक, 'तरुण भारत', 'बालक', 'युवक', 'किसान मित्र', 'गोलमाल', 'कैदी' 'लोकसंग्रह', 'कर्मवीर', 'योगी', 'तूफान', 'जनता, (दैनिक व साप्ता०), 'हिमालय', 'जनवाणी', 'चुन्नू-मुन्नू', 'नई धारा' आदि; र० : लगभग १०० पुस्तकें; उल्लेख्य—'पतितों के देश में', 'लाल तारा', 'माटी की मूरतें', 'कैदी की पत्नी', 'चिता के फूल', 'तथागत', 'विजेता', 'कार्ल मार्क्स', 'नेत्रदान', 'बेटे हों तो ऐसे' आदि; भा० : हिंदी, अंग्रेजी; या० : दो बार यूरोप-यात्रा; वि० : स्वाधीनता संग्राम में १२ बार जेल-यात्राएं; वि० : साहित्य वाचस्पति; समाजवादी दल के सक्रिय नेता; बिहार विधान-सभा सदस्य (१९५७-६२), हिंदी के विशिष्ट शैलीकार, प्रमुख हिंदी सेवी; नि० : ७ सितंबर १९६८।

बोंद्रिया, माणिकचंद्र



ज० : २९ मार्च १९१७; ग्रा० बारकेड़ी, जि० खंडवा; शि० : मैट्रिक, कृषि स्नातक; प० : कृषि-पत्रकारिता की प्रेरणा गांधीजी से मिली और १९४६ में नागपुर से कार्यारंभ; संपादक, 'कृषक' मासिक (जून १९४६); १९५२ में 'कृषक' मासिक से साप्ताहिक हुआ, बाद में 'कृषक' कार्यालय भोपाल स्थानांतरित और उसका नया नाम 'कृषक जगत' हुआ; या० : अमेरिका, ब्रिटेन, डेनमार्क, पश्चिमी जर्मनी, इस्राइल, जापान, फिलिपाइन्स आदि; वि० : संस्थापक-सचिव भारत कृषक समाज; आकाशवाणी के ग्रामीण कार्यक्रमों के परामर्शदाता; पिछले २९ वर्षों से कृषि पत्रकारिता के नये मानदंड स्थापित करने में व्यस्त; सदस्य, तोक्यो अंतर्राष्ट्रीय खेतिहर पत्रकार सम्मेलन (१९७२)।

भगवानदीन, लाला



ज० : श्रावण शुक्ला ६, संवत् १९२३ (अगस्त १८६७ ई०); बरबरगांव (जिला फतहपुर); शि० : एंट्रेंस; प० : संपादक, 'लक्ष्मी-उपदेश लहरी' (गया, मासिक, १९०५); र० : 'धर्म और विज्ञान', 'वीर प्रताप', 'वीर क्षत्राणी', 'अलंकार मंजूषा', 'सूर पंच-रत्न' (संग्रह), 'सूक्ति-सरोवर' (संग्रह संपादित) आदि; रामचंद्रिका, कविप्रिया, रसिकप्रिया, कविता-वली तथा बिहारी सतसई पर प्रामाणिक टीकाएं; भा० : हिंदी, उर्दू, फारसी; वि० : आजीविका का माध्यम उर्दू-फारसी रहते हुए भी हिंदी की सेवा; उत्कृष्ट गद्यकार और वीर-रस के श्रेष्ठ कवि; नि० : २८ जुलाई १९३०।

भगेरिया, मातादीन



ज० : ९ अप्रैल, १९१२; चिड़ावा, राजस्थान; पि० : गोविंददास भगेरिया; शि० : बी० ए० आनर्स (हिंदी); प० : आरंभ १९३२ से; तभी हार्नीमैन के साथ कांग्रेस बुलेटिन का संपादन, सह-संपादक 'श्री वेंकटेश्वर समाचार' (१९३३); 'लोकवाणी', 'नेशनल काल' तथा दैनिक 'हिंदुस्तान' के लेखक एवं संवाददाता; प्रधान संपादक, 'उत्थान' (१९३७-४६), 'आलोक', 'प्रगति', 'संघर्ष', 'आनंदमंगल', 'नवयुग', 'हिंदी टाइम्स', दैनिक 'नवभारत' (१९४८); 'नवभारत टाइम्स' (१९५१ के उत्तरार्द्ध तक) 'युवा प्रहरी', साप्ताहिक, 'सोशलिस्ट भारत (१९७०-७४); र० : दस कविता संग्रह, नौ नाटक तथा १३ पुस्तकें कथा-साहित्य पर; महाकाव्य 'तरुण तपस्वी', 'क्रांति-शांति-गीत' (पुरस्कृत), 'राज्यश्री' का चीनी भाषा में अनुवाद; भा० : हिंदी, संस्कृत, अंग्रेजी, गुजराती, बंगला, राजस्थानी आदि; या० : चीन, रूस, आदि देशों की यात्रा; वि० : अपने प्रखर और भावपूर्ण अग्रलेखों के लिए विख्यात; स्वाधीनता संग्राम में जेल-यात्रा; प्रचार-मंत्री एवं कोषाध्यक्ष हिंदी प्रचारिणी सभा, दिल्ली; सभापति हिंदी पत्रकार-संघ, दिल्ली; सदस्य, सेंट्रल प्रेस एडवाइजरी बोर्ड; संयुक्त मंत्री न्यूज पेपर एडीटर्स कान्फरेंस; नि० : ११ अप्रैल १९७४।

भट्ट, पं० केशवराम



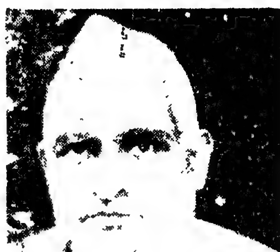
ज० : आश्विन कृष्ण पंचमी, संवत् १९११ (बुधवार, २४ अक्तूबर १८५५); शि० : १८७२ ई० में एंट्रेंस; एफ० ए० में अनुत्तीर्ण होने पर पढ़ाई छोड़ी; प० : 'बिहार बंधु' (कलकत्ता, १८७३ तथा पटना १८७४) का प्रकाशन किया। प्रारंभ में संपादन का भार हसनअली को सौंपा और फिर १८७५ से अपने हाथ में लिया; र० : 'विद्या की नीव', भारतवर्ष का इतिहास' (बंगला से अनुदित), 'शमशाद सौसन' (नाटक), 'सज्जाद संबुल' (नाटक), 'हिंदी का व्याकरण', 'रासेलस' (अनुवाद) आदि प्रमुख हैं; भा० हिंदी, उर्दू, फारसी बंगला आदि; वि० : बिहार मे हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए विशेष उद्योग किया; नि० : १९०५ ई०।

भट्ट, पं० बालकृष्ण



ज० : संवत् १९०१ (३ जून १८४४); प्रयाग; पि० : वेणीप्रसाद भट्ट; शि० : एंट्रेंस; प० : भारतेंदु की 'कविवचन सुधा' मे प्रथम लेख 'कलिराज की सभा' से आरंभ संपादन; 'हिंदी प्रदीप' (प्रयाग मासिक, सितंबर १८७७), 'सम्राट्' (कालाकांकर साप्ताहिक); र० : 'कलिराज की सभा', 'रेल का विकट खेल', 'बाल विवाह नाटक', 'सौ अजान एक सुजान', 'नूतन ब्रह्मचारी', 'जैसा काम वैसा परिणाम', 'आचार विडंबना', 'भाग्य की परख,' 'षड्दर्शन संग्रह (भाषानुवाद), 'पद्मावती', 'शर्मिष्ठा', 'चंद्रसेन' (तीनों नाटक) आदि प्रमुख 'भट्ट निबंधावली' (संपादित); भा० : हिंदी, संस्कृत, उर्दू, फारसी; वि० : हिंदी के श्रेष्ठतम निबंधकारों में से एक; 'हिंदी प्रदीप' के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना, हिंदी-प्रेम तथा निर्भीकता का संचार; नि० : १४ सितंबर १९१४।

भट्ट, मोहनलाल



ज० : राजपीपला, गुजरात में; शि० : कोटा तथा इंदौर; १९२० में मेडिकल का चौथा वर्ष छोड़कर राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लिया; प० : अहमदाबाद से 'नवजीवन' 'यंग इंडिया' आदि के प्रकाशन में गांधीजी के साथ कार्य। गांधीजी के साथ 'नवजीवन ट्रस्ट' के संस्थापकों में से; इसके अतिरिक्त कई दैनिक एवं साप्ताहिक पत्रों के संचालक एवं मार्ग-दर्शक; संपादक 'राष्ट्रभारती' तथा 'राष्ट्रभाषा; वि० : राष्ट्रीय आंदोलन के सेनानी। कई बार जेल यात्राएं की; प्रधानमंत्री राष्ट्रभाषा प्रचार-समिति (वर्धा, १९५३ से)।

भटनागर, बांकेबिहारी



ज० : दुर्गाष्टमी, तदनुसार २२ अक्तूबर १९०९; गाजीपुर (उ० प्र०); पि० : बनवारीलाल; शि० : एम० ए० (अंग्रेजी); प० : १९३० में 'उषा' दिल्ली (मासिक) से प्रारंभ; संपादन, १९३१ मे 'मेरठ कार्मिज मैगजीन', जो निर्भीक अग्रलेख के कारण ब्रिटिश सरकार द्वारा फौरन जब्त कर ली गयी; १९३५ मे 'माधुरी' लखनऊ मे, १९४५ में दैनिक 'हिंदुस्तान' में वरिष्ठ उप-संपादक। १९५० मे 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' में कार्यकारी संपादक तथा १९५३ से १९६६ तक प्रधान संपादक, र० : 'बीच की धारा', 'शांति के पुजारी', 'युद्धके विजेता', 'क्या करें ?' (लियो टाल्सटाय के 'ह्वाट टु डू' का अनुवाद), 'मेवाड़ का सूर्य' तथा 'जय सोमनाथ' आदि; भा० : हिंदी, अंग्रेजी, उर्दू, फारसी; वि० : निदेशक प्राचार्य, भारतीय पत्रकारिता विद्यापीठ (इंडियन इंस्टीट्यूट आफ जर्नलिज्म) तथा महामंत्री, हिंदी भवन (दिल्ली)।

भटनागर, यतींद्रकुमार



ज० : २ अप्रैल १९२९; इंदौर (म०प्र०); पि० : द्वारकाप्रसाद 'सेवक'; शि० : बी० ए०; जे० डी० (डिप्लोमा इन जर्नलिज्म) पंजाब वि० वि० पत्रकारिता का विशेष प्रशिक्षण इंडियाना विश्वविद्यालय, अमेरिका में; प० : अवैतनिक सहायक संपादक, मासिक 'आपबीती' (बंबई, १९४६); उप-संपादक दैनिक 'विश्वमित्र' (बंबई, १९४७); बाद में 'विश्वमित्र' (दिल्ली), 'भारतवर्ष', 'अमर भारत' 'जनसत्ता' में उप-संपादक, सहायक संपादक, समाचार संपादक आदि पदों पर कार्य; १९५२ से दैनिक 'हिंदुस्तान' के संवाददाता, संप्रति ब्यूरो प्रमुख; र० : 'बर्थ आफ ए नेशन' तथा 'मुजीब, द आर्किटेक्ट आफ बांगलादेश' (अंग्रेजी), बंगलादेश संबंधी काव्य-संग्रह 'क्रांति के स्वर' का सह-संपादन-संकलन-अनुवाद; भा० : हिंदी, अंग्रेजी; या० : अमेरिका, जापान, हांगकांग, दक्षिण वियतनाम, सिंगापुर, पूर्वी और पश्चिमी जर्मनी, चेकोस्लोवाकिया, मिस्र, इटली, फ्रांस, ब्रिटेन स्विट्जरलैंड, नेपाल, बंगलादेश, दक्षिण कोरिया, आस्ट्रेलिया, इंडोनेशिया, थाईलैंड।

भटनागर, शांती



ज० : २३ सितंबर १९१५; मेरठ; (उ० प्र०) पि० : [illegible]लाल भटनागर, पति : बांकेबिहारी भटनागर; शि० : एम० ए० हिन्दी, संपादन पाक्षिक पत्रिका 'कला' (लखनऊ, डेढ़ वर्ष) तक; 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' (१९५६ से अब तक महिला एवं बालपृष्ठ), 'सतरंगा आंचल' (दिल्ली); र० : 'चांद', 'माधुरी', 'दैनिक हिंदुस्तान', 'साप्ताहिक हिंदुस्तान', 'धर्मयुग', 'सारिका', 'नीहारिका', 'आजकल', 'बाल भारती', आदि में लेख, कहानियां, कविताएं, 'मां का आंचल', 'नन्हे जासूस', 'भुतहा हवेली', 'नीला घोड़ा लाल सवार', 'तीसरी लाश', 'घाटी का रहस्य' आदि बाल-उपन्यास; अनेक प्रसिद्ध अंग्रेजी कृतियों के हिंदी अनुवाद, जैसे 'रेबेका', 'वार एंड पीस', 'रुक्मिणी' आदि। भा० : हिंदी, अंग्रेजी।

भार्गव, दुलारेलाल



ज० : १८९५, लखनऊ; शि० : मैट्रिक; प० : छात्र-जीवन में 'भार्गव' पत्रिका का संपादन; बाद में कई वर्षों तक 'माधुरी' (नवलकिशोर प्रेस) तथा 'सुधा' (१९२७) का संपादन; र० : 'दुलारे दोहावली' (देव पुरस्कार) आदि, वि० 'गंगा पुस्तक माला' के माध्यम से साहित्यिक नक्षत्रों को प्रकाश में लाये, नि० ६ सितंबर १९७५।

भारती, जयप्रकाश



ज० : १९३६; मेरठ; पि० : रघुनाथसहाय गुप्ता, शि० : बी० एस-सी०, साहित्यरत्न, पत्रकारिता डिप्लोमा, सहज और पठनीय लेखन, डिप्लोमा, सामाजिक कार्य, डिप्लोमा आदि; प० : दैनिक 'प्रभात' और 'नवभारत टाइम्स' में प्रशिक्षण, उप-संपादक 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' (१९६२), इसी में विज्ञान संपादक और सह-संपादक (१९६७-७२); संपादक, 'नंदन' (१९७२ से अब तक), र० : लगभग २० पुस्तकें लिखीं और ४०० संपादित; प्रमुख हैं—'हिमालय की पुकार' (यूनेस्को पुरस्कार), 'चलो चांद पर चलें' (अ० भा० बाल साहित्य पुरस्कार), 'अनंत आकाश : अथाह सागर' (पुरस्कृत); विज्ञान की विभूतियां', 'ऐसे थे हमारे बापू', 'हमारे गौरव के प्रतीक', संपादन-सहयोग, 'हिंदी पत्रकारिता : विविध आयाम'; भा० : हिंदी, अंग्रेजी; वि० : हिंदी पत्रकारिता समिति के सक्रिय सदस्य; विशिष्ट बाल साहित्यकार।

भारती, डा० धर्मवीर



ज० : २५ दिसंबर १९२६; प्रयाग; पि० : चिरंजीलाल वर्मा; शि० : प्रारंभिक शिक्षा घर पर, १९४२ के आंदोलन में भाग लेने से एक वर्ष पढ़ाई रुकी; प्रयाग वि० वि० से बी० ए० (१९४५, हिंदी में सर्वप्रथम). एम० ए० हिंदी (१९४७, प्रथम श्रेणी), सिद्ध साहित्य की खोज पर भी पी-एच० डी०; प० : पद्मकांत मालवीय के पत्र 'अभ्युदय' में पार्ट टाइम काम; इलाचंद्र जोशी के 'संगम' में सहकारी संपादक (१९४८-५०); आठ नौ वर्ष प्रयाग वि० वि० में हिंदी प्राध्यापन के बाद संपादक, 'धर्मयुग' (१९६० से अब तक); 'आलोचना' और 'निकष' के संपादन मे भी सहयोग; र० : लगभग दो दर्जन पुस्तकें; प्रमुख—'बंद गली का आखिरी मकान', 'अंधायुग', 'कनुप्रिया', 'गुनाहों का देवता', 'सूरज का सातवां घोडा', 'पश्यंति', 'प्रगतिवाद एक समीक्षा', 'नदी प्यासी थी', 'सिद्ध साहित्य', 'युद्ध-यात्रा'; भा० : हिंदी, अंग्रेजी; या० : इंग्लैंड तथा यूरोप, इंडोनेशिया, थाईलैंड, बंगलादेश मारिशस आदि, वि० 'युद्ध-यात्रा' नाम से बंगलादेश की विभीषिकाओं की रिपोर्टिंग, वह भी एकदम मोर्चे से।

भारती, शीरीन



ज० : ३ फरवरी १९६४; चांपा, जि० बिलासपुर; पति : लक्ष्मीकांत 'सरस'; शि० : एम० ए० साहित्य-रत्न; प० : दैनिक 'नवभारत' (रायपुर) के संपादक-मंडल में कार्य; संपादिका, 'अंकन' (मद्रास त्रैमासिक), र० : एक बाल-उपन्यास तथा एक बाल-कहानी संग्रह प्रकाशित; अक्का और 'द बोरा' उपन्यास शीघ्र प्रकाश्य प्रमुख। महत्वपूर्ण पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएं प्रकाशित।

भारतीय, रामसिंह



ज० : संवत १९६३ के कार्तिक की दीवाली; ग्रा० अचरू, मथुरा के पास; पि० : रतनसिंह; शि० : मैट्रिक, पंजाब वि० वि० लाहौर के उपदेशक विद्यालय में संस्कृत पढ़ी; प० : 'तरुण राजस्थान' में कुछ दिन काम (१९३०), दिल्ली के 'नवयुग' में एक साल तक, उसके बाद साप्ताहिक 'नवज्योति' (राज०), तथा आगरा के 'सैनिक' (१९३७-४२) से संबद्ध; दैनिक 'हिंदुस्तान' दिल्ली में (१९४२-६०), 'संपूर्ण गांधी वाङ्मय' योजना में (१९६०-६८), एक-डेढ़ साल दूसरे पत्र-पत्रिकाओं का संपादन, १९७० से पटना 'प्रदीप' के संपादक; वि० : नमक सत्याग्रह के समय एक साल की कैद।

भारतेंदु हरिश्चंद्र



ज० : ९ सितंबर, १८५० ई०; काशी; पि० : गोपालचंद्र (गिरधरदास); शि० : प्रारंभिक शिक्षा घर पर ही, फिर स्कूल में भरती हुए और राजा शिवप्रसाद से भी शिक्षा लेने लगे। दस वर्ष की आयु में क्वीस कालेज में भरती होकर संस्कृत, अंग्रेजी पढ़ने लगे। माता के साथ पुरी आदि की यात्रा पर जाने से नियमित पढ़ाई का क्रम टूट गया। प० : 'कविवचन सुधा' (मासिक, पाक्षिक, साप्ताहिक); आपने संवत् १९२४ (१५ सितंबर १८६७) में १७ वर्ष की अवस्था में हिंदी की इस ऐतिहासिक मासिक पत्रिका का प्रकाशन एवं संपादन प्रारंभ किया था; 'हरिश्चंद्र मैगजीन' (काशी, मासिक, १५ अक्तूबर १८७३; १५ मई १८७४), 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' (काशी, मासिक, जून १८७४-१८८०), 'बालाबोधिनी' (काशी, मासिक, १ जनवरी १८७४); र० : मौलिक और अनूदित लगभग १७५ पुस्तकें; भा० : हिंदी, उर्दू, संस्कृत, फारसी, अंग्रेजी आदि; वि० : अल्पायु में ही आपने ऐतिहारिक महत्व के हिंदी पत्रों की स्थापना की तथा अनेक श्रेष्ठ पत्रकारों एवं पत्रों को प्रेरित किया; हिंदी साहित्य के आधुनिक युग के प्रवर्तक भारतेंदु हिंदी पत्रकारिता के भी आलोक-स्तंभ हैं; नि० : ६ जनवरी १८८५।

भारद्वाज, श्रीदत्त



ज० : १८ अक्तूबर १९१७; सातरोद, खुर्द (हरियाणा); पि० : रामनारायण शास्त्री; शि० : प्रभाकर एवं बी० ए० (पंजाब वि० वि०); प० : सत्यदेव विद्यालंकार की देखरेख में दैनिक 'हिंदुस्तान में पत्रकारिता का प्रशिक्षण (१९३९), दैनिक 'विश्वमित्र' (नयी दिल्ली) में उप-संपादक (१९४१) और बाद में मुख्य उप-संपादक, उप-संपादक दैनिक 'नवभारत टाइम्स' (१४ जनवरी १९४७), मुख्य उप-संपादक (१९५७ से अब तक); भा० : हिंदी, अंग्रेजी।

मधुकर, कनक



ज० : १२ जुलाई १९१२; बनेडा (राज०) शि० : मैट्रिक, साहित्याचार्य; प० : १९३७ मे 'नव ज्योति' तथा 'रियासती' आदि से आरंभ, संपादन-संचालन 'नवजीवन' (अजमेर, १९३९; उदयपुर, १९४८ से अब तक); वि० : १९४२ में १४ मास का कारावास, रियासती आंदोलन में सक्रिय, गद्य-गीत लेखक।

'मनोहर', रामजी मिश्र



ज० : दिसंबर १९३१; पटना; पि० : डा० विश्वेश्वर दत्त मिश्र; शि० : स्वाधीनता आंदोलन में शिक्षा छूटी, बाद में साहित्तभूषण तथा साहित्य-रत्न; प० : १९४५ में दैनिक 'आर्यावर्त्त' के संवाददाता-कार्य से आरंभ, 'इंडियन नेशन' और 'सर्च-लाइट' के संवाददाता भी रहे, उप संपादक, दैनिक 'राष्ट्रवाणी' (पटना, १९४७-४९), दैनिक 'विश्व-मित्र' (पटना, १९४९-५२), दैनिक 'प्रदीप' (पटना १९५२-५९); १९५९ में फिर 'आर्यावर्त्त' में संवाददाता, मुख्य संवाददाता और अब समाचार संपादक; इसके अतिरिक्त देश के अनेक पत्रों के पटना स्थित संवाददाता रहे; वि० : पत्रकारिता विरासत में मिली, पत्रकारिता-संग्रहालय में रुचि ।

'मस्त', देवीदयाल चतुर्वेदी



ज० : २० जुलाई १९११; ग्रा० देवरी, जि० सागर पि० : गौरीशंकर चतुर्वेदी; शि० : मैट्रिक, जबलपुर,; प० : सह-संपादक, 'लोकमत', 'सरस्वती', (अप्रैल १९३८) में संपादकीय स्तंभ, संपादक 'स्काउट मित्र' (छिंदवाडा), 'नवराजस्थान' (अकोला, सितंबर १९३५); कार्य दैनिक 'नव-भारत' (नागपुर, १९३८); सहकारी संपादक 'माया' (इलाहाबाद, दिसंबर १९४१), संपादक पाक्षिक 'बिजली' (अप्रैल, १९४४ पटना, बिहार), इंडियन प्रेस इलाहाबाद में कार्यारंभ (१९४५), 'बिजली' का पुनः संपादन, इलाहाबाद से (जनवरी १९४६ तक), संपादक 'बाल-सखा' (अप्रैल, १९४६), संपादक एवं प्रकाशक 'मंजरी' (जनवरी १९४८); संपादक 'सरस्वती' (मार्च, १९५२), जून १९५५ में बख्शीजी के साथ आप भी 'सरस्वती' से अलग हो गये। १९५६ में म० प्र० सूचना विभाग में संयुक्त संपादक, बाद में संपादक १९६८ में सेवा-निवृत्त; र० : ३७ पुस्तकें, जिनमें से 'ज्वार भाटा', 'हवा का रुख' तथा 'रानी दुर्गावती' (पुरस्कृत); वि० : मध्य प्रदेश राष्ट्रभाषा सम्मेलन (८ नवंबर १९७५, नेपानगर) द्वारा अभिनंदन ।

'महारथी', रामचंद्र शर्मा



ज० : १२ जुलाई १८६७; नकोदर (पंजाब); शि० : बी० ए० (हिंदू कालेज, दिल्ली, १६१५); प० : संपादक, 'महारथी' (दिल्ली, मासिक, सितंबर १६२५ से १६३०); १६३० में प्रतिबंध लगने पर 'महारथी' दैनिक हो गया (४ जून १६३०-६ जनवरी १६३१); १६३६ में छह मास तक साप्ता० रूप में चला; दिसंबर १६३७ से अप्रैल १६३८ तक 'सैनिक' आगरा का संपादन (नाम जीवाराम पालीवाल का जाता था); संपादक, 'मां' (दिल्ली, मासिक), 'चरित्र-निर्माण' (ऋषिकेश, मासिक), 'दिल्ली समाचार' (साप्ता०); वि० : 'महारथी' के माध्यम से आज के अनेक मूर्धन्य साहित्यकार तब प्रकाश में आये; 'महारथी' स्वतंत्रता-सेनानियों का मुखपत्र बना और उसके संपादक पर कई मुकदमे चले; उत्तम मुद्रण और साज-सज्जा के मानदंड स्थापित किये।

मंत्री, गणेश



ज० : ८ दिसंबर १६३८; कोटा (राज०); शि० : एम० ए० (समाजशास्त्र), एल-एल० बी०; प० : कुछ समय तक कोटा मे एक स्थानीय साप्ताहिक का संपादन; १६६३ से 'धर्मयुग' के संपादकीय विभाग से संबद्ध; र० : 'रूस-चीन विवाद' (१६७४); 'विषमता' (१६७४) संपादित; 'समता का दर्शन' (१६७२); सामाजिक-आर्थिक समस्याओं व अंतर्राष्ट्रीय राजनीति पर विवेचनात्मक निबंध, सामयिक समीक्षाएं, भेंटवार्ताएं, सर्वेक्षण-लेख एवं रिपोर्ताज प्रकाशित एवं चर्चित; वि० : १६६० में अंग्रेजी की अनिवार्य पढ़ाई के विरुद्ध सत्याग्रह; बीड़ी मजदूरों के सामाजिक आर्थिक जीवन पर पूंजीवादी प्रवृत्तियों के प्रभाव का समाजशास्त्रीय अध्ययन।

माथुर, राजेंद्र



ज० : ७ अगस्त १९३५; बदनावर (म० प्र०); शि० : एम० ए० (अंग्रेजी); प० : १९५५ मे 'नई दुनिया' में पार्ट टाइम लेखन; १९७० में प्राध्यापन से मुक्त होकर 'नईदुनिया' में ही पूर्णकालिक सह-संपादक, अग्रलेख-लेखक; र० : 'गांधी जी की अंतिम जेल-यात्रा'; भा० : हिंदी, अंग्रेजी; या० : थाईलैंड।

मालवीय, कृष्णकांत

ज० : जून १८९३, प्रयाग; प० : मदनमोहन मालवीय द्वारा स्थापित 'अभ्युदय' (प्रयाग) का २५ वर्ष तक संपादन (१९०९), 'किसान' और 'मर्यादा' का भी संपादन; र० : 'सुहागरात', 'बहुरानी की सीख', 'मनोरमा के पत्र' आदि, वि० : अल्पायु में ही 'अभ्युदय' का भार संहाला तथा उसे निष्पक्ष, निर्भीक एवं उदारवादी पत्र बनाया; स्वाधीनता संग्राम सेनानी।

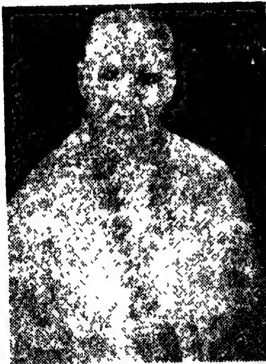


मालवीय, पद्मकांत



ज० : १९१०, प्रयाग; पि० : कृष्णकांत मालवीय; प० : आपके संपादन काल में 'अभ्युदय' एक वामपंथी पत्र बन गया था; गांधीजी एवं उनके असहयोग से इसका प्राय: तीव्र सैद्धांतिक मतभेद रहता था; किंतु उनके आंदोलन की जिस बात को आप राष्ट्र तथा जनता के हित में समझते थे 'अभ्युदय' उसकी श्लाघा भी करता था; १९४७ में पत्रकारिता से संन्यास; र० : 'त्रिवेणी', 'कूजन', 'प्याला', 'प्रेमपत्र', 'आत्मनिवेदन', 'हार'; वि० : सारा जीवन राष्ट्रीय संग्राम, पत्रकारिता तथा साहित्य-सेवा में लगाया।

मालवीय, पं० मदनमोहन



ज० : २५ दिसंबर १८६१ ई०; प्रयाग; पि० : पं० बैजनाथ मालवीय; शि० : बी० ए० एल० एल० बी०; प० : 'हिंदोस्थान', कालाकांकर, दैनिक, १८८७-८९); 'अभ्युदय' (प्रयाग, साप्ता०, १९०७); इसके अतिरिक्त 'महारथी' दिल्ली, मासिक, 'सनातन धर्म' (काशी, साप्ताहिक), 'विश्वबंधु' (लाहौर), 'लीडर' और 'हिंदुस्तान टाइम्स' (दोनों अंग्रेजी) तथा क्रमश: इनके हिंदी संस्करण 'भारत' और 'हिंदुस्तान' एवं 'मर्यादा' आदि पत्रों के मूल प्रेरणा-स्रोत आप ही रहे; वि० : 'हिंदी साहित्य-सम्मेलन प्रयाग', 'काशी हिंदू विश्वविद्यालय' तथा 'सनातन धर्म सभा' जैसी राष्ट्रीय महत्व की संस्थाओं के संस्थापक; स्वाधीनता संग्राम के शीर्षस्थ नेताओं में से एक; हिंदी के कट्टर पक्षधर; नि० : १२ नवंबर १९४६।

माहेश्वरी, रामगोपाल



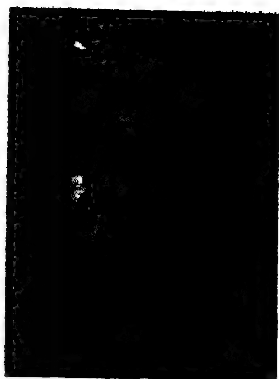
ज० : २० नवंबर १९११; शि० : बी० ए०, एल-एल० बी०; प० : संपादक, 'नवराजस्थान' (अकोला, १९३४); संपादन और आरंभ, दैनिक नवभारत' (नागपुर, १९३८; जबलपुर, १९५०; भोपाल १९५६; रायपुर १९५९; इंदौर १९६०); प्रबंध संपादक, 'एम० पी० क्रानिकल' (भोपाल, १९५७; रायपुर १९७४); भा० : हिंदी, अंग्रेजी, मराठी; वि० : स्वाधीनता सेनानी, जेल-यात्राएं; अनेक पत्रकार संस्थाओं के पदाधिकारी।

'मिलिंद', जगन्नाथप्रसाद



ज० : कार्तिक पूर्णिमा, सं० १९६४ (१९ नवंबर १९०७) मुरारनगर, जि० ग्वालियर; शि० : मैट्रिक (पूना), उच्च शिक्षा, (काशी विद्यापीठ) अध्यापन, प० : संपादक 'भारती' (लाहौर), 'भारती' (ग्वालियर) मासिक तथा साप्ताहिक एवं अर्द्ध-साप्ताहिक 'जीवन' (ग्वालियर); 'मध्यप्रदेश संदेश' के संपादन-परामर्शदाता; र० : 'प्रताप-प्रतिज्ञा', 'समर्पण', 'गौतमनंद', 'अशोक की आशा', 'वीर चंद्रशेखर', 'जय-जनतंत्र', 'जीवन-संगीत', 'नवयुग के गान', 'बलिपथ के गीत', 'भूमि की अनुभूति', 'मुक्तिका', 'नई किरण', 'स्वतंत्रता की बलिवेदी', 'मृत्युजय मानव', 'चिंतन-कण', 'सांस्कृतिक प्रश्न' आदि ; भा० : हिंदी, संस्कृत, उर्दू, मराठी, बंगला, गुजराती, अंग्रेजी ; वि० : अध्यक्ष, मध्यभारत श्रमजीवी पत्रकार संघ; स्वतंत्रता सेनानी; कई बार जेल यात्राएं; समाजवादी नेता।

मिश्र, कृष्णबिहारी



जं० : १८९० ; गंधौली (सीतापुर) उ० प्र० ; पि० पं० रसिकबिहारी मिश्र ; शि० : बी० ए०, एल-एल० बी० ; प० : 'सम्राट', 'मर्यादा', 'इंदु' और 'अभ्युदय' से लेखन प्रारंभ ; संपादन, 'साहित्य समालोचक' (१९२५-२८) ; 'माधुरी' के संपादक भी रहे ; कुछ दिनों 'आज' में भी ; र० : 'मिश्रबंधु विनोद', 'देव और बिहारी', 'मतिराम ग्रंथावली', 'मोहन विनोद', 'नटनागर विनोद', 'गंगाभरण', 'नवरस तरंग', 'चीन का इतिहास' आदि ; वि० : ब्रजभाषा साहित्य के मर्मज्ञ ; हिंदी पत्रकारिता में समीक्षा-परंपरा के उन्नायक ; कट्टर हिंदीप्रेमी ; नि० : २८ मई १९५९ ।

मिश्र, गंगाशंकर



ज० : ज्येष्ठ कृष्णा १४ संवत् १९४४ ; भगवंतनगर हरदोई (उ० प्र०) ; शि० : एम० ए० (प्रथम श्रेणी), काशी हिंदू वि० वि० ; प० : मालवीयजी की प्रेरणा से 'अभ्युदय' में लिखना प्रारंभ ; 'माडर्न रिव्यू' व 'सरस्वती' में खोजपूर्ण लेखन ; १९३७ मे 'आज' में 'एक किताबी कीड़ा' के नाम से भारतीय संस्कृति के मूल तत्वों पर खोजपूर्ण स्तंभ ; संपादक, 'सन्मार्ग' (काशी, १९४६), दैनिक 'सन्मार्ग' (काशी, कलकत्ता व दिल्ली), 'सिद्धांत' (मासिक) आदि ; नि० : १६ मार्च १९७२ ; काशी ।

मिश्र, गोबिंदनारायण



ज० : कार्तिक शुक्ल ३, संवत् १९१६ (नवंबर १८५९ ई०), कलकत्ता; **पि०** : पं० गंगानारायण मिश्र ; **शि०** : संस्कृत कालेज' के दूसरे दर्जे से ही पढ़ाई छोड़नी पड़ी, घर पर स्वाध्याय ; **प०** : सहकारी संपादक, 'सारसुधानिधि' (कलकत्ता, साप्ता० १३ अप्रैल १८७९,) यह पत्र फुफेरे भाई पं० सदानंद मिश्र ने इनकी भागीदारी में निकाला। इसके भागीदारों में पं० दुर्गाप्रसाद मिश्र और शंभूनाथजी भी थे। एक वर्ष के बाद सब भागीदार पृथक हो गये और पं० सदानंद ही इसके संपादक और स्वामी रह गये। इस तेजस्वी पत्र से भारतेंदुजी को बड़ा स्नेह और उदयपुराधीश महाराणा सज्जनसिंह को बड़ा लगाव था। पं० गोबिंदनारायण लिखने में निरंतर सहयोग देते रहे। आर्थिक संकट के कारण यह पत्र १२ वर्ष उपरांत १८९० ई० में बंद हो गया। 'उचितवक्ता' एवं 'धर्म दिवाकर' में भी लेख लिखते रहे; लेखों के साथ अपना नाम न देने के कारण आपकी उतनी ख्याति नहीं हो पायी, जितनी के ये अधिकारी थे; **र०** 'शिक्षा-सोपान', 'सारस्वत-सर्वस्व', 'कवि और चित्रकार' (अपूर्ण), 'प्राकृत विचार', 'विभक्ति-विचार', 'आत्माराम की टे-टें' (अपूर्ण) आदि; **भा०** : हिंदी, संस्कृत, बंगला, पंजाबी, गुजराती, मराठी अंग्रेजी आदि, **वि०** : हिंदी को आधुनिक और वैज्ञानिक ढंग से विकसित करने में मौलिक योगदान, 'विभक्ति-विचार' हिंदी-जगत में प्रचंड आंदोलन का सयोजक रहा है। 'कादंबरी' का-सा भाषा-सौष्ठव हिंदी में प्रचलित किया। प्रयाग में हुए द्वितीय 'अखिल भारतीय हिंदी साहित्य सम्मेलन' के सभापति, **नि०** : २३ सितंबर १९२३, कलकत्ता।

मिश्र, पं० चंद्रशेखर



ज० : पौष बदी २ संवत् १९१५; रत्नमाला, जि० : चंपारन ; पि० : पं० कमलाधर मिश्र; शि० : अनेक पंडितों से संस्कृत, व्याकरण, साहित्य, आयुर्वेद एवं ज्योतिष का अध्ययन; तदनंतर हिंदी-संस्कृत के काव्य-ग्रंथों का भी अनुशीलन। प० : संपादक, 'विद्याधर्मदीपिका' (पहले गोरखपुर, फिर रत्नमाला, मासिक १८८८ ई०); 'चंपारन-चंद्रिका' (साप्ता०); भा० : संस्कृत, हिंदी, बंगला उर्दू, आदि ; र० : संस्कृत में नीति, भक्ति, काव्य एवं वैद्यक संबंधी लगभग १२ पुस्तकों की रचना; हिंदी पद्य में लगभग ३० रचनाएं; वि० : अनेक धार्मिक संस्थाओं, पाठशालाओं, पुस्तकालयों की स्थापना ; आशुकवि एवं विख्यात लेखक।

मिश्र, जयकांत

ज० : २ जनवरी १९१७; मेथौरा विष्णुपुर; जि० सीतामढ़ी (बिहार); प० : उप-संपादक 'आर्यावर्त्त (पटना, १९४१), सहायक संपादक (१९४५) तथा संपादक (१९६८ से अब तक); संपादक साहित्यिक मासिक 'ज्योति-श्री'; र० : 'दक्षिणापथ' तथा 'बापू का जीवनदान'; भा० : हिंदी, संस्कृत, मैथिली, अंग्रेजी, बंगला, : या० : सोवियत रूस (मध्य एशिया)।

मिश्र, द्वारिकाप्रसाद



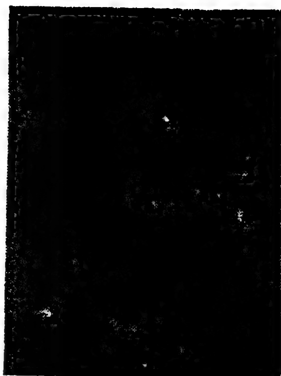
ज० : ५ अगस्त १६०१; ग्रा० पड़री, जि० उन्नाव (उ० प्र०); पि० : अयोध्याप्रसाद; शि० : बी० ए०; एल-एल बी० ; प० : १६२० में 'अमृत-बाजार पत्रिका' से आरंभ; संपादक, 'श्रीशारदा' (मासिक, १६२२), 'लोकमत' जबलपुर (दैनिक, १६३०), 'सारथी' (साप्ता०, १६४२) आदि; र० : 'कृष्णायन,' 'अनूदिता', 'स्टडीज इन प्रोटो-हिस्ट्री आफ इंडिया'; भा० : हिंदी, संस्कृत, उर्दू, अंग्रेजी; वि० : स्वाधीनता संग्राम सेनानी ; अनेक बार जेल-यात्राएं; म० प्र० के मुख्यमंत्री रहे; सागर वि० वि० के उपकुलपति; साहित्यवाचस्पति ।

मिश्र, पं० दुर्गाप्रसाद



ज० : आश्विन नवमी बुधवार, संवत् १६१६ (३१ अक्तूबर १८६० ई०); सांवां नगर (जम्मू-कश्मीर); पि० : पं० घसीटाराम मिश्र; शि० : घर पर ही; काशी में संस्कृत, कलकत्ते के नार्मल स्कूल में अंग्रेजी; प० : काशी की 'कविवचनसुधा' के संवाददाता-कार्य से प्रारंभ; दलाली का व्यवसाय छोड़कर १७ मई १८७८ को 'भारतमित्र' (कलकत्ता) का प्रकाशन; पं० छोटूलाल मिश्र आदि संपादक थे। ये व्यवस्थापक थे। एक वर्ष बाद इससे पृथक. १८९३ में कुछ समय तक इसके संपादक रहे; १३ अप्रैल १८७९ को पं० सदानंद मिश्र के सहयोग से 'सारसुधानिधि' निकाला। १८८० मे तेजस्वी पत्र 'उचितवक्ता' (कलकत्ता) निकाला; 'मारवाड़ी बंधु' (१६०७) में प्रकाशित; र० : लगभग २० पुस्तकें हिंदी में लिखीं। बंगला के 'स्वर्णलता' के आधार पर 'सरस्वती' नामक नाटक भी लिखा; बिहार प्रांत के स्कूलों के लिए कुछ पाठ्य-पुस्तकें भी रचीं; भा० : हिंदी, संस्कृत, डोगरी, बंगला, अंग्रेजी; वि० : हिंदी पत्रकारिता के जन्मदाताओं एवं प्रचारकों में शीर्षस्थ। तेजस्वी संपादक और सशक्त लेखक। आपके 'पत्रों' के लेखकों में बाबू भारतेंदु हरिश्चंद्र एवं स्वामी दयानंद प्रभृति विभूतियां रही हैं; नि० : १६१०।

मिश्र, नर्मदाप्रसाद



ज० : १६ मार्च १८९०; मंडला; पि० : ललिताप्रसाद; शि० : बी० ए०; साहित्यशास्त्री; विशारद; प० : हितकारिणी हाईस्कूल, जबलपुर में अध्यापन करते हुए 'हितकारिणी' मासिक पत्रिका के संपादन में रघुवरप्रसाद द्विवेदी को सहयोग; १९१५ से अध्यापन छोड़ पूर्णरूपेण पत्रकारिता में; 'शारदा-विनोद गल्प' (१९१५), संपादक, 'श्रीशारदा' (२१ मार्च १९२०), १९२२ में 'श्रीशारदा' से संबंध-विच्छेद; र० : 'श्रीकृष्ण का दूतत्व', 'पत्रोपहार', 'अपना सुधार', 'बाल-नाटक-माला तथा बाल साहित्य की अनेक पुस्तकें; वि० : 'हितकारिणी' और 'शारदा' के संपादन के अलावा 'मिश्रबंधु कार्यालय' नामक प्रकाशन संस्थान की स्थापना; दो बार जेल-यात्राएं; नि० : ४ अगस्त १९४९ ।

मिश्र, पं० प्रतापनारायण



ज० : आश्विन कृष्ण ९, संवत् १९१३ (२७ सितंबर १८५६ ई०); कानपुर; पि० : पं० संकटाप्रसाद मिश्र; शि० : घर पर ही स्वाध्याय; प० : संपादक, 'ब्राह्मण' (कानपुर, मासिक, १५ मार्च १८८३-९३); १८८९ में दैनिक 'हिंदोस्थान' (कालाकांकर) के कुछ समय तक सहकारी संपादक रहे; र० : कुल ३२ पुस्तकें; १२ अनूदित एवं २० मौलिक; प्रमुख—(मौ०) 'कलिकौतुक-रूपक', 'कलि प्रभाव नाटक', 'हठी हमीर नाटक', 'गोसंकट नाटक', 'जुआरी-खुआरी-प्रहसन', 'श्रृंगार विलास', 'भारत दुर्दशा', 'प्रेम-पुष्पावली', 'मन की लहर', 'तृप्यंताम', 'रसखान शतक', 'मानस-विनोद' आदि; (अनू०) 'राजसिंह', 'इंदिरा', 'राधारानी', 'चरिताष्टक', 'पंचामृत', 'नीति रत्नावली', 'संगीत शाकुंतला', 'सेनवंश' आदि; भा० : हिंदी, संस्कृत, बंगला उर्दू, फारसी, अंग्रेजी; वि० : 'भारतेंदु-मंडली' के सशक्त कवि; गद्यकार, पत्रकार, नाटककार, प्रहसनकार, निबंधकार, अनुवादक। हिंदी एवं देवनागरी के परम उपासक। नि० : मिति आषाढ़ सुदी ४, संवत १९५१ (जुलाई १८९४ ई०)।

मिश्र, बबनप्रसाद



ज० : १६ जनवरी १६३८; बालाघाट(म० प्र०); पि० : पं० राधाकिशन मिश्र; शि० : बी० ए० (सागर वि० वि०); एल-एल० बी० (जबलपुर वि० वि०); प० : १६६१ में दैनिक 'युगधर्म' (जबलपुर) से आरंभ; संपादक, दैनिक 'युगधर्म' (रायपुर संस्करण, १६७२ से अब तक); भा० : हिंदी, अंग्रेजी; वि० : श्रमिक समस्याओं पर विशेष लेखन।

मिश्र, पं० बलदेवप्रसाद



ज० : पौष शुक्ल ११, संवत् १६२६ (शुक्रवार, २५ दिसंबर १८६६), मुरादाबाद; पि० : सुखनंदन मिश्र. शि० : प्रारंभ देवनागरी से, बाद में स्वाध्याय, तंत्र-विद्या के विशेष जानकार; प० : संपादक, 'साहित्य सरोज' (मेरठ, मासिक), 'सत्य-सिंधु', 'भारतवासी' (प्रयाग, साप्ता०, प्र० शिवबिहारी वाजपेयी), 'भारतभानु', 'सोलजर पत्रिका'; र० : लगभग २५ पुस्तकें मौलिक एवं मराठी, गुजराती, बंगला, संस्कृत, अंग्रेजी आदि से अनूदित। 'जागती ज्योति' नामक मेस्मेरिज्म पर हिंदी की पहली पुस्तक; आपके द्वारा रचित पुस्तकें 'वेंकटेश्वर समाचार' और 'भारत-वासी' पत्रों के उपहार में वितरित हुआ करती थीं; भा० : हिंदी, संस्कृत, फारसी, उर्दू, अंग्रेजी, बंगला, मराठी, कन्नड़, गुजराती आदि; वि० : साहित्यिक विषयों के अतिरिक्त हिंदी में तंत्रशास्त्र, मेस्मेरिज्म जैसे अछूते विषयों पर लेखनी उठाकर हिंदी को सर्वांगिकता की दिशा में उन्मुख किया; नि० : श्रावण शुक्ल ७, सोमवार, संवत् १६६१ (अगस्त १६०५ ई०)।

मिश्र, भवानीप्रसाद



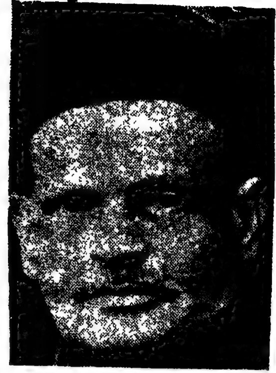
ज० : २९ मार्च १९१३; टिगरिया, तह० सिवनी-मालवा, जि० होशंगाबाद (म० प्र०); पि० : सीताराम मिश्र; शि० स्नातक, राबर्टसन कालेज, जबलपुर; प० : प्रकाशक एवं संपादक साप्ताहिक 'विचार' (नागपुर, १९४७); संपादक, त्रैमासिक 'महिलाश्रम पत्रिका' (१९४७-४९); संपादक, 'कल्पना' मासिक (हैदराबाद, १९५०-५२); अनुवादक संपूर्ण 'गांधी वाङ्मय' फिर संपादक और प्रधान उप-संपादक (१९५८-७२)। संपादक, त्रैमासिक 'गांधीमार्ग' (१९७२ से); साप्ता० 'भूदान यज्ञ' (१९७३-७५); र० : 'गीतफरोश', 'चकित है दुख' (मित्र पुरस्कार, बंबई, १९७२); 'अंधेरी कविताएं', 'गांधी पंचशती', 'बुनी हुई रस्सी' (साहित्य अकादमी पुरस्कार, १९७२); 'खुशबू के शिलालेख' और 'व्यक्तिगत'। अध्यक्ष, दिल्ली प्रादेशिक हिंदी साहित्य सम्मेलन (१९७६-७४); वि० : गांधीवादी साहित्यकार; स्वाधीनता सेनानी, जेल-यात्राएं साहित्य-कला परिषद्, दिल्ली द्वारा सम्मानित, १९७३।

मिश्र, पं० माधवप्रसाद



ज० : भाद्रपद, शुक्ल त्रयोदशी, संवत् १९२८; कूगड़ ग्राम, जि० हिसार; पि० : पं० रामजीदास मिश्र, शि० व्याकरण, काव्य, पुराण एवं धर्मशास्त्रों का अध्ययन कर, फिर बुलंदशहर व काशी जाकर आयुर्वेद, दर्शनशास्त्र एवं साहित्य का अध्ययन किया। प० : संपादक, 'सुदर्शन' (काशी, मासिक, १९००); 'वैश्योपकारक' (दो वर्ष तक); र० : लगभग ६० निबंध; हिंदू पर्वों पर आठ महत्वपूर्ण निबंध। निबंधों का एक संग्रह प्रकाशित; वि० : हिंदी के श्रेष्ठ आदि-निबंधकारों में से एक; सामाजिक बुराइयों के विरुद्ध संघर्ष किया; अनेक धार्मिक और साहित्यिक संस्थाओं के निर्माता; नि० : चैत्र बदी ४, संवत् १९६४; कूगड़ में (आयु केवल ३६ वर्ष)।

मिश्र, पं० रामदहिन



ज० : चैत्र पूर्णिमा सन् १८८६; ग्रा० पथार, जि० भोजपुर (बिहार); शि० : परंपरागत संस्कृत शिक्षा, काव्यतीर्थ; प० : संपादक, 'किशोर' (मासिक, १९३७-५२); 'पारिजात' (मासिक); 'बालमित्र' मासिक ग्रंथमाला (इलाहाबाद, १९२५-२६); 'बालशिक्षा' ग्रंथमाला (१९३४-३७); र० : 'मेघदूत विमर्श', 'साहित्यालंकार', 'साहित्य परिचय', 'भारत भूगोल', 'काव्य-दर्पण', 'काव्य विमर्श' तथा अनेक बाल पुस्तकें। संपादित 'हिंदी मुहावरें', 'हिंदी मुहावरा कोश' आदि; भा० : संस्कृत, हिंदी, अंग्रेजी; वि० : बाल-पत्रकारिता के आदि उन्नायकों में से; 'रामदहिन मेमोरियल ट्रस्ट' की स्थापना; विद्यावाचस्पति तथा अन्य सम्मान; नि० : १ दिसंबर १९५२।

मिश्र, पं० लक्ष्मीशंकर



ज० : १८४९ ई०, काशी; पि० : पं० रामजसन मिश्र; शि० : एम० ए० (गणित); प० : संपादक, 'काशी पत्रिका' (काशी, मासिक, १८७६); र० : 'गणित कौमुदी', 'पदार्थ विज्ञान विटप', 'प्राकृतिक भूगोल चंद्रिका', 'वायु चक्र विज्ञान', 'स्थिति विद्या', 'गति विद्या' आदि आपकी उल्लेखनीय; वि० : हिंदी मे सर्वप्रथम गणित एवं विज्ञान पर ग्रंथ लिखे। 'काशी पत्रिका' को छात्रोपयोगी बनाकर छात्र-समुदाय मे हिंदी के प्रति आकर्षण उत्पन्न किया; नि० : २ दिसंबर, १९०६ ई०।

मित्र, बाबू शारदाचरण



ज० : १७ दिसंबर १८४८ ई०; कलकत्ता; शि० : एम० ए०, बी० एल०; प० : संपादक, 'देवनागर' (कलकत्ता, मासिक, १९०७), 'हवड़ा हितकारी'; भा० : हिंदी, बंगला, संस्कृत, अंग्रेजी; वि० : बंगलाभाषी होते हुए भी 'एक लिपि विस्तार परिषद्' की स्थापना करके सारे भारत में देवनागरी के प्रचार का बीड़ा उठाया; अनेक बंगला पुस्तकें नागरी में छापीं; कलकत्ता उच्च न्यायालय के न्यायाधीश।

'मुक्त', प्रफुल्लचंद्र ओझा



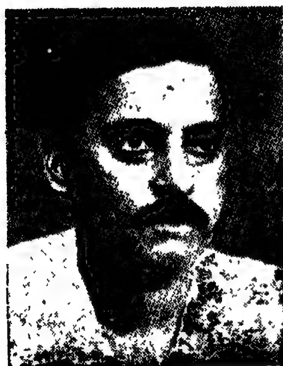
ज० : २७ जनवरी १९१०; निमेज, शाहाबाद, बिहार; पि० : चंद्रशेखर शास्त्री; शि० : अधिकांश घर पर; स्वाध्याय; प० : साप्ताहिक पत्रिका 'विजली' (पटना, १९३६-३७) का संपादन; प्रकाशक-संपादक मासिक 'आरती' (पटना, १९४०-४२), संपादक 'विजली' (रामगढ़, १९४२), मासिक 'जन्मभूमि' (पटना, १९४४), साप्ताहिक 'मजदूर-संदेश' (पटना, १९४७), साप्ताहिक 'प्रजानीति' (दिल्ली १९७४-७५); र० : दस वर्ष की आयु में दो बंगला उपन्यासों का अनुवाद; पहली कविता कानपुर के साप्ताहिक 'प्रताप' में छपी, तब से कितनी ही कहानियां, कविताएं प्रकाशित, लगभग ६० पुस्तकें; २२-२३ वर्ष रेडियो की नौकरी में; भा० : हिंदी, बंगला, गुजराती, अंग्रेजी, संस्कृत।

'मुकुल', शंभुनाथ बलियासे



ज० : १५ जनवरी १९१९; कुरमटाड, वैद्यनाथधाम-देवघर (बिहार); **पि० :** कृष्णकुमार बलियासे; **शि० :** आरंभिक शिक्षा गांव की पाठशाला में; स्नातक, राष्ट्रीय महाविद्यालय हिंदी विद्यापीठ, देवघर, अध्यापन; **प० :** संपादक 'अखंड बिहार'; सह-संपादक तथा संपादक, साप्ताहिक 'प्रकाश' (देवघर, १९४७); दो वर्ष बाद 'प्रकाश' का पटना से प्रकाशन (१९४९-६०), संपर्क, हिंदी मासिक 'आयुर्वेद-विकास' (१९६२); संपादक, 'आयुर्वेद-विकास' (कलकत्ता, १९६४-७०); फरीदाबाद, १९७०-७३; दिल्ली, १९७४ से); **र० :** 'अपना गांव', 'जमीन', 'ग्राम देवता', 'काल और जीवन' आदि; **भा० :** हिंदी, संस्कृत, बंगला, मैथिली, अंग्रेजी; **वि० :** बिहार 'श्रमजीवी' पत्रकार संघ के संस्थापकों में से एक।

मुखोपाध्याय, कार्तिकेयचरण



ज० : १८९७, कालीबाड़ी, छपरा (बिहार); **प० :** उनके चाचा श्री भवानीचरण मुखोपाध्याय द्वारा प्रकाशित 'सारन सरोज' से आरंभ; 'भारत-मित्र', 'हिंदू पंच', 'विजय', 'दारोगा दफ्तर' आदि में सहयोग; बाद में 'दारोगा दफ्तर' के प्रधान संपादक भी; **र० :** लगभग ३५ पुस्तकें हिंदी में; बंगला से अनेक पुस्तकों का हिंदी भाषांतर; **वि० :** बंगला-भाषी होते हुए हिंदी-सेवा में सन्नद्ध रहे।

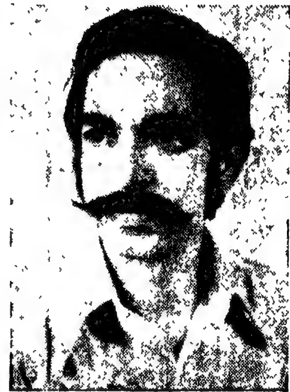
मेहता, कृष्णचंद्र



ज० : २८ जुलाई, १९१७; खैरपुर टामेवाली, बहावलपुर रियासत (पाकिस्तान); पि० : गनपत-राय मेहता; शि० : वेदालंकार, गुरुकुल कांगड़ी; प० : दैनिक 'वीर अर्जुन' (दिल्ली, १९३८-४९); सह-संपादक, अग्रलेख-लेखक; दैनिक 'हिंदुस्तान' (नयी दिल्ली, १९५० से अब तक); भा० : हिंदी, संस्कृत, अंग्रेजी, उर्दू; या० अमेरिका (१९७४)।

मेहता, रमेश

ज० : ९ नवंबर १९४७; जम्मू; पि० : ब्रह्मदत्त मेहता; शि० : एम० ए० (हिंदी) जम्मू वि० वि०; प० : संपादक, 'त्रिकुटा' (१९६८-७०), 'प्रतिभा; (१९७०-७१), 'शीराजा' (जम्मू, १९७३ से अब तक); र० : 'खुले कमरे बंद द्वार'; अनेक कहा-नियां और एकाकी भी; भा० : डोगरी, हिंदी, उर्दू, पंजाबी, अंग्रेजी।



मेहता, ऋषिदत्त



ज० : बूंदी, राजस्थान; पि० : नित्यानंद नागर; शि० : असहयोग आंदोलन में कालेज त्याग; प० : आरंभ में 'तरुण राजस्थान' तथा 'प्रताप' में संवाद-दाता; मणिलाल कोठारी द्वारा 'तरुण राजस्थान' में संलग्न; १९२९ में जयनारायण व्यास की गिरफ्तारी के बाद 'तरुण राजस्थान' का संपूर्ण दायित्व उठाया; जेल-मुक्ति के बाद व्यासजी द्वारा पुनः पत्र का प्रकाशन; संपादक बने—हरिभाऊ उपाध्याय और मेहताजी; पुनः 'राजस्थान' के सर्वेसर्वा; वि० : पूरे परिवार ने स्वाधीनता आंदोलन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की और जेल-जीवन की यातनाएं सहीं; नि० : ६ जनवरी १९७३ ।

मेहता, पं० लज्जाराम शर्मा



ज० : चैत्र कृष्ण २, संवत् १९२०, (१८७३); बूंदी; पि० : पं० गोपालराम मेहता; शि० : घर पर; स्वाध्याय; प० : संपादक, 'सर्वहित' (बूंदी, पाक्षिक, १८९०-९४); 'श्री वेंकटेश्वर समाचार' (बंबई) कुछ मास तक सहकारी रहे, फिर १८९७ से १९०५ तक मुख्य-संपादक; र० : लगभग २५ पुस्तकें उल्लेखनीय हैं—'धूर्त रसिक रसाल', 'हिंदू गृहस्थ', 'आदर्श दंपति', 'आदर्श हिंदू', 'बिगड़े का सुधार', 'सुशीला विधवा', 'विपत्ति की कसौटी', 'स्वतंत्र रमा और परतंत्र लक्ष्मी'; 'विक्टोरिया चरित्र', 'अब्दुल रहमान खां', 'पराक्रमी हाड़ाराव', 'जुझार तेजा', 'उम्मेदसिंह-चरित्र', 'पं० गंगासहाय का चरित्र'; 'होली का रहस्य' (निबंध), 'बीरबल-विनोद', 'भारत की कारीगरी' (संग्रह), 'पंद्रह लाख पर बाजी', 'कपटी मित्र', 'ज्वारी की ख्वारी', 'शराबी की खराबी', 'राज-शिक्षा', 'कामशास्त्र', 'बालोपदेश', 'नवीन भारत' (सभी अनुवाद) आदि; भा० : हिंदी, संस्कृत, गुजराती, मराठी, उर्दू, अंग्रेजी; वि० : 'वेंकटेश्वर समाचार' के माध्यम से कुशल पत्रकारिता का परिचय दिया और विशेष ख्याति अर्जित की; नि० : सौर श्रावण २, संवत् १९८८ (२९ जून १९३१ ई०) ।

मोदी, कुंजबिहारीलाल



ज० : १९०१; कठूमर (राज०); पि० : जुगलकिशोर मुंशी; शि० : स्वाध्याय; प० : संपादक-संस्थापक, 'अलवर पत्रिका' (अलवर, ७ जनवरी १९४४), वि० : कई बार लंबी जेल-यात्राएं; 'अलवर पत्रिका' द्वारा घर-घर में देशभक्ति की आग फूक दी; पत्रिका सरकार की कोप-भाजन बनी; नि० : ४ दिसंबर १९५३।

यशपाल



ज० : ३ दिसंबर १९०३; फिरोजपुर छावनी; शि० : गुरुकुल कांगड़ी तथा नेशनल कालेज, लाहौर में हुई; प० : जेल से छूटने के बाद संपादन-प्रकाशन, क्रांतिकारी व लोकप्रिय पत्र 'विप्लव' (लखनऊ); र० : पंद्रह कहानी संग्रह; उपन्यास—'दादा कामरेड', 'देशद्रोही', 'दिव्या', 'पार्टीकामरेड', 'अमिता', 'मनुष्य के रूप' और 'झूठा-सच' विशेष; 'न्याय का संघर्ष' 'चक्कर क्लब' 'देखा, सोचा-समझा', और 'सिंहावलोकन' आदि; या० : स्विट्जरलैंड, इटली, आस्ट्रिया, रूस, इंग्लैंड, चेकोस्लोवाकिया, जर्मनी, रूमानिया, अफगानिस्तान, मारीशस आदि; वि० : क्रांतिकारी आंदोलन में सक्रिय; 'विप्लव' को ब्रिटिश-विरोध का लोकप्रिय मुखपत्र बनाया।

रघुवंशी, कुंवर हनुमंतसिंह



ज० : फाल्गुन शुक्ला २, संवत् १९२४; ग्रा० चांदौख, जि० बुलंदशहर; पि० : ठाकुर गिरिवर सिंह; शि० : एंट्रेंस; प० : संपादक, 'राजपूत' (आगरा); 'स्वदेश बांधव' (आगरा, मासिक, १९०५-२०); र० : लगभग २० पुस्तकें प्रमुख है— 'चंद्रकला' (उपन्यास) 'महाभारत सार', 'मेवाड़ का इतिहास', 'सीताजी का जीवन-चरित', 'रमणी रत्नमाला', 'जीवन सुधार', 'वीर बालक अभिमन्यु', 'महात्मा भरत', 'बाल विवाह विरोध', 'सती चरित्र' नाटक इत्यादि; भा० : हिंदी, अंग्रेजी, उर्दू, बंगला, गुजराती; वि० : नागरी प्रचारिणी सभा, आगरा तथा पब्लिक लायब्रेरी की स्थापना; मृत्युपर्यंत के सुधारवादी आंदोलन में सक्रिय।

रघुवीरसहाय



ज० : ९ दिसंबर १९२९; लखनऊ; शि० एम० ए० (अंग्रेजी); प० . दैनिक 'नवजीवन' में कार्य (लखनऊ, १९४९); उपसंपादक-संवाददाता मासिक 'प्रतीक' (नयी दिल्ली, १९५१-५२); सहायक संपादक समाचार विभाग, आकाशवाणी (नयी दिल्ली, १९५३-५७), उप-संपादक मासिक 'कल्पना' (हैदराबाद, १९५७-५८); संपादक एशियाई रंगमंच संस्थान (नयी दिल्ली, १९५८); शोध अधिकारी समाचार विभाग, आकाशवाणी, (नयी दिल्ली १९५९-६३), विशेष संवाददाता 'नवभारत टाइम्स' (नयी दिल्ली, १९६३-६८); 'दिनमान' में समाचार संपादक (१९६८-६९), कार्यकारी संपादक, (१९६९-७०), संपादक १९७१ से; र० : 'सीढ़ियो पर धूप', 'आत्महत्या के विरुद्ध' 'हंसो, हंसो जल्दी हंसो', 'रास्ता इधर से है,' भा० : हिंदी, बंगला, उर्दू, अंग्रेजी; या० : बंगलादेश, नेपाल, जापान, थाईदेश, ब्रिटेन, पश्चिम जर्मनी, सोवियत संघ ।

‘रत्नाकर’, बाबू जगन्नाथदास



ज० : भादों सुदी, ५ संवत् १९२३ (सितंबर १८६५ ई०) काशी; पि० : बाबू पुरुषोत्तमदास; शि० : बी० ए०; प० : संपादक ‘साहित्य सुधा निधी’ (मुजफ्फरपुर, मासिक, १ जनवरी १८९३), संपादक मंडल में बाबू राधाकृष्णदास, बाबू कार्तिकप्रसाद खत्री एवं देवकीनंदन खत्री भी थे। १८९४ ई० में इस पत्र का कार्यालय काशी में आ गया और यह श्री अमरसिंह की व्यवस्था में हरिप्रकाश प्रेस से छपने लगा। ‘सरस्वती’ (१९००-३); र० : ‘हिंडोला’, ‘समालोचनादर्श’, ‘साहित्य-रत्नाकर’, ‘हरिश्चंद्र’, ‘शृंगार लहरी’, ‘गंगा-विष्णु लहरी’, ‘रत्नाष्टक’, ‘गंगावतरण’, ‘उद्धव-शतक’, ‘बिहारी-रत्नाकर’ (बिहारी सतसई की टीका), ‘सूरसागर’ (संपादन) आदि उल्लेखनीय; चंद्रशेखर के ‘हमीर हठ’, कृपाराम की ‘हिम तरंगिणी’, एवं दूलह कविकृत ‘कंठाभरण’ का भी संपादन; भा० : हिंदी, संस्कृत, उर्दू, फारसी; वि० : व्रजभाषा के श्रेष्ठ आधुनिक कवि; नि० : २१ जून १९३२ ई०।

रतनकुमार



ज० : पौष कृष्ण ९ संवत १९७२ (१९१५ ई०), भोपाल; पि० : कन्हैयालाल अग्रवाल; शि० बी० ए० (जबलपुर); प० : १३० से ४७ तक भोपाल के ‘प्रजा पुकार’, ‘किसान’, ‘पथ-प्रदर्शक’ आदि के संपादन-संचालन में सहयोग; संपादक ‘नई राह’ (भोपाल, मई १९४८-५२: बीच में प्रतिबंधित) ‘हलचल’ (साप्ता०, १९५४-५६); उप-संपादक, ‘नवभारत’ (भोपाल, १९५६), इसी के आवासी संपादक, १९५८-६०; संपादक ‘मध्य प्रदेश कांग्रेस पत्रिका’ (१९६३-६४); उप-संपादक, दैनिक ‘मध्य-प्रदेश’; संपादक, दैनिक ‘देशबंधु’ (भोपाल, १९७४ से अब तक) ; भा० : हिंदी, उर्दू, अंग्रेजी; वि० : भोपाल-विलीनीकरण आंदोलन को ‘नई राह’ द्वारा मार्गदर्शन और सहयोग; जेल-यात्रा भी; भोपाल नगरपालिका द्वारा सम्मानित।

रमेशचंद्र



ज० : १६२६; लायलपुर (पाकि०); पि० : लाला जगतनारायण; शि० : बी० एस० सी० (लाहौर) कानून की पढ़ाई बीच में छूटी; प० : १६४८ में दैनिक 'हिंदी समाचार' (जालंधर) की स्थापना के साथ आरंभ; संपादक, 'हिंद समाचार' तथा दैनिक 'पंजाब केसरी'; भा० : हिंदी, अंग्रेजी, उर्दू, पंजाबी; या० : अमेरिका, ब्रिटेन, रूस, जर्मनी चेकोस्लोवाकिया, जापान, फिलीपाइंस; वि० : इंडियन एंड ईस्टर्न न्यूजपेपर्स सोसायटी की कार्य-कारिणी के सदस्य; जालंधर नगरपालिका के लगातार २० वर्ष से सदस्य।

राधाकृष्णदास, बाबू



ज० श्रावण सुदी पूर्णिमा संवत् १६२२ (अगस्त १८६६ ई०), काशी; पि० : बाबू कल्याणदास; शि० : एंट्रेंस; प० : संपादक 'धर्म प्रचारक' (काशी, मासिक, १८८५) 'सरस्वती' जब १६०० में प्रयाग के 'इंडियन प्रेस' ने इस पत्रिका का संपादन-भार 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' को सौंपा तो उसके पांच सदस्यीय संपादक मंडल में आप प्रधान थे। 'साहित्य सुधानिधि' (काशी) के संपादकों में से भी एक; र० : 'हिंदी के सामयिक पत्रों का इतिहास' (१८६४), जून १६०१ से ना० प्र० सभा की त्रैमासिक ग्रंथ-माला के १६०४ तक संपादक; 'पृथ्वीराज रासो' के संपादकों में एक; 'सूरसागर' का संपादन; र० : दो दर्जन से अधिक मौलिक रचनाएं; भा० : हिंदी, उर्दू, फारसी, बंगला, गुजराती; वि० : 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा 'प्राणदाता' के सभा द्वारा प्राचीन ग्रंथों की खोज, संपादन और प्रकाशन के प्रेरणा-स्रोत थे। 'न्यायालयों और सरकारी दफ्तरों में हिंदी और नागरी अक्षरों के प्रचलन हेतु हस्ताक्षर अभियान' का संपूर्ण कार्यभार आपने किया; १८६६ में बंगाल की 'एशियाटिक सोसाइटी' द्वारा हिंदी पुस्तकों की खोज का कार्य आपके निरीक्षण में हुआ; आप भारतेंदुजी के फुफेरे भाई; नि : २ अप्रैल १६०७; काशी।

रामपालसिंह, राजा



ज० : भाद्रपद सुदी ४, संवत् १९०५ (२३ अगस्त १८४९); प्रतापगढ़; पि० : लालप्रताप सिंह; शि० : घर पर ही, स्वाध्याय; प० : 'हिंदोस्थान' (लंदन, अंग्रेजी-हिंदी पत्र, १८८३); फिर १८८५ में स्वदेश लौटकर कालाकांकर से केवल हिंदी में 'हिंदोस्थान' दैनिक पत्र के रूप में निकाला (उत्तर-भारत का प्रथम हिंदी दैनिक); इसके संपादकों में—पंडित मदनमोहन मालवीय, पं० प्रतापनारायण मिश्र, बाबू-बालमुकुंद गुप्त, गोपालराम गहमरी, पं० अमृतलाल चक्रवर्ती जैसे सुप्रसिद्ध व्यक्ति रहे हैं; 'इंडियन यूनियन' (अंग्रेजी) भी निकाला; र० : 'दि सेल्फ टीचिंग बुक' (अंग्रेजी स्वयं शिक्षक); 'रिसेंट ट्रिप टु यूरोप'; वि० : हिंदी पत्रकारिता एवं हिंदी साहित्यकारों को प्रोत्साहन तथा सहयोग देकर हिंदी के निर्माण और विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है; नि० : २८ फरवरी, १९०९ ।

राममोहनराय, राजा



ज० : १७७४ ई०; बंगाल; पि० : रामकांत राय; शि० : अंग्रेजी में उच्च शिक्षा; प० : 'संवाद कौमुदी' (कलकत्ता); ब्राह्म-मत के विचारों के प्रचारार्थ आपने इस पत्र का प्रकाशन किया; 'ब्राह्मण-संबंधि (कलकत्ता, १८२१); 'बंगदूत' (कलकत्ता, साप्ताहिक, प्र० का० १० मई, सन् १८२९)। इस साप्ताहिक का एक साथ ही अंग्रेजी, हिंदी, बंगला एवं फारसी भाषाओं में प्रकाशन प्रारंभ किया था; संपादक बहुभाषाविद् पं० नीलरतन हलदर थे; आप इसमें अनवरत लिखा करते थे; र० : बीस से भी अधिक पुस्तकें; उल्लेखनीय 'वेदांत-भाष्य', 'वेदांत-सार', 'हिंदुओं की पौत्तलिक धर्म-प्रणाली', 'ब्रह्मनिष्ठ गृहस्थ के लक्षण', 'गायत्री उपासना का विधान', 'अनुष्ठान', 'ब्रह्मोपासना', 'प्रार्थनापत्र', 'ब्रह्म संगीत' (संग्रह)' आदि; भा० : बंगला, संस्कृत, फारसी, हिंदी, अंग्रेजी, अरबी, हिब्रू ग्रीक; वि० : समाजसुधार के महान आंदोलन को आगे बढ़ाने के लिए विभिन्न भारतीय भाषाओं में पत्र प्रकाशन के अग्रदूत; नि० : २७ सितंबर, १८३३; इंगलैंड ।

रामलोचनशरण, आचार्य



ज० : २१ फरवरी १८९०; प्रधापुर, जि० मुजफ्फरपुर (बिहार); **शि०** : नार्मल; **प०** : संस्थापक—संपादक 'बालक' (लहेरिया सराय, मासिक १९२६), 'हिमालय'; **वि०** : 'बालक' के माध्यम से हिंदी के बाल साहित्य को परिपुष्ट किया तथा बिहार में लेखकों की एक पीढ़ी का निर्माण किया; 'पुस्तक भंडार' नामक प्रकाशन-संस्थान के माध्यम से हिंदी साहित्य की उल्लेखनीय सेवा की; **नि०** : १४ मई १९७१।

राय, नवीनचंद्र



ज० : २० फरवरी १८३८; मेरठ; **पि०** : पं० राममोहन राय; **शि०** : इंजीनिअरिंग की परीक्षा उत्तीर्ण की; **प०** : 'ज्ञान प्रदायिनी' (मासिक) मार्च, १८६६ से हिंदी और उर्दू में एक साथ प्रकाशित; प्रारंभ मे संपादक पं० मुकुंदराम थे, पर स्वयं भी उसमें लिखते थे; दो वर्ष बाद इसे विशुद्ध हिंदी की पत्रिका बनाया, बाद में इस का संपादन स्वयं करने लगे; यह पत्रिका १८८५ ई० तक चली; 'सुगृहिणी' (महिलाओ की पत्रिका) उसकी संपादिका इनकी सुपुत्री हेमंतकुमारी चौधरी थीं, 'रिफार्मर' (उर्दू) का संचालन नवीन बाबू और संपादन पं० शिवनारायण अग्निहोत्री ने किया; कुछ समय तक स्वयं भी संपादन किया; 'हिंदू बांधव' और 'बिरादरे-हिंद' (उर्दू) को संचालित करवाने में भी इन्हीं का विशेष हाथ रहा; **र०** : 'नवीनचंद्रोदय', 'सरल व्याकरण', 'निर्माण विद्या' (तीन भाग), 'जलगति-जलस्थिति', 'वायुकतत्व', 'स्थितितत्व', 'गतितत्व', 'मद्धभंसूत्र', 'शब्दोच्चारण', 'लक्ष्मी-सरस्वती संवाद' आदि; **भा०** : हिंदी, उर्दू, फारसी, बंगला, संस्कृत, अंग्रेजी; **वि०** : पंजाब मे हिंदी पत्रकारिता के प्रेरणा-स्रोत; धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक एवं शैक्षणिक उत्थान के सक्रिय प्रथम सूत्रधार; 'पंजाब विश्वविद्यालय' के रजिस्ट्रार पद पर रहते हुए शिक्षा के प्रचार और प्रसार में भारी योगदान; **नि०** : १८९० ई० में (खंडवा के पास स्वयं बसाये 'ब्रह्मगाव' में)।

राव, बालकृष्ण



ज० : २७ दिसंबर १६१३; इलाहाबाद; पि० : सी० वाई० चिंतामणि; शि० : एम० ए०, आई० सी० एस०; प० : आदि संपादक, 'कादंबिनी' (इलाहाबाद, १६६०); संपादक, 'माध्यम' (प्रयाग, मासिक); र० : 'कौमुदी', 'आभास', 'कवि और छवि', 'रात बीती', 'हमारी बात'; वि० : प्रशासनिक सेवाओं में रहते हुए हिंदी के विकास और व्यवहार के लिए प्रयत्नशील रहे; महानिदेशक, आकाशवाणी; उप-कुलपति आगरा और गोरखपुर विश्वविद्यालय; नि० : १ जून १६७१।

राहत, क्षेमानंद

ज० : मकतुल, पीलीभीत, उ० प्र०; शि० : बी० ए० की पढ़ाई अधूरी छोड़ कर असहयोग आंदोलन में कूद पड़े; प० : नरसिंहदास अग्रवाल के सहयोग से मद्रास में हिंदी साप्ताहिक 'भारत-तिलक' (१६२१) निकाला; सह-संपादक, 'त्यागभूमि' (अजमेर, १६२७); र० : 'सूफी संत चरित्र', कुछ काव्य-शतक तथा कुछ अप्रकाशित सामग्री; वि० : 'भारत-तिलक' के द्वारा दक्षिण मे हिंदी-प्रसार; गांधीजी के आह्वान पर स्वामी सत्यदेव परिव्राजक, देवदास गांधी के साथ हिंदी-प्रचार, प्रसार के लिए दक्षिण गये; नि० : २१ मई १६७४; देहरादून।

रेड्डी, बालशौरी



ज० : १ जुलाई १९४८; कड़पा (आंध्रप्रदेश) शि० : साहित्यरत्न; साहित्यालंकार; प० . सहयोगी संपादक, 'अंन्न' (मद्रास) पाक्षिक 'फालकन' (हिंदी) तथा 'नवता' (हिंदी); संप्रति, संपादक 'चंदामामा'; र० : हिंदी में लगभग २२ पुस्तकें, तेलगु में पांच; 'स्वप्न और सत्य', 'भग्न सीमाएं', 'यह बस्ती : ये लोग', 'शबरी', 'प्रकाश और परछाईं', 'लकुमा' आदि 'पंचामृत' दो बार पुरस्कृत; वि० : मातृभाषा तेलगु होते हुए भी हिंदी-लेखन को वरीयता दी; दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा में प्राध्यापक एवं प्राचार्य रहे।

लक्ष्मणसिंह, राजा



ज० : ९ अक्तूबर १८२६ ई०; आगरा; शि० : घर पर प्रारंभ; सीनियर परीक्षा (आगरा कालेज); प० : संपादक-प्रकाशक, 'प्रजा हितैषी' सितारे हिंद की भाषा-नीति का विरोध और विशुद्ध हिंदी का प्रचलन करने के लिए १८५५ ई० में प्रकाशित; र : 'अभिज्ञान शाकुतल', 'मेघदूत', 'रघुवंश' (भाषानुवाद), 'दंड-संग्रह' ('ताजी रातहिंद' का अनुवाद), 'बुलंदशहर का इतिहास', 'नये करों के विषय में', 'ढोरों की बीमारियों का इलाज' (अंग्रेज लेखक सालीतरी की पुस्तक का संक्षिप्त भाषानुवाद) आदि; भा० : संस्कृत, हिंदी, अरबी, फारसी, बंगला, अंग्रेजी आदि; वि० : आपने सरकारी सर्विस में अनुवादक से डिप्टी क्लेक्टर तक के पदों पर रहते हुए ईमानदारी, कर्त्तव्यपरायणता एवं जन-सेवा का जो उत्तम उदाहरण प्रस्तुत किया, उसके उपलक्ष्य में सरकार ने आपको प्रथम दिल्ली दरबार (१८७० ई०) के अवसर पर 'राजा' की उपाधि से विभूषित किया था; नि० : १४ जुलाई १८९६।

लखराम



ज० : २६ जनवरी, १६११; दिल्ली; **शि०** : बी० ए० (दिल्ली वि० वि०); **प०** : प्रकाशन-संपादन, 'रंगभूमि' (दिल्ली, साप्ता० १६३१-३७); संपादन, 'वीर अर्जुन, (दिल्ली, साप्ता० १६३७-४१), दैनिक 'मिलाप' (लाहौर, १६४२-४७), दैनिक 'नेताजी' (दिल्ली १६४८-५०), दैनिक 'नवप्रभात' (ग्वालियर, १६५१-५२); समाचार-संपादक, 'जनसत्ता' (दिल्ली, १६५३-५४); संपादक, 'दिल्ली मिरर' (अंग्रेजी), 'दिल्ली संदेश' (हिंदी), 'पयामे दिल्ली' (उर्दू) १६६४-६७; **र०** : 'गालिब': इतिहास, दर्शन तथा खेलकूद संबंधी लेखन; **भा०** : हिंदी, अंग्रेजी, उर्दू; **वि०** : स्वाधीनता सेनानी; जेल-यात्रा।

व्यथितहृदय



ज० : १६०८, ग्रा० जगन्नाथपुर, जि० वाराणसी; **पि०** : रामसुंदर लाल; **शि०** : भूषण, उत्तमा; **प०** : संपादक, 'तितली', 'मदारी', 'श्रीकृष्ण संदेश'; सहायक संपादक, 'महालक्ष्मी', 'मनोरमा', 'भविष्य', 'अभ्युदय'; **र०** : विपुल लेखन, 'भाभी के पत्र', 'अभागे दंपति', 'गृहस्थी की तस्वीरें', 'लाल बहादुर शास्त्री', 'चाचा नेहरू जो स्मृति बन गए' आदि मुख्य; **भा०** : हिंदी, उर्दू, बंगाली; **या०** : देश में विस्तृत भ्रमण; **वि०** : आजादी की लड़ाई में हिस्सा लिया।

व्यास, पं० अंबिकादत्त



ज० : चैत्र शुक्ला अष्टमी संवत् १९१५ (रविवार, १७ अप्रैल १८५९ ई०), जयपुर; पि० : पं० दुर्गादत्त व्यास; शि० : आचार्य, काशी गवर्नमेंट कालेज; प० : संपादक, 'वैष्णव पत्रिका' (काशी, १८८२) 'पीयूष प्रवाह' (काशी और भागलपुर, १५ फरवरी १८८५); र० : 'गद्य काव्य मीमांसा', 'बिहारी बिहार', 'गो-संकट नाटक', 'ललिता नाटिका', 'पातंजलि प्रतिबिंब', 'रसीली कजरी', 'भारत सौभाग्य', 'शिवराज विजय' (संस्कृत उपन्यास), 'सुकवि सतसई', 'आनंद मंजरी', 'आश्चर्य वृत्तांत' (उपन्यास), 'मरहट्टा नाटक', 'साहित्य नवनीत', 'रत्नपुराण', 'तर्क संग्रह भाषा टीका', 'सांख्य तरंगिणी', 'ताश कौतुक पचीसी', 'वर्ण व्यवस्था', 'आर्य भाषा सूत्रधार' आदि; भा० : हिंदी, संस्कृत, मराठी, गुजराती, बंगला, अंग्रेजी; वि० : भारतेंदु मंडली के बहुमुखी साहित्यकार; सनातन धर्म के प्रसिद्ध नेता और कुशल वक्ता, 'बिहारी बिहार', इनकी अमर कृति है; अनेकानेक उपाधियां और पुरस्कार; नि० : १९ नवंबर १९०० ।

व्यास, कृष्णकांत



ज० : १० अगस्त १९१०, रानापुर, झाबुआ; पि० : नजलाल व्यास; प० : 'प्रजामंडल पत्रिका' (इंदौर) के व्यवस्थापन तथा संपादन में आरंभ, कृष्णचंद्र मुदगल आदि मित्रों के सहयोग से 'नई-दुनिया' का प्रकाशन-संपादन (इंदौर, १९४७), संपादक 'कांग्रेस संदेश' (१९५६); वि० : आयोजक मध्यप्रदेश संपादक सम्मेलन, स्वाधीनता सेनानी, पत्रकार की हैसियत से आपने विदेशी शासन से लोहा लिया। एकाधिक बार जेल गये, मध्यप्रदेश में 'कालिदास' उत्सव के प्रणेता, राज्यसभा सदस्य, १९५२-५८; नि० : २० अक्तूबर १९७३, इंदौर।

व्यास, गोपालप्रसाद



ज० : १३ फरवरी १९१६, पारासौली मथुरा; पि० : पं० ब्रजकिशोर शास्त्री; प० ; संपादक, हस्तलिखित मासिक 'मंजरी' (१९३१), बाबू गुलाबराय के साथ कार्य, 'साहित्य संदेश' (आगरा, १९३६-४१) दैनिक 'हिंदुस्तान' से संबद्ध (१९४४), उप-संपादक (१९४६), संवाददाता, विशेष संवाददाता, मुख्य उप-संपादक (१९५७) तथा सह-संपादक (१९६५ से) दैनिक 'हिंदुस्तान'; र० : 'पोद्दार अभिनंदन ग्रंथ' (संपा०, १९५०) 'राजर्षि अभिनंदन ग्रंथ', 'गांधी दर्शन' (१९७०) 'स्वतंत्रता रजत जयंती, अंक : 'हिंदी के पच्चीस वर्ष' (१९७३), 'हिंदी व्यंग्य-विनोद', 'कदम-कदम बढ़ाए जा', 'अनारी नर', 'अजी सुनो', 'चले आ रहे', 'रंग, जंग और व्यंग', 'कुछ सच कुछ झूठ', 'हलो-हलो', 'तो क्या होता', 'माफ कीजिए', जीवनी 'हमारे राष्ट्रपति' आदि; या० : अरब देश; वि० : 'यत्र तत्र सर्वत्र' हास्य-व्यंग्य स्तंभ-लेखक, महामंत्री, हिंदी साहित्य सम्मेलन दिल्ली।

व्यास, जयनारायण



ज० : १८ फरवरी, १८९९, जोधपुर; पि० : सेवाराम व्यास; शि० : स्वाध्याय; प० : संपादक-प्रकाशक, दैनिक 'तरुण राजस्थान' (१९२७), दैनिक 'अखंड भारत' (बंबई, १९३६); वि० : अपने अखबारों के माध्यम से क्रांति का अलख जगाया, सामंतों का भंडाफोड़ किया और विषम परिस्थितियों में संवाद-संकलन के विलक्षण प्रतिमान स्थापित किये, कई बार जेल-यात्राएं कीं, निर्वासित हुए, १९४८ में प्रथम मुख्यमंत्री, राजस्थान; नि० : १४ मार्च, १९६३।

व्यास, पं० रामशंकर



ज० : चैत्र शुक्ला, रामनवमी संवत् १९१७ (३१ मार्च, १८६०) काशी; पि० : पं० गौरीप्रसाद व्यास, शि० : घर पर ही, स्वाध्याय; प० : अवैतनिक संपादक 'कविवचनसुधा' (काशी, मासिक, पाक्षिक और साप्ताहिक, १८६८) 'आर्यमित्र' (काशी, मासिक, १८७८); र० : 'खगोलदर्पण', 'वाक्य-पंचाशिका', 'नेपोलियन की जीवनी', 'बात की करामात', 'मधुमती', 'चंद्रास्त', 'नूतन पाठ', 'रायदुर्गाप्रसाद का जीवन-चरित' आदि; भा० : हिंदी, संस्कृत, बंगला, फारसी, गुजराती, उर्दू, अंग्रेजी; वि० : विभिन्न उच्च पदों पर कार्यरत रहते हुए भी आप मृत्युपर्यंत मातृभाषा की सेवा में सदैव तत्पर रहे। भारतेंदुजी के अंतरंग मित्र और उनकी लेखक-मंडली के लेखक।

व्यास, लल्लनप्रसाद

ज० : चैत्र शुक्ल दसवीं, संवत् १९९० (१९३३ ई०); शि० : बी० काम०, एम० ए० (हिंदी), आगरा वि० वि०; प० : १९५६ मे 'स्वतंत्र भारत' से आरंभ, संपादक, दैनिक 'तरुण भारत' (लखनऊ) मासिक, 'ज्ञानभारती' (लखनऊ, १९६२) 'आलोक भारती' (दिल्ली, साप्ता०, मासिक, त्रैमा०, वार्षिक १९७१); र० : 'भारत के महान क्रांतिकारी', 'चरित्र निर्माण की कहानियां', 'चंद्रशेखर आजाद', 'दक्षिण-पूर्व एशिया की सैर' आदि बाल साहित्य, 'विश्व हिंदी दर्शन' (संपा०); भा० : हिंदी अंग्रेजी; या० : दक्षिण पूर्व एशिया तथा यूरोप के कुछ देश; वि० : मंत्री, प्राच्य संस्कृति परिषद्, प्रवासी भारतीय परिषद आदि।

व्यास, लक्ष्मीशंकर



ज० : १९ फरवरी, १९२०, काशी; शि० : आनर्स (काशी हिंदू वि०वि०),एम० ए० (इतिहास) प्राचीन भारतीय इतिहास में शोध; प० : १९३७-३८ से 'आज','विजय','माधुरी', 'कमला' आदि पत्रों में लेखन सहायक-संपादक, दैनिक 'आज' (१९४३), संपादक 'आज' साप्ताहिक विशेषांक (१९४५-५०), पराड़-कर जी के साथ संपादन एवं अग्रलेख-टिप्पणी कार्य (१९४७-५४), संप्रति, अग्रलेख लेखक, 'आज'; र० : 'चौलुक्य कुमारपाल' (पुरस्कृत) 'पराड़-करजी और पत्रकारिता' (पुरस्कृत), 'जीवन दर्शन साहित्यकारों का', 'स्वतंत्रता संग्राम', 'आध्यात्मिक संदेशवाहिका श्रीकृष्णप्रियाजी' (पुरस्कृत), 'स्मृति की त्रिवेणिका' (१९७४), द्विवेदी-कालीन हिंदी पत्रकारिता' (१९७५); या० : दक्षिण-पूर्ण एशिया; वि० : उ० प्र० श्रमजीवी पत्रकार यूनियन (१९६२-६३), प्रेस सलाहकार एवं सदस्य, मान्यता समिति उ० प्र० सरकार, जबलपुर, मगध तथा अन्य विश्वविद्यालयों के पत्रकारिता विभागों से संबद्ध।

व्यास, सूर्यनारायण



ज० : २ फरवरी, १९०२; उज्जैन; पि० : नारायण व्यास; शि० : आरंभिक घर पर, तत्पश्चात वाराणसेय संस्कृत विद्यालय प० आठ वर्ष तक मासिक 'विक्रम' के संचालक एवं संपादक, र० : विगत ५० वर्षों से लेखन, लगभग २५०० लेख प्रकाशित, 'विक्रम' अग्रलेख-संग्रह, प्रबंध चिंतामणि का आलोचनात्मक अध्ययन, 'विश्वबंधु', 'महाकवि कालिदास', 'सागर प्रवास', 'तू-तू मैं-मैं', 'भव्य विभूतयः', 'जाग्रत नारियां', 'कुंडली संग्रह' तथा अनेक संपादित एवं अनुवादित पुस्तकें; भा० : हिंदी, संस्कृत, मराठी, गुजराती, अंग्रेजी; या० : यूरोप-भ्रमण; वि० : प्रतिष्ठापक अखिल भारतीय कालिदास परिषद्, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन, स्थायी सदस्य नागरी प्रचारिणी सभा; अध्यक्ष, मध्यभारत हिंदी साहित्य सम्मेलन, अखिल भारतीय हिंदी साहित्य सम्मेलन 'विज्ञान परिषद्' आदि।

ब्योहार, राजेंद्रसिंह



ज० : १२ सितंबर १६००; जबलपुर; पि० : ब्योहार रघुवीरसिंह; शि० : मैट्रिक; गांधीजी के आह्वान पर कालेज की पढ़ाई छोड़ दी; प० : वियोगी हरि के 'पतितबंधु' साप्ताहिक के संपादन में सहयोग (१६३०); संपादक-प्रकाशक, 'युगारंभ' (जबलपुर, १६४७-४६); र० : ८० के लगभग अनेक विधाओं की पुस्तकें, 'तुलसी की समन्वय साधना', 'वर्षा मंगल', 'बदलता युग', 'त्रिपुरी का इतिहास' आदि विशेष; 'बाल्मीकि रामायण' का पद्यानुवाद तथा अरविंद के 'सावित्री' महाकाव्य का गद्यानुवाद भी; भा० : हिंदी, संस्कृत, बंगला, गुजराती, अंग्रेजी आदि; या० : अमेरिका; वि० : स्वतंत्रता संग्राम में अनेक बार जेल-यात्राएं; अध्यक्ष मध्यप्रदेश हिंदी साहित्य-सम्मेलन ।

वर्मा, बाबू तोताराम



ज० : १८४७; शि० : बी० ए०, अध्यापन, वकालत; प० : हेडमास्टरी छोड़कर अलीगढ़ में प्रेस खोला, साप्ताहिक 'भारतबंधु' के प्रकाशक-संपादक (अलीगढ़, १८७४-६५); र० : 'स्त्री सुबोधिनी', 'ब्रज विनोद' तथा नाटक 'कीर्तिकेतु' एवं 'केटो वृत्तांत' । केटो वृत्तांत का अंग्रेजी में अनुवाद भी किया, 'हरिश्चंद्रचंद्रिका' में लेखन; वि० : हिंदी की उन्नति के लिए जीवनभर चेष्टा; इसके लिए आपने 'भाषा संवर्द्धिनी सभा' की स्थापना की और पुस्तकालय भी खोला; नि० : १६०२ ।

वर्मा, ब्रजशंकर

ज० : १६१०; ग्रा० बसंतपुर, जि० सारन (बिहार); **शि०** : उच्च शिक्षा में व्यवधान; **प०** : १६३१ में 'विशाल भारत' से प्रारंभ; सहकारी संपादक, दैनिक 'लोकमान्य' (कलकत्ता, १६३२-३४); संपादन-प्रकाशन, 'योगी' (पटना, साप्ता०, १६३४); **वि०** : बिहार हिंदी साहित्य-सम्मेलन के यशस्वी महामंत्री; मृत्युपर्यंत 'योगी' का संपादन किया और उसे लोकप्रिय बनाया।

वर्मा, भगवतीचरण



ज० : ३० अगस्त १६०३; शफीपुर, जि० उन्नाव; **शि०** : बी० ए०, एल-एल० बी०; **प०** : संपादक, 'विचार' (कलकत्ता, १६४०); दैनिक 'नवजीवन' (लखनऊ), 'उत्तरा' (लखनऊ, साप्ताहिक); **र०** : 'मधुकण', 'त्रिपथगा', 'अपने खिलौने', 'चित्र लेखा', 'पतन', 'तीन वर्ष', 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते', 'दो बांके', 'हमारी उलझन', 'भूले-बिसरे चित्र' (साहित्य अकादमी पुरस्कार); **भा०** : हिंदी, अंग्रेजी, उर्दू; **वि०** : उपन्यासों के विदेशी भाषाओं में अनुवाद; अनेकानेक पुरस्कार।

वर्मा, मुकुटबिहारी



ज० : १९०४; सिकंदराबाद (उ० प्र०); **शि०** : मिडिल, नरसिंहगढ़ (म० भा०); असहयोग आंदोलन के कारण पढ़ाई बंद; **प०** : 'कर्मवीर' से प्रारंभिक संपर्क (१९१९-२०); 'राजस्थान केसरी' (वर्धा), अर्द्धसाप्ताहिक 'प्रणवीर' (नागपुर), 'माधुरी' (लखनऊ), दैनिक 'आज' (वाराणसी में कार्य; सहायक-संपादक, साप्ताहिक 'स्वदेश' (गोरखपुर, १९२५-२६); 'त्यागभूमि' (अजमेर) में कार्य, १९३६ में दैनिक 'हिंदुस्तान' में 'स्थानापन्न' संपादक 'हिंदुस्तान' (१९४१-४५) और संपादक (१९४६-६३); **र०** : पत्र-पत्रिकाओं में लेख; 'हरिजन सेवक संघ' का इतिहास, 'आज का इंगलिस्तान' आदि। मराठी-हिंदी अनुवाद एवं महाभारत मीमांसा संशोधन में सहयोग; **या०** : ब्रिटेन (१९५८ के लगभग); **वि०** : हिंदी के प्रतिष्ठित राष्ट्रीय दैनिक का संपादन करते हुए पत्रकारिता के उच्चादर्शों का अनुशीलन।

वर्मा, बाबू रामकृष्ण



ज० : आश्विन कृष्णा ७, संवत् १९१६ (शुक्रवार, २१ सितंबर १८५९) काशी; **पि०** : हीरालाल खत्री; **शि०** एंट्रेंस, बी० ए० (अनुत्तीर्ण); **प०** : संपादक-प्रकाशक 'भारत जीवन' (साप्ताहिक, ३ मार्च १८८४ ई०); **र०** : 'वर्षा विहार', 'विरहा-नायिका भेद', 'समस्यापूर्ति', 'सावन घटा' (सभी काव्य); 'कृष्णकुमारी नाटक', 'पदमावती नाटक', 'वीर नारी', 'अकबर उपन्यास', 'अमलावृत्तांत माला', 'कांस्टेबल वृत्तांत माला', 'ठग वृत्तांत माला', 'भूतों का मकान', 'स्वर्णबाई उपन्यास', 'बलवीर पचासा', 'संसार दर्पण', 'ईसाई मत खंडन', 'कथा सरित्सागर', 'चित्तौर चातकी' आदि; **वि०** : हिंदी गद्य के निर्माण में इनका एवं 'भारत जीवन' पत्र का महत्वपूर्ण योगदान है। 'भारत जीवन'प्रेस' द्वारा प्राचीन ग्रंथों का उद्धार किया; **नि०** : २५ दिसंबर १९०६।

वर्मा, रामचंद्र



ज० : माघ बदी २ बुधवार, संवत १९४६ (८ जनवरी १८९०) ; काशी ; **पि०** : दीवान परमेश्वरीदास ; **शि०** : स्वाध्याय; **प०** : 'हिंदी केसरी' (नागपुर साप्ताहिक, १९०७) के आप पहले सहकारी संपादक और बाद में संपादक रहे; संपादक 'बिहारी-बंधु, (एक वर्ष तक) ; सहकारी संपादक, 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' (काशी-मासिक १९१३-१४, संपादक १९१५-१६) ; 'भारत जीवन' को जब प्रथम महासमर के समय में बाबू रामकृष्ण वर्मा ने दैनिक किया तब इस पत्र का संपादन भी आपने ही संभाला; वर्माजी के अवसान के बाद जब यह पुनः साप्ताहिक हुआ तो कुछ समय तक आप ही संपादन करते रहे ; **र०** : लगभग एक सौ कृतियां; कुछ प्रमुख हैं—'काली नागिन', 'झांसी की रानी', 'महादेव गोविंद रानाडे', 'उपवास-चिकित्सा', 'बालशिक्षा', 'हम स्वराज्य क्यों चाहते हैं', 'साम्यवाद', 'भूकंप', 'मेवाड़ पतन', 'हिंदू-राज्यतंत्र' (दो भाग), 'प्राचीन मुद्रा' 'असहयोग का इतिहास', 'उर्दू-हिंदी कोश', अच्छी हिंदी', 'शब्द साधना', 'दुनिया' की शासन प्रणालियां'; संपादन, 'हिंदी शब्द सागर' **भा०** : हिंदी, संस्कृत, बंगला, मराठी, गुजराती, उर्दू, फारसी, अंग्रेजी आदि; **वि०** : हिंदी के परिमार्जन और अभिवृद्धि में मृत्युपर्यंत प्रयत्नशील रहे; **नि०** : १९६९ ।

वर्मा, शंकरलाल

ज० : १८९४; रुनिजा, रतलाम (म० प्र०) ; **शि०** : हाईस्कूल; **प०** : 'प्रताप' (कानपुर) से आरंभ; 'प्रणवीर' (नागपुर), 'कर्मवीर' (जबलपुर), 'आज', 'राजस्थान केसरी', नवीन राजस्थान', 'तरुण राजस्थान' तथा 'दैनिक हिंदुस्तान' में विभिन्न संपादकीय पदों पर रहे; **वि०** : कई बार जेल-यात्राएं; उग्र क्रांतिकारी; **नि०** : १७ जनवरी १९६२ ।

वसिष्ठ, विद्यासागर



ज० : २ अगस्त १६१८; ग्रा० मोना, जि० गुजरात (पाकिस्तान) ; शि० : बी० ए०, मेरठ; प० : १६४५ से दैनिक 'हिंदुस्तान' (दिल्ली) में विभिन्न पदों पर; संप्रति, समाचार संपादक; भा० : हिंदी, अंग्रेजी, उर्दू ।

वाचस्पति, जयंत



ज० : १७ मार्च १६१७; लुधियाना; पि० : इंद्र विद्यावाचस्पति,; शि० : इंटर (दिल्ली); प० : पत्रकारिता की प्रारंभिक शिक्षा लेखरामजी एवं रामगोपालजी द्वारा; संपादक, साप्ता० 'वीर अर्जुन' (दिल्ली, १६३५) प्रकाशक, युवा मासिक 'जवानी' (१६५१), दैनिक 'संध्या समाचार' (देहरादून १६५२); र० : 'क्रांतिकारी' 'अलविदा', 'गजरा', 'एक इंसान', 'रावी के किनारे', 'शब्दों का खजाना' आदि उपन्यास तथा 'मैं भूल न सकूं' नामक संस्मरण, वि० : अल्पायु में संपादक बने और विख्यात हुए; संपादन-काल में ही लंबी जेल यात्रा।

वाजपेयी, पं० अंबिकाप्रसाद



ज० : पौष शुक्ल १४, संवत् १६३७ (३० दिसंबर १८८०); कानपुर; **पि०** : पं० कंदर्पनारायण; **शि०** : एंट्रेंस ; **प०** : 'हिंदी बंगवासी' (कलकत्ता, २० नवंबर १६०५ से ३१ जुलाई १६०६) ; संपादन-संचालन, 'नृसिंह' (कलकत्ता) मासिक १६०७-१६०८); 'सनातन धर्म' (साप्ता० १६०६); 'हिमवार्ता' (कलकत्ता), प्रधान संपादक, 'भारत-मित्र' (कलकत्ता, जनवरी १६११-१६१६); 'स्वतंत्र' (कलकत्ता, १६२० से १६३०) **र०** : 'हिंदी-कौमुदी', 'हिंदी पर फारसी का प्रभाव', 'अभिनव हिंदी-व्याकरण', 'शिक्षा' (अनुवाद) 'हिंदुओं की राज-कल्पना' एवं 'भारतीय शासन-पद्धति; 'समाचार-पत्रों का इतिहास', 'समाचार-पत्र कला'; **भा०** : हिंदी, संस्कृत, प्राकृत, उर्दू, फारसी, अंग्रेजी आदि; **वि०** : गहन अध्ययन तथा शब्दानुशासन के द्वारा हिंदी पत्रकारिता को महिमा-मंडित किया; अनेक पत्रकारों को शिक्षा-दीक्षा दी तथा पत्रकारिता और राष्ट्रीय जागरण में तादात्म्य स्थापित किया; अ० भा० हिंदी साहित्य सम्मेलन का सभापतित्व ; **नि०** : २१ मार्च १६६८; लखनऊ।

वाजपेयी, भगवतीधर



ज० : ७ नवंबर १६२८; ग्वालियर; **पि०** : विद्याधर वाजपेयी; **शि०** : बी० ए०; एल-एल० बी० (इलाहाबाद वि० वि०); विशारद; एम० ए० (हिंदी); **प०** : १६५० में दैनिक 'स्वदेश' लखनऊ से आरंभ; 'वीर अर्जुन' (१६५१) दिल्ली में; १६५३ में दैनिक 'युगधर्म' के सहायक संपादक तथा १६५५ में संपादक। १६५६ में जबलपुर तथा अगस्त १६७२ से रायपुर संस्करण के भी प्रधान संपादक; **या०** : अमेरिका; **वि०** : अ० भा० समाचार-पत्र संपादक सम्मेलन की स्थायी समिति के भूतपूर्व सदस्य; भूत-पूर्व उपाध्यक्ष, म० प्र० श्रमजीवी पत्रकार संघ; सदस्य, म० प्र० शासन पत्रकार अधिमान्यता समिति; जबलपुर वि० वि० के पत्र-कारिता विभाग की विद्वत परिषद् के सदस्य।

वाजपेयी, पं० लक्ष्मीधर

ज० : चैत्र शुक्ल १० संवत् १९४४ (शनिवार, २१ अप्रैल १८८७ ई०); मैथा;, जि० कानपुर; शि० : प्राथमिक; स्वाध्याय; प० : सहयोगी संपादक, 'हिंदी ग्रंथ-माला' (नागपुर मासिक, १९०५), 'हिंदी केसरी' (नागपुर, १९०७), १९०८ में संपादक माधवराव सप्रे की गिरफ्तारी के बाद आपने मुद्रक और संपादक का भार संभाला, पर सरकार के कोप का भाजन होने के कारण यह पत्र १९०९ में बंद कर देना पड़ा; संपादक, 'चित्रमय जगत' (पूना, मासिक, १९११-१४ तथा १९१७-१८), 'आर्यमित्र' (आगरा, तीन वर्ष), 'राष्ट्रमत' (गया, साप्ता०, १९३७); र० : लगभग एक दर्जन पुस्तकें; प्रमुख है 'सदाचार और नीति', 'गार्हस्थ्य-शास्त्र', 'धर्म-शिक्षा', 'काव्य और संगीत', 'बज्राघात', 'उषःकाल' (दोनों मराठी उपन्यासों के अनुवाद), 'मेघदूत' (समश्लोकी और समवृत भाषानुवाद), 'दासबोध', 'रामदासचरित', 'शालोपयोगी भारतवर्ष' (तीनों सप्रेजी के साथ लिखित) आदि; भा० : हिंदी, संस्कृत, मराठी आदि; वि० : प्रचंड देशभक्त, समाज सुधारक, निर्भीक पत्रकार मृत्युपर्यंत हिंदी की सेवा में संलग्न ।

'विजय', पुरुषोत्तम



ज० १५ जुलाई १९१५; ग्रा० सेमरी हरचंद, जि० होशंगाबाद; शि० : विशारद; इंटरमीडिएट अधूरा, होल्कर कालेज, इंदौर; प० : साप्ताहिक 'अंकुश' (खंडवा, १९३४) में कुछ माह कार्य; ऋषिदत्त मेहता के साप्ताहिक 'राजस्थान' (ब्यावर) मे, रामनाथलाल सुमन के संपादकत्व में 'नव-राजस्थान' (अकोला) में; सह-संपादक, दैनिक 'सैनिक' (आगरा, १९३६-४२); कुछ माह दैनिक 'नवजीवन' (इंदौर, १९४०); सह-संपादक पाक्षिक 'माहेश्वरी' (बंबई, १९४४-४५); संपादक-प्रकाशक, 'इंदौर समाचार' (इंदौर, २२ मार्च १९४६-जून १९७१); र० : पत्र-पत्रिकाओं में लेख, निबंध आदि; कविता संग्रह 'अंगारा'; भा० : हिंदी, गुजराती, मराठी, अंग्रेजी, या० : व्यापक भारत-भ्रमण एवं पाकिस्तान; वि० : कई बार जेल यात्राएं; इंदौर नगर निगम के प्रथम गैर-कांग्रेसी महापौर (१९५८); अध्यक्ष, म० प्र० शासन पत्रकार अधिमान्यता समिति; म०प्र० शासन को मानहानि के दो मुकदमों में हराया; अनेक भंडाफोड़ किये ।

विद्याभास्कर



ज० : २८ जून १६१४; वाराणसी; शि० : दयानंद कालेज तथा काशी विद्यापीठ में; प० : सर्वप्रथम 'आज' में लेखन (१६३६); सहायक-संपादक दैनिक 'अग्रगामी' (वाराणसी, १६४०) तथा छह महीने बाद संपादक; स्थानीय संपादक, 'आर्यावर्त्त' (पटना, १६४१-४३); संपादक, 'आज' दैनिक (१६४३-४५); संपादक, दैनिक 'जयहिंद' (जबलपुर, १६४६); इसके बाद फरवरी १६५० तक उ०प्र० सूचना विभाग में हिंदी शाखाधिकारी; संपादक, 'अमृत पत्रिका' (३ फरवरी, १६५०); वरिष्ठ संपादक 'आज' (सितंबर १६६६ से अब तक); वि० : सचिव, हिंदुस्तानी अकादमी प्रयाग (१६६०-६६); अ०भा० समाचार-पत्र संपादक सम्मेलन की स्थायी समिति के सदस्य (१६४८-४५); स्वाधीनता-सेनानी; दो बार जेल-यात्रा; दक्षिण भारतीय होते हुए भी हिंदीभक्त।

विद्यार्थी, गणेशशंकर



ज० : २५ अक्तूबर १८६०; अतरसुइया प्रयाग; पि० : जयनारायण; शि० . एंट्रेंस, क्राइस्ट चर्च कालेज, कानपुर, पृथ्वीनाथ हाईस्कूल, कानपुर मे अध्यापन; प० : सर्वप्रथम 'कर्मयोगी' (हिंदी) 'स्वराज्य' (उर्दू) और 'हितवाणी' (कलकत्ता) में लेख लिखे, द्विवेदीजी द्वारा 'सरस्वती' के संपादन विभाग में आमंत्रण (२ नवंबर १६' उन्हीं दिनों 'अभ्युदय' (इलाहाबाद) में· ·ंपादक-प्रकाशक साप्ताहिक 'प्रताप' (कानपुर, ६ नवंबर १६१३); संपादक दैनिक 'प्रताप' (कानपुर, देवोत्थानी एकादशी, १६२०); भा० : हिंदी, उर्दू, अंग्रेजी; वि० : 'प्रताप' कार्या० क्रांतिकारियों का विश्राम स्थल था प्रथम जेल-यात्रा, रायबरेली के किसानों पर हुई गोली-वर्षा के विरुद्ध लेख लिखने पर (१६२०); कांग्रेस नेता और संपादक के नाते अनेक जेल-यात्राएं; १६३० के सत्याग्रह में उ० प्र० के प्रथम 'डिक्टेटर'; उ०प्र० विधान परिषद् के सदस्य, १६२६-२६; हिंदू-मुस्लिम दंगे के समय शांति-कार्य करते हुए शहीद; नि० : २५ मार्च १६३१।

विद्यालंकार, अवनींद्रकुमार



ज० : २२ मार्च १९०७; दानापुर, पटना (बिहार) शि० : गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार प्राध्यापक; प० : प्रधान संपादक साप्ताहिक 'आर्य' (लाहौर, १९२८-३४), दैनिक 'नवयुग' (दिल्ली, १९३४-३६); संयुक्त संपादक, दैनिक 'हिंदुस्तान' (दिल्ली, १९३६-४४); संपादक साप्ताहिक 'नवयुग' (१९४४-४६); संयुक्त संपादक दैनिक 'नवभारत' (दिल्ली, १९४६-५०); प्रधान संपादक मासिक 'जनरुचि'; संप्रति, १९५३ से स्वतंत्र पत्रकार के रूप में कार्य; र० : 'सरल अर्थशास्त्र', 'पंचवर्षीय सिंचाई बिजली योजना', 'सामुदायिक योजना', 'हमारे राष्ट्रपति राधाकृष्णन', 'मालवीयजी', 'भारत ज्ञानकोश' (वार्षिकी), 'विश्व ज्ञानकोश'; प्रधान संपादक 'हिंदुस्तान वार्षिकी', नागरी प्रचारिणी सभा आदि; वि० : दिल्ली प्रादेशिक हिंदी साहित्य सम्मेलन के संस्थापकों में से एक; सदस्य स्थायी समिति, हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग; संस्थापक हिंदी साहित्य परिषद्, दिल्ली।

विद्यालंकार, आनंद



ज० : ७ सितंबर १९१७; मुरादाबाद; पि० : नरोत्तमदास पारेख; शि० : विद्यालंकार (गुरुकुल कांगड़ी); प० : उप-संपादक, 'नवराष्ट्र' (बंबई, १९३९-४०), 'विश्वमित्र' (बंबई, १९४०-४१), 'अर्जुन' (दिल्ली, १९४२-४६), 'नवभारत टाइम्स' (दिल्ली, १९४७ से अब तक) वरिष्ठ सह-संपादक, अग्रलेख-लेखक; भा० : हिंदी, अंग्रेजी, संस्कृत, गुजराती; वि० : प्रचाररहित नैष्ठिक पत्रकार।

विद्यालंकार, इंद्रलाल शास्त्री



ज० : २१ सितंबर १८९७, जयपुर; शि० : शास्त्री; जैन संस्कृत कालेज जयपुर में अध्यापन; प्रधानाचार्य संस्कृत महाविद्यालय, मथुरा; प० : संपादक, मासिक 'सत्यवादी' (बंबई, १९२२), पाक्षिक 'खंडेलवाल जैन हितेच्छु' (कलकत्ता, १९२७), साप्ताहिक 'जैन गजट' (दिल्ली), 'साप्ताहिक सन्मार्ग' (जयपुर) तथा पाक्षिक 'अहिंसा' (जयपुर); र० : 'संस्कृत के प्राचीन जैन ग्रंथ' 'जिनदत्त चरित्र' तथा 'चरित्रसार' का संपादन तथा अनुवाद; 'वर्ण विज्ञान', 'तत्वालोक', 'आत्मवैभव', 'भारतीय संस्कृति का मूलरूप' 'साम्यवाद से मोर्चा, वि० : संस्कृत के प्रचार व प्रसार में मृत्युपर्यंत सक्रिय; नि० : १९७२।

विद्यालंकार, कृष्णचंद्र



ज० : १९०४; बसीड़ा, जि० मुजफ्फरगढ़ (पाकि०); शि० : गुरुकुल मुल्तान और गुरुकुल कांगड़ी; विद्यालंकार (१९२९); प० : सहायक संपादक 'त्यागभूमि', संपादकीय विभाग दैनिक 'वीरअर्जुन' (१९३२) मे तथा संपादक साप्ताहिक 'वीर अर्जुन'; संपादक एवं संचालक अर्थशास्त्र मासिक 'संपदा' (१९५२ से अब तक); वि० : निर्भीक एवं सत्यनिष्ठ पत्रिकारिता की प्रेरणा इंद्र विद्यावाचस्पति से।

विद्यालंकार, चंद्रगुप्त



ज०: ४ दिसंबर १९०६; ग्रा० कोट अद्दू (पाकिस्तान); पि० : टेकचंद; शि० : विद्यालंकार, गुरुकुलकांगड़ी; प्राचीन भारतीय इतिहास में शोध कार्य; प० : सह-संपादक 'ज्योति' (देहरादून, १९२७-३०); संपादक, दैनिक 'जन्मभूमि' (लाहौर, १९३१); संपादक तथा व्यवस्थापक, 'विश्व साहित्य ग्रंथमाला' (लाहौर, १९३२-४७); संपादक 'विश्व दर्शन' (दिल्ली, १९४८-५४), 'आजकल' (दिल्ली, १९५५-६२), 'सारिका' (बंबई, १९६३-६७); र० : सात कहानी संग्रह, छह नाटकों तथा अन्य विषयों की सात पुस्तकें; भा० : या० : हिंदी, संस्कृत, अंग्रेजी, उर्दू, फारसी; या० लगभग संपूर्ण यूरोप तथा अन्य कई देश; वि० : अध्ययनशील पत्रकारिता के समर्थक।

विद्यालंकार, भीमसेन



ज० ; २२ अक्तूबर १९००; जम्मू; शि० : विद्यालंकार, गुरुकुल कांगड़ी; अध्यापन; प० : प्रधान-संपादक दैनिक 'वीर अर्जुन', (दिल्ली, १९२४-२५), प्रकाशक साप्ता० 'सत्यवादी' (लाहौर, १९२५-२६); संपादक 'वंदेमातरम' और 'पंजाब केसरी' (१९२९), संपादक, मासिक 'अलंकार' (१९३३-३७), जिसका नाम बाद में 'हिंदी संदेश' रखा; संपादक, साप्ताहिक 'आर्य' (१९३४-५१); र० : 'वीर मराठे', 'वीर शिवाजी', 'वीर पंजाबी', 'बालमहाभारत', 'दयानंदोपनिषद', 'लाला लाजपतराय की आत्म-कथा' तथा 'वर्तमान भारत' का संपादन; भा० : हिंदी, संस्कृत, मराठी, गुजराती, पंजाबी, उर्दू, अंग्रेजी; वि० : गणेशशंकर विद्यार्थी के मुकद्दमे का विवरण प्रकाशित करने के लिए सजायाफ्ता; गांधीजी के आह्वान पर 'वीर अर्जुन' की संपादकी छोड़ हिंदी-प्रसार के लिए पंजाब गये; आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के दीर्घ काल तक मंत्री रहे; मंत्री हिंदी साहित्य सम्मेलन, पंजाब; कई बार जेल-यात्राएं; नि० १८ जुलाई १९६२; दिल्ली।

विद्यालंकार, रामगोपाल



ज० : १९०० ई०; हल्दौर, जि० बिजनौर; पि० : लाला भवानीप्रसाद; शि० : विद्यालंकार, गुरुकुल कांगड़ी, प० : 'प्रणवीर' (नागपुर) से आरंभ; संपादक, 'वीर अर्जुन' (दिल्ली); कुछ दिन दैनिक 'हिंदुस्तान' में भी; संपादक, 'नवभारत टाइम्स' (दिल्ली); र० : संस्कार विधि की हिंदी टीका, स्वामी श्रद्धानंद की जीवनी; नि० : १९६३; दिल्ली।

विद्यालंकार, विनायकराव



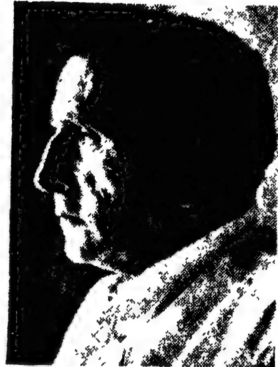
ज० : केशवराव कोरटकर; शि० : स्नातक, गुरुकुल कांगड़ी; अंग्रेजी और मराठी का अध्ययन, पूना; बैरिस्टर, इंगलैंड; प० : संपादक 'आर्यभानु' (हैदराबाद, साप्ता०, १९४६-५२); भा० : संस्कृत, हिंदी, मराठी, गुजराती, तेलगू, उर्दू, अंग्रेजी; या० : इंगलैंड तथा यूरोपीय देश; वि० : हैदराबाद के उच्च न्यायालय में वकालत करते हुए निजाम के विरुद्ध धार्मिक स्वतंत्रता आंदोलन (१९३७-३८) तथा विलय-आंदोलन (१९४७) चलाया; 'आर्यभानु' ने आंदोलन के पक्ष में प्रबल जनमत तैयार किया; हैदराबाद के प्रथम लोकप्रिय मंत्रिमंडल के सदस्य; नि० : १९६२; हैदराबाद।

विद्यालंकार, सत्यकाम



ज० : १६०५, लाहौर; शि० : विद्यालंकार, गुरुकुल कांगड़ी (हरिद्वार); प० : संपादक, 'वीर अर्जुन' दैनिक (१६२४), दैनिक 'नवयुग' (१६३१), 'आप-बीती' (बंबई), 'धर्मयुग' (बंबई १६५०), मासिक 'नवनीत हिंदी डाइजेस्ट' तथा इसी के गुजराती, मराठी संस्करण (बंबई, १६६१-७१); र० : शीर्षस्थ पत्र-पत्रिकाओं में लेख तथा यात्रा-वृत्तांत; विभिन्न विषयों पर पुस्तकें; भा० : हिंदी, मराठी, गुजराती, संस्कृत, अंग्रेजी; या० : देश-विदेश का व्यापक भ्रमण; वि० : अपने नाना स्वामी श्रद्धानंदजी की चिराकांक्षा पूर्ण करने के लिए चारों वेदों का अंग्रेजी अनुवाद कर रहे हैं।

विद्यालंकार, सत्यदेव



ज० : १ अक्तूबर १८६७; नाभा (पंजाब); पि० : प्रभुदयाल खन्ना; शि० : गुरुकुल कांगड़ी; प० : गुरुकुल के छात्र जीवन में 'राजहंस', 'अद्भुत', 'विजयदशमी' (दैनिक) तथा 'समालोचक' (दैनिक) हस्तलिखित पत्रों से प्रारंभ; 'सद्धर्म प्रचारक' और 'श्रद्धा' में दीक्षा; संपादक, दैनिक 'विजय' (दिल्ली, १६२०), 'राजस्थान केसरी' (नागपुर, १६२०-२३), (वर्धा), दैनिक 'प्रणवीर', 'मारवाड़ी' (नागपुर, १६२४-२५), 'नवयुग' (अकोला, कलकत्ता, १६२६-२८); दैनिक 'स्वतंत्र' (कलकत्ता, १६३१-३२), दैनिक 'विश्वमित्र' (कलकत्ता, १६३३-३४); दिल्ली के दैनिक 'हिंदुस्तान' के आदि संपादक (१६३६); संपादक, दैनिक 'विश्वमित्र' (दिल्ली), 'अमर भारत' (दिल्ली); आदि संपादक, दैनिक 'नवप्रभात' (उज्जैन, इंदौर और भोपाल); र० : लगभग ४० पुस्तकें; 'गांधीजी का मुकदमा', 'दयानंद दर्शन', 'जनरल अवारी', 'स्वामी श्रद्धानंद', 'लाला देवराज', 'आर्यसमाज किस ओर', 'हमारे राष्ट्रपति', 'राष्ट्रवादी दयानंद', 'परदा' आदि उल्लेख्य; अनेक अभिनंदन ग्रंथों का संपादन; भा० : हिंदी, संस्कृत, अंग्रेजी, उर्दू, मराठी आदि; वि० २०वीं शताब्दी के पत्र निर्माता संपादकों में से एक; संपादक के नाते अनेक बार जेल-यात्राएं; कलम कर्मठ सिपाही; नि० : २५ जून १६६५, दिल्ली।

विद्यावाचस्पति, इंद्र



ज० : ६ नवंबर १८८६ ई०; पि० : मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानंद); शि० : स्नातक, गुरुकुल कांगड़ी; प० : गुरुकुल जीवन में 'सत्यप्रकाशक' और 'ऊषा' (हस्तलिखित); संपादक-प्रकाशक, दैनिक 'सद्धर्म प्रचारक' १६११), 'विजय' (दिल्ली, साप्ता०), 'सत्यवादी' (दिल्ली, साप्ता०, १६१३), दैनिक व साप्ता० 'अर्जुन' तथा 'नवराष्ट्र' (बंबई) आदि; संपादक, 'जनसत्ता' (दिल्ली); र० : लगभग ३० पुस्तकें; 'भारत में ब्रिटिश राज का उदय और अस्त', 'मुगल साम्राज्य का क्षय और उसके कारण', 'अपराधी कौन', 'शाह आलम की आंखें', 'भारतेतिहासः' (संस्कृत) आदि; भा० : हिंदी, संस्कृत, उर्दू, अंग्रेजी; वि० : स्वाधीनता सेनानी; जेल-यात्राएं; आर्य नेता; समाजसुधारक; ब्रिटिश कोप के कारण अनेक बार पत्र बंद किये किंतु कभी झुके नहीं; नि० : २३ अगस्त १६६०; दिल्ली।

विनोद, वि० स०



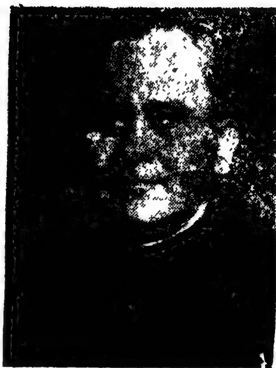
ज० : २८ मई १६०५; जि० मेरठ; शि० : इंटर, मेरठ कालेज; बी० ए०, डी० ए० वी० कालेज कानपुर; प० : छात्र जीवन में कालेज की मासिक पत्रिका 'आश्रम' का संपादन; संपादक हस्तलिखित पत्रिका 'खुल्लमखुल्ला'; शिक्षा के दौरान 'हिंदुस्तान टाइम्स' दिल्ली तथा 'वसुमति', कलकत्ता के कानपुर स्थित संवाददाता, संवाददाता दैनिक 'इंडियन डेली टेलीग्राफ तथा अंग्रेजी संवाद-समिति 'फ्री प्रेस आफ इंडिया'; उपसंपादक दैनिक 'टुडे' (बनारस); दिल्ली नगर प्रतिनिधि 'हिंदुस्तान टाइम्स'; १६३६ से कई अंग्रेजी पत्रों के मेरठ स्थित 'संवाददाता', प्रकाशक अंग्रेजी साप्ताहिक 'मेरठ टाइम्स' जो बाद में 'संडे टाइम्स' कहलाया (मेरठ १६३६); संपादक एवं प्रकाशक 'प्रभात' साप्ताहिक एवं दैनिक (मेरठ, क्रमशः १६४४ तथा १६४७ से अब तक); वि० : १६५५ में गोवा सत्याग्रह में भाग लिया; मेरठ नगरपालिका के वर्षों सदस्य रहे; हिंदी प्रचार में सक्रिय।

वियोगीहरि



पूरा नाम : हरिप्रसाद द्विवेदी; ज० : रामनवमी, संवत १९५२ छतरपुर (म० प्र०); पि० : बल्देव प्रसाद; शि० : प्राथमिक; स्वाध्याय; प० : संपादक, 'सम्मेलन पत्रिका' (प्रयाग, १९२०); संपादक-प्रकाशक 'पतितबंधु' (जबलपुर, पाक्षिक, १९३०); आदि संपादक 'हरिजन सेवक' (दिल्ली, २३ फरवरी १९३३-३९), 'हरिजन सेवा' (दिल्ली, मासिक, १९५३-७५); कुछ समय 'ब्रजभारती' (मथुरा) का भी संपादन; र० : 'वीर सतसई' (मंगलाप्रसाद पारितोषिक), 'तरंगिणी', 'भावना', 'श्रद्धाकण', 'अनुराग वाटिका'; 'छद्मयोगिनी', आदि लगभग ६० रचनाएं; वि० : सभापति, हिंदी साहित्य सम्मेलन (कराची); उ० प्र० हिंदी समिति द्वारा १० हजार रु० का विशिष्ट पुरस्कार; साहित्यवाचस्पति।

वीरेंद्र



ज० : १५ जनवरी १९११; पि० : महाशय कृष्ण; शि० : एम० ए०; प० : पत्रकारिता में प्रवेश 'प्रताप' (लाहौर, १९३३) से; संपादक दैनिक 'प्रताप' (१९४७ से); संस्थापक दैनिक 'वीर प्रताप' (१९५६); संपादक दैनिक 'प्रताप' (जालंधर); या० : कई बार विश्व-भ्रमण; वि० : स्वाधीनता सेनानी; कई बार जेल यात्राएं; संसदीय सचिव, प्रधानमंत्री, पंजाब (१९४७-४९); सदस्य, विधान परिषद् (१९५८-६४); आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब के महासचिव; तथा अनेक शैक्षणिक संस्थाओं के पदाधिकारी, महासचिव, अखिल भारतीय समाचार-पत्र संपादक सम्मेलन।

वेदालंकार, क्षितीशकुमार



ज० : १० अक्तूबर १९१७; दिल्ली; पि० : मानकचंद्र; शि० गुरुकुल कांगड़ी, एम० ए०, आगरा वि० वि०; प० : १९४७ से ५२ तक 'अर्जुन' में तथा १९५२ से 'हिंदुस्तान' में, संप्रति सह-संपादक, अग्रलेख-लेखक; र० : 'जेल में छह मास', 'जाति-भेद का अभिशाप', 'आर्यसमाज की विचारधारा'; 'जलबिंदु' (गुजराती से अनुवाद), 'स्वेतलाना' (उपन्यास), 'गांधीजी का हास्य-विनोद', 'मारीशस स्मारिका', 'सातवलेकर अभिनंदन ग्रंथ', 'श्रीकृष्ण संदेश' (जुगल किशोर स्मृति विशेषांक-संपादन), 'स्वप्न की तलाश में' (यात्रा-वृत्त), 'मधुर आकांक्षा'; भा० : हिंदी, संस्कृत, उर्दू, गुजराती, अंग्रेजी; या० : तिब्बत, नेपाल, मारीशस, बंगलादेश।



वैदिक, डा० वेदप्रताप

ज० : ३० दिसंबर १९४४; इंदौर; पि० : जगदीश प्रसाद वैदिक; शि० : बी०ए० (प्रथम श्रेणी); एम० ए० (राज० शास्त्र) प्रथम श्रेणी, पी-एच० डी० (अंतर्राष्ट्रीय राजनीति) ज० नेहरू वि० वि०; अध्ययन कोलंबिया वि० वि०, न्यूयार्क; स्कूल आफ ओरियंटल एंड एफ्रीकन स्टडीज, लंदन तथा प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, मास्को; प० : १९५८ में दैनिक 'जागरण' (इंदौर) में प्रूफ रीडिंग से प्रारंभ; प्रधान संपादक, 'अग्रवाही' (इंदौर, १९६२-६५); संपादक, 'क्रिश्चियन कालेज पत्रिका' (१९६४); दैनिक 'नईदुनिया' (इंदौर) मे गत १७ वर्षों मे समसामयिक प्रश्नों पर टिप्पणी, भेंटवार्ता, समीक्षा, संवाद-लेखन; विदेशों से 'धर्मयुग' और 'दिनमान' के लिए विशेष भेंटवार्ताएं। चार वर्ष तक राजनीतिशास्त्र का प्राध्यापन करने के बाद १९७४ से 'नव-भारत टाइम्स में सह-संपादक अग्रलेख-लेखक; र० 'अफगानिस्तान में सोवियत-अमरीकी प्रतिस्पर्धा' (गोविंदवल्लभ पंत पुरस्कार); 'अंग्रेजी हटाओ : क्यों और कैसे ?' संपादक, 'हिंदी पत्रकारिता : विविध आयाम'; भा० : हिंदी, संस्कृत, अंग्रेजी, फारसी रूसी; या० : अमेरिका, सोवियत संघ, ब्रिटेन तथा यूरोप के सभी देश; तुर्की, ईरान, लेबनान, अफगानिस्तान, ईराक आदि; वि० : हिंदी सत्याग्रह में कई बार जेल-यात्रा; अनेक अकादमिक एवं वक्तृत्व पुरस्कार; संस्थापक मंत्री, हिंदी पत्रकारिता समिति।

वैद्य, कन्हैयालाल



ज० : १९०९; ग्रा० थांदला, झाबुआ (म० प्र०), पि० : दौलतराम वैद्य, शि० : कालेज में पढ़ाई छूटी; प० : १९३१ में विदेशी शासन द्वारा वकालत की सनद छीन लिये जाने पर पत्रकारिता क्षेत्र में पदार्पण, ४० से भी अधिक—अंग्रेजी, गुजराती, मराठी, उर्दू एवं हिंदी-पत्रों के संवाददाता रहे; संपादक, 'अखंड भारत' (बंबई); भा० : हिंदी, मराठी, गुजराती, उर्दू, अंग्रेजी; वि० : स्वाधीनता सेनानी; अनेक जेल-यात्राएं; अंग्रेजों और सामंतों के षड्यंत्रों का पत्रकारिता द्वारा अनेक बार भंडा-फोड़; जिलों और प्रांतों से कई बार निर्वासित; प्रथम राज्यसभा के सदस्य; नि० : १९७४; उज्जैन।

वोरा, गोविंदलाल



ज० : १२ मार्च १९३२; नागौर; शि० : एम० ए० (राजनीतिशास्त्र), सागर वि० वि०; प० : संपादक, दैनिक 'नवभारत' (रायपुर, १९५६ से अब तक) तथा 'एम० पी० क्रानीकल'; या० : अमेरिका, इंगलैंड, जर्मनी, स्विट्जरलैंड, इटली, ग्रीस, इजिप्ट, लेबनान आदि; वि० : अध्यक्ष, पत्रकारिता विभाग, रायपुर विश्वविद्यालय, सदस्य अ० भा० समाचार-पत्र संपादक सम्मेलन; उपाध्यक्ष म० प्र० श्रमजीवी पत्रकार संघ।

श्यामसुंदरदास



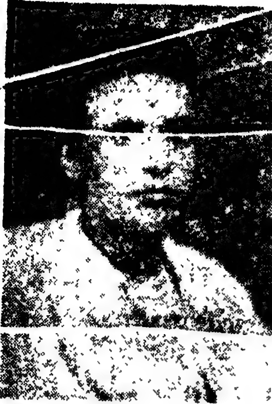
ज० : १८७५ ई० ; काशी; **पि०** : देवी दास खत्री; **शि०** : बी० ए०; डी०लिट्; संपादक, 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' (काशी, १८९६); 'सरस्वती' (प्रयाग, १६००) के पांच संपादकों में आप प्रथम संपादक रहे; दो वर्ष तक इस के संपादक; **र०** : दो दर्जन से अधिक मौलिक एवं संपादित ग्रंथ; उल्लेखनीय है—'हिंदी कोविद-रत्न माला' (भाग १-२), 'साहित्यालोचन', 'हिंदी भाषा का विकास', 'हस्तलिखित ग्रंथों का संक्षिप्त खोज-विवरण', 'हिंदी गद्य के निर्माता' (भाग १-२), 'मेरी आत्म-कहानी', 'भाषा रहस्य', 'चंद्रावली', 'पृथ्वीराज रासो', 'हमीर रासो', 'परमाल रासो', 'राधाकृष्ण ग्रंथावली' आदि; **भा०** हिंदी, संस्कृत, फारसी, उर्दू, अंग्रेजी आदि; **वि०** : 'नागरी प्रचारिणी सभा काशी' की स्थापना एवं हिंदी में सर्वप्रथम भाषा विज्ञान जैसे विषय पर लेखन; 'अखिल भारतीय हिंदी साहित्य सम्मेलन' का काशी में १९१० में प्रथम अधिवेशन आयोजित किया; १९१५ में प्रयाग हिंदी साहित्य-सम्मेलन के सभापति; काशी हिंदू विश्वविद्यालय के प्रथम हिंदी विभागाध्यक्ष; **नि०** : ७ अगस्त १९४५; काशी।

शर्मा, अचलेश्वरप्रसाद



ज० : ८ जून १९०७; **प०** : संयुक्त संपादक, 'तरुण राजस्थान', 'सैनिक' (आगरा) तथा संपादक, 'नव राजस्थान' (अकोला), १९२८ से १९३७ तक, संपादन-संचालन, 'प्रजासेवक' (जोधपुर, साप्ता०, १९४०); **वि०** : स्वाधीनता सेनानी; प्रथम नौ वर्ष के संपादन-काल में पांच वर्ष जेल में रहे, बाद में भी कारावास, १९७१ में जोधपुर में सार्वजनिक अभिनंदन तथा प्रधानमंत्री द्वारा ३० हजार रु० की की थैली भेंट; **नि०** : १५ सितंबर १९७४।

शर्मा, पं० ईश्वरीप्रसाद



ज० : आषाढ़ पूर्णिमा, संवत् १९५० (जुलाई १८९४); आरा (बिहार); पि० : पं० शारंगधर मिश्र; शि० ; एंट्रेंस, काशी के हिंदू कालेज में पढ़ने गये, पर अस्वस्थता के कारण पढ़ाई छोड़नी पड़ी; प० : संपादक, 'मनोरंजन' (आरा, सचित्र मासिक, १९१२), सहायक संपादक 'पाटलिपुत्र' (पटना), संपादक, 'लक्ष्मी' (गया, मासिक), 'श्रीविद्या' (गया, मासिक), 'शिक्षा' (पटना, साप्ता०), आदि संपादक, 'धर्माभ्युदय' (आगरा, मासिक), संपादन, 'हिंदू-पंच' (कलकत्ता); र० : लगभग ८०-९० मौलिक और अनूदित पुस्तकें; उल्लेखनीय हैं— 'चंद्रकुमार' (प्रथम उपन्यास), 'हिरण्यमयी', 'कोकिला', 'स्वर्णमयी', 'सीता', 'सूर्योदय' 'सिपाही विद्रोह', 'पंचशर', 'अन्नपूर्णा का मंदिर' (बंगला से अनुवाद), 'इंदुमती' (मराठी से), 'प्रेम-गंगा', और 'प्रेमिला' (अंग्रेजी से) 'जल-चिकित्सा' (बंगला से), 'मागधी कुसुम', 'सौरभ' (काव्यसंग्रह) 'सन् सत्तावन का गदर' आदि; भा० : हिंदी, संस्कृत, उर्दू, बंगला, मराठी, गुजराती अंग्रेजी; वि० : पत्रकारिता और कथा-साहित्य को भाषा की रवानगी दी तथा व्यंग्य-विनोद के उत्तम रचनाकार; नि० : २२ जुलाई १९२७, कलकत्ता।

शर्मा, केदारनाथ



ज० : ७ सितंबर १९१५; प० : उप-संपादक दैनिक 'नवयुग' (उत्तरार्ध, १९३६), 'हिंदुस्तान' में संबद्ध (१९३७), मुख्य संवाददाता के रूप में २० साल तक कार्य, बाद में मुख्य उप-संपादक, उप समाचार संपादक तथा अब संयुक्त समाचार-संपादक; र० : 'दिल्ली की डायरी' तथा कई महत्वपूर्ण स्तंभ-लेख एवं निबंध; वि० : हिंदी रिपोर्ताज देने में नाम कमाया, नेहरू जी के भाषणों एवं गांधीजी की प्रार्थना सभाओं के लोकप्रिय रिपोर्ताज तैयार किये।

शर्मा, झाबरमल्ल



ज० : माघ शुक्ला ६, सं० १९४५ (१८८८ ई०), जसरापुर (राज०); पि० : रामदयालु शर्मा; शि० : अधिकांश घर पर; डा० गणनाथ सेन के शिक्षा निकेतन में संस्कृत, बंगला एवं अंग्रेजी का अध्ययन (कलकत्ता), प० : १९०५-६ में पं० दुर्गाप्रसाद मिश्र के संपर्क में आये; संपादक, 'ज्ञानोदय' (कलकत्ता, १९०७), 'मारवाड़ी बंधु' (कलकत्ता), 'भारत' (बंबई, साप्ता० १९०९), 'मारवाड़ी' (नागपुर), १९१० में कलकत्ता वापस साझेदारी में 'गोविंद प्रेस' की स्थापना (१९१२), प्रकाशन 'कलकत्ता समाचार' (जन्माष्टमी, १९१४), 'कलकत्ता समाचार' बंद (१९२०), बाद में गणेसिंह भंदौरिया द्वारा 'कलकत्ता समाचार' का पुनः प्रकाशन; संपादक, शर्माजी; पं० दीनदयालु शर्मा की प्रेरणा से 'कलकत्ता समाचार' का दिल्ली स्थानांतरण तथा शर्माजी के संपादकत्व में नये नाम 'हिंदू संसार' (१९२५) से प्रचलित; र० : 'माधवमिश्र निबंधमाला', 'बालमुकुंद गुप्त निबंधावली' तथा 'गुलेरी गरिमा ग्रंथ', (संपा०) 'कारावास की कहानी', 'लिमिटेड कंपनिया', 'श्रीप्रदासर सामृत' (अमृत सतसई की भूमिका), 'श्री गणेशशंकर विद्यार्थी' आदि; भा० : हिंदी, संस्कृत, बंगला, अंग्रेजी; वि० : शासन और देशी राजाओं से निर्भीक पत्रकारिता के कारण मुकद्दमेबाजी, हिंदी पत्रकारिता इतिहास के संग्राहक।

शर्मा, नलिनविलोचन



ज० : १८ फरवरी १९१६, पटना; पि० : रामावतार शर्मा; शि० : एम० ए० संस्कृत (पटना कालेज) एम० ए० (हिंदी), 'कौटिल्य के अर्थशास्त्र में दंड-विधान' तथा 'रंगमंच और नाटक' विषयों पर शोध अपूर्ण; प० : संपादक, मासिक 'दृष्टिकोण', द्वैमासिक 'कविता' तथा त्रैमासिक 'साहित्य'; र० : 'दृष्टिकोण', 'विष के दांत', 'जगजीवनराम' (अंग्रेजी जीवनी) 'नकेन के प्रपद्य' (संपा०), 'लोककथा कोश' सदल मिश्र ग्रंथावली आदि; भा० : हिंदी, संस्कृत, अंग्रेजी; वि० : मंत्री बिहार हिंदी साहित्य सम्मेलन, शोध निदेशक बिहार राष्ट्रभाषा परिषद; नि० : १२ सितंबर १९६१, पटना।

शर्मा, पद्मसिंह



ज० : रविवार फाल्गुन शुक्ल द्वादशी संवत् १९३३ वि० (१८७६ ई०); नायक नगला, चांदपुर, जि० बिजनौर, उ० प्र०; पि० : चौ० उमरावसिंह; प० गुरुकुल कांगड़ी में अध्यापन करते हुए संपादकाचार्य रुद्रदत्तजी के साथ साप्ताहिक 'सत्यवादी' का संपादन (१९०४); संपादक 'परोपकारी' (अजमेर, १९०८), 'अनाथ रक्षक', 'भारतोदय' (गुरुकुल ज्वालापुर, १९०९); 'विशाल भारत', 'सुधा', 'स्वतंत्र' के साहित्यिक विशेषांकों का संपादन; र० : 'पद्म पराग' (प्रथम भाग), 'सतसई संहार', 'बिहारी सतसई : भूमिका भाग', 'बिहारी सतसई संजीवन भाष्य' (१९२३ में मंगलाप्रसाद पारितोषिक), 'गद्य गौरव' (संपा०), 'प्रबंध मंजरी', (संपा०), 'पद्म पराग' (द्वितीय भाग) अप्रकाशित; अनेक स्फुट लेख; भा० : हिंदी, संस्कृत, उर्दू, फारसी, अंग्रेजी; वि० : पत्रकारिता-जगत मे 'संपादकजी' के नाम से मशहूर, सभापति, युक्त प्रांतीय षष्ठ हिंदी सम्मेलन (१९२०), अखिल भारतीय हिंदी साहित्य सम्मेलन (मुजफ्फरपुर, १९२८); नि० : ७ अप्रैल १९३२; नायक नगला।

शर्मा, पं० भीमसेन



ज० : कार्तिक शुक्ल पंचमी संवत् १९११ (१८५५ ई०); लालपुर, जि० एटा; पि० : पं० नेकराम; शि० : घर पर ही गणित तथा उर्दू; संस्कृत, व्याकरण आदि संस्कृत पाठशाला फर्रुखावाद में; प० : संपादक, 'आर्य सिद्धांत' (प्रयाग मासिक संवत् १९४२); 'ब्राह्मणसर्वस्व' (इटावा, मासिक, १९०३) र० : वैदिक यंत्रालय (प्रयाग) मे रहकर संस्कृत के अनेक ग्रंथों का संशोधन तथा दर्शन और वैदिक ग्रंथों का हिंदी में अनुवाद; उपनिषदादि पर भाष्य भी; भा० : हिंदी, संस्कृत, उर्दू आदि; वि० : महर्षि दयानंद के सहकारी; बाद में पौराणिक मतावलंबी; संस्कृत के उद्भट विद्वान होते हुए भी हिंदी सेवा में निरत; नि० : चैत्र कृष्ण १२, संवत् १९७४।

शर्मा, मुंदर



ज० : १५ अगस्त १९२२; ग्रा० माधर, जि० सीवान (बिहार); शि० : बी० ए०; प० : 'सर्च-लाइट' (पटना), और इलाहाबाद के 'लीडर' व 'भारत' में काम; संपादक 'भारत' (बनारस संस्करण, १९५५); संपादक 'नवीन दुनिया' (जबलपुर, १९६० से); वि० : सदस्य, स्थायी समिति अखिल भारतीय समाचार-पत्र संपादक संघ; विगत पांच वर्षों से जबलपुर पत्रकार संघ के अध्यक्ष तथा जबलपुर में दो लाख रुपये की लागत से बने 'पत्रकार भवन' की योजना तथा निर्माण के सूत्रधार।

शर्मा, डा० रमेशकुमार



ज० : १९२६; टिहरी (गढवाल); शि० : एम० ए०, एल-एल०बी०, पी-एच० डी०; प० : संपादन, 'विशाल भारत' (१९५१-६०), 'वितस्ता' (१९६६-७६); 'योगी' (पटना), दैनिक 'केसरी' (लखनऊ); 'सैनिक' (आगरा) के संवाददाता (१९५५-६०); र० 'रीतिकाल और आधुनिक हिंदी कविता' (शोध प्रबंध); 'अपरिचित आकाश' (संपा०); 'विराजबहू' (बंगला से अनूदित); भा० : हिंदी, अंग्रेजी, बंगला, फ्रांसीसी, कश्मीरी; वि० : स्वाधीनता सेनानी; यू० पी० षड्यंत्र केस में दो वर्ष कारावास।

शर्मा, राजेंद्र शर्मा



ज० : ८ अक्तूबर १९२३; दिल्ली; पि० : पं० ब्रजेंद्रनारायण; शि० : स्नातक, दिल्ली वि० वि० तथा इलाहाबाद वि० वि०; प० : संपादक, 'हिंदी मिलाप' (हैदराबाद), 'समाज' (दिल्ली, मासिक), 'मधुकर' (दिल्ली), 'सुप्रभात' (कलकत्ता), 'किताबें और किताबें', 'धर्मयुग सुगम वर्ग पहेली'; र० : 'कायर', 'अंधे मोड़', 'मानस हंस', 'जय भारत विशाल', 'सागर का साम्राज्य' आदि; भा० : हिंदी, संस्कृत, मराठी, गुजराती, अंग्रेजी; वि० : सुगम वर्ग पहेली के द्वारा हिंदी-प्रचार में विशेष योगदान।

शर्मा, राधेश्याम



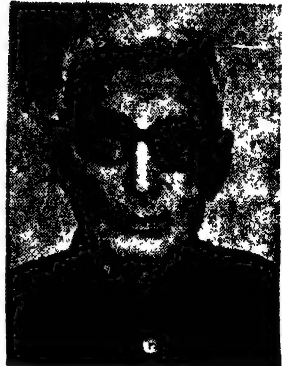
ज० : १ मार्च १९३४; जि० अलवर; शि० : मैट्रिक बारासिवनी तथा जबलपुर से, बी० ए०, काशी हिंदू वि० वि०; एम० ए० हिंदी, जबलपुर वि० वि०; प० : काशी हिंदू वि० वि० में अध्ययन के दौरान पत्रकारिता का श्रीगणेश; दैनिक 'संसार' में काम सीखते हुए हिंदी 'इंडियन एक्सप्रेस' के बनारस स्थित संवाददाता, जबलपुर में अध्ययन और पत्रकारिता साथ-साथ; 'युगधर्म' नागपुर, जबलपुर, रायपुर संस्करणों के भोपाल स्थित विशेष प्रतिनिधि (मई, १९५८), संवाददाता दैनिक 'इंदौर समाचार' एवं यू० एन० आई०; संप्रति, संपादक, 'युगधर्म' (जबलपुर संस्करण); र० : कई विषयों पर लेख; पत्रकारिता संबंधी कई स्मारिकाओं का संपादन; भा० : हिंदी, मराठी, अंग्रेजी, गुजराती, बंगला; वि० : आदिवासी क्षेत्रों की समस्याओं, योजना, विकास व राजनीतिक रिपोर्टिंग में विशेष रुचि।

शुक्ल, पं० रामनारायण



ज० : १८५७ ई०, ग्रा० सरौरा, जि० सीतापुर (उ० प्र०); शि० : स्वाध्याय; प० : संपादक 'आर्य-मित्र' (मुरादाबाद, १६०३); वि० : संपादकाचार्य पं० रुद्रदत्तजी तथा संपादकाचार्य पं० पद्मसिंह शर्मा के अभिन्न साथी; तीनों 'त्रिमूर्ति' कहलाते थे; बाद में गुरुकुल फर्रुखाबाद (अब वृंदावन) में चले गये; कन्नौज में 'सुधानिवास' नामक प्रसिद्ध औषधालय खोला; नि० : १६२२ ई०; कन्नौज।

शर्मा, रामानंद



ज० : १६ सितंबर १६०१; ग्रा० पुनास, जि० समस्तीपुर (बिहार); शि० : स्वाध्याय; दक्षिण में हिंदी अध्यापन का दीर्घ अनुभव; प० : प्रधान संपादक 'दक्खिनी हिंद' (मद्रास, मासिक, १६४६-५२); र० : 'मराठी हिंदी कोश' का संपादन; हिंदी प्रचार सभा, मद्रास के 'बृहत् कोश' पाठ्यक्रम के लिए प्राचीन एवं आधुनिक पद्य साहित्य का संग्रह और संपादन; मौलिक—'मानस की महिलाएं', 'महा-काव्य मंथन', 'तोरण के पर्ण', 'पुनर्मिलन', 'पीया चाहे प्रेमरस', 'वंदनीया', 'कैकेयी की कुटिलता' आदि, भा० : हिंदी, संस्कृत, बंगला, मराठी, उड़िया, तेलुगू, तमिल व अंग्रेजी सामान्य ज्ञान; वि० : दक्षिण में हिंदी प्रचार (१६२०-२६), उड़ीसा में हिंदी प्रचार, (१६३१-३३); कई हिंदी विद्यालयों के प्राचार्य एवं संचालक; संस्थापक, साहित्यानुशीलन समिति मद्रास।

शर्मा, पं० रुद्रदत्त



ज० : मार्गशीर्ष त्रयोदशी सं० १६११ वि० (१८५४ ई०) ग्रा० घामपुर, जि० बिजनौर; पि० : पं० काशीनाथ; शि० : प्रारंभिक शिक्षा घर पर; शेष अध्ययन वृंदावन, मथुरा तथा काशी में; प०: लगभग ४० वर्ष हिंदी पत्रों के संपादन में लगाये; आरंभ 'इंद्रप्रस्थ प्रकाश' (दिल्ली, साप्ता०, १८६६ ई० से); अन्य संपादित पत्र है : 'आर्य विनय' (मुरादाबाद, १८७५); 'भारतमित्र' (साप्ता०, एवं दैनिक १८८६), (कलकत्ता), 'आर्यावर्त' (कलकत्ता), 'हिंदी बंगवासी' (कलकत्ता), 'भारतरत्न' (पटना) 'श्रीवेंकटेश्वर समाचार' (बंबई), 'आर्यमित्र' (आगरा), 'प्रेम' (वृंदावन), 'सत्यवादी' (हरिद्वार), 'हितवार्ता' (कलकत्ता, १६०३), 'मारवाड़ी' (नागपुर) 'मालवा समाचार' (देवास, १६१७) आदि; र० . 'स्वर्ग मे सबजैक्ट कमेटी', 'स्वर्ग में महासभा', 'कंठी-जनेऊ का विवाह', 'पुराण परीक्षा', 'आर्यमत मार्तंड', 'योग दर्शन', 'ध्यानयोग विधि', 'वीरसिंह दारोगा', 'मनोरंजनी' (नाटक), 'शिक्षा विज्ञान', 'जर्मन जासूस', एक महत्वपूर्ण ग्रंथ 'हिंदी पत्रो का इतिहास' अपूर्ण एव अप्रकाशित; भा० : हिंदी, संस्कृत, उर्दू, अंग्रेजी; वि० . 'प्रखर विद्वता के साथ मूलत संपादक इसीलिए संपादकाचार्य कहलाये; अनेक बार गौरागशाही के शिकार होते-होते बचे; अंतिम दिन बहुत दुख मे बीते , नि० . १७ नवंबर १६१८ ।

शर्मा, पं० विश्वंभरप्रसाद



ज० : ग्रा० लुहारी, गढ़मुक्तेश्वर, लखावटी (बुलदशहर); प० : 'माहेश्वरी' से आरंभ (१६२४) तथा बाद मे संपादक; सपादक-प्रकाशक 'आर्यकुमार' (कलकत्ता, मासिक), संपादक, 'माहेश्वरी' (बंबई, १६२७); 'माहेश्वरी' (आगरा, १६२६), प्रणेता, 'विकास' (मेरठ, साप्ता०, १६३४); प्रकाशक-'आलोक' (सहारनपुर, साप्ता०, १६३६); संपादन संपादक सहयोग, 'नवभारत' (नागपुर, अर्द्ध-साप्ता०, १६३८), १६४४ मे नागपुर से 'आलोक' साप्ता० का पुनः प्रकाशन, जो १६४८ में दैनिक हो गया; संप्रति, 'माहेश्वरी' और 'गोधन' के संपादक; र० : अनेक पुस्तकें ।

शर्मा, शिवचंद्र



ज० : २४ मार्च १९२६; पि० : आचार्य कपिलदेव शर्मा; शि० : स्वाध्याय; प० : संपादक, 'पाटल' (पटना, मासिक, १९५२-५७), 'प्रपंच' (पटना, साप्ता०, १९५२-५७); 'दृष्टिकोण', 'स्थापना' आदि; 'आर्यावर्त्त', 'नवभारत टाइम्स', 'धर्मयुग', 'जनशक्ति', 'योगी', 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' में मांडव्य अद्भुत, शमसुद्दीन, बम भोले, शशांकशेखर, ढुंढी-राज, टोडरमल आदि उपनामों से विभिन्न स्तंभ लिखे; र० : 'मेखला', 'नया आदमी', 'अटैची केस', 'चलते चित्र', 'कूल किनारा', 'दिनकर और उनकी काव्य-प्रवृत्तियां' आदि; भा० : हिंदी, संस्कृत, बंगला, उर्दू, फारसी; वि० हास्य-व्यंग्य पत्रकारिता में अग्रणी, कई वर्षों तक बिहार हिंदी साहित्य-सम्मेलन के साहित्य-मंत्री; महामंत्री, अ० भा० हिंदी शोध मंडल; सदस्य, 'सीनेट' तथा 'फैकल्टी आफ आर्ट्स', पटना वि० वि०; मनोनीत सदस्य, बिहार विधान परिषद्; नि० : १६ अगस्त १९७३; पटना।

शर्मा, पं० शिवनाथ



ज० : फाल्गुन वदी ११, संवत् १९२४ (गुरुवार, ५ मार्च १८६८); काशी; पि० : पं० दामोदर शर्मा; शि० : बी० ए०; प० : छात्र जीवन मे ही संपादक, 'रसिक पंच' (दो वर्ष); 'गोपाल पत्रिका' (१९०१), 'वसुंधरा' (लखनऊ, मासिक), 'आनंद' (लखनऊ, साप्ता०, १९०५) कालांतर में यह दैनिक हो गया; 'सारसुधानिधि', 'उचितवक्ता' एवं 'भारतमित्र' आदि पत्रों में भी हास्य-रस के लेख लिखते रहे; र० : डेढ़ दर्जन के लगभग मौलिक एवं अनूदित पुस्तकें; प्रमुख हैं : 'नागरी निरादर', 'मानवी कमीशन', 'दरबारीलाल', 'नवीन बाबू', 'बहसी पंडित', 'चंडूलदास', 'शिक्षा-रहस्य', 'मृगांक लेखा', 'गदर का फूल', 'अवाक् वार्तालाप', 'प्रयोग-पारिजात', 'काव्य लतिका', आदि; शेक्सपियर के कुछ नाटकों का भाषानुवाद भी; भा० : हिंदी, संस्कृत, उर्दू, फारसी; वि० : हास्य-रस के आचार्य 'सारसुधानिधि' में 'चाटुवार्ता' नामक शीर्षक से छपने वाले हास्य-रस के बेजोड़ लेखों ने पाठकों को गुदगुदाकर हिंदी पत्रों की ओर आकर्षित किया था; नि० : आषाढ़, शुक्ला २, संवत् १९८५ (जून १९२८)।

शर्मा, श्रीराम



ज० : फाल्गुन शुक्ल पक्ष १३, सं० १९५२; ग्रा० किरथरा, जि० मैनपुरी; शि० : बी० ए० (आगरा कालेज, आगरा), असहयोग आंदोलन के कारण आगे की पढ़ाई रुक गयी; प० : १९२० में सह-संपादक दैनिक 'प्रताप'; २६ वर्षों तक 'विशाल भारत' के संपादक; 'प्रभा' के संपादक 'देवदूत शर्मा' नाम से; र० : नेताजी सुभाषचंद्र के जीवन एवं कार्यों पर एक बृहत् ग्रंथ का संपादन, 'बोलती प्रतिमा', 'शिकार', 'जंगल के जीव', 'वे जीते कैसे हैं', 'हमारी गायें', 'झांसी की रानी', 'नयना', 'सितमगर', 'प्राणों का सौदा', 'हमारे पड़ौसी पक्षी' 'शब्द चित्र', 'भारत के जंगली जीव' (लघु एवं बृहत् संस्करण); वि० : हिंदी पत्रकारिता में शिकार-साहित्य के प्रवर्त्तक; विशिष्ट क्रीड़ा लेखक; स्वतंत्रता आंदोलन में बहुत कष्ट झेले; जेल-यात्रा के दौरान तीन पुत्रों की मृत्यु हुई; नि० : २७ फरवरी १९६७; आगरा।

शर्मा, डा० श्रीराम



ज० : १९२० ई०; शि० : एम० ए०; पी-एच० डी०; डी० लिट्; प० : १९३७ से दैनिक 'हिंदुस्तान' के संवाददाता के रूप में आरंभ; स्वतंत्रता के बाद 'नवभारत टाइम्स', 'आज', 'स्वतंत्र भारत' आदि के संवाददाता; संपादक, 'अजंता' (हैदराबाद, मासिक, वर्षों तक); र० : लगभग १५ पुस्तकें; वि० : संवाद-प्रेषण के कारण निजाम के राज्य में जेल-यात्रा।

शर्मा, हरिदत्त



ज० : २ नवंबर १९२२; नजीबाबाद, उ० प्र० ; पि० : सुखदेवदत्त शर्मा; शि० : बी० ए० (पंजाब वि०) वि०; साहित्यरत्न; प० : हरिद्वार तथा मोदीनगर से हिंदी तथा अंग्रेजी पत्रों के लिए संवाद प्रेषण (१९४१-४४); दैनिक 'विश्वमित्र' साप्ताहिक 'विजय', 'अर्जुन में संपादन कार्य (१९४५-४७), 'प्रजा' एवं 'क्रांति' क्रमशः साप्ताहिक एवं मासिक पत्रों का संपादन; जून १९४८ से 'नवभारत टाइम्स' में विभिन्न पदों पर; संप्रति समाचार संपादक; र० : लेनिन—'भारत के संदर्भ में', 'सूर्योदय के देश मे', 'इंदिरा गान्धी विश्व के संदर्भ में', 'नेहरू और नयी पीढ़ी' आदि; भा० : हिंदी, संस्कृत, पंजाबी, उर्दू, अंग्रेजी; या० : सोवियत संघ, पोलैंड, पूर्वी जर्मनी, थाई देश, जापान फिलीपाइंस; वि० : पत्रकारिता द्वारा दलित वर्ग की सेवा, पाखंड निवारण तथा हिंदी का समर्थन ।

शर्मा, हरिशंकर



ज० : ७ सितंबर १८९० : हरदुआगंज (अलीगढ़); पि० : नाथूराम शर्मा 'शंकर'; शि० : प्रारंभिक शिक्षा घर पर और भाषा-ज्ञान स्वाध्याय से; प० : सर्वप्रथम 'भारतोदय' मे पदमसिंह शर्मा के सहकारी तथा कालांतर में संपादक; संपादक, साप्ताहिक 'आर्यमित्र', 'प्रभाकर', 'आर्यसंदेश' 'साधना', 'कर्मयोग', 'निराला', 'ज्ञान-गंगा' एवं दैनिक 'दिग्विजय' । कुछ समय साप्ताहिक 'सैनिक' का संपादन तथा 'विशाल भारत' में सहयोग; र० : लगभग छह दर्जन पुस्तकें। 'चिड़ियाघर', 'पिंजरापोल', 'मन की मौज', 'गड़बड़ गोष्ठी', 'रस रत्नाकर', 'छंद-विज्ञान की व्यापकता', 'रस-छंद तथा 'घास-पात', 'रामराज्य' 'महर्षि महिमा' और 'कृष्ण-संदेश' आदि ; भा० : हिंदी, संस्कृत, बंगला, गुजराती, मराठी, उर्दू; वि० 'आर्यमित्र' को विदेशों में भी लोकप्रिय बनाया; ५५ वर्ष से अधिक पत्रकारिता एवं साहित्य क्षेत्र में बिताये; सभापति उत्तर प्रदेशीय हिंदी साहित्य सम्मेलन; उ० प्र० हिंदी पत्रकार सम्मेलन; अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा सम्मेलन; भाषा विधेयक के विरोध में 'पद्मश्री' अलंकरण का परित्याग; नि० : ८ मार्च १९६८; आगरा ।

शर्मा, हृषिकेश



ज० : १४ फरवरी १८६१ : दतिया (म० प्र०); पि : हरिकृष्ण शास्त्री तैलंग; प० : दक्षिण-हिंदी-प्रचार सभा के मुखपत्र पाक्षिक 'हिंदी प्रचारक' के संपादक के रूप में पदार्पण, नागपुर हिंदी साहित्य सम्मेलन (१९३६) के दौरान अंतर्भारतीय मुखपत्र के रूप मे 'हंस' को नया रूप प्रदान करने का निश्चय किया गया। बंबई में शर्माजी प्रेमचंदजी के सहयोगी रहे; सप्रति 'राष्ट्रभारती' के संपादक; वि० : १९१८ से लगभग १८ वर्ष तक दक्षिण में हिंदी-प्रचार का स्तुत्य कार्य; वर्धा राष्ट्रभाषा प्रचार समिति में ५० वर्ष तक सेवारत; हिंदी सेवाओं के लिए उपाधि 'साहित्यवाचस्पति'।

शर्मा, क्षेत्रपाल

ज० : १८७० ग्रा० गोच, जि० फिरोजाबाद; पि० . चतुर्भुज शर्मा, प० संपादक 'आर्यवर्त' (कलकत्ता, साप्ता०, १८९०), जगनमित्र' (मथुरा, मासिक, १८९१) 'ब्रजवासी' (वृंदावन, मासिक १८९२), 'भारत मित्र' (कलकत्ता); र० 'समार सुख', व्यापार शिक्षा', 'चिकित्सा सिंधु', 'हजार व्यापार', 'तिल की ओट पहाड', 'साबुन शिक्षा', 'फोटोग्राफी शिक्षा', 'सांख्य दर्शन' आदि, वि० : आर्यसमाज द्वारा संचालित धार्मिक एव सामाजिक उत्थान आंदोलनमें सक्रिय सहयोग; हिंदी मे विविध व्यापार, लघु उद्योग एवं कलात्मक रुचि को विकसित करने वाली उपयोगी पुस्तकों की रचना; मथुरा मे 'सुख संचार' नामक सुप्रसिद्ध दवा कंपनी के द्वारा चिकित्सा और औषध निर्माण क्षेत्र में भी प्रशंसनीय कार्य। यह कंपनी आज भी वर्तमान है; नि० : १४ जनवरी १९४२।

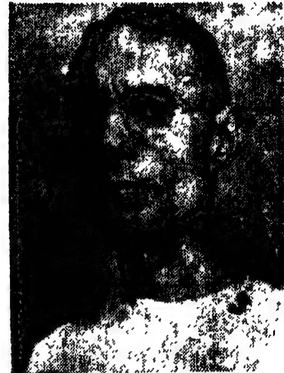


शांशकर, श्रीकृष्ण प्रसाद गुप्त



ज० : २ दिसंबर १६२६; चाईबासा (बिहार); पि० : दीपनारायण गुप्त; प० : १९४४ में हस्त-लिखित पत्रिका के संपादन से आरंभ; संपादन-प्रकाशन 'वीर सैनिक '(मासिक, १६४६), 'शौण्डिक' (१९५२), 'शबरी' (चक्रधरपुर, १९६०-६७) आदि ; वि० : आदिवासी क्षेत्र में हिंदी प्रचार।

शास्त्री, चंद्रशेखर



ज०: ११ अगस्त १९००; लालढांग जि० बिजनौर; शि० : शास्त्री आंदोलन के कारण शिक्षा छूटी; प० : संपादक, 'हिंदू संसार' दिल्ली, (१९२७-२८), दैनिक 'स्वतंत्रता' (आगरा, १६२६-३२), 'फिल्म संसार' (दिल्ली, १६३७-४२), 'वैश्य समाचार' (साप्ता० १६४६-४७), 'नवभारत टाइम्स' (दिल्ली, १६४८-४६), 'राजस्थान न्यूज सर्विस' (दिल्ली, १६४६-६४); र० : लगभग ८० पुस्तकें; प्रमुख हैं— 'पृथ्वी और आकाश', विश्वबंधुत्व', 'हिटलर महान' 'मुसोलिनी', 'भीष्म प्रतिज्ञा', 'वनमहोत्सव', 'आधुनिक आविष्कार' आदि; वि० : स्वाधीनता सेनानी; उग्र क्रांतिकारी गतिविधियां तथा जेल-यात्रा।

शास्त्री, देवव्रत



ज० : २ दिसंबर १९०२; ग्रा० गोरे, पिपरा थाना (बिहार); पि० : महावीरसिंह; शि० : मैट्रिक, राष्ट्रीय विद्यालय, शास्त्री, काशी विद्यापीठ; प० : सहयोगी संपादक, 'प्रताप' (कानपुर, २८ जनवरी १९२७-३० जून १९३४); संपादक-संचालक 'नवशक्ति (पटना, साप्ता०, १९३४; दैनिक, १९३६), दैनिक 'नवराष्ट्र' (पटना, १९४७-६२), हिमालय संदेश' (१९५७), 'उद्योगभूमि' (रांची, १९६०) आदि; र० : 'वर्तमान रूस' (१९२८ में रूस पर हिंदी में लिखी प्रथम पुस्तक), 'आदर्श कलाकार', 'गणेशशंकर विद्यार्थी', 'मुस्तफा कमाल', 'माओ के चीन में', 'मकरंद,' 'गरीबी की आह', 'ग्राम सुधार' आदि; भा० : हिंदी, अंग्रेजी; या० : चीन, रूस, पोलैंड, रूमानिया, चेकोस्लोवाकिया; वि० स्वाधीनता सेनानी; जेल-यात्राएं मंत्री अ० भा० पत्रकार संघ (१९४१-४२), प्रांतीय हिंदी साहित्य सम्मेलन आदि; अनेक पुस्तकालय और शिक्षा संस्थाओं की स्थापना; नि० : १० जनवरी १९६२; फतुहा।

शास्त्री, शिवनंदन



ज० : ८ मार्च १९२०; बिरक, ते जगराओ (पंजाब); शि० : शास्त्री, प्रभाकर, बी० ए०, पंजाब वि० वि०; प० : १९५१ मे दैनिक 'मिलाप' (हैदराबाद) के संपादन विभाग मे आरंभ, १९५८ तक वही, प्रकाशन-संपादन, 'संगम' (हैदराबाद, साप्ता०, २८ अप्रैल १९५८-१४ अप्रैल १९६३)।

शिवपूजनसहाय



ज० : ९ अगस्त १८९३; ग्राम उनवांस, जि० भोजपुर; पि० : वागीश्वरीदयाल; शि० : मैट्रिक, कायस्थ जुबली एकेडमी; अध्यापन; प० : संपादक, मासिक 'मारवाड़ी-सुधार' (आरा, १९२१); १९२३ में ईश्वरीप्रसाद शर्मा के अनुरोध पर 'मतवाला' के संपादक-मंडल मे शरीक; उसके बाद 'आदर्श', 'उपन्यास-तरंग', 'समन्वय', 'मौजी', 'गोलमाल' आदि पत्रों का संपादन; 'माधुरी' (लखनऊ, १९२५) के संपादकीय विभाग में कार्य; संपादक मासिक 'गंगा' (१९३०-३१), 'बालक' (१९३४); मासिक 'हिमालय' (१९४६), बिहार हिंदी साहित्य सम्मेलन शोध त्रैमासिक 'साहित्य'; र० : (संपा०) 'द्विवेदी अभिनंदन ग्रंथ', 'राजेंद्र अभिनंदन ग्रंथ', 'डा० राजेंद्रप्रसाद की आत्मकथा', 'श्री राजराजेश्वरी-ग्रंथावली', 'राजा कमलानंद सिंह ग्रंथावली', 'सेवाधर्म', 'बिहार की महिलाएं', 'हिंदी साहित्य और बिहार', 'सदल मिश्र ग्रंथावली', 'अयोध्याप्रसाद खत्री स्मारक ग्रंथ', मौलिक—'बिहार का विहार', 'विभूति', 'देहाती दुनिया', 'भीष्म', 'अर्जुन', 'मां के सपूत', 'अन्नपूर्णा के मंदिर में', 'दोघड़ी' 'महिला महत्व', 'बालोद्यान', 'आदर्श परिचय', 'मेरा बचपन', 'वे दिन : वे लोग', 'बिंब-प्रतिबिंब', 'मंगलकलश' आदि; वि० : सभापति, बिहार प्रांतीय हिंदी साहित्य सम्मेलन (१९४१); अध्यक्ष, साहित्य परिषद्, अखिल भारतीय हिंदी साहित्य सम्मेलन (जयपुर, १९४८); मंत्री, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् (जुलाई १९५० से अगस्त १९५९ तक); नि० : २१ जनवरी १९६३।

शुक्ल, उमाशंकर



ज० : २३ अगस्त १९१८; मनिकापुर, जिला उन्नाव; शि० : वर्धा मे; प० : १९४१ से गांधीजी के कार्यों और विचारों की 'रिपोर्टिंग' से आरंभ; वर्षों से अनेक राष्ट्रीय पत्रों के वर्धा में प्रतिनिधि; संपादक, 'जागरण' (वर्धा, साप्ता०, १९५१ से) वि० : स्वाधीनता सेनानी, शब्द चित्र लेखन-पटु।

शुक्ल, देवीदत्त

ज० : १८८८ ई०; प० : संपादक, 'बालसखा' (प्रयाग); २७ वर्ष तक 'सरस्वती' (प्रयाग) का संपादन किया; र० : 'संपादक के पच्चीस वर्ष', 'स्वाधीनता के पुजारी', 'अवध के गदर का इतिहास', 'हिंदुओं की पोथी', 'क्रांतिकारी' आदि; नि० : २० मई १९७१।

शुक्ल, प्रयागदत्त



ज० : १८९८; नागपुर; शि० : मैट्रिक; प० : 'संकल्प', 'धर्मवीर', 'मानवता', 'हमारे गांव' (मासिक), 'रेखा' (त्रैमासिक) का संपादन किया; र० : 'दादाभाई नौरोजी', 'मध्यप्रदेश का इतिहास', 'नागपुर के भोंसले', 'सतपुडा की सभ्यता'; नि० : २४ जुलाई १९६७।

शुक्ल, भानुप्रताप



ज० : २५ अक्तूबर १९३५; ग्राम बनजरवा, जि० सुलतानपुरा (उ० प्र०); पि० : अभयनारायण शुक्ल; प० : संपादक, 'पांचजन्य' (लखनऊ, साप्ता०, १९६४-६७); दैनिक 'तरुण भारत' (लखनऊ, १९६७-७१), राष्ट्रधर्म (लखनऊ, मासिक, १९७२ से अब तक); र० : 'राष्ट्र जीवन की दशा', 'सावरकर विचार दर्शन', 'भारतीय धर्म और संस्कृति', अधूरी क्रांति' तथा अनेक कहानियां व कविताएं।

शुक्ल, पं० युलगकिशोर

ज० : कानपुरनिवासी

प० : युगलकिशोर शुक्ल को हिंदी का प्रथम पत्रकार कहा जा सकता है। उन्होंने ३० मइ १८२६ का कलकत्ता से 'उदंत मार्तंड' (साप्ता०) का प्रकाशन-संपादन किया। वे "....पहले कलकत्ते की सदर दीवानी अदालत में प्रोसीडिंग रीडर थे। फिर उसी अदाजत मे वकालत करने लगे थे।" ४ दिसंबर १८२७ को 'उदंव मार्तड' का अंतिम अंक निकला। १८५० ई० में शुक्लजी ने 'साम्यदंड मार्तंड' का प्रकाशन भी किया।

'उदंत मार्तंड' के माध्यम से शुक्लजी ने 'हिंदुस्तानियों के हित के हेतु' जुझारू हिंदी पत्रकारिता की नींव डाली। शुक्लजी कई भाषाओं के जानकार थे तथा भाषा, नाम, व्याकरण आदि के बारे में उन्होंने समसामयिक बंगला-पत्रों से भी टक्कर लेने में कोई कसर नहीं छोड़ी। बंगला-पत्रों के अन्य अनुचित आरोपों का भी उन्होंने दृढ़तापूर्वक उत्तर दिया। 'उदंत मार्तंड' में देशी, विदेशी तथा स्थानीय समाचारों के अतिरिक्त हास्य-व्यंग्य, विज्ञापन, सरकारी सूचना तथा संपादकीय टिप्पणियों का समावेश रहता था।

शुक्ल, श्रीशचंद्र



ज० : १६०२; मुरादाबाद; पि० : पं० रामनारायण शुक्ल (शर्मा); शि० : एम० ए०; एल-एल० बी०; विशारद; प० : संपादक, 'वर्तमान' (कानपुर, १६३०), 'दिवाकर' (आगरा, साप्ता०, १६३६), 'सैनिक' (आगरा, १६३८), 'आर्यमित्र' (आगरा, १६३६), 'सुदर्शन-चक्र' (आगरा, १६३६), 'नवराष्ट्र' (बंबई, १६३४); आगरा संवाददाता, 'वीर अर्जुन' (दिल्ली, १६३७-३६); संपादक 'इंडियन ग्रेन ट्रेडर' (दिल्ली, १६६४ से अब तक); वि० : भारत सरकार के सूचना-सेवा पदों पर १६३६ से ६२ तक कार्य।

शैलेंद्रकुमार



ज० : १६४३; ग्रा० बरुराज, जि० मुजफ्फरपुर पि० : महेश्वरप्रसाद शाही; शि० : बी० ए० (आनर्स) हिंदी; एम० ए० (हिंदी); प० : दैनिक 'सर्चलाइट' (पटना) में उप-संपादक; विशेष संवाददाता, दैनिक 'हिंदुस्तान' (दिल्ली, १६६६ से अब तक); भा० : हिंदी, अंग्रेजी; वि० : शाहदरा (दिल्ली) के ओंकारसिंह हत्याकांड में श्रेष्ठ रिपोर्टिंग के लिए न्यायाधीश द्वारा प्रशस्त) अपराध-संवाद में विशिष्टता।

शैलेंद्रकुमार



ज० : २५ नवंबर १९१४; शि० : छपरा, उज्जैन, नागपुर में; प० : १९३६ से पत्रकारिता में; संप्रति, दैनिक 'नवभारत' (नागपुर) के संपादक; भा० : हिंदी, गुजराती, मराठी, अंग्रेजी; वि० : अध्यक्ष, नागपुर श्रमजीवी पत्रकार संघ; उपाध्यक्ष हिंदी लेखक संघ।

श्रद्धानंद, स्वामी

ज० : १८५६ ई०; जालंधर; पि० : नानकचंद; शि० : बी० ए०; प० : संपादक-प्रकाशक, 'श्रद्धा' (गुरुकुल, मासिक), 'सत्यवादी' (साप्ता०), 'सद्धर्मप्रचारक' (गुरुकुल कांगड़ी और दिल्ली से; पहले साप्ताहिक और कुछ दिन दैनिक); र० : 'कल्याण मार्ग का पथिक'; वि० : गुरुकुल कांगड़ी के संस्थापक, मूर्धन्य आर्यनेता, हिंदी साहित्य सम्मेलन, भागलपुर अधिवेशन के सभापति, अमृतसर कांग्रेस अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष, नि० : २३ दिसंबर १९२६, दिल्ली।

श्रीनिवासदास, लाला



ज० : संवत् १९०८ (१८५१ ई०) दिल्ली; **पि०** : लाला मंगलीलाल, **शि०** : घर पर ही, स्वाध्याय; **प०** : संपादक, 'सदादर्श' (दिल्ली, साप्ताहिक, १८७४)— अत्यंत कम दाम में लगभग दो वर्ष तक इसे कुशलतापूर्वक चलाते रहे, फिर इस पत्र का विलय भारतेंदु हरिश्चंद्र की सुप्रसिद्ध पत्रिका 'कविवचनसुधा' में हो गया; 'कविवचनसुधा' के भी प्रतिष्ठित लेखकों में से एक रहे हैं; **र०** : 'तप्तासंवरण', 'संयोगिता स्वयंवर', 'प्रह्लाद चरित्र', 'रणधीर प्रेममोहिनी', 'परीक्षागुरु' आदि, **वि०** : हिंदी नाटकों के प्रभातकाल में भारतीय और पाश्चात्य नाट्य-शैली का संयुक्त प्रयोग कर हिंदी नाटक-क्षेत्र में नयी संभावनाओं का उन्मेष किया, 'परीक्षागुरु' नामक उपन्यास की रचना कर हिंदी में प्रथम मौलिक उपन्यासकार होने का गौरव, हिंदी के निर्माताओं में आपका स्थान अग्रणी है; **नि०** : संवत् १९४४ (१८८७ ई०)।

श्रीवास्तव, नवजादिकलाल

ज० : १८८८ ई०; **जि०** मिर्जापुर; **शि०** : मिडिल; **प०** : कंपोजिटर के रूप में आरंभ; संपादन, 'वीरभूमि' (कलकत्ता, साप्ता०); 'हिंदू पंच', 'भूतनाथ' का संपादन; 'मतवाला' के संपादक मंडल के प्रमुख सदस्य; संपादक-प्रकाशक 'सरोज' (कलकत्ता, मासिक), कुछ समय 'चांद' के भी संपादक, अंतिम समय 'जागृति' के संपादक-प्रकाशक; **नि०** : १९३९ ई०।

श्रीवास्तव, मुकुंदीलाल

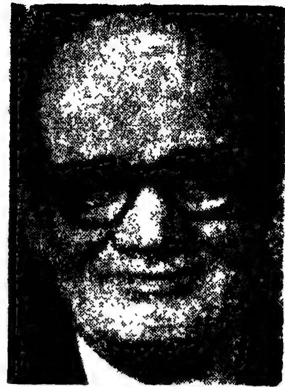


ज० : २५ अक्तूबर १८९६, ग्रा० गौर झामर, जि० सागर (म० प्र०); शि० : एम० ए० (दर्शन); प० : सहायक संपादक, दैनिक 'आज' (फरवरी १९२१—जुलाई १९२१), संपादन, 'स्वार्थ' (मासिक, वाराणसी), साप्ताहिक संस्करण 'आज' का संपादन (१९३८-४३), लगभग ढाई वर्ष दैनिक 'संसार' का तथा 'युगधारा' (मासिक) का भी संपादन; र० : ज्ञानमंडल के 'शब्दकोश' और 'पारिभाषिक शब्द-कोश' का संपादन; प्रमुख रचनाएं—'साम्राज्यवाद' 'छह स्मरणीय मुकद्दमे' आदि; वि० : सुदीर्घ पत्र-कार-जीवन में अनेक पत्रकार तैयार किये।

श्रीवास्तव, रामानुजलाल

ज० : भाद्रपद शुक्ल तृतीया (हरतालिका) संवत् १९५५ (१८९८ ई०), सिहोरा जबलपुर; पि० : लक्ष्मणप्रसाद; शि० : मैट्रिक; प० : १९१४ में बख्शीजी के संपक मे आने पर लेखन की ओर प्रवृत्त हुए; परिपूर्णानंद वर्मा के सहयोग से 'प्रेमा' (अक्तूबर १९३०—मार्च '३३) का संपादन-प्रकाशन; द्वारिकाप्रसाद मिश्र-के संपादकत्व में साप्ताहिक 'सारथी' (जबलपुर, २६ मार्च १९४२) के संपादकीय विभाग में; बाद में 'युगारंभ' तथा 'प्रहरी' में नियमित लिखते रहे। व्यंग्य लिखे—'ऊंट बिलहरवी' के नाम से; र० : 'गालिब की गजलें', 'महाकवि अनीस', 'उनींदी रातें', 'हम इश्क के बंदे हैं', 'जजबाते ऊंट'; भा० : हिंदी, उर्दू, अंग्रेजी; या० : घोड़े पर सवार होकर खैबर दर्रा पार किया, वि० : बच्चन, भवानीप्रसाद मिश्र, सुभद्राकुमारी चौहान जैसे सुप्रसिद्ध रचनाकारों की प्रारंभिक कृतियां 'प्रेमा' में छपीं, इसके 'हास्य रसांक' (सं० : अन्नपूर्णानंद) 'शांत-रसांक' (सं० संपूर्णानंद) 'शृंगार-रसांक' (सं० लोकनाथ सिलाकारी), हिंदी साहित्य की निधि हैं, म० प्र० हिंदी साहित्य सम्मेलन द्वारा अभि-नंदन (१९६५)।

सक्सेना, बी० बी०



ज० : २५ जून १९२०; बरेली; शि० : एम० ए० (अंग्रेजी), बरेली; डिप्लोमा, पत्रकारिता विभाग, पंजाब वि० वि०; प० : १९४७ में भारत-विभाजन की घटनाओं की 'रिपोर्टिंग' से आरंभ; विशेष संवाददाता, दैनिक 'नई दुनिया' (इंदौर, १९४८ से अब तक), इसके पूर्व लगभग दो वर्ष 'फ्री प्रेस' (बंबई) में, संवाददाता 'स्क्रीन' (बंबई, १९५५ से); संपादक 'पार्लियामेंटरी टाइम्स' (अंग्रेजी, दिल्ली, १९५७ से अब तक); या० : हंगरी, युगोस्लाविया; वि० : पत्रकारिता अध्यापन, पंजाब वि० वि० में तथा अन्यत्र।

सक्सेना, विद्या विभा



ज० : ११ अगस्त १९२६, सिकंदराबाद; शि० : बी० ए० वनस्थली विद्यापीठ, एम० ए० आगरा वि० वि०, हिंदी की अन्य परीक्षाएं, कला परीक्षा जे० जे० स्कूल आफ आर्ट्स, बंबई; डिप्लोमा, पत्रकारिता विभाग, पंजाब वि० वि०; प० : १९५० से ही दिल्ली के विभिन्न पत्रों में लेख, समीक्षा और संवाद-लेखन से आरंभ, दैनिक 'हिंदुस्तान' और 'नवभारत टाइम्स' में नियमित स्तंभ लेखन, संपादिका, 'शंखनाद' (जोधपुर), 'उद्योग परिचय', 'नारी समाज' (दिल्ली, साप्ता०); संवाददाता, दैनिक 'नवयुग' (जयपुर, १९५७ से), 'प्रयाग पत्रिका'; र० : 'आकाश-पाताल', 'टीटो की कहानी' (अनू०), 'हमारा पड़ौसी देश श्रीलंका' आदि; वि० : लोकसभा की दीर्घा में बैठने वाली पहली महिला पत्रकार, १९६२ में जयपुर से लोकसभा का चुनाव भी लड़ा, दिल्ली की तवाइफों और वेश्याओं की समस्याओं का विशेष अध्ययन और लेखन।

सत्यनारायण, मोटूरि



प० : संपादक, 'हिंदी प्रचारक' (मद्रास, १६३१); र० : अनेक पाठ्य पुस्तकें; वि० : महामंत्री राष्ट्र-भाषा प्रचार समिति, वर्धा, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा; सदस्य, मद्रास एवं मैसूर वि० वि० के शिक्षा बोर्ड ।

सत्यभक्त



ज० : ११ अप्रैल १८६७, भरतपुर (राज०); पि० : श्री कुंदनलाल गुप्त; शि० : हाईस्कूल; प० : पं० सुंदरलाल के 'भविष्य' से आरंभ; हिंदी नवजीवन' का काम संभालने अहमदाबाद गये किंतु देरी के कारण इरादा बदल दिया; उसके बाद, 'अभ्युदय', 'चांद', प्रणवीर', आदि कई पत्रों में काम किया, संपादक, 'सतयुग' (इलाहाबाद, मासिक, १६२८-५०), कुछ दिन 'देशदूत' में भी; र० : 'बोल्शेविज्म क्या है', 'कार्लमार्क्स की जीवनी', 'साम्यवाद के सिद्धांत', 'आयरलैंड के गदर की कहानियां', 'अगले सात साल', 'देवताओं के गुलाम' (अनू०); वि० : क्रांतिकारी कार्यों के लिए नौकरियां छोड़ीं, भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के आदि संस्थापक, मजदूर आंदोलन और स्वतंत्रता आंदोलन में सदा सक्रिय; वास्तविक नाम 'चक्खनलाल गुप्त'

सैनेवाल, सदानंद

ज० : १८४६ ई०; अल्मोड़ा; 'अल्मोड़ा अखबार' के संस्थापकों में से एक; यंत्रालय के प्रबंधक रहे; ४० वर्ष तक इस पत्र से संबद्ध, कुछ समय संपादन भी किया; समाज-सुधार तथा स्वाधीनता संग्राम में सदा सक्रिय रहे; नि० : १२ नवंबर १६३१।

'सनेही', गयाप्रसाद शुक्ल

ज० : श्रावण शुक्ल १३, संवत् १६४० (२८ जुलाई १८८३, हड़हा, जि० उन्नाव); पि० : पं० अवसेरीलाल शुक्ल; शि० : वर्नाक्युलर परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण; प० : संपादक-प्रकाशक, 'कवि' (गोरखपुर, कविता का मासिक पत्र, १६०६), 'सुकवि' (कानपुर, मासिक, १६२७); र० : 'प्रेम पचीसी', 'कुसुमांजलि', 'कृषक-क्रंदन', 'मानस-तरंग' एवं 'करुण-भारती' (अंतिम दोनों अप्रकाशित); अनेक फुटकर कविताएं; वि० : करुण-रस के कवि; अनेक साहित्यिक सम्मान; मृत्युपर्यंत साहित्य-सेवा में संलग्न।

सप्रे, पं० माधवराव



ज० : १६ जून १८७१; ग्रा० पथरिया, जि० दमोह (म० प्र०); पि० : कोंडेश्वर सप्रे; शि० : बी० ए०; प० : संपादक, 'छत्तीसगढ़मित्र' (विलासपुर, मासिक, १६००-१६०२); 'हिंदी केसरी' (नागपुर, १६०७), 'कर्मवीर' (जबलपुर, साप्ता०, १६२०-२५); र० : 'हिंदी-दास-बोध', 'रामदास स्वामी की जीवनी', 'आत्मविद्या', 'एक-नाथ-चरित्र', 'भारतीय युद्ध' आदि; वि० : 'हिंदी केसरी' का संपादन करते हुए जेल-यात्रा; निर्भीकतापूर्ण पत्रकारिता के लिए विख्यात; 'हिंदी ग्रंथमाला' के प्रकाशन द्वारा हिंदी साहित्य की विशिष्ट सेवा; नि० : २३ अप्रैल १६२६; रायपुर।

समर्थदान, मनीषि

ज० : १८५७ ई०; ग्रा० नेठवा, जि० सीकर (राज०); पि० : मंगल दान; प० : महर्षि दयानंद के सान्निध्य से साहित्य सेवा और पत्रकारिता मे रुचि उत्पन्न; मार्च १८८६ ई० में अजमेर से 'राजस्थान समाचार' (साप्ताहिक) का प्रकाशन-संपादन; कुछ समय पश्चात यह अर्ध-साप्ताहिक और १६०४ में रूस-जापान युद्ध छिडने पर दैनिक हो गया, १६०७ में बंद; र० : 'आर्यसमाज परिचय', 'सत्यार्थप्रकाश' की पाद-टिप्पणियां भी लिखी; भा० : हिंदी, संस्कृत, उर्दू, फारसी, अंग्रेजी; वि० : 'वैदिक यंत्रालय' के सुयोग्य प्रबंधक; १८७८ में महर्षि दयानंद के वेदभाष्य के मुद्रण और प्रकाशन का भार उठाने तथा उसे निर्णय-सागर, प्रेस, बंबई से १८८० मे सफलतापूर्वक प्रकाशित करवाने पर महर्षि द्वारा मुंशी समर्थदान को 'मनीषि' की उपाधि; 'राज-स्थान समाचार' द्वारा रियासतों में हिंदी तथा देशभक्ति का प्रचार तथा लोगों में खबरों के प्रति आकर्षण पैदा किया; नि० : १७ जून १६१४; अजमेर।

'सरस', लक्ष्मीकांत

ज० : १६ सितंबर १६४१; आवाजापुर, जि० वाराणसी ; शि० : एम० ए० (हिंदी); प० : संपादक, 'अंकन' (मद्रास, त्रैमासिक, १६६४ से); संवाददाता 'नवभारत टाइम्स' (बंबई) : र० : 'शब्दों का आईना', 'पर्वत की खाई में दर्द है'; तीन उपन्यास प्रकाश्य; वि० : अहिंदी भाषी क्षेत्र मे हिंदी और उत्तर-दक्षिण सांस्कृतिक ऐक्य का प्रचार।

सराफ नर्मदाप्रसाद

ज० : २३ जुलाई १६१६; जबलपुर; शि० : विशारद; प० : 'कर्मवीर' से प्रेरणा; 'नवभारत' और 'ससार' के जबलपुर प्रतिनिधि; 'जयहिंद' के नगर प्रतिनिधि; संपादन, 'प्रहरी' (१६४७-५८); सहयोगी संपादन, 'जबलपुर समाचार'; इसके पूर्व दैनिक 'समाज' का प्रकाशन-संपादन; अब फिर 'नवभारत' (जबलपुर) मे; वि० : स्वाधीनता सेनानी; १२ वर्ष की अल्पायु मे जेल-यात्रा; १६४२ में फिर जेल; म० प्र० श्रमजीवी पत्रकार संघ के उपाध्यक्ष।

सहगल, रामरिखसिंह

ज० : १८९६; ग्राम रखटेढ़ा (लाहौर), प० : संपादक-प्रकाशक, 'चांद' (इलाहाबाद, १९२२); 'भविष्य' साप्ताहिक और दैनिक तथा 'कर्मवीर' के संपादन में सहयोग; वि० : 'चांद' के कुछ विशेषांक—'फांसी अंक', 'मारवाड़ी अंक', 'अछूत अंक', 'सती अंक'—आदि ऐतिहासिक महत्व के थे; नि० : १९५२।

संतराम बी० ए०

ज० : फाल्गुन ४, संवत् १९४३ (रविवार, ४ फरवरी १८८७); ग्रा० पुरानी बसी, जि० होशियारपुर; पि० : रामदास; शि० : बी० ए०; प० : संपादक-प्रकाशक 'उषा' (मासिक, १९१४); संपादक, 'भारती' (जालंधर), 'युगांतर', 'क्रांति' (उर्दू), 'जात-पांत तोड़क' (लाहौर, १९२५); र० : पचास से अधिक पुस्तकें; प्रमुख हैं—'दम्पति मित्र', 'एकाग्रता और दिव्य शक्ति', 'विवाहित प्रेम', 'काम-कुंज', 'वीर पेशवा', 'मानव जीवन का विधान', 'इत्सिंग की भारत यात्रा', 'अलबेरूनी का भारत', 'दयानंद', 'जाति-भेद का उच्छेद', आदि; भा० : हिंदी, उर्दू, पंजाबी, संस्कृत, फारसी, अंग्रेजी; वि० : पंजाब में हिंदी को लोकप्रिय बनाने में सक्रिय योगदान; जात-पांत-तोड़क मंडल की स्थापना तथा समाज-सुधार विषयक प्रचुर साहित्य के रचयिता।

साहा, मधुसूदन



ज० : १५ जुलाई १९४०, ग्रा० घमसाई, जि० संथाल परगना (बिहार); शि० : एम० ए० (हिंदी), प० : संपादक 'इंदीवर', 'राष्ट्रभाषा पुस्तकालय' (वार्षिकी) 'संकल्प' (राउरकेला) 'शौण्डिक' (चक्रधरपुर, मासिक), र० : 'पलकों की पंखुरी', 'कुछ उभरती आकृतियां', 'किंजल्क', 'खरोंच लगा हुआ कांच', 'यक्ष की नगरी : प्रत्यक्ष की नगरी' (संपा०), 'स्मरणिका' (विविध, संपादन) 'एक दरबा : दो कबूतर' (उपन्यास, भा० : हिंदी, उड़िया अंग्रेजी; वि० : अहिंदीभाषी प्रदेश में हिंदी-कार्य।

सितारेहिंद, राजा शिवप्रसाद

ज० : मिति माघ सुदी २, संवत् १८८० (फरवरी, १८२३ ई०); काशी; पि० : बाबू गोपीचंद; शि० : प्रारंभ में घर पर हिंदी-उर्दू पढ़ी; फिर बीबी हटिया स्कूल में फारसी की शिक्षा; तदनंतर संस्कृत का अभ्यास किया; प० : संस्थापक, 'बनारस अखबार'; आपने संवत् १९०२ (१८४५ ई०) में यह पत्र प्रकाशित करवाया था। इसके संपादक श्री गोविंद रघुनाथ थत्ते थे; इसकी भाषा उर्दू-मिश्रित ही थी; देवनागरी अक्षरों में यह काशी से प्रकाशित होता था; र० : लगभग ३५ पुस्तकें; उल्लेखनीय ये हैं—विद्यांकुर', 'गीतगोविंदादर्श', 'भूगोल हस्तामलक', 'हिंदी व्याकरण', 'मानव धर्म सार', 'गुटका', 'राजा भोज का सपना', 'वामा मनरंजन', 'वीरसिंह का वृत्तांत', 'वर्णमाला', 'सिक्खों का उदय अस्त', 'गुटका' (तीन भाग), 'इतिहास तिमिर-नाशक' आदि; भा० : उर्दू, हिंदी, फारसी, संस्कृत, अरबी, अंग्रेजी, बंगला; वि० : आपने स्कूलों के इंस्पेक्टर पद पर नियुक्त हो, न केवल हिंदी की सुरक्षा का प्रयास किया प्रत्युत हिंदी में अनेक पाठ्य पुस्तकों की रचना स्वयं और दूसरों से करवाकर उसे समर्थ एवं वैभवशालिनी बनाया; कुछ लोगों ने आपकी उर्दू-प्रधान हिंदी का विरोध भी किया है, आपकी योग्यता एवं सेवाओं को देखते हुए सरकार की ओर से आपको १८७२ ई० में सी० एस० आई० की एवं १८८७ ई० में 'राजा' की उपाधि प्राप्त हुई; नि० : २३ मई १८९५।

सिद्धांतालंकार, दीनानाथ



ज० : ८ अप्रैल १८६४; ग्रा० पिंडीमहियां, जि० गुजरांवाला (पाकिस्तान); शि० : स्नातक, सिद्धांतालंकार, गुरुकुल, कांगड़ी, प० : उप-संपादक, साप्ताहिक 'श्रद्धा' (गुरुकुल, १६२०); स० संपादक, दैनिक 'अर्जुन' (दिल्ली, १६२३-२५); संपादक, 'विधवाबंधु' (लाहौर, मासिक, १६२६-२७); कुछ समय तक 'राष्ट्रदूत' (बंबई) के सहायक-संपादक; विभाजन के बाद स० संपादक दैनिक 'आकाशवाणी' (जालंधर), दैनिक 'आज' (वाराणसी), दैनिक 'वीरअर्जुन' (दिल्ली); दैनिक 'विश्वमित्र' (कलकत्ता); संपादक, साप्ताहिक 'आर्य' (जालंधर); स० संपादक दैनिक 'जनसत्ता' (दिल्ली); संपादक मासिक 'सफल जीवन' (दिल्ली); सह-संपादक और फिर संपादक 'भारत सेवक' (दिल्ली, मासिक); संपादक, 'ग्राम सहयोगी' (दिल्ली); स० संपादक 'संपदा' (दिल्ली); संपादक, 'आर्य जगत' (दिल्ली); र० : प्रमुख हैं : 'अमृत पथ', 'अध्याय योग', 'आर्यसमाज की उपलब्धियां', 'ज्वलंत जीवन', 'प्रेरक जीवन', 'हिंदू जाति विनाश के कगार पर'।

सिंह, राजकिशोर

शि० : बी० काम०; एल-एल० बी०; प० : १६३७-३८ में 'संघर्ष' (लखनऊ) से आरंभ; दैनिक 'अधिकार', 'प्रगति', 'विश्वमित्र', 'लोकमान्य', 'विश्वबंधु' आदि में रहे; संपादन, 'छाया', 'इंडस्ट्रियल गजेट'; संवाददाता, 'हिंदुस्तान स्टैंडर्ड' (कलकत्ता, अंग्रेजी दैनिक); संप्रति, वाणिज्य संपादक, 'सन्मार्ग'; र० : 'भूख का तांडव', 'रोटी', 'युद्धोत्तर भारत', 'सृजन, और विनाश की कहानी', 'अनुशासन और समृद्धि' आदि; या० : दुनिया के अनेक देश; वि० : श्रमजीवी हिंदी पत्रकार संघ के वर्षों तक अध्यक्ष; कार्यकारिणी सदस्य, अ० भा० श्रमजीवी पत्रकार संघ।

सिंह, ठाकुर राजबहादुर

ज० : १० दिसंबर १९०३; सुलतानपुर (उ०प्र०); शि० : एम० ए०; प० : आरंभ 'वीरअर्जुन' से; 'नवभारत टाइम्स' (बंबई) के संपादक, कुछ दिनों दिल्ली संस्करण का भी संपादन; संपादक 'गांधी मार्ग' (त्रैमासिक), 'भारती' (विद्या भवन) आदि; र० : 'संसार के महान साहित्यिक', 'समर्थ गुरु रामदास', 'स्वामी विवेकानंद', 'जीवन पथ', 'वज्रघोष', 'आकाश रो पड़ा', 'खून की होली', 'लेनिन और गांधी', 'रूस का पंचवर्षीय आयोजन'; नि० : ६ अगस्त १९६९, बंबई।

सिंह, ठाकुर विश्वनारायण



ज० : ३० जुलाई १९२८; नागपुर; पि० : ठाकुर वेणीमाधव सिंह, शि० : एम० ए०, डिप्लोमा-इन-जर्नलिज्म, साहित्यरत्न; प० : १९५० से 'नवभारत', 'लोकमान्य', 'हिंदुस्तान समाचार', 'युगधर्म', यू० एन० आई० आदि के संपादकीय विभाग में कार्य; १९५७ से ब्रेल-संपादक के रूप में; संपादक 'आलोक', 'नयन रश्मि', 'शिशु आलोक'; भ० : संस्कृत, हिंदी मराठी, अंग्रेजी; वि० : भारत के प्रथम ब्रेल संपादक तथा हिंदी ब्रेल-पत्रकारिता के जनक; ब्रेल लिपि के माध्यम से देश-विदेश के दृष्टिहीनों के बीच हिंदी का प्रचार।

सिंह, श्यामरथी



ज० : १ सितंबर १९२२; ग्रा० भार, जि० आजमगढ़ (उ० प्र०); पि० : निफिकर सिंह; शि० : हाईस्कूल; काशी विद्यापीठ में पढ़ते समय आंदोलन में; प० : उप-संपादक दैनिक 'विश्वमित्र' (बंबई, फरवरी १९४५), दैनिक 'विकास' (१९५०); मुख्य उप-संपादक, दैनिक 'नवभारत टाइम्स' (बंबई, १९५०-१९७४); इसी मे समाचार-संपादक १९७४ से; वि० : स्वाधीनता-संग्राम में जेल-यात्रा; राजनीतिक और आर्थिक समस्याओं पर अध्ययन-लेखन।

सिंह, ठाकुर श्रीनाथ

ज० : १९०१; मानपुर, इलाहाबाद; प० : संपादक 'सरस्वती', 'हल', 'दीदी', 'बालसखा', 'देवदूत', 'गृहलक्ष्मी', 'शिशु', 'देशबंधु' आदि; र० : 'प्रजामंडल', 'जागरण', 'उलझन' आदि उपन्यासों के अलावा बाल-साहित्य का सृजन भी; वि० : सभापति, अ० भा० हिंदी साहित्य सम्मेलन; कई वर्ष तक उसके प्रबंध मंत्री आदि पदों पर भी रहे।

सिंहल, मदनगोपाल

ज० : माघ शुक्ला ७, संवत् १९६५; मेरठ; प० : संपादक, 'आदेश' (मेरठ, साप्ता०, १९३६); प्रकाशन-संपादन, दैनिक 'रामराज्य' (मेरठ, १९४१); संपादन, 'संकीर्तन', 'बालवीर', 'महावीर', 'वैश्य हितकारी' आदि; र० : लगभग ५० पुस्तकें; प्रमुख हैं— 'क्रांतिकारी बालक', 'बड़ों का विनोद', 'बड़ों का बचपन', 'हमारे बालक' आदि; वि० : स्वाधीनता-संग्राम, समाज-सुधार व सेवा में सक्रिय; कई सामाजिक संस्थाओं की स्थापना।

सीताराम, लाला

ज० : २० जनवरी, १८५८ई०; अयोध्या; शि० : बी० ए० (विज्ञान); बाद में वकालत की परीक्षा भी उत्तीर्ण; प० : संपादक, 'शुभचिंतक' (शाहजहांपुर, मासिक, १८८३); 'भारतोदय' (कानपुर, दैनिक, १८८५), 'सिपाही' (कानपुर-मासिक १९०३, एक वर्ष बाद साप्ताहिक); र० : संस्कृत से अनूदित···'मेघदूत', 'कुमारसंभव', 'रघुवंश', 'नागानंद', 'ऋतु संहार', 'श्रृंगारतिलक', 'उत्तररामचरित', 'मालविकाग्निमित्र', 'मृच्छकटिक', 'महावीरचरित्र,' 'मालती माधव', 'हितोपदेश' आदि; मौलिक— 'अयोध्या का इतिहास'; उर्दू में शेक्सपियर के कुछ नाटकों का अनुवाद भी; भा० : हिंदी, संस्कृत, फारसी, उर्दू, अंग्रेजी; वि० : सरकारी पदों पर रहते हुए हिंदी-हित-चिंतन; रायबहादुर की उपाधि; नि० : २ जनवरी १९३१।

'सुधांशु', लक्ष्मीनारायण

ज० : १८ जनवरी १९०८, रूपसपुर, जि० पूर्णिया **पि० :** धनपतिसिंह; **शि ० :** एम० ए० हिंदी, काशी वि० वि०; **प० :** छात्रावस्था में 'कुमार' एवं 'अशोक' नामक पत्रों का संपादन; संपादक, 'साहित्य' (१९३५ और १९३८ के मध्य); संस्थापक-संचालक, साप्ताहिक 'राष्ट्रसंदेश'; संपादक, मासिक 'अवंतिका' (पटना, १९५३-५६); **र० :** 'काव्य में अभिव्यंजनावाद', 'जीवन के तत्व और काव्य के सिद्धांत', 'भ्रातृप्रेम', 'रस-रंग', 'गुलाब की कलियां', 'काव्ययोग' (अप्रकाशित), साहित्यिक निबंध 'संपर्क भाषा हिंदी', 'हिंदी साहित्य का बृहत इतिहास' (संपादित), 'कांग्रेस अभिज्ञान ग्रंथ' (संपादित); **भा० :** हिंदी, बंगला, अंग्रेजी; **वि० :** अध्यक्ष, बिहार सरकार 'हिंदी प्रगति समिति', बिहार हिंदी साहित्य सम्मेलन (गया, १९५० तथा फारबिसगंज, १९६२), बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी; प्रणेता बिहार राष्ट्रभाषा परिषद एवं हिंदी साहित्य सम्मेलन भवन, पूर्णिया (१९५५); दीर्घ हिंदी-सेवा के लिए भागलपुर वि० वि० द्वारा डी० लिट्०; 'अंग्रेजी हटाओ' आंदोलन के वरिष्ठ नेता; **नि० :** १७ अप्रैल १९७४।

'सुमन', रामनाथ



ज० : ९ अक्तूबर १९०३; ग्रा० ढोलापुर, वाराणसी; **शि० :** माध्यमिक; **प० :** संपादन तथा सहयोग, दैनिक 'आज', 'इंदु', 'त्यागभूमि', 'नवराजस्थान', 'सम्मेलन पत्रिका' आदि; **र० .** ३४ पुस्तकें। प्रमुख हैं —'कवि प्रसाद की काव्य साधना', 'गालिब', 'मीर', 'जिगर', 'उर्दू काव्य की बुलबुलें', 'तुलसी की देन', 'विपची, 'शतदल' आदि; **भा० :** हिंदी, संस्कृत, फारसी, उर्दू, अंग्रेजी आदि; **नि० :** २६ जनवरी १९७६।

'सुमन', क्षेमचंद्र



ज० : १६ सितंबर १६१६; बाबूगढ़, मेरठ; पि० : हरिश्चंद्र सारस्वत; शि० : स्नातक, गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर; प० : संपादक, 'आर्य' (सहारनपुर, साप्ता०, १६३७); सह-संपादक 'आर्य संदेश', 'आर्यमित्र' (आगरा, साप्ता०, १६३८); संपादक, 'मनस्वी' (अमेठी, मासिक, १६३६), 'शिक्षा सुधा' (बनौरा १६४०); सह-संपादक, दैनिक 'मिलाप' (लाहौर, १६४१-४२); 'आलोचना' दिल्ली, (त्रैमासिक, १६५३-५४); र० : ५० से अधिक पुस्तकें; प्रमुख हैं—'मल्लिका', 'बंदी के गान', 'कारा', 'हमारा संघर्ष', 'आजादी की कहानी', 'कांग्रेस का इतिहास', 'हिंदी साहित्य : नये प्रयोग', 'साहित्य विवेचना, 'रेखाएं और संस्मरण' आदि; या० : मारीशस; वि० : स्वाधीनता सेनानी, जेल-यात्राएं, अनेक सामाजिक और शैक्षणिक संस्थाओं के संस्थापक-प्रबंधक।

सुरजन, मायाराम



ज० : १६ मार्च १६२३; खापरखेड़ा (होशंगाबाद); पि० : गनेशीलाल सुरजन, शि० : बी० काम०; बी० ए०; एल-एल० बी० ; प० : नवीं कक्षा से ही पत्रकारिता की तरफ रुझान; विज्ञापन-व्यवस्थापक 'नवभारत' (नागपुर, १६४५); सहायक व्यवस्थापक (१६४७), प्रधान व्यवस्थापक (१६४६); संपादक एवं व्यवस्थापक भोपाल-संस्करण (१६५०); संपादक एवं व्यवस्थापक भोपाल संस्करण (१६५६); प्रकाशक-संचालक अंग्रेजी दैनिक 'एम० पी० क्रानिकल' (१६५७); १६५८ में 'नवभारत' से त्यागपत्र और स्वतंत्र रूप से पत्रकारिता; १६५६ में 'नई दुनिया' के रायपुर संस्करण का प्रकाशन जो बाद में 'देशबंधु' कहलाया; प्रकाशक, व्यवस्थापक, संपादक, 'नई दुनिया' (जबलपुर संस्करण); प्रकाशक 'जबलपुर समाचार' (१६६३) जो अब 'देशबंधु' कहलाता है; प्रधान संपादक 'देशबंधु' (जबलपुर, भोपाल, रायपुर); र०:कविताएं, लेख आदि; संस्मरण शीघ्र प्रकाश्य। या० : सोवियत संघ; वि० : सदस्य, कार्यसमिति-अखिल भारतीय समाचार-पत्र संपादक सम्मेलन, मध्यप्रदेश प्रेस सलाहकार समिति, महामंत्री मध्यप्रदेश हिंदी साहित्य सम्मेलन एवं अध्यक्ष विदिशा अधिवेशन।

सुंदरलाल, पंडित



ज० : २६ सितंबर १८८६; खतौली, मुजफ्फरनगर (उत्तर प्रदेश); पि० : तोताराम; प० : संस्थापक-संपादक, 'कर्मयोगी' (साप्ताहिक १९०७-१९०९), 'भविष्य' (साप्ताहिक १९१८), 'भविष्य' (दैनिक १९१९-१९२१) 'नया हिंद' (मासिक १९४६); र० : 'जापान का इतिहास', 'सिखों का इतिहास', 'सभ्यता महारोग', 'भारत में अंग्रेजी राज', 'हिस्ट्री आफ हिंदू मुस्लिम प्राबलेम', 'हजरत मोहम्मद और इस्लाम', 'गीता और कुरान', 'चायना टुडे' आदि लगभग २५ पुस्तकें; या० : विश्व के अनेक देशों में भ्रमण; वि० : स्वाधीनता सेनानी; जेलयात्राएं; संस्थापक, हिंदुस्तानी कल्चर सोसायटी; अध्यक्ष, भारतीय शांति परिषद १९६०-६२।

सूरिदेव, प्रो० श्रीरंजन



ज० : २८ अक्टूबर १९२६; ग्रा० श्रीशुभेश्वरनाथ धौनी, जि० दुमका (बिहार); पि० : बदरीनारायण पाठक; शि० : एम० ए० (प्राच्य विद्या) बिहार वि० वि०, आचार्य, साहित्यरत्न, साहित्यालंकार; प० संपादन-सहयोग, 'साहित्य' (पटना, त्रैमासिक, १९५२-६२); 'परिषद्-पत्रिका' (पटना, त्रैमासिक के १९६० से '७४ तक कार्यकारी संपादक, सहायक संपादक और संपादक भी); मार्च १९७५ से विधिवत संपादक; इसी बीच, 'ब्रह्म ज्योति', 'चक्रबंधु' (वाराणसी, मासिक) का भी संपादन तथा 'अंगिका' (मासिक) के संपादक मंडल में भी; र० : 'मेघदूत : एक अनुचिंतन'; 'गीत संगम' और 'बहुत है'; जैन गाथाओं पर कई बालोपयोगी पुस्तकें; (संपा०) 'रामजन्म' 'उर्दू शायरी और बिहार'; भा० : हिंदी, संस्कृत, पाली, प्राकृत, बंगला, अंग्रेजी; वि० : 'परिमल' के सह-संयोजक; कार्यालय-संचालक, साहित्य मंत्री, प्रबंध मंत्री, पुस्तकालय मंत्री, बिहार हिंदी साहित्य सम्मेलन।

सेवक, द्वारकाप्रसाद



ज० : १४ फरवरी १८८८; फ़िरोजाबाद (उ० प्र०); शि० : शाहजहांपुर, बुलंदशहर और नैनीताल में; स्नातक होने के पहले ही समाज-सेवा क्षेत्र में कूद पड़े; प० : मार्च १९१५ से आचार्य केशवदेव शास्त्री के पत्र 'नवजीवन' का संपादन इंदौर से आरंभ; संपादक-संस्थापक, 'भारतीय आदर्श', 'आर्यमार्तंड', (अजमेर), 'वैदिक संदेश' (अजमेर); र० : 'दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास', 'प्रवासी भारतवासी', 'शंकरानंद संदर्शन', 'आर्यसमाज किस ओर', 'हमारा समाज', 'भारत की भाषा', 'पतन के कगार पर' आदि; वि० : स्वाधीनता सेनानी; आर्यसमाज के माध्यम से समाज-सेवा; शैक्षणिक और सामाजिक संस्थाओं की स्थापना।

सेंगर, मोहनसिंह

ज० : १२ सितंबर १९१४; जोधपुर; प० . 'भग्नदूत' तथा 'राजनीति के एक विद्यार्थी' के नाम से समाचार-पत्रों में लेखन से आरंभ; प्रधान संपादक, दैनिक 'शक्ति' (लाहौर); सह-संपादक, दैनिक 'नवयुग' (दिल्ली); संपादक, 'विशाल भारत' (कलकत्ता, कई वर्ष), 'नया समाज' (कलकत्ता); र० : 'चिता और चिंगारियां', 'खून के धब्बे', 'नये युग की नारी', 'नरक का न्याय', 'जीवन का सत्य' आदि।

'हृदयेश', चंडीप्रसाद

ज० : १८९८ ई०; पीलीभीत (उ० प्र०); पि० : शंभूनाथसिंह; शि० : बी० ए०; संपादक 'चांद' (इलाहाबाद, १९२५ मई, १९२७); र० : 'नंदन निकुंज', 'मनोरमा', मंगल-प्रभात', 'वनमाला', 'गल्पमाला'; वि० : उत्कृष्ट भाषा-सौष्ठव के धनी; 'चांद' का श्रेष्ठ संपादन करने के लिए अल्पावधि में विख्यात हुए; नि० : १५ जून १९२७।

त्रिपाठी, कमलापति



ज० : ३ सितंबर १९०५; काशी; पि० : नारायणपति त्रिपाठी, शि० : शास्त्री; सेंट्रल हिंदू कालेज एवं काशी विद्यापीठ आदि में, प० : पराड़करजी के प्रधान-संपादकत्व में 'आज' में संपादक (काशी, १९३४-४३), १९४३ में 'आज' छोड़ दिया और 'संसार' के प्रधान संपादक हुए। संसार लिमिटेड से प्रकाशित 'ग्राम संसार', 'आंधी', 'युगधारा' आदि के भी प्रधान संपादक रहे (१९४३-५२); र० : 'बापू और मानवता' (मंगलाप्रसाद पुरस्कार), 'मौर्यकालीन भारत', 'इस्लामी दुनिया का सरताज', 'बापू और भारत', 'पत्र और पत्रकार', 'चीन और च्यांग', 'बंदी की चेतना', 'युग पुरुष बापू के चरणों में' आदि; भा० : हिंदी, संस्कृत, अंग्रेजी, फारसी, उर्दू; वि० : स्वाधीनता सेनानी; अनेक बार जेल-यात्राएं; संविधान-सभा के सदस्य के रूप में हिंदी को राष्ट्रभाषा का गौरव दिलाने एवं संविधान का हिंदी संस्करण प्रकाशित करने में महत्वपूर्ण एवं ऐतिहासिक योगदान; उत्तर प्रदेश एवं केंद्रीय मंत्रालयों में हिंदी के अनुशीलन एवं व्यवहार में सतत एकनिष्ठ; अध्यक्ष, हिंदी पत्रकारिता समिति।

त्रिपाठी, पन्नालाल

ज० : १२ सितंबर १९२२; अडिंग, मथुरा; शि० : साहित्य-विशारद, प्रचारक, आला काबिलीयत; प्राचार्य, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, महिला विद्यालय; प० : संपादक 'जोरदार' मद्रास साप्ताहिक; र० : 'सामान्य ज्ञान', 'रामदेव रामायण', 'चार महाकाव्य', तीन 'खंड काव्य', नौ काव्य संग्रह, ४६ कहानियां विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में, मलयालम के छह काव्यों का हिंदी अनुवाद; वि० : मद्रास की हिंदी संस्थाओं के प्राण।



त्रिपाठी, प्रयाग नारायण

ज० : २५ अगस्त १९१९; ग्रा० रायपुर, जि० रायबरेली (उ० प्र०); शि० : एम० ए० (अंग्रेजी); प० : संयुक्त संपादक, दैनिक 'प्रताप' (कानपुर, १९४४-५०); सहायक संपादक, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय (१९५०-५८); समाचार संपादक (हिंदी), आकाशवाणी (१९५८-७०); उपमुख्य सूचना अधिकारी, पत्र सूचना कार्यालय (१९७०-७२); उप-निदेशक (हिंदी), प्रकाशन विभाग (१९७३-७४); उप-निदेशक, समाचार विभाग, आकाशवाणी (१९७४ से अब तक), प्रकाशन : तीसरा सप्तक में संगृहीत कविताएं : भूमिका सहित; १९३७ से अब तक सभी प्रमुख हिंदी पत्रिकाओं में कविताओं और लेखों का प्रकाशन।

त्रिपाठी, योगींद्रपति



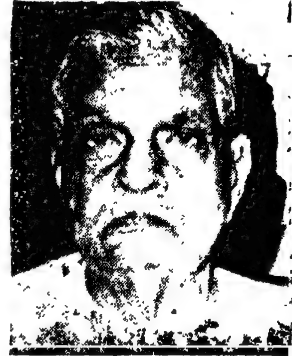
ज० : ६ जनवरी १९२९; ग्रा० पिंडी, जि० देवरिया (उ०प्र०); पि० : कामताप्रसाद त्रिपाठी; शि० : हाई स्कूल; विशारद; प० : दैनिक 'नवशक्ति' (पटना, १९३८-४२) में; उप-संपादक, दैनिक 'संसार' (वाराणसी, १९४३), दैनिक 'अधिकार' (लखनऊ १९४४-४६); वरिष्ठ उप-संपादक, दैनिक 'स्वतंत्र भारत' (लखनऊ, १९४८), इसी में संपादक (१९५३-७१); वि० : 'स्वतंत्र भारत' को श्रेष्ठ पत्र बनाने में उल्लेखनीय भूमिका निभायी; नि० : ३१ अगस्त १९७१; लखनऊ।

त्रिपाठी, पं० रामनरेश



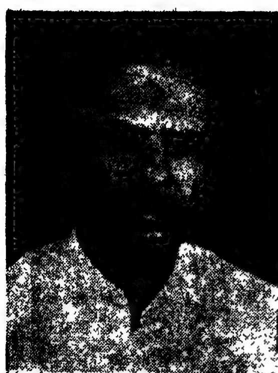
ज० : संवत् १९४६ (१८८९ ई०); कोइरीपुर, जि० जौनपुर (उ० प्र०); पि० : पं० रामदत्त त्रिपाठी; शि० : गांव में प्रारंभिक शिक्षा; जौनपुर हाईस्कूल में पढ़ाई; प० : संपादक-प्रकाशक 'कवि कौमुदी' (मासिक, १९२५-२६), 'उद्योग' (पाक्षिक, सुल्तानपुर); संपादक, 'सम्मेलन पत्रिका' (कुछ समय तक), 'वानर' (प्रयाग, मासिक, १९३१ लगभग ७-८ वर्ष); र० : लगभग ४० पुस्तकें; 'कविता-कौमुदी', 'पथिक', 'मिलन', 'स्वप्न', 'रामचरितमानस की टीका', 'तुलसीदास और उनकी कविता', 'हिंदी का संक्षिप्त इतिहास', 'बानर संगीत', 'नेता बुझौवल' आदि। भा० : हिंदी, संस्कृत, गुजराती, उर्दू, अंग्रेजी। उ० : द्विवेदी युग के श्रेष्ठ कवि और गद्यकार; ग्राम-गीतों का सुंदर संकलन किया; स्वाधीनता सेनानी; जेल-यात्रा; नि० : १९६२ ई०।

त्रिपाठी, रामशंकर



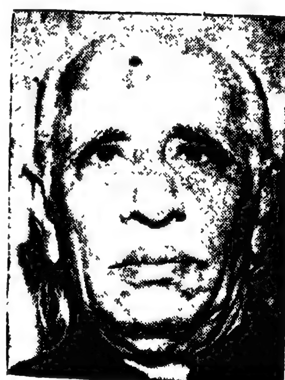
ज० : २ जून १९०४; ग्रा० सुमेरपुर (जि० उन्नाव (उ० प्र०); पि० : पं० गंगासेवक त्रिपाठी; शि० : प्रारंभिक शिक्षा गुरु परंपरा से; हिंदी तथा संस्कृत का अध्ययन; आगे की शिक्षा कानपुर, लाहौर, बंगला देश में। प० : 'माधुरी' में मुंशी प्रेमचंद के सहकर्मी। 'मतवाला', 'स्वतंत्र' (कलकत्ता, दैनिक), 'वर्तमान' (कानपुर), 'मारवाड़ी' अग्रवाल समाज (कलकत्ता) में कार्य, १९३० में कलकत्ता में साप्ताहिक 'लोकमान्य' का प्रकाशन; एक वर्ष बाद इसे दैनिक किया; कलकत्ता से 'छाया', 'लोकमत' (नागपुर, दैनिक), 'हिंदुस्तान' (बंबई), 'लोकमान्य' (दिल्ली, साप्ताहिक), 'लोकमान्य' (गौहाटी व कानपुर) से संपादित-प्रकाशित; र० : 'महर्षि कर्वे' (जीवनी), 'भारत के महापुरुष', 'आजाद हिंद फौज', 'सम्राट् पृथ्वीराज'; वि० : स्वतंत्रता सेनानी; संपादकीय के कारण जेल-यात्रा; कलकत्ता में राष्ट्रभाषा सम्मेलन १९२८ में आयोजित; ११ वर्षों तक लगातार बड़ा बाजार कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष; 'लोकमान्य' में अनेक पत्रकारों को तैयार किया; सुमेरपुर में हाईस्कूल की स्थापना। नि० : २६ सितंबर १९७४।

त्रिपाठी, वचनेश



ज० : ७ जनवरी १९२०, ग्रा० संडीला, जि० हरदोई (उ० प्र०); पि० : पं० मनोहरलाल त्रिपाठी; शि० : इंटर, साहित्यरत्न; प० : १९४२ में भूमिगत पत्र 'क्रांति ज्वाला' का संपादन; १९४८ से '५५ तक 'राष्ट्रधर्म' (मासिक), 'पांचजन्य' (साप्ता०), 'स्वदेश' (दैनिक) के सह-संपादक; प्रधान संपादक, दैनिक 'तरुण भारत', 'पांचजन्य' (साप्ता०), 'राष्ट्रधर्म' (मासिक, सभी लखनऊ से, १९५७ से अब तक); र० : 'विद्रोही की कन्या', 'वे आजाद थे', 'शहीद', 'मुक्तप्राण', 'गोदावरी की खोज', 'सूरज के बेटे'।

त्रिपाठी, सुंदरलाल



ज० : पूरेजहर सिंह, जि० रायबरेली; प० : उप-संपादक 'स्वाधीन भारत' (१९३०); काका साहेब खाडिलकर के संपादकत्व में एन० आर फाटकजी से संपादकीय लेख लिखना सीखा। 'स्वाधीन भारत' के अतिरिक्त लगभग १४ दैनिक, साप्ताहिक-अर्द्ध-साप्ताहिक, मासिक-अर्द्धमासिक पत्रों का संपादन किया किंतु उनमें से कुछ जल्दी ही बंद हो गये; केवल 'स्वाधीन भारत' छह-सात वर्ष तक चला। संप्रति, व्यवस्थापक-संपादक 'विश्वमित्र' (बंबई); र० : 'सत्याग्रह संग्राम', 'लंदन में लंगोटीवाला'; वि० : 'स्वाधीन भारत' के अतिरिक्त किसी और अखबार से पैसा नहीं लिया और बंबई में तब हिंदी अखबार तथा पाठशालाएं खोलीं जब वहां हिंदी सर्वथा तिरस्कृत थी। १९३४ में तीन पाठशालाओं को नगर निगम में शामिल करवाने के लिए आमरण अनशन। गांधीजी के आह्वान पर बंबई हिंदी विद्यापीठ, राष्ट्रभाषा हिंदी प्रचार सभा आदि की स्थापना में सहयोग।

त्रिवेदी, काशिनाथ



ज० : १६ फरवरी १६०६, ग्रा० दिगठान, जि० धार (म० प्र०); **पि० :** नारायणराव चुन्नीलाल त्रिवेदी; **शि० :** बी० ए०, आगरा वि० वि०; **प० :** सहायक संपादक, 'त्यागभूमि' (अजमेर, मई १९२८—दिसंबर १९२८), 'हिंदी नवजीवन' (अहमदाबाद, १९२९-३१); संपादक, 'हिंदी शिक्षण पत्रिका' (इंदौर, १९३४-५६); सहायक-संपादक, 'हरिजन सेवक', (अहमदाबाद, १९४१-४२; १९४५-४७); संपादक, 'भूमिक्रांति' (इंदौर, साप्ता०, १९५९-६१), 'शताब्दी संदेश' (इंदौर, पाक्षिक, जून १९६८—मई १९७४); **र० :** 'मेरा घर', 'बालजीवन की करुणता', 'बापू की विराट् वत्सलता', 'पुराने बोल, नये मोल', 'गांधी : जीवन परिचय'; गुजराती से हिंदी में अनुवादित १२५ पुस्तकें; **भा० :** हिंदी, संस्कृत, गुजराती, मराठी, उर्दू, अंग्रेजी; **या० :** इटली, स्विट्जरलैंड; **वि० :** स्वाधीनता सेनानी, लंबी जेल-यात्रा, अनेकानेक गांधी संस्थाओं के पदाधिकारी; शिक्षामंत्री, मध्यभारत, १९४८-४९।

त्रिवेदी, हरिकृष्ण



ज० : १ नवंबर १९११, ग्रा० सुपै, अल्मोड़ा; **शि० :** कालेज में पढ़ाई छूटी, आंदोलन में; **प० :** 'हिंदुस्तान टाइम्स' के संवाददाता (अल्मोड़ा-नैनीताल) कार्य मे आरंभ; 'विश्व-वाणी' (कलकत्ता) में एक वर्ष; सहकारी संपादक, 'सैनिक' (आगरा); कुछ समय 'हंस' मे भी; फिर 'सैनिक' में; 'सैनिक' पर प्रतिबंध लगने पर १९४४ मे दैनिक 'हिंदुस्तान' (दिल्ली) मे उप-संपादक, मुख्य उप-संपादक तथा वरिष्ठ सह-संपादक; नवंबर १९६२ मे छह माह के लिए कार्यकारी संपादक; १९७५ मे सेवा-निवृत्त, **र० :** 'सुभाष-चंद्र बोस', 'जीवन विज्ञान', 'महाप्रस्थान के पथ पर' (बंगला से अनूदित)।

विदेशों के हिंदी पत्रकार

आत्माराम विश्वनाथ, पं०



महाराष्ट्र से १६१२ में मारीशस गये; प० जीवन के सांध्य-काल में 'जागृति' का संपादन; र० 'मारीशस का इतिहास' तथा 'हिंदू मारीशस' विशेष लोकप्रिय; यों मराठी और हिंदी में अनेक रचनाएं; वि० : मारीशस में हिंदुओं की बहुसंख्या निर्मित करने की दृष्टि से प्रचार और लेखन; नि० : १६५७ ई० ।

किष्टो, पं० काशीनाथ



ज० : १८८४ ई०; पूर्व मारीशम (पूर्वज बंगाली); शि० : लाहौर में; प० : १६२४ मे आर्यसमाज के मुखपत्र 'आर्य पत्रिका' के संपादक; प्रधान संपादक 'आर्यवीर' (मारीशस, १६२८); र० : छात्रोपयोगी तीन पाठ्य-पुस्तकें; वि० : १६१० में आर्यसमाज से प्रभावित होकर समाज-सुधार के कार्य में लगे; हिंदी अध्यापक; उच्च कोटि के उपदेशक और प्रचारक; मजदूर दल के सक्रिय सदस्य; संस्थापक 'आर्यन वैदिक स्कूल'; नि० : १६४७ ई० ।

'सरस', लक्ष्मीकांत

ज० : ११ सितंबर १९४१; आवाजापुर, जि० वाराणसी ; शि० : एम० ए० (हिंदी); प० : संपादक, 'अंकन' (मद्रास, त्रैमासिक, १९६४ से); संवाददाता 'नवभारत टाइम्स' (बंबई) : र० : 'शब्दों का आईना', 'पर्वत की खाई में दर्द है'; तीन उपन्यास प्रकाश्य; वि० : अहिंदी भाषी क्षेत्र में हिंदी और उत्तर-दक्षिण सांस्कृतिक ऐक्य का प्रचार।

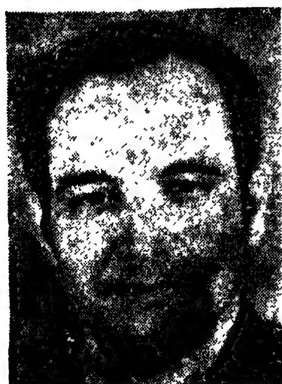
सराफ नर्मदाप्रसाद

ज० : २३ जुलाई १९१९; जबलपुर; शि० : विशारद; प० : 'कर्मवीर' से प्रेरणा; 'नवभारत' और 'संसार' के जबलपुर प्रतिनिधि; 'जयहिंद' के नगर प्रतिनिधि; संपादन, 'प्रहरी' (१९४७-५८); सहयोगी संपादन, 'जबलपुर समाचार'; इसके पूर्व दैनिक 'समाज' का प्रकाशन-संपादन; अब फिर 'नवभारत' (जबलपुर) में; वि० : स्वाधीनता सेनानी; १२ वर्ष की अल्पायु में जेल-यात्रा; १९४२ में फिर जेल; म० प्र० श्रमजीवी पत्रकार संघ के उपाध्यक्ष।

कौशल, जगदीश मित्र

ज० : २९ अगस्त १९३२, ग्रा० दासुया, जि० होशियारपुर (पंजाब); पि० : पं० परमानंद; शि० : बी० ए०, ए० बी० एम० एस०; प० : २३ मार्च १९७१ को लंदन में 'अमरदीप' साप्ताहिक की स्थापना; इसके संपादन-प्रकाशन द्वारा संपूर्ण यूरोप में हिंदी का प्रचार। यह पत्र नियमित निकल रहा है।

गौतम, धर्मेंद्रकुमार



ज० : १५ दिसंबर १९३२; टनकपुर, नैनीताल; शि० : बी० ए०, साहित्यरत्न; प० : संपादक 'प्रवासिनी' (लंदन); लंदन में 'आज' के प्रतिनिधि; र० : लंदन में अनेक हिंदी एकांकियों का प्रणयन तथा मंचन; वि० : सचिव, हिंदी प्रचार परिषद्, यूरोप।

'पथिक', श्रीमती निर्मला



ज० : ४ दिसंबर १९४३; ग्रा० ओरैया, जि० इटावा (उ० प्र०); शि० : एम० ए० (हिंदी) इलाहाबाद वि० वि०; एम० ए० (संस्कृत), आगरा वि० वि०; प० : सह-संपादक, 'शांतिदूत' (फीजी, मार्च १९४३ से); र० : अनेक लेख, कहानियां और निबंध ।

बखोरी, सोमदत्त

ज० : १ नवंबर १९२१; लांग मौंटेन (मारीशस); पि० : रामदास बखोरी; शि० : बैरिस्टर (लंदन); प० : संपादक, 'अनुराग' (पोर्ट लुई, त्रैमासिक १९६८); र० : 'मुझे कुछ कहना है', 'हिंदी-साहित्य की एक झांकी', 'बीच में बहती धारा', 'गंगा की पुकार', अनेक फ्रेंच परी-कथाओं का हिंदी अनुवाद; या० : भारत, इंगलैंड, चीन तथा यूरोपीय देश; वि० : हिंदी की उत्कृष्ट साहित्यिक परंपरा के अधिष्ठाता; हिंदीसेवी संस्थाओं के प्रेरक-संरक्षक; पोर्ट लुई निगम के महासचिव ।



बिदेशी, एस० एम०



ज० : ३ सितंबर १९१९; सूवा (फीजी); **पि०** : बिदेशी; **शि०** : वास्तुशास्त्री; **प०** : 'फीजी-समाचार' के प्रधान संपादक और मालिक; **भा०** : हिंदी, अंग्रेजी; **या०** : कई बार विश्वभ्रमण; **वि०** : अनेक सामाजिक-शैक्षणिक संस्थाओं के पदाधिकारी; सूवा सिटी कौंसिल, १९६४-६७।

भवानीदयाल, सन्यासी



ज० : १८९२; जोहंसबर्ग (दक्षिण अफ्रीका); **प०** : १९१४ में महात्मा गांधी द्वारा प्रकाशित 'इंडियन ओपीनियन' (दक्षिण अफ्रीका) के हिंदी विभाग का संपादन; संपादन-प्रकाशन, 'धर्मवीर' (साप्ता०, १९१७), 'हिंदी' (नेटाल, साप्ता०, १९२२), 'प्रवासी' (अजमेर); **र०** : 'दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास', 'कारावास की कहानी', 'वैदिक धर्म और आर्य सभ्यता', 'प्रवासी की आत्मकथा' आदि; **वि०** : दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह मे सक्रिय भाग, १९३० मे शाहाबाद जिला कांग्रेस के अध्यक्ष, काशी नागरी प्रचारिणी सभा के 'स्वर्ण जयंति समारोह' के अध्यक्ष, अ० भा० हिंदी साहित्य सम्मेलन की ओर से सम्मानित। मृत्यु-पर्यंत हिंदी सेवा में निरत।

वाजपेयी, पं० ब्रजनाथ माधव

ज० : बेल एतां ग्राम (मारीशस) में; शि० : संस्कृत; प० : १९४६ में भारत आकर 'प्रवासी' (अजमेर) के लिए लिखते रहे; 'योगी' (पटना) में मारीशस संबंधी लेख-माला; दैनिक 'आर्यावर्त्त' के संपादक-मंडल के सदस्य; र० : 'पं० विष्णुदयाल का जीवन चरित्र', 'कौआ चले हंस की चाल', 'दो जुआं', 'आग की बौछारों में', 'फ्रेंच स्वतः शिक्षक', वाल्तेयर के 'कांदिद' का हिंदी अनुवाद; वि० : प्रवासी मारीशसवासी पत्रकार और साहित्यकार; नि० : १९७२ ई० ।

शर्मा, पं० गुरुदयाल



ज० : १९१३; सूवा (फीजी); पि० : पं० दीन-दयाल शर्मा; शि० : फीजी में ही; प० : १९२८ में 'वृद्धि', १९३० में 'पेसिफिक प्रेस', १९३२-३३ में 'वृद्धिवाणी' का संपादन-प्रकाशन; १९३५ में 'क्रांतिदूत' (सूवा, साप्ता०) की स्थापना; तब से लगातार उसका संपादन; फीजी रेडियो के प्रसारणों में भी सक्रिय; या० : तीन बार विश्वभ्रमण; वि० : फीजी की अनेक सामाजिक, शैक्षणिक एवं शासकीय संस्थाओं तथा समितियों के पदाधिकारी ।

शर्मा, पं० राघवानंद



ज० : १० अक्तूबर १९४७; सिगातोका (फीजी); प० : संपादक, 'जागृति' (फीजी, १९६७ से); र० : कई कहानियां, कविताएं, लेख; वि० : उप-प्रधान, फीजी हिंदी पत्रकार संघ, फीजी हिंदी महा-परिषद; मंत्री, सनातन धर्म सभा, भूतपूर्व मंत्री, नेशनल फेडरेशन पार्टी, नांदी।

शर्मा, पं० रामअवध



ज० : १८८४ ई०, मारीशस; शि० : लाहौर में; प० : संपादक, दैनिक 'मारीशस इंडियन टाइम्स' (१९२०-२४), दैनिक 'मारीशस मित्र' (१९२६-३२); र० : 'व्याकरण बोध', 'मारीशस का भूगोल', 'आर्यसमाज का इतिहास' (अप्रकाशित); वि० : मारीशस के श्रेष्ठ और आदि हिंदी ज्ञाताओं में से एक; उत्तम प्रचारक और सौम्य शास्त्रार्थी; नि० : १९३४ ई०।

सिंह, चंद्रदेव



ज० : १९३८; दवासामू, ताइवेलू (फीजी); **पि०** : ठाकुर नेताजी; **शि०** : प्राथमिक; स्वाध्याय; **प०** : १९५३ से 'फिजी समाचार' में लेखन से आरंभ; 'शांतिदूत' में प्रूफ रीडिंग और मुद्रण; १९६६ से 'फीजी समाचार' में सहायक संपादक; कुछ ही दिन बाद पूर्ण संपादक। **भा०** : हिंदी, अंग्रेजी, काइवीती; **वि०** : संगठन मंत्री, रामायण मंडली कोरोदरी (नौसोरी, १९५८ से); मंत्री, हिंदी पत्रकार संघ; अन्य अनेक संस्थाओं के पदाधिकारी।

सोनी, रमेशकुमार



ज० : १ फरवरी १९३८; बजवारा, जि० होशियारपुर (पंजाब); **पि०** : टेकचंद सोनी; **शि०** : स्नातक; **प०** : लंदन में उर्दू साप्ताहिक 'मिलाप वीकली' (लंदन) के संपादन से प्रारंभ, जिसमें जून १९६६ से दो पृष्ठ हिंदी के भी रहते थे; अब 'नवीन वीकली' लंदन नामक आठ पृष्ठीय साप्ताहिक का संपादन-प्रकाशन; **भा०** : हिंदी, उर्दू, पंजाबी, अंग्रेजी; **या०** : भारत तथा यूरोपीय देश।